भा० दि० जैनसंघ-ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाका उद्देश्य

प्राकृत संस्कृत आदि भाषाओंमें निबद्ध दि० जैनागम, दर्शन, साहित्य, पुराण आदिको यथासम्भव हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित करना
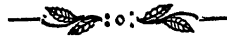
सञ्चालक

भा० दि० जैनसंघ

ग्रन्थाङ्क १-७

प्राप्तिस्थान
मैनेजर
भा० दि० जैनसंघ
चौरासी, मथुरा

मुद्रक—पं० शिवनारायण उपाध्याय, बी० ए०
नया संसार प्रेस भदैनी, वाराणसी।

स्थापनाब्द] प्रति ८०० [वी० नि० सं० २४६८

Sri Dig Jain Sangha Granthamala No 1-VII

KASAYA-PAHUDAM
VII
PRADESHAVIBHAKTI

BY

GUNADHARACHARYA

WITH

CHURNI SUTRA OF YATIVRASHABHACHÀRYA

AND

THE JAYADHAVALA COMMENTARY OF

VIRASENACHARYA THERE-UPON

EDITED BY

Pandit Phulachandra Siddhantashastri

EDITOR MAHABANDHA
JOINT EDITOR DHAVALA.

Pandit Kailashachandra Siddhantashastri

Nyayatirtha, Siddhantaratna,
Pradhanadhyapak, Syadvada Digambara Jain
Vidyalaya, Varanasi.

PUBLISHED BY

THE SECRETARY PUBLICATION DEPARTMENT,
THE ALL-INDIA DIGAMBAR JAIN SANGHA

CHAURASI, MATHURA

VIRA-SAMVAT 2485 VIKRAMA S. 2015 1958 A. D.

Sri Dig. Jain Sangha Granthamala

Foundation year—] [—Vira Niravan Samvat 2468

Aim of the Series:—

Publication of Digambara Jain Siddhanta, Darsana, Purana, Sahitya and other works in Prakrit Sanskrit etc, possibly with Hindi Commentary and Translation

DIRECTOR:—

SRI BHARATAVARSHIYA DIGAMBARA JAIN SANGHA

NO. 1. VOL. VII.

To be had from:—

THE MANAGER
SRI DIG. JAIN SANGHA,
CHAURASI. MATHURA,
U. P. (INDIA)

Printed by
PT. S. N. UPADHYAYA, B. A.
Naya Sansar Press, Bhadaini Varanasi.

800 Copies, **Price Rs. Twelve only**

प्रकाशककी ओरसे

कसायपाहुडके छठे भागके प्रकाशित होनेसे छै मास पश्चात् ही उसके सातवें भागको पाठकोंके हाथोंमें अर्पित करते हुए हमें सन्तोषका अनुभव होना स्वाभाविक है।

छठे भागमें प्रदेशविभक्तिका स्वामित्व अनुयोगद्वार पर्यन्त भाग मुद्रित हुआ है। शेष भाग, झीणाझीण तथा स्थितिके साथ इस सातवें भागमें है। इसीसे इस भागका कलेवर छठे भागसे बहुत अधिक बढ़ गया है। इस भागके साथ प्रदेशविभक्ति अधिकार समाप्त हो जाता है और जयधवलाका भी पूर्वार्ध समाप्त हो जाता है। शेष उत्तरार्ध भी सात या आठ भागोंमें प्रकाशित होगा।

इस समय बाजारमें कागज की स्थिति युद्धकालीन जैसी हो गई है। कागजका मूल्य ड्योढ़ा हो जाने पर भी बाजारमें कागज उपलब्ध नहीं है। अतः अगला भाग प्रकाशित होनेमें विलम्ब होना संभव है।

यह भाग भी भा० दिगम्बर जैन संघके अध्यक्ष दानवीर सेठ भागचन्द जी डोंगरगढ़ तथा उनकी दानशीला धर्मपत्नी श्रीमती नर्वदाबाईजीके द्वारा प्रदत्त द्रव्यसे हुआ है। कुण्डलपुरमें संघके अधिवेशन पर सेठ साहबने जयधवलाजीके प्रकाशनके लिये ग्यारह हजार रुपया प्रदान किया था। इस वर्ष बामौरामें संघके अधिवेशनके अवसर पर आपने पाँच हजार एक रुपया इसी मदमें और भी प्रदान किया है। सेठ साहब और उनकी धर्मपत्नीकी जिनवाणीके प्रति यह भक्ति तथा उदारता अनुकरणीय है। उनकी इस उदारताके लिये जितना भी धन्यवाद दिया जाये, थोड़ा है।

सेठसाहब की इस दानशीलतामें प्रेरणात्मक सहयोग देनेका श्रेय पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्त-शास्त्रीको है। आप ही जयधवलाके सम्पादन तथा मुद्रणका भार उठाये हुए हैं। अतः मैं पण्डितजी का भी आभारी हूँ।

काशीमें गङ्गा तट पर स्थित स्व० बाबू छेदीलालजीके जिन मन्दिरके नीचेके भागमें जयधवला कार्यालय अपने जन्म कालसे ही स्थित है और यह सब स्व० बाबू छेदीलालजीके पुत्र स्वर्गीय बाबू गणेशदास तथा पौत्र बा० सालिगरामजी तथा बा० ऋषभदासजीके सौजन्य तथा धर्मप्रेमका परिचायक है। अतः मैं उनका भी आभारी हूँ।

जयधवला कार्यालय
भदैनी, वाराणसी
दीपावली–२४८५

कैलाशचन्द्र शास्त्री
मंत्री साहित्य विभाग
भा० दि० जैन संघ

विषय-परिचय

पूर्वमें प्रकृतिविभक्ति, स्थितिविभक्ति और अनुभागविभक्तिका विचार कर आये हैं। प्रकृतमें प्रदेशविभक्तिका विचार करना है। कर्मोंका बन्ध होने पर तत्काल बन्धको प्राप्त होनेवाले ज्ञानावरणादि आठ या सात कर्मोंको जो द्रव्य मिलता है उसकी प्रदेश संज्ञा है। यह दो प्रकारका है—एक मात्र बन्धके समय प्राप्त होनेवाला द्रव्य और दूसरा बन्ध होकर सत्तामें स्थित द्रव्य। केवल बन्धके समय प्राप्त होनेवाले द्रव्यका विचार महाबन्धमें किया है। यहाँ वर्तमान बन्धके साथ सत्तामें स्थित जितना द्रव्य होता है उस सबका विचार किया गया है। उसमें भी ज्ञानावरणादि सब कर्मोंकी अपेक्षा विचार न कर यहाँ पर मात्र मोहनीयकर्मकी अपेक्षा विचार किया गया है। मोहनीयकर्मके कुल भेद अट्ठाईस हैं। सर्व प्रथम इन भेदोंका आश्रय लिये बिना और बादमें इन भेदोंका आश्रय लेकर प्रस्तुत अधिकार में विविध अनुयोगद्वारोंके आश्रयसे प्रदेशविभक्तिका साङ्गोपाङ्ग विचार किया गया है। यहाँ पर जिन अनुयोगद्वारोंके आश्रयसे विचार किया गया है वे अनुयोगद्वार ये हैं—भागाभाग, सर्वप्रदेशविभक्ति, नोसर्वप्रदेशविभक्ति, उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति, अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति, जघन्य प्रदेशविभक्ति, अजघन्य प्रदेशविभक्ति, सादिप्रदेशविभक्ति, अनादिप्रदेशविभक्ति, ध्रुवप्रदेशविभक्ति, अध्रुवप्रदेशविभक्ति, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व। मात्र उत्तरप्रदेशविभक्तिका विचार करते समय सन्निकर्ष नामक एक अनुयोगद्वार और अधिक हो जाता है। कारण स्पष्ट है।

भागाभाग—इस अनुयोगद्वारमें उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य इन चार पदोंका आश्रयकर एक बार जीवोंकी अपेक्षा और दूसरी बार सत्तामें स्थित कर्म परमाणुओंकी अपेक्षा कौन कितने भागप्रमाण हैं इसका विचार किया गया है, इसलिए इस दृष्टिसे भागाभाग दो प्रकारका है—जीवभागाभाग और प्रदेशभागाभाग। जीवभागाभागका विचार करते हुए बतलाया है कि उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं और अनुत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं। इसीप्रकार जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंके विषयमें जानना चाहिए। यह ओघ प्ररूपणा है। आदेशसे सब मार्गणाओंमें अपनी-अपनी संख्याको जानकर यह भागाभाग समझ लेना चाहिए। प्रदेश भागाभागका विचार करते हुए सर्व प्रथम तो सामान्यसे मोहनीय कर्मकी अपेक्षा प्रदेशभागा-भागका निषेध किया है, क्योंकि अवान्तर भेदोंकी विवक्षा किये बिना मोहनीय कर्म एक है, इसलिए उसमें भागाभाग घटित नहीं होता। इसके बाद ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंकी अपेक्षा सामान्यसे मोहनीय कर्मको कितना द्रव्य मिलता है इसका विचार करते हुए बतलाया गया है कि आठों कर्मोंका जो समुच्चयरूप द्रव्य है उसमें आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे सब द्रव्यमेंसे अलग करके बचे हुए शेष बहुभागप्रमाण द्रव्यके आठ पुञ्ज करके आठों कर्मोंमें अलग-अलग विभक्त करदे। उसके बाद जो एक भाग बचा है उसमें पुनः आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उसे अलग करके शेष बहुभागप्रमाण द्रव्य वेदनीयको दे दे। पुनः बचे हुए एक भागमें आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देने पर जो बहुभागप्रमाण द्रव्य शेष रहे उसे मोहनीयको दे दे। लब्ध द्रव्यमें पुनः आवलिके

असंख्यातवें भागका भाग देने पर जो बहुभाग शेष रहे वह समान रूपसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन कर्मोंमें बाँट दे। लब्ध द्रव्यमें पुनः आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देने पर बहुभागप्रमाण बचे हुए द्रव्यको नाम और गोत्र इन दो कर्मोंमें बाँट दे। तथा अन्तमें लब्ध रूपमें जो एक भाग बचता है वह आयु कर्मको दे दे। इस प्रकार विभाग करनेपर मोहनीय कर्मको प्राप्त हुआ द्रव्य आ जाता है। मोहनीयकर्मको प्राप्त हुआ यह द्रव्य उत्कृष्ट और जघन्यके भेदसे दो प्रकारका होकर भी सब कर्मोंकी अपेक्षा पूर्वमें जो विभागका क्रम बतलाया है उसमें कोई बाधा नहीं आती। इस प्रकार ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंको जो द्रव्य मिलता है उसका अलग अलग विचार करनेपर आयु कर्मको सबसे स्तोक द्रव्य मिलता है। नाम और गोत्र कर्मका द्रव्य परस्परमें समान होकर भी आयुकर्मके द्रव्यसे विशेष अधिक होता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मको मिलनेवाला द्रव्य परस्परमें समान होकर भी नाम और गोत्रकर्मको मिले हुए द्रव्यसे विशेष अधिक होता है। इससे मोहनीय कर्मका द्रव्य विशेष अधिक होता है और मोहनीयके द्रव्यसे वेदनीयकर्मका द्रव्य विशेष अधिक होता है। यह ओघप्ररूपणा है। सब मार्गणाओंमें इसे इसीप्रकार यथायोग्य घटित कर लेना चाहिए।

उत्तरप्रकृतियोंमें मोहनीय कर्मके सब द्रव्यका विभाग करते हुए पहले उसमें अनन्तका भाग दिलाकर एक भाग सर्वघाति द्रव्य और शेष बहुभाग देशघाति द्रव्य बतलाया गया है। देशघाति द्रव्यमें भी कषाय और नोकषाय रूपसे उसे बाँटा गया है। बादमें प्रत्येकका अपने अपने अवान्तर भेदोंमें बटवारा किया गया है। इसी प्रकार सर्वघाति द्रव्यको भी सर्वघाति प्रकृतियोंमें विभक्त करके बतलाया गया है। इस विषयकी विशेष जानकारीके लिए मूलमें देख लेना चाहिए। गति आदि मार्गणाओंमें विचार करते समय नरकगतिमें जो विशेषता है उसका अलगसे निर्देश करके अन्यत्र भी जान लेने की सूचना की गई है। इस प्रसङ्गसे गतिसम्बन्धी जिन मार्गणाओंमें नरकगतिसे कुछ विशेषता है उसका निर्देश करके उत्कृष्ट-भागाभाग प्ररूपणाको समाप्त किया गया है। जघन्य भागाभागका भी इसी प्रकार स्वतन्त्रतासे विचार करते हुए ओघ और आदेशसे उसका अलग अलग स्पष्टीकरण किया गया है। आदेशप्ररूपणा की अपेक्षा मात्र नरकगतिमें विशेष विचार करके गतिमार्गणाके जिन अवान्तर भेदोंमें नरकगतिके समान जघन्य भागाभाग सम्भव है उनका नाम निर्देश करके इस प्रकरणको समाप्त किया गया है।

सर्व-नोसर्वप्रदेशविभक्ति—सर्वप्रदेशविभक्तिमें सब प्रदेश और नोसर्वप्रदेशविभक्तिमें उनसे न्यून प्रदेश विवक्षित हैं। मूल और उत्तर प्रकृतियोंमें ये यथायोग्य ओघ और आदेशसे घटित कर लेने चाहिए।

उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टप्रदेशविभक्ति—सबसे उत्कृष्ट प्रदेश उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति है और उनसे न्यून प्रदेश अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति है। मूल और उत्तर प्रकृतियोंके ओघ और आदेशसे जहाँ पर ये जितने सम्भव हों उन्हें उस प्रकारसे जान लेना चाहिए।

जघन्य-अजघन्यप्रदेशविभक्ति—सबसे कम प्रदेश जघन्य प्रदेशविभक्ति है और उनसे अधिक प्रदेश अजघन्य प्रदेशविभक्ति है। मूल और उत्तर प्रकृतियोंके ओघ और आदेशसे जहाँ पर ये जिसप्रकार प्रदेश सम्भव हों उन्हें उस प्रकारसे जान लेना चाहिए।

सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवप्रदेशविभक्ति—सामान्यसे मोहनीयके क्षय होनेके अन्तिम समयमें जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है और इससे पूर्व सब अजघन्य प्रदेशविभक्ति है, अतः अजघन्य प्रदेशविभक्ति सादि विकल्पके बिना अनादि, ध्रुव और अध्रुव यह तीन प्रकारकी

अब रहीं उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य प्रदेशविभक्तियाँ सो ये सादि और अध्रुव इस
कार की ही होती हैं। जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षपणाके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए
और अध्रुव है। तथा उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति कादाचित्क हैं, इसलिए ये
और अध्रुव हैं। यह ओघ प्ररूपणा है। आदेशसे सब गतियाँ परिवर्तनशील हैं, अतः
सब प्रदेशविभक्तियाँ सादि और अध्रुव ही होती हैं। आगे अन्य मार्गणाओंमें भी
८. विचार कर घटित कर लेना चाहिए। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा मिथ्यात्व, मध्यकी
य और पुरुषवेदके बिना आठ नोकषाय इनकी जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षपणाके अन्तिम
प्राप्त होती है, अतः इनकी भी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य प्रदेशविभक्तियाँ सादि
व तथा अजघन्य प्रदेशविभक्तियाँ अनादि, ध्रुव और अध्रुव होती हैं। पुरुषवेदके
पकश्रेणि पर चढ़ा हुआ जो गुणितकर्मांशवाला जीव जब स्त्रीवेदकी अन्तिम फालिको
संक्रमित करता है तब पुरुषवेदकी एक समयके लिए उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है।
जब पुरुषवेद और छह नोकषायोंके द्रव्यको संज्वलन क्रोधमें संक्रमित करता है तब
क्रोधकी एक समयके लिए उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है। यही जीव जब संज्वलन
द्रव्यको संज्वलनमानमें संक्रमित करता है तब संज्वलनमानकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति
यही जीव जब संज्वलनमानके द्रव्यको संज्वलन मायामें संक्रमित करता है तब संज्वलन
उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है। तथा यही जीव जब संज्वलन मायाके द्रव्यको संज्वलन
संक्रमित करता है तब संज्वलन लोभकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है। तथा इनकी
देशविभक्ति अपनी अपनी क्षपणाके अन्तिम समयमें होती है। इस प्रकार इन पाँचोंकी
र जघन्य प्रदेशविभक्ति एक समयके लिए होती है, इसलिए ये सादि और अध्रुव हैं।
की अजघन्य प्रदेशविभक्ति अनादि, ध्रुव और अध्रुव हैं। मात्र पुरुषवेदका जघन्य
में क्षपितकर्मांश अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इसकी अजघन्य
क्ति सादि भी बन जाती है। तथा इन पाँचोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति सादि, अनादि,
अध्रुव चारों प्रकारकी है। जब तक इनकी उत्कृष्टप्रदेशविभक्ति नहीं प्राप्त होती तब तक
नादि, ध्रुव और अध्रुव है और उत्कृष्टके बाद यह सादि है। सम्यक्त्व और सम्य
त्र ये प्रकृतियाँ सादि और सान्त हैं, इसलिए इनके चारों ही पद सादि और अध्रुव हैं।
बन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तियाँ कादाचित्क हैं, जघन्य
क्ति क्षपणाके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए ये तीनों सादि हैं। तथा क्षपणाके पूर्व
जघन्य प्रदेशविभक्ति नियमसे होती है इसलिए तो यह अनादि है। तथा क्षपणाके बाद
क होने पर यह सादि है। ध्रुव और अध्रुव विकल्प तो यहाँ सम्भव हैं ही। इस
नकी अजघन्य प्रदेशविभक्ति चारों प्रकारकी प्राप्त होती है। यह ओघप्ररूपणा है।
अचक्षुदर्शन और भव्यमार्गणामें ओघप्ररूपणा बन जाती है। मात्र भव्यमार्गणामें
सम्भव नहीं है। शेष सब मार्गणाएँ परिवर्तनशील हैं, अतः उनमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट
रों विभक्तियाँ सादि और अध्रुव ही प्राप्त होती हैं।

स्वामित्व—सामान्यसे मोहनीयकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी ऐसा गुणितकर्मांशिक
ा है जो बादरपृथिवीकायिकोंमें और बादर त्रसोंमें परिभ्रमण करके अन्तमें दो बार
रकके नारकियोंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त कम पूरी आयु बिता चुका है। यहाँ उत्कृष्ट
क्तिका स्वामी किस समय होता है इस सम्बन्धमें दो मत हैं। एक मतके अनुसार
र्त नरकायु शेष रहनेपर उसके प्रथम समयमें होता है और दूसरे मतके अनुसार

नरकके अन्तिम समयमें होता है। मिथ्यात्व, बारह कषाय और छह नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी इसी प्रकार जानना चाहिए। जो गुणितकर्मांशिक दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाला जीव जब मिथ्यात्वको सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमित करता है तब वह सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। तथा जब वही जीव सम्यग्मिथ्यात्वको सम्यक्त्वमें संक्रमित करता है तब वह सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी ऐसा गुणितकर्मांशिक जीव होता है जो अन्तमें ईशान कल्पमें उत्पन्न होकर उसके अन्तिम समयमें स्थित है। स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र इसे अन्तमें असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमें उत्पन्न कराकर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा स्त्रीवेदका पूरण कराकर प्राप्त करना चाहिए। जो गुणितकर्मांशिक जीव क्रमसे नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और पुरुषवेदको यथायोग्य पूरकर अन्तमें मनुष्योंमें उत्पन्न होकर शीघ्र ही कर्मोंका क्षय करता हुआ जब स्त्रीवेदको पुरुषवेदमें संक्रमित करता है तब पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। वही जीव जब पुरुषवेदको क्रोधसंज्वलनमें संक्रमित करता है तब क्रोधसंज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। वही जीव जब क्रोधसंज्वलनको मानसंज्वलनमें संक्रमित करता है तब मानसंज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। वही जीव जब मानसंज्वलनको मायासंज्वलनमें संक्रमित करता है तब मायासंज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है और वही जीव जब मायासंज्वलनको लोभसंज्वलनमें संक्रमित करता है तब लोभसंज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। यह ओघसे उत्कृष्ट स्वामित्व है। ओघसे सामान्य मोहनीयकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी क्षपितकर्मांशिक जीव क्षपणाके अन्तिम समयमें होता है। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी ऐसा क्षपितकर्मांशिक जीव होता है जो अन्तमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करते समय मिथ्यात्वकी दो समय कालवाली एक स्थितिको प्राप्त है। तथा वही जीव जब दर्शनमोहनीयकी क्षपणा किये बिना मिथ्यात्वमें जाकर दीर्घ उद्वेलना कालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करते हुए अपने अपने समयमें दो समय कालवाली एक स्थितिको प्राप्त होता है तब वह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका स्वामी होता है। मध्यकी आठ कषायोंके विषयमें ऐसा क्षपितकर्मांशिक जीव लेना चाहिये जो अभव्योंके योग्य जघन्य प्रदेशविभक्ति करके त्रसोंमें उत्पन्न हुआ है और वहाँ आगमोक्त क्रिया व्यापार द्वारा उसे और भी कम करके अन्तमें क्षपण कर रहा है। ऐसे जीवके जब इनकी दो समय कालवाली एक स्थिति शेष रहती है तब वह इनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। वही जीव जब अनन्तानुबन्धीकी बार बार विसंयोजना कर लेता है और अन्तमें दो छयासठ सागर कालतक सम्यक्त्वका पालन करके पुनः उसकी विसंयोजना करता है तब वह अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी दो समय कालवाली एक स्थितिके रहते हुए उनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका भी क्षपितकर्मांशिक जीव ही अपनी अपनी क्षपणाके अन्तिम समयमें उदयस्थितिके सद्भावमें जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। पुरुषवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी ऐसा क्षपक पुरुषवेदी होता है जो जघन्य घोलमान योगसे पुरुषवेदका बन्ध करके उसका संक्रमण करते हुए अन्तिम समयमें स्थित है। इसी प्रकार संज्वलन क्रोध, मान और मायाकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी घटित कर लेना चाहिये। लोभ संज्वलनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी क्षपक अधःकरणके अन्तिम समयमें होता है। तथा छह नोकषायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी भी ऐसा क्षपक होता है जो अन्तिम स्थिति काण्डकके संक्रमणके अन्तिम समयमें स्थित है। यह ओघसे जघन्य स्वामित्व है। आदेशसे

होती है। अब यहीं उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य प्रदेशविभक्तियाँ सो ये सादि और अध्रुव इस तरह दो प्रकार की ही होती हैं। जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षपणाके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए वह सादि और अध्रुव है। तथा उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति कादाचित्क हैं, इसलिए ये भी सादि और अध्रुव हैं। यह ओघ प्ररूपणा है। आदेशसे सब गतियाँ परिवर्तनशील हैं, अतः उनमें उक्त सब प्रदेशविभक्तियाँ सादि और अध्रुव ही होती हैं। आगे अन्य मार्गणाओंमें भी इसी प्रकार विचार कर घटित कर लेना चाहिए। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा मिथ्यात्व, मध्यकी आठ कषाय और पुरुषवेदके बिना आठ नोकषाय इनकी जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षपणाके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, अतः इनकी भी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य प्रदेशविभक्तियाँ सादि और अध्रुव तथा अजघन्य प्रदेशविभक्तियाँ अनादि, ध्रुव और अध्रुव होती हैं। पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़ा हुआ जो गुणितकर्मांशवाला जीव जब स्त्रीवेदकी अन्तिम फालिको पुरुषवेदमें संक्रमित करता है तब पुरुषवेदकी एक समयके लिए उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है। यही जीव जब पुरुषवेद और छह नोकषायोंके द्रव्यको संज्वलन क्रोधमें संक्रमित करता है तब संज्वलन क्रोधकी एक समयके लिए उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है। यही जीव जब संज्वलन क्रोधके द्रव्यको संज्वलनमानमें संक्रमित करता है तब संज्वलनमानकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है। यही जीव जब संज्वलनमानके द्रव्यको संज्वलन मायामें संक्रमित करता है तब संज्वलन मायाकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है। तथा यही जीव जब संज्वलन मायाके द्रव्यको संज्वलन लोभमें संक्रमित करता है तब संज्वलन लोभकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है। तथा इनकी जघन्य प्रदेशविभक्ति अपनी अपनी क्षपणाके अन्तिम समयमें होती है। इस प्रकार इन पाँचोंकी उत्कृष्ट और जघन्य प्रदेशविभक्ति एक समयके लिए होती है, इसलिए ये सादि और अध्रुव हैं। तथा इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्ति अनादि, ध्रुव और अध्रुव हैं। मात्र पुरुषवेदका जघन्य प्रदेशसत्कर्म क्षपितकर्मांश अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इसकी अजघन्य प्रदेशविभक्ति सादि भी बन जाती है। तथा इन पाँचोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव चारों प्रकारकी है। जब तक इनकी उत्कृष्टप्रदेशविभक्ति नहीं प्राप्त होती तब तक तो यह अनादि, ध्रुव और अध्रुव है और उत्कृष्टके बाद यह सादि है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये प्रकृतियाँ सादि और सान्त हैं, इसलिए इनके चारों ही पद सादि और अध्रुव हैं। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तियाँ कादाचित्क हैं, जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षपणाके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए ये तीनों सादि हैं। तथा क्षपणाके पूर्व इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्ति नियमसे होती है इसलिए तो यह अनादि है। तथा क्षपणाके बाद पुनः संयुक्त होने पर यह सादि है। ध्रुव और अध्रुव विकल्प तो यहाँ सम्भव हैं ही। इस प्रकार इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्ति चारों प्रकारकी प्राप्त होती है। यह ओघप्ररूपणा है। आदेशसे अचक्षुदर्शन और भव्यमार्गणामें ओघप्ररूपणा बन जाती है। मात्र भव्यमार्गणामें ध्रुव भङ्ग सम्भव नहीं है। शेष सब मार्गणाएँ परिवर्तनशील हैं, अतः उनमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट आदि चारों विभक्तियाँ सादि और अध्रुव ही प्राप्त होती हैं।

स्वामित्व—सामान्यसे मोहनीयकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी ऐसा गुणितकर्मांशिक जीव होता है जो बादरपृथिवीकायिकोंमें और बादर त्रसोंमें परिभ्रमण करके अन्तमें दो बार सातवें नरकके नारकियोंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त कम पूरी आयु बिता चुका है। यहाँ उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी किस समय होता है इस सम्बन्धमें दो मत हैं। एक मतके अनुसार अन्तर्मुहूर्त नरकायु शेष रहनेपर उसके प्रथम समयमें होता है और दूसरे मतके अनुसार

नरकके अन्तिम समयमें होता है। मिथ्यात्व, बारह कषाय और छह नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिका स्वामी इसी प्रकार जानना चाहिए। जो गुणितकर्मांशिक दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाला जीव जब मिथ्यात्वको सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमित करता है तब वह सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। तथा जब वही जीव सम्यग्मिथ्यात्वको सम्यक्त्वमें संक्रमित करता है तब वह सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी ऐसा गुणितकर्मांशिक जीव होता है जो अन्तमें ईशान कल्पमें उत्पन्न होकर उसके अन्तिम समयमें स्थित है। स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र इसे अन्तमें असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमें उत्पन्न कराकर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा स्त्रीवेदका पूरण कराकर प्राप्त करना चाहिए। जो गुणितकर्मांशिक जीव क्रमसे नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और पुरुषवेदको यथायोग्य पूरकर अन्तमें मनुष्योंमें उत्पन्न होकर शीघ्र ही कर्मोंका क्षय करता हुआ जब स्त्रीवेदको पुरुषवेदमें संक्रमित करता है तब पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। वही जीव जब पुरुषवेदको क्रोधसंज्वलनमें संक्रमित करता है तब क्रोधसंज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। वही जीव जब क्रोधसंज्वलनको मानसंज्वलनमें संक्रमित करता है तब मानसंज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। वही जीव जब मानसंज्वलनको मायासंज्वलनमें संक्रमित करता है तब मायासंज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है और वही जीव जब मायासंज्वलनको लोभसंज्वलनमें संक्रमित करता है तब लोभसंज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। यह ओघसे उत्कृष्ट स्वामित्व है। ओघसे सामान्य मोहनीयकी जघन्य प्रदेश-विभक्तिका स्वामी क्षपितकर्मांशिक जीव क्षपणाके अन्तिम समयमें होता है। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी ऐसा क्षपितकर्मांशिक जीव होता है जो अन्तमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करते समय मिथ्यात्वकी दो समय कालवाली एक स्थितिको प्राप्त है। तथा वही जीव जब दर्शनमोहनीयकी क्षपणा किये बिना मिथ्यात्वमें जाकर दीर्घ उद्वेलना कालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करते हुए अपने अपने समयमें दो समय कालवाली एक स्थितिको प्राप्त होता है तब वह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका स्वामी होता है। मध्यकी आठ कषायोंके विषयमें ऐसा क्षपितकर्मांशिक जीव लेना चाहिये जो अभव्योंके योग्य जघन्य प्रदेशविभक्ति करके त्रसोंमें उत्पन्न हुआ है और वहाँ आगमोक्त क्रिया व्यापार द्वारा उसे और भी कम करके अन्तमें क्षपणा कर रहा है। ऐसे जीवके जब इनकी दो समय कालवाली एक स्थिति शेष रहती है तब वह इनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। वही जीव जब अनन्तानुबन्धीकी बार बार विसंयोजना कर लेता है और अन्तमें दो छ्यासठ सागर कालतक सम्यक्त्वका पालन करके पुनः उसकी विसंयोजना करता है तब वह अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी दो समय कालवाली एक स्थितिके रहते हुए उनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका भी क्षपितकर्मांशिक जीव ही अपनी अपनी क्षपणाके अन्तिम समयमें उदयस्थितिके सद्भावमें जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। पुरुषवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी ऐसा क्षपक पुरुषवेदी होता है जो जघन्य घोलमान योगसे पुरुष-वेदका बन्ध करके उसका संक्रमण करते हुए अन्तिम समयमें स्थित है। इसी प्रकार संज्वलन क्रोध, मान और मायाकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी घटित कर लेना चाहिये। लोभ संज्व-लनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी क्षपक अधःकरणके अन्तिम समयमें होता है। तथा छह नोकषायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी भी ऐसा क्षपक होता है जो अन्तिम स्थिति काण्डकके संक्रमणके अन्तिम समयमें स्थित है। यह ओघसे जघन्य स्वामित्व है। आदेशसे

मूल और उत्तर प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और जघन्य स्वामित्व चारों गतियोंकी अपेक्षासे तो मूलमें ही कहा है, इसलिए इसे वहाँसे जान लेना चाहिए। तथा अन्य मार्गणाओंमें उक्त स्वामित्वको देखकर घटित कर लेना चाहिए। यहाँ पर मूलमें जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे लेकर उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म तक किस प्रकृतिके सान्तर और निरन्तर कितने स्थान किस प्रकार प्राप्त होते हैं यह सब कथन विस्तारके साथ किया है सो उसे वहाँ मूलमें ही देखकर समझ लेना चाहिये।

काल—सामान्यसे मोहनीयका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म तेतीस सागरकी आयुवाले नारकीके अन्तिम समयमें होता है, इसलिये इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। इसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति जो उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म करके एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ है उसके अनन्तकाल तक देखी जाती है, इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अनन्तकाल है। किन्तु यदि परिणामोंकी मुख्यतासे देखा जाय तो अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल असंख्यात लोकप्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि सब प्रकारके प्रदेशसत्त्वके कारणभूत परिणाम ही असंख्यात लोकप्रभाण हैं। और जिसने सातवें नरकमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म करके यथाविधि मनुष्य पर्याय प्राप्त कर आठ वर्षकी अवस्थामें ही क्षपकश्रेणिपर आरोहणकर मोहनीयका नाश किया है उसकी अपेक्षासे देखा जाय तो अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल आठ वर्ष अधिक अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। मिथ्यात्व आदि अवान्तर प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका यह काल इसी प्रकार जानना चाहिये। मात्र कुछ प्रकृतियोंके कालमें कुछ विशेषता है। यथा—अनन्तानुबन्धीकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति जो अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे दो बार विसंयोजना करता है उसके होती है, इसलिए उसका जघन्य काल मात्र अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होता है। जैसा कि स्वामित्वमें बतला आये हैं, चार संज्वलन और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति यथायोग्य क्षपकश्रेणिमें होती है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त यह तीन प्रकारका प्राप्त होता है। अनादि-अनन्त काल अभव्योंके होता है, अनादि-सान्त काल अपनी अपनी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके प्राप्त होनेके पूर्व तक भव्योंके होता है। और सादि-सान्त काल ऐसे जीवोंके होता है जिन्होंने उत्कृष्ट प्रदेशविभिक्ति करके अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति की है। मात्र इस प्रकार जो अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति प्राप्त होती है वह अन्तर्मुहूर्त कालतक ही पाई जाती है, क्योंकि क्षपणा हो जानेसे आगे इन प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं पाया जाता, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका कमसे कम अन्तर्मुहूर्त कालतक और अधिकसे अधिक साधिक दो छयासठ सागर कालतक सत्त्व पाया जाता है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर कालप्रमाण है। सामान्यसे मोहनीयकी जघन्य प्रदेशविभक्ति सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इसकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका काल अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त है। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा मिथ्यात्व आदि अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है जो अपने अपने जघन्य स्वामित्वके समय प्राप्त होती है। तथा मिथ्यात्व, ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका काल अनादि-अनन्त और अनाति-सान्त है, क्योंकि अभव्योंके इसका सर्वदा सद्भाव पाया जाता है, इसलिए तो अनादि-अनन्त विकल्प बन जाता है और भव्योंके अपने जघन्य स्वामित्वके पूर्व तक यह विभक्ति पाई जाती है, इसलिए अनादि-सान्त विकल्प बन जाता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक

दो छयासठ सागरप्रमाण है सो इसका खुलासा अनुत्कृष्टके समान कर लेना चाहिये। अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके तीन विकल्प होते हैं—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। इनमेंसे प्रारम्भके दो विकल्पोंका खुलासा सुगम है। अब रहा सादि-सान्त विकल्प सो इसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है, क्योंकि विसंयोजनाके बाद इसकी संयोजना होनेपर इसका कमसे कम अन्तर्मुहूर्त कालतक और अधिकसे अधिक कुछकम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक सत्त्व पाया जाता है। लोभसंज्वलनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके भी उक्त तीन विकल्प जानने चाहिये। मात्र इसके सादि-सान्त विकल्पका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होता है, क्योंकि जघन्य प्रदेशविभक्ति होनेके बाद इसका अन्तर्मुहूर्त कालतक ही सत्त्व देखा जाता है। कालकी अपेक्षा मूल और उत्तर प्रकृतियोंकी यह ओघ प्ररूपणा है। गति आदि मार्गणाओंमें अपनी अपनी विशेपताको जानकर कालका विचार इसी प्रकार कर लेना चाहिये।

अन्तर—एक बार मोहनीयकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होनेके बाद पुनः वह अनन्त काल बाद ही प्राप्त होती है, इसलिए सामान्यसे मोहनीयकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अनन्तकाल है। अथवा परिणामोंकी मुख्यतासे इसका जघन्य अन्तर-काल असंख्यात लोकप्रमाण भी बन जाता है। तथा उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, इसलिए इसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इसी प्रकार मिथ्यात्व, मध्यकी आठ कषाय और पुरुषवेदके सिवा आठ नोकषायोंके विषयमें घटित कर लेना चाहिए। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अन्तरकालसम्बन्धी सब कथन उक्तप्रमाण ही है। पर विसंयोजना प्रकृति होनेसे इसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागरप्रमाण भी बन जाता है, इसलिए इतनी विशेपताका अलगसे निर्देश किया है। शेष सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति क्षपणाके समय होती है. इसलिए उनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता। मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दोनों उद्वेलना प्रकृतियाँ है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध पुगद्गल परिवर्तनप्रमाण बन जानेसे वह उक्त कालप्रमाण है। तथा पुरुषवेद और चार संज्वलन इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति एक समयके लिए होती है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है।

समान्यसे मोहनीयकी जघन्य प्रदेशविभक्ति दसवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, इसलिए इसकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है। इसी प्रकार मिथ्यात्व, ग्यारह कषाय और नौ नोकपायोंके विषयमें जान लेना चाहिए, क्योंकि इनकी क्षपणाके अन्तिम समयमें ही जघन्य प्रदेशविभक्ति प्राप्त होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये उद्वेलना प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण बन जानेसे वह उक्त प्रमाण है। अनन्तानुबन्धी-चतुष्क विसंयोजना प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर बन जानेसे वह उक्त प्रमाण है। लोभसंज्वलन की जघन्य प्रदेशविभक्ति एक समयमात्र होकर भी अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है, इसलिए इसकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। तथा सम्यक्त्वादि इन सब प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षपणाके समय ही होती है, इसलिए

प्ररूपणाकी अपेक्षा विचार करनेपर सामान्यसे मोहनीय और सभी उत्तर प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय तथा अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है। कारणका विचार सर्वत्र कर लेना चाहिए। यह ओघसे जघन्य प्ररूपणा है। आदेशसे सब मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंकी चारों विभक्तिवाले जीवोंका काल अपनी अपनी विशेषताको ध्यानमें रखकर जान लेना चाहिए।

नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर—सामान्यसे मोहनीय तथा उत्तर प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और जघन्य प्रदेशविभक्ति यदि कोई जीव न करे तो कमसे कम एक समयका और अधिकसे अधिक अनन्त कालका अन्तर पड़ता है, इसलिए इन सबकी उत्कृष्ट और जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल प्राप्त होता है। तथा इन सबकी अनुत्कृष्ट और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं, इसलिए इनकी अपेक्षा अन्तरकालका निषेध किया है। यह ओघ प्ररूपणा है। अन्य मार्गणाओंमें अपनी अपनी विशेषताको जानकर यह अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिए।

सन्निकर्ष—सामान्यसे मोहनीय कर्म एक है, इसलिए उसमें सन्निकर्ष घटित नहीं होता। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा यह अवश्य ही सम्भव है। इस अनुयोगद्वारमें यह बतलाया गया है कि मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंमेंसे एक एक प्रकृतिका उत्कृष्ट या जघन्य प्रदेशसत्कर्म रहते हुए अन्य प्रकृतियोंमेंसे किन प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जाती है और किन प्रकृतियोंकी सत्ता नहीं पाई जाती। तथा जिन प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जाती है उनका प्रदेशसत्कर्म अपने अपने उत्कृष्ट या जघन्यकी अपेक्षा किस मात्राको लिए हुए होता है। इस प्रकार ओघ और आदेशसे निरूपण कर यह प्रकरण समाप्त किया गया है।

भाव—सब कर्मोंका बन्ध औदायिक भावकी मुख्यतासे होता है और तभी जाकर उनकी सत्ता पाई जाती है। यही कारण है कि यहाँ पर सामान्यसे मोहनीय कर्म और उसकी उत्तर प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवोंके औदायिक भाव जानना चाहिए।

अल्पबहुत्व—मोहनीयकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं, क्योंकि वे एक साथ असंख्यातसे अधिक नहीं हो सकते। तथा उनसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि अन्य सब संसारी जीवोंके दसवें गुणस्थान तक मोहनीय कर्मकी सत्ता पाई जाती है। इसी प्रकार मोहनीयकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं, क्योंकि एक साथ एक कालमें वे संख्यातसे अधिक नहीं हो सकते। तथा उनसे अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि अन्य सब संसारी जीवोंके दसवें गुणस्थान तक मोहनीयकर्मकी सत्ता पाई जाती है। यह ओघ प्ररूपणा है। अन्य मार्गणाओंमें अपनी अपनी विशेषताको ध्यानमें रखकर यह अल्पबहुत्व घटित कर लेना चाहिए। यह सामान्यसे मोहनीय कर्मकी अपेक्षा अल्पबहुत्वका विचार है, उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा भी इसे मूलको देखकर जान लेना चाहिए, क्योंकि मूलमें इसका हेतुपूर्वक विस्तारके साथ विचार किया है।

भुजगारविभक्ति—भुजगारविभक्तिमें भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य इन चार पदोंका अवलम्बन लेकर समुत्कीर्तना, स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व इन तेरह अधिकारोंके द्वारा मूल और उत्तर प्रकृतियोंके प्रदेशसत्कर्मका साङ्गोपाङ्ग विचार किया गया है।

पदनिक्षेप—भुजगारविशेषको पदनिक्षेप कहते हैं। इस अधिकारमें उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि, जघन्य वृद्धि और जघन्य हानि तथा अवस्थितपद इन सबका आश्रय लेकर समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व इन तीन अधिकारोंके द्वारा मूल और उत्तरप्रकृतियोंके प्रदेशसत्कर्मका विचार किया गया है।

वृद्धि—पदनिक्षेपविशेषको वृद्धि कहते हैं। इस अधिकारमें यथासम्भव वृद्धि और हानिके अवान्तर भेदों तथा यथासम्भव अवक्तव्यविभक्ति और अवस्थितविभक्तिका आश्रय लेकर समुत्कीर्तना, स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व इन तेरह अधिकारोंके द्वारा मूल और उत्तर प्रकृतियोंके प्रदेशसत्कर्मका विचार किया गया है।

सत्कर्मस्थान—मूल और उत्तर प्रकृतियोंके प्रदेशसत्कर्मस्थान कितने हैं इसका निर्देश करते हुए मूलमें बतलाया है कि उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मका जिस प्रकार कथन किया है उसी प्रकार प्रदेशसत्कर्मस्थानोंका भी कथन कर लेना चाहिये। फिर भी विशेषताका निर्देश करते हुए प्रकृतमें प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व ये तीन अधिकार उपयोगी बतलाये हैं।

झीनाझीनचूलिका

पहले उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका विस्तारके साथ विचार करते समय यह बतला आये हैं कि जो गुणितकर्मांशिक जीव उत्कर्पण द्वारा अधिकसे अधिक प्रदेशोंका सञ्चय करता है उसके उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है और जो क्षपितकर्मांशिक जीव अपकर्षण द्वारा कर्मप्रदेशोंको कमसे कम कर देता है उसके जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है, इसलिए यहाँपर यह प्रश्न उठता है कि क्या सब कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण या अपकर्षण होना सम्भव है, बस इसी प्रश्नका समाधान करनेके लिए यह झीनाझीन नामक चूलिका अधिकार अलगसे कहा गया है। साथ ही इसमें संक्रमण और उदयकी अपेक्षा भी इसका विचार किया गया है। इस सबका विचार यहाँपर चार अधिकारोंका आश्रय लेकर किया गया है। वे अधिकार ये हैं—समुत्कीर्तना, प्ररूपणा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व।

समुत्कीर्तना—इस अधिकारमें अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण और उदयसे झीन और अझीन स्थितिवाले कर्मपरमाणुओंके अस्तित्वकी सूचना मात्र दी गई है। प्रकृतमें झीन शब्दका अर्थ रहित और अझीन शब्दका अर्थ सहित है। तदनुसार जिन कर्मपरमाणुओंका अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण और उदय होना सम्भव नहीं है वे अपकर्ष, उत्कर्षण, संक्रमण और उदयसे झीन स्थितिवाले कर्मपरमाणु माने गये हैं। और जिन कर्मपरमाणुओं के ये अपकर्षण आदि सम्भव हैं वे इनसे अझीन स्थितिवाले कर्मपरमाणु माने गये हैं।

प्ररूपणा—इस अधिकारमें अपकर्षण आदिसे झीन और अझीन स्थितिवाले कर्मपरमाणु कौन हैं इसका विस्तारके साथ विचार किया गया है। उसमें भी सर्वप्रथम अपकर्षणकी अपेक्षा विचार करते हुए बतलाया गया है कि उदयावलिके भीतर स्थित जितने कर्मपरमाणु हैं वे सब अपकर्षणसे झीनस्थितिवाले और शेष सब कर्मपरमाणु अपकर्षणसे अझीन स्थितिवाले हैं। तात्पर्य यह है कि उदयावलिके भीतर स्थित कर्मपरमाणुओंका अपकर्षण न होकर वे क्रमसे यथावस्थित रहते हुए निर्जराको प्राप्त होते हैं, इसलिए वे अपकर्षणके अयोग्य होनेके कारण अपकर्षणसे झीन

प्ररूपणाकी अपेक्षा विचार करनेपर सामान्यसे मोहनीय और सभी उत्तर प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय तथा अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है। कारणका विचार सर्वत्र कर लेना चाहिए। यह ओघसे जघन्य प्ररूपणा है। आदेशसे सब मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंकी चारों विभक्तिवाले जीवोंका काल अपनी अपनी विशेषताको ध्यानमें रखकर जान लेना चाहिए।

नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर—सामान्यसे मोहनीय तथा उत्तर प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और जघन्य प्रदेशविभक्ति यदि कोई जीव न करे तो कमसे कम एक समयका और अधिकसे अधिक अनन्त कालका अन्तर पड़ता है, इसलिए इन सबकी उत्कृष्ट और जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल प्राप्त होता है। तथा इन सबकी अनुत्कृष्ट और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं, इसलिए इनकी अपेक्षा अन्तरकालका निषेध किया है। यह ओघ प्ररूपणा है। अन्य मार्गणाओंमें अपनी अपनी विशेषताको जानकर यह अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिए।

सन्निकर्ष—सामान्यसे मोहनीय कर्म एक है, इसलिए उसमें सन्निकर्ष घटित नहीं होता। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा यह अवश्य ही सम्भव है। इस अनुयोगद्वारमें यह बतलाया गया है कि मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंमेंसे एक एक प्रकृतिका उत्कृष्ट या जघन्य प्रदेशसत्कर्म रहते हुए अन्य प्रकृतियोंमेंसे किन प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जाती है और किन प्रकृतियोंकी सत्ता नहीं पाई जाती। तथा जिन प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जाती है उनका प्रदेशसत्कर्म अपने अपने उत्कृष्ट या जघन्यकी अपेक्षा किस मात्राको लिए हुए होता है। इस प्रकार ओघ और आदेशसे निरूपण कर यह प्रकरण समाप्त किया गया है।

भाव—सब कर्मोंका बन्ध औदायिक भावकी मुख्यतासे होता है और तभी जाकर उनकी सत्ता पाई जाती है। यही कारण है कि यहाँ पर सामान्यसे मोहनीय कर्म और उसकी उत्तर प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवोंके औदायिक भाव जानना चाहिए।

अल्पबहुत्व—मोहनीयकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं, क्योंकि वे एक साथ असंख्यातसे अधिक नहीं हो सकते। तथा उनसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि अन्य सब संसारी जीवोंके दसवें गुणस्थान तक मोहनीय कर्मकी सत्ता पाई जाती है। इसी प्रकार मोहनीयकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं, क्योंकि एक साथ एक कालमें वे संख्यातसे अधिक नहीं हो सकते। तथा उनसे अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि अन्य सब संसारी जीवोंके दसवें गुणस्थान तक मोहनीयकर्मकी सत्ता पाई जाती है। यह ओघ प्ररूपणा है। अन्य मार्गणाओंमें अपनी अपनी विशेषताको ध्यानमें रखकर यह अल्पबहुत्व घटित कर लेना चाहिए। यह सामान्यसे मोहनीय कर्मकी अपेक्षा अल्पबहुत्वका विचार है, उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा भी इसे मूलको देखकर जान लेना चाहिए, क्योंकि मूलमें इसका हेतुपूर्वक विस्तारके साथ विचार किया है।

भुजगारविभक्ति—भुजगारविभक्तिमें भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य इन चार पदोंका अवलम्बन लेकर समुत्कीर्तना, स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व इन तेरह अधिकारोंके द्वारा मूल और उत्तर प्रकृतियोंके प्रदेशसत्कर्मका साङ्गोपाङ्ग विचार किया गया है।

पदनिक्षेप—भुजगारविशेषको पदनिक्षेप कहते हैं। इस अधिकारमें उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि, जघन्य वृद्धि और जघन्य हानि तथा अवस्थितपद इन सबका आश्रय लेकर समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व इन तीन अधिकारोंके द्वारा मूल और उत्तरप्रकृतियोंके प्रदेशसत्कर्मका विचार किया गया है।

वृद्धि—पदनिक्षेपविशेषको वृद्धि कहते हैं। इस अधिकारमें यथासम्भव वृद्धि और हानिके अवान्तर भेदों तथा यथासम्भव अवक्तव्यविभक्ति और अवस्थितविभक्तिका आश्रय लेकर समुत्कीर्तना, स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व इन तेरह अधिकारोंके द्वारा मूल और उत्तर प्रकृतियोंके प्रदेशसत्कर्मका विचार किया गया है।

सत्कर्मस्थान—मूल और उत्तर प्रकृतियोंके प्रदेशसत्कर्मस्थान कितने हैं इसका निर्देश करते हुए मूलमें बतलाया है कि उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मका जिस प्रकार कथन किया है उसी प्रकार प्रदेशसत्कर्मस्थानोंका भी कथन कर लेना चाहिये। फिर भी विशेषताका निर्देश करते हुए प्रकृतमें प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व ये तीन अधिकार उपयोगी बतलाये हैं।

झीनाझीनचूलिका

पहले उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका विस्तारके साथ विचार करते समय यह बतला आये हैं कि जो गुणितकर्मांशिक जीव उत्कर्षण द्वारा अधिकसे अधिक प्रदेशोंका सञ्चय करता है उसके उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है और जो क्षपितकर्मांशिक जीव अपकर्षण द्वारा कर्मप्रदेशोंको कमसे कम कर देता है उसके जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है, इसलिए यहाँपर यह प्रश्न उठता है कि क्या सब कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण या अपकर्षण होना सम्भव है, बस इसी प्रश्नका समाधान करनेके लिए यह झीनाझीन नामक चूलिका अधिकार अलगसे कहा गया है। साथ ही इसमें संक्रमण और उदयकी अपेक्षा भी इसका विचार किया गया है। इस सबका विचार यहाँपर चार अधिकारोंका आश्रय लेकर किया गया है। वे अधिकार ये हैं—समुत्कीर्तना, प्ररूपणा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व।

समुत्कीर्तना—इस अधिकारमें अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण और उदयसे झीन और अझीन स्थितिवाले कर्मपरमाणुओंके अस्तित्वकी सूचना मात्र दी गई है। प्रकृतमें झीन शब्दका अर्थ रहित और अझीन शब्दका अर्थ सहित है। तदनुसार जिन कर्मपरमाणुओंका अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण और उदय होना सम्भव नहीं है वे अपकर्ष, उत्कर्षण, संक्रमण और उदयसे झीन स्थितिवाले कर्मपरमाणु माने गये हैं। और जिन कर्मपरमाणुओं के ये अपकर्षण आदि सम्भव हैं वे इनसे अझीन स्थितिवाले कर्मपरमाणु माने गये हैं।

प्ररूपणा—इस अधिकारमें अपकर्षण आदिसे झीन और अझीन स्थितिवाले कर्मपरमाणु कौन हैं इसका विस्तारके साथ विचार किया गया है। उसमें भी सर्वप्रथम अपकर्षणकी अपेक्षा विचार करते हुए बतलाया गया है कि उदयावलिके भीतर स्थित जितने कर्मपरमाणु हैं वे सब अपकर्षणसे झीनस्थितिवाले और शेष सब कर्मपरमाणु अपकर्षणसे अझीन स्थितिवाले हैं। तात्पर्य यह है कि उदयावलिके भीतर स्थित कर्मपरमाणुओंका अपकर्षण न होकर वे क्रमसे यथावस्थित रहते हुए निर्जराको प्राप्त होते हैं, इसलिए वे अपकर्षणके अयोग्य होनेके कारण अपकर्षणसे झीन

स्थितिवाले माने गये हैं। किन्तु इनके सिवा शेष जितने कर्मनिषेक हैं उनके कर्मपरमाणुओंका अपकर्षण हो सकता है, इसलिए वे इसके योग्य होनेके कारण अपकर्षणसे अझीन स्थितिवाले माने गये हैं। यहाँपर इतना विशेष समझना चाहिए कि उदयावलिसे ऊपर प्रत्येक निषेकमें ऐसे बहुतसे कर्मपरमाणु होते हैं जो निकाचितरूप होते हैं, अतः उनका भी अपकर्षण नहीं होता। पर वे सर्वथा अपकर्षणके अयोग्य नहीं होते, क्योंकि दर्शनमोहनीय और अनन्तानुबन्धीसम्बन्धी ऐसे परमाणुओंका अनिवृत्तिकरणमें प्रवेश करनेपर और चारित्रमोहनीयसम्बन्धी ऐसे परमाणुओंका अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें प्रवेश करनेपर निधत्ति और निकाचनाकरणकी व्युच्छित्ति हो जानेसे अपकर्षण होने लगता है, इसलिए प्रकृतमें ये कर्मपरमाणु भी अपकर्षणसे झीन स्थितिवाले हैं इसका निर्देश नहीं किया है, क्योंकि अवस्थाविशेषमें इनमें अपकर्षणकी योग्यता मान ली गई है। परन्तु उदयावलिके भीतर स्थित जितने कर्मपरमाणु होते हैं उनमें त्रिकालमें भी ऐसी योग्यता नहीं पाई जाती है, अतः प्रकृतमें मात्र उदयावलिके भीतर स्थित कर्मपरमाणुओंको ही अपकर्षणसे झीन स्थितिवाला बतलाया गया है। सासादन गुणस्थानमें दर्शनमोहनीयका अपकर्षण नहीं होता, इसलिए वहाँपर भी यही समाधान समझ लेना चाहिए।

उत्कर्षणकी अपेक्षा झीन और अझीन स्थितिवाले कर्मपरमाणुओंका निर्देश करते हुए जो कुछ कहा गया है उसका भाव यह है कि उदयावलिके भीतर स्थित कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण नहीं होता। उदयावलिके बाहर यदि विवक्षित कर्मका बन्ध हो रहा हो तो ही उसके सत्तामें स्थित कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण होता है। उसमें भी जिन कर्मपरमाणुओंकी शक्तिस्थिति उत्कर्षणके योग्य हो उनका ही उत्कर्षण होता है अन्यका नहीं। खुलासा इस प्रकार है—मान लो उदयावलिसे उपरितन स्थितिमें स्थित जो निषेक है उसके जिन परमाणुओंकी शक्तिस्थिति अपनी व्यक्त स्थितिके बराबर है। अर्थात् जिन्हें बँधे हुए एक समय अधिक उदयावलिसे न्यून कर्म-स्थितिके बराबर काल बीत चुका है उन कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण नहीं होता, क्योंकि इन कर्मपरमाणुओंमें शक्तिस्थितिका अत्यन्त अभाव है। इसी स्थितिमें स्थित निषेकके जिन कर्म-परमाणुओंकी शक्तिस्थिति एक समय शेष है। अर्थात् जिन्हें बँधे हुए दो समय अधिक उदया-वलिसे न्यून कर्मस्थितिके बराबर काल बीत चुका है उन कर्मपरमाणुओंका भी उत्कर्षण नहीं होता, क्योंकि यहाँपर निक्षेपका तो अभाव है ही, अतिस्थापना भी कमसे कम जघन्य आबाधा प्रमाण नहीं पाई जाती। इस प्रकार इसी स्थितिमें स्थित निषेकके जिन कर्मपरमाणुओंकी शक्ति-स्थिति दो समय और तीन समय आदिको उलंघनकर जघन्य आबाधाप्रमाण शेष है। अर्थात् जिन्हें बँधे हुए जघन्य आबाधासे न्यून कर्मस्थितिके बराबर काल बीत चुका है उन कर्म-परमाणुओंका भी उत्कर्षण नहीं होता, क्योंकि यहाँपर अतिस्थापनाके पूरा हो जानेपर भी निक्षेपका अत्यन्त अभाव है। इसी स्थितिमें स्थित निषेकके जिन कर्मपरमाणुओंकी शक्तिस्थिति एक समय अधिक अबाधाप्रमाण शेष है। अर्थात् जिन्हें बँधे हुए एक समय अधिक आबाधाकालसे न्यून कर्मस्थितिके बराबर काल बीत चुका है उन कर्मपरमाणुओंका एक समय अधिक आबाधाप्रमाण उत्कर्षण होकर आबाधाके ऊपरकी स्थितिमें निक्षेप होना सम्भव है, क्योंकि यहाँपर अतिस्थापनाके साथ एकसमय प्रमाण निक्षेप ये दोनों पाये जाते हैं। इसी प्रकार इसी स्थितिमें स्थित निषेकके जिन कर्मपरमाणुओंकी शक्तिस्थिति दो समय अधिक जघन्य आबाधाप्रमाण, तीन समय अधिक जघन्य आबाधाप्रमाण इत्यादि क्रमसे एक वर्ष, वर्षपृथक्त्व, एक सागर, सागरपृथक्त्व, दस सागर, दस सागरपृथक्त्व, सौ सागर, सौ सागरपृथक्त्व, हजार सागर, हजार सागरपृथक्त्व, लाख सागर, लाख सागरपृथक्त्व, कोड़ि सागर, कोड़ी सागरपृथक्त्व, अन्तःकोड़ाकोड़ी, कोड़ाकोड़ी सागर और

कोड़ाकोड़ी सागरपृथक्त्वप्रमाण शेष है। अर्थात् उक्त शेष स्थितिको छोड़कर बाकी की कर्मस्थिति के बराबर काल बीत चुका है तो उन कर्म परमाणुओं का आबाधाप्रमाण अतिस्थापना को छोड़कर अपनी-अपनी योग्य शेष रही शक्तिस्थितिप्रमाण स्थिति तक उत्कर्षण होकर निक्षेप होना सम्भव है।

यहाँ यह जो एक समय अधिक उदयावलिकी अन्तिम स्थितिको माध्यम बनाकर उत्कर्षण-का विचार किया जा रहा है सो उस स्थितिमें किस निषेकके कर्मपरमाणु हैं और किसके नहीं हैं इसका विचार करते हुए बतलाया है कि जिसका बन्ध किये हुए एक समय, दो समय और तीन समय आदिके क्रमसे एक आवलि काल व्यतीत हुआ है उन सब निषेकोंके कर्मपरमाणु विवक्षित स्थितिमें नहीं पाये जाते। कारण यह है कि बन्धके बाद एक आवलिकाल तक नूतन बन्धका अपकर्षण नहीं होता और आबाधा कालके भीतर निषेक रचना नहीं होती, अतः विवक्षित स्थितिके पूर्व एक आवलि काल तक बन्धको प्राप्त होनेवाले कर्मपरमाणुओंका उस स्थितिमें नहीं पाया जाना स्वाभाविक है। हां इस एक आवलिसे पूर्व बन्धको प्राप्त हुए समयप्रबद्धोंके कर्म परमाणु अपकर्षण होकर वहां पाये जाते हैं इसमें कोई बाधा नहीं आती। फिर भी ऐसे कर्म-परमाणुओंका यदि उत्कर्षण हो तो उनका निक्षेप एक समय अधिक एक आवलिकम कर्मस्थितिके अन्ततक हो सकता है। मात्र इनका निक्षेप तत्काल बंधनेवाले कर्मके आबाधा कालके ऊपर ही होगा यहां इतना विशेष जानना चाहिए। यह दूसरी प्ररूपणा है जो नवकबन्धकी मुख्यतासे की गई है। पहली प्ररूपणा प्राचीन सत्तामें स्थित कर्मों की मुख्यतासे की गई थी, इसलिए ये दोनों प्ररूपणाएँ स्वतंत्र होनेसे इनका मूलमें अलग अलग विवेचन किया गया है।

यहां दूसरी प्ररूपणाके समय अवस्तुविकल्पोंका भी निर्देश किया गया है। किन्तु प्रथम प्ररूपणाके समय उनका निर्देश नहीं किया गया है, इसलिए यहां यह शंका होती है कि क्या प्रथम प्ररूपणाकी अपेक्षा एक भी अवस्तु विकल्प नहीं होता सो इसका समाधान यह है कि अवस्तु-विकल्प तो वहाँ भी सम्भव है। अर्थात् विवक्षित स्थिति (एक समय अधिक उदयावलिकी अन्तिम स्थिति) में इससे पूर्व उदयावलिप्रमाण निषेकोंका सद्भाव नहीं पाया जाता फिर भी यह बात बिना कहे ही ज्ञात हो जाती है, इसलिए प्रथम प्ररूपणाके समय इन अवस्तु विकल्पोंका निर्देश नहीं किया है। विशेष खुलासा मूलमें यथास्थान किया ही है, इसलिए इसे वहांसे विशेष रूपसे समझ लेना चाहिए।

उदयावलिके ऊपर जो प्रथम स्थिति है उसकी विवक्षासे यह प्ररूपणा की गई है। किन्तु इसके ऊपरकी स्थितिकी अपेक्षा प्ररूपणा करने पर अवस्तुविकल्प एक बढ़ जाता है, क्योंकि उदयावलिके भीतरकी सब स्थितियोंमें स्थित निषेकोंके कर्मपरमाणु तो इसमें पाये ही नहीं जाते, साथ ही उससे उपरितन स्थितिमें स्थित निषेकके कर्मपरमाणु भी नहीं पाये जाते; क्योंकि इन निषेकोंमें स्थित कर्मपरमाणुओंकी शक्तिस्थिति इस विवक्षित स्थितिके पूर्व ही समाप्त हो जाती है। तथा झीनस्थितिविकल्प एक कम होता है, क्योंकि आबाधामें एक समयकी कमी हो जानेसे झीनस्थितिविकल्पोंमें भी एक समयकी कमी हो गई है। मात्र इसकी अपेक्षा अझीन स्थितियोंमें भेद नहीं है। यह प्रथम प्ररूपणाकी अपेक्षा विचार है। इसी प्रकार दूसरी प्ररूपणाको ध्यानमें रखकर विचार कर लेना चाहिए। तथा आगे भी इसी प्रकार विचार कर किस निषेकके कितने कर्मपरमाणु उत्कर्षणसे झीनस्थिति हैं और कितने कर्मपरमाणु अझीनस्थिति हैं। साथ ही उनमें अवस्तुविकल्प कितने हैं और जिनका उत्कर्षण हो सकता है उनका वह कहाँ तक होता है इत्यादि

बातोंका पूर्वोक्त प्ररूपणा और उत्कर्षण आदिके नियमोंको ध्यानमें रखकर विचार कर लेना चाहिए। मूलमें इसका विस्तारसे विचार किया ही है, इसलिए यहां विशेष नहीं लिखा जा रहा है।

संक्रमणकी अपेक्षा झीन और अझीन स्थितिवाले कर्मपरमाणुओंका विचार करते हुए जो कुछ कहा गया है उसका भाव यह है कि उदयावलिके भीतर प्रविष्ट हुए जितने निषेक हैं उनके कर्मपरमाणु संक्रमणसे झीनस्थितिवाले और शेष अझीनस्थितिवाले हैं। मात्र नूतन बन्धका बन्धावलि कालतक अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमण आदि नहीं होता, इतनी विशेषता यहाँ और समझनी चाहिए।

उदयकी अपेक्षा झीन और अझीनस्थितिवाले कर्मपरमाणुओंका विचार करते हुए जो कुछ कहा गया है उसका भाव यह है कि जिस कर्मने अपना फल दे लिया है वह उदयसे झीनस्थिति वाला है और शेष सब कर्म उदयसे अझीन स्थितिवाले हैं।

स्वामित्व—यहाँ तक प्रकृति विशेषका आलम्बन लिए बिना सामान्यसे यह बतलाया गया है कि किस स्थितिमें स्थिति कितने कर्म परमाणु अपकर्षण आदिसे झीनस्थितिवाले और अझीन स्थितिवाले हैं। आगे मिथ्यात्व आदि प्रत्येक कर्मकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणुओंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य ऐसे चार भेद करके उनके स्वामित्वका विचार करके इस प्रकरणको समाप्त किया गया है। यहां इतना विशेष जानना चाहिए कि अपकर्षण आदिकी अपेक्षा उत्कृष्ट झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणुओंका स्वामी गुणितकर्मांशिक जीव और अपकर्षण आदिकी अपेक्षा जघन्य झीनस्थितितिवाले कर्मपरमाणुओंका स्वामी क्षपितकर्मांशिक जीव होता है। इसमें जहां विशेषता है उसका अलगसे निर्देश किया है।

अल्पबहुत्व—इसमें मिथ्यात्व आदि प्रत्येक कर्मकी अपेक्षा अपकर्षण आदिसे झीन-स्थितिवाले कर्मपरमाणुओंके अल्पबहुत्वका विचार किया गया है।

स्थितिगचूलिका

पहले उत्कृष्टादिके भेदसे प्रदेशविभक्तिका विस्तारसे विचार कर आये हैं। साथ ही अपकर्षण आदिकी अपेक्षा झीन और अझीन स्थितिवाले कर्मपरमाणुओंका भी विचार कर आये हैं। किन्तु अभी तक उदयकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त आदि कर्मपरमाणुओंका विचार नहीं किया गया है, इसलिए इसी विषयका विस्तारसे विचार करनेके लिए स्थितिग नामक चूलिका आई है। इसमें जिन अधिकारोंका आश्रय लेकर उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त आदिका विचार किया गया है वे अधिकार ये हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व।

समुत्कीर्तना—इस अधिकारमें उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त, निषेकस्थितिप्राप्त, यथानिषेकस्थितिप्राप्त और उदयस्थितिप्राप्त कर्मपरमाणु हैं यह स्वीकार किया गया है। जो कर्मपरमाणु उदय समयमें अग्रस्थितिमें दृष्टिगोचर होते हैं वे उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त कर्मपरमाणु है। यहाँ पर उत्कृष्ट स्थितिसे अग्रस्थिति ली गई है। एक समयप्रबद्धकी विविध स्थितियोंके जितने कर्मपरमाणु उदयके समय अग्रस्थितिमें दृष्टिगोचर होते हैं उन सबकी उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त संज्ञा है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। जो कर्मपरमाणु बन्धके समय जिस स्थितिमें निक्षिप्त होते हैं, अपकर्षण और उत्कर्षण होकर भी उदय कालमें वे यदि उसी स्थितिमें स्थित रहते हैं तो उनकी निषेकस्थितिप्राप्त संज्ञा

है। जो कर्मपरमाणु बन्धके समय जिस स्थितिमें निक्षिप्त होते हैं वे यदि उत्कर्षण या अपकर्षण हुए बिना उदयकालमें उसी स्थितिमें रहते हैं तो उनकी यथानिषेकस्थितिप्राप्त संज्ञा है। तथा बन्धके समय जो कर्मपरमाणु जिस निषेकस्थितिमें प्राप्त हुए हैं वे उदयके समय यदि उसी निषेकस्थितिमें न रहकर जहाँ कहीं दिखलाई देते हैं तो उनकी उदयस्थितिप्राप्त संज्ञा है। इसप्रकार उत्कृष्टस्थितिप्राप्त आदिके भेदसे ये कर्मपरमाणु चार प्रकारके हैं यह निश्चित होता है।

स्वामित्व—इस अधिकारमें मिथ्यात्व आदि अवान्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा उक्त चार प्रकारके कर्मपरमाणुओंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य ये चार भेद करके उनके स्वामित्वका विचार किया गया है।

अल्पबहुत्व—इस अधिकारमें उक्त सब भेदोंके अल्पबहुत्वका विचार किया गया है।

इसप्रकार इतना कथन करनेके बाद चूलिका सहित प्रदेशविभक्ति अधिकार समाप्त होता है।

—:o:—

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

—:※:—

कसायपाहुडस्स

पदेसविहत्ती

पंचमो अत्थाहियारो

सिरि-जइवसहाइरियविरइय-चुण्णिसुत्तसमण्णिदं

सिरि-भगवंतगुणहरभडारओवइट्ठं

कसायपाहुडं

तस्स

सिरि-वीरसेणाइरियविरइया टीका

जयधवला

तत्थ

पदेसविहत्ती णाम पंचमो अत्थाहियारो
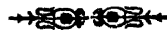
❀ कालो ।

§ १. कालो उच्चदि त्ति भणिदं होदि ।

❀ काल ।

§ १. कालका कथन करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

❀ **मिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेसविहत्तिओ केवचिरं कालादो होदि ।**

§ २. सुगमं ।

❀ **जहण्णुक्कस्सेणेगसमओ ।**

§ ३. सत्तमपुढविणेरइयस्स उक्कस्साउअस्स चरिमसमए चेव उक्कस्सपदेस-संतकम्ममुवलंभादो ।

❀ **अणुक्कस्सपदेसविहत्तिओ केवचिरं कालादो होदि ।**

§ ४. सुगमं ।

❀ **जहण्णुक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा ।**

§ ५. चदुगदिणिगोदे पडुच्च एसो कालणिद्देसो । णिच्चणिगोदे पुण पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो च होदि, अलद्धतसभावाणमुक्कस्स-दव्वाणुववत्तीदो । अणुक्कस्सपदेसविहत्तीए अणंतकालावट्ठाणं कधं घडदे ? ण, उक्कस्सपदेसट्ठाणप्पहुडि जाव जहण्णट्ठाणं ति एदेसु अणंतेसु ट्ठाणेसु अणंतकालावट्ठाणं पडि विरोहाभावादो ।

❀ **मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवका कितना काल है ?**

§ २. यह सूत्र सुगम है ।

❀ **जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।**

§ ३. क्योंकि सातवीं पृथिवीके नारकीके उत्कृष्ट आयुके अन्तिम समयमें ही उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म उपलब्ध होता है ।

❀ **अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका कितना काल है ।**

§ ४. यह सूत्र सुगम है ।

❀ **जघन्य और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनोंके बराबर है ।**

§ ५. चतुर्गति निगोद जीवकी अपेक्षा कालका यह निर्देश किया है । नित्य निगोद जीवकी अपेक्षा तो अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त काल होता है, क्यों कि जिन जीवोंने त्रसभावको नहीं प्राप्त किया है उनके उत्कृष्ट द्रव्यकी प्राप्ति सम्भव नहीं है ।

शंका—अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अनन्त कालतक अवस्थान कैसे बन सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उत्कृष्ट प्रदेशस्थानसे लेकर जघन्य प्रदेशस्थान तक जो अनन्त स्थान हैं उनमें अनन्त काल तक अवस्थान होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

❀ अण्णोवदेसो जहण्णेण असंखेज्जा लोगा त्ति ।

§ ६. सव्वे जीवपरिणामा असंखेज्जलोगमेत्ता चेव णाणंता, तहोवदेसाभावादो । तत्थुक्कस्सपदेससंतकम्मकारणपरिणामकलावं मोत्तूण सेसपरिणामट्ठाणेसु अवट्ठाणकालो जह० असंखेज्जलोगमेत्तो चेव तम्हा अणुक्कस्सपदेसकालो जह० असंखेज्जलोगमेत्तो त्ति इच्छियव्वो । ण च पदेसुत्तरादिकमेण संतकम्मट्ठाणेसु परिब्भमणणियमो अत्थि, एक्कसराहेण अणंताणि ट्ठाणाणि उल्लंघियूण वि परिब्भमणुवलंभादो[1] । एदं केसिं पि आइरियाणं वक्खाणंतरं । एदेसु दोसु उवदेसेसु एक्केणेव सच्चेण होदव्वं, अण्णोण्णविरुद्धत्तादो । तदो एत्थ जाणिदूण वत्तव्वं ।

❀ अथवा खवगं पडुच्च वासपुधत्तं ।

§ ७. गुणिदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण सत्तमाए पुढवीए उक्कस्सपदेसं करिय पुणो समयाविरोहेण एइंदिएसु मणुस्सेसु च उववज्जिय अंतोमुहुत्तब्भहिअट्ठवस्सेहि संजमं पडिवज्जिय णिव्वुइं गयम्मि अणुक्कस्सदव्वस्स वासपुधत्तमेत्तकालुवलंभादो ।

❀ अन्य उपदेशके अनुसार जघन्य काल असंख्यात लोकप्रमाण है ।

§ ६. कारण कि जीवोंके सब परिणाम असंख्यात लोकमात्र ही होते हैं, अनन्त नहीं होते, क्योंकि इस प्रकारका उपदेश नहीं पाया जाता । उनमेंसे उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मके कारणभूत परिणामकलापको छोड़कर शेष परिणामोंमें अवस्थित रहनेका जघन्य काल असंख्यात लोकप्रमाण ही है, इसलिए अनुत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मका जघन्य काल असंख्यात लोकप्रमाण है ऐसा स्वीकार करना चाहिए । और उत्तरोत्तर एक एक प्रदेशके अधिकके क्रमसे सत्कर्मस्थानोंमें परिभ्रमण करनेका कोई नियम नहीं है, क्योंकि एक साथ अनन्त स्थानोंको उल्लंघन करके भी परिभ्रमण पाया जाता है । यह किन्हीं आचार्योंका व्याख्यानन्तर है सो इन दो उपदेशोंमेंसे एक उपदेश ही सत्य होना चाहिए, क्योंकि ये दोनों उपदेश परस्परमें विरोधको लिये हुए हैं, इसलिए यहाँपर जानकर व्याख्यान करना चाहिए ।

❀ अथवा क्षपककी अपेक्षा वर्षपृथक्त्वप्रमाण काल है ।

§ ७. क्योंकि जो जीव गुणितकर्मांशिककी विधिसे आकर सातवीं पृथिवीमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मको करके पुनः यथाशास्त्र एकेन्द्रियोंमें और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष कालके द्वारा संयमको ग्रहणकर मुक्तिको प्राप्त होता है उसके अनुत्कृष्ट द्रव्यका वर्ष पृथक्त्वप्रमाण काल उपलब्ध होता है ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है यह तो स्पष्ट ही है, क्योंकि गुणितकर्मांशविधिसे आकर जो अन्तमें उत्कृष्ट आयुके साथ दूसरी बार सातवें नरकमें उत्पन्न होता है उसके अन्तिम समयमें ही मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति देखी जाती है । इसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके कालके विषयमें दो उपदेश पाये

---

1. आ० प्रतौ 'परिभमणमणुवलंभादो' इति पाठः ।

❀ एवं सेसाणं कम्माणं णादूण णेदव्वं ।

§ ८. तं जहा--अट्ठकसाय-सत्तणोकसायाणं मिच्छत्तभंगो, जहण्णुक्कसकालेहि उक्कस्साणुक्कस्सदव्वविसएहि तत्तो भेदाभावादो। अणंताणुबंधिचउक्कस्स वि मिच्छत्त-भंगो चेव। णवरि अणुक्कस्स० जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइय पुणो संजुत्तो होदूण अंतोमुहुत्तेण विसंजोइदम्मि तदुवलंभादो। चदुसंज०-पुरिस० उक्क० जहण्णु० एगस०। अणुक्क० अणादि-अपज्ज० अणादि-सपज्ज० सादि-सपज्ज०। जो सो सादि-सपज्ज० तस्स जहण्णुक्क० अंतो०। इत्थि० उक्क०

जाते हैं। एक उपदेशके अनुसार वह अनन्त काल प्रमाण बतलाया है। इसकी व्याख्या करते हुए वीरसेन स्वामीने जो लिखा है उसका भाव यह है कि नित्य निगोद जीव दो प्रकारके होते हैं—एक वे जो अबतक न तो निगोदसे निकले हैं और न निकलेंगे। इनकी अपेक्षा तो मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल अनादि-अनन्त है। हां जो नित्य निगोदसे निकलकर क्रमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्त कर देते हैं उनकी अपेक्षा अनादि-सान्त काल है। पर चूर्णिसूत्रमें इन दोनों प्रकारके कालोंका ग्रहण न कर इतर निगोद जीवोंकी अपेक्षा कालका विचार किया गया है। आशय यह है कि एक बार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति करके जो क्रमसे इतर निगोदमें चले जाते हैं उनके वहांसे निकलकर पुनः उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके प्राप्त करनेमें अनन्त काल लगता है, इसलिए चूर्णिसूत्रमें मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अनन्त काल कहा है। यह एक उपदेश है। किन्तु एक दूसरा उपदेश भी मिलता है। इसके अनुसार मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अनन्तप्रमाण न प्राप्त होकर असंख्यात लोकप्रमाण बन जाता है। उन आचार्योंके मतसे इस उपदेशके कारणका निर्देश करते हुए वीरसेन आचार्य लिखते हैं कि जीवोंके कुल परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण ही उपलब्ध होते हैं और सब प्रदेशसत्कर्मस्थानोंमें जीव क्रमसे ही प्राप्त होता है ऐसा कोई नियम नहीं है, अतः जघन्य काल असंख्यात लोकप्रमाण बननेमें कोई बाधा नहीं आती। अनुत्कृष्टके जघन्य कालके विषयमें ये दो उपदेश हैं। यह कह सकना कठिन है कि इनमेंसे कौन उपदेश सच है, इसलिए यहाँ दोनोंका संग्रह किया गया है। यह सम्भव है कि गुणितकर्मांशिक जीव सातवें नरकके अन्तमें उत्कृष्ट प्रदेशसंचय करके और वहांसे निकलकर क्रमसे मनुष्य होकर वर्षपृथक्त्व कालके भीतर मोहनीयका क्षपण कर दे। इसलिए यहाँ मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल वर्षपृथक्त्वप्रमाण भी कहा है।

❀ इसी प्रकार शेष कर्मोंका जानकर ले जाना चाहिए।

§ ८. खुलासा इस प्रकार है—आठ कषाय और सात नोकषायोंका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है, क्योंकि जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा तथा उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट द्रव्यविशेषकी अपेक्षा मिथ्यात्वसे इनमें कोई भेद नहीं है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भी मिथ्यात्वके समान ही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करके और संयुक्त होकर जो अन्तर्मुहूर्तमें पुनः इसकी विसंयोजना करता है उसके उक्त काल पाया जाता है। चार संज्वलन और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त है। उसमें जो सादि-सान्त काल है उसकी

जहण्णु० एगस० । अणुक्क० ज० दसवस्ससहस्साणि वासपुधत्तेण सादि०, उक्क० अणंतकालं । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं उक्क० पदे०वि० केव० कालादो होदि ? जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ ।

§ ६. एदेसिं चेव अणुक्कस्सदव्वकालपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि--

❀ णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं अणुक्कस्सदव्वकालो जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।

अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल वर्षपृथक्त्व अधिक दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अनन्त काल है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

विशेषार्थ—इन सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति अपने अपने उत्कृष्ट स्वामित्वके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए यहां सबकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । मात्र जिस प्रकृतिकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके कालमें कुछ विशेषता है उसका यहाँ स्पष्टीकरण करते हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त क्यों है इसके कारणका निर्देश मूलमें ही किया है । चार संज्वलन और पुरुषवेदकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति अभव्योंकी अपेक्षा अनादि-अनन्त, भव्योंकी अपेक्षा अनादि-सान्त और क्षपकश्रेणिमें सादि-सान्त कही है । क्षपकश्रेणिमें इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होनेके बाद अन्तर्मुहूर्त कालतक अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति सम्भव है, इसलिए इनकी सादि-सान्त अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति गुणितकर्मांशिक ऐसे जीवके भी होती है जो अन्तमें पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण आयुके साथ असंख्यात वर्षकी आयुवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर आयुके अन्तिम समयमें स्थित है । उसके बाद यह जीव देव होता है और देव पर्यायसे आकर ऐसे जीवका वर्षपृथक्त्वकी आयुवाला मनुष्य होकर मोक्ष जाना भी सम्भव है । स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होनेके बाद उसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका इससे कम काल सम्भव नहीं है । यही कारण है कि यहाँपर इसका जघन्य काल वर्षपृथक्त्व अधिक दस हजार वर्षप्रमाण कहा है । यहाँ जिन प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल कहा गया है उनकी इस विभक्तिका उत्कृष्ट काल मिथ्यात्वके समान ही है यह बिना कहे ही जान लेना चाहिए, क्योंकि कालमें मिथ्यात्वसे जितनी विशेषता थी वही यहाँ पर कही गई है ।

§ ६. अब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट द्रव्यके कालका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट द्रव्यका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ १०. कुदो ? सम्मत्तं पडिवण्णणिस्संतकम्मियम्मि सम्मत्तसंतमंतोमुहुत्तं धरिय खविददंसणमोहणीयम्मि तदुवलंभादो। उक्कस्ससामियस्स वा खवयस्स अणुक्कस्सम्मि पदिय णिस्संतीकरणेण सव्वजहण्णंतोमुहुत्तमेत्तकालो वत्तव्वो, पुव्विल्लादो वि एदस्स जहण्णभावदंसणादो।

※ उक्कस्सेण बेछावट्ठिसागरोवमाणि साधिरेयाणि।

§ ११. णिस्संतकम्मियमिच्छाइट्ठिम्मि सम्मत्तं पडिवज्जिय पुणो मिच्छत्तं गंतूण पलि० असं०भागमेत्तकालेण चरिमुव्वेल्लणकंदयस्स चरिमफालीए सेसाए सम्मत्तं घेत्तूण पढमछावट्ठिं भमियं पुणो मिच्छत्तं गंतूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्त-कालेण चरिमुव्वेल्लणकंदयस्स चरिमफालीए सेसाए सम्मत्तं घेत्तूण बिदियछावट्ठिं भमिय पुणो मिच्छत्तं गंतूण पलिदो० असं०भागमेत्तकालेणुव्वेल्लिदसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तम्मि तदुवलंभादो।

---

§ १०. क्योंकि इन दो प्रकृतियोंकी सत्तासे रहित जो जीव सम्यक्त्वको प्राप्त करके और अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्यक्त्वकी सत्तावाला होकर दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करता है उसके इन दोनों प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट द्रव्यका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। या इनके उत्कृष्ट द्रव्यका स्वामी जो क्षपक जीव इन्हें अनुत्कृष्ट करके निःसत्त्व कर देता है उसके इनके अनुत्कृष्ट द्रव्यका सबसे जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहना चाहिए, क्योंकि पूर्वोक्त कालसे भी यह काल जघन्य देखा जाता है।

※ उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागरप्रमाण है।

§ ११. क्योंकि इन दो प्रकृतियोंकी सत्तासे रहित जो मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वको प्राप्त होकर पुनः मिथ्यात्वमें जाकर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक इनकी उद्वेलना करते हुए अन्तिम उद्वेलनाकाण्डककी अन्तिम फालिके शेष रहनेपर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और प्रथम छयासठ सागर काल तक भ्रमण करके पुनः मिथ्यादृष्टि हुआ। तथा वहाँ पल्यके असं-ख्यातवें भागप्रमाण काल तक उद्वेलना करते हुए चरम उद्वेलना काण्डककी अन्तिम फालिके शेष रहनेपर सम्यक्त्वको प्राप्त करके द्वितीय छयासठ सागर काल तक उसके साथ भ्रमण करता रहा और अन्तमें मिथ्यादृष्टि होकर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना की उसके उक्त काल उपलब्ध होता है।

विशेषार्थ—यहाँपर दो चूर्णिसूत्रों द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके जघन्य और उत्कृष्ट कालका निर्देश किया गया है। ऐसा करते हुए वीरसेन स्वामीने जघन्य काल दो प्रकारसे घटित करके बतलाया है। प्रथम उदाहरणमें तो ऐसा जीव लिया है जिसके इन दो कर्मोंकी सत्ता नहीं है। ऐसा जीव सम्यग्दृष्टि होकर अन्तर्मुहूर्तमें यदि इनकी क्षपणा करता है तो उसके इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तर्मुहूर्त काल उपलब्ध होता है। दूसरे उदाहरणमें ऐसा क्षपक जीव लिया है जो इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाला है।

---

१. ता० प्रतौ 'घेत्तूण पढमछावट्ठिं' इति पाठः।

❀ जहण्णकालो जाणिदूण णेदव्वो।

§ १२. सुगमं।

§ १३. एवं चुण्णिसुत्तमस्सिदूण कालपरूवणं करिय संपहि एत्थुच्चारणाइरिय-वक्खाणक्कमं भणिस्सामो। कालो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्सए पयदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० मिच्छत्त-अट्ठक०-सत्तणोक० उक्क० पदे० विहत्ती० केवचिरं काला० ? जहण्णुक्क० एगस०। अणुक्क० ज० वासपुधत्तं, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। एवं अणंताणु०चउक्क०। णवरि अणुक्क० ज० अंतो०। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० पदेस० जहण्णुक्क० एगस०। अणुक्क० ज० अंतो०, उक्क० वेछावट्ठिसागरोमाणि सादि०। चदुसंज०-पुरिसवेदाणं उक्क० पदे० जहण्णुक्क०

इस जीवके अन्तर्मुहूर्तमें इन कर्मोंकी नियमसे क्षपणा हो जाती है, इसलिए इसके भी इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तर्मुहूर्त काल उपलब्ध होता है। इस प्रकार अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके ये दो उदाहरण उपस्थित कर वीरसेन स्वामी प्रथमकी अपेक्षा द्वितीयको ही प्रकृतमें उपयुक्त मानते हुए प्रतीत होते हैं, क्योंकि प्रथमकी अपेक्षा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जितना काल है उससे दूसरे उदाहरणकी अपेक्षा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल स्पष्टतः कम है और जघन्य कालमें जो सबसे न्यून हो वही लिया जाता है। यह तो इन दोनों कर्मोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके जघन्य कालका विचार हुआ। उत्कृष्ट कालका स्पष्टीकरण स्वयं वीरसेन स्वामीने किया ही है। यहाँ इतना ही संकेत करना है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाका काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होकर भी न्यूनाधिक है, इसलिए जहाँ जिस कर्मकी अन्तिम उद्वेलनाकाण्डककी अन्तिम फालि प्राप्त हो वहां उसके सद्भावमें रहते हुए अन्तिम समयमें ही सम्यक्त्वको प्राप्त कराना चाहिए।

❀ जघन्य कालको जानकर ले जाना चाहिए।

§ १२. यह सूत्र सुगम है।

विशेषार्थ—इस चूर्णिसूत्रमें जघन्य पदसे तात्पर्य मिथ्यात्व आदि अट्ठाईस प्रकृतियोंके जघन्य द्रव्यसे है। उसका जघन्य और उत्कृष्ट जो काल हो उसे जानकर घटित कर लेना चाहिए यह बात इस चूर्णिसूत्रमें कही गई है।

§ १३. इस प्रकार चूर्णिसूत्रके आश्रयसे कालका कथन करके अब यहाँ पर उच्चारणाचार्यके व्याख्यानके क्रमको कहेंगे। काल दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, आठ कषाय और सात नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल वर्षपृथक्त्वप्रमाण है और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा काल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो

एगस० । अणुक्क० अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो सादिओ सपज्ज० । तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो–जहण्णु० अंतो० । इत्थिवेद० उक्क० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० दसवस्ससहस्साणि वासपुधत्तेणब्भहियाणि, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा. पोग्गलपरियट्टा ।

§ १४. आदेसेण० णेरइएसु मिच्छत्त-सोलसक०-छण्णोक० उक्क० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० जह० अंतो० । कुदो ? सत्तमाए पुढवीए समयाहिय-असंखे०फद्दयमेत्तावसेसे आउए दव्वमुक्कस्सं करिय विदियसमयमादिं कादूण अंतो-मुहुत्तमेत्तकालं अणुक्कस्सदव्वेणच्छिय णिग्गयस्स तदुवलंभादो । णेरइयचरिमसमए पदेसस्सुक्कस्ससामित्तं परूविदसुत्तेण सह एदस्स वक्खाणस्स कधं ण विरोहो ? विरोहो चेव । किं तु आउवबंधयद्धाकालम्मि जादपदेसक्खयादो उवरिमकालपदेससंचओ बहुओ त्ति जइवसहाइरिओवएसो तेण णेरइयचरिमसमए चेव उक्कस्सपदेससामित्तं । उच्चारणा-इरियाणं पुण अहिप्पाएण उवरिमसंचयादो आउअबंधकालम्मि जादपदेसक्खओ

छ्यासठ सागरप्रमाण है । चार संज्वलन और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त काल है । उनमेंसे जो सादि-सान्त काल है उसका यह निर्देश है । उसकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल वर्षपृथक्त्व अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है ।

विशेषार्थ—यहां उच्चारणाचार्यके व्याख्यानमें वही सब काल कहा गया है जो कि चूर्णि-सूत्रों द्वारा निर्दिष्ट किया गया है । मात्र चूर्णिसूत्रमें मिथ्यात्व आदि की अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल तीन प्रकार से बतलाया गया है सो यहाँ अनन्त काल और असंख्यात लोकप्रमाण काल इन दो को छोड़कर एकका ही ग्रहण किया गया है, क्योंकि उक्त तीन प्रकारके कालोंमें से सबसे जघन्य काल यही प्राप्त होता है और यह निर्विवाद है ।

§ १४. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और छह नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि सातवीं पृथिवीमें आयुके एक समय अधिक असंख्यात स्पर्धकमात्र शेष रहने पर उक्त कर्मोंके द्रव्यको उत्कृष्ट करके और दूसरे समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक अनुत्कृष्ट द्रव्यके साथ रहकर निकलनेवाले जीवके उक्त काल पाया जाता है ।

शंका—नारकीके अन्तिम समयमें प्रदेशसत्कर्मके उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन करनेवाले सूत्रके साथ इस व्याख्यानका विरोध कैसे नहीं प्राप्त होता ?

समाधान—उक्त सूत्रके साथ इस व्याख्यानका विरोध तो है ही, किन्तु आयुबन्धके काल में जो प्रदेशोंका क्षय होता है उससे आगेके कालमें होनेवाला प्रदेशोंका संचय बहुत है यह यतिवृषभाचार्यका उपदेश है, इसलिए इस उपदेशके अनुसार नारकीके अन्तिम समयमें ही उत्कृष्ट प्रदेशस्वामित्व प्राप्त होता है । परन्तु उच्चारणाचार्यके अभिप्रायसे आयुबन्ध कालसे आगेके

बहुओ त्ति तेण आउअबंधे चरिमसमयअपारद्धे चेव उक्कस्ससामित्तं होदि त्ति तदो आणाकणिट्ठदाए णिण्णयाभावादो त्थप्पं काऊण वक्खाणेयव्वं। उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि। णवरि अणंताणु०चउक्क० जह० एगसमओ। कुदो? चउवीससंतकम्मियउवसमसम्मादिट्ठिम्मि सासणं गंतूण अणंताणुवंधिसंतमुप्पाइय विदियसमए णिप्पिलिदम्मि तदुवलंभादो। उक्क० तं चेव। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० पदे० जहण्णुक्क० एगस०। अणुक्क० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि। तिण्हं वेदाणमुक्क० पदेस० जहण्णुक्क० एगस०। अणुक्क० जह० दसवस्ससहस्साणि समयूणाणि, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि।

कालमें होनेवाले सञ्चयसे आयुबन्धके कालमें प्रदेशोंका चय बहुत होता है इसलिए आयु बन्धके प्रारम्भ होनेके पूर्व अन्तिम समयमें ही अर्थात् आयुबन्ध प्रारम्भ होनेके अनन्तर पूर्व समयमें ही उत्कृष्ट स्वामित्व होता है। अतएव जिनाज्ञाका निर्णय न होनेसे इस विषयको स्थगित करके व्याख्यान करना चाहिए।

उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है, क्योंकि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशमसम्यग्दृष्टि नारकी जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके सत्त्वको उत्पन्न करके दूसरे समयमें अन्य गतिमें चला जाता है उसके एक समय काल पाया जाता है। तथा उत्कृष्ट काल वही है। अर्थात् तेतीस सागर ही है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। तीनों वेदोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और छह नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति सातवें नरकमें आयुबन्धसे पूर्व अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है तथा उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके बाद नरकभवमें जो अन्तर्मुहूर्त काल शेष बचता है वह इन कर्मोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल है और इसका उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर उस नारकीके होता है जिसके उस पर्यायमें उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति नहीं होती। यही कारण है कि उक्त कर्मोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। मात्र अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय भी बन जाता है, इसलिए कारण सहित इस कालका निर्देश अलगसे किया है। यहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके जघन्य कालका निर्देश करके 'उक्क० तं चेव' कहकर उत्कृष्ट काल भी कह दिया है पर इससे यह मिथ्यात्व आदिकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके उत्कृष्ट काल से अलग है ऐसा नहीं समझना चाहिए, अन्यथा 'तं चेव' पद देनेकी कोई सार्थकता नहीं थी। सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति उत्कृष्ट स्वामित्वके अनुसार एक समयके लिए होती है, इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा जो जीव अपनी-अपनी उद्वेलनाके अन्तिम

§ १५. पढमाए जाव छट्ठि त्ति मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० उक्क० पदेस० जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० जह० पढमाए दसवस्ससहस्साणि समऊणाणि । कुदो समऊणत्तं ? उप्पण्णपढमसमए पदेसस्स जादुक्कस्ससंतत्तादो । सेसासु पुढवीसु जह० सगसगजहण्णट्ठिदीओ समऊणाओ, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदीओ । एवमणंताणु०-चउक्क०-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं । णवरि अणुक्क० ज० एगस० । सत्तमीए णिरओघं । णवरि इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदाणमुक्क० पदे० जहण्णुक्क० एग० । अणुक्क० ज० बावीसं सागरोवमाणि, उक्क० तेत्तीसं साग० । अणंताणु०चउक्क० उक्क० पदे० जहण्णुक्क० एग० । अणुक्क० ज० अंतो० । कुदो ण एगसमओ ? सत्तमाए पुढवीए सासणगुणेण णिग्गमाभावादो । उक्क० तेत्तीसं सागरो० ।

समयमें नरकमें उत्पन्न होता है उसके वहाँ इसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति एक समय तक देखी जाती है, अतः इन दोनों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कहा है। इसका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है यह स्पष्ट ही है। तीनों वेदोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति नरकमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें सम्भव है, इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा नरककी जघन्य स्थितिमेंसे इस एक समयको कम कर देने पर तीनों वेदोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम जघन्य आयुप्रमाण होता है और इसका उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट आयुप्रमाण है यह स्पष्ट ही है।

§ १५. पहली पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल प्रथम पृथिवीमें एक समय कम दस हजार वर्ष है।

शंका—एक समय कम क्यों है ?

समाधान—क्योंकि वहाँ उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही उत्कृष्ट सत्त्व होता है।

शेष पृथिवियोंमें उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम अपनी-अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल छहोंमें अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा काल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है। सातवीं पृथिवीमें सामान्य नारकियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल बाईस सागर है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है।

शंका—एक समय क्यों नहीं है ?

समाधान—क्योंकि सातवीं पृथिवीसे सासादन गुणस्थानके साथ निर्गमन नहीं होता है। तथा उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—प्रथमादि छह पृथिवियोंमें गुणितकर्मांशविधिसे आये हुए जीवके नरकमें

§ १६. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० खुद्दाभवग्गहणं । एदं समयूणं ति किं ण उच्चदे ? ण, णेरइयेहिंतो णिग्गयस्स अपज्जत्तएसु अणंतरसमए उववादाभावादो । अणंताणु० चउक्क०-इत्थिवेदाणमेगस० । सव्वासिमुक्क० अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टा । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० पदे० जहण्णुक्क० एग० । अणुक्क० ज० एग०, उक्क०

उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है, इसलिए इन नरकोंमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा है। मात्र इन नरकोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति सामान्य नारकियोंके समान भी सम्भव है, इसलिए इन नरकोंमें इसका जघन्य काल एक समय कहा है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति प्रथमादि छह नरकोंमें जो गुणितकर्मांशिक जीव आकर और वहाँ उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्तमें यथाशास्त्र उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके अन्तिम समयमें होती है, अत: इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इनकी उद्वेलनामें एक समय शेष रहने पर जो उक्त नरकोंमें उत्पन्न होता है उनके अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति एक समय देखी जाती है, अत: उक्त नरकोंमें इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कहा है और इसका उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। सातवीं पृथिवीमें अन्य सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल सामान्य नारकियोंमें जिस प्रकार घटित करके बतला आये हैं उस प्रकारसे घटित कर लेना चाहिए। मात्र जिन प्रकृतियोंमें कुछ विशेषता है उसका स्पष्टीकरण करते हैं। तीनों वेदोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति तो गुणितकर्मांशिक जीवके यहाँ उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही होती है, इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इस एक समयको सातवें नरकी जघन्य स्थितिमेंसे कम कर देनेपर यहाँ उनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल पूरा बाईस सागर प्राप्त होता है और इसका उत्कृष्ट काल यहाँकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। यहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामित्व ओघके समान है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पूरा तेतीस सागर कहा है। यहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय क्यों नहीं बनता इसके कारणका निर्देश मूलमें ही किया है।

§ १६. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है।

शंका—इसे एक समय कम क्यों नहीं कहते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि नारकियोंमेंसे निकले हुए जीवका अनन्तर समयमें अपर्याप्तक जीवों में उत्पाद नहीं होता।

अनन्तानुबन्धीचतुष्क और स्त्रीवेदकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और सबका उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

तिण्णि पलिदोवमाणि पलिदोवमस्स असं०भागेण सादिरे० ।

§ १७. पंचिंदियतिरिक्खतियम्मि छव्वीसं पयडीणमुक्क० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० खुद्दा० अंतोमु०, अणंताणु०चउक्क०-इत्थिवेदाणमेगस०, उक्क० सव्वासिं तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमित्थिवेदभंगो ।

अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक तीन पल्य प्रमाण है ।

विशेषार्थ—यहाँ सब कर्मोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति अपने अपने स्वामित्व के अनुसार एक समयके लिए होती है, इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। आगेकी मार्गणाओंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए, इसलिए आगे सब कर्मोंकी मात्र अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके कालका स्पष्टीकरण करेंगे । तिर्यञ्चोंमें जघन्य आयु क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है और कायस्थिति अनन्त काल प्रमाण है, इसलिए इनमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट अनन्त काल कहा है। मात्र यहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्क और स्त्रीवेदकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय भी बन जाता है, इसलिए इसका अलगसे निर्देश किया है। जो स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति करनेके बाद एक समय तक तिर्यञ्चोंमें रहकर देव हो जाता है उसके स्त्रीवेदकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय बन जाता है और जिस तिर्यञ्चने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करके तिर्यञ्च पर्यायमें रहनेका काल एक समय शेष रहने पर सासादनगुणस्थान प्राप्त करके उससे संयुक्त हुआ है उसके अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय बन जाता है। तिर्यञ्चों में सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय उद्वेलनाकी अपेक्षा बन जाता है, इसलिए इसका जघन्य काल एक समय कहा है। सम्यक्त्वकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वकी अपेक्षा भी बन जाता है इतना यहां विशेष जानना चाहिए। तथा जो तिर्यञ्च पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक इनकी उद्वेलना करते हुए अन्तमें तीन पल्यकी आयुके साथ उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न होते हैं और वहाँ अधिकतर समय तक सम्यक्त्वके साथ रहते हुए इनकी सत्ता बनाये रखते हैं उनके इस सब कालके भीतर उक्त दोनों प्रकृतियोंकी सत्ता बनी रहती है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग अधिक तीन पल्य कहा है।

§ १७. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल तिर्यञ्चोंमें क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण और शेष दो में अन्तर्मुहूर्त है। किन्तु अनन्तानुबन्धीचतुष्क और स्त्रीवेदकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और सबका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंकी जघन्य स्थिति क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण और शेष दो की अन्तर्मुहूर्त है। तथा सबकी कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है, इसलिए इनमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल क्रमसे क्षुल्लक भवग्रहण-

§ १८. पंचि०तिरि०अपज्ज० छव्वीसं पयडीणं उक्क० पदे० जहण्णुक्क० एगस०। अणुक्क० ज० खुद्दाभव० समऊणं, उक्क० अंतो०। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमेवं चेव। णवरि अणुक्क० ज० एगस०। एवं मणुसअपज्जत्ताणं।

§ १९. मणुसतियम्मि अट्ठावीसं पयडीणं उक्क० पदे० जहण्णुक्क० एगस०। अणुक्क० ज० खुद्दा० अंतो० समऊणं, उक्क० सगट्ठिदी। णवरि सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क०-इत्थिवेद० अणुक्क० ज० एगस०। चदुसंज०-पुरिस० अणुक्क० ज० अंतोमु०।

प्रमाण और अन्तर्मुहूर्त कहा है तथा उत्कृष्ट काल पूर्व कोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य कहा है। मात्र अनन्तानुबन्धीचतुष्क और स्त्रीवेदकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति सामान्य तिर्यञ्चोंके समान यहाँ भी बन जाती है, इसलिए यहाँ इसका जघन्य काल एक समय कहा है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी प्ररूपणा स्त्रीवेदके समान घटित हो जाती है, इसलिए उसे उसकी प्ररूपणाके समान जानने की सूचना की है।

§ १८. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका एक समय काल कम कर देने पर यहाँ अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल प्राप्त होता है और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंकी कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है, इसलिए इन जीवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अन्य सब काल इसी प्रकार बन जाता है, इसलिए उसे इसी प्रकार जानने की सूचना की है। मात्र इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उद्वेलना की अपेक्षा एक समय काल भी प्राप्त होता है, इसलिए इनकी उक्त विभक्तिका जघन्य काल अलगसे एक समय कहा है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें यह कालप्ररूपणा अविकल बन जाती है, इसलिए उनमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान जाननेकी सूचना की है।

§ १९. मनुष्यत्रिकमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है और एक समय कम अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी कायस्थिति-प्रमाण है। इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और स्त्रीवेदकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है। तथा चार संज्वलन और पुरुषवेदकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

विशेषार्थ—सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका एक समय काल अपनी अपनी जघन्य स्थितिमेंसे कम कर देने पर अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल प्राप्त होता है, इसलिए यहाँ पर अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल सामान्य मनुष्योंमें एक समय कम क्षुल्लक भव ग्रहणप्रमाण और शेष दो प्रकारके मनुष्योंमें एक समय कम अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है। इनमें

§ २०. देवगदीए देवेसु मिच्छ०-बारसक०-सत्तणोक० उक्क० पदे० जहण्णुक्क० एग० । अणुक्क० जह० दसवस्ससहस्साणि समऊणाणि, उक्क० तेत्तीसं सागरो० । एवं सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं । णवरि अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० तं चेव । एवं पुरिस-णउंसयवेदाणं । णवरि अणुक्क० ज० दसवस्ससहस्साणि, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि ।

§ २१. भवण०-वाण०-जोइसि० छव्वीसं पयडीणमुक्क० पदे० जहण्णुक्क०

इसका उत्कृष्ट काल कायस्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। मात्र इनमें सम्यक्त्वका उद्वेलना और क्षपणाकी अपेक्षा तथा सम्यग्मिथ्यात्वका उद्वेलनाकी अपेक्षा, अनन्तानुबन्धीचतुष्कका संयोजना होकर सासादन गुणस्थानके साथ विवक्षित पर्यायमें एक समय रहनेकी अपेक्षा और स्त्रीवेदका उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके बाद एक समय तक अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके साथ विवक्षित पर्यायमें रहनेकी अपेक्षा उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय बन जाने से वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा चार संज्वलन और पुरुषवेदकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त जो ओघसे घटित करके बतला आये हैं वह मनुष्यत्रिकमें सम्भव है, इसलिए इनमें उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

§ २०. देवगतिमें देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और सात नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसी प्रकार सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा काल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल वही है। पुरुषवेद और नपुंसकवेदका काल भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और सात नोकषायकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति गुणित कर्मांशिक जीवके यहाँ उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें होती है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम दस हजार वष कहा है। उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है यह स्पष्ट ही है। शेष प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल तो यही है। मात्र जघन्य कालमें अन्तर है। सम्यक्त्वका उद्वेलना और क्षपणाकी अपेक्षा, सम्यग्मिथ्यात्वका उद्वेलनाकी अपेक्षा और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका संयोजना होकर सासादन गुणस्थानके साथ एक समय विवक्षित पर्यायमें रहनेकी अपेक्षा एक समय काल बन जाता है, इसलिए यहाँ इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कहा है। तथा पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति पल्योपमकी स्थितिवाले देवोंके अन्तिम समयमें होती है, इससे कम स्थितिवालेके नहीं, इसलिए तो इसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल पूरा दस हजार वर्ष कहा है और नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति ऐशान कल्पमें होती है, इसलिए इसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका भी जघन्य काल पूरा दस हजार वर्ष कहा है।

§ २१. भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट

एगस० । अणुक्क० जह० जहण्णट्ठिदी समऊणा, उक्क० अप्पप्पणो उक्कस्सट्ठिदीओ । णवरि अणंताणु०चउक्क० जह० एगस० । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमणंताणु०-चउक्क०भंगो ।

§ २२. सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० उक्क० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० जह० सग-सगजहण्णट्ठिदीओ समऊणाओ, उक्क० सग-सगुक्कस्सट्ठिदीओ । अणंताणु०चउक्क०-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं एवं चेव । णवरि अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० तं चेव ।

§ २३. आणदादि जाव णवगेवेज्जा त्ति छव्वीसं पयडीणं उक्क० पदे०

प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग अनन्तानुबन्धीचतुष्कके समान है।

विशेषार्थ—उक्त देवोंमें उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें सम्भव है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण कहा है और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। मात्र अनन्तानु-बन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय सामान्य देवोंके समान यहाँ भी बन जाता है, इसलिए इसके जघन्य काल एक समयका अलगसे निर्देश किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग अनन्तानुबन्धीचतुष्कके समान कहनेका कारण यह है कि यहाँ पर इनका भी उद्वेलनाकी अपेक्षा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय बन जाता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

§ २२. सौधर्म कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें मिथ्यात्व बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुबन्धीचतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल वही है।

विशेषार्थ—यहाँ प्रारम्भमें कही गई बाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें होती है। मात्र सौधर्म और ऐशान कल्पमें पुरुषवेद और नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति उस पर्यायके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इन सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण कहा है। तथा शेष प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति सामान्य देवोंके समान यहाँ भी घटित हो जाती है, इसलिए इसका जघन्य काल एक समय कहा है। यहाँ सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है।

§ २३. आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट

जहण्णुक० एगस० । अणुक्क० जह० खुद्दाबंधपाढो समऊणो, उक्क० सगट्ठिदी। णवरि अणंताणु०चउक्कस्स अणुक्क० पदे० जह० एगस० । एवं सम्मत-सम्मामिच्छत्ताणं ।

§ २४. अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति सत्तावीसं पयडीणमुक्क० पदे० जहण्णुक० एगस० अणुक्क० जह० जहण्णट्ठिदी समयूणा, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी। णवरि अणंताणु०चउक्क० अणुक्क० जह० अंतोमु० । सम्मत्त० उक्क० पदेसजहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । एवं णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल क्षुल्लकबन्धके पाठके अनुसार एक समय कम जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है। इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षासे जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ मिथ्यात्व, सोलह कषाय और छह नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति अपने अपने भवके प्रथम समयमें सम्भव है। तीनों वेदोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति स्वामित्वके अनुसार यद्यपि भवके प्रथम समयमें सम्भव नहीं है, क्योंकि स्वामित्वप्ररूपणामें गुणितकर्मांशविधिसे आकर जो द्रव्यलिंगके साथ मरकर और वहाँ उत्पन्न होकर विवक्षित वेदके पूरणकालके अन्तिम समयमें स्थित है उसके तीनों वेदोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति बतलाई है पर क्षुल्लकबन्धके पाठके अनुसार तीनों वेदों सहित उक्त सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण बतलाया है सो विचार कर घटित कर लेना चाहिए। मात्र अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय सामान्य देवोंके समान यहाँ भी बन जाता है, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा यहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय ही है, क्योंकि सम्यक्त्वका उद्वेलना और क्षपणाकी अपेक्षा तथा सम्यग्मिथ्यात्वका उद्वेलनाकी अपेक्षा एक समय काल प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती, इसलिए इनकी प्ररूपणा अनन्तानुबन्धीचतुष्कके समान जाननेकी सूचना की है। यहाँ सब प्रकृयियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है।

§ २४. अनुदिशासे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके एक समयको अपनी अपनी जघन्य स्थितिमेंसे कम कर देने पर सत्ताईस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल प्राप्त होता है, इसलिए वह एक समय कम जघन्य स्थितिप्रमाण कहा है। मात्र जो वेदकसम्यग्दृष्टि अनन्तानुबन्धीकी

§ २५. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-एक्कारसकसाय-णवणोकसाय० जहण्णपदे जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। अजहण्णे० अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं जहण्णपदे जहण्णुक्क० एगसमओ। अजह० ज० अंतोमु०, उक्क० वेछावट्ठि सागरोवमाणि सदिरेयाणि । अणंताणु०चउक्क० ज० पदेस० जहणुक्क० एगस० । अज० अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो सादिओ सपज्जवसिदो । जो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो—जह० अंतोमु०, उक्क० अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं । लोभसंजल० जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० तिण्णि भंगा । जो सादिओ[1] सपज्जवसिदो तस्स जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं ।

विसंयोजना किये बिना वहाँ उत्पन्न हुआ है और अन्तर्मुहूर्त कालमें उनकी विसंयोजना कर देता है उसके इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति अन्तर्मुहूर्त काल तक ही देखी जाती है, इसलिए इसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। क्षपणाकी अपेक्षा सम्यक्त्वकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय यहाँ भी सम्भव होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। इन सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। इस प्रकार यहाँ तक ओघसे और चारों गतियोंमें कालका विचार किया। आगे अपनी अपनी विशेषताको जानकर वह घटित कर लेना चाहिए।

इस प्रकार उत्कृष्ट काल समाप्त हुआ।

§ २५. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त काल है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त काल है। उनमें जो सादि-सान्त काल है उसका यह निर्देश है—जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। लोभसंज्वलनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिके तीन भङ्ग हैं। उनमें जो सादि-सान्त भङ्ग है उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—अपने अपने स्वामित्वके अनुसार ओघ और आदेशसे सब प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति एक समय तक ही होती है, इसलिए उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल सर्वत्र एक समय कहा है। अतः यहाँ केवल सब प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके कालका विचार करेंगे। मिथ्यात्व आदि इक्कीस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति अपनी अपनी क्षपणाके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इसका काल अभव्यों या अभव्योंके समान भव्योंकी अपेक्षा

[1] ता० प्रतौ 'जो सो' सादियो' इति पाठः।

§ २६. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-सत्तणोकसाय० जह० पदे० जहण्णुक्क० एगसमओ। अज० जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि। सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस०। अज० जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरो०। बारसक०-भय-दुगुंछाणं जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० दसवस्ससहस्साणि समयूणाणि, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि।

अनादि-अनन्त और इतर भव्योंकी अपेक्षा अनादि-सान्त कहा है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये उद्वेलना प्रकृतियाँ हैं। इनका सत्त्व होकर क्षपणा द्वारा कमसे कम अन्तर्मुहूर्तमें अभाव हो सकता है और जो प्रारम्भमें, मध्यमें और अन्तमें इनकी उद्वेलना करते हुए दो छयासठ सागर काल तक सम्यक्त्वके साथ रहता है उसके साधिक दो छयासठ सागर काल तक इनका सत्त्व देखा जाता है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर कहा है। इनका सत्त्व अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त नहीं होता, इसलिए ये दो भङ्ग नहीं कहे हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्क अनादि सत्तावाली होकर भी विसंयोजना प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त ये तीन भङ्ग कहे हैं। तथा सादि-सान्तके कालका निर्देश करते हुए वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त कहा है, क्योंकि विसंयोजनाके बाद अन्तर्मुहूर्तके लिए इनकी सत्ता होकर पुनः विसंयोजना हो सकती है। तथा उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलप्रमाण कहा है, क्योंकि कोई जीव इस कालके प्रारम्भमें और अन्तमें इनकी विसंयोजना करे और मध्यमें न करे यह सम्भव है। लोभकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके भी तीन भङ्ग हैं। अनादि-अनन्त भङ्ग अभव्योंके होता है। अनादि-सान्त भङ्ग भव्योंके जघन्य प्रदेशविभक्तिके पूर्व होता है और सादि-सान्त भङ्ग जघन्य प्रदेशविभक्तिके बादमें होता है। इसकी जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षपक जीवके अधःकरणके अन्तिम समयमें होती है। इसके बाद इसका सत्त्व अन्तर्मुहूर्त काल तक ही पाया जाता है, इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

§ २६. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व और सात नोकषायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्ति नारक पर्यायमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर हो यह भी सम्भव है, इसके बाद इनकी वहाँ अन्तर्मुहूर्त काल तक अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है। तथा क्षपितकर्मांशविधिसे आकर नरकमें उत्पन्न हुए जिसे अन्तर्मुहूर्त काल हो जाता है उसके पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है और इससे पूर्व अन्तर्मुहूर्त काल तक अजघन्य प्रदेशविभक्ति रहती है, इसलिए इन सब प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। सम्यक्त्व आदि छह प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय अनुत्कृष्टके समान घटित कर लेना चाहिए। बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें

§ २७. पढमाए जाव छट्ठि त्ति मिच्छत्त-इत्थि-णवुंसयवेदाणं जह० पदे० जहण्णुक० एगस० । अज० जह० जहण्णट्ठिदी, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं जह० पदे० जहण्णुक० एगस० । अज० जह० एगस०, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदीओ । बारसक०-भय-दुगुंछाणं जह० पदे० जहण्णुक० एगस० । अज० जह० जहण्णट्ठिदी समऊणा, उक्क० सगट्ठिदी । पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं जह० पदे० जहण्णुक० एगस० । अज० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदीओ ।

§ २८. सत्तमाए मिच्छत्त-अणंताणु०चउक्क०-इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेद--हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं जह० पदे० जहण्णुक० एगस० । अज० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं । णवरि अज० जह० एगस० ।

प्राप्त होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम दस हजार वर्ष कहा है । सब अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है यह स्पष्ट ही है ।

§ २७. प्रथम पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—प्रथमादि छह पृथिवियोंमें उत्कृष्ट आयुवाले जीवके अन्तिम समयमें मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य स्वामित्व बतलाया है, इसलिए यहाँ इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण कहा है । सम्यक्त्व आदि छह प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय सामान्य नारकियोंके समान घटित कर लेना चाहिए । आगे भी जहाँ यह काल इतना कहा हो वहाँ वह इसी प्रकार जानना चाहिए । बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इसका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थितिप्रमाण कहा है । पुरुषवेद आदिकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भवके प्रारम्भमें अन्तर्मुहूर्त काल जाने पर होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । इन अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है ।

§ २८. सातवीं पृथिवीमें मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है ।

बारसक-भय-दुगुंछाणं जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० बावीसं सागरोवमाणि, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि ।

§ २६. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छत्त०--बारकसाय--भय--दुगुंछित्थि-णवुंसयवेदाणं जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पलिदो० असंखे०-भागेण सादिरेयाणि । अणंताणु०चउक्क० जह० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० एगस०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० अंतोमु०, उक्क० अणंतकाल०-मसंखे०पो०परियट्टा ।

इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है। बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल बाईस सागर है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—सातवीं पृथिवीमें ओघके समान स्वामित्व है, इसलिए यहाँ मिथ्यात्व आदि बारह प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बन जानेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है। सम्यक्त्वद्विकका भङ्ग उक्त प्रकृतियोंके समान है यह स्पष्ट ही है। मात्र इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उद्वेलनाकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय बन जानेसे वह अलगसे कहा है। बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्ति उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल बाईस सागर कहा है। इन अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है यह स्पष्ट ही है।

§ २६. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेश-विभक्तिका जघन्य काल क्षुल्लक भवग्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक तीन पल्य है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है। पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अनन्त काल है, जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंकी जघन्य भवस्थिति क्षुल्लकभवग्रहणप्रमाण है और जघन्य भव-स्थितिवाले जीवोंके मिथ्यात्व आदि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति

§ ३०. पंचिंदियतिरिक्खतियम्मि मिच्छत्ति त्थि-णवुंसयवेद-बारसक०-भय-दुगुंछाणं जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० खुद्दाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त-सम्मामि०--अणंताणु०चउक्काणमेवं चेव । णवरि अज० जह० एगस० । पंचणोकसायाणं जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी ।

§ ३१. पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ताणं मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछ० जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० खुद्दाभवग्गहणं समयूणं, उक्क० अंतोमु० ।

होती नहीं, इसलिए यहाँ उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल क्षुल्लकभवग्रहणप्रमाण कहा है। तथा तिर्यञ्चोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्त काल है, इसलिए उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल अनन्त काल कहा है। यहाँ सम्यक्त्वद्विककी एक समय तक सत्ता उद्वेलनाकी अपेक्षा बन जाती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कहा है। तथा जो पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक इनकी उद्वेलना कर सत्त्व नाश हुए बिना तीन पल्यकी आयुवाले तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होकर और सम्यक्त्वको उत्पन्न कर अन्त तक इनकी सत्ता बनाये रखते हैं उनके इतने काल तक इनकी सत्ता दिखलाई देनेसे यहाँ इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग अधिक तीन पल्य कहा है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय पहले अनेक बार घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। तथा इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल मिथ्यात्वके समान है यह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार पुरुषवेद आदि पाँचकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल जानना चाहिए। तथा इसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्रथम नरकके समान घटित कर लेना चाहिए।

§ ३०. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें मिथ्यात्व, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल सामान्यसे पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें क्षुल्लकभवग्रहणप्रमाण और शेष दोमें अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है। पाँच नोकषायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—यहाँ अन्य सब स्पष्टीकरण सामान्य तिर्यञ्चोंके समान कर लेना चाहिए। केवल दो बातोंमें विशेषता है। एक तो पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंकी जघन्य भवस्थिति अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इनमें मिथ्यात्व आदिकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। दूसरे इन तीनों प्रकारके तिर्यञ्चोंकी कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है और इतने काल तक यहाँ अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति हुए बिना भी सत्ता रह सकती है, इसलिए यहाँ इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण कहा है।

§ ३१. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका

एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं। णवरि अज० जह० एगसमओ। सत्तणोक० जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस०। अज० जहण्णुक्क० अंतोमु०। एवं मणुसअपज्जत्ताणं।

§ ३२. मणुसतियम्मि मिच्छत्त-बारसक०-णवणोकसायाणं जह० पदे० जहणुक्क० एगसमओ। अज० जह० खुद्दाभव० अंतोमु, उक्क० सगट्ठिदी। सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस०। अज० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदीओ।

जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है। इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है। सात नोकषायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ मिथ्यात्व आदि उन्नीस प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इसका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहणप्रमाण कहा है। सम्यक्त्वद्विकके अजघन्य प्रदेशसत्त्वका जघन्य काल एक समय उद्वेलनाकी अपेक्षा प्राप्त होता है यह स्पष्ट ही है। तथा सात नोकषायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भवग्रहणके अन्तर्मुहूर्त बाद होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा यहाँ सभी प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है यह स्पष्ट ही है।

§ ३२. मनुष्यत्रिकमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल सामान्य मनुष्योंमें क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण और शेष दोमें अन्तर्मुहूर्तप्रमाण तथा तीनोंमें उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थिति प्रमाण है।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्योंकी जघन्य स्थिति क्षुल्लकभवग्रहणप्रमाण, शेष दोकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण तथा तीनोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि अधिक तीन पल्यप्रमाण होती है, इसलिए इनमें मिथ्यात्व आदि बाईस प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल सामान्य मनुष्योंमें क्षुल्लकभवग्रहणप्रमाण, शेष दोमें अन्तर्मुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट काल तीनोंमें कायस्थितिप्रमाण कहा है, क्योंकि इन तीनों प्रकारके मनुष्योंमें क्षपणाके समय यथायोग्य स्थानमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है, इसलिए यहाँ पर इन प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके उक्त कालके प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती। अब रहीं शेष छह प्रकृतियाँ सो इनमेंसे जिन जीवोंने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनामें एक समय शेष रहने पर मनुष्य पर्याय प्राप्त की है उनके इन दो प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय बन जाता है। तथा जो मनुष्य अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करके मनुष्य पर्यायमें एक समय शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होते हैं उनके इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय बन जाता है, इसलिए यहाँ इन छह प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कहा है। यहाँ इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल कायस्थिति-

§ ३३. देवगईए देवेसु मिच्छत्तित्थि-णवुंसयवेदाणं जह० पदे० जहण्णुक्कस्स० एगस० । अज० जह० दसवस्ससहस्साणि, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । एवमणंताणु०-चउक्क०-सम्म०-सम्मामिच्छत्ताणं । णवरि अज० जह० एगस० । बारसक०-भय-दुगुंछाणं मिच्छत्तभंगो । पंचणोक० जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० अंतोमुहु०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि ।

§ ३४. भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति मिच्छत्तित्थि-णवुंसयवेदाणं जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० जहण्णट्ठिदी, उक्क० उक्कस्सट्ठिदी । सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं जह० पदेस० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० एगस०, उक्क० उक्क०ट्ठिदी । बारसक०-भय-दुगुंछाणं जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० जहण्णट्ठिदी समयूणा, उक्क० उक्कस्सट्ठिदी । पंचणोक०

प्रमाण है यह स्पष्ट ही है । मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होकर अभाव न हो जाय ऐसा करते हुए उनका सत्त्व बनाये रखना चाहिए ।

§ ३३. देवगतिमें देवोंमें मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके विषयमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है । बारह कषाय, भय और जुगुप्साका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है । पाँच नोकषायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है ।

विशेषार्थ—देवोंमें स्वामित्वको देखते हुए मिथ्यात्व, बारह कषाय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, भय और जुगुप्साकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर बन जाता है, इसलिए यह काल उक्त प्रमाण कहा है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी-चतुष्क और पाँच नोकषायोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल भी इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए । मात्र इनके अजघन्य प्रदेशसत्कर्मके जघन्य कालमें अन्तर है, इसलिए वह अलगसे कहा है । उनमेंसे प्रारम्भकी छह प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय तो मनुष्योंके समान यहाँ भी घटित हो जाता है । मात्र पाँच नोकषायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति देवोंमें उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्तबाद सम्भव है, इसलिए यहाँ इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

§ ३४. भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण है

जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदीओ ।

§ ३५. अणुद्दिसादि जाव अवराइदो त्ति मिच्छत्त-सम्मामि०-इत्थि-णवुंसय-वेदाणं जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० जहण्णट्ठिदी, उक्क० उक्कस्सट्ठिदी । सम्मत्त० जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । एवमणंताणु०चउक्क०-हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं । णवरि अज० जह० अंतोमु० । बारसक०-पुरिस-भय-दुगुंछाणं जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० जहण्णट्ठिदी समऊणा, उक्क० सगट्ठिदी ।

और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। पाँच नोकषायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—यहाँ बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण कहा है। शेष काल सुगम है, क्योंकि उसका सामान्य देवोंमें स्पष्टीकरण आये हैं। उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए।

§ ३५. अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्क, हास्य, रति, अरति और शोककी अपेक्षा काल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—यहाँ मिथ्यात्व आदिकी जघन्य प्रदेशविभक्ति जघन्य आयुवाले जीवोंके भवके प्रथम समयमें सम्भव नहीं है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा है। कृतकृत्यवेदकके कालमें एक समय शेष रहने पर ऐसा जीव मरकर यहाँ उत्पन्न हो सकता है, इसलिए सम्यक्त्वकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कहा है। अनन्तानुबन्धीचतुष्क आदि आठ प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भवके अन्तर्मुहूर्त बाद प्राप्त होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। बारह कषाय आदिकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण कहा है। इन सब प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है।

§ ३६. सव्वट्ठसिद्धिम्मि मिच्छ०-सम्मामि०-बारसक०-इत्थि-पुरिस-णवुंसय-वेद-भय-दुगुंछाणं जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० तेत्तीसं सागरोवमाणि समऊणाणि, उक्क० तेत्तीसं सागरो० । सम्म० जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । अणंताणु०चउक्क०-हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

❀ अंतरं ।

§ ३७. पइज्जासुत्तमेदं सुगमं ।

❀ **मिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेससंतकम्मियंतरं जहण्णुक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा ।**

---

§ ३६. सर्वार्थसिद्धिमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम तेतीस सागर है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। अनन्तानुबन्धीचतुष्क, हास्य, रति, अरति और शोककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इस प्रकार जान कर अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ मिथ्यात्व आदिकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें होनेसे इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम तेतीस सागर कहा है। कृतकृत्यवेदकका एक समय काल यहाँ उपलब्ध हो सकता है, इसलिए सम्यक्त्वकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कहा है। तथा अनन्तानुबन्धीचतुष्क आदि प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्ति यहाँ अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्भव है, इसलिए उसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। सब प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल पूरा तेतीस सागर है यह स्पष्ट ही है। यहाँ तक जो काल कहा है उसे देखकर वह अनाहारक मार्गणातक घटित कर लेना चाहिए, इसलिए उसे इसके समान ले जानेकी सूचना की है।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

❀ अन्तर ।

§ ३७. यह प्रतिज्ञा सूत्र सुगम है।

❀ **मिथ्यात्वके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है।**

§ ३८. गुणिदकम्मंसियस्स अगुणिदकम्मंसियभावमुवणमिय जहण्णेण उक्कस्सेण वि अणंतेण कालेण विणा पुणो गुणिदभावेण परिणमणसत्तीए अभावादो। जहण्णेण असंखेज्जा लोगा त्ति अंतरं किण्ण परूविदं ? ण, तस्सुवदेसस्स अपवाइज्जमाणत्तजाणावणट्ठं तदपरूवणादो।

❀ एवं सेसाणं कम्माणं णेदव्वं।

§ ३९. एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे। तं जहा–अट्ठकसाय-अट्ठणोकसायाणं मिच्छत्तभंगो। अणंताणु०चउक्क० उक्क० पदे० मिच्छत्तभंगो।

❀ णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पुरिसवेद-चदुसंजलणाणं च उक्कस्सपदेसविहत्तिअंतरं णत्थि।

§ ४०. कुदो ? खवगसेढीए समुप्पण्णत्तादो।

एवमुक्कस्सपदेसविहत्तिअंतरं समत्तं।

---

§ ३८. क्योंकि जो गुणितकर्मांशिक जीव अगुणितकर्मांशिकभावको प्राप्त होता है उसके जघन्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकार अनन्त कालके बिना पुनः गुणितकर्मांशिकरूपसे परिणमन करनेकी शक्ति नहीं पाई जाती।

शंका—गुणितकर्मांशिक जीवका जघन्य अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वह उपदेश अपवाइज्जमाण है इस बातका ज्ञान करानेके लिए वह नहीं कहा।

विशेषार्थ—पहले काल प्ररूपणाके समय चूर्णिसूत्रमें अन्य उपदेशके अनुसार मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मका जघन्य काल असंख्यात लोकप्रमाण कह आये हैं, इसलिए यहाँ यह शंका की गई है कि उसी उपदेशके अनुसार मिथ्यात्वके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मका जघन्य काल असंख्यात लोकप्रमाण भी कहना चाहिए था। वीरसेन स्वामीने इस शंकाका जो समाधान किया है उसका भाव यह है कि वह उपदेश अप्रवर्तमान है यह दिखलाना आवश्यक था, इसलिए चूर्णिसूत्रकारने यहाँ उसका निर्देश नहीं किया है।

❀ **इसी प्रकार शेष कर्मोंका अन्तरकाल जानना चाहिए।**

§ ३९. अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—आठ कषाय और आठ नोकषायोंका भङ्ग मिथ्यात्व के समान है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ पर अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी आठ कषाय और आठ नोकषायोंके साथ परिगणना न करके अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका भङ्ग मिथ्यात्वके समान हैं ऐसा कहा है सो उसका कारण यह है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालमें मिथ्यात्वसे कुछ अन्तर है यह दिखलाना आवश्यक था, इसलिए वीरसेन स्वामीने उसका अलगसे निर्देश किया है।

❀ **इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, पुरुषवेद और चार संज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है।**

§ ४०. क्योंकि इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति क्षपकश्रेणिमें उत्पन्न होती है।

इस प्रकार उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल समाप्त हुआ।

❀ अंतरं जहण्णयं जाणिदूण णेदव्वं ।

§ ४१. एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, जहण्णपदेसविहत्तियाणं सव्वेसिं पि अंतराभावादो ।

एवमंतरं समत्तं ।

४२. संपहि चुण्णिसुत्तेण देसामासिएण सूइदमत्थमुच्चारणाइरिएण परूविदं वत्तइस्सामो । अपुणरुत्तत्थो चेव किण्ण वुच्चदे ? ण, कत्थ वि चुण्णिसुत्तेण उच्चारणाए भेदो अत्थि त्ति तब्भेदपदुप्पायणदुवारेण पउणरुत्तियाभावादो ।

§ ४३. अंतरं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सयं च । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-अट्ठक०-अट्ठणोक० उक्क० पदेस-विहत्तिअंतरं जहण्णुक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । अणुक्क० जहण्णुक्क० एगस० । सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० पदेसविह० णत्थि अंतरं । अणुक्क० पदे० जह० एगस०, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं । अणंताणु०चउक्क० उक्क० पदे० जहण्णुक्क० अणंत०मसंखे०-पो०परियट्टा । अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० वेछावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि । पुरिसवेद-चदुसंज० उक्क० पदे० णत्थि अंतरं । अणुक्क० पदे० जहण्णुक्क० एगस० ।

❀ जघन्य अन्तरकाल भी जानकर ले जाना चाहिए ।

§ ४१. इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि सभी जघन्य प्रदेशविभक्तियोंका अन्तरकाल नहीं उपलब्ध होता ।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

§ ४२. अब चूर्णिसूत्रके द्वारा देशामर्षकरूपसे सूचित हुए जिस अर्थका उच्चारणाचार्यने कथन किया है उसे बतलाते हैं ।

शंका—अपुनरुक्त अर्थको ही क्यों नहीं कहते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि कहीं पर चूर्णिसूत्रसे उच्चारणामें भेद है, इसलिए उस भेदके कथन द्वारा पुनरुक्त दोष नहीं आता । अर्थात् उसके पुनः कथन करने पर भी वह अपुनरुक्तके समान हो जाता है ।

§ ४३. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, आठ कषाय और आठ नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागरप्रमाण है । पुरुषवेद और चार संज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक

§ ४४. आदेसेण णेरइएसु मिच्छ०-बारसक०-छण्णोक० उक्क० पदे० णत्थि अंतरं। अणुक्क० पदे० जहण्णुक्क० एगस०। सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० उक्क० पदे० णत्थि अंतरं। अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि। इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदाणमुक्कस्साणुक्कस्सपदे० णत्थि अंतरं। एवं सत्तमाए पुढवीए।

समय है।

विशेषार्थ—गुणितकर्मांशविधि एक बार समाप्त होकर पुनः उसके प्रारम्भ होनेमें अनन्त काल लगता है, इसलिए यहाँ मिथ्यात्व आदि सत्रह प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तरकाल इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। तथा मिथ्यात्व आदि सत्रह प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति एक समयके लिए होती है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा है। अनन्तानुबन्धीचतुष्क, चार संज्वलन और पुरुषवेदकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल एक समय कहनेका यही कारण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये उद्वेलना प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनका कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण काल तक सत्त्व न पाया जाय यह सम्भव है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण कहा है। अनन्तानुबन्धीचतुष्क ये विसंयोजना प्रकृतियाँ हैं। इनका सत्त्व अधिकसे अधिक कुछ कम दो छयासठ सागर काल तक नहीं पाया जाता, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्त्व दर्शनमोहकी क्षपणाके समय तथा पुरुषवेद और चार संज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशसत्त्व चारित्रमोहकी क्षपणाके समय होता है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल न प्राप्त होनेसे उसका निषेध किया है।

§ ४४. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और छह नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—नरकमें गुणितकर्मांश जीवके भवमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर मिथ्यात्व आदि उन्नीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है। यह वहाँ एक पर्यायमें दो बार सम्भव नहीं है, इसलिए यहाँ उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है। सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालके निषेधका यही कारण है। तथा सम्यक्त्व और तीनों वेदोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है। अब रहा अनुत्कृष्टका विचार सो मिथ्यात्व आदि उन्नीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति यतः मध्यमें होती है अतः इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। सम्यक्त्वद्विक उद्वेलना प्रकृतियाँ हैं और अनन्तानुबन्धीचतुष्क विसंयोजना प्रकृतियाँ हैं। यहाँ इनका

§ ४५. पढमाए जाव छट्टि त्ति मिच्छ०-बारसक०-णवणोक० उक्कस्साणुक्कस्स-पदे० णत्थि अंतरं। सम्म०-सम्मामि० उक्क० पदे० णत्थि अंतरं। अणुक्क० पदे० जह० एगस०, उक्क० सगसगट्ठिदीओ देसूणाओ। अणंताणु०चउक्क० उक्क० पदे० णत्थि अंतरं। अणुक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा।

§ ४६. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छ०-बारसक०-अट्ठणोक० उक्कस्साणुक्कस्सपदे० णत्थि अंतरं। सम्म०-सम्मामि० ओघं। अणंताणु०चउक्क० उक्क० णत्थि अंतरं। अणुक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि। इत्थिवेद०

सत्त्व कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक कुछ कम तेतीस सागर तक न हो यह सम्भव है, अतः यहाँ इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। मात्र सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति मध्यमें होती है, इसलिए भी इसकी अनुत्कृष्ट प्रदेविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त हो जाता है और अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी विसंयोजना एक समयके लिए नहीं होती, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिकी अपेक्षासे ही प्राप्त करना चाहिए। तीनों वेदोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें होती है, इसलिए यहाँ इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिके अन्तरकालका भी निषेध किया है। यह सब अन्तर प्ररूपणा सातवें नरकमें अविकल बन जाती है, इसलिए वहाँ सामान्य नारकियोंके समान जाननेकी सूचना की है।

§ ४५. प्रथमसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—यहाँ मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल न प्राप्त होनेसे उसका निषेध किया है। मात्र विसंयोजनाकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण बन जाता है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकालका अलगसे विधान किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म एकबार ही प्राप्त होता है, इसलिए इसके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा यह आयुमें अन्तर्मुहूर्त जाने पर प्राप्त होता है और ये उद्वेलना प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और उद्वेलना प्रकृतियाँ होनेसे वहाँ इनका कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण काल तक सत्त्व न रहे यह सम्भव है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है।

§ ४६. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और आठ नोकषायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग ओघके समान है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट

उक्क० णत्थि अंतरं। अणुक्क० जहण्णुक्क० एगस०। एवं पंचिंदियतिरिक्खतियस्स। णवरि सम्म०-सम्मामि० उक्क० णत्थि अंतरं। अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० अट्ठावीसं पयडीणमुक्कस्साणुक्क० णत्थि अंतरं।

§ ४७. मणुसगदीए मणुस्सेसु मिच्छ०-अट्ठकसाय-णवुंस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछाणं उक्कस्साणुक्कस्स० णत्थि अंतरं। सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०-चउक्क० पंचिंदियतिरिक्खभंगो। चदुसंजल०-पुरिस०-इत्थिवेद० उक्क० णत्थि अंतरं। अणुक्क० जहण्णुक्क० एगस०। एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीणं। मणुसअपज्ज० पंचिंदिय-

---

प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इसीप्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है। ओघमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तरकालका जो भङ्ग कहा है वह यहाँ अविकल बन जाता है, इसलिए उसे ओघके समान जाननेकी सूचना की है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल सम्भव नहीं है यह गुणितकर्मांशविधिके देखनेसे स्पष्ट हो जाता है। पर ये विसंयोजना प्रकृतियाँ हैं, इसलिए यहाँ इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य कहा है। यहाँ स्त्रीवेदका उत्कृष्ट प्रदेशसत्त्व भोगभूमिमें पल्यका असंख्यातवाँ भागप्रमाण कालजाने पर होता है, इसलिए इसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा है। इसकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है यह स्पष्टही है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें यह अन्तरप्ररूपणा घटित हो जाती है, इसलिए उनमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र इन तिर्यञ्चोंकी कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्यप्रमाण है, इसलिए इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण प्राप्त होने यहाँ इनकी अपेक्षा अन्तरकालका अलगसे निर्देश किया है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें प्राप्त होती है, इसलिए यहाँ उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया है।

§ ४७. मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें मिथ्यात्व, आठ कषाय, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। चार संज्वलन, पुरुषवेद और स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियों-

तिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

§ ४८. देवगदीए देवेसु मिच्छ०-बारसक०-णवणोक० उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं । सम्म०-सम्मामि० उक्क० णत्थि अंतरं । अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि । अणंताणु०चउक्क० उक्क० णत्थि अंतरं । अणुक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० एक्कत्तीसं साग० देसूणाणि । एवं भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति । णवरि सगट्ठिदीओ भाणिदव्वाओ । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अट्ठावीसं पयडीणमुक्कस्साणुक्कस्स० णत्थि अंतरं । एवं णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

में जानना चाहिए । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है ।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है । सम्यक्त्व आदि छह प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि एक तो इनकी भी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य हैं । दूसरे इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य ही प्राप्त होता है, इसलिए पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान यहाँ भी अन्तरकाल बन जाता है । चार संज्वलन आदिकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति क्षपकश्रेणिमें एक समयके लिए और चूर्णिसूत्रके अनुसार स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भोगभूमिमें पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल जाने पर प्राप्त होती है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय प्राप्त होनेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है । इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तर काल सम्भव नहीं है यह स्पष्ट ही है । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें अन्तरकालप्ररूपणा सामान्य मनुष्योंके समान बन जाती है, इसलिए इनमें उनके समान जाननेकी सूचना की है । तथा स्वामित्व और कायस्थिति आदि की अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंसे मनुष्य अपर्याप्तकोंमें कोई अन्तर नहीं है, इसलिए यहाँ मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान जाननेकी सूचना की है ।

§ ४८. देवगतिमें देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि कुछ कम इकतीस सागरके स्थानमें कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिए । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—देवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है यह तो स्पष्ट ही है । अब रहा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका विचार सो देवोंमें मिथ्यात्व आदि बाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये उद्वेलना

§ ४९. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ०-एक्कारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्णपदे० णत्थि अंतरं। सम्म०-सम्मामि०-जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एगस०, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टा। अणंताणु०-चउक्क० जह० णत्थि अंतरं। अजह० जह० अंतोमु०, उक्क० वेछावट्ठिसागरो० देसूणाणि। लोभसंज० ज० णत्थि अंतरं। अज० जहण्णुक्क० एगसमओ।

§ ५०. आदेसेण णेरइएसु मिच्छ०-तिण्णिवेद०-हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं जह० णत्थि अंतरं। अज० जहण्णुक्क० एगस०। बारसक०-भय-दुगुंछा० जहण्णा-

प्रकृतियाँ हैं। इनका कमसे कम एक समय तक और अधिक से अधिक कुछ कम इकतीस सागर तक सत्त्व नहीं पाया जाता। तथा अनन्तानुबन्धीचतुष्क विसंयोजना प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनका कमसे कम अन्तर्मुहूर्त तक और अधिकसे अधिक कुछ कम इकतीस सागर काल तक सत्त्व नहीं पाया जाता, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। भवनवासियोंसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें यह अन्तर प्ररूपणा बन जाती है, इसलिए उनमें सामान्य देवोंके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र इनकी भवस्थिति अलग अलग है, इसलिए इनमें कुछ कम इकतीस सागरके स्थानमें कुछ कम अपनी अपनी भवस्थिति ग्रहण करनेकी सूचना की है। अनुदिशसे लेकर आगेके सब देवोंमें भवके प्रथम समयमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है। यह जो अन्तरप्ररूपणा कही है इसे ध्यानमें रखकर आगेकी मार्गणाओंमें वह घटित की जा सकती है, इसलिए उनमें इसी प्रकार ले जानेकी सूचना की है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तरकाल समाप्त हुआ।

§ ४९. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागरप्रमाण है। लोभसंज्वलनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है।

विशेषार्थ—ओघसे मिथ्यात्व आदि अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति अपनी अपनी क्षपणाके समय योग्य स्थानमें होती है, इसलिए इनकी जघन्य और अजघन्य प्रदेश-विभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है। मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व उद्वेलना प्रकृतियाँ हैं और अनन्तानुबन्धीचतुष्क विसंयोजना प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल बन जानेसे उसका अलगसे उल्लेख किया है। तथा लोभ-संज्वलनकी जघन्य प्रदेशविभक्ति एक समय तक होनेके बाद भी अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है, इसलिए इसकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है।

§ ५०. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, तीन वेद, हास्य, रति, अरति और शोककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट

जहण्ण० णत्थि अंतरं । सम्म०-सम्मामि० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । अणंताणु०चउक्क० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० अंतोमु०, उक्क तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । एवं सत्तमाए पुढवीए ।

§ ५१. पढमाए जाव छट्टि त्ति मिच्छ०-बारसक०-इत्थि-णवुंस०-भय-दुगुंछ० जहण्णाजहण्ण० णत्थि अंतरं । सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० जह०. णत्थि अंतरं । अज० ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० सग-सगट्ठिदीओ[1] देसूणाओ । पंच-णोक० जह० णत्थि अंतरं । अज० जहण्णुक्क० एगस० ।

अन्तरकाल एक समय है । बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य प्रदेश-विभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—नरक आदि चारों गतियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षपित कर्मांशिक जीवके होनेके कारण प्रत्येकमें दो बार सम्भव नहीं है, इसलिए सर्वत्र इसके अन्तर-कालका निषेध किया है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तर कालका विचार करने पर नारकियोंमें मिथ्यात्व आदि आठ प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति वहां उत्पन्न होनेके बाद अन्तर्मुहूर्त काल जाने पर सम्भव है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व ये दो उद्वेलना प्रकृतियाँ हैं और अनन्तानुबन्धीचतुष्क विसंयोजना प्रकृतियाँ हैं. इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल बन जानेसे उसका अलगसे निर्देश किया है । इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके दोनों प्रकारके अन्तरकालको आगे भी इसी आधारसे घटित कर लेना चाहिए । मात्र सर्वत्र जघन्य अन्तरकाल तो एक समान है । उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण प्राप्त होता है । केवल अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें वह कुछ कम तीन पल्य ही कहना चाहिए । यहाँ बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका भी निषेध किया है । सातवीं पृथिवीमें यह प्ररूपणा अविकल बन जाती है, इसलिए उनमें सामान्य नारकियोंके समान जाननेकी सूचना की है ।

§ ५१ प्रथमसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है । पाँच नोकषायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है ।

विशेषार्थ—प्रथमादि छह पृथिवियोंमें मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी नरकसे

---

1. आ०प्रतौ 'उक्क० सगट्ठिदीओ' इति पाठः ।

§ ५२. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छ०-बारसक०--इत्थि--णवुंस०--भय-दुगुंछाणं जहण्णाजहण्ण० णत्थि अंतरं। सम्म०-सम्मामि० ओघं। अणंताणु०चउक्क० जह० णत्थि अंतरं। अज० ज० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसूणाणि। पंचणोक० जह० णत्थि अंतरं। अज० जहण्णुक्क० एगस०। एवं पंचिंदियतिरिक्ख-तियस्स। णवरि सम्म०-सम्मामि० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-सोलसक०-भय-दुगुंछा० जहण्णाजहण्ण० णत्थि अंतरं। सत्तणोक० जह० णत्थि अंतरं। अज० जहण्णुक्क० एगस०।

निकलनेके अन्तिम समयमें और शेष की नरकमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तर कालका निषेध किया है। तथा शेष पाँच नोकषायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी सामान्य नारकियों के समान है, इसलिए यहाँ इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय सम्भव होनेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है।

§ ५२. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग ओघके समान है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। पाँच नोकषायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। सात नोकषायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है।

विशेषार्थ— तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य प्रदेशसत्कर्म तीन पल्यकी आयुके अन्तिम समयमें सम्भव है। बारह कषाय, भय और जुगुप्साका जघन्य प्रदेशसत्कर्म तिर्यञ्च पर्याय ग्रहण करनेके प्रथम समयमें सम्भव है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग ओघके समान यहाँ भी घटित हो जाता है, इसलिए इनका भङ्ग ओघके समान जाननेकी सूचना की है। अनन्तानुबन्धी-चतुष्क विसंयोजना प्रकृतियाँ हैं। इनका सत्त्व कमसे कम अन्तर्मुहूर्त कालतक और अधिकसे अधिक कुछ कम तीन पल्य काल तक न रहे यह सम्भव है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेश-विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य कहा है। पाँच नोकषायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त बाद प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्धके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकमें यह अन्तरकाल इसी प्रकार बन जाता

§ ५३. मणुस-मणुसपज्जत्तएसु[1] मिच्छ०-एक्कारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्ण० णत्थि अंतरं। सम्म०-सम्मामि० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि। अणंताणु०चउक्क० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसूणाणि। लोभसंज० जह० णत्थि अंतरं। अज० जहण्णुक्क० एगस०। एवं मणुस्सिणीणं। णवरि पुरिसवेद० लोभसंजलणभंगो। मणुसअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो।

है, उसे सामान्य तिर्यञ्चोंके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके उत्कृष्ट अन्तरकालमें कुछ विशेषता है, इसलिए इनके अन्तरकालका निर्देश अलगसे किया है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्ति उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होनेके बाद यहाँ पुनः इनका सत्त्व सम्भव नहीं है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा शेष सात नोकषायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त बाद प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका बन्ध होनेके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है।

§ ५३. मनुष्य और मनुष्य पर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। लोभ संज्वलनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इसी प्रकार मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें पुरुषवेदका भङ्ग लोभ-संज्वलनके समान है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्य आदि तीनों प्रकारके मनुष्योंमें मिथ्यात्व, ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति अपनी अपनी क्षपणाके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया है। मात्र मनुष्यिनियोंमें पुरुषवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्ति अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए यहाँ इसकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय सम्भव होनेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य उद्वेलनाकी अपेक्षा बन जाता है, इसलिए वह उक्तप्रमाण कहा है। तथा अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य विसंयोजनाकी अपेक्षा बन जाता है, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा संज्वलन लोभकी जघन्य प्रदेशविभक्ति यहाँ क्षपणाके अन्तर्मुहूर्त पूर्व होती है, इसलिए इसकी अजघन्य

---

१. आ०प्रतौ 'मणुसअपज्जत्तएसु' इति पाठः।

§ ५४. देवगदीए देवेसु मिच्छ०-बारसक०-इत्थि०-णवुंस०-भय-दुगुंछा० जहण्णाजहण्ण० णत्थि अंतरं। सम्म०-सम्मामि० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एगस०, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि। अणंताणु०चउक्क० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० अंतोमु०, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि। पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग० जह० णत्थि अंतरं। अज० जहण्णुक्क० एगस०।

§ ५५. भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति मिच्छ०-बारसक०-इत्थि०-णवुंस०-भय-दुगुंछा० जहण्णाजहण्ण० णत्थि अंतरं। सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एगस० अंतोमु०, उक्क० सग-सगट्ठिदीओ देसूणाओ।

प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। मनुष्य अपर्याप्तकोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है यह स्पष्ट ही है।

§ ५४. देवगतिमें देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तर नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है।

विशेषार्थ—देवोंमें मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भवके अन्तिम समयमें तथा बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भवग्रहणके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होकर पुनः सत्त्व तथा अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना होकर पुनः सत्त्व अन्तिम ग्रैवेयक तक ही सम्भव है। आगे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना नहीं होती और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना तो होती है पर उन जीवोंका नीचे गिरना सम्भव नहीं होनेसे पुनः सत्त्व नहीं होता, इसलिए इन छह प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर कहा है। इनमेंसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है यह स्पष्ट ही है। यहाँ पुरुषवेद आदिकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भवके प्रारम्भमें अन्तर्मुहूर्त काल जाने पर प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्धके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय सम्भव होनेसे वह उक्त काल प्रमाण कहा है।

§ ५५. भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त है तथा

पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं जह० णत्थि अंतरं। अज० जहण्णुक० एगस०।

§ ५६. अणुद्दिसादि जाव सव्वट्टसिद्धि त्ति अट्ठावीसं पयडीणं जहण्णाजहण्ण० णत्थि अंतरं। णवरि हस्स-रदि-अरदि-सोगाणमाणदभंगो। एवं जाव अणाहारए त्ति णीदे अंतरं समत्तं होदि।

❀ णाणाजीवेहि भंगविचओ दुविहो—जहण्णुक्कस्सभेदेहि। अट्ठपदं काद्रूण सव्वकम्माणं णेदव्वो।

§ ५७. एदस्स सुत्तस्स देसामासियस्स उच्चारणाइरियवक्खाणं परूवेमो। णाणाजीवेहि भंगविचओ दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्सए पयदं। तत्थ अट्ठपदं—अट्ठावीसं पयडीणं जे उक्कस्सपदेसस्स विहत्तिया ते अणुक्कस्सपदेसस्स अविहत्तिया। जे अणुक्कस्सपदेसस्स विहत्तिया ते उक्कस्सपदेसस्स अविहत्तिया। विहत्तिएहि पयदं, अविहत्तिएहि अव्ववहारो। एदेण

उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है।

विशेषार्थ—सामान्य देवोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालको जिसप्रकार घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहां पर भी घटित कर लेना चाहिए।

§ ५६. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि हास्य, रति, अरति और शोक प्रकृतिका भङ्ग आनत कल्पके समान है। इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जानेपर अन्तरकाल समाप्त होता है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व आदि कुछ प्रकृतियोंकी भवके अन्तिम समयमें और कुछकी भवके प्रथम समयमें जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल सम्भव नहीं होनेसे उसका निषेध किया है। मात्र हास्य आदि चार प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति पर्यायग्रहणके अन्तर्मुहूर्त बाद होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय प्राप्त होनेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ।

❀ नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे भङ्गविचय दो प्रकारका है। सो इस विषयमें अर्थपद करके सब कर्मोंका ले जाना चाहिए।

§ ५७. यह सूत्र देशामर्षक है। इसके उच्चारणाचार्य कृत व्याख्यानका कथन करते हैं—नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसमें यह अर्थपद है—जो अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव हैं वे उनकी अनुत्कृष्ट प्रदेश अविभक्तिवाले हैं। तथा जो अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव हैं वे उत्कृष्ट प्रदेश अविभक्तिवाले हैं। यहां विभक्तिवाले जीवोंका प्रकरण है, क्योंकि अविभक्तिवालोंका व्यवहार नहीं

अट्ठपदेण दुविहो णिद्द सो–ओघेण आदेसेण। तत्थ ओघेण अट्ठावीसं पयडीणं उक्कस्सपदेसस्स सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया १, सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च २, सिया अविहत्तिया विहत्तिया च ३। अणुक्कस्सपदेसस्स सिया सव्वे जीवा विहत्तिया १, सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च २, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च ३। एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुसतिय-सव्वदेवे त्ति। मणुसअपज्ज० अट्ठावीसं पयडीणं उक्कस्सपदेसविहत्तियाणं अविहत्तिएहि सह अट्ठ भंगा। अणुक्कस्सपदेसविहत्तियाणं पि अविहत्तिएहि सह अट्ठ भंगा वत्तव्वा। एवं णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

है। इस अर्थपदके अनुसार निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे कदाचित् सब जीव अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेश-अविभक्तिवाले हैं १। कदाचित् अविभक्तिवाले बहुत जीव हैं और विभक्तिवाला एक जीव है २। कदाचित् अविभक्तिवाले बहुत जीव हैं और विभक्तिवाले बहुत जीव हैं। अनुत्कृष्ट प्रदेशोंकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव विभक्तिवाले हैं १। कदाचित् बहुत जीव विभक्तिवाले हैं और एक जीव अविभक्तिवाला है २। कदाचित् बहुत जीव विभक्तिवाले हैं और बहुत जीव अविभक्तिवाले हैं ३। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्यत्रिक और सब देवोंमें जानना चाहिए। मनुष्य अपर्याप्तक जीवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिवाले जीवोंके अविभक्तिवाले जीवोंके साथ आठ भङ्ग होते हैं। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिवाले जीवोंके भी अविभक्तिवाले जीवोंके साथ आठ भङ्ग करने चाहिए। इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—यहां अट्ठाईस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले और अविभक्तिवाले तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीवोंके भङ्ग कहकर फिर चार गतियोंमें वे बतलाये गये हैं। उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति उत्कृष्ट योगसे होती है। वह सदा सम्भव नहीं है, इसलिए कदाचित् एक भी जीव उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाला नहीं होता, कदाचित् एक जीव उत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिवाला होता है और कदाचित् नाना जीव उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले होते हैं, इसलिए उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिकी अपेक्षा तीन भङ्ग होते हैं। भङ्ग मूलमें ही कहे हैं। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिकी अपेक्षा विचार करने पर भी तीन भङ्ग ही प्राप्त होते हैं, क्योंकि कदाचित् सब जीव अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके धारक होते हैं, कदाचित् शेष सब जीव अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके धारक होते हैं और एक जीव अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका धारक नहीं होता और कदाचित् नाना जीव अनुत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिके धारक होते हैं और नाना जीव अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके धारक नहीं होते, इसलिए इस अपेक्षासे भी तीन भङ्ग बन जाते हैं। लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंको छोड़कर गति मार्गणाके अन्य सब भेदोंमें यह ओघ प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र मनुष्य अपर्याप्तक यह सान्तर मार्गणा है, इसलिए इसमें उत्कृष्ट और अनु-त्कृष्ट दोनों प्रदेशविभक्तिवालोंके अपने-अपने अविभक्तिवालोंके साथ एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा आठ-आठ भङ्ग बन जानेसे उनका संकेत अलगसे किया है। भङ्गोंकी यह पद्धति अनाहारक मार्गणातक अपनी-अपनी विशेषताके साथ घटित हो जाती है, इसलिए अनाहारक मार्गणातक उक्त प्ररूपणाके समान जाननेकी सूचना की है।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट भङ्गविचय समाप्त हुआ।

§ ५८. जहण्णए पयदं। तं चेव अट्ठपदं। णवरि जहण्णमजहण्णं ति भाणिदव्वं। अट्ठावीसं पयडीणं जहण्णपदेसविहत्तियाणं तिण्णि भंगा। अजहण्णपदेसविहत्तियाणं पि तिण्णि चेव भंगा। एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुसतिय-सव्वदेवा त्ति। मणुसअपज्ज० जहण्णाजहण्ण० अट्ठ भंगा। एवं णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचओ समत्तो।

§ ५९. संपहि एदेण अहियारेण सूचिदसेसाहियाराणमुच्चारणं भणिस्सामो। भागाभागो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण छव्वीसं पयडीणमुक्क० पदेसविहत्तिया जीवा सव्वजीवाणं केव० ? अणंतभागो। अणुक्क० सव्वजीवाणं केव० ? अणंता भागा। सम्म०-सम्मामि० उक्क० पदेसविहत्ति० सव्वजी० के० ? असंखेज्जदिभागो। अणुक्क० सव्वजी० के० ? असंखे०भागा। एवं तिरिक्खोघं।

---

§ ५८. जघन्यका प्रकरण है वही अर्थपद है। इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टके स्थानमें जघन्य और अजघन्य कहना चाहिए। अट्ठाईस प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंके तीन भङ्ग होते हैं। अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंके भी तीन भङ्ग होते हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्यत्रिक और सब देवोंमें जानना चाहिए मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिकी अपेक्षा आठ आठ भङ्ग होते हैं। इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पहले उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंकी अपेक्षा ओघसे और चारों गतियोंमें जहाँ जितने भङ्ग सम्भव हैं वे घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ पर भी घटित कर लेने चाहिए। मात्र यहाँ उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टके स्थानमें जघन्य और अजघन्य कहना चाहिए।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय समाप्त हुआ।

§ ५९. अब इस अधिकारसे सूचित हुए शेष अधिकारोंकी उच्चारणाका कथन करते हैं। भागाभाग दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं? अनन्तवें भागप्रमाण हैं। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं? अनन्त बहुभागप्रमाण हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं। असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—मोहनीयकी सत्तासे युक्त कुल जीव राशि अनन्तानन्त है। उसमेंसे ओघसे इक्कीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव अधिकसे अधिक असंख्यात हो सकते हैं। चार संज्वलन और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव अधिकसे अधिक संख्यात हो सकते हैं। शेष सब जीव अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले होते हैं, इसलिए यहाँ छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट

§ ६०. आदेसेण णेरइएसु अट्ठावीसं पयडीणं उक्क० सव्वजी० केव० ? असंखे०भागो । अणुक्क० असंखेज्जा भागा । एवं सव्वणिरय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस०-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव अवराइदो त्ति वत्तव्वं । मणुसपज्ज०-मणुस्सिणि-सव्वट्ठसिद्धेसु अट्ठावीसं पयडीणमुक्क० पदे० सव्वजी० केव० ? संखे०-भागो । अणुक्क० संखेज्जा भागा । एवं णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ६१. जहण्णए पयदं । जहण्णए उक्कस्सभंगो । णवरि जहण्णाजहण्णं त्ति भाणिदव्वं । एवं णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

एवं भागाभागो समत्तो ।

§ ६२. परिमाणं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ०-बारसक०-अट्ठणोक० उक्कस्सपदेसविहत्तिया

प्रदेशविभक्तिवाले जीव अनन्तवें भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव अनन्त बहुभागप्रमाण कहे हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाले ही कुल जीव असंख्यात होते हैं । उनमें भी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले असंख्यातवें भागप्रमाण हो सकते हैं । शेष अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले होते हैं, इसलिए इन दोनों प्रकृतियोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले असंख्यातवें भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले असंख्यात बहुभागप्रमाण कहे हैं । सामान्य तिर्यञ्च अनन्तप्रमाण हैं, इसलिए इस मार्गणामें ओघ प्ररूपणा बन जानेसे उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है ।

§ ६०. आदेशसे नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, देव और भवनवासियोंसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें कथन करना चाहिए । मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी और सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यातवें भागप्रमाण हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव बहुभागप्रमाण हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहां जिन मार्गणाओंकी संख्या असंख्यात है उनमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण बतलाये हैं । तथा जिन मार्गणाओंका परिमाण संख्यात है उनमें उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण बतलाये हैं । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

§ ६१. जघन्यका प्रकरण है । जघन्यका भङ्ग उत्कृष्टके समान है । इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टके स्थानमें जघन्य और अजघन्य ऐसा कहना चाहिए । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए ।

इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ ।

§ ६२. परिमाण दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, बारह कषाय और आठ नोकषायोंकी

केत्तिया ? असंखेज्जा । अणुक्क० पदे० केत्ति० ? अणंता । सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० पदेसवि० केत्ति० ? संखेज्जा । अणुक्क० केत्ति० ? असंखेज्जा । चदुसंज०-पुरिस० उक्क० पदे० केत्ति० ? संखेज्जा । अणुक्क० पदे० केत्ति० ? अणंता ।

§ ६३. आदेसेण णिरय० सत्तावीसं पयडीणमुक्क०-अणुक्क० पदे० केत्ति० ? असंखेज्जा । सम्मत्त० उक्क० पदे० के० ? संखेज्जा । अणुक्क० पदे० केत्ति० ? असंखेज्जा । एवं पढमाए । विदियादि जाव सत्तमि त्ति अट्ठावीसं पयडीणमुक्कस्स०-अणुक्कस्स० केत्ति० ? असंखेज्जा ।

§ ६४. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु छव्वीसं पयडीणं उक्क० पदे० केत्ति० ? असंखेज्जा । अणुक्क० केत्ति० ? अणंता । सम्मत्त० उक्क० पदे० केत्ति० ? संखेज्जा । अणुक्क० केत्ति० ? असंखेज्जा । सम्मामि० उक्कस्साणुक्क० केत्ति० ? असंखेज्जा ।

उत्कृष्ट विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । चार संज्वलन और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं ।

विशेषार्थ – ओघसे चार संज्वलन और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति क्षपकश्रेणिमें होती है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति क्षायिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके समय होती है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण भी संख्यात कहा है । शेष कथना सुगम है ।

§ ६३. आदेशसे नारकियोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविक्तवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं ।

विशेषार्थ—यहां सामान्यसे नारकियोंमें और पहली पृथिवीके नारकियोंमें कृतकृत्य-वेदकसम्यग्दृष्टि उत्पन्न होते हैं और इनका अधिकसे अधिक परिमाण संख्यात होता है, इसलिए इनमें सम्यक्त्व प्रकृतिकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है । शेष कथन सुगम है । इसी प्रकार आगे भी अपने अपने परिमाण और दूसरी विशेषताओंको जान कर सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिणाम ले आना चाहिए । उल्लेखनीय विशेषता न होनेसे हम अलग अलग स्पष्टीकरण नहीं कर रहे हैं ।

§ ६४. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं ? अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ?

पंचिंदियतिरिक्ख--पंचिं०तिरिक्खपज्जत्ताणं पढमपुढविभंगो । पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणीणं विदियपुढविभंगो । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० अट्ठावीसं पयडीणमुक्कस्सा-णुक्क० पदे० केत्ति० ? असंखेज्जा। एवं मणुसअपज्ज०-भवण०-वाण०-जोदिसिए त्ति ?

§ ६५. मणुसगदि० मिच्छ०--बारसक०--छण्णोक० उक्कस्साणुक्क० पदे० असंखेज्जा । सम्म०-सम्मामि०-चदुसंज०-तिण्णिवेदाणमुक्क० केत्ति० ? संखेज्जा। अणुक्क० पदे०वि० केत्ति० ? असंखेज्जा । मणुसपज्जत्त०-मणुसिणीसु सव्वट्ठसिद्धि० अट्ठावीसं पयडीणमुक्क०-अणुक्क० पदेस० केत्ति० ? संखेज्जा ।

§ ६६. देवगदीए देवेसु सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति पढमपुढविभंगो। आणदादि जाव अवराइदो त्ति अट्ठावीसं पयडीणं उक्क० पदे०वि० केत्ति० ? संखेज्जा। अणुक्क० केत्ति० ? असंखेज्जा । एवं णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

असंख्यात हैं। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंमें पहली पृथिवीके समान भङ्ग है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंमें कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं, इसलिए इनमें पहली पृथिवीके समान भङ्ग बन जानेसे उनके समान जाननेकी सूचना की है। परन्तु पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते, इसलिए इनमें दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग बन जानेसे उनके समान जाननेकी सूचना की है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

§ ६५. मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और छह नोकषायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, चार संज्वलन और तीन वेदोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट प्रदेश विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यिनी और सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं।

६६. देवगतिमें देवोंमें तथा सौधर्म कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें पहली पृथिवीके समान भङ्ग है। आनत कल्पसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति-वाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—बारहवें कल्प तक तिर्यञ्च भी मरकर उत्पन्न होते हैं, इसलिए वहाँ तकके देवोंमें पहली पृथिवीके समान भङ्ग बन जानेसे उनके समान जानने की सूचना की है। तथा आगेके देवोंमें मनुष्य ही मर कर उत्पन्न होते हैं, इसलिए अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिवाले जीवोंका परिमाण संख्यात प्राप्त होनेसे वहाँ वह उक्तप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

§ ६७. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण छव्वीसं पयडीणं जह० केत्ति० ? संखेज्जा । अज० केत्ति० ? अणंता । सम्म०-सम्मामि० जह० पदे०वि० केत्ति० ? संखेज्जा । अज० के० ? असंखेज्जा । एवं तिरिक्खाणं ।

§ ६८. आदेसेण णेरइएसु अट्ठावीसं पयडीणं जह० के० ? संखेज्जा । अज० केत्ति० ? असंखेज्जा । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव अवराइदो त्ति । मणुसपज्ज०-मणुसिणी-सव्वट्ठसिद्धि० सव्वपदा० के० ? संखेज्जा । एवं णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

---

§ ६७. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश—ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—छब्बीस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षपणाके समय यथायोग्य स्थानमें होती है । यतः इनकी क्षपणा करनेवाले जीव संख्यात होते हैं, अतः इनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है । इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव अनन्त होते हैं यह स्पष्ट ही है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्ति अन्य विशेषताओंके रहते हुए अपनी अपनी उद्वेलनाके अन्तिम समयमें होती है । यतः ये जीव भी संख्यात ही होते हैं, अतः इनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है । इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव असंख्यात होते हैं यह स्पष्ट ही है । सामान्यसे तिर्यञ्च अनन्त होते हैं, इसलिए उनमें यह ओघप्ररूपणा बन जाती है, अतः उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है । मात्र उनमें स्वामित्वका विचार कर परिमाण घटित करना चाहिए ।

§ ६८. आदेशसे नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और भवनवासियोंसे लेकर अपराजित विमान तकके देवों जानना चाहिए । मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी और सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—सामान्य नारकियोंसे लेकर पूर्वोक्त सब मार्गणाओंमें संख्यात जीव ही सब प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति करते हैं, इसलिए सर्वत्र अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है । तथा मनुष्य पर्याप्त आदि तीन मार्गणाओंका परिमाण संख्यात है और शेषका असंख्यात है, इसलिए इनमें अपने अपने परिमाणके अनुसार अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवों का परिमाण कहा है ।

इस प्रकार परिमाण समाप्त हुआ ।

§ ६९. खेत्ताणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण छव्वीसं पयडीणमुक्क० पदे०-विहत्तिया केवडि खेत्ते ? लोग० असंखे०भागे । अणुक्क० केव० ? सव्वलोगे । सम्म०-सम्मामि० उक्क०-अणुक्क० पदे० केव० ? लोग० असंखे०भागे । एवं तिरिक्खाणं ।

§ ७०. आदेसेण णेरइएसु अट्ठावीसं पयडीणमुक्क०-अणुक्क० लोग० असंखे०-भागे । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-सव्वमणुस-सव्वदेवा त्ति । एवं णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ७१. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण सव्वपयडीणं जह०-अज० उक्कस्साणुक्कस्सपदे०भंगो । एवं सव्वमग्गणासु णेदव्वं ।

---

§ ६९. क्षेत्रानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका सर्व लोकप्रमाण क्षेत्र है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। इसी प्रकार तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव करते हैं और उनका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए यहाँ ओघसे उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति उक्त प्रकृतियोंकी सत्तावाले शेष सब जीवोंके सम्भव है और उनका क्षेत्र सर्व लोक है, इसलिए यहां उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका सर्व लोकप्रमाण क्षेत्र कहा है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। सामान्य तिर्यञ्चोंमें यह क्षेत्र घटित हो जानेसे उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है।

§ ७०. आदेशसे नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, सब मनुष्य और सब देवोंमें जानना चाहिए। इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—पूर्वोक्त सामान्य नारकी आदि उक्त मार्गणाओंका क्षेत्र ही लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। आगे अनाहारक मार्गणा तक इसी प्रकार विचार कर क्षेत्र घटित किया जा सकता है, इसलिए उन मार्गणाओंमें उक्त क्षेत्रके समान जाननेकी सूचना की है।

§ ७१. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिवाले जीवोंके समान है। इसी प्रकार सब मार्गणाओंमें ले जाना चहिए।

विशेषार्थ - सर्वत्र सब प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिके स्वामित्वको देखनेसे

§ ७२. पोसणं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च। उक्कस्से पयदं। दुविहो णि०-ओघेण आदेसेण य। ओघेण छब्बीसं पयडीणमुक्क० पदेसविहत्तिएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं? लोगस्स असंखे०भागो। अणुक्क० सव्वलोगो। सम्म०-सम्मामि० उक्क० पदे० केव०? लोगस्स असंखे०भागो। अणुक्क० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस भागा देसूणा सव्वलोगो वा।

§ ७३. आदेसेण णेरइएसु अट्ठावीसं पयडीणमुक्क० लोग० असंखे०भागो। अणुक्क० लोग० असंखे०भागो छचोद्दस भागा देसूणा। एवं सत्तमाए। पढमाए पुढवीए खेत्तभंगो। विदियादि जाव छट्ठि त्ति अट्ठावीसं पयडीणमुक्क० खेत्तं। अणुक्क० लोग० असंखे०भागो एक्क-बे-तिण्णि-चत्तारि-पंचचोद्दस भागा देसूणा।

विदित होता है कि इनकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंके समान बन जाता है, इसलिए उसे उनके समान जाननेकी सूचना की है।

§ ७२. स्पर्शन दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके स्वामित्वको देखनेसे विदित होता है कि उनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक सम्भव नहीं है, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा छब्बीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति एकेन्द्रिय आदि जीवोंके भी सम्भव है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण कहा है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग है, क्योंकि ये जीव पल्यके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होते, इसलिए इनका वर्तमान स्पर्शन उक्त क्षेत्रप्रमाण ही प्राप्त होता है। तथा देवोंके विहारवत्स्वस्थान आदिकी अपेक्षा यह स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और मारणान्तिक व उपपादपदकी अपेक्षा सर्व लोकप्रमाण बन जानेसे उक्त प्रमाण कहा है।

§ ७३. आदेशसे नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए। पहली पृथिवीमें क्षेत्रके समान भङ्ग है। दूसरीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके कुछ कम एक, कुछ कम दो, कुछ कम तीन, कुछ कम चार और कुछ कम पाँच बटे

§ ७४. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु छव्वीसं पयडीणमुक्क० लोग० असंखे०-भागो। अणुक्क० सव्वलोगो। सम्म०-सम्मामि० उक्क० खेत्तं। अणुक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। सव्वपंचिंदियतिरिक्खेसु अट्ठावीसं पयडीणं उक्क० लोगस्स असंखे०भागो। अणुक्क० लोगस्स असंखे०भागो सव्वलोगो वा। एवं सव्वमणुस्साणं।

§ ७५. देवगदीए देवेसु अट्ठावीसं पयडीणमुक्क० खेत्तभंगो। अणुक्क० लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णवचोद्दसभागा देसूणा। एवं सोहम्मीसाणाणं। भवण०-वाण०-जोइसि० अट्ठावीसं पयडीणमुक्क० खेत्तं। अणुक्क० लोग० असंखे०भागो अद्धुट्ठ-अट्ठ-

---

चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—यहां जिस नरकका जो स्पर्शन है उसे ध्यानमें रखकर सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका अतीत स्पर्शन कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

§ ७४. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति-वाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें अट्ठाईस प्रकृतियों-की उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब मनुष्योंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—तिर्यञ्च समस्त लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए इनमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका वर्तमान और अतीत स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण कहा है। मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, इसलिए इनकी उक्त प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण कहा है। सम्यक्त्व-द्विककी अपेक्षा कही गई विशेषता सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अपेक्षा भी बन जाती है, इसलिए उनमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण कहा है। सब मनुष्योंमें भी यही व्यवस्था बन जाती है, इसलिए उनमें सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान जाननेकी सूचना की है। शेष कथन सुगम है।

§ ७५. देवगतिमें देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सौधर्म और ऐशान कल्पमें जानना चाहिए। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति-वाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम साढ़े तीन, कुछ कम

णवचोद्दस० देसूणा। सणक्कुमारादि जाव सहस्सारो त्ति अट्ठावीसं पयडीणं उक्क० खेत्तं। अणुक्क० लोग० असंखे०भागो अट्ठचो० देसूणा। आणदादि जाव अच्चुदो त्ति अट्ठावीसं पयडीणमुक्क० खेत्तं। अणुक्क० लोग० असंखे०भागो छचोद्दस० देसूणा। उवरि खेत्तभंगो। एवं णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति।

§ ७६. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण छव्वीसं पयडीणं जह० लोग० असंखे०भागो। अज० सव्वलोगो। सम्म-सम्मामि० जह० अज० लोग० असंखे०भागो अट्ठ-चोद्द० देसूणा सव्वलोगो वा।

§ ७७. आदेसेण णेरइएसु अट्ठावीसं पयडीणं ज० लोग० असंखे०भागो। अज० लोग० असंखे०भागो छचोद्दस० देसूणा। एवं सत्तमाए। पढमाए पुढवीए खेत्तभंगो। विदियादि जाव छट्ठि त्ति अट्ठावीसं पयडीणं जह० खेत्तं। अज० लोग०

आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आनत कल्पसे लेकर अच्युत कल्पतकके देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आगे क्षेत्रके समान भङ्ग है। इस प्रकार अनाहारक मार्गणातक ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ सर्वत्र अपने अपने वर्तमान आदि स्पर्शनको ध्यानमें रख कर सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन कहा है। शेष कथन सुगम है।

§ ७६. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकार है—ओघ और आदेश। ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्ति एकेन्द्रियादि जीवोंके भी सम्भव है और देवोंके विहारवत्स्वस्थान आदिके समय भी हो सकती है। तथा इनका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है ही, इसलिए इनकी दोनों प्रकारकी प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

§ ७७. आदेशसे नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए। पहली पृथिवीमें क्षेत्रके समान भङ्ग

असंखे०भागो एक्क-बे-तिण्णि-चत्तारि-पंचचोद्दस भागा वा देसूणा ।

§ ७८. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु छव्वीसं पयडीणं जह० खेत्तं । अज० सव्वलोगो । सम्म०-सम्मामि० जह० अज० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-सव्वमणुस्सेसु छव्वीसं पयडीणं जह० लोग० असंखे०भागो । अज० लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा । सम्म०-सम्मामि० जह०-अज० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा ।

§ ७९. देवगदीए देवेसु छव्वीसं पयडीणं जह० लोग० असंखे०भागो । अज० लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णवचोद्दस० देसूणा । सम्म-सम्मामि० जह० अज० लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णवचोद्द० देसूणा ।

§ ८०. भवण०-वाण०-जोइसि० वावीसं पयडीणं जह० लोग० असंखे०-

है । दूसरीसे लेकर छठी तककी पृथिवियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा क्रमसे त्रसनालीके कुछ कम एक, कुछ कम दो, कुछ कम तीन, कुछ कम चार और कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—नारकियोंमें और उनके अवान्तर भेदोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिकी अपेक्षा जो स्पर्शन घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेन चाहिए । आगे भी अपनी अपनी विशेषता जानकर स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए ।

§ ७८. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और सब मनुष्योंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

§ ७९. देवगतिमें छब्बीस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम आठ तथा कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—यहाँ सामान्य देवोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्ति दीर्घ आयुवाले देवोंमें होती है और उनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए उनकी अपेक्षा स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है । शेष कथन सुगम है ।

§ ८०. भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें बाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति-

भागो । अज० लोग० असंखे०भागो अद्धुट्ठ-अट्ठ-णवचो० देसूणा । सम्म-सम्मामि० जह०-अज० लोग० असंखे०भागो अद्धुट्ठ-अट्ठ-णवचोद्दस० देसूणा । णवरि जोदिसि० सम्म०-सम्मामि० जह० लोग० असंखे०भागो अद्धुट्ठा वा अट्ठचोद्द० देसूणा । अणंताणु०४ जह० लोग० असंखे०भागो अद्धुट्ठ-अट्ठचोद्द० देसूणा । अज० लोग० असंखे०भागो अद्धुट्ठ-अट्ठ-णवचो० देसूणा ।

§ ८१. सोहम्मीसाण० देवोघं । णवरि अणंताणु०चउक्क० जह० लोगस्स असंखे०भागो अट्ठचोद्द० देसूणा ।

§ ८२. सणक्कुमारादि जाव सहस्सारो त्ति बावीसं पयडीणं जह० खेत्तं । अज० लोग० असंखे०भागो अट्ठचो० देसूणा । सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क०

वाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रसनालीके कुछ कम साढ़े तीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा त्रसनालीके कुछ कम साढ़े तीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इतनी विशेषता है कि ज्योतिषी देवोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा त्रसनालीके कुछ कम साढ़े तीन और कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा त्रसनालीके कुछ कम साढ़े तीन और कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा त्रसनालीके कुछ कम साढ़े तीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—उक्त देवोंमें एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्ति नहीं होती, इसलिए इनमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण नहीं कहा है । शेष कथन सुगम है ।

§ ८१. सौधर्म और ऐशान कल्पके देवोंमें सामान्य देवोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—सौधर्मद्विकमें विहारवत्स्वस्थान आदिके समय भी अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्ति बन जाती है, इसलिए इनमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण भी कहा है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

§ ८२. सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें बाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्ति-

जह०-अज० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्द० देसूणा। आणदादि जाव अच्चुदो त्ति वावीसं पयडीणं जह० लोग० असंखे०भागो। अज० लोग० असंखे०भागो छचोद्द० देसूणा। सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० जह०-अज० लोग० असंखे०भागो छ-चोद्द० देसूणा। उवरि खेत्तभंगो। एवं णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

❀ सव्वकम्माणं णाणाजीवेहि कालो कायव्वो।

§ ८३. सुगममेदं सुत्तं। संपहि एदेण सुत्तेण सूचिदत्थस्स उच्चारणं वत्तइस्सामो। तं जहा—कालो दुविहो, जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्त-बारसक०-अट्ठणोक० उक्क० पदेसवि० जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अणुक्क० सव्वद्धा। सम्म०-सम्मामि०-चदुसंज०-पुरिसवेद० उक्क० पदे० जह० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। अणुक्क० सव्वद्धा।

वाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग-प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आनतसे लेकर अच्युत कल्प तकके देवोंमें बाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असं-ख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इनसे ऊपरके देवोंमें क्षेत्रके समान भङ्ग है। इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

इस प्रकार स्पर्शन समाप्त हुआ।

❀ सब कर्मोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल करना चाहिए।

§ ८३. यह सूत्र सुगम है। अब इस सूत्रसे सूचित हुए अर्थकी उच्चारणा बतलाते हैं। यथा, काल दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, बारह कषाय और आठ नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, चार संज्वलन और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा है।

विशेषार्थ—सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति एक समय तक हो और द्वितीय समयमें न हो यह सम्भव है, इसलिए सबकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कहा है। तथा मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति नाना जीवोंकी अपेक्षा लगातार असंख्यात समय तक हो सकती है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है और शेष सात प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति नाना जीवोंकी

§ ८४. आदेसेण णेरइएसु सत्तावीसं पयडीणमुक्क० पदे० जह० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अणुक्क० सव्वद्धा। सम्मत्त० ओघं। एवं पढमाए। विदियादि जाव सत्तमि त्ति अट्ठावीसं पयडीणमुक्क० पदे० जह० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अणुक्क० सव्वद्धा।

§ ८५. तिरिक्खगदीए तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ताणं पढमपुढविभंगो। पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीणं विदियपुढविभंगो। एवं पंचिंदिय-तिरिक्खअपज्जत्ताणं।

§ ८६. मणुस्सगदीए मणुस्स० मिच्छत्त-बारसक०-छण्णोक० उक्क० पदे० जह० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अणुक्क० सव्वद्धा। सम्म०-सम्मामि०-चदुसंजल० तिण्हं वेदाणमुक्क० जह० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। अणुक्क० सव्वद्धा। मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु अट्ठावीसं पयडीणमुक्क० पदे० जह० एगस०, उक्क०

अपेक्षा निरन्तर संख्यात समय तक हो सकती है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। नाना जीवोंकी अपेक्षा ऐसा समय नहीं प्राप्त होता जब किसी प्रकृतिकी सत्ता न हो, इसलिए सबकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा कहा है।

§ ८४. आदेशसे नारकियोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं तक प्रत्येक पृथिवीमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा है।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंमें और पहली पृथिवीमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं, इसलिए इनमें सम्यक्त्व प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान बन जाता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

§ ८५. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तक जीवोंमें पहिली पृथिवीके समान भङ्ग है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेषार्थ—प्रारम्भके तीन प्रकारके तिर्यञ्चोंमें कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं, इसलिए इनमें पहली पृथिवीके समान भङ्ग बन जानेसे उसके समान जाननेकी सूचना की है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

§ ८६. मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और छह नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, चार संज्वलन और तीन वेदोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा है। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें अट्ठाईस

संखे० समया। अणुक० सव्वद्धा। एवमाणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति।

§ ८७. मणुसअपज्ज० छब्बीसं पयडीणमुक० पदे० जह० एगस०, उक० आवलि० असंखे०भागो। अणुक० जह० खुद्दाभव० समऊणं, उक० पलिदो० असंखे०भागो। सम्म०-सम्मामि० एवं चेव। णवरि अणुक० जह० एगस०।

§ ८८. देवगदीए देवाणं पढमपुढविभंगो। एवं सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति। भवण०-वाण०-जोइसि० विदियपुढविभंगो। एवं णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा है। इसी प्रकार आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्योंमें जिस प्रकार ओघमें घटित करके बतला आये हैं उस प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल इनमें अपने स्वामित्वके अनुसार संख्यात समय ही प्राप्त होता है, इसलिए इन दोनों प्रकृतियोंकी परिगणना यहाँ सम्यक्त्व आदिके साथ की है। मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी और सर्वार्थसिद्धिके देव तो संख्यात होते ही हैं। आनतादिमें ये ही उत्पन्न होते हैं, इसलिए इनमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल संख्यात समय बननेसे उक्तप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

§ ८७. मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग इसीप्रकार है। इतनी विशेषता है कि इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है।

विशेषार्थ—मनुष्य अपर्याप्त यह सान्तर मार्गणा है। यह सम्भव है कि इस मार्गणामें नाना जीव क्षुल्लक भव तक ही रहें। इसलिए इस कालमेंसे उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका एक समय काल कम देने पर अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण बन जानेसे यहाँ छब्बीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण कहा है। तथा इस मार्गणाका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए यहां सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल उक्त काल प्रमाण कहा है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये उद्वेलना प्रकृतियाँ हैं, इसलिए यहाँ इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय बन जानेसे उक्त काल प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

§ ८८. देवगतिमें देवोंमें पहली पृथिवीके समान भङ्ग है। इसी प्रकार सौधर्मकल्पसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देवोंमें जानना चाहिए। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग है। इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—सौधर्मादि देवोंमें भी प्रथम पृथिवीके नारकियोंके समान कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं, इसलिए इनमें प्रथम पृथिवीके नारकियोंके समान भङ्ग बन जानेसे उनके समान जाननेकी सूचना की है। तथा भवनत्रिकमें कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि जीव मर कर

§ ८९. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण अट्ठावीसं पयडीणं जह० पदे० केव० ? जह० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। अज० सव्वद्धा। एवं सव्वणिरय-सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस्स-सव्वदेवा त्ति। णवरि मणुस्स-अपज्ज० अट्ठावीसं पयडीणं जह० पदे० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। अज० जह० खुद्दाभवग्गहणं समयूणं, सत्तणोकसायाणमंतोमुहुत्तं, सम्म०-सम्मामि० एगस०; सव्वेसिमुक्क० पलिदो० असंखे०भागो। एवं णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

❀ अंतरं। णाणाजीवेहि सव्वकम्माणं जह० एगसमओ, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा।

§ ९०. एदेण सुत्तेण सूचिदजहण्णुक्कस्संतराणमुच्चारणं वत्तइस्सामो। तं जहा—

नहीं उत्पन्न होते, इसलिए इनमें दूसरी पृथिवीके नारकियोंके समान भङ्ग बन जानेसे उनके समान जाननेकी सूचना की है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल समाप्त हुआ।

§ ८९. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा है। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सब मनुष्य और सब देवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भव ग्रहणप्रमाण है, सात नोकषायोंका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका एक समय है और सबका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

विशेषार्थ—अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षपणाके समय होती है। यह सम्भव है कि एक या अधिक जीव एक समय तक ही इनकी जघन्य प्रदेशविभक्ति करें और यह भी सम्भव है कि क्रमसे नाना जीव संख्यात समय तक इनकी जघन्य प्रदेशविभक्ति करते रहें, इसलिए ओघसे इनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है। अपने अपने स्वामित्वको देखते हुए सब नारकी आदि मार्गणाओंमें यह काल घटित हो जाता है, इसलिए उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र मनुष्यअपर्याप्तकोंमें विशेषता है। बात यह है कि वह सान्तर मार्गणा है, इसलिए उसमें सब प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अलग अलग प्राप्त होता है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है। विशेष विचार स्वामित्वको देखकर कर लेना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

इसप्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा काल समाप्त हुआ।

❀ अन्तर। नाना जीवोंकी अपेक्षा सब कर्मोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है।

§ ९०. इस सूत्रसे सूचित हुए जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरको उच्चारणाके अनुसार बतलाते

अंतरं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण अट्ठावीसं पयडीणमुक्क० पदे० जह० एगसमओ, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। अणुक्क० णत्थि अंतरं। एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस्स-सव्वदेवा त्ति। णवरि मणुसअपज्ज० अट्ठावीसं पयडीणमणुक्क० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। एवं णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ६१. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण जहा उक्कस्संतरं परूविदं तहा जहण्णाजहण्णंतरपरूवणा परूवेदव्वा।

§ ६२. सण्णियासो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेसविहत्तिओ

हैं। यथा—अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सब मनुष्य और सब देवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तक जीवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति गुणितकर्मांशिक जीवोंके होती है। यह सम्भव है कि गुणितकर्मांशिकविधिसे आकर एक या नाना जीव एक समयके अन्तरसे अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अलग अलग उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति करें और अनन्त कालके अन्तरसे करें, इसलिए यहाँ ओघसे और गति मार्गणाके सब भेदोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। यहाँ सबकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है यह स्पष्ट ही है। मात्र मनुष्यअपर्याप्त यह सान्तर मार्गणा है, इसलिए इसमें अपने अन्तरकालके अनुसार अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

§ ६१. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे जिस प्रकार उत्कृष्ट पदके आश्रयसे अन्तरकाल कहा है उस प्रकार जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालकी प्ररूपणा करनी चाहिए।

विशेषार्थ—जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षपितकर्मांशिक जीवके होती है, इसलिए सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तर काल उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके समान बन जानेसे उनके समान जाननेकी सूचना की है।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल समाप्त हुआ।

§ ६२. सन्निकर्ष दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाला जीव

बारसकसाय-छण्णोकसायाणं णियमा विहत्तिओ। तं तु उक्कस्सादो अणुक्कस्सं वेट्टाणपदिदं अणंतभागहीणं असंखेज्जभागहीणं वा। इत्थि-णवुंसयवेदाणं णियमा अणुक्कस्सविहत्तिओ असंखेज्जभागहीणो। इत्थिवेददव्वेण संखेज्जगुणहीणेण होदव्वं, णेरइयइत्थिवेदबंधगद्धादो कुरवित्थिवेदबंधगद्धाए लद्धणवुंसयवेदबंधगद्धा संखेज्जभागबहुभागा। एवं संखेज्जगुणत्तादो कुरवेसु इत्थिवेदपूरणकालो एगगुणहाणीए असंखेज्जदिभागो त्ति कट्टु णासंखे०भागहीणत्तं जुत्तं, तत्थ असंखेज्जाणं गुणहाणीणमुवलंभादो। णोवलंभो असिद्धो, 'रदीए उक्कस्सदव्वादो इत्थिवेदुक्कस्सदव्वं संखेज्जगुणं' इदि उवरि भण्णमाणअप्पाबहुअसुत्तेण तत्थ असंखेज्जाणं गुणहाणीणमुवलंभादो। णवुंसयवेददव्वेण वि संखेज्जभागहीणेण होदव्वं, ईसाणदेवेसु णवुंसयवेदेण त्थावरबंधयद्धं सयलं लद्धूण तसबंधगद्धाए पुणो संखेज्जखंडीकदाए लद्धबहुभागत्तादो। कुरवीसाणदेवेसु इत्थि-णवुंसयवेदाणि आवूरिय णेरइएसुप्पज्जिय उक्कस्सीकयमिच्छत्तस्स असंखे०भागहाणी होदि त्ति वोत्तुं जुत्तं, तेत्तीसं सागरोवमेसु गलिदासंखेज्जगुणहाणिदव्वस्स णिरयगइसंचयं मोत्तूण कुरवीसाणदेवेसु संचिददव्वस्स अवट्ठाणविरोहादो। तम्हा

बारह कषाय और छह नोकषायोंकी नियमसे विभक्तिवाला होता है। किन्तु वह इसकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाला भी होता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाला भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाला होता है तो उत्कृष्टकी अपेक्षा उसके अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तभागहीन होती है या असंख्यातभाग हीन होती है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाला होता है जो नियमसे असंख्यातभागहीन प्रदेशविभक्तिवाला होता है।

शंका—स्त्रीवेदका द्रव्य संख्यातगुणा हीन होना चाहिए, क्योंकि नारकियोंमें जो स्त्रीवेदका बन्धक काल है उससे तथा देवकुरु और उत्तरकुरुमें जो स्त्रीवेदका बन्धककाल है उससे प्राप्त हुआ नपुंसकवेदका बन्धक काल संख्यात बहुभाग अधिक देखा जाता है। इसप्रकार संख्यातगुणा होनेसे देवकुरु उत्तरकुरुमें स्त्रीवेदका पूरणकाल एक गुणहानिके असंख्यातवें भागप्रमाण है ऐसा मानकर उसे असंख्यातवें भागहीन मानना उचित नहीं है, क्योंकि वहां असंख्यात गुणहानियाँ उपलब्ध होती है और उनका प्राप्त होना असम्भव भी नहीं है, क्योंकि रतिके उत्कृष्ट द्रव्यसे स्त्रीवेदका उत्कृष्ट द्रव्य संख्यातगुणा है इस प्रकार आगे कहे जानेवाले अल्पबहुत्व सूत्रके अनुसार वहाँ असंख्यात गुणहानियाँ उपलब्ध होती हैं। तथा नपुंसकवेदके द्रव्यको भी संख्यातवें भाग हीन नहीं होना चाहिए, क्योंकि ईशान कल्पके देवोंमें नपुंसकवेदके साथ समस्त स्थावर बन्धक कालको प्राप्त करके पुनः त्रसबन्धक कालके संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग प्राप्त होता है। यदि कहा जाय कि उत्तरकुरु-देवकुरु और ऐशान कल्पके देवोंमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदको पूरकर तथा नारकियोंमें उत्पन्न होकर मिथ्यात्वके द्रव्यको उत्कृष्ट करनेवाले जीवके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यात भागहानि होती है सो ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि तेतीस सागरप्रमाण कालके भीतर असंख्यात गुणहानिप्रमाण द्रव्यके गल जाने पर नरकगतिसम्बन्धी सञ्चयको छोड़कर कुरु और ऐशान कल्पके देवोंमें संचित हुए द्रव्यका अवस्थान माननेमें विरोध आता है, इसलिए असंख्यातभागहीनपना नहीं बनता है?

असंखेज्जभागहीणत्तं ण घडदे त्ति ? ण, कुरवीसाणदेवेसु उक्कस्सीकयइत्थि-णवुंसयवेद-दव्वं णेरइएसुप्पज्जिय उक्कस्ससंकिलेसेणुक्कड्डिय उक्कस्सीकयमिच्छत्तस्स इत्थि-णवुंसयवेद-दव्वाणमसंखे०भागहाणिं पडि विरोहाभावादो। एगगुणहाणीए असंखे०भागमेत्तकालेण तेत्तीससागरोवमेसु ट्ठिददव्वमुक्कड्डिय सयलदव्वस्स असंखे०भागमेत्तं चेव तत्थ धरेदि त्ति कुदो णव्वदे ? एदम्हादो चेव सण्णियासादो। किं च गुणिदकम्मंसिए 'उवरिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदं हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स जहण्णपदं' ति वेयणासुत्तादो च णव्वदे जहा असंखे०भागो चेव गलदि त्ति। चदुसंजलण-पुरिसवेद० णियमा अणुक्क० संखेज्जगुणहीणा। सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणं णियमा अविहत्तिओ, गुणिद-कम्मंसियत्तादो। एवं बारसकसाय-छणोकसायाणं।

समाधान—नहीं, क्योंकि कुरुवासी जीवोंमें और ऐशान कल्पके देवोंमें उत्कृष्ट किये गये स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके द्रव्यको नारकियोंमें उत्पन्न होकर उत्कृष्ट संक्लेश द्वारा उत्कर्षित करके जिसने मिथ्यात्वके द्रव्यको उत्कृष्ट किया है उसके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका द्रव्य असंख्यात भागहीन होता है इसमें कोई विरोध नहीं आता।

शंका—एक गुणहानिके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा तेतीस सागर कालके भीतर स्थित द्रव्यका उत्कर्षण करके समस्त द्रव्यके असंख्यातवें भागप्रमाण द्रव्यको ही वहाँ धारण करता है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सन्निकर्षसे जाना जाता है। दूसरे गुणितकर्मांशिक जीवमें उपरितन स्थितियोंके निषेकका उत्कृष्ट पद होता है और अधस्तन स्थितियोंके निषेकका जघन्य पद होता है ऐसा जो वेदनासूत्रमें कहा है उससे जाना जाता है कि असंख्यातवाँ भाग ही गलता है।

चार संज्वलन और पुरुषवेदकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाला होता है जो अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति संख्यातगुणी हीन होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी नियमसे अविभक्तिवाला होता है, क्योंकि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाला जीव गुणितकर्मांशिक है। इसी प्रकार बारह कषाय और छह नोकषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व, बारह कषाय और छह नोकषयोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी एक समान है, इसलिए मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके अन्य प्रकृतियोंके साथ जिस प्रकारका सन्निकर्ष कहा है उसी प्रकार बारह कषाय और छह नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेविभक्तिवाले जीवके अन्य प्रकृतियोंके साथ सन्निकर्ष बन जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यहां इतना विशेष जानना चाहिए कि बारह कषायोंकी उत्कृष्ट कर्मस्थिति चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है और छह नोकषायोंकी उत्कृष्ट कर्मस्थिति संक्रमसे प्राप्त होती है जो चालीस कोड़ाकोड़ी सागरसे एक आवलि कम है, अतः मिथ्यात्वकी गुणितकर्मांशविधि करते हुए जिस जीवके तीस कोड़ाकोड़ी सागर व्यतीत हो गये हैं उसके आगे इन कर्मोंकी गुणितकर्मांशविधि करानी चाहिए। इस प्रकार करानेसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके समय इन कर्मोंकी भी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति प्राप्त हो जाती है। अन्यथा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके समय इन कर्मोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति रहती है। इसी प्रकार इन कर्मोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके समय मिथ्यात्वकी भी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति घटित कर लेनी चाहिए। यह इन

§ ६३. सम्मामि० उक्क० पदेसविहत्तिओ मिच्छत्त-सम्मात्ताणं णियमा अणुक्क० असंखे०गुणहीणा। अट्ठक०-अट्ठणोक० णियमा अणुक्क० असंखे०भागहीणा। चदु-संज०-पुरिस० णियमा अणुक्क० संखेज्जगुणहीणा। सम्मत्तमेवं चेव। णवरि मिच्छत्तं णत्थि। सम्मामि० णियमा अणुक्क० असंखे०गुणहीणा।

§ ६४. इत्थिवेद० उक्क० विहत्तिओ मिच्छत्त-बारसक०--सत्तणोक० णियमा अणुक्क० असंखे०भागहीणा। चदुसंज०-पुरिस० णियमा अणुक्क० संखेज्ज०गुणहीणा।

उन्नीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिकी अपेक्षा परस्पर सन्निकर्षका विचार हुआ। अब रहे शेष कर्म सो इन कर्मोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके समय तीन वेद और चार संज्वलन कषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति नहीं होती, अतः उस समय इन सात कर्मोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेविभक्ति कही है। जो गुणितकर्मांशिक जीव मिथ्यात्व आदि उन्नीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति कर रहा है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व नहीं होता यह स्पष्ट ही है। शेष कथन परामर्श करके समझ लेना चाहिए।

§ ६३. सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है। आठ कषाय और आठ नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातभाग हीन होती है। चार संज्वलन और पुरुषवेदकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो नियमसे संख्यात-गुणी हीन होती हैं। सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके इसी प्रकार सन्निकर्ष करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके मिथ्यात्वका सत्त्व नहीं होता। तथा इसके सम्यग्मिथ्यात्वकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है।

विशेषार्थ—जो गुणितकर्मांशिक जीव क्षायिक सम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके द्रव्यका सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमण होने पर सम्यग्मिथ्यात्वका और सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके द्रव्यका सम्यक्त्वमें संक्रमण होने पर सम्यक्त्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है। इस प्रकार जिस समय सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है उस समय मिथ्यात्व और सम्यक्त्व दोनोंका सत्त्व रहता है किन्तु वह अपने उत्कृष्टकी अपेक्षा असंख्यातगुणा हीन अनुत्कृष्टरूप ही रहता है, क्योंकि उस समय तक मिथ्यात्वके द्रव्यमेंसे तो असंख्यात बहुभागप्रमाण द्रव्यका सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वमें संक्रमण हो लेता है। तथा सम्यक्त्वमें अभी सम्यग्मिथ्यात्वके असंख्यात बहुभागप्रमाण द्रव्यका संक्रमण नहीं हुआ है, इसलिए सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मके समय मिथ्यात्व और सम्यक्त्वका द्रव्य अपने उत्कृष्टकी अपेक्षा असंख्यातगुणा हीन कहा है। इसी प्रकार सम्यक्त्वके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मके समय सम्यग्मिथ्यात्वका द्रव्य अपने उत्कृष्टकी अपेक्षा असंख्यातगुणा हीन घटित कर लेना चाहिए। इसके मिथ्यात्वका सत्त्व नहीं रहता यह स्पष्ट ही है। शेष कथन सुगम है।

§ ६४. स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति करनेवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और सात नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातभाग हीन होती है।

१. ता० प्रतौ 'असंखे०गुणहीणा' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'असंखेज्जगुणहीणा' इति पाठः।

एवं णवुंसयवेदस्स ।

§ ६५. पुरिसवेद० उक्क० पदेसविहत्तिओ चदुसंज० णियमा अणुक्क० संखे०-गुणहीणा । छण्णोकसाय० णियमा अणुक्क० असंखेज्जगुणहीणा। कोधसंज० उक्क० पदे०विहत्तिओ हेट्ठिल्लाणं णियमा अविहत्तिओ । तिण्णं संज० णियमा अणुक्क० संखे०-गुणहीणा । पुरिस० णियमा अणुक्क० असंखे०गुणहीणा । माणसंज० उक्क० पदेस-विहत्तिओ हेट्ठिल्लाणमविहत्तिओ । माया-लोभसंज० णियमा अणुक्क० संखे०गुणहीणा । कोधसंज० णियमा अणुक्क० असंखे०गुणहीणा । मायासंज० उक्क० पदेसविहत्तिओ लोभसंज० णियमा अणुक्क० संखे०गुणहीणा[1] । माणसंजलण० णियमा अणुक्क० असंखेज्जगुणहीणा । लोभसंजलण० उक्क० पदे०विहत्तिओ मायासंजलण० णियमा अणुक्क० असंखेज्जगुणहीणा ।

चार संज्वलन और पुरुषवेदकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो संख्यातगुणी हीन होती है । इसी प्रकार नपुंसकवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—जो जीव बारह कषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति करके यथाविधि भोगभूमिमें उत्पन्न होता है उसके पल्यका असंख्यातवाँ भागप्रमाण काल जाने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेश-विभक्ति होती है । उस समय मिथ्यात्व आदि बीस प्रकृतियोंकी प्रदेशविभक्ति अपने उत्कृष्टकी अपेक्षा असंख्यातवें भागप्रमाण हीन हो जाती है, क्योंकि उस समय तक इनका इतना द्रव्य अधःस्थितिगलना आदिके द्वारा गल जाता है और जिनका अन्य प्रकृतिरूप संक्रमण सम्भव है उनके द्रव्यका संक्रमण भी हो जाता है । फिर भी यहाँ पर अधःस्थितिगलनाके द्वारा गलनेवाले द्रव्यकी मुख्यता है । नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति ऐशान कल्पमें होती है । उसकी मुख्यतासे भी इसी प्रकार सन्निकर्ष प्राप्त होता है, इसलिए उसे स्त्रीवेदकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान जाननेकी सूचना की है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

§ ६५. पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके चार संज्वलनकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो संख्यातगुणी हीन होती है । छह नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है । क्रोधसंज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति-वाले जीवके पुरुषवेद और संज्वलन प्रकृतियोंके सिवा शेष प्रकृतियोंका नियमसे असत्त्व होता है । तीन संज्वलनोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो संख्यातगुणी हीन होती है । पुरुषवेदकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है । मान संज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके संज्वलन प्रकृतियोंके सिवा पूर्वकी शेष सब प्रकृतियोंका नियमसे असत्त्व होता है । मायासंज्वलन और लोभसंज्वलककी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो संख्यातगुणी हीन होती है । क्रोधसंज्वलनकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है । मायासंज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके लोभ-संज्वलनकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो संख्यातगुणी हीन होती है । मान-संज्वलनकी नियमसे अनुत्कष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है । लोभ-संज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मायासंज्वलनकी नियमसे अनुत्कष्ट प्रदेशविभक्ति

---

१. आ०प्रतौ 'असंखेज्जभागहीणा' इति पाठः । २. आ०प्रतौ 'असंखेज्जगुणहीणा' इति पाठः ।

§ ६६. आदेसेण णेरइएसु मिच्छ० उक्क० पदेसविहत्तिओ सोलसक०-छण्णोक० णियमा विहत्तिओ। तं तु वेट्ठाणपदिदा अणंतभागहीणा असंखे०भागहीणा वा। तिण्हं वेदाणं णियमा अणुक्क० असंखे०भागहीणा। सम्मत्त०-सम्मामिच्छत्ताण-मविहत्तिओ। एवं सोलसक०-छण्णोकसायाणं। सम्म० उक्क० पदेसविहत्तिओ बारसक०-णवणोक० णियमा अणुक्क० असंखेज्जभागहीणा। सम्मामि० उक्क० पदे०विहत्ति० सम्म० णियमा अणुक्क० असंखेज्जगुणहीणा। मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० णियमा अणुक्क० असंखे०भागहीणा। इत्थिवेद० उक्क० पदे०वि० मिच्छ०-सोलसक०-अट्ठणोक० णियमा अणुक्क० असंखे०भागहीणा। एवं णवुंसयवेदस्स। पुरिसवेदस्स एवं चेव। णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहीणा, उक्कड्डणाए विणा देवेसु

होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है।

विशेषार्थ—यहाँ पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके समय छह नोकषाय और चार संज्वलनका, क्रोध संज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके समय पुरुषवेद और मान आदि तीन संज्वलन का, मान संज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके समय शेष तीन संज्वलनोंका, मायासंज्वलनकी उत्कृष्ट-प्रदेशविभक्तिके समय मान संज्वलन और लोभसंज्वलनका तथा लोभसंज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिके समय मायासंज्वलनका भी सत्त्व रहता है, इसलिए जहाँ जिन प्रकृतियोंका सन्निकर्ष सम्भव है वह कहा है। मात्र विवक्षितकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति जिन प्रकृतियोंके अन्तिम स्थिति-काण्डककी अन्तिम फालिका पतन होने पर होती है उन प्रकृतियोंकी प्रदेशविभक्ति असंख्यात-गुणी हीन पाई जाती है और जिन प्रकृतियोंके स्थितिकाण्डकोंका घात होना शेष रहता है उनकी प्रदेशविभक्ति संख्यातगुणी हीन पाई जाती है।

§ ६६. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाला जीव सोलह कषाय और छह नोकषायोंकी नियमसे विभक्तिवाला होता है। किन्तु वह इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति-वाला भी होता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाला भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिवाला होता है तो उसके इनकी दो स्थान पतित अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है—या तो अनन्तभाग हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है या असंख्यातभाग हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है। तीन वेदोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्लातभाग हीन होती है। यह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्त्व से रहित होता है। इसी प्रकार सोलह कषाय और छह नोकषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जाना चाहिये। सम्य-क्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातभाग हीन होती है। सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति-वाले जीवके सम्यक्त्वकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है। मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातभागहीन होती है। स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और आठ नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यात भाग हीन होती है। इसी प्रकार नपुंसकवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। पुरुषवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणी हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है, क्यों कि उत्कर्षणके विना

गलिदासंखेज्जगुणहाणित्तादो। गुणिदकम्मंसियउक्कड्डिदमिच्छत्तदव्वे जहासरूवेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेसु संकंते असंखे०भागहीणं किण्ण जायदे ? ण, सम्मादिट्ठिओकड्डणाए थूलीकयहेट्ठिमगोवुच्छासु असंखे०गुणहाणिमेत्तासु गलिदासु असंखे०गुणहाणिदंसणादो। एवं पढमाए। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सम्म० उक्क० पदे०-विहत्तिगो मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० णियमा अणुक्क० असंखे०भागहीणा। सम्मामि० णियमा उक्क०। एवं सम्मामि०।

§ ९७. तिरिक्ख०--पंचिंदियतिरिक्ख--पंचि०तिरि०पज्जत्त० देवगदीए देव० सोहम्मादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति णेरइयभंगो। पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु विदिय-पुढविभंगो। एवं भवण०--वाण०--जोदिसियाणं। पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तभंगो। णवरि सम्म० उक्क० पदेसविहत्ति० सम्मामि० तं तु वेट्ठाणपदिदं अणंतभागहीणं असंखे०भागहीणं। सेसपदा णियमा अणुक्क० असंखे०-

---

देवोंमें असंख्यात गुणहानियाँ गल जाती हैं।

शंका—गुणितकर्मांशिक जीवके द्वारा मिथ्यात्वके द्रव्यका उत्कर्षण करके और उसे उसी रूपमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रान्त कर देने पर इनका द्रव्य असंख्यातभाग हीन क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सम्यग्दृष्टिके अपकर्षणके द्वारा अधस्तन गोपुच्छाओंके स्थूल हो जानेसे असंख्यात गुणहानियोंके गल जाने पर असंख्यातगुणहानि देखी जाती है।

इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातभाग हीन होती है। इसके सम्यग्मिथ्यात्वकी नियम-से उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंमें और पहली पृथिवीमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं, इसलिए उनमें सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके समय मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका सत्त्व नहीं होनेसे उनका सन्निकर्ष नहीं कहा। परन्तु द्वितीयादि पृथिवियोंमें कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते, इसलिए वहाँ सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिके समय सबका सत्त्व स्वीकार किया है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

§ ९७. तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, देवगतिमें सामान्य देव और सौधर्म कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्च योनिनियोंमें दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग है। इसी प्रकार भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भी होती है और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भी होती है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तभाग

भागहीणा । एवं सम्मामि० । एवं मणुस्सअपज्ज० ।

§ ६८. मणुसतियम्मि ओघं । णवरि मणुस्सिणीसु पुरिसवेद० उक्क० पदेस-विह० इत्थिवेद० णियमा अणुक्क० असंखे०गुणहीणा । अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति मिच्छ० उक्क० पदे०वि० सम्मामिच्छत्त-सोलसक०-छण्णोक० णियमा तं तु विट्ठाणपदिदा अणंतभागहीणा असंखे०भागहीणा वा । सम्मत्त० णियमा अणुक्क० असंखे०भागहीणं । तिण्हं वेदाणं णियमा अणुक्क० असंखे०भागहीणा । एवं सोलसक०-छण्णोक०-सम्मामिच्छत्ताणं । सम्मत्त० उक्क० पदे०विहत्ति० बारसक०-णवणोक० णियमा अणुक्क० असंखे०भागहीणा । इत्थिवेद० उक्क० पदे०वि० मिच्छ०-सम्मामि०-सोलसक०-अट्ठणोक० णियमा अणुक्क० असंखे०भागहीणा । सम्म०

हीन होती है या असंख्यातभाग हीन होती है । शेष प्रकृतियोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातभाग हीन होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें इसी प्रकार अर्थात् पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—जो विशेषता सामान्य नारकियोंमें बतला आये हैं वही यहाँ तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें घटित हो जाती है, इस लिए इनमें सामान्य नारकियोंके समान जाननेकी सूचना की है । दूसरी पृथिवीके समान पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी और भवनत्रिकमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते, इसलिए इनमें दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग बन जानेसे उसके समान जाननेकी सूचना की है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तक यह मार्गणा ऐसी है जिसमें मात्र मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं इसलिए इसमें अन्य प्ररूपणा तो पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंके समान बन जाने से उनके जाननेकी सूचना की है । किन्तु इसके सिवा जो विशेषता है उसका अलगसे निर्देश किया है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है यह स्पष्ट ही है ।

§ ६८. मनुष्यत्रिकमें ओघके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि मनुष्यिनियोंमें पुरुष-वेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभवाले जीवके स्त्रीवेदकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और छह नोकयायोंकी नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भी होती है और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भी होती है । यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तभाग हीन होती है या असंख्यातभागहीन होती है । सम्यक्त्वकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुण हीन होती है । तीन वेदोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यतभागहीन होती है । इसी प्रकार सोलह कषाय, छह नोकषाय और सम्यग्मिथ्यात्वकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातभाग हीन होती है । स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और आठ नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति

णियमा अणुक्क० असंखे०गुणहीणा। एवं णवुंस०। पुरिसवेदस्स देवोघं। एवं णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ६६. जहण्णए पयदं। दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्तस्स जहण्णपदेसविहत्तिओ सम्म०-सम्मामि०-एक्कारसक०-तिण्णिवेद० णियमा अजहण्ण० असंखेज्जगुणब्भहिया। लोभसंज०-छण्णोक० णियमा अजह० असंखेज्जभागब्भहिया। सम्मत्तगुणेण पंचिंदिएसु वेछावट्ठिसागरोवमाणि हिंडंतेण संचिददिवड्ढगुणहाणिमेत्तपंचिंदियसमयपबद्धाणं सगसगजहण्णदव्वादो असंखेज्जगुणत्तं मोत्तूण णासंखेज्जभागब्भहियत्तं, एइंदियउक्कस्सजोगादो वि पंचिंदियजहण्णजोगस्स असंखे०गुणत्तुवलंभादो। एत्थ परिहारो वुच्चदे—जदि वि वेछावट्ठिसागरोवमेसु लोभसंजलणं णिरंतरं बंधंतो वि सगजहण्णदव्वादो विसेसाहियं चेव, अप्पदरकालम्मि झीणदव्वादो

होती है जो असंख्यातभागहीन होती है। सम्यक्त्वकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है। इसीप्रकार नपुंसकवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। पुरुषवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष सामान्य देवोंके समान है। इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

विशेषार्थ—ओघसे जो सन्निकर्ष कहा है वह मनुष्यत्रिकमें अविकल घटित हो जाता है, इसलिए उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र मनुष्यिनियोंमें पुरुषवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्षमें कुछ विशेषता है, इसलिए उसका अलगसे निर्देश किया है। अनुदिश आदिमें सब देव सम्यग्दृष्टि होते हैं, इसलिए उनमें अन्य देवोंसे विशेषता होनेके कारण उनमें सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्षका अलगसे निर्देश किया है। विशेष स्पष्टीकरण स्वामित्वको देखकर कर लेना चाहिए। आगे अनाहारक मार्गणा तक इसी प्रकार अपनी अपनी विशेषताको जानकर सन्निकर्ष घटित कर लेना चाहिए।

इस प्रकार उत्कृष्ट सन्निकर्ष समाप्त हुआ।

§ ६६. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, ग्यारह कषाय और तीन वेदकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है। लोभसंज्वलन और छह नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है।

शंका—सम्यक्त्व गुणके साथ जो पञ्चेन्द्रियोंमें दो छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण करता है उसके सञ्चित हुए डेढ़ गुणहानिप्रमाण पञ्चेन्द्रियसम्बन्धी समयप्रबद्ध अपने अपने जघन्य द्रव्यकी अपेक्षा असंख्यातगुणे होते हैं असंख्यातवें भाग अधिक नहीं, क्योंकि एकेन्द्रिय जीवके उत्कृष्ट योगसे भी पञ्चेन्द्रिय जीवका जघन्य योग असंख्यातगुणा पाया जाता है?

समाधान—यहाँ उक्त शंकाका समाधान करते हैं—दो छयासठ सागर कालके भीतर लोभसंज्वलनका निरन्तर बन्ध करता हुआ भी अपने जघन्य द्रव्यसे वह विशेष अधिक ही होता

भुजगारकालम्मि संचिददव्वस्स असंखे०भागब्भहियत्तादो। केसिं पि सगजहण्ण-दव्वादो संखे०भागब्भहियं संखे०गुणमसंखेज्जगुणं वा किण्ण जायदे ? ण, असंखेज्ज-भागब्भहियं चेव, उक्कस्सजोगेण बेछावट्ठिसागरोवमाणि परिभमिदसम्मादिट्ठिम्मि वि अप्पदरकालादो भुजगारकालस्स णियमेण विसेसाहियस्सेवुवलंभादो। एदं कुदो उव-लब्भदे। 'णियमा असंखे०भागब्भहिया' त्ति उच्चारणाइरियवयणादो। कम्मपदेसाणं भुजगारप्पदरभावो किंणिबंधणो ? ण, सुक्कंधारपक्खचंदमंडलभुजगारप्पदराणं व साहावियत्तादो। जदि अप्पदरकालम्मि झीणमाणदव्वादो भुजगारकालम्मि संचिद-दव्वं विसेसाहियं चेव होदि तो खविदकम्मंसियदव्वादो गुणिदकम्मंसियदव्वेण वि विसेसाहिएणेव होदव्वं ? ण च एवं, वेदणाए चुण्णिसुत्तेण च सह विरोहादो त्ति सच्चं विसेसाहियं चेव, किं तु ण विरोहो, सवयणविरोहं मोत्तूण तंतंतरत्थेण विरोहाणब्भुवगमादो। वेयणा-चुण्णिसुत्ताणमुवएसो

है, क्योंकि अल्पतर कालके भीतर क्षयको प्राप्त होनेवाले द्रव्यसे भुजगार कालके भीतर सञ्चित हुआ द्रव्य असंख्यातवें भाग अधिक होता है।

शंका—किन्हीं जीवोंके अपने जघन्य द्रव्यसे संख्यातवें भाग अधिक, संख्यातगुणा अधिक या असंख्यातगुणा अधिक क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि असंख्यातवें भाग अधिक ही होता है, क्योंकि उत्कृष्ट योगके साथ दो छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीवके भी अल्पतर कालसे भुजगार काल नियमसे अधिक ही उपलब्ध होता है।

शंका—यह किस प्रमाणसे उपलब्ध होता है ?

समाधान—उच्चारणाचार्यके 'नियमसे असंख्यातवें भाग अधिक है' इस वचनसे उप-लब्ध होता है।

शंका—कर्म प्रदेशोंका भुजगार और अल्पतर पद किस निमित्तसे होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जिस प्रकार शुक्ल और कृष्णपक्षमें चन्द्रमण्डल स्वभावतः बढ़ता और घटता है उसी प्रकार यहाँ पर कर्मप्रदेशोंका भुजगार और अल्पतर पद स्वभावसे होता है।

शंका—यदि अल्पतर कालके भीतर नष्ट होनेवाले द्रव्यसे भुजगार कालके भीतर सञ्चित होनेवाला द्रव्य विशेष अधिक ही होता है तो क्षपितकर्मांशिकके द्रव्यसे गुणितकर्मांशिक जीवका द्रव्य भी विशेष अधिक होना चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं है, क्यों कि ऐसा मानने पर वेदना और चूर्णिसूत्रके साथ विरोध आता है ?

समाधान—विशेष अधिक है यह सत्य है तो भी वेदना और चूर्णिसूत्रके साथ विरोध नहीं आता, क्योंकि स्ववचन विरोधको छोड़ कर दूसरे ग्रन्थमें प्रतिपादित अर्थके साथ आनेवाले विरोधको नहीं स्वीकार किया गया है।

वेदना और चूर्णिसूत्रोंका उपदेश है कि अल्पतर कालके भीतर क्षयको प्राप्त होनेवाले द्रव्यसे

अप्पदरकालम्मि भिज्जमाणदव्वादो भुजगारकालम्मि गुणिदकम्मंसियविसयम्मि संचिज्जमाणदव्वं कत्थ वि असंखेज्जभागब्भहियं, कत्थ वि संखेज्जभागब्भहियं, कत्थ वि संखेज्जगुणब्भहियं, कत्थ वि असंखेज्जगुणमत्थि। तेण तत्थ गुणिदकम्मंसियकालो कम्मट्ठिदिमेत्तो। खविदकम्मंसियम्मि पुण भुजगारकालम्मि संचिददव्वादो अप्पदरकालम्मि झीणदव्वमसंखे०भागब्भहियं, कत्थ वि संखेज्जभागब्भहियं संखेज्जगुणब्भहियमसंखेज्जगुणब्भहियं च। एदं कुदो णव्वदे? कम्मट्ठिदिमेत्तखविदकम्मंसियकालपदुप्पायणादो। उच्चारणाए पुण गुणिदकम्मंसियम्मि अप्पदरकालम्मि झीणदव्वादो भुजगारकालम्मि संचिददव्वं विसेसाहियं चेव। एदं कुदो णव्वदे? लोभसंजलणस्स जहण्णदव्वादो वेछावट्ठिकालब्भंतरे पंचिंदियजोगेण संचिदं पि लोभसंजलणदव्वं विसेसाहियं चेवे त्ति वयणादो। जदि एवं तो उच्चारणाए कम्मट्ठिदिमेत्तो गुणिदकम्मंसियकालो किमट्ठं परूविदो? भुजगारकालम्मि सगअसंखेज्जदिभागमेत्तदव्वसंगहणट्ठं।

§ १००. सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णपदेसविहत्तिओ मिच्छ०-पण्णारसक०-तिण्णि-

---

गुणितकर्मांशिकके विषयरूप भुजगार कालके भीतर सञ्चित हुआ द्रव्य कहीं पर असंख्यातवें भाग अधिक है, कहीं पर संख्यातवें भाग अधिक है, कहीं पर संख्यातगुणा अधिक है और कहीं पर असंख्यातगुणा अधिक है। इस लिए वहाँ गुणितकर्मांशिकका काल कर्मस्थितिप्रमाण है। परन्तु क्षपितकर्मांशिकके भुजगार कालके भीतर सञ्चित हुए द्रव्यसे अल्पतर कालके भीतर क्षयको प्राप्त होनेवाला द्रव्य कहीं पर असंख्यातवें भाग अधिक है, कहीं पर संख्यातवें भाग अधिक है, कहीं पर संख्यातगुणा अधिक है और कहीं पर असंख्यातगुणा अधिक है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—क्षपितकर्मांशिकका काल कर्मस्थितिप्रमाण कहा है। उससे जाना जाता है।

परन्तु उच्चारणाके अनुसार गुणितकर्मांशिकसम्बन्धी अल्पतरकालके भीतर क्षयको प्राप्त हुए द्रव्यसे भुजगारकालके भीतर सञ्चित हुआ द्रव्य विशेष अधिक ही है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—लोभसंज्वलनके जघन्य द्रव्यसे दो छयासठ सागर कालके भीतर पञ्चेन्द्रिय जीवके योग द्वारा सञ्चित हुआ भी लोभसंज्वलनका द्रव्य विशेष अधिक ही है इस वचनसे जाना जाता है।

शंका—यदि ऐसा है तो उच्चारणामें गुणितकर्मांशिकका काल कर्मस्थितिप्रमाण किसलिए कहा है?

समाधान—भुजगार कालके भीतर अपना असंख्यातवाँ भाग अधिक द्रव्यका संग्रह करनेके लिए कहा है।

§ १००. सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, पन्द्रह कषाय और

वेद० णियमा अज० असंखे०गुणब्भहिया। लोभसंज०-छण्णोक० णियमा अज० असंखे०भागब्भहिया। सम्मत्त० णियमा अविहत्तिओ। सम्मत्तस्स जहण्णपदेसविहत्तिओ मिच्छ०-सम्मामि०-पण्णारसक०-तिण्णिवेदाणं णियमा अज० असंखे०-गुणब्भहिया। लोभसंज०-छण्णोक० णियमा अज० असंखे०भागब्भहि०। कारणं पुव्वं परूविदं ति णेह परूविज्जदे।

§ १०१. अणंताणु०कोध० जहण्णपदे० माण-माया-लोभाणं णियमा तं तु विट्ठाणपदिदा अणंतभागब्भहि० असंखे०भागब्भहिया वा। मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-एक्कारसक०-तिण्णिवेदाणं णियमा अज० असंखे०भागब्भहिया। लोभसंज०-छण्णोक० णियमा अज० असंखे०भागब्भहिया। एवं[1] माण-माया-लोभाणं। अपच्चक्खाणकोध० जह० पदेसविहत्तिओ सत्तकसायाणं णियमा विहत्तिओ। तं तु वेट्ठाणपदिदा अणंतभागब्भहिया असंखे०भागब्भहिया। तिण्णिसंजल०-तिण्णिवेद० णियमा अज० असंखे०गुणब्भहि०। लोभसंज०-छण्णोक० णियमा अज[2]० असंखे०-

तीन वेदोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है। लोभसंज्वलन और छह नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। तथा वह सम्यक्त्वका नियमसे अविभक्तिवाला होता है। सम्यक्त्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, पन्द्रह कषाय और तीन वेदोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है। लोभसंज्वलन और छह नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। कारण पहले कह आये हैं, इसलिए यहाँ उसका कथन नहीं करते।

§ १०१. अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मान, माया और लोभकी नियमसे जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है और अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है। यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तवें भाग अधिक होती है या असंख्यातवें भाग अधिक होती है। मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, ग्यारह कषाय और तीन वेदोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। लोभसंज्वलन और छह नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। इसी प्रकार मान, माया और लोभकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके सात कषायोंकी नियमसे जघन्य प्रदेशविभक्ति या अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है। यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तवें भाग अधिक होती है या असंख्यातवें भाग अधिक होती है। तीन संज्वलन और तीन वेदोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है। लोभसंज्वलन और छह नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। वह शेष प्रकृतियोंका नियमसे

१. आ०प्रतौ 'असंखे०भागब्भहिया वा। एवं' इति पाठः। २. आ०प्रतौ 'छण्णोक० अज०' इति पाठः।

भागब्भ० । सेसाणं पयडीणं णियमा अविहत्तिओ । एवं सत्तकसायाणं । कोधसंज० जह० पदेसविहत्तिओ माण-मायासंज० णियमा अज० असंखे०गुणब्भ० । लोभसंज० णियमा अज० असंखे०भागब्भ० । सेसाणं पयडीणं णियमा अविहत्तिओ । माणसंज० जहण्णपदेसविहत्तिओ मायासंज० णियमा अज० असंखे०गुणब्भ० । लोभसंजल० णियमा अज० असंखे०भागब्भ० । मायासंज० जह० पदेसविहत्तिओ लोभसंज० णियमा अज० असंखेज्जगुणब्भहियां । सेसाणमविहत्तिओ । लोभसंज० जह० पदे०-विह० एक्कारस०-तिण्णिवेद० णियमा अज० असंखे०गुणब्भ० । छण्णोक० णियमा अज० असंखे०भागब्भ० ।

§ १०२. इत्थिवेद० जह० पदे०विहत्तिओ तिण्णिसंज०-पुरिस० णियमा अज० असंखे०गुणब्भ० । लोभसंज०-छण्णोक० णियमा अज० असंखे०भागब्भहियं । एवं णवुंसयवेदस्स । पुरिसवेद० जह० पदेस० तिण्णिसंज० णियमा अज० असंखे०-गुणब्भ० । लोभसंज० णियमा अज० असंखे०भागब्भ० । हस्स० जह० पदे०-विहत्तिओ तिण्णिसंज०-पुरिसवेद० णियमा अज० असंखे०गुणब्भहि० । लोभसंज०

अविभक्तिवाला होता है। इसी प्रकार सात कषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। क्रोधसंज्वलनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मानसंज्वलन और मायासंज्वलनकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है। लोभसंज्वलनकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। वह शेष प्रकृतियोंका नियमसे अविभक्तिवाला होता है। मानसंज्वलनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके माया-संज्वलनकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है। लोभसंज्वलनकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। मायासंज्वलनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके लोभसंज्वलनकी नियमसे अजघन्य प्रदेश-विभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है। वह शेष प्रकृतियोंका अविभक्तिवाला होता है । लोभसंज्वलनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके ग्यारह कषाय और तीन वेदोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । छह नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है ।

§ १०२. स्त्रीवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है। लोभ संज्वलन और छह नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। इसी प्रकार नपुंसकवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। पुरुषवेदकी जघन्य प्रदेश-विभक्तिवाले जीवके तीन संज्वलनोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यात-गुणी अधिक होती है। लोभसंज्वलनकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। हास्यकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है।

1. अ०प्रतौ 'अज० संखे०गुणब्भहियं' इति पाठः ।

णियमा अजह० असंखे०भागब्भ० । [1]पंचणोक० णियमा तं तु वेट्ठाणपदिदा अणंत-भागब्भ० असंखे०भागब्भहि० । एवं पंचणोकसायाणं ।

§ १०३. आदेसेण णेरइएसु मिच्छ० जह० पदेसविहत्तिओ सम्म०सम्मामि० णियमा अज० असंखे०गुणब्भहिया । बारसक०णवणोक० णियमा अज० असंखे०-भागब्भहिया । इत्थि-णवुंसयवेदाणं होदु णाम असंखे०भागब्भहियत्तं, मिच्छत्तं गंतूण पडिवक्खबंधगद्धाए चरिमसमयम्मि जहण्णसंतकम्मत्तुवलंभादो । ण सेसकम्माणं, तेत्तीससागरोवमेसु पंचिंदियजोगेण एइंदियजोगं पेक्खिदूण असंखे०गुणेण संचिदत्तादो त्ति ? ण एस दोसो, खविदकम्मंसियजहण्णदव्वं पेक्खिदूण गुणिदकम्मंसियभुजगार-कालम्मि संचिददव्वस्स असंखे०गुणहीणत्तादो । एदं कुदो णव्वदे ? एदम्हादो चेव सण्णियासादो । एवं संते जहण्णदव्वादो उक्कस्सदव्वमसंखे०गुणं ति भणिदवेयणा चुण्णिसुत्तेहि विरोहो होदि त्ति ण पच्चवट्ठेयं, भिण्णोवएसत्तादो । सम्म० जह०

लोभसंज्वलनकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है । पाँच नोकषायोंकी नियमसे जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है या अजघन्य प्रदेश-विभक्ति होती है । यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तवें भाग अधिक होती है या असंख्यातवें भाग अधिक होती है । इसी प्रकार पाँच नोकषायों-की मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

§ १०३. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है ।

शंका—स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी अजघन्य प्रदेशविभक्ति असंख्यातवें भाग अधिक होओ, क्योंकि मिथ्यात्वमें जाकर प्रतिपक्ष प्रकृतिके बन्धक कालके अन्तिम समयमें जघन्य सत्कर्म उपलब्ध होता है । परन्तु शेष कर्मोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्ति असंख्यातवें भाग अधिक नहीं हो सकती, क्योंकि तेतीस सागरकी आयुवाले जीवोंमें एकेन्द्रिय जीवके योगको देखते हुए असंख्यातगुणे पञ्चेन्द्रिय जीवके योगद्वारा उनका द्रव्य सञ्चित होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि क्षपितकर्मांशिक जीवके जघन्य द्रव्यको देखते हुए गुणितकर्मांशिक जीवके भुजगार कालके भीतर सञ्चित हुआ द्रव्य असंख्यातगुणा हीन होता है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ।

समाधान—इसी सन्निकर्षसे जाना जाता है ।

शंका—ऐसा होने पर जघन्य द्रव्यसे उत्कृष्ट द्रव्य असंख्यातगुणा होता है ऐसा कथन करनेवाले वेदना चूर्णिसूत्रोंके साथ विरोध आता है ?

समाधान—ऐसा निश्चय नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह भिन्न उपदेश है ।

1. ता० प्रतौ 'पडिवक्खचरिमसमयम्मि' इति पाठः ।

पदेसविहत्तिओ मिच्छत्त०-बारसक०-णवणोक० णियमा अज० असंखे०भागब्भहि० । सम्मामि०--अणंताणु०चउक्क० णियमा अज० असंखे०गुणब्भ० । सम्मामि० जह० पदेसविहत्तिओ मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० णियमा अज० असंखे०भागब्भ० । अणंताणु०चउक्क० णियमा० अज० असंखेज्जगुणब्भहिया ।

§ १०४. अणंताणु०कोध० जह० पदेसविहत्तिओ मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० णियमा अज० असंखेज्जभागब्भहिया । सम्म०-सम्मामि० णियमा अज० असंखे०-गुणब्भ० । माण-माया-लोभाणं णियमा तं तु विट्ठाणपदिदा अणंतभागब्भहिया असंखे०भागब्भ० वा । एवं माण-माया--लोभाणं । अपच्चक्खाणकोध० जह० पदेसविहत्तिओ मिच्छत्त-सत्तणोक० णियमा अज० असंखे०भागब्भ० । सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० णियमा अज० असंखे०गुणब्भ० । एक्कारसक०-भय-दुगुंछ० णियमा तं तु विट्ठाणपदिदा --अणंतभागब्भहिया असंखे०भागब्भहिया वा । एवमेक्कारसक०-भय-दुगुंछाणं ।

सम्यक्त्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी नियमसे अजघन्य प्रदेश-विभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है ।

§ १०४ अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है। अनन्तानुबन्धी मान, माया और लोभकी नियमसे जघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है और अजघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है। यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तवें भाग अधिक होती है या असंख्यातवें भाग अधिक होती है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान, माया और लोभकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व और सात नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है। ग्यारह कषाय, भय और जुगुप्साकी नियमसे जघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है और अजघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है। यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तवें भाग अधिक होती है या असंख्यातवें भाग अधिक होती है। इसी प्रकार ग्यारह कषाय, भय और जुगुप्साकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

§ १०५. इत्थिवेद० जह० पदेसविहत्तिओ मिच्छत्त-बारसक०-अट्ठणोक० णियमा अज० असंखे०भागब्भहि० । सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० णियमा अज० असंखे०गुणब्भहिया । एवं पुरिस-णवुंसयवेदाणं । णवुंसयवेदे जहण्णे संते मिच्छत्तस्स असंखे०भागब्भहियत्तं होदु णाम, पुरिसवेदे पुण जहण्णे संते मिच्छत्तस्स असंखे०-गुणब्भहियत्तं मोत्तूण णासंखेज्जभागब्भहियत्तं, सम्मत्तं घेत्तूण तेत्तीससागरोवममेत्तकालं बंधेण विणा अवट्ठिदत्तादो त्ति ? ण, तेत्तीससागरोवमाणि सम्मत्तगुणेण अवट्ठिदस्स मिच्छत्तदव्वं पि पुरिसवेदजहण्णसंतकम्मियमिच्छत्तदव्वादो असंखे०भागहीणं चेव । एदस्साइरियस्स उवदेसेण गुणिद-खविदकम्मंसिएसु चरिमणिसेगप्पहुडि विसेसहीण-कमेण हेट्ठा जाव समयाहियआबाहा त्ति ट्ठिदिं पडि पदेसावट्ठाणादो । कुदो एदं णव्वदे ? एदम्हादो चेव सण्णियासादो । अणुलोम-विलोमपदेसरयणासु का एत्थ सच्चिल्लिया ण णव्वदे आणाकणिट्ठदाए तेण दोण्हमुवएसाणमेत्थ संगहो कायव्वो ।

§ १०६. हस्सस्स जह० पदेसविहत्तिओ मिच्छत्त०-बारसक०-सत्तणोक० णियमा अज० असंखे०भागब्भहिया । सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० णियमा

---

§ १०५. स्त्रीवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और आठ नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है। इसी प्रकार पुरुषवेद और नपुसंवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिये।

शंका—नपुसंकवेदके द्रव्यके जघन्य रहने पर मिथ्यात्वका द्रव्य असंख्यातवें भाग अधिक होवे, परन्तु पुरुषवेदके द्रव्यके जघन्य रहने पर मिथ्यात्वका द्रव्य असंख्यातगुणे अधिकको छोड़ कर असंख्यातवें भाग अधिक नहीं हो सकता, क्योंकि सम्यक्त्वको ग्रहण करके तेतीस सागर प्रमाण काल तक बन्धके विना वह अवस्थित रहता है।

समाधान—नहीं, क्योंकि तेतीस सागर काल तक सम्यक्त्वके साथ अवस्थित रहनेवाले जीवके जो मिथ्यात्वका द्रव्य होता है वह भी पुरुषवेदके जघन्य सत्कर्मवाले जीवके मिथ्यात्वके द्रव्यसे असंख्यातवें भागप्रमाण कम ही होता है। इस आचार्यके उपदेशानुसार गुणितकर्मांशिक और क्षपितकर्मांशिक जीवके अन्तिम निषेकसे लेकर नीचे एक समय अधिक आबाधाकालके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिके प्रति विशेष हीन क्रमसे प्रदेशोंका अवस्थान पाया जाता है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान इसी सन्निकर्षसे जाना जाता है ?

अनुलोम और विलोम प्रदेशरचनाके मध्य कौनसी प्रदेशरचना समीचीन है यह उत्तरोत्तर जिनवाणीके क्षीण होते जानेसे ज्ञात नहीं होता, इसलिए दोनों उपदेशोंका यहाँ पर संग्रह करना चाहिए।

§ १०६. हास्यकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और सात नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है।

अज० असंखे०गुण०भ० । रदि० णियमा तं तु विट्ठाणपदिदा अणंतभाग०भ० असंखे०भाग०भहिया वा । एवं रदीए ।

§ १०७. अरदि० जह० पदेसविहत्तिओ मिच्छ०-बारसक०-सत्तणोक० णियमा अज० असंखे०भाग०भहिया । सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० णियमा अज० असंखे०गुण०भ० । सोग० णियमा तं तु विट्ठाणपदिदं अणंतभाग०भ० असंखे०-भाग०भ० वा । एवं सोगस्स । एवं सत्तमाए । पढमादि जाव छट्ठि त्ति एवं चेव । णवरि इत्थि-णवुंसयवेदाणं जहण्णपदेसवि० अणंताणु०चउक्क० अविहत्तिओ ।

§ १०८. तिरिक्खगदीए तिरिक्खाणं पढमपुढविभंगो । णवरि इत्थि-णवुंसय-वेद० जह० विहत्तिओ मिच्छ०-सम्म०--सम्मामि०--अणंताणु०चउक्काणं णियमा अविहत्तिओ । एवं पंचिंदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्जत्ताणं । पंचि०तिरि०जोणिणीणं पढमपुढविभंगो ।

§ १०९. पंचिं०तिरि०अपज्ज० मिच्छत्त० जह० पदेसविहत्तिओ सम्म०-सम्मामि० णियमा अज० असंखे०गुण०भ० । सोलसक०-भय-दुगुंछ० णियमा तं तु

सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है। रतिकी नियमसे जघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है और अजघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है। यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है। या तो अनन्तवें भाग अधिक होती है या असंख्यातवें भाग अधिक होती है। इसी प्रकार रतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिये।

§ १०७ अरतिकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और सात नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। सम्यक्त्व,सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्ताबन्धीचतुष्ककी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है। शोककी नियमसे जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है और अजघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है। यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है। या तो अनन्तवें भाग अधिक होती है या असंख्यातवें भाग अधिक होती है। इसी प्रकार शोककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। सातवीं पृथिवीमें इसी प्रकार जानना चाहिए। पहिलीसे लेकर छठी पृथिवी तक इसी प्रकार भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद और नपुंसक-वेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाला जीव अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अविभक्तिवाला होता है।

§ १०८. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंका भङ्ग पहली पृथिवीके समान है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाला जीव मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी नियमसे अविभक्तिवाला होता है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें पहिली पृथिवीके समान भङ्ग है।

§ १०९. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी

विट्ठाणपदिदा—अणंतभागब्भ० असंखे०भागब्भ० वा। सत्तणोक० णियमा अज० असंखे०भागब्भ०। एवं सोलसक०-भय-दुगुंछाणं।

§ ११०. सम्म० जह० पदेसविहत्तिओ सम्मामि० णियमा अज० असंखे०-गुणब्भ०। मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० णियमा अज० असंखे०भागब्भ०। एवं सम्मामि०। णवरि सम्मत्तस्स णियमा अविहत्तिओ।

§ १११. इत्थिवेद० जह० पदे०वि० सम्म०-सम्मामि० णियमा अज० असंखे०गुणब्भ०। मिच्छ०-सोलसक०-अट्ठणोक० णियमा अज० असंखे०भागब्भ०। एवं पुरिस-णवुंसयवेदाणं।

§ ११२. हस्सस्स जह० पदेसविहत्तिओ रदि० णियमा तं तु विट्ठाणपदिदा—अणंतभा० असंखेज्जभागब्भहिया वा। सेसमित्थिवेदभंगो। एवं रदीए।

§ ११३. अरदि० जह० पदे०विहत्तिओ सोग० णियमा तं तु विट्ठाणपदिदं। सेसं हस्सभंगो। एवं सोगस्स। एवं मणुसअपज्जत्ताणं।

अधिक होती है। सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी नियमसे जघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है और अजघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है। यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तवें भाग अधिक होती है या असंख्यातवें भाग अधिक होती है। सात नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। इसी प्रकार सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी मुख्यता सन्निकर्ष जानना चाहिए।

§ ११०. सम्यक्त्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके सम्यग्मिथ्यात्वकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है। मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि यह सम्यक्त्वकी नियमसे अविभक्तिवाला होता है।

§ १११. स्त्रीवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है। मिथ्यात्व, सोलह कषाय और आठ नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। इसी प्रकार पुरुषवेद और नपुंसकवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

§ ११२. हास्यकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके रतिकी नियमसे जघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है और अजघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है। यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है। या तो अनन्तवें भाग अधिक होती है या असंख्यातवें भाग अधिक होती है। शेष भङ्ग स्त्रीवेदके समान है। इसी प्रकार रतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

§ ११३. अरतिकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके शोककी नियमसे जघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है और अजघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है। यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है। शेष भङ्ग हास्यके समान है। इसी प्रकार शोककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इसी प्रकार अर्थात् पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए।

§ ११४. मणुसगदीए मणुस्साणमोघं। मणुसपज्ज० एवं चेव। णवरि इत्थिवेद० जम्हि जम्हि भणदि तम्हि णियमा अज० असंखे०भागब्भहिया। इत्थिवेद० जह० पदे०विहत्तिओ णवुंस० सिया अत्थि सिया णत्थि। जदि अत्थि णियमा अज० असंखे०गुणब्भ०।

§ ११५. मणुसिणीसु ओघं। णवरि पुरिसवेद-णवुंसयवेद० जम्हि जम्हि भणदि तम्हि तम्हि णियमा अज० असंखे०भागब्भ०। णवुंस० जह० पदे०विहत्तिओ इत्थिवेद० किं जहण्णा किमजहण्णा? णियमा अज० असंखे०गुणब्भ०। पुरिसवेद० जह० पदे०विहत्तिओ एक्कारसक०-इत्थिवेद० णियमा अज० असंखे०गुणब्भ०। लोभसंज०-सत्तणोक० णियमा अज० असंखे०भागब्भ०। एत्थ लोभसंजलण-पुरिसवेदाणमधापवत्तकरणचरिमसमए जहण्णसामित्ते अवसिट्ठे संते तेसिमण्णोण्णं पेक्खियूण तं तु विट्ठाणपदिदा त्ति वत्तव्वे असंखे०भागब्भहियत्तणियमो किंणिबंधणो त्ति चिंतिय वत्तव्वं।

§ ११६. देवगदीए देवाणं तिरिक्खोघं। भवण०-वाण०-जोदिसि० पढमपुढविभंगो। सोहम्मीसाणप्पहुडि जावुवरिमगेवज्जो त्ति देवोघो। अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति मिच्छ० जह० पदेविहत्तिओ सम्म०-सम्मामि० णियमा तं तु

---

§ ११४. मनुष्यगतिमें मनुष्योंका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्य पर्याप्तकोंमें इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद जहाँ जहाँ कहा जाय वहाँ वहाँ वह नियमसे अजघन्य असंख्यातवां भाग अधिक होता है। स्त्रीवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके नपुंसकवेद प्रदेशविभक्ति स्यात् है और स्यात् नहीं है। यदि है तो नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है।

§ ११५. मनुष्यिनियोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेद और नपुंसकवेद प्रदेशविभक्ति जहाँ जहाँ कही जाय वहाँ वहाँ नियमसे अजघन्य असंख्यातवें भाग अधिक होती है। नपुंकवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके स्त्रीवेद प्रदेशविभक्ति क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है? नियमसे अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है। पुरुषवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके ग्यारह कषाय और स्त्रीवेदकी नियमसे असंख्यातगुणी अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है। लोभसंज्वलन और सात नोकषायोंकी नियमसे असंख्यातवें भाग अधिक अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है। यहाँ पर लोभसंज्वलन और पुरुषवेदका अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें जघन्य स्वामित्व अवशिष्ट रहने पर परस्पर देखते हुए उनकी परस्पर जघन्य प्रदेशक्ति भी होती है और अजघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है। उसमें भी अजघन्य प्रदेशविभक्ति दो स्थान पतित होती है इस प्रकार कथन करने पर असंख्यातवें भाग अधिकका नियम किंनिमित्तक होता है इस बातका विचार कर कथन करना चाहिए।

§ ११६. देवगतिमें देवोंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें पहली पृथिवीके समान भङ्ग है। सौधर्म और ऐशान कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तक दोनोंमें सामान्य देवोंके समान भङ्ग है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें

विट्ठाणपदिदा-अणंतभागब्भ० असंखे०भागब्भ० वा। बारसक०-णवणोक० णियमा अज० असंखे०भागब्भ०। एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं।

§ ११७. अणंताणु०कोध० जह० पदे०विहत्तिओ मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-बारसक०-णवणोक० णियमा [अजह०] असंखे०भागब्भ०। माण-माया-लोहाणं णियमा तं तु विट्ठाणपदिदा—अणंतभागब्भ० असंखे०भागब्भहिया वा। एवं माण-माया-लोभाणं।

§ ११८. अपच्चक्खाणकोध० जह० पदे० एक्कारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछ० णियमा तं तु विट्ठाणपदिदा—अणंतभाग० असंखे०भागब्भहिया वा। छण्णोक० णियमा अज० असंखे०भागब्भ०। एवमेक्कारसक०-पुरिसवेद-भय-दुगुंछाणं।

§ ११९. इत्थिवेद० जह० पदे०विहत्तिओ बारसक०-अट्ठणोक० णियमा अज० असंखे०भागब्भ०। एवं णवुंसयवेदस्स। हस्स० जह० पदेस०विहत्तिओ बारसक०-सत्तणोक० णियमा अज० असंखे०भागब्भ०। रदि० णियमा तं तु

मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी नियमसे जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है और अजघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है। यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तवें भाग अधिक होती है या असंख्यातावें भाग अधिक होती है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

§ ११७. अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। अनन्तानुबन्धी मान, माया और लोभकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है और अजघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है। यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तवें भाग अधिक होती है या असंख्यातवें भाग अधिक होती है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान, माया और लोभकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

§ ११८. अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके ग्यारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है और अजघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है। यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तवें भाग अधिक होती है या असंख्यातवें भाग अधिक होती है। छह नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। इसी प्रकार ग्यारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

§ ११९. स्त्रीवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके बारह कषाय और आठ नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। इसी प्रकार नपुंसकवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। हास्यकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके बारह कषाय और सात नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें

विट्ठाणपदिदा—अणंतभागब्भ० असंखे०भागब्भहिया वा । एवं रदीए ।

§ १२०. अरदि० जह० पदे०विहत्तिओ बारसक०-सत्तणोक० णियमा अज० असंखे०भागब्भ० । सोगस्स णियमा० तं तु विट्ठाणपदिदा—अणंतभागब्भ० असंखे०भागब्भ० वा । एवं सोगस्स । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ १२१. भावो सव्वत्थ ओदइओ भावो । एवं णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

❀ अप्पाबहुअं ।

१२२. सुगममेदं ।

❀ सव्वत्थोवमपच्चक्खाणमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं ।

§ १२३. सत्तमाए पुढवीए गुणिदकम्मंसियणेरइयम्मि तेत्तीसाउअचरिमसमए वट्टमाणम्मि जदि वि उक्कस्सं जादं तो वि थोवं, साहावियादो ।

भाग अधिक होती है। रतिकी नियमसे जघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है और अजघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है। यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तवें भाग अधिक होती है या असंख्यातवें भाग अधिक होती है। इसी प्रकार रतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

§ १२०. अरतिकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके बारह कषाय और सात नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है। शोककी नियमसे जघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है और अजघन्य प्रदेशविभक्ति भी होती है। यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तवें भाग अधिक होती है या असंख्यातवें भाग अधिक होती है। इसी प्रकार शोककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानकर ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—पहले जघन्य स्वामित्वका निर्देश कर आये हैं। उसे देखकर ओघ और आदेशसे जघन्य सन्निकर्ष घटित कर लेना चाहिए। जहां कुछ विशेषता है या तन्त्रान्तरसे भिन्न मतका निर्देश किया है वहां वीरसेनस्वामीने उसका अलगसे विचार किया ही है।

इस प्रकार सन्निकर्ष समाप्त हुआ।

§ १२१. भाव सर्वत्र औदयिक भाव है। इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

इस प्रकार भाव समाप्त हुआ।

❀ अल्पबहुत्व ।

§ १२२. यह सूत्र सुगम है।

❀ अप्रत्याख्यान मानमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म सबसे स्तोक है।

§ १२३. सातवीं पृथिवीमें गुणितकर्मांशिक नारकीके तेतीस सागर आयुके अन्तिम समयमें विद्यमान रहते हुए यद्यपि अप्रत्याख्यान मानका द्रव्य उत्कृष्ट हुआ है तो भी वह स्तोक है, क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

❀ कोधे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ १२४. पुव्विल्लसुत्तादो अपच्चक्खाणं ति अणुवट्टदे तेण अपच्चक्खाण-कोधे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ति संबंधो कायव्वो। केत्तियमेत्तो विसेसो ? आवलि० असंखे०भागेण माणदव्वे खंडिदे तत्थ एयखंडमेत्तो। एदं कुदो णव्वदे ? सुत्ताविरोहिआइरियवयणादो।

❀ मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ १२५. जदि वि एकम्मि चेव ट्ठाणे पदेससंतकम्ममुक्कस्सं जादं तो वि कोध-पदेसग्गादो मायापदेसग्गमावलियाए असंखे०भागपडिभागेण विसेसाहियं। कुदो ? साहावियादो।

❀ लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ १२६. केत्तियमेत्तेण ? आवलि० असंखे०भागपडिभागेण।

❀ पच्चक्खाणमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ १२७. के०मेत्तेण ? आवलि० असंखे०भागेण लोभदव्वे खंडिदे तत्थ एयखंडमेत्तेण। कुदो ? पयडिविसेसादो।

❀ उससे अप्रत्याख्यान क्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ १२४. पूर्वोक्त सूत्रसे अप्रत्याख्यान इस पदकी अनुवृत्ति होती है, इसलिये अप्रत्याख्यान क्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ऐसा सम्बन्ध करना चाहिए। विशेषका प्रमाण कितना है ? अप्रत्याख्यान मानके द्रव्यमें आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उतना है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—सूत्राविरुद्ध आचार्यवचनसे जाना जाता है।

❀ उससे अप्रत्याख्यान मायामें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ १२५. यद्यपि एक ही स्थानमें प्रदेशसत्कर्म उत्कृष्ट हुआ है तो भी क्रोधके प्रदेशाग्रसे मायाका प्रदेशाग्र आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उतना अधिक है, क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

❀ उससे अप्रत्याख्यान लोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ १२६. कितना अधिक है ? आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उतना अधिक है।

❀ उससे प्रत्याख्यान मानमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ १२७. कितना अधिक है ? लोभके द्रव्यमें आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर वहां जो एक भाग लब्ध आवे उतना अधिक है, क्योंकि यह भिन्न प्रकृति है।

❀ कोधे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १२८. सुगमं ।

❀ मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १२९. सुगमं ।

❀ लोभस्स उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १३०. सुगमं ।

❀ अणंताणुबंधिमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १३१. सुगमं ।

❀ कोधे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १३२. सुगमं ।

❀ मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १३३. सुगमं ।

❀ लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १३४. सुगमं ।

❀ सम्मामिच्छत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

❀ उससे प्रत्याख्यान क्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १२८. यह सूत्र सुगम है ।

❀ उससे प्रत्याख्यान मायामें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १२९. यह सूत्र सुगम है ।

❀ उससे प्रत्याख्यान लोभका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १३०. यह सूत्र सुगम है ।

❀ उससे अनन्तानुबन्धी मानमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १३१. यह सूत्र सुगम है ।

❀ उससे अनन्तानुबन्धी क्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १३२. यह सूत्र सुगम है ।

❀ उससे अनन्तानुबन्धी मायामें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १३३. यह सूत्र सुगम है ।

❀ उससे अनन्तानुबन्धी लोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १३४. यह सूत्र सुगम है ।

❀ उससे सम्यग्मिथ्यात्वमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १३५. सत्तमाए पुढवीए अणंताणुबंधिलोभउक्कस्सदव्वादो आवलि० असंखे०भागपडिभागेण अब्भहियमिच्छत्तुक्कस्सदव्वपमाणत्तादो । सत्तमपुढवीदो उव्वट्टिय तसकाइएसु उप्पज्जिय तत्थ तसट्ठिदिं समाणिय पुणो एइंदिएसु दो-तिण्णि-भवग्गहणाणि गमिय मणुस्सेसुववज्जिय तत्थ अंतोमुहुत्तब्भहियअट्ठवस्साणि गमिय सम्मत्तं पडिवज्जिय मिच्छत्तदव्वे सम्मामिच्छत्तस्सुवरि पक्खित्ते सम्मामिच्छत्तपदेसग्गमुक्कस्सं होदि । ण च एदं दव्वमणंताणुबंधिलोभदव्वादो विसेसाहियं, सम्मत्तसरूवेण असंखेज्जपलिदोवमपढमवग्गमूलमेत्तसमयपबद्धाणं गयत्तादो[1] गुणसेढिणिज्जराए पडिसमयमसंखे०गुणं समयपबद्धाणं गलिदत्तादो च ? ण, दोहि वि पयारेहि णट्ठदव्वस्स अणंताणुबंधिलोभदव्वे आवलियाए असंखे०भागेण खंडिदे तत्थ एयखंडमेत्तमिच्छत्तपयडिविसेसस्स असंखे०भागमेत्तदंसणादो । तं पि कुदो ? सम्मत्तदव्वस्स गुणसंकमभागहारेण खंडिदमिच्छत्तदव्वस्स एयखंडपमाणत्तादो । गुणसेढीए णट्ठदव्वभागहारस्स गुणसंकमभागहारं पेक्खिदूण असंखेज्जगुणत्तादो च । तम्हा अणंताणुबंधिलोभदव्वादो सम्मामिच्छत्तदव्वं विसेसाहियं ति सिद्धं ।

§ १३५. क्योंकि सातवीं पृथिवीमें अनन्तानुबन्धी लोभके उत्कृष्ट द्रव्यमें आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उतना मिथ्यात्वका उत्कृष्ट द्रव्य सम्यग्मिथ्यात्वमें अधिक पाया जाता है ।

शंका—सातवीं पृथिवीसे निकल कर और त्रसकायिकोंमें उत्पन्न होकर वहां त्रसस्थितिको समाप्त करके पुनः एकेन्द्रियोंमें दो तीन भव बिताकर मनुष्योंमें उत्पन्न होकर वहां अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष जाने पर सम्यक्त्वको प्राप्त करके मिथ्यात्वके द्रव्यके सम्यग्मिथ्यात्वके ऊपर प्रक्षिप्त करने पर सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र होता है । परन्तु यह द्रव्य अनन्तानुबन्धी लोभके द्रव्यसे विशेष अधिक नहीं हो सकता, क्योंकि उस समय तक मिथ्यात्वके द्रव्यमेंसे पल्यके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण समयप्रबद्ध सम्यक्त्वप्रकृतिरूपसे परिणत हो जाते हैं और गुणश्रेणिनिर्जराके द्वारा प्रत्येक समयमें असंख्यातगुणे समयप्रबद्धोंका गलन हो जाता है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि इन दोनों प्रकारों से जो मिथ्यात्वका द्रव्य नष्ट होता है वह अनन्तानुबन्धी लोभके द्रव्यमें आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे तत्प्रमाण मिथ्यात्व प्रकृति विशेषके असंख्यातवें भागमात्र देखा जाता है ।

शंका—वह भी क्यों है ?

समाधान—क्योंकि गुणसंक्रमभागहारके द्वारा मिथ्यात्वके द्रव्यके भाजित करने पर जो एक भाग लब्ध आवे तत्प्रमाण सम्यक्त्वका द्रव्य है और गुणश्रेणिके द्वारा नष्ट होनेवाले द्रव्यका भागहार गुणसंक्रमभागहारको देखते हुए असंख्यातगुणा है, इसलिए अनन्तानुबन्धी लोभके द्रव्यसे सम्यमिथ्यात्वका द्रव्य विशेष अधिक है यह सिद्ध हुआ ।

१. आ० प्रतौ '–समयपबद्धाणं गळियत्तादो' इति पाठः ।

® सम्मत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १३६. सम्मामिच्छत्तादो सम्मत्तस्स विसेसाहियत्तं ण घडदे, गुणिदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण मणुस्सेसुववज्जिय अट्ठ वस्साणि गमिय पुणो दंसणमोहं खवेंतेण मिच्छत्तदव्वे सम्मामिच्छत्तस्सुवरि पक्खित्ते सम्मामिच्छत्तमुक्कस्सं होदि । पुणो तत्तो उवरि अंतोमुहुत्तं गुणसेढिणिज्जराए सम्मामिच्छत्तदव्वस्स णिज्जरणं करिय पुणो सम्मामिच्छत्ते सगुक्कस्सदव्वादो असंखे०भागहीणे सम्मत्तस्सुवरि पक्खित्ते सम्मत्तदव्वस्सुक्कस्सत्तुवलंभादो त्ति ? ण एस दोसो, सम्मामिच्छत्ते उक्कस्से जदि संते पच्छा गुणसेढिणिज्जराए णिज्जरिदसम्मामिच्छत्तदव्वादो पुव्वं सम्मत्तसरूवेण ट्ठिददव्वस्स असंखे०गुणत्तुवलंभादो । ण च असंखेज्जगुणत्तमसिद्धं, ओकड्डुक्कड्डणभागहारादो गुणसंकमभागहारस्स असंखे०गुणहीणत्तणेण तस्सिद्धिदंसणादो ।

® मिच्छत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १३७. भवट्ठिदीए चरिमसमयट्ठिदसत्तमपुढविणेरइयमिच्छत्तुक्कस्सदव्वं पेक्खिदूण सम्मत्तुक्कस्सदव्वम्मि गुणसेढिणिज्जराए णिज्जिण्णपलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसमयपबद्धाणमूणत्तुवलंभादो ।

® हस्से उक्कस्सपदेससंतकम्ममणंतगुणं ।

® उससे सम्यक्त्वमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १३६. **शंका**—सम्यग्मिथ्यात्वके द्रव्यसे सम्यक्त्वका द्रव्य विशेष अधिक घटित नहीं होता, क्योंकि गुणितकर्मांशिक लक्षणसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न होकर और आठ वर्ष बिताकर पुनः दर्शनमोहका क्षपणा करनेवाले उसके द्वारा मिथ्यात्वके द्रव्यके सम्यग्मिथ्यात्वमें प्रक्षिप्त करने पर सम्यग्मिथ्यात्वका द्रव्य उत्कृष्ट होता है । पुनः उसके बाद अन्तर्मुहूर्त काल तक गुणश्रेणिनिर्जराके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वके द्रव्यकी निर्जरा करके पुनः अपने उत्कृष्ट द्रव्यके असंख्यातवें भागहीन सम्यग्मिथ्यात्वके द्रव्यके सम्यक्त्वमें प्रक्षिप्त करने पर सम्यक्त्वका उत्कृष्ट द्रव्य उपलब्ध होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यद्यपि सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट होनेके बाद गुणश्रेणिनिर्जराके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वका द्रव्य निर्जीर्ण होता है तो भी उस द्रव्यके निर्जीर्ण होनेके पूर्व ही उससे सम्यक्त्वरूपसे स्थित हुआ द्रव्य असंख्यातगुणा पाया जाता है । और उसका असंख्यातगुणा होना असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारसे गुणसंक्रमभागहार असंख्यातगुणा हीन होता है, इससे उसके निर्जीर्ण होनेवाले द्रव्यसे असंख्यातगुणे होनेकी सिद्धि हो जाती है ।

® उससे मिथ्यात्वमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १३७. क्योंकि भवस्थितिके अन्तिम समयमें स्थित हुए सातवीं पृथिवीके नारकीके मिथ्यात्वके उत्कृष्ट द्रव्यको देखते हुए सम्यक्त्वका उत्कृष्ट द्रव्य गुणश्रेणिनिर्जराके द्वारा निर्जीर्ण होनेसे पल्यके असंख्यातवें भागमें जितने समय हों उतने समयप्रबद्धप्रमाण कम पाया जाता है ।

® उससे हास्यमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म अनन्तगुणा है ।

§ १३८. कुदो? देसघादित्तादो। पुव्वुत्तासेसपयडीओ जेण सव्वघाइलक्खणाओ तेण तासिं पदेसग्गं हस्सपदेसग्गस्स अणंतिमभागो त्ति भणिदं होदि। जदि सव्वघाइफद्दयाणं पदेसग्गमणंतिमभागो होदि तो हस्सस्स देसघादिफद्दयपदेसग्गस्स अणंतिमभागेण तस्सव्वघादिफद्दयाणं[1] पदेसग्गेण होदव्वं? होदु णाम, देसघादिफद्दएसु अणंताणमणुभागपदेसगुणहाणीणं संभवुवलंभादो।

❀ रदीए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ १३९. केत्तियमेत्तेण? हस्ससव्वदव्वे आवलियाए असंखे०भागेण खंडिदे तत्थ एयखंडमेत्तेण। दोण्हं पयडीणं बंधगद्धासु सरिसासु संतीसु कुदो रदिपदेसग्गस्स विसेसाहियत्तं? ण, ढुक्कमाणकाले एव तेण सरूवेण ढुक्कणुवलंभादो।

❀ इत्थिवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं।

§ १४०. इत्थिवेदबंधगद्धादो जेण हस्स-रदिबंधगद्धा संखे०गुणा तेण रदिदव्वस्स संखे०भागेण इत्थिवेददव्वेण होदव्वमिदि? सच्चं, एवं चेव जदि कुरवे मोत्तूण अण्णत्थ इत्थिवेददव्वस्स संचओ कदो। किंतु कुरवेसु हस्स-रदिबंधगद्धादो इत्थिवेद-

§ १३८. क्योंकि यह देशघाति प्रकृति है। यतः पूर्वोक्त अशेष प्रकृतियाँ सर्वघाति हैं, अतः उनके प्रदेश हास्यके प्रदेशोंके अनन्तवें भागप्रमाण होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—यदि सर्वघाति स्पर्धकोंके प्रदेश अनन्तवें भागप्रमाण होते हैं तो हास्यके प्रदेशाग्रके अनन्तवें भागप्रमाण उसके सर्वघातिस्पर्धकोंके प्रदेश होने चाहिए ?

समाधान—होवें, क्योंकि देशघाति स्पर्धकोंमें अनन्त अनुभाग प्रदेश गुणहानियाँ उपलब्ध होती हैं।

❀ उससे रतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ १३९. कितना अधिक है ? हास्यके सब द्रव्यमें आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उतना अधिक है।

शंका—दोनों प्रकृतियोंके बन्धक कालोंके समान होने पर रतिका प्रदेशाग्र विशेष अधिक कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, बन्ध होनेके समयमें ही उस रूपसे उसका बन्ध उपलब्ध होता है।

❀ उससे स्त्रीवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म संख्यातगुणा है।

§ १४०. **शंका**—स्त्रीवेदके बन्धक कालसे यतः हास्य और रतिका बन्धक काल संख्यातगुणा है, अतः रतिके द्रव्यके संख्यातवें भागप्रमाण स्त्रीवेदका द्रव्य होना चाहिए ?

समाधान—सत्य है, यदि कुरुको छोड़कर अन्यत्र स्त्रीवेदके द्रव्यका सञ्चय किया है तो इसी प्रकार ही सञ्चय होता है। किन्तु देवकुरु और उत्तरकुरुमें हास्य और रतिके बन्धक कालसे

1. आ०प्रतौ 'तस्स सव्वघादिफद्दयाणं' इति पाठः।

बंधगद्धा संखे०गुणा, लद्धणवुंसयवेदबंधगद्धाबहुभागत्तादो। इत्थिवेदस्स च कुरवेसु संचओ कदो। तेण रदिदव्वादो इत्थिवेददव्वं संखेज्जगुणं ति सिद्धं।

❀ सोगे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ १४१. कुदो ? कुरवित्थिवेदबंधगद्धादो तत्थतणसोगबंधगद्धाए विसेसाहियत्तादो। केत्तियमेत्तो विसेसो ? इत्थिवेदबंधगद्धाए संखे०भागमेत्तो।

❀ अरदीए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ १४२. केत्तियमेत्तेण ? सोगदव्वे आवलियाए असंखे०भागेण खंडिदे तत्थ एयखंडमेत्तेण।

❀ णवुंसयवेदउक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ १४३. कुदो ? ईसाणदेवअरदि-सोगबंधगद्धादो तत्थतणणवुंसयवेदबंधगद्धाए विसेसाहियत्तुवलंभादो। केत्तियमेत्तो विसेसो ? हस्स-रदिबंधगद्धं संखेज्जखंडं करिय तत्थ बहुखंडमेत्तो।

❀ दुगुंछाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ १४४. ईसाणदेवेसु णवुंसयवेदबंधगद्धादो दुगुंछाबंधगद्धाए ईसाणं गदित्थि-

---

स्त्रीवेदका बन्धक काल संख्यातगुणा है, क्योंकि वहां पर नपुंसकवेदके बन्धक कालकी अपेक्षा स्त्रीवेदका बन्धक काल बहुभागप्रमाण उपलब्ध होता है और देवकुरु तथा उत्तरकुरुमें स्त्रीवेदका सञ्चय प्राप्त किया गया है, इसलिए रतिके द्रव्यसे स्त्रीवेदका द्रव्य संख्यातगुणा है यह सिद्ध होता है।

❀ उससे शोकमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ १४१. क्योंकि देवकुरु और उत्तरकुरुमें प्राप्त होनेवाले स्त्रीवेदके बन्धक कालसे वहां पर शोकका बन्धक काल विशेष अधिक है। विशेषका प्रमाण कितना है ? स्त्रीवेदके बन्धक कालके संख्यातवें भागप्रमाण है।

उससे अरतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ १४२. कितना अधिक है ? शोकके द्रव्यमें आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उतना अधिक है।

❀ उससे नपुंसकवेदका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ १४३. क्योंकि ईशान कल्पके देवोंमें प्राप्त होनेवाले अरति और शोकके बन्धक कालसे वहां पर नपुंसकवेदका बन्धक काल विशेष अधिक उपलब्ध होता है। विशेषका प्रमाण कितना है? हास्य और रतिके बन्धक कालके संख्यात खण्ड करने पर उनमेंसे बहुभागप्रमाण है।

❀ उससे जुगुप्सामें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ १४४. क्योंकि ईशान कल्पके देवोंमें नपुंसकवेदके बन्धक कालसे जुगुप्साका बन्धक

पुरिसवेदबंधगद्धामेत्तेण विसेसाहियत्तुवलंभादो ।

❀ भये उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १४५. केत्तियमेत्तेण ? दुगुंछादव्वे आवलियाए असंखे०भागेण खंडिदे तत्थ एयखंडमेत्तेण ।

❀ पुरिसवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १४६. केत्तियमेत्तेण ? भयदव्वे आवलियाए असंखे०भागेण खंडिदे तत्थ एयखंडमेत्तेण ।

❀ कोधसंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं ।

§ १४७. को गुणगारो ? सादिरेयछरूवाणि । तं जहा—मोहणीयदव्वस्स अद्धं णोकसायभागो $\frac{1}{2}$ । कसायभागो वि एत्तिओ चेव । तत्थ हस्स-सोगाणमेगो, रदि-अरदीणमेगो, भयस्स अण्णेगो,[1] दुगुंछाए अवरेगो, वेदस्स अण्णेगो त्ति । एवं णोकसायदव्वे पंचहि विहत्ते पुरिसवेददव्वं मोहणीयदव्वस्स दसमभागमेत्तं $\frac{1}{10}$ । कोहसंजलणदव्वं[2]

काल ईशान कल्पमें गये हुए जीवोंके स्त्रीवेद और पुरुषवेदके बन्धक कालप्रमाण होनेसे विशेष अधिक उपलब्ध होता है ।

*** उससे भयमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।**

§ १४५. कितना अधिक है ? जुगुप्साके द्रव्यमें आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उतना अधिक है ।

*** उससे पुरुषवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।**

§ १४६. कितना अधिक है ? भयके द्रव्यमें आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उतना अधिक है ।

*** उससे क्रोध संज्वलनमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म संख्यातगुणा है ।**

§ १४७. गुणकार क्या है ? साधिक छह अंक गुणकार है । यथा—मोहनीयके द्रव्यका अर्ध भागप्रमाण नोकषायका द्रव्य है $\frac{1}{2}$ । कषायका हिस्सा भी इतना ही है । नोकषायोंके द्रव्यमेंसे हास्य और शोकका एक भाग है, रति और अरतिका एक भाग है, भयका अन्य एक भाग है, जुगुप्साका अन्य एक भाग है और वेदका अन्य एक भाग है । इस प्रकार नोकषायके द्रव्यमें पाँचका भाग देने पर पुरुषवेदका द्रव्य मोहनीयके द्रव्यके दसवें भागप्रमाण प्राप्त होता है $\frac{1}{10}$ । क्रोधसंज्वलनका द्रव्य भी मोहनीयके द्रव्यके पाँच बटे आठ भागप्रमाण प्राप्त होता है,

---

१. ता० प्रतौ 'हस्ससोगाणमेगो भयस्स अण्णेगो' इति पाठः ।

२. ता० प्रतौ $\frac{2}{10}$ । 'कोहसंजलणदव्वं' इति पाठः ।

पि मोहणीयदव्वस्स पंचट्ठभागमेत्तं,संगहिदसयलणोकसायदव्वत्तादो $\frac{५}{८}$ । पुव्विल्ल-पुरिसवेददव्वेण एदम्मि कोधदव्वे भागे हिदे सादिरेयछरूवाणि गुणगारो होदि ।

❀ माणसंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १४८. के०मेत्तेण ? सगपंचमभागमेत्तेण[१] ।

❀ मायासंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १४९. के०मेत्तेण ? सगछब्भागमेत्तेण ।

❀ लोभसंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १५०. के०मेत्तेण ? सगसत्तमभागमेत्तेण ।

❀ णिरयगदीए सव्वत्थोवं सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेससंतकम्मं ।

§ १५१. कुदो ? गुणिदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण सत्तमाए पुढवीए उप्पज्जिय अंतोमुहुत्तेण मिच्छत्तमुक्कस्सं काहिदि त्ति विवरीयं गंतूण उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय

क्योंकि इसमें नोकषायका समस्त द्रव्य सम्मिलित है $\frac{५}{८}$ । इसलिए पूर्वोक्त पुरुषवेदके द्रव्यका इस क्रोधके द्रव्यमें भाग देने पर साधिक छह अंकप्रमाण गुणकार होता है ।

उदाहरण— $\frac{५}{८} \div \frac{१}{१०} = \frac{५}{८} \times \frac{१०}{१} = \frac{५०}{८} = ६\frac{१}{४}$ । इससे स्पष्ट है कि पुरुषवेदके द्रव्यसे क्रोध संज्वलनका द्रव्य साधिक छह गुणा है ।

❀ उससे मानसंज्वलनमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १४८. कितना अधिक है ? अपने पाँचवें भागप्रमाण अधिक है ।

उदाहरण—क्रोधसं० $\frac{५}{८} + \frac{१}{८} = \frac{६}{८}$ मानसंज्वलनका उत्कृष्ट द्रव्य ।

❀ उससे मायासंज्वलनमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १४९. कितना अधिक है अपने छठे भागप्रमाण अधिक है ।

उदाहरण— $\frac{६}{८} \times \frac{१}{६} = \frac{१}{८}; \frac{६}{८} + \frac{१}{८} = \frac{७}{८}$ मायासंज्वलनका उत्कृष्ट द्रव्य ।

❀ उससे लोभसंज्वलनमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १५०. कितना अधिक है ? अपने सातवें भागप्रमाण अधिक है ।

उदाहरण— $\frac{७}{८} \times \frac{१}{७} = \frac{१}{८}; \frac{७}{८} + \frac{१}{८} = \frac{८}{८}$ लोभसंज्वलनका उत्कृष्ट द्रव्य ।

❀ नरकगतिमें सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म सबसे स्तोक है ।

§ १५१. क्योंकि गुणितकर्मांशिकविधिसे आकर और सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्तमें मिथ्यात्वको उत्कृष्ट करेगा पर विपरीत जाकर और उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त कर

---

१. ता० प्रतौ 'सगपंचभागमेत्तेण' इति पाठः ।

सामित्तचरिमसमए ट्ठिदजीवम्मि मिच्छत्तपदेसग्गं पलिदोवमस्स असंखे०भागमेत्तगुण-संकमभागहारेण खंडिय तत्थ एयखंडस्स सम्मामिच्छत्तसरूवेण परिणदस्सुवलंभादो।

❀ **अपच्चक्खाणमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं**[1] **।**

§ १५२. सत्तमपुढविणेरइयचरिमसमए सयलदिवड्ढगुणहाणिमेत्तसमयपबद्धाण-मुवलंभादो। को गुणगारो ? सव्वजहण्णगुणसंकमभागहारो।

❀ **कोधे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।**

§ १५३. सुगमं।

❀ **मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।**

§ १५४. सुगमं।

❀ **लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।**

§ १५५. सुगममेदं, पयडिविसेसमेत्तकारणत्तादो।

❀ **पच्चक्खाणमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।**

§ १५६. केत्तियमेत्तेण ? अपच्चक्खाणलोभउक्कस्सपदेससंतकम्मे आवलियाए असंखेज्जदिभागेण खंडिदे तत्थेयखंडमेत्तेण। कुदो ? सहावदो।

जो जीव स्वामित्वके अन्तिम समयमें स्थित है उसके मिथ्यात्वके प्रदेशोंमें पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणसंक्रम भागहारका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे वह सम्यग्मिथ्यात्वरूपसे परिणत हो जाता है।

❀ **उससे अप्रत्याख्यान मानमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है।**

१५२. क्योंकि सातवीं पृथिवीके नारकीके अन्तिम समयमें समस्त द्रव्य डेढ़ गुणहानि-गुणित समयप्रबद्धप्रमाण उपलब्ध होता है। गुणकार क्या है ? सबसे जघन्य गुणसंक्रमभागहार गुणकार है।

❀ **उससे अप्रत्याख्यान क्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

§ १५३. यह सूत्र सुगम है।

❀ **उससे अप्रत्याख्यान मायामें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

§ १५४. यह सूत्र सुगम है।

❀ **उससे अप्रत्याख्यान लोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

§ १५५. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि इसका कारण प्रकृति विशेष है।

❀ **उससे प्रत्याख्यान मानमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

§ १५६. कितना अधिक है ? अप्रत्याख्यान लोभके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्ममें आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उतना अधिक है, क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

---

१. ता०प्रतौ '-संतकम्मं संखेज्जगुणं' इति पाठः।

❀ कोहे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १५७. सुगमं, अणंतरपरूविदकारणत्तादो ।

❀ मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १५८. कुदो ? सहावदो चेय, तहा भावेणावट्ठाणदंसणादो ।

❀ लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १५९. पहिल्लसुत्तट्ठिदपच्चक्खाण० लोभे उक्क० पदेससंतकम्मं विसे० एसु सुत्तेसु तिसु वि संबंधणिज्जं। सेसं सुगमं ।

❀ अणंताणुबंधिमाणे उक्कस्सपदेसंतकम्मं विसेसाहियं ।

❀ कोधे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

❀ मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

❀ लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १६०. सुगममेदं सुत्तचउक्कयं ।

❀ सम्मत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १६१. कुदो ? गुणिदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण सत्तमपुढवीदो उव्वट्टिय दो-तिण्णिभवग्गहणाणि तसकाइएसुप्पज्जिय पुणो समाणिदतसट्ठिदित्तादो एइंदिएसुव-

---

❀ उससे प्रत्याख्यान क्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १५७. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि अनन्तर पूर्व कारणका कथन कर आये हैं ।

❀ उससे प्रत्याख्यानमायामें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १५८. क्योंकि स्वभावसे ही उस रूपसे अवस्थान देखा जाता है ।

❀ उससे प्रत्याख्यान लोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १५९. पहले सूत्रमें स्थित प्रत्याख्यान पदका 'लोभका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है' यहाँ तकके इन तीनों ही सूत्रोंमें सम्बन्ध कर लेना चाहिए । शेष कथन सुगम है ।

❀ उससे अनन्तानुबन्धी मानमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

❀ उससे अनन्तानुबन्धी क्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

❀ उससे अनन्तानुबन्धी मायामें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

❀ उससे अनन्तानुबन्धी लोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १६०. ये चारों सूत्र सुगम हैं ।

* उससे सम्यक्त्वमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १६१. क्योंकि जो जीव गुणितकर्मांशिकविधिसे आकर और सातवीं पृथिवीसे निकलकर त्रसकायिकोंमें दो तीन भव धारण कर अनन्तर त्रसस्थितिको समाप्त कर एकेन्द्रियोंमें

वज्जिय बद्धमणुसाउओ मणुसेसुप्पज्जिय पज्जत्तीओ समाणिय णिरयाउअबंधपुरस्सरं पढमसम्मत्तमुप्पाइय दंसणमोहणीयक्खवणं पारभिय कदकरणिज्जो होदूण अंतोमुहुत्त-मेत्तसम्मत्तगुणसेढिगोवुच्छासु अणंताणुबंधिलोभमावलियाए असंखे०भागेण खंडिय तत्थेगखंडमेत्तेण तत्तो अब्भहियदिवड्ढगुणहाणिपमाणं मिच्छत्तसयलदव्वं पयडिविसेस-दव्वादो असंखेज्जगुणहीणगुणसेढिणिज्जराणिज्जिण्णदव्वमेत्तेणूणं धरिऊण ट्ठिदजीवम्मि णेरइएसुप्पण्णपढमसमए वट्टमाणम्मि सम्मत्तुक्कस्सपदेससामियम्मि तहाभावुवलंभादो ।

❀ मिच्छत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १६२. केत्तियमेत्तेण ? णिरयादो उव्वट्टिय सम्मत्तमुक्कस्सं करेमाणस्स अंतराले जहाणिसेयसरूवेण गुणसेढिणिज्जराए च णट्ठदव्वमेत्तेण । तं च केत्तियं ? सगदव्वे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तभागहारेण खंडिदे तत्थेयखंडमेत्तं । ण च एदं मिच्छत्तुक्कस्सपदेससामियम्मि असिद्धं, चरिमसमयणेरइयम्मि गुणिदकम्मंसिय-लक्खणेण समाणिदकम्मट्ठिदिचरिमसमए वट्टमाणम्मि अविणट्ठसरूवेण तस्सुवलंभादो ।

❀ हस्से उक्कस्सपदेससंतकम्ममणंतगुणं ।

§ १६३. कुदो ? देसघादित्तणेण सुलहपरिणामिकारणत्तादो । ण च अणंतिम-

---

उत्पन्न हो और मनुष्यायुका बन्ध कर मनुष्योंमें उत्पन्न हो तथा पर्याप्तियोंको पूर्ण कर नरकायुके बन्धपूर्वक प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न कर तथा दर्शनमोहनीयके क्षयका प्रारम्भ कर कृतकृत्य होकर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण सम्यक्त्वकी गुणश्रेणि गोपुच्छाओंमें, अनन्तानुबन्धी लोभको आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देकर जो एक भाग लब्ध आवे उससे अधिक डेढ़ गुण-हानिप्रमाण मिथ्यात्वके समस्त द्रव्यको प्रकृतिविशेषके द्रव्यसे असंख्यातगुणे हीन गुणश्रेणि निर्जराके द्वारा निर्जीर्ण हुए द्रव्यसे हीन द्रव्यको, धारण कर स्थित है उसके नारकियोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्वके उत्कृष्ट प्रदेशोंके स्वामीरूपसे विद्यमान रहते हुए उस प्रकारसे प्रदेशसत्कर्म देखा जाता है ।

❀ उससे मिथ्यात्वमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १६२. कितना अधिक है ? नरकसे निकलकर सम्यक्त्वको उत्कृष्ट करनेवाले जीवके अन्तराल कालमें यथानिषेक क्रमसे और गुणश्रेणिनिर्जरारूपसे जितना द्रव्य नष्ट होता है उतना अधिक है ।

शंका—वह कितना है ?

समाधान—अपने द्रव्यमें पल्यके असंख्यातवें भागका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उतना है ।और यह मिथ्यात्वके उत्कृष्ट प्रदेशोंके स्वामित्व कालमें असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि जो गुणितकर्मांशिकविधिसे आकर कर्मस्थितिको समाप्त करनेके अन्तिम समयमें नरकपर्यायके अन्तिम समयवाला होता है उसके मिथ्यात्वका समस्त द्रव्य उक्त प्रकारसे नष्ट हुए बिना पाया जाता है ।

* उससे हास्यमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म अनन्तगुणा है ।

§ १६३. क्योंकि देशघाति होनेसे इसके सञ्चयका कारण सुलभ परिणाम हैं । अनन्तवें

भागत्तणेण त्थोवयराणं चेव सव्वघादिसरूवेण परिणमणमसिद्धं, भागाभागपरूवणाए तहा परूवियत्तादो। तदो देसघादिपाहम्मेण पुव्विल्लादो एदस्साणंतगुणत्तमिदि सिद्धं। को गुण० ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतभागमेत्तो।

❀ रदीए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ १६४. सुबोहमेदं सुत्तं, पयडिविसेसमेत्तकारणत्तादो।

❀ इत्थिवेदे उक्कसपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं।

§ १६५. कुदो ? गुणिदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण असंखेज्जवस्साउएसु इत्थिवेदपदेससंतकम्मं गुणेदूण अगदिकागदिण्णाएण दसवस्ससहस्साउअदेवेसुप्पज्जिय तसट्ठिदीए समत्ताए एइंदिएसु सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय णांतरीयण्णाएण पंचिंदिएसुववज्जिय णिरयाउअं बंधिदूण णेरइएसुप्पण्णपढमसमए वट्टमाणम्मि इत्थिवेदुक्कस्सपदेससामियणेरइयम्मि ओघपरूविदबंधगद्धामाहप्पमस्सियूण कुरवेसु लद्धओघुक्कस्सपदेससंतकम्मादो किंचूणस्स पयडित्थिवेदुक्कस्सदव्वस्स रदीए संखेज्जगुणहीणबंधगद्धासंचिदुक्कस्ससंतकम्मादो संखेज्जगुणत्तं पडि विरोहाभावादो। ण च अवंतराले णट्ठदव्वं पेक्खिदूण तस्स तहाभावविरोहो आसंकणिज्जो, असंखे०भागत्तणेण तस्स पाहण्णिया-

---

भागरूपसे स्तोक परमाणुओंका ही सर्वघातिरूपसे परिणमन होता है यह बात असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि भागभागप्ररूपणामें उस प्रकार कथन कर आये हैं। इसलिए देशघातिकी प्रधानता होनेसे पूर्वोक्त प्रकृतिसे यह अनन्तगुणी है यह बात सिद्ध है। गुणकार क्या है ? अभव्योंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण गुणकार है।

❀ उससे रतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ १६४. यह सूत्र सुबोध है, क्योंकि इसका कारण प्रकृतिविशेष है।

* उससे स्त्रीवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म संख्यातगुणा है।

§ १६५. क्योंकि जो गुणितकर्मांशविधिसे आकर असंख्यात वर्षकी आयुवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर और स्त्रीवेदके प्रदेशसत्कर्मको गुणित करके अगतिका गति न्यायके अनुसार दस हजार वर्षकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न होकर तथा त्रसस्थितिके समाप्त होने पर एकेन्द्रियोंमें सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर नान्तरीय न्यायके अनुसार पञ्चेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर और नरकायुका बन्ध करके नारकियोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें स्त्रीवेदका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म करके स्थित है उसके यद्यपि ओघमें कहे गये बन्धक कालके माहात्म्यके अनुसार देवकुरु और उत्तरकुरुमें प्राप्त हुए ओघ उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे कुछ कम द्रव्य पाया जाता है फिर भी प्रकृति स्त्रीवेदका उत्कृष्ट द्रव्यके रतिके संख्यातगुणे हीन बन्धक कालके भीतर सञ्चित हुए उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मसे संख्यातगुणे होनेमें कोई विरोध नहीं आता। यदि कोई ऐसी आशंका करे कि जिस स्थलमें ओघ उत्कृष्ट द्रव्य प्राप्त होता है उस स्थलसे लेकर यहाँ तकके अन्तरालमें नष्ट हुए द्रव्यको देखते हुए उसका तत्प्रमाण होनेमें विरोध आता है सो उसकी ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि अन्तरालमें जो द्रव्य नष्ट होता है वह कुल द्रव्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए

भावादो इत्थिवेदपयडिविसेसादो वि तस्स असंखे०गुणहीणत्तादो च।

❀ सोगे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ १६६. सुगममेदं सुत्तं, ओघम्मि परूविदकारणत्तादो।

❀ अरदीए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ १६७. के०मेत्तेण? सोगदव्वमावलियाए असंखे०भागेण खंडिदेयखंडमेत्तेण। कुदो? पयडिविसेसादो।

❀ णवुंसयवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ १६८. ण एत्थ किंचि वत्तव्वमत्थि, ओघम्मि परूविदबंधगद्धाविसेसमासेज्ज विसेसाहियत्तसिद्धीदो। ण च बंधगद्धाविसेससंचओ णेरइयम्मि असिद्धो, ईसाण-देवेचरणेरइयम्मि[1] परमणिरुद्धकालेण पत्ततप्पज्जायम्मि किंचूणसगोघुक्कस्ससंचयसिद्धीए बाहाणुवलंभादो।

❀ दुगुंछाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ १६९. धुवबंधित्तेण इत्थि-पुरिसवेदबंधगद्धासु वि संचयुवलंभादो।

❀ भए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

उसकी कोई प्रधानता नहीं है। तथा स्त्रीवेदरूप प्रकृतिविशेष होनेके कारण भी वह असंख्यातगुणा हीन है।

*** उससे शोकमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

§ १६६. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि कारणका निर्देश ओघ प्ररूपणाके समय कर आये हैं।

*** उससे अरतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

§ १६७. कितना अधिक है? शोकके द्रव्यमें आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उतना अधिक है, क्योंकि इसका कारण प्रकृति विशेष है।

*** उससे नपुंसकवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

§ १६८. यहां पर कुछ वक्तव्य नहीं है, क्योंकि ओघमें कहे गये बन्धक कालका आश्रय लेकर इसके विशेष अधिकपनेकी सिद्धि होती है। यदि कहा जाय कि बन्धक काल विशेषमें होनेवाला सञ्चय नारकियोंमें नहीं बनता सो भी बात नहीं है, क्योंकि जो ईशान कल्पका देव क्रमसे नारकियोंमें उत्पन्न होता है उसके यथासम्भव कमसे कम कालके द्वारा उस पर्यायके प्राप्त होने पर कुछ कम अपने ओघ उत्कृष्ट द्रव्यके सञ्चयकी सिद्धि होनेमें कोई बाधा नहीं आती।

*** उससे जुगुप्सामें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

§ १६९. क्योंकि यह ध्रुवबन्धिनी प्रकृति है, इसलिए इसका स्त्रीवेद और पुरुषवेदके बन्धक कालोंमें भी सञ्चय होता रहता है।

*** उससे भयमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

---

१. आ०प्रतौ 'ईसाणदेवे च णेरइयम्मि' इति पाठः।

§ १७०. पयडिविसेसस्स तारिसत्तादो ।

❀ पुरिसवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १७१. अपडिवक्खत्तणेण धुवबंधिणो भयस्स णिरंतरसंचिदुक्कस्सदव्वादो सप्पडिवक्खपुरिसवेदपदेसग्गस्स कथं विसेसाहियत्तं ? ण, एदस्स वि सोहम्मे पलिदोवमाउट्ठिदिअब्भंतरे सम्मत्तगुणपाहम्मेण असवत्तस्स धुवबंधित्तेण पूरणुवलंभादो । ण च णिरयगईए इदमसिद्धं, सव्वलहुएण कालेण अविणट्ठेणेयत्तेण संचिददव्वेण णेरइएसुप्पण्णपढमसमए तस्सिद्धीदो । एवमवि[1] दोण्हं धुवबंधीणं पदेसग्गेण सरिसेण होदव्वमिदि ण वोत्तुं जुत्तं, पयडिविसेसेण आवलियाए असंखेज्जदिभागेण खंडिदेयखंडमेत्तेण उवसमसेढीए गुणसंकमभागहारेण पडिच्छिदणोकसायदव्वमेत्तेण च पुरिसवेदस्स विसेसाहियत्तुवलंभादो ।

❀ माणसंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १७२. कुदो ? पुरिसवेदभागादो माणसंजलणस्स भागस्स चउब्भाग-

---

§ १७०. क्योंकि प्रकृति विशेष होनेसे यह इसी प्रकारकी है ।

* उससे पुरुषवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १७१. **शंका**—भय अप्रतिपक्ष और ध्रुवबन्धिनी प्रकृति है, अतः निरन्तर सञ्चित हुए उसके उत्कृष्ट द्रव्यसे सप्रतिपक्षरूप पुरुषवेदका प्रदेशसमूह विशेष अधिक कैसे अधिक हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सौधर्म कल्पमें आयुकी एक पल्यप्रमाण स्थितिके भीतर सम्यक्त्व गुणकी प्रधानतासे प्रतिपक्ष रहित इस प्रकृतिमें भी ध्रुवबन्धीरूपसे प्रदेशोंकी पूर्ति उपलब्ध होती है । यदि कहा जाय कि नरकगतिमें यह असिद्ध है सो भी बात नहीं है, क्योंकि अतिशीघ्र कालके द्वारा इस प्रकार सञ्चित हुए द्रव्यको नष्ट किये विना जो नारकियोंमें उत्पन्न होता है उसके वहां उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें उसकी सिद्धि होती है ।

शंका—इस प्रकार होने पर भी दोनों ही ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंका प्रदेशसमूह समान होना चाहिए ?

समाधान—यह कहना उचित नहीं है, क्योंकि एक तो प्रकृतिविशेष होनेके कारण आवलिके असंख्यातवें भागसे भयका द्रव्य भाजित होकर जो एक भाग लब्ध आवे उतना पुरुषवेदमें विशेष अधिक द्रव्य उपलब्ध होता है । दूसरे उपशमश्रेणिमें गुणसंक्रमभागहारके द्वारा नोकषायोंका द्रव्य इसमें संक्रान्त हो जानेसे भी इसका द्रव्य विशेष अधिक उपलब्ध होता है । इसलिए ध्रुवबन्धिनी होते हुए भी इन दोनों प्रकृतियोंका द्रव्य एक समान नहीं है ।

* उससे मानसंज्वलनमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १७२. क्योंकि पुरुषवेदके भागसे मानसंज्वलनका भाग एक चौथाई अधिक उपलब्ध

---

१. आ०प्रतौ 'एवमवि' इति पाठः ।

ब्भहियत्तुवलंभादो। तं जहा—पुरिसवेददव्वं मोहणीयसव्वदव्वं पेक्खियूण दसमभागो होदि, मोहसव्वदव्वस्स कसाय-णोकसायाणं समपविभत्तस्स पंचमभागत्तादो कसाय-णोकसायदव्वेसु पुरिसवेदभागपमाणेण कीरमाणेसु पुध पुध पंचसलागाणमुवलंभादो च। माणसंजलणदव्वं पुण मोहणीयसव्वदव्वं पेक्खियूण अट्ठमभागो, कसायभागस्स संजलणेसु चउद्धा विहज्जिय ट्ठिदत्तादो। तदो मोहसयलदव्वदसमभागभूदपुरिसवेद-सव्वसंचयादो तदट्ठमभागमेत्तमाणसंजलणपदेससंचओ चउब्भागब्भहिओ त्ति सिद्धं, तम्मि तप्पमाणेण कीरमाणे चउब्भागब्भहियसयलेगसलागुवलंभादो।

§ १७३. एत्थ अव्वुप्पण्णवुप्पायणट्ठं संदिट्ठिविहिं वत्तइस्सामो। तं जहा—मोहणीयसयलदव्वपमाणं चालीस ४०। तदद्धमेत्तो कसायभागो एसो २०। णोकसायभागो वि तत्तिओ चेव २०। पुणो णोकसायभागे पंचहि भागे हिदे भाग-लद्धमेत्तमेत्तियं पुरिसवेददव्वपमाणमेदं होदि ४। कसायभागे वि चदुहि भागे हिदे लद्धमेत्तं पमाणं संजलणदव्वमेत्तियं होदि ५। एदं च पुरिसवेदभागे चउहि भागे हिदे जं भागलद्धं तम्मि तत्थेव पक्खित्ते उप्पज्जदि त्ति तस्स तदो चउब्भागब्भहियत्त-

होता है। यथा—पुरुषवेदका सब द्रव्य मोहनीयके सब द्रव्यको देखते हुए दसवें भागप्रमाण है, क्योंकि एक तो मोहनीयके सब द्रव्यको कषाय और नोकषायमें समानरूपसे विभक्त कर देने पर पुरुषवेदका द्रव्य प्रत्येकके पाँचवें भागप्रमाण प्राप्त होता है। दूसरे कषाय और नोकषायके द्रव्यके पुरुषवेदका जो भाग हो तत्प्रमाणरूपसे विभक्त करने पर अलग अलग पाँच शलाकाएँ उपलब्ध होती हैं। परन्तु मानसंज्वलनका द्रव्य मोहनीयके सब द्रव्यको देखते हुए उसके आठवें भाग-प्रमाण है, क्योंकि कषायका द्रव्य संज्वलनोंमें चार भागरूप विभक्त होकर स्थित है। इसलिए मोहनीयके सब द्रव्यके दसवें भागरूप पुरुषवेदके समस्त सञ्चयसे मोहनीयके समस्त द्रव्यके आठवें भागरूप मानसंज्वलनका प्रदेशसञ्चय एक चतुर्थांशप्रमाण अधिक है यह सिद्ध हुआ, क्योंकि इस द्रव्यको पुरुषवेदके द्रव्यके प्रमाणरूपसे करने पर चतुर्थ भाग अधिक एक शलाका उपलब्ध होती है।

विशेषार्थ—तात्पर्य यह है कि पहिले मोहनीयके सब द्रव्यको आधा कषायमें और आधा नोकषायमें विभक्त कर दो। उसके बाद कषायके द्रव्यका एक चौथाई मानसंज्वलनको दो और नोकषाय द्रव्यका एक पञ्चमांश पुरुषवेदको दो। इस प्रकारसे विभाग करने पर मानसंज्वलनका द्रव्य मोहनीयके समस्त द्रव्यके आठवें भागप्रमाण प्राप्त होता है और पुरुषवेदका द्रव्य मोहनीयके समस्त द्रव्यके दसवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, इसलिए यहां पुरुषवेदके द्रव्यसे मानसंज्वलनका द्रव्य एक चौथाई अधिक कहा है।

§ १७३. अब यहाँ पर अव्युत्पन्न जीवोंकी व्युत्पत्ति बढ़ानेके लिए संदृष्टिविधि बतलाते हैं। यथा—मोहनीयके समस्त द्रव्यका प्रमाण ४० है। उसके अर्धभागप्रमाण कषायका द्रव्य यह है २०। नोकषायका भाग भी उतना ही है २०। पुनः नोकषायके भागमें पाँचका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उतना पुरुषवेदका द्रव्य होता है। उसका प्रमाण यह है ४। कषायके भागमें भी चारका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आता है वह मानसंज्वलनका द्रव्य होता है। उसका प्रमाण यह है ५। पुनः पुरुषवेदके भागमें चारका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उसे उसीमें मिला देने पर यह मानसंज्वलनका द्रव्य उत्पन्न होता है, इसलिए यह मानसंज्वलनका

मसंदिद्धं सिद्धं ।

❀ कोधसंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १७४. सुगममेत्थ कारणं, पयडिविसेसस्स बहुसो परूविदत्तादो ।

❀ मायासंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १७५. पयडिविसेसस्स तहाविहत्तादो ।

❀ लोभसंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १७६. एत्थ जइ वि संदिट्ठीए चउण्हं संजलणाणं भागा सरिसा तहा वि अत्थदो पयडिविसेसेण आवलियाए असंखे०भागपडिभागिएण विसेसाहियत्तमत्थि चेवे त्ति घेत्तव्वं । सेसं सुगमं ।

एवं णिरयगइओघुक्कस्सदंडओ समत्तो ।

❀ एवं सेसाणं गदीणं णादूण णेदव्वं ।

§ १७७. एदस्स अप्पणासुत्तस्स संखेवरुइसिस्साणुग्गहट्ठं दव्वट्ठियणयावलंबणेण पयट्टस्स पज्जवट्ठियपरूवणा पज्जवट्ठियजणाणुग्गहट्ठं कीरदे । तं जहा—एत्थ ताव णिरयगईए चेव पुढविभेदमासेज्ज विसेसपरूवणा कीरदे । कधं पुण एदस्स णिरयगईदो अव्वदिरित्तस्स सेसत्तं जदो इमा परूवणा सुत्तसंबद्धा हवेज्ज त्ति ? ण एस

द्रव्य पुरुषवेदके द्रव्यसे एक चौथाई अधिक है यह असंदिग्ध रूपसे सिद्ध हुआ ।

* उससे क्रोधसंज्वलनमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १७४. यहाँ पर कारणका निर्देश सुगम है, क्योंकि प्रकृतिविशेषरूप कारणका अनेक बार कथन कर आये हैं ।

* उससे मायासंज्वलनमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १७५. क्योंकि प्रकृतिविशेष इसी प्रकारकी होती है ।

* उससे लोभसंज्वलनमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १७६. यहाँ पर यद्यपि संदृष्टिमें चारों संज्वलनोंके भाग समान दिखलाये हैं तथापि वास्तवमें प्रकृतिविशेष होनेके कारण आवलिके असंख्यातवें भागरूप प्रतिभागके अनुसार माया-संज्वलनके द्रव्यसे लोभसंज्वलनका द्रव्य विशेष अधिक ही है ऐसा यहांपर ग्रहण करना चाहिए ।

इस प्रकार नरकगतिसम्बन्धी ओघ उत्कृष्ट दण्डक समाप्त हुआ ।

* इसी प्रकार शेष गतियोंमें जानकर अल्पबहुत्व ले जाना चाहिए ।

§ १७७. संक्षेप रुचिवाले शिष्योंके अनुग्रहके लिए द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन लेकर प्रवृत्त हुए इस मुख्य सूत्रका पर्यायार्थिक शिष्योंका अनुग्रह करनेके लिए विशेष कथन करते हैं । यथा—सर्व प्रथम यहाँपर नरकगतिके ही पृथिवीभेदोंके आश्रयसे विशेष कथन करते हैं ।

शंका—यदि यह सूत्र नरकगतिसे अपृथग्भूत अर्थका कथन करता है तो फिर सूत्रमें 'शेष' पदका प्रयोग कैसे किया जिससे यह कथन सूत्रसे सम्बन्ध रखनेवाला होवे ?

दोसो, सामण्णादो विसेसाणं कथंचि भेददंसणेण सेसत्तसिद्धीदो। 'उपयुक्तादन्यः शेष' इति न्यायात्।

§ १७८. तत्थ पढमपुढवीए णिरओघभंगो। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सम्मत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्मं सव्वत्थोवं कादव्वं, कदकरणिज्जस्स तत्थुप्पत्तीए अभावादो। तत्तो सम्मामिच्छत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्ममसंखे०गुणं। कारणं सुगमं। एत्तिओ चेव विसेसो णत्थि अण्णत्थ कत्थ वि।

§ १७९. तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्जत्ताणं देवगईए देवाणं च सोहम्मादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति पढमपुढविभंगो। णवरि सामित्तविसेसो जाणेयव्वो। पंचिं०तिरि०जोणिणी-पंचिं०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-भवण०-वाण०-जोदिसियाणं विदियादिपुढविभंगो। मणुसतियस्स ओघभंगो। संपहि सेसमग्गणाणं देसामासिय-भावेण इंदियमग्गणेयदेसभूदएइंदिएसु त्थोवबहुत्तपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तकलावं भण्णदि।

❀ एइंदिएसु सव्वत्थोवं सम्मत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्मं।

§ १८०. एत्थ एइंदिएसु त्ति सुत्तणिद्देसो[1] सेसिंदियपडिसेहफलो। सव्वेहिंतो उवरि वुच्चमाणसव्वपदेसेहिंतो थोवं अप्पयरं सव्वत्थोवं। किं तं? सम्मत्ते उक्कस-

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि सामान्यसे अपने अवान्तर भेदोंमें कथञ्चित् भेद देखा जाता है, इसलिए 'शेष' पद द्वारा उनके ग्रहणकी सिद्धि होती है। विवक्षित विषयसे अन्य 'शेष' कहलाता है ऐसा न्यायवचन है।

§ १७८. यहाँ प्रथम पृथिवीमें सामान्य नारकियोंके समान भङ्ग है। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक इसीप्रकार भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इन पृथिवियोंमें सम्यक्त्वमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म सबसे स्तोक करना चाहिए, क्योंकि वहाँपर कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होता। उससे सम्यग्मिथ्यात्वमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है। कारण सुगम है। इन पृथिवियोंमें इतनी ही विशेषता है, अन्यत्र कहीं भी अन्य विशेषता नहीं है।

§ १७९. तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, देवगतिमें सामान्य देव और सौधर्मसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव इनमें पहली पृथिवीके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपना अपना स्वामित्व जान लेना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी इनमें दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग है। मनुष्यत्रिकमें ओघके समान भङ्ग है। अब शेष मार्गणाओंके देशामर्षकरूपसे इन्द्रियमार्गणाके एकदेशभूत एकेन्द्रियोंमें अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिए आगेका सूत्रकलाप कहते हैं—

*** एकेन्द्रियोंमें सम्यक्त्वमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म सबसे स्तोक है।**

§ १८०. यहाँ 'एकेन्द्रियोंमें' इस प्रकार सूत्रमें निर्देशका फल शेष इन्द्रियोंका निषेध करना है। सबसे ऊपर कहे जानेवाले सब प्रदेशोंसे स्तोक अर्थात् अल्पतरको सर्वस्तोक कहते हैं।

१. आ॰प्रतौ 'सुत्तणिद्देसो' इति पाठः।

पदेससंतकम्मं । सेसपयडिपडिसेहफलो सम्मत्तणिद्देसो । अणुक्कस्सादिवियप्पणिवारण-फलो उक्कस्सपदेससंतकम्मणिद्देसो । उवरि वुच्चमाणासेसपयडिपदेसुक्कस्ससंचयादो सम्मत्तुक्कस्सपदेससंतकम्मं थोवयरं ति वुत्तं होइ ।

❀ सम्मामिच्छत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं ।

§ १८१. को गुणगारो ? सम्मत्तगुणसंकमभागहारस्स असंखेज्जदिभागो । तस्स को पडिभागो ? सम्मामिच्छत्तगुणसंकमभागहारपडिभागो । कुदो ? गुणिद-कम्मंसियलक्खणेणागंतूण सत्तमाए पुढवीए उप्पज्जिय सगाउट्ठिदीए अंतोमुहुत्ताव-सेसियाए विवरीयभावं गंतूण उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि सव्वजहण्णगुणसंकमभागहारेणावूरिय सव्वलहुं मिच्छत्तं गंतूणुव्वट्टिदसमाणे पच्छायद-पंचिंदियतिरिक्खभवग्गहणे एइंदिएसुप्पण्णपढमसमयवट्टमाणजीवे सम्मत्तादेसुक्कस्स-दव्वादो सम्मामिच्छत्तुक्कस्सपदेससंतकम्मस्स गुणसंकमभागहारविसेसादो तहाभावुव-लंभादो । भागहारविसेसो च कत्तो णव्वदे ? गुणसंकमपढमसमए मिच्छत्तादो जं सम्मत्ते संकमदि पदेसग्गं तं थोवं । तम्मि चेव समए सम्मामिच्छत्ते संकमदि पदेसग्ग-मसंखेज्जगुणं । पढमसमए सम्मामिच्छत्तसरूवेण संकंतपदेसपिंडादो विदियसमए सम्मत्तसरूवेण संकमंतपदेसग्गमसंखेज्जगुणं । तम्मि चेव समए सम्मामिच्छत्ते संकंत-

---

सर्वस्तोक क्या है ? सम्यक्त्वमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म । सूत्रमें 'सम्यक्त्व' पदके निर्देशका फल शेष प्रकृतियोंका प्रतिषेध करना है । 'उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म' पदके निर्देशका फल अनुत्कृष्ट आदि विकल्पोंका निवारण करना है । आगे कहे जानेवाले समस्त प्रकृतियोंके प्रदेशोंके उत्कृष्ट सञ्चयसे सम्यक्त्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म स्तोकतर है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

*** उससे सम्यग्मिथ्यात्वमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है ।**

§ १८१. गुणकार क्या है ? सम्यक्त्वके गुणसंक्रमभागहारके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणाकार है । उसका प्रतिभाग क्या है ? सम्यग्मिथ्यात्वका गुणसंक्रमभागहार प्रतिभाग है, क्योंकि जो जीव गुणितकर्मांशिक विधिसे आकर और सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न होकर अपनी आयु-स्थितिमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर मिथ्यात्वसे विपरीत भावको जाकर और उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त कर सबसे जघन्य गुणसंक्रम भागहारके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वको पूरकर और अतिशीघ्र मिथ्यात्वको प्राप्त कर मर कर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न हो अनन्तर मर कर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर उसके प्रथम समयमें विद्यमान है उसके सम्यक्त्वके आदेश उत्कृष्ट द्रव्यकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म गुणसंक्रमभागहार विशेषके कारण उस प्रकारका अर्थात् सम्यक्त्वके उत्कृष्ट द्रव्यसे असंख्यातगुणा अधिक पाया जाता है ।

शंका—भागहारविशेष किस कारणसे जाना जाता है ?

समाधान—गुणसंक्रमके प्रथम समयमें मिथ्यात्वमेंसे जो प्रदेशसमूह सम्यक्त्वमें संक्रमण को प्राप्त होता है वह स्तोक है । उसी समयमें जो प्रदेशसमूह सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमणको प्राप्त होता है वह उससे असंख्यातगुणा है । प्रथम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमणको प्राप्त हुए प्रदेशपिण्डसे दूसरे समयमें सम्यक्त्वमें संक्रमणको प्राप्त हुआ प्रदेशपिण्ड असंख्यातगुणा है ।

पदेसग्गमसंखेज्जगुणं ति एदस्स[1] अत्थविसेसस्स उवरि सुत्तणिबद्धस्स दंसणादो। अंतोमुहुत्तगुणसंकमकालब्भंतरावूरिद[2]सम्मत्तसव्वदव्वसंदोहादो गुणसंकमकालचरिमेग-समयपडिच्छिदसम्मामिच्छत्तपदेसपुंजस्स असंखेज्जगुणत्तुवलद्धीदो च तत्तो तस्स तहा-भावो ण विरुज्झदे।

❀ अपच्चक्खाणमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं।

१८२. एत्थ कारणं वुच्चदे। तं जहा—सम्मामिच्छत्तं मिच्छत्तसयल-दव्वस्स असंखे०भागो, गुणसंकमभागहारेण खंडिदेयखंडमेत्तस्सेव मिच्छत्तदव्वादो[3] सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसरूवेण परिणमणुवलंभादो। अपच्चक्खाणमाणो पुण मिच्छत्त-सरिसो चेव, पयडिविसेसस्स अप्पाहण्णियादो। तदो मिच्छत्तस्स असंखे०भागमेत्त-सम्मामिच्छत्तदव्वादो थोरुच्चएण मिच्छत्तसरिसअपच्चक्खाणमाणपदेससंतकम्ममसंखेज्ज-गुणं ति ण एत्थ संदेहो। को गुणगारो? सव्वजहण्णगुणसंकमभागहारो।

❀ कोहे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ १८३. पयडिविसेसेण पुव्विल्लदव्वे आवलियाए असंखे०भागेण खंडिदे तत्थेयखंडपमाणेण।

तथा उसी समयमें सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमणको प्राप्त हुआ प्रदेशपिण्ड उससे असंख्यातगुणा है इस प्रकार यह अर्थविशेष आगे सूत्रमें निबद्ध हुआ देखा जाता है। तथा गुणसंक्रमके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कालके भीतर जो द्रव्यसमूह सम्यक्त्वको मिलता है उससे गुणसंक्रम कालके अन्तिम एक समयमें सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रान्त हुआ प्रदेशपुञ्ज असंख्यातगुणा है, इसलिए संक्रम भागहारके उस प्रकारके होनेमें विरोध नहीं आता।

* उससे अप्रत्याख्यान मानमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है।

§ १८२. यहाँ पर कारणका कथन करते हैं। यथा—सम्यग्मिथ्यात्वका द्रव्य मिथ्यात्वके समस्त द्रव्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि गुणसंक्रम भागहारका भाग देने पर लब्ध एक भागप्रमाण द्रव्य ही मिथ्यात्वके द्रव्यमें से सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वरूपसे परिणमन करता हुआ उपलब्ध होता है। परन्तु अप्रत्याख्यान मानका द्रव्य मिथ्यात्वके ही समान है, क्योंकि प्रकृतिविशेषकी प्रधानता नहीं है। इसलिए मिथ्यात्वके असंख्यातवें भागप्रमाण सम्यग्मिथ्यात्वके द्रव्यसे मौटे रूपसे मिथ्यात्वके समान अप्रत्याख्यान मानका प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है इसमें सन्देह नहीं है। गुणकार क्या है? सबसे जघन्य गुणसंक्रम भागहार गुणकार है।

* उससे अप्रत्याख्यान क्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ १८३. क्योंकि यह प्रकृतिविशेष है। यहाँ पूर्वोक्त द्रव्यमें आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उतना अधिक है।

---

१. ता०प्रतौ '-मसंखेज्जगुणं एदस्स' इति पाठः। २. ता०प्रतौ '-गुणसंकमतिकालब्भंतरा-पूरिद-' इति पाठः। ३. ता०प्रतौ 'मिच्छत्तादो दव्वादो' इति पाठः।

❀ मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १८४. कुदो ? पयडिविसेसादो । केत्तियमेत्तेण ? कोधदव्वमावलियाए असंखे०-भागेण खंडेयूण तत्थेयखंडमेत्तेण । एदं कुदो णव्वदे ? परमगुरूणमुवदेसादो । ण चप्पलओ[1], णाणविण्णाणसंपण्णाणं तेसिं भयवंताणं मुसावादे पयोजणाभावादो ।

❀ लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १८५. कुदो, पयडिविसेसेण, पुव्वुत्तपमाणेण पयडिविसेसादो चेय एदस्स अहियत्तुवलंभादो ।

❀ पच्चक्खाणमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १८६. जइ वि सव्वेसिं कसायाणमोघुक्कस्सपदेससंतकम्मसामियणेरइयचर-जीवे पच्छायदपंचिंदियतिरिक्खभवग्गहणम्मि एइंदिएसुप्पण्णपढमसमए वट्टमाणम्मि अक्कमेण सामित्तं जादं तो वि विस्ससादो चेय पुव्विल्लादो एदस्स विसेसाहियत्तं पडिवज्जेयव्वं, जिणाणमणण्णहावाइत्तादो । ण हि रागादिअविज्जासंघुम्मुक्का जिणिंदा वितथमुवइसंति[2], तेसु तक्कारणाणमणुवलद्धीए ।

❀ कोहे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

---

* उससे अप्रत्याख्यान मायामें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १८४. क्योंकि यह प्रकृतिविशेष है । कितना अधिक है ? क्रोधके द्रव्यमें आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उतना अधिक है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—परम गुरुके उपदेशसे जाना जाता है। परन्तु वे चपल नहीं हो सकते, क्योंकि ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न भगवत्स्वरूप उनके मृषा भाषण करनेका कोई प्रयोजन नहीं है ।

* उससे अप्रत्याख्यान लोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १८५. क्योंकि यह प्रकृतिविशेष है, अतः प्रकृतिविशेष होनेके कारण ही इसका प्रमाण पूर्वोक्त प्रकृतिके प्रमाणसे अधिक पाया जाता है ।

* उससे प्रत्याख्यान मानमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १८६. यद्यपि सभी कषायोंका ओघसे उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म नारकियोंके अन्तिम समयमें प्राप्त होता है, इसलिए वहाँसे पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें भव धारण करनेके बाद एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होने पर उसके प्रथम समयमें विद्यमान रहते हुए सबका एक साथ उत्कृष्ट स्वामित्व प्राप्त हुआ है तो भी स्वभावसे ही पहलेकी प्रकृतिसे इसका द्रव्य विशेष अधिक जानना चाहिए, क्योंकि जिनदेव अन्यथावादी नहीं होते । तात्पर्य यह है कि रागादि अविद्या संघसे रहित जिनेन्द्रदेव असत्य उपदेश नहीं करते, क्योंकि उनमें असत्य उपदेश करनेका कारण नहीं पाया जाता ।

* उससे प्रत्याख्यान क्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

---

१. आ०प्रतौ 'चप्फलओ' इति पाठः । २. ता०प्रतौ 'वितस्थ (थ) मुवइसंति' आ० प्रतौ 'वितत्थमुवइसंति' इति पाठः ।

§ १८७. कुदो ? सहावविसेसादो । न हि भावस्वभावाः पर्य्यनुयोज्याः, अन्यत्रापि तथातिप्रसङ्गात् । विशेषप्रमाणं सुगमं, असकृद्विमृष्टत्वात् ।

❀ मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १८८. सुगममेदं, पयडिविसेसवसेण तहाभावुवलंभादो ।

❀ लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १८९. एदं पि सुगमं, विस्ससापरिणामस्स तारिसत्तादो ।

❀ अणंताणुबंधिमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १९०. पयडिविसेसेण आवलियाए[1] असंखे०भागपडिभागिएण । कुदो ? पयडिविसेसादो ।

❀ कोहे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १९१. सुगममेदं, पयडिविसेसेण तहावट्ठिदत्तादो ।

❀ मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १९२. विस्ससादो आवलियाए असंखे०भागेण खंडिदएगखंडलद्धदव्वमेत्तेण

---

§ १८७. क्योंकि ऐसा स्वभावविशेष है। और पदार्थोंके स्वभाव शंका करने योग्य नहीं होते, क्योंकि अन्यत्र वैसा मानने पर अतिप्रसङ्ग दोष आता है। विशेषका प्रमाण सुगम है, क्योंकि उसका अनेक बार परामर्श कर आये हैं।

*** उससे प्रत्याख्यान मायामें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

§ १८८. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि प्रकृतिविशेष होनेके कारण उसरूपसे उसकी उपलब्धि होती है।

*** उससे प्रत्याख्यान लोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

§ १८९. यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि स्वभावसे इसका इसप्रकारका परिणमन होता है।

*** उससे अनन्तानुबन्धी मानमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

§ १९०. कारण कि प्रकृतिविशेष आवलिके असंख्यातवें भागके प्रतिभागरूपसे है, क्योंकि प्रकृतिविशेष है।

*** उससे अनन्तानुबन्धी क्रोधमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

§ १९१. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि प्रकृतिविशेष होनेके कारण यह उस प्रकारसे अवस्थित है।

*** उससे अनन्तानुबन्धी मायामें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

§ १९२. क्योंकि पूर्वोक्त प्रकृतिके द्रव्यमें आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना इसमें स्वभावसे अधिक उपलब्ध होता है।

---

१. आ० प्रतौ 'विसेसाहियं । आवलियाए' इति पाठः ।

अहियत्तुवलंभादो। एदं कुदो णव्वदे ? परमाइरियाणमुवएसादो।

❀ लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ १९३. सुगममेत्थ कारणं, अणंतरणिद्दिट्ठत्तादो।

❀ मिच्छत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ १९४. जदि वि दोण्हमेदासिं पयडीणमेयत्थ चेव[1] गुणिदकम्मंसियणेरइयचरपच्छायदपंचिंदियतिरिक्खभवग्गहणमिच्छाइट्ठिजीवे एइंदिएसुप्पण्णपढमसमयसंठिदे सामित्तं जादं तो वि पयडिविसेसेण विसेसाहियत्तं मिच्छत्तस्स ण विरुज्झदे, बज्झकारणादो अब्भंतरकारणस्स बलिट्ठत्तादो।

❀ हस्से उक्कस्सपदेससंतकम्ममणंतगुणं।

§ १९५. कुदो ? सव्वघाइत्तेण पुव्वुत्तासेसपयडीणं पदेसपिंडस्स देसघादिहस्सपदेसपुंजं पेक्खियूणाणंतिमभागत्तादो। णेदमसिद्धं, भागाभागपरूवणाए तहा साहियत्तादो।

❀ रदीए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ १९६. जइ वि दोण्हमेदासिं पयडीणं बंधगद्धाओ सरिसाओ तो वि पयडि-

---

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—परम आचार्योंके उपदेशसे जाना जाता है।

❀ उससे अनन्तानुबन्धी लोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ १९३. यहाँ कारणका निर्देश सुगम है, क्योंकि उसका अनन्तर निर्देश कर आये हैं।

❀ उससे मिथ्यात्वमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ १९४. यद्यपि अनन्तानुबन्धी लोभ और मिथ्यात्व इन दोनों प्रकृतियोंका गुणित कर्मांशिक नारकियोंमें से आकर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि होनेके बाद एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें स्थित रहते हुए एक ही स्थानमें उत्कृष्ट स्वामित्व प्राप्त हुआ है तो भी प्रकृतिविशेष होनेके कारण मिथ्यात्वके द्रव्यका विशेष अधिक होना विरोधको नहीं प्राप्त होता, क्योंकि बाह्य कारणकी अपेक्षा आभ्यन्तर कारण बलिष्ठ होता है।

* उससे हास्यमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म अनन्तगुणा है।

§ १९५. क्योंकि पूर्वोक्त अशेष प्रकृतियाँ सर्वघाति हैं। उनका प्रदेशपिण्ड देशघाति हास्य प्रकृतिके प्रदेशपुञ्जकी अपेक्षा अनन्तवें भागप्रमाण है। और यह असिद्ध नहीं है, क्योंकि भागाभागप्ररूपणामें उस प्रकारसे सिद्ध कर आये हैं।

❀ उससे रतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ १९६. यद्यपि इन दोनों प्रकृतियोंका बन्धक काल समान है तो भी प्रकृतिविशेष होनेके

---

१. ता०प्रतौ 'मेवत्थं चेव' इति पाठः।

विसेसमासेज्ज विसेसाहियत्तं ण विरुज्झदे, ढुक्कमाणकाले चेय तहाभावेण परिणाम-दंसणादो ।

❀ इत्थिवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं ।

§ १९७. कुरवेसु हस्स-रदिबंधगद्धादो संखेज्जगुणसगबंधगद्धाए इत्थिवेदं पूरेऊण दसवस्ससहस्साउअदेवेसु थोवयरदव्वमधट्ठिदीए गालेयूण एइंदिएसुप्पण्णपढमसमय-मट्ठियट्ठियजीवम्मि तस्स तदो संखेज्जगुणत्तुवलंभादो ।

❀ सोगे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १९८. सुगममेदं, ओघपरूविदबंधगद्धाविसेसवसेण संखे०भागब्भहियत्तुव-लंभादो ।

❀ अरदीए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १९९. सुगमं, पयडिविसेसस्स असइं परूविदत्तादो ।

❀ णवुंसयवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ २००. कुदो ईसाणदेवाणमरदि-सोगबंधगद्धादो विसेसाहियतत्थतणतस-थावरबंधगद्धासंबंधिणवुंसयवेदबंधकाले संचिदत्तादो ।

कारण इसका विशेष अधिक होना विरोधको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि इस प्रकृतिरूप बन्ध होते समय या संक्रमण होते समय ही इस प्रकारका परिणमन देखा जाता है ।

❀ उससे स्त्रीवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म संख्यातगुणा है ।

§ १९७. क्योंकि जो जीव देवकुरु और उत्तरकुरुमें हास्य और रतिके बन्धक कालसे संख्यातगुणे अपने बन्धक कालके भीतर स्त्रीवेदको पूरकर अनन्तर दस हजार वर्षकी आयुवाले देवोंमें अधःस्थितिगलनाके द्वारा अत्यन्त स्तोक द्रव्यको गला कर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता है उसके वहाँ उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें स्थित रहते हुए स्त्रीवेदमें रतिके द्रव्यसे संख्यातगुणा द्रव्य पाया जाता है ।

❀ उससे शोकमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १९८. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि ओघमें कहे गये बन्धक काल विशेषके वशसे शोकमें संख्यातवाँ भाग अधिक द्रव्य उपलब्ध होता है ।

❀ उससे अरतिमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १९९. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि प्रकृतिविशेषरूप कारणका अनेक बार कथन कर आये हैं ।

❀ उससे नपुंसकवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ २००. क्योंकि ईशान कल्पके देवोंमें अरति और शोकके बन्धक कालसे वहाँ के त्रस और स्थावरके बन्धककालसम्बन्धी विशेष अधिक कालमें नपुंसकवेदका सञ्चय होता है ।

❀ दुगुंछाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ २०१. धुवबंधित्तेण इत्थि-पुरिसवेदबंधगद्धासु वि संचउवलंभादो।

❀ भए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ २०२. कुदो ? पयडिविसेसादो।

❀ पुरिसवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ २०३. केत्तियमेत्तेण ? भयदव्वमावलियाए असंखेज्जदिभाएण खंडेयूण तत्थेयखंडमेत्तेण। कुदो ? सोहम्मे सम्मत्तपहावेण धुवबंधित्ते संते पुरिसवेदस्स पयडिविसेसादो अहियत्तुवलंभादो।

❀ माणसंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ २०४. के०मेत्तेण ? पुरिसवेददव्वचउब्भागमेत्तेण। सेसं सुगमं।

❀ कोहे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ २०५. एत्थ पुव्विल्लसुत्तादो संजलणगहणमणुवट्टदे। पयडिविसेसादो च विसेसाहियत्तं। सेसं सुगमं।

❀ मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

---

* उससे जुगुप्सामें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ २०१. क्योंकि ध्रुवबन्धी होनेसे इसका स्त्रीवेद और पुरुषवेदके बन्धक कालोंमें भी सञ्चय उपलब्ध होता है।

* उससे भयमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ ३०२. क्योंकि यह प्रकृतिविशेष है।

* उससे पुरुषवेदमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ २०३. कितना अधिक है ? भयके द्रव्यमें आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उतना अधिक है, क्योंकि सौधर्म कल्पमें सम्यक्त्वके प्रभाववश पुरुषवेद ध्रुवबन्धी हो जाता है, इसलिए प्रकृतिविशेष होनेके कारण उसमें अधिक द्रव्य उपलब्ध होता है।

* उससे मानसंज्वलनमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ २०४. कितना अधिक है ? पुरुषवेदके द्रव्यका एक चौथाई अधिक है। शेष कथन सुगम है।

❀ उससे क्रोधसंज्वलनमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ २०५. यहाँ पर पूर्वके सूत्रमेंसे संज्वलन पदकी अनुवृत्ति होती है और प्रकृतिविशेष होनेके कारण इसका द्रव्य विशेष अधिक सिद्ध होता है। शेष कथन सुगम है।

* उससे संज्वलन मायामें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

❀ लोहे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ २०६. एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि, पयडिविसेसमेत्तकारणत्तादो[1] । एवं जाव अणाहारए त्ति सुत्ताविरोहेण आगमणिउणेहि उक्कस्सप्पाबहुअं चिंतिय णेदव्वं । किमट्ठमेदस्स एइंदियउक्कस्सपदेसप्पाबहुअदंडयस्स देसामासियभावेण संगहियासेसमग्गणाविसेसस्स विसेसपरूवणा तुम्हेहि ण कीरदे? ण, सुगमत्थपरूवणाए फलाभावेण तदकरणादो । ण सेसमग्गणप्पाबहुअपरूवणाए सुगमत्तमसिद्धं, ओघगइमग्गणेइंदियदंडएहि चेव सेसासेसमग्गणाणं पाएण गयत्थत्तदंसणादो । संपहि उक्कस्सप्पाबहुअपरिसमत्तिसमणंतरं जहावसरपत्तजहण्णपदेसप्पाबहुअपरूवणट्ठं जइवसहभयवंतो पइज्जासुत्तमाह ।

❀ जहण्णदंडओ ओघेण सकारणो भणिहिदि ।

§ २०७. एदस्स वत्तव्वपइज्जासुत्तस्स अत्थविवरणं कस्सामो । तं जहा—अप्पाबहुअं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सयं चेदि । तदुभयविसेसयत्तेण दंडयाणं पि तव्ववएसो । तत्थ सउक्कस्सदंडयपडिसेहफलो[2] जहण्णदंडयणिद्देसो । जइ एवं ण वत्तव्वमेदं, उक्कस्स-

---

❀ उससे संज्वलन लोभमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ २०६ ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं, क्योंकि विशेष अधिकका कारण प्रकृति विशेषमात्र है । इस प्रकार आगममें निपुण जीवोंको सूत्रके अविरोधरूपसे अनाहारक मार्गणा तक उत्कृष्ट अल्पबहुत्वका विचार कर ले जाना चाहिए ।

शंका—देशामर्षकरूपसे जिसमें समस्त मार्गणासम्बन्धी विशेषता का संग्रह हो गया है ऐसे इस एकेन्द्रियसम्बन्धी उत्कृष्ट प्रदेश अल्पबहुत्व दण्डककी विशेष प्ररूपणा आप क्यों नहीं करते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि इसकी अर्थप्ररूपणा सुगम है, उसका कोई फल नहीं है, इस लिए अलगसे प्ररूपणा नहीं की है । यदि कहा जाय कि शेष मार्गणाओंमें अल्पबहुत्वप्ररूपणाकी सुगमता असिद्ध है सो भी बात नहीं है, क्योकि ओघदण्डक, गतिमार्गणादण्डक और एकेन्द्रियदण्डकके कथनसे प्रायः कर समस्त मार्गणाओंका ज्ञान देखा जाता है ।

अब उत्कृष्ट अल्पबहुत्वकी समाप्तिके अनन्तर यथावसर प्राप्त जघन्य प्रदेशअल्पबहुत्वका कथन करनेके लिए यतिवृषभ भगवान् प्रतिज्ञासूत्र कहते हैं—

*** जघन्य दण्डक कारण सहित ओघसे कहेंगे ।**

§ २०७. इस वक्तव्यरूप प्रतिज्ञासूत्रके अर्थका विवरण करते हैं । यथा—अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । इन दोनोंसे विशेषित होकर दण्डकोंकी भी वही संज्ञा है । उनमेंसे जघन्य दण्डकके निर्देश करनेका फल अपने उत्कृष्ट दण्डकका निषेध करना है ।

शंका—यदि ऐसा है तो 'जघन्य दण्डक' पदका निर्देश नहीं करना चाहिए, क्योंकि

---

१. ता०प्रतौ '-विसेसकारणत्तादो' इति पाठः । २. ता०प्रतौ 'स (व) उक्कस्स-' इति पाठः ।

दंडयस्स पुव्वमेव परूविदत्तादो पारिसेसियण्णाएण एदस्स अणुत्तसिद्धीदो त्ति ? ण एस दोसो, मंदबुद्धिसिस्साणुग्गहट्ठं तहा परूवणादो। अदो चेव एदस्स वि पइज्जासुत्तस्स सद्दाणुसारिसिस्सस्स पोच्छाहणफलस्स उवण्णासो सहलो, अण्णहा पेक्खापुव्वयारीणमणादरणीयत्तादो। एदेण सव्वसत्ताणुग्गहकारित्तं भयवंताण सूचिदं। अहवा जहण्णसामित्तम्मि परूविदअजहण्णट्ठाणवियप्पाणमणंतभेयभिण्णाणं णिरायरणट्ठं जहण्णदंडयणिद्देसो त्ति वत्तव्वं।

§ २०८. तस्स दुविहो णिद्देसो--ओघेण आदेसेण य। तत्थ आदेसंवुदासट्ठमोघेणे त्ति वयणं। वक्खाणकारयाणमाइरियाणं पोछाहणफलो सकारणो भणिहिदि त्ति सुत्तावयवणिद्देसो, अण्णहा अवलंवणाभावेण छदुमत्थाणं थोवबहुत्तकारणावगमणपरूवणाणं तंतजुत्तिविसयाणमणुववत्तीदो। दिसादरिसणमेत्तं चेदं, सम्मत्तजहण्णपदेससंतकम्मादो सम्मामिच्छत्तजहण्णपदेससंतकम्मबहुत्तमेत्ते चेव उवरिमपदाणं बीजपदभावेण सुत्ते कारणपरूवणादो। एत्थ सह कारणेण वट्टमाणो जहण्णदंडओ ओघेण भणिहिदि त्ति पदसंबंधो कायव्वो। सेसं सुगमं।

❀ सव्वत्थोवं सम्मत्ते जहण्णपदेससंतकम्मं।

उत्कृष्ट दण्डकका पहले ही कथन कर आये हैं, इसलिए पारिशेष न्यायके अनुसार बिना कहे ही इसकी सिद्धि हो जाती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि मन्दबुद्धि शिष्यका अनुग्रह करनेके लिए उस प्रकारसे कथन किया है और इसीसे ही शब्दानुसारी शिष्यकी पृच्छाके फलस्वरूप इस प्रतिज्ञासूत्रका भी उपन्यास सफल है, अन्यथा प्रेक्षापूर्वक व्यवहार करनेवालोंके लिए यह आदरणीय नहीं हो सकता। इससे भगवान् सब जीवोंका अनुग्रह करनेवाले होते हैं यह सूचित होता है। अथवा जघन्य स्वामित्वके समय कहे गये अनन्त भेदोंको लिए हुए अजघन्य स्थानोंके विकल्पोंका निराकरण करनेके लिए सूत्र में 'जघन्य दण्डक' पदका निर्देश करना चाहिए।

§ २०८. उसका निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे आदेश निर्देशका निराकरण करनेके लिए सूत्रमें 'ओघसे' पदका निर्देश किया है। व्याख्यानकारक आचार्योंकी पृच्छाके फलस्वरूप 'सकारण कहेंगे' इस सूत्रावयवका निर्देश किया है, अन्यथा अल्पबहुत्वके कारणका जो भी ज्ञान है उसका कथन छद्मस्थोंके बिना अवलम्बनके आगमयुक्ति पुरस्सर है यह नहीं बन सकता। यह सूत्र दिशाका आभासमात्र करता है, क्योंकि सम्यक्त्वके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य प्रदेशसत्कर्म बहुत है इतने मात्रसे उपरिम पद बीजपदरूपसे सूत्रमें कारणका निरूपण करते हैं। यहाँ पर कारण सहित विद्यमान जघन्य दण्डक ओघसे कहेंगे इस प्रकार पदसम्बन्ध करना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

*** सम्यक्त्वमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म सबसे स्तोक है।**

---

१. आ॰प्रतौ 'तत्थ ओघेण आदेस-' इति पाठः।

§ २०६. एदस्स जहण्णप्पाबहुअदंडयमूलसुत्तस्स अवयवत्थपरूवणं कस्सामो। तं जहा—सव्वेहिंतो उवरि वुच्चमाणासेसपयडिजहण्णपदेसपडिबद्धपदेहिंतो थोवमप्पयरं सव्वथोवं। किं तं? सम्मत्ते[1] जहण्णपदेससंतकम्मं। एत्थ सेस-पयडिपडिसेहफलो सम्मत्तणिद्देसो। जहण्णणिद्देसो अजहण्णादिवियप्पणिवारणफलो। ट्ठिदि-अणुभागादिवुदासट्ठो पदेसणिद्देसो। बंधादिविसेसपडिसेहट्ठं संतकम्मं ति वयणं। खविदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण णिरदिचारेहि असिधाराचरियाए कम्मट्ठिदि-मेत्तकालं संचरिय थोवाउएसु असण्णिपंचिंदिएसुववज्जिय देवाउअबंधवसेण देवेसुप्पज्जिय छप्पज्जत्तिसमाणणवावारेण अंतोमुहुत्ते गदे उक्कस्सअपुव्वकरणादिपरिणामेहि गुणसेढि-णिज्जरमुक्कस्सं काऊण उवसमसम्मत्तलंभपढमसमयप्पहुडि सव्वजहण्णगुणसंकमकालेण सव्वुक्कस्सगुणसंकमभागहारेण च थोवयरं मिच्छत्तदव्वं सम्मत्तसरूवेण परिणमाविय वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय वेछावट्ठिसागरोवमाणि परिभमिय मिच्छत्तं गंतूण दीहुव्वेल्लण-कालेणुव्वेल्लिय सम्मत्तचरिमफालिं मिच्छत्तसरूवेण परिणमाविय एगणिसेगं दुसमय-कालं धरेयूण ट्ठिदजीवस्स य सम्मत्तजहण्णपदेससंतकम्मं सेसपयडिजहण्णपदेसेहिंतो[2]

§ २०६. जघन्य अल्पबहुत्व दण्डकके मूलरूप इस सूत्रके अवयवोंके अर्थका कथन करते हैं। यथा—सबसे अर्थात् आगे कही जानेवाली सब प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशोंसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रदेशोंसे स्तोक अर्थात् अल्पतर सर्वस्तोक कहलाता है। वह सर्वस्तोक क्या है? सम्यक्त्वमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म। यहाँ सम्यक्त्व पदके निर्देशका फल शेष प्रकृतियोंका प्रतिषेध करना है। जघन्य' पदके निर्देश करनेका फल अजघन्य आदि विकल्पोंका निवारण करना है। स्थिति और अनुभाग आदिका निवारण करनेके लिए 'प्रदेश' पदका निर्देश किया है। बन्ध आदि विशेषोंका निषेध करनेके लिए 'सत्कर्म' यह वचन दिया है। जो क्षपितकर्मांशिक विधिसे आकर निरतिचाररूपसे असिधारा चर्याके द्वारा कर्मस्थितिप्रमाण काल तक परिभ्रमण करके पुनः स्तोक आयुवाले असंज्ञी पञ्चेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर और देवायुका बन्ध होनेसे देवोंमें उत्पन्न होकर छह पर्याप्तियोंको पूर्ण करने रूप व्यापारके द्वारा अन्तर्मुहूर्त काल जाने पर अपूर्वकरण आदि परिणामोंके द्वारा उत्कृष्ट गुणश्रेणिनिर्जरा करके उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयसे लेकर सबसे जघन्य गुणसंक्रम काल और सबसे उत्कृष्ट गुणसंक्रमभागहारके द्वारा मिथ्यात्वके स्तोकतर द्रव्यको सम्यक्त्वरूपसे परिणमा कर अनन्तर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर उसके साथ दो छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण करके अनन्तर मिथ्यात्वमें जाकर सबसे दीर्घ उद्वेलना कालके द्वारा अन्तमें सम्यक्त्वकी अन्तिम फालिको मिथ्यात्वरूपसे परिणमा कर दो समय कालकी स्थितिवाले एक निषेकको धारण कर स्थित है उसके सम्यक्त्वका जघन्य प्रदेशसत्कर्म शेष प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशोंको देखते हुए स्तोकतर होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—इसका स्तोकपना कैसे है?

1. ता०प्रतौ किंतु (तं) सम्मत्ते' आ०प्रतौ किंतु सम्मत्ते' इति पाठः। 2. ता०प्रतौ '–जहण्ण-पदेहिंतो' इति पाठः।

थोवयरं ति वुत्तं होदि । कुदो एदस्स थोवत्तं ? ओकड्डुक्कड्डणभागहारगुणिदगुणसंकमुकस्सभागहारपदुप्पण्णाए वेछावट्ठिसागरोवमणाणागुणहाणिसलागाणमण्णोण्णब्भत्थरासीए दीहुव्वेल्लणकालब्भंतरणाणागुणहाणिसलागाणमण्णोण्णब्भत्थरासिणा चरिमफालिआयामेण च गुणिदाए ओवट्टिददिवड्डगुणहाणिमेत्तेइंदियसमयपबद्धपमाणत्तादो । एदं च दव्वं उवरिमपयडिपदेसेहिंतो थोवयरत्तस्स णायसिद्धत्तादो। होंतं वि सव्वत्थोवमसंखेज्जसयपबद्धपमाणं ति घेत्तव्वं, हेट्ठिमासेसभागहारकलावादो समयपबद्धगुणगारभूददिवड्डगुणहाणीए असंखेज्जगुणत्तादो । समयपबद्धगुणगारकारणो जहण्णदंडओ भणिहिदि त्ति पइज्जं काऊण एदस्स मूलपदस्स थोवत्ते कारणमभणंतस्स सुत्तयारस्स पुव्वावरविरोहदोसो त्ति णासंकणिज्जं, थोवादो एदम्हादो अण्णेसिं बहुत्तकारणपरूवणाए सुत्तयारेण पइण्णाए कदत्तादो । सुगमं वा एत्थ कारणमिदि तदपरूवणमाइरियभडारयस्स ।

❀ सम्मामिच्छत्ते जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं ।

§ २१०. कुदो ? सम्मत्तस्स प्पमाणेगेगट्ठिदीहिंतो सम्मामिच्छत्तपमाणेगेगट्ठिदीणमसंखेज्जगुणत्तुवलंभादो । कुदो उभयत्थ भज्ज-भागहाराणं सरिसत्ते संते सम्मत्त-

समाधान—अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारका गुणसंक्रम भागहारके साथ गुणा कर जो लब्ध आवे उससे उत्पन्न हुई जो दो छयासठ सागरोंकी नानागुणहानि शलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्तराशि उसे दीर्घ उद्वेलन कालके भीतर नानागुणहानिशलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्तराशिसे और अन्तिम फालिके आयामसे गुणित करने पर जो लब्ध आवे उसका डेढ़ गुणहानिमात्र एकेन्द्रियोंके समयप्रबद्धोंमें भाग देने पर इसका प्रमाण आता है और यह द्रव्य उपरिम प्रकृतियोंके प्रदेशोंसे स्तोकतर है यह न्यायसिद्ध है। यह सबसे स्तोक होता हुआ भी असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण है ऐसा यहाँ पर ग्रहण करना चाहिए. क्योंकि नीचेके समस्त भागहारकलापसे समयप्रबद्धकी गुणकारभूत डेढ़ गुणहानि असंख्यातगुणी है।

शंका—समयप्रबद्धके गुणकारके कारणके साथ जघन्य दण्डक कहेंगे ऐसी प्रतिज्ञा करके इस मूलपदके स्तोकपनेके कारणको नहीं कहनेवाले सूत्रकार पूर्वापर विरोधरूप दोषके भागी ठहरते हैं ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि सूत्रकारने स्तोकरूप सम्यक्त्वके द्रव्यसे अन्य प्रकृतियोंके द्रव्यके बहुत होनेका कारण कहेंगे ऐसी प्रतिज्ञा की है। अथवा यहाँ पर कारण सुगम है, इसलिए आचार्य भट्टारकने उसका कथन नहीं किया।

*** उससे सम्यग्मिथ्यात्वमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है ।**

§ २१०. क्योंकि सम्यक्त्वप्रमाण एक एक स्थितिसे सम्यग्मिथ्यात्वप्रमाण एक एक स्थिति असंख्यातगुणी उपलब्ध होती है।

शंका—उभयत्र भज्यमान और भागहारराशिके समान होते हुए सम्यक्त्व और

१. ता०प्रतौ '-दिवड्डगुणहाणिमेत्ते (त्त) इंदिय-' इति पाठः ।

सम्मामिच्छत्तसमाणट्ठिदिट्ठिदगोवुच्छाणमेवं विसरिसत्तं ? ण, मिच्छत्तादो सम्मत्त-सरूवेण परिणमंतदव्वस्स गुणसंकमभागहारादो तत्तो चेव सम्मामिच्छत्तसरूवेण संकमंतपदेसग्गगुणसंकमभागहारस्स असंखेज्जगुणहीणत्तुवलंभादो। ण चेदमसिद्धं, गुणसंकमपढमसमए मिच्छत्तादो जं सम्मत्ते संकमदि पदेसग्गं [तं] थोवं। तम्मि चेव समए सम्मामिच्छत्ते संकमदि पदेसग्गमसंखेज्जगुणं ति सुत्तादो तस्स सिद्धीए। ण च भागहारविसेसमंतरेण दव्वस्स तहाभावो जुज्जदे, विरोहादो। एत्थ सम्मामि० गुणसंकमभागहारोवट्टिदसम्मत्तगुणसंकमभागहारो गुणगारो। कधं पुण विसेस-घादवसेण[1] पुव्वमेव सम्मत्तस्स जहण्णत्ते संते उवरि पलिदोवमस्स असंखे०भाग-मेत्तद्धाणं गंतूण पत्तजहण्णभावं सम्मामिच्छत्तपदेसग्गं तत्तो असंखेज्जगुणं, उवरुवरि एगेगगोवुच्छविसेसाणं हाणिदंसणादो। तदो ण एदस्स असंखेज्जगुणत्तं सम्ममवगमदि त्ति संदेहेण घुलमाणहिययस्स सिस्सस्स अहिप्पायमासंकिय सुत्तयारो पुच्छा-सुत्तं भणदि—

❀ केण कारणेण ?

२११. एदस्स भावत्थो जइ उवरिमसम्मामिच्छत्तुव्वेल्लणकालब्भंतरे असंखेज्ज-

सम्यग्मिथ्यात्वकी समान स्थितियोंमें स्थित गोपुच्छाएँ इस प्रकार विसदृश कैसे होती हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वमेंसे सम्यक्त्वरूप परिणमन करनेवाले द्रव्यके गुणसंक्रम भागहारसे उसीमेंसे सम्यग्मिथ्यात्वरूप संक्रम करनेवाले प्रदेशसमूहका गुणसंक्रम भागहार असंख्यातगुणा हीन उपलब्ध होता है। और यह असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि गुणसंक्रमके प्रथम समयमें मिथ्यात्वमेंसे जो प्रदेशसमूह सम्यक्त्वमें संक्रमणको प्राप्त होता है वह स्तोक है और उसी समयमें सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमणको प्राप्त होनेवाला प्रदेशसमूह असंख्यातगुणा है इस सूत्रसे उसकी सिद्धि होती है और भागहारविशेषके बिना द्रव्यका उस प्रकारका होना बन नहीं सकता, क्योंकि विरोध आता है।

यहाँ पर सम्यक्त्वके द्रव्यसे सम्यग्मिथ्यात्वका असंख्यातगुणा द्रव्य लानेके लिए सम्यग्मिथ्यात्वके गुणसंक्रमभागहारसे भाजित सम्यक्त्वका गुणसंक्रमभागहार गुणकार है। विशेष घातके वशसे सम्यक्त्वके द्रव्यके पहले ही जघन्य हो जाने पर उससे आगे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थान जाकर जघन्यपनेको प्राप्त हुआ सम्यग्मिथ्यात्वका प्रदेशसमूह उससे असंख्यातगुणा कैसे हो सकता है, क्योंकि आगे आगे उसमें एक एक गोपुच्छ विशेषोंकी हानि देखी जाती है, इसलिए इसका असंख्यातगुणा होना समीचीन नहीं प्रतीत होता इस प्रकारके सन्देहसे जिसका हृदय घुल रहा है उस शिष्यके अभिप्रायकी आशंका कर सूत्रकार पृच्छासूत्र कहते हैं—

❀ इसका कारण क्या है ?

§ २११. इस सूत्रका भावार्थ यह है कि यदि सम्यग्मिथ्यात्वके उपरिम उद्वेलन कालके

१. ता०प्रतौ 'विसेस (घाद) घादवसेण' इति पाठः।

गुणहाणीओ संभवंति तो तासिमण्णोण्णब्भत्थरासी गुणसंकमभागहारेण किं सरिसी संखेज्जगुणा असंखेज्जगुणा संखेज्जगुणहीणा असंखेज्जगुणहीणा वा त्ति ण णिच्छओ काउं सक्किज्जदि। तहा च कथमेदस्स असंखेज्जगुणत्तं परिछिज्जदे ? ण च तत्थ असंखेज्जाओ गुणहाणीओ णत्थि चेवे त्ति वोत्तुं जुत्तं, तदभावगाहयपमाणाणुवलंभादो त्ति। एवं विरुद्धबुद्धीए सिस्सेण कारणविसयाए पुच्छाए कदाए कारणपरूवणादुवारेण तस्संदेहणिरायरणट्ठमुत्तरसुत्तमाइरिओ भणदि—

❀ सम्मत्ते उव्वेल्लिदे सम्मामिच्छत्तं जेण कालेण उव्वेल्लेदि एदम्मि काले एक्कं पि पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरं णत्थि एदेण कारणेण।

§ २१२. एदस्स सुत्तस्स अवयवत्थो सुगमो। एत्थ पुण पदसंबंधो एवं कायव्वो। सम्मत्ते उव्वेल्लिदे संते जेण कालेण सम्मामिच्छत्तमुव्वेल्लेदि एदम्मि काले एक्कं पि पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरं जेण णत्थि एदेण कारणेण सम्मत्तादो सम्मामिच्छत्तस्स असंखेज्जगुणत्तं ण विरुज्झदे इदि। जइ वि पुव्वमेव सम्मत्तसंतकम्मे जहण्णे जादे पलिदोवमस्स असंखे०भागमेत्तमद्धाणमुवरि गंतूण सम्मामिच्छत्तपदेससंतकम्मं जहण्णं जादं तो वि तदो तस्स असंखेज्जगुणत्तं जुज्जदे, तस्स कालस्स एगगुणहाणीए असंखे०भागत्तेण तेत्तियमेत्तमद्धाणं गदस्स वि थोवयरगोवुच्छाविसेसाणं

भीतर असंख्यात गुणहानियाँ सम्भव होवें तो उनकी अन्योन्याभ्यस्तराशि गुणसंक्रमभागहारके क्या समान होती है या संख्यातगुणी होती है या असंख्यातगुणी होती है या संख्यातगुण हीन होती है या असंख्यातगुण हीन होती है यह निश्चय करना शक्य नहीं है और ऐसी अवस्थामें इसका असंख्यातगुणा होना कैसे जाना जाता है ? वहाँ असंख्यात गुणहानियाँ नहीं ही हैं ऐसा कहना युक्त नहीं है, क्योंकि उनके अभावका ग्राहक प्रमाण नहीं उपलब्ध होता। इस प्रकार विरुद्ध बुद्धिवाले शिष्यके द्वारा कारणविषयक पृच्छा करने पर कारणकी प्ररूपणा द्वारा उसके सन्देहका निराकरण करनेके लिए आचार्य आगेका सूत्र कहते हैं—

*** इसका कारण यह है कि सम्यक्त्वकी उद्वेलना होने पर जितने कालमें सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होती है उस कालके भीतर एक भी प्रदेशगुहानिस्थानान्तर नहीं है।**

§ २१२. इस सूत्रका अवयवरूप अर्थ सुगम है। यहाँ पर पदसम्बन्ध इस प्रकार करना चाहिए—सम्यक्त्वकी उद्वेलना हो जाने पर जितने काल द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करता है इस कालमें यतः एक भी प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर नहीं है इस कारणसे सम्यक्त्वके द्रव्यसे सम्यग्मिथ्यात्वके द्रव्यका असंख्यातगुणा होना विरोधको प्राप्त नहीं होता। यद्यपि सम्यक्त्वका सत्कर्म पहले ही जघन्य हो गया है और उससे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थान आगे जा कर सम्यग्मिथ्यात्वका प्रदेशसत्कर्म जघन्य हुआ है तो भी सम्यक्त्वके द्रव्यसे सम्यग्मिथ्यात्वका द्रव्य असंख्यातगुणा है यह बात बन जाती है, क्योंकि वह काल एक गुणहानिके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए उतने स्थान जाकर भी बहुत थोड़े गोपुच्छाविशेषोंकी ही हानि देखी जाती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

चेव परिहाणिदंसणादो त्ति वुत्तं होदि। एदम्मि अद्धाणे पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरं णत्थि त्ति एदं कुदो परिच्छिज्जदे ? एदम्हादो चेव जिणवयणादो। ण च पमाणं पमाणंतरमवेक्खदे, अणवत्थापसंगादो। ण च एदस्स पमाणत्तं सज्झसमं, जिणवयणत्तण्णहाणुववत्तीदो एदस्स पमाणभावसिद्धीदो। कथं सज्झ-साहणाणमेयत्तमिदि ण पच्चवट्ठेयं[1], स-परप्पयासयपदीव-पमाणादीहि परिहरिदत्तादो। तदो सुत्तं पमाणत्तादो पमाणंतरणिरवेक्खमिदि सिद्धं।

*** अणंताणुबंधिमाणे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं।**

§ २१३. एत्थ समणंतरादीददेसामासियसुत्तेण आदिदीवयभावेण सूचिदं कारणपरूवणं भणिस्सामो। तं जहा—दिवड्ढगुणहाणिगुणिदेगेइंदियसमयपवद्धे अंतोमुहुत्तोवट्टिदओकड्डुकड्डण-अधापवत्तभागहारेहि वेछावट्ठिअब्भंतरणाणागुणहाणिसलागाणमण्णोण्णब्भत्थरासिणा च चरिमफालिगुणिदेणोवट्टिदे असंखेज्जसमयपवद्धपमाणमणंताणुबंधिमाणजहण्णदव्वमागच्छदि। एदं पुण पुव्विल्लजहण्णदव्वादो[2] असंखेज्जगुणं, तत्थ इह वुत्तासेसभागहारेसु संतेसु दीहुव्वेल्लणकालब्भंतरणाणागुणहाणि-

शंका—इस अध्वानमें प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर नहीं है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है।

समाधान—इसी जिनवचनसे जाना जाता है। और एक प्रमाण दूसरे प्रमाणकी अपेक्षा नहीं करता, क्योंकि ऐसा होने पर अनवस्था दोष आता है। इसकी प्रमाणता साध्यसम है यह कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि अन्यथा वह जिनवचन नहीं बन सकता, इसलिए उसकी प्रमाणता सिद्ध है।

शंका—साध्य और साधन एक ही कैसे हो सकता है ?

समाधान—ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि दीपक और प्रमाण आदिक स्व-पर प्रकाशक होते हैं, इनसे उस शंकाका परिहार हो जाता है। इसलिए सूत्र प्रमाण होनेसे प्रमाणान्तरकी अपेक्षा नहीं करता यह सिद्ध हुआ।

*** उससे अनन्तानुबन्धी मानमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है।**

§ २१३. यहाँ पर इससे अनन्तर पूर्व कहा गया देशामर्षक सूत्र आदिदीपक भावरूप है, इसलिए उस द्वारा सूचित होनेवाले कारणका कथन करते हैं। यथा—डेढ़ गुणहानिगुणित एकेन्द्रिय सम्बन्धी समयप्रबद्धमें अन्तमुहूर्तसे भाजित अपकर्षण-उत्कर्षणभागहार, अधःप्रवृत्तभागहार और अन्तिम फालिसे गुणित दो छयासठ सागरके भीतरकी नाना गुणहानिशलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्तराशि इन सबका भाग देने पर अनन्तानुबन्धी मानका असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण जघन्य द्रव्य आता है। परन्तु यह सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य द्रव्यसे असंख्यातगुणा है, क्योंकि वहाँपर यहाँ कहे गये समस्त भागहार तो हैं ही। साथ ही दीर्घ उद्वेलना

1. आ०प्रतौ 'पच्चवट्ठियं' इति पाठः। 2. ता०प्रतौ 'एदेण पुव्विल्लजहण्णदव्वादो' इति पाठः।

सलागाणमण्णोण्णब्भत्थरासिभागहारस्स अहियत्तुवलंभादो। ण च अधापवत्तभागहारो तत्थ णत्थि त्ति तस्स तहाभावविरोहो आसंकणिज्जो, तदुज्जसे गुणसंकमभागहारस्स सव्वुक्कस्सुवलंभादो। ण च अधापवत्तभागहारादो गुणसंकमभागहारस्स असंखेज्ज-गुणहीणत्तं, तहाभावपडिबंधयमधापवत्तभागहारस्स असंखे०भागादो गुणसंकमभागहार-पडिभागियादो दीहुव्वेल्लणकालब्भंतरणाणागुणहाणिसलागाणमण्णोण्णब्भत्थरासिस्स असंखेज्जगुणत्तादो अणंताणुबंधिविसंजोयणचरिमफालीदो उव्वेल्लणचरिमफालीए असंखेज्जगुणत्तुवलंभादो च। एदं पि कुदो णव्वदे? जहण्णट्ठिदिसंकमप्पाबहुए णिरयगइमग्गणापडिबद्धे अणंताणुबंधीणं विसंजोयणचरिमफालीए जहण्णभावमुवगय-जहण्णट्ठिदिसंकमादो उव्वेल्लणाचरिमफालीए जहण्णभावंसम्मामिच्छत्तजहण्णट्ठिदि-संकमस्स असंखेज्जगुणत्तपरूवयसुत्तादो। करणपरिणामेहि पत्तघादाणंताणुबंधिचरिम-फालीदो मिच्छादिट्ठिपरिणामेहि घादिदावसेसिदसम्मामिच्छत्तचरिमफालीए असंखेज्ज-गुणत्तस्स णायसिद्धत्तादो च। तदो चेव सव्वुक्कस्सुव्वेल्लणकालण्णोण्णब्भत्थरासीदो असंखे०गुणो गुणगारो एत्थ वक्खाणाइरिएहि परूविदो ण विरुज्झदे। गुणसंकम-भागहारोवट्टिदअधापवत्तभागहारादो चरिमफालिगुणगारस्स गुरूवएसबलेण असंखे०-

---

कालके भीतर नाना गुणहानिशलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्तराशिरूप भागहार अधिक उपलब्ध होता है। यदि कोई ऐसी आशंका करे कि वहाँ पर अधःप्रवृत्तभागहार नहीं है, इसलिए उसके उस प्रकारके माननेमें विरोध आता है सो ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि उसकी पूर्तिस्वरूप वहाँ पर सर्वोत्कृष्ट गुणसंक्रमभागहार उपलब्ध होता है। यदि कहा जाय कि अधः-प्रवृत्तभागहारसे गुणसंक्रमभागहार असंख्यातगुणा हीन होता है सो ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि उस प्रकारको प्रतिबन्ध करनेवाला अधःप्रवृत्तभागहार असंख्यातवें भागप्रमाण है, गुणसंक्रमभागहारका प्रतिभागी होनेसे दीर्घ उद्वेलना कालके भीतर नाना गुणहानिशलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्तराशि असंख्यातगुणी है और अनन्तानुबन्धी विसंयोजनाकी अन्तिम फालिसे उद्वेलनाकी अन्तिम फालि असंख्यातगुणी उपलब्ध होती है।

शंका—यह भी किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—नरकगतिमार्गणा से सम्बन्ध रखनेवाले जघन्य स्थितिसंक्रम अल्पबहुत्वके प्रकरणमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाकी अन्तिम फालिमेंसे जघन्यपनेको प्राप्त हुआ सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है ऐसा कथन करनेवाले सूत्रसे जाना जाता है।

तथा करण परिणामोंके द्वारा घातको प्राप्त हुई अनन्तानुबन्धीकी अन्तिम फालिसे मिथ्या-दृष्टिसम्बन्धी परिणामोंके द्वारा घात होकर शेष बची सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालि असंख्यात-गुणी होती है यह न्यायसिद्ध बात है और इसलिए ही यहाँ पर व्याख्यानाचार्योंके द्वारा सर्वो-त्कृष्ट उद्वेलनाकालकी अन्योन्याभ्यस्त राशिसे असंख्यातगुणा कहा गया गुणकार विरोधको प्राप्त नहीं होता। गुणसंक्रमभागहारसे भाजित अधःप्रवृत्तभागहारसे अन्तिम फालिका गुणकार गुरुके

---

१. आ०प्रतौ '-संकमस्स जहण्णभाव-' इति पाठः।

गुणत्तब्भुवगमादो । एसो च गुणगारो विगिदिगोवुच्छमवलंबिय परूविदो । परमत्थदो पुण तत्तो वि असंखे०गुणो पलिदो० असंखे०भागमेत्तो । एत्थ गुणगारो विगिदिगोवुच्छादो असंखेज्जगुणो, गुणसेढिगोवुच्छं मोत्तूण तिस्से एत्थ पाहण्णियाभावादो ।

❀ कोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ २१४. एत्थ पुव्विल्लसुत्तादो अणंताणुबंधिग्गहणमणुवट्टावेदव्वं । जइ वि अणंताणुबंधिचउक्कस्स समाणसामियत्तं तो वि पयडिविसेसवसेण विसेसाहियत्तं ण विरुज्झदे । सेसं सुगमं ।

❀ मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ २१५. कारणमेत्थ सुगमं, अणंतरपरूविदत्तादो ।

❀ लोभे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ २१६. सुगममेदं सुत्तं, पयडिविसेसमेत्तकारणत्तादो ।

❀ मिच्छत्ते जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं ।

§ २१७. कुदो अणंताणुबंधिलोभ-मिच्छत्ताणं अणंताणुबंधीणं मिच्छत्तभंगो त्ति सामित्तसुत्तुवलंभेण समाणसामियाणमण्णोण्णं पेक्खियूण असंखेज्जगुणहीणाहिय-

---

उपदेशबलसे असंख्यातगुणा स्वीकार किया गया है । यह गुणकार विकृतिगोपुच्छाका अवलम्बन लेकर कहा गया है । परमार्थसे तो उससे भी असंख्यातगुणा है जो पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । यहाँ पर गुणकार विकृतिगोपुच्छासे असंख्यातगुणा है, क्योंकि गुणश्रेणिगोपुच्छाको छोड़कर उसकी यहाँ पर प्रधानता नहीं है ।

*** उससे अनन्तानुबन्धी क्रोधमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।**

§ २१४. यहाँ पर पहलेके सूत्रसे अनन्तानुबन्धी पदको ग्रहण कर उसकी अनुवृत्ति करनी चाहिए । यद्यपि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका स्वामी समान है तो भी प्रकृतिविशेष होनेसे विशेष अधिकपना विरोधको नहीं प्राप्त होता । शेष कथन सुगम है ।

*** उससे अनन्तानुबन्धी मायामें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।**

§ २१५. यहाँ पर कारण सुगम है, क्योंकि उसका पहले कथन कर आये हैं ।

*** उससे अनन्तानुबन्धी लोभमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।**

§ ११६. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि विशेष अधिकका कारण प्रकृतिविशेष है ।

*** उससे मिथ्यात्वमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है ।**

§ २१७. शंका—अनन्तानुबन्धियोंका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है इस प्रकारके स्वामित्व सूत्रके उपलब्ध होनेसे समान स्वामीवाले अनन्तानुबन्धी लोभ और मिथ्यात्वका द्रव्य एक दूसरेको देखते हुए असंख्यातगुणा हीन और असंख्यातगुणा अधिक कैसे बन सकता है ?

भावो ? ण, खविदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण देवेसुववज्जिय अणंताणुबंधिं विसंजोएयूण पुणो अंतोमुहुत्तसंजुत्तावत्थाए सेसकसायदव्वं दिवड्ढगुणहाणिगुणिदेगेइंदियसमयपबद्धादो उकड्डिदमेत्तमधापवत्तभागहारेण खंडिय तत्थेयखंडपमाणं तदसंखेज्जदिभागत्तणेण अप्पहाणीकयणवकबंधमणंताणुबंधिसरूवेण परिणमाविय सम्मत्तलाभेण वेछावट्ठीओ गालिय विसंजोयणाए दुचरिमसमयट्ठिदजीवम्मि पत्तजहण्णभावस्स अणंताणुबंधिलोभदव्वस्स अधापवत्तभागहारेण विणा जहण्णभावमुवगयमिच्छत्तजहण्णपदेससंतकम्मादो असंखेज्जगुणहीणत्तस्स णाइयत्तादो। एत्थ गुणगारो अधापवत्तभागहारादो असंखेज्जगुणो। कथं मूलदव्वादो मूलदव्वस्स अधापवत्तभागहारे गुणगारे संते तं मोत्तूण तत्तो असंखेज्जगुणत्तं गुणगारस्स ? ण, अणंताणु०विसंजोयणाचरिमफालीदो दंसणमोहक्खवणचरिमफालीए असंखेज्जगुणहीणत्तेण तहाभावं पडि विरोहाभावादो। ण च चरिमफालीणं तहाभावो असिद्धो, जहण्णट्ठिदिसंकमप्पाबहुअसुत्तबलेण तस्सिद्धीदो। एसो विगिदिगोपुच्छागुणगारो वुत्तो। समुदायगुणगारो पुण तप्पाओग्गो पलिदो० असंखे०भागमेत्तो, पुव्विल्लगुणसेढिगोवुच्छादो एत्थतणगुणसेढिगोवुच्छाए दंसणमोहक्खवगपरिणामपाहम्मेण तावदिगुणत्तुवलंभादो। एसो

समाधान—नहीं, क्योंकि जिस जीवने क्षपितकर्मांशिक विधिसे आकर और देवोंमें उत्पन्न होकर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है। पुनः जिसने अन्तर्मुहूर्त काल तक उसकी संयुक्तावस्थामें रहते हुए डेढ़ गुणहानिसे गुणित एकेन्द्रियसम्बन्धी समयप्रबलद्धमेंसे उत्कर्षणको प्राप्त हुए द्रव्यमें अधःप्रवृत्तभागहारका भाग देकर जो एक भाग लब्ध आवे तत्प्रमाण शेष कषायोंके द्रव्यको अनन्तानुबन्धीरूपसे परिणमाया है। यद्यपि यहाँ पर उस एक भागका असंख्यातवां भाग नवकबन्धका द्रव्य भी अनन्तानुबन्धीरूपसे परिणत होता है पर उसकी प्रधानता नहीं है। उसके बाद जो सम्यक्त्वको प्राप्त कर दो छयासठ सागर काल तक उक्त द्रव्यको गलाते हुए विसंयोजनाके द्विचरम समयमें स्थित है उसके जघन्य भावको प्राप्त हुआ अनन्तानुबन्धी लोभका द्रव्य अधःप्रवृत्तभागहारके बिना जघन्य भावको प्राप्त हुए मिथ्यात्वके जघन्य प्रदेशसत्कर्मसे असंख्यातगुणा हीन होता है यह बात न्याय है। यहाँ पर गुणकार अधःप्रवृत्तभागहारसे असंख्यातगुणा है।

शंका—मूल द्रव्यसे मूल द्रव्यका अधःप्रवृत्तभागहार रूप गुणकार रहते हुए उसे छोड़कर गुणकार उससे असंख्यातगुणा कैसे है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाकी अन्तिम फालिसे दर्शनमोहक्षपणाकी अन्तिम फालि असंख्यातगुणी हीन होनेसे गुणकारके उस प्रकारके होनेमें कोई विरोध नहीं आता। और अन्तिम फालियोंका उस प्रकारका होना असिद्ध है यह बात भी नहीं है, क्योंकि जघन्य स्थितिसंक्रमके अल्पबहुत्वका कथन करनेवाले सूत्रके बलसे उसकी सिद्धि होती है।

यह विकृतिगोपुच्छाका गुणकार कहा है। समुदायरूप गुणकार तो तत्प्रायोग्य पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि पहलेकी गुणश्रेणि गोपुच्छासे यहाँकी गुणश्रेणि गोपुच्छा दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाले जीवोंके परिणामोंकी प्रधानतावश उतनी गुणी उपलब्ध होती

च गुणगारो एत्थ पहाणो विसोहिपरिणामाइसयवसेण। गुणसेढिमाहप्पं कुदो परिच्छिज्जदे?

सम्मत्तुप्पत्ती वि य सावयविरए अणंतकम्मंसे।
दंसणमोहक्खवए कसायउवसामए य उवसंते ॥१॥
खवए य खीणमोहे जिणे य णियमा भवे असंखेज्जा।
तव्विवरीदो कालो संखेज्जगुणा य सेढीए ॥२॥

इदि एदम्हादो गाहासुत्तादो।

❀ अपच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेसंतकम्ममसंखेज्जगुणं।

§ २१८. कुदो? खविदकम्मंसियलक्खणेण अभवसिद्धियपाओग्गजहण्ण-संतकम्मं काऊण पुणो तसेसु पलिदो० असंखे०भागमेत्तकालं संजमासंजम-संजम-सम्मत्त-परिणमणवारेहि बहुकम्मपुग्गलगालणं काऊण चत्तारि वारे कसाए उवसामेयूण पुणो वि एइंदिएसुववज्जिय पलिदो० असंखे०भागमेत्तकालेण कम्मं हदसमुप्पत्तियं काऊण समयाविरोहेण मणुसेसुववज्जिय देसूणपुव्वकोडिमेत्तकालं संजमगुणसेढिणिज्जरं काऊण कदासेसकरणिज्जो होदूण अंतोमुहुत्तावसेसे सिज्झिदव्वए चारित्तमोहक्खवणाए अब्भुट्ठिय अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु अट्ठकसायचरिमफालिं परसरूवेण संछुहिय उदयावलियपविट्ठगोवुच्छाओ गालिय ट्ठिदजीवम्मि पुव्वमपरिभमिद-वेछावट्ठिसागरोवमम्मि एगणिसेगे दुसमयकालट्ठिदिगे सेसे पत्तजहण्णभावस्स

है। और विशुद्धिरूप परिणामोंके अतिशयवश यह गुणकार यहाँपर प्रधान है।

शंका—गुणश्रेणिका माहात्म्य किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—सम्यक्त्वोत्पत्ति, श्रावक, विरत, अनन्तानुबन्धी कषायकी विसंयोजना करनेवाला, दर्शनमोहका क्षपक, चारित्रमोहका उपशामक, उपशान्तकषाय, क्षपक, क्षीणमोह और जिन इन स्थानोंमें उत्तरोत्तर असंख्यातगुणी निर्जरा होती है। परन्तु उस निर्जरामें लगनेवाला काल उससे विपरीत अर्थात् अन्तके स्थानसे प्रथम स्थानतक प्रत्येक स्थानमें संख्यातगुणा संख्यातगुणा है ॥१-२॥ इसप्रकार इन गाथासूत्रोंसे गुणश्रेणिका माहात्म्य जाना जाता है ॥१-२॥

* उससे अप्रत्याख्यान मानमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है।

§ २१८. क्योंकि क्षपितकर्मांशविधिसे अभव्योंके योग्य जघन्य सत्कर्म करके पुनः त्रसोंमें पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक संयमासंयम, संयम और सम्यक्त्वरूप परिणमण बारोंके द्वारा कर्मके बहुत पुद्गलोंको गलाकर तथा चार बार कषायोंका उपशमन करके अनन्तर पुनः एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा कर्मको हतसमुत्पत्तिक करके यथाशास्त्र मनुष्योंमें उत्पन्न होकर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण काल तक संयम गुणश्रेणि-निर्जरा करके पूरी तरह कृतकृत्य होकर सिद्ध होनेके लिए अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर चारित्र-मोहनीयकी क्षपणाके लिए उद्यत होकर अनिवृत्तिकरणके कालमें संख्यात बहुभाग जानेपर आठ कषायोंकी अन्तिम फालिको पररूपसे संक्रमण करके तथा उदयावलिमें प्रविष्ट हुई गोपुच्छाओंको गलाकर जो जीव स्थित है वह मिथ्यात्व का जघन्य द्रव्य करनेवालेके समान दो छयासठ सागर

एदस्स पुव्विल्लजहण्णदव्वादो गालिदवेछावट्ठिसागरोवममेत्तणिसेगादो असंखेज्जगुणत्तस्स णायसिद्धत्तादो। गुणगारो पुण ओकड्डुक्कड्डणभागहारगुणिदवेछावट्ठिसागरोवम-णाणागुणहाणिसलागाणं अण्णोण्णब्भत्थरासीदो दंसण-चरित्तमोहक्खवयचरिमफालि-विसेसमासेज्ज असंखेज्जगुणो त्ति घेत्तव्वो, विगिदिगोवुच्छाणं तहाभावदंसणादो। गुणसेढिपाहम्मेण[1] पुण तप्पाओग्गपलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तो पहाणगुणगारो साहेयव्वो, तत्थ परिणामाणुसारिगुणगारं मोत्तूण दव्वाणुसारिगुणगाराणुवलंभादो।

❀ कोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ २१९. कथमेदेसिं समाणसामियाणं हीणाहियभावो? ण, ढुक्कमाणकाले चेव पयडिविसेसेण तहासरूवेण ढुक्कमाणुवलंभादो[2]। विसेसपमाणमेत्थ सुगमं।

❀ मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ २२०. एत्थ कारणमणंतरपरूविदत्तादो सुगमं।

❀ लोभे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ २२१ कारणपरूवणं सुगमं।

❀ पच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

काल तक परिभ्रमण नहीं करता, इसलिए उसके दो समय कालवाली एक स्थितिके शेष रहने पर जो जघन्य द्रव्य होता है वह दो छयासठ सागर कालप्रमाण निषेकोंको गलाकर प्राप्त हुए मिथ्यात्वके जघन्य द्रव्यसे असंख्यातगुणा होता है यह न्यायसिद्ध बात है। परन्तु गुणकार अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारसे गुणित दो छयासठ सागरप्रमाण नाना गुणहानिशलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्त राशिसे दर्शनमोहनीय और चरित्रमोहनीयके क्षपककी अन्तिम फालि विशेषको देखते हुए असंख्यातगुणा है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि विकृतिगोपुच्छाऐं उस प्रकारकी देखी जाती हैं। परन्तु गुणश्रेणिकी मुख्यतासे तत्प्रायोग्य पल्यके असंख्यातवें भाग-प्रमाण प्रधान गुणकार साध लेना चाहिए, क्योंकि वहांपर परिणामानुसारी गुणकारको छोड़कर द्रव्यानुसारी गुणकार उपलब्ध होता है।

❀ उससे अप्रत्याख्यान क्रोधमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ २१९ शंका—समान स्वामीवाले इन कर्मोंमें हीनाधिक भाव कैसे होता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि सञ्चय होते समय ही प्रकृतिविशेष होनेके कारण उस रूपसे इनका सञ्चय होता है। विशेष प्रमाण यहाँ पर सुगम है।

* उससे अप्रत्याख्यान मायामें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ २२०. यहाँ पर कारण सुगम है, क्योंकि उसका अनन्तर पूर्व ही कथन कर आये हैं।

* उससे अप्रत्याख्यान लोभमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ २२१. कारणका कथन सुगम है।

* उससे प्रत्याख्यान मानमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

---

१. आ०प्रतौ '–पाहम्मेण तप्पाओग्ग–' इति पाठः। २. आ०प्रतौ 'ढुक्कणुवलंभादो' इति पाठः।

§ २२२. कुदो ? पयडिविसेसादो।

❀ कोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं[1]।

§ २२३. कुदो ? विस्ससादो[1]।

❀ मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ २२४. कुदो ? सहावदो[2]। सेसं सुगमं।

❀ लोभे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ २२५. एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि। केत्तियमेत्तेण ? आवलियाए असंखे०-भागपडिभागियपयडिविसेसमेत्तेण।

❀ कोहसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्ममणंतगुणं।

§ २२६. कुदो ? देसघादित्तेण सुलहपरिणामिकारणत्तादो। अदो चेव कधमसंखेज्जसमयपबद्धमेत्तपच्चक्खाणलोभगुणसेढिसरूवजहण्णदव्वादो समयपबद्धस्स असंखे०भागपमाणकोहसंजलणजहण्णदव्वमणंतगुणं ति णासंकणिज्जं, समयपबद्धगुणगारादो देसघादिपदेसगुणगारस्स अणंतगुणत्तादो। जदि वि सुहुमणिगोदजहण्णउववादजोगेण बद्धसमयपबद्धमेत्तं कोधसंजलणजहण्णदव्वं होज्ज तो वि सव्वघाइयपच्चक्खाण-

§ २२२. क्योंकि यह प्रकृति विशेष है।

* उससे प्रत्याख्यान क्रोधमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ २२३. क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

* उससे प्रत्याख्यान मायामें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ २२४. क्योंकि ऐसा स्वभाव है। शेष कथन सुगम है।

* उससे प्रत्याख्यान लोभमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ २२५. ये सूत्र सुगम हैं। कितना अधिक है ? आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उतना प्रत्याख्यान लोभमें विशेषका प्रमाण है।

* उससे क्रोध संज्वलनमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म अनन्तगुणा है।

§ २२६. क्योंकि यह देशघाति है, इसलिये इस रूप परिणामानेका कारण सुलभ है।

शंका—क्रोधमें संज्वलन देशघाति है केवल इसलिये असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण प्रत्याख्यान लोभके गुणश्रेणिरूप जघन्य द्रव्यसे समयप्रबद्धके असंख्यातवें भागप्रमाण क्रोधसंज्वलनका जघन्य द्रव्य अनन्तगुणा कैसे है ?

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि समयप्रबद्धके गुणकारसे देशघाति प्रदेशोंका गुणकार अनन्तगुणा है। यद्यपि क्रोधसंज्वलनका जघन्य द्रव्य सूक्ष्म निगोदियाके जघन्य उपपाद योग द्वारा बांधे गये समयप्रबद्धप्रमाण होवे तो भी वह सर्वघाति प्रत्याख्यान

१. आ०प्रतौ 'विसे०। विस्ससादो' इति पाठः। २. आ०प्रतौ 'विसे०। सहावदो।' इति पाठः।

लोभजहण्णदव्वादो अणंतगुणमेव। किं पुण तदो असंखे०गुणपंचिंदियघोलमाणजहण्ण-जोगबद्धसमयपबद्धस्स असंखेज्जभागमेत्तचरिमफालिदव्वमिदि वुत्तं होदि।

❀ माणसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ २२७. एत्थ कारणं वुच्चदे—कोहसंजलणजहण्णदव्वमेगसमयपबद्धमेत्तं होदूण मोहसव्वदव्वस्स चउब्भागपमाणं, चउव्विहबंधगेण बद्धत्तादो। एदं पुण एगसमय-पबद्धमोहणीयदव्वस्स तिभागमेत्तं माण-माया-लोभेसु तिहा विहंजिय ट्ठिदत्तादो। तदो विसेसाहियत्तं जुज्जदे तिभागब्भहियमिदि उत्तं होदि। एत्थ संदिट्ठीए चउवीस २४ पमाणमोहणीयदव्वपडिबद्धाए अव्वुप्पण्णसिस्साणं पबोहो कायव्वो।

❀ पुरिसवेदे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ २२८. कुदो? मोहणीयदव्वस्स दुभागपमाणत्तादो। तं पि कुदो? पंचविध-बंधयस्स मोहणीयसमयपबद्धमेत्तणोकसायभागभागित्तादो मोहणीयतिभागमेत्तमाण-संजलणदव्वादो तदद्धमेत्तपुरिसवेददव्वं दुभागेणब्भहियं होदि त्ति भावत्थो।

लोभके जघन्य द्रव्यसे अनन्तगुणा ही है। तिसपर चरमफालिका द्रव्य सूक्ष्म निगोदियाके जघन्य उपपादयोगसे असंख्यातगुणे पंचेन्द्रियके घोलमाण जघन्य योगद्वारा बांधे गये समय-प्रबद्धके असंख्यातवें भागप्रमाण है इसलिए उसका कहना ही क्या है यह इसका तात्पर्य है।

❀ उससे मानसंज्वलनमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ २२७. अब यहाँ इसका कारण कहते हैं—क्रोधसंज्वलनका जघन्य द्रव्य एक समय-प्रबद्धप्रमाण होता हुआ भी मोहके सब द्रव्यके चौथे भागप्रमाण है, क्योंकि उसका संज्वलनोंका बन्ध होते समय बन्ध हुआ है, किन्तु वह एक समयप्रबद्धप्रमाण होता हुआ भी मोहनीयके सब द्रव्यका तीसरा भाग है, क्योंकि वह मान, माया और लोभ इन तीनों भागोंमें विभक्त होकर स्थित है। इसलिए जो क्रोध संज्वलनके जघन्य द्रव्यसे मान संज्वलनका जघन्य द्रव्य विशेष अधिक कहा है वह युक्त है। क्रोधसंज्वलजके जघन्य द्रव्यसे मानसंज्वलनका जघन्य द्रव्य तीसरा भाग अधिक है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब यहाँ संदृष्टिसे मोहिनीयके सब द्रव्यको २४ मानकर अव्युत्पन्न शिष्योंको ज्ञान कराना चाहिये।

उदाहरण—मोहनीयका सब द्रव्य २४; संज्वलन क्रोध ६, संज्वलन मान ६, संज्वलन माया ६, संज्वलन लोभ ६। संज्वलन क्रोधकी बन्ध व्युच्छिति हो जाने पर संज्वलन मानका जघन्य प्रदेशसत्कर्म होता है उस समय, संज्वलनमान ८, माया ८, लोभ ८ इसप्रकार बँटवारा होता है। $८ - ६ = २ = \frac{६}{३}$

❀ उससे पुरुषवेदमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ २२८. क्योंकि यह सब मोहनीय द्रव्यके दूसरे भाग प्रमाण है।

शंका—यह सब मोहनीय द्रव्यके दूसरे भाग प्रमाण कैसे है?

समाधान—जो जीव पुरुषवेद और चार संज्वलन इन पाँच प्रकृतियोंका बन्ध कर रहा है उसके मोहनीयका जो समयप्रबद्ध नोकषायको प्राप्त होता है वह सब पुरुषवेदको मिल जाता है, इसलिये यह सब मोहनीय द्रव्यके दूसरे भाग प्रमाण है। इसका यह आशय है कि मोहनीयके

❀ मायासंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ २२९. दोण्हं पि मोहणीयस्स अद्धपमाणत्ते संते कुदो पुव्विल्लादो एदस्स विसेसाहियत्तं ? ण, पयडिविसेसेण पुव्विल्लदव्वमाव लि० असंखे०भागेण खंडिय तत्थेयखंडमेत्तेण एदस्स अहियत्तुवलंभादो ।

❀ णवुंसयवेदे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं ।

§ २३०. एत्थ कारणं वुच्चदे । तं जहा—मायासंजलणस्स चरिमसमयणवकबंधो दुसमयूणदोआवलियमेत्तद्धाणमुवरि गंतूण एगसमयपबद्धस्स असंखेज्जा भागा होदूण जहण्णपदेससंतकम्मं जादं । णवुंसयवेदस्स पुण असंखेज्जपंचिंदियसमयपबद्धसंजुत्त-गुणसेढिदव्वं जहण्णं जादं । तदो किंचूणसमयपबद्धमेत्तजहण्णदव्वादो असंखेज्जसमय-पबद्धपमाणणवुंसयवेदजहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं होदि त्ति ण एत्थ संदेहो ।

❀ इत्थिवेदस्स जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ २३१. कुदो सरिसपरिणामेहि कयगुणसेढीणं दोण्हं पि सरिसत्ते संते णवुंसयवेद-पयडिविगिदिगोवुच्छाहिंतो इत्थिवेदपयडिविगिदिगोवुच्छाणमसंखेज्जगुणत्तादो । तं पि

तीसरे भागप्रमाण मान संज्वलनके द्रव्यसे मोहनीयका आधा पुरुषवेदका द्रव्य दूसरा भाग अधिक होता है ।

* उससे माया संज्वलनमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ २२९. **शंका**—पुरुषवेद और मायासंज्वलन इन दोनोंको ही मोहनीयका आधा आधा प्रमाण प्राप्त है फिर पहलेसे यह विशेष अधिक क्यों है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रकृतिविशेषके कारण इसमें विशेष अधिक द्रव्य पाया जाता है । पुरुषवेदके द्रव्यमें आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देने पर जो एक भाग प्राप्त हो उतना इसमें विशेष अधिक है ।

* उससे नपुंसकवेदमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है ।

§ २३०. अब यहाँ इसका कारण कहते हैं । जो इस प्रकार है—माया संज्वलनका जो अन्तिम समयका नवक बन्ध है वह दो समय कम दो अवलिप्रमाण स्थान आगे जाकर एक समयप्रबद्धका असंख्यात बहुभाग प्रमाण रह जाता है और वही जघन्य प्रदेशसत्कर्मरूप होता है । किन्तु नपुंसकवेदका पञ्चेन्द्रियके असंख्यात समयप्रबद्धोंसे संयुक्त गुणश्रेणीका द्रव्य जघन्य प्रदेशसत्कर्मरूप होता है, इसलिए कुछ कम समयप्रबद्धप्रमाण माया संज्वलनके जघन्य द्रव्यसे असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण नपुंसकवेदका जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है इसमें कोई सन्देह नहीं ।

* उससे स्त्रीवेदका जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ २३१. क्योंकि यद्यपि दोनोंकी गुणश्रेणियाँ सदृश परिणामोंसे की जाती हैं, इसलिये वे समान हैं तो भी नपुंसकवेदकी प्रकृति गोपुच्छाओंसे स्त्रीवेदकी प्रकृति और विकृति गोपुच्छाएं असंख्यातगुणी होती हैं ।

कुदो ? बंधाभावे णवुंसयवेदस्सेव तिसु पलिदोवमेसु इत्थिवेदगोवुच्छाणं गलणाभावादो। तदो चेव सामित्तसुत्ते 'तिपलिदोवमिएसु णो उववण्णो' इदि वुत्तं, वेछावट्ठिसागरोवमेसु व तत्थुववादे[1] पओजणाभावादो। एत्थ गुणगारो तिपलिदोवमब्भंतरणाणागुण-हाणिसलागाणमण्णोण्णब्भत्थरासी। दोण्हं पि गुणसेढीओ सरिसीओ त्ति पुध ट्ठविय पुणो णवुंसयवेदगोवुच्छं तत्तो असंखे०गुणइत्थिवेदगोवुच्छादो अवणिय ट्ठविदे जं सेसं सगअसंखेज्जभागमेत्तमहियदव्वं तेण विसेसाहियं ति वुत्तं होदि। एदं विसेसाहियवयणं णावयं, जहा सव्वत्थ गुणसेढिविण्णासो परिणामाणुसारिओ चेव ण दव्वाणुसारि त्ति। अण्णहा पयददव्वस्स पुव्विल्लदव्वादो असंखे०गुणत्तं मोत्तूण विसेसाहिय-भावाणुववत्तीदो।

❀ हस्से जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं।

§ २३२. कुदो? अभवसिद्धियपाओग्गजहण्णसंतकम्मेण तसेसु आगंतूण बहुएहि संजमासंजम-संजमपरियट्टणवारेहि चउहि कसायउवसमणवारेहि य बहुकम्मपदेसणिज्जरं

शंका—ऐसा क्यों होता है ?

समाधान—बन्धके अभावमें नपुंसकवेदके समान तीन पल्य कालके भीतर स्त्रीवेदकी गोपुच्छाएं नहीं गलती हैं। अर्थात् जिसके नपुंसकवेदका जघन्य द्रव्य प्राप्त होता है वह पहले जिस प्रकार उत्तम भोगभूमिमें तीन पल्य काल तक नपुंसकवेदकी गोपुच्छाएं गला आता है उस प्रकार स्त्रीवेदके जघन्य द्रव्यवालेको पहले यह क्रिया नहीं करनी पड़ती है, इसलिये इसके तीन पल्य कालके भीतर गलनेवाली गोपुच्छाएं बच जाती हैं और इसीलिये स्वामित्व सूत्रमें स्त्री-वेदके जघन्य द्रव्यको प्राप्त करनेवाला 'तीन पल्यकी आयुवालोंमें नहीं उत्पन्न होता' यह कहा है क्योंकि इसे दो छयासठ सागर काल तक सम्यग्दृष्टियोंमें परिभ्रमण कराना है। अब इस कालके भीतर तीन पल्यकी आयुवालोंमें भी उत्पन्न कराया जाता है तो कोई विशेष प्रयोजन नहीं सिद्ध होता।

तीन पल्यके भीतर नानागुणहानि शलाकाओंकी जो अन्योन्याभ्यस्त राशि प्राप्त हो वह यहाँ गुणकारका प्रमाण है। दोनोंकी गुणश्रेणियाँ समान हैं, अतः उन्हें अलग स्थापित करो। अनन्तर नपुंसकवेदकी गोपुच्छाओंसे असंख्यातगुणी स्त्रीवेदकी गोपुच्छाओंमेंसे नपुंसकवेदकी गोपुच्छाओंको घटा कर स्थापित करने पर जो अपनेसे असंख्यातवां भाग अधिक द्रव्य शेष रहता है उतना स्त्रीवेदका जघन्य द्रव्य विशेष अधिक है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। सूत्रमें जो यह 'विशेषाधिक' वचन है सो वह ज्ञापक है जिससे यह ज्ञापित होता है कि गुणश्रेणिका विन्यास सब जगह परिणामोंके अनुसार होता है द्रव्यके अनुसार नहीं होता। यदि ऐसा न माना जाय तो प्रकृत द्रव्य पिछले द्रव्यसे असंख्यातगुणा प्राप्त होता है उसे छोड़कर विशेषाधिकता नहीं बन सकती है।

❀ उससे हास्यमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है।

§ २३२. क्योंकि अभव्योंके योग्य जघन्य सत्कर्मके साथ त्रसोंमें आया और वहाँ अनेक-बार संयमासंयम और संयमकी पलटन करते हुए तथा चार बार कषायोंकी उपशमना कर बहुत

---

१. आ०प्रतौ '–वमेसु तत्थुववादे' इति पाठः।

काऊण फलाभावेण वेछावट्ठीओ अपरिब्भमिय तदो कमेण पुव्वकोडाउअमणुस्सभवे दीहद्धं संजमगुणसेढिणिज्जरं काऊण खवणाए अब्भुट्ठिदजीवेण चरिमट्ठिदिखंडए चरिमसमयअणिल्लेविदे छण्णोकसायाणं जहण्णसामित्तविहाणादो। एत्थ गुणगारो उक्कड्डणभागहारगुणिदचरिमफालिपदुप्पण्णवेछावट्ठि[1] सागरोवमणाणागुणहाणिसलागाण-मण्णोण्णब्भत्थरासी पुव्विल्लगुणसेढिगोवुच्छागमणट्ठतप्पाओग्गपलिदो० असंखे०-भागमेत्तरूवोवट्टिदो। कुदो? वेछावट्ठिसागरोवमाणमपरिब्भमणादो। सयलसमत्थाए चरिमफालीए पत्तसामित्तभावादो च हेट्ठिल्लरासिस्स तव्विवरीयसरूवत्तादो च।

❀ रदीए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ २३३. एदेसिं सरिससामियत्ते वि पयडिविसेसेण विसेसाहियत्तमेत्थ दट्ठव्वं। सुगमं।

❀ सोगे जहण्णपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं।

§ २३४. कुदो? पुव्विल्लबंधगद्धादो संपहियबंधगद्धाए संखेज्जगुणत्तादो।

❀ अरदीए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ २३५. कुदो? पयडिविसेसादो।

❀ दुगुंछाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

कर्मप्रदेशोंकी निर्जरा की। यथा विशेष लाभ न होनेसे दो छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण नहीं किया। तदनन्तर क्रमसे एक पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्य भवमें दीर्घ काल तक संयमको पालकर और गुणश्रेणि निर्जरा करके जब यह जीव क्षपणाके लिये उद्यत होता है तब अन्तिम स्थितिकाण्डकके पतन होनेके अन्तिम समयमें छह नोकषायोंका जघन्य स्वामित्व प्राप्त होता है। यहाँ पर गुणकारका प्रमाण उत्कर्षणभागहार गुणित अन्तिम फालि प्रत्युत्पन्न दो छयासठ सागरकी नानागुणहानियोंकी अन्योन्याभ्यस्तराशिमें पहलेकी गुणश्रेणिगोपुच्छाओंको लानेके लिए स्थापित किये गये तत्प्रयोग्य पल्यके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना है, क्योंकि दो छयासठ सागर कालके भीतर परिभ्रमण नहीं कराया है और पूरी तरहसे समर्थ अन्तिम फालिमें स्वामित्वकी प्राप्ति हुई है। तथा पिछली राशि इससे विपरीत स्वरूपवाली है।

* उससे रतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ २३३. इन दोनोंका स्वामी समान है तो भी प्रकृतिविशेषके कारण पूर्व प्रकृतिसे इस प्रकृतिमें विशेष अधिक द्रव्य जानना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

* उससे शोकमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म संख्यातगुणा है।

§ २३४. क्योंकि पूर्व प्रकृतिके बन्धकालसे इस प्रकृतिका बन्धकाल संख्यातगुणा है।

* उससे अरतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ २३५. इसका कारण प्रकृतिविशेष है।

* उससे जुगुप्सामें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

---

१. आ०प्रतौ 'पदुप्पण्णा वेछावट्ठि-' इति पाठः।

§ २३६. धुवबंधित्तादो हस्स-रदिबंधगद्धाए वि एदिस्से बंधुवलंभादो। केत्तिय-मेत्तो विसेसो ? हस्स-रदिबंधगद्धाजणिदसंचयमेत्तो। सेसं सुगमं।

* भए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ २३७. कुदो ? पयडिविसेसादो विशेषमात्रमत्रकारणमुद्घोषयामः।

* लोभसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ २३८. एत्थ कारणं वुच्चदे। तं जहा—भयदव्वं[1] मोहणीयसव्वदव्वस्स दसमभागो। लोभसंजलणदव्वं पुण मोहदव्वस्स अट्ठमभागो, कसायभागस्स चउसु वि संजलणेसु विहंजिय ट्ठिदत्तादो। अण्णं च लोभसंजलणदव्वमधापवत्तकरणचरिमसमयम्मि जहण्णं जादं। भयपदेसग्गं पुण तत्तो उवरि अंतोमुहुत्तमेत्तगुणसेढिगोवुच्छासु गलिदासु गुणसंकमदव्वे च परिहीणे अणियट्टिअद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण पत्तजहण्णभावमेदेण कारणेण एदासिं पयडीणं पदेसस्स हीणाहियभावो ण विरुज्झदे।

एवमोघजहण्णदंडओ सकारणो समत्तो।

* णिरयगईए सव्वत्थोवं सम्मत्ते जहण्णपदेससंतकम्मं।

§ २३९. एदस्स आदेसजहण्णप्पाबहुअमूलपदपरूवयसुत्तस्स अत्थपरूवणा

---

§ २३६. क्योंकि जुगुप्सा प्रकृति ध्रुवबन्धिनी है। हास्य और रतिके बन्धकालमें भी इसका बन्ध पाया जाता है। कितना अधिक है ? हास्य और रतिके बन्धकालमें जितना सञ्चय होता है उतना अधिक है। शेष कथन सुगम है।

* उससे भयमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ २३७. क्योंकि प्रकृति विशेष ही इस विशेषका कारण है यहाँ हम यह कहते हैं।

* उससे लोभ संज्वलनमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ २३८. अब यहाँ इसका कारण कहते हैं जो इस प्रकार है—भयका द्रव्य तो मोहनीयके सब द्रव्यका दसवां भाग है। परन्तु लोभसंज्वलनका द्रव्य मोहनीयके सब द्रव्यके आठवाँ भाग है, क्योंकि कषायोंका हिस्सा चारों संज्वलनोंमें विभक्त होकर स्थित है। दूसरा कारण यह है कि लोभ संज्वलनका द्रव्य अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें जघन्य हो जाता है परन्तु भयका द्रव्य इसके आगे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण गुणश्रेणि गोपुच्छाओंके गला देने पर और गुणसंक्रमके द्रव्यके घट जानेपर अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यात बहुभाग व्यतीत हो जानेपर जघन्य होता है इसलिये इन दोनों प्रकृतियोंका हीनाधिकभाव विरोधको नहीं प्राप्त होता।

इस प्रकार कारणसहित ओघसे जघन्य दण्डकका कथन समाप्त हुआ।

* नरकगतिमें सम्यक्त्वका जघन्य प्रदेशसत्कर्म सबसे थोड़ा है।

§ २३९. आदेशसे जघन्य अल्पबहुत्वके मूलपदका कथन करनेवाले इस सूत्रका

---

१. ता०प्रतौ 'वुच्चदे भयदव्वं' इति पाठः।

सुगमा ।

❀ सम्मामिच्छत्ते जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं ।

§ २४०. सुगममेदं सुत्तं, ओघादो अविसिट्ठकारणत्तादो ।

❀ अणंताणुबंधिमाणे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं ।

§ २४१. एत्थ गुणगारो तप्पाओग्गपलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तो । कुदो ? गुणसेढीदरगोवुच्छाकयविसेसादो चरिमफालिविसेसावलंबणादो च सेसोवट्टणादिविण्णासो अवहारिय पुव्वावराणं सिस्साणं सुगमो ।

❀ कोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ २४२. पयडिविसेसादो ।

❀ मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ २४३. विस्ससादो ।

❀ लोभे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ २४४. एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि । बज्झकारणणिरवेक्खो वत्थुपरिणामो ।

❀ मिच्छत्ते जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं ।

अर्थ सरल है ।

* उससे सम्यग्मिथ्यात्वमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है ।

§ २४०. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि ओघप्ररूपणाके समय जो इसका कारण कहा है उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । दोनों जगह कारण एक समान है ।

* उससे अनन्तानुबन्धी मानमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है ।

§ २४१. यहाँ गुणकारका प्रमाण तद्योग्य पल्यका असंख्यातवाँ भाग है, क्योंकि यहाँ गुणश्रेणि और उनसे भिन्न गोच्छाओंके कारण तथा अन्तिम फालिविशेषके कारण विशेषता आजाती है । आगे पीछेका विचार करके शेष अपवर्तन आदिका विन्यास सब शिष्योंको सुगम है ।

* उससे अनन्तानुबन्धी क्रोधमें प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ २४२. इसका कारण प्रकृतिविशेष है ।

* उससे अनन्तानुबन्धी मायामें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ २४३. क्योंकि ऐसा स्वभाव है ।

* उससे अनन्तानुबन्धी लोभमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ २४४. ये सूत्र सुगम हैं, क्योंकि यहाँ विशेषाधिकका बाह्य कारण नहीं है, वस्तुका परिणमन ही ऐसा है ।

* उससे मिथ्यात्वमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है ।

§ २४५. को गुणकारो ? अधापवत्तभागहारो चरिमफाली च अण्णोण्ण-गुणाओ। कुदो ? हेट्ठिमरासिणा तेत्तीससागरोवमणाणागुणहाणिसलागाण-मण्णोण्णब्भत्थरासीए ओकड्डुक्कड्डणभागहारपदुप्पण्णअधापवत्तभागहारेण चरिमफालीए च गुणिदाए ओवट्टिददिवड्डगुणहाणिगुणिदेगेइंदियसमयपबद्धपमाणेण उवरिमरासिम्मि अधापवत्तचरिमफालिगुणगारविरहिदपुव्वुत्तभागहारोवट्टिददिवड्डगुणहाणिगुणिदेगेंदिय-समयपबद्धपमाणम्मि भागे हिदे एत्तियमेत्तगुणगारुवलंभादो। पुव्विल्लविगिदि-गोवुच्छमस्सियूण एसा गुणगारपरूवणा कया। तत्थतणगुणसेढिगोवुच्छमस्सियूण भण्णमाणे पुव्विल्लगुणगारो तप्पाओग्गपलिदोवमासंखेज्जभागेण ओवट्टेयव्वो। कारणं सुगमं।

❀ अपच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं।

§ २४६. कुदो ? असण्णिपच्छायदपढमपुढविउप्पण्णपढमसमयवट्टमाणखविद-कम्मंसियम्मि पत्तजहण्णसामित्तणेण एक्किस्से वि गुणहाणीए गलणाभावादो। मिच्छत्तस्स पुण अंतोमुहुत्तूणतेत्तीससागरोवममेत्तकालं गालिय जहण्णसामित्तविहाणेण तेत्तियमेत्तगोवुच्छाणं गलणुवलंभादो। अदो चेय तेत्तीससागरोवमब्भंतरणाणागुण-हाणिसलागाअण्णोण्णब्भत्थरासी[2] उक्कड्डणभागहारपदुप्पाइदो एत्थ गुणगारो।

§ २४५. गुणकार क्या है ? अधःप्रवृत्तभागहार और अन्तिम फालि इनको परस्पर गुणा करनेपर जो लब्ध आवे उतना गुणकार है, क्योंकि तेतीस सागरकी नानागुणहानिशलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्त राशिसे, अपकर्षण-उत्कर्षणभागहार गुणित अधःप्रवृत्तभागहारसे और अन्तिम फालिसे गुणित करके जो लब्ध आवे उसका डेढ़ गुणहानिगुणित एकेन्द्रियसम्बन्धी समय-प्रबद्धमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे तत्प्रमाण अधस्तन राशिको अधःप्रवृत्तकी अन्तिम फालिरूप गुणाकारसे रहित पूर्वोक्त भागहारसे भाजित जो डेढ़ गुणहानिगुणित एकेन्द्रियसम्बन्धी समयप्रबद्ध तत्प्रमाण उपरिम राशिमें भाग देनेपर उक्त प्रमाण गुणकार उपलब्ध होता है। पूर्वोक्त विकृति गोपुच्छाका आश्रय लेकर यह गुणकारकी प्ररूपणा की है। वहाँकी गुणश्रेणिगोपुच्छाका आश्रय लेकर कथन करने पर पूर्वोक्त गुणकारको तत्प्रायोग्य पल्यके असंख्यातवें भागसे भाजित करना चाहिए। कारण सुगम है।

❀ उससे अप्रत्याख्यान मानमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है।

§ २४६. क्योंकि असंज्ञियोंमेंसे आकर जो क्षपित कर्मांशिक जीव प्रथम पृथिवीमें उत्पन्न होता है उसके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें अप्रत्याख्यान मानका जघन्य स्वामित्व प्राप्त होनेसे एक भी गुणहानिका गलन नहीं हुआ है। परन्तु मिथ्यात्वका अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर काल व्यतीत कर जघन्य स्वामित्व प्राप्त होनेसे वहाँ उसकी उतनी गोपुच्छाएँ गल गई हैं। और इसीलिए ही उत्कर्षणभागहारसे उत्पन्नकी गई तेतीस सागरके भीतरकी नानागुणहानिशलाकाओं-की अन्योन्याभ्यस्त राशि यहाँ पर गुणकार है।

१. आ०प्रतौ '-गुणिदेगेसमयपबद्ध-' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'सलागा [णं] अण्णोण्णब्भत्थ-रासी' इति पाठः।

❀ कोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ २४७. ण एत्थ किं चि वत्तव्वमत्थि, पयडिविसेसमेत्तस्स कारणत्तादो ।

❀ मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ २४८. सुगममेदं, अणंतरपरूविदकारणत्तादो ।

❀ लोभे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ २४९. एत्थ पच्चओ सुगमो ।

❀ पच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ २५०. सुगममत्र कारणं, स्वभावमात्रानुबन्धित्वात् ।

❀ कोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ २५१. ण एत्थ वत्तव्वमत्थि । कुदो[1] ? विस्ससादो । केत्तियमेत्तो विसेसो ? आवलि० असंखे०भागपडिभागियपयडिविसेसमेत्तो ।

❀ मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ २५२. एत्थ कारणमणंतरपरूविदत्तादो सुगमं ।

*** उससे अप्रत्याख्यात क्रोधमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।**

§ २४७. यहाँपर कुछ भी वक्तव्य नहीं है, क्योंकि प्रकृतिविशेष मात्र ही विशेष अधिक होनेका कारण है ।

*** उससे अप्रत्याख्यान मायामें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।**

§ २४८. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि कारणका अनन्तर पूर्व कथन कर आये हैं ।

*** उससे अप्रत्याख्यान लोभमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।**

§ २४९. यहाँ पर कारणका कथन सुगम है ।

*** उससे प्रत्याख्यान मानमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।**

§ २५०. यहाँ पर कारण सुगम है, क्योंकि वह स्वभावमात्रका अनुबन्धी है ।

*** उससे प्रत्याख्यान क्रोधमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।**

§ २५१. यहाँ पर कुछ वक्तव्य नहीं है, क्योंकि प्रत्याख्यान क्रोधमें प्रदेशसत्कर्म स्वभावसे अधिक है । विशेषका प्रमाण कितना है ? प्रत्याख्यानमानके जघन्य द्रव्यमें आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना इस प्रकृतिमें विशेषका प्रमाण है ।

*** उससे प्रत्याख्यान मायामें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।**

§ २५२ यहाँ पर कारण सुगम है, क्योंकि उसका अनन्तर पूर्व कथन कर आये हैं ।

---

१. आ०प्रतौ 'विसेसाहियं । कुदो' इति पाठः ।

❀ लोभे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ २५३. एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि । एदम्हादो चेव रागाइअविज्जो-संघुत्तिण्णजिणवरवयणादो । ण च तारिसेसु आरिसकारएसु चप्पलस्स संभवो, विरोहादो ।

❀ इत्थिवेदे जहण्णपदेससंतकम्ममणंतगुणं।

§ २५४. कथं सम्मत्तपाहम्मेण बंधविरहिदसरूवत्तादो आएण विणा तेत्तीस-सागरोवमेसु गलिदावसिट्ठस्सेदस्स पुव्विल्लादो तव्विवरीदसरूवादो अणंतगुणत्तमिदि णासंकणिज्जं, देसघाइत्तेण सुलहपरिणामिकारणस्सेदस्स तदो तप्पडिणीयसहावादो अणंतगुणत्तस्स णाइयत्तादो ।

❀ णवुंसयवेदे जहण्णपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं ।

§ २५५. दोण्हमेदासिं पयडीणं पुव्वुत्तकालब्भंतरे सरिसीसु वि गुणहाणीसु गलिदासु बंधगद्धावसेण पुव्विल्लजहण्णदव्वादो एदस्स संखेज्जगुणत्तं ण विरुज्झदे । सेसं सुगमं ।

❀ पुरिसवेदे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं ।

❀ उससे प्रत्याख्यान लोभमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ २५३. ये सूत्र सुगम हैं, क्योंकि रागादि अविद्यासंघसे उत्तीर्ण हुए जिनवरके ये वचन हैं। आर्षकर्ता जिनवरोंके उस प्रकार होनेपर उनमें चपलता सम्भव नहीं है, क्योंकि उनके ऐसा होनेमें विरोध आता है ।

❀ उससे स्त्रीवेदमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म अनन्तगुणा है ।

§ २५४. शंका—एक तो सम्यक्त्वकी प्रमुखतासे बंधनेवाली प्रकृतियोंसे यह विरुद्ध-स्वभाववाली है। दूसरे आयके बिना तेतीस सागर कालके भीतर गलकर यह अवशिष्ट रहती है, इसलिए भी यह पूर्वोक्त प्रकृतिकी अपेक्षा उससे विपरीत स्वभाववाली है, अतएव यह प्रत्याख्यान लोभसे अनन्तगुणी कैसे हो सकती है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि देशघाति होनेसे तथा सुलभ परिणाम कारणक यह प्रकृति होनेसे यह प्रत्याख्यान लोभसे प्रत्यनीक स्वभाववाली है, अतः इसके द्रव्यका अनन्तगुणा होना न्यायप्राप्त है।

❀ उससे नपुंसकवेदमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म संख्यातगुणा है ।

§ २५५. इन दोनों ही प्रकृतियोंकी पूर्वोक्त कालके भीतर समान गुणहानियोंका गलन होता है तो भी बन्धक कालवश पूर्वोक्त प्रकृतिके जघन्य द्रव्यसे इसका द्रव्य संख्यातगुणा होता है इसमें कोई विरोध नहीं है। शेष कथन सुगम है।

❀ उससे पुरुषवेदमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है।

---

१. ता०प्रतौ 'रागाइअव [वि] ज्जा–', आ०प्रतौ 'रागाइअवज्जा–'-इति पाठः ।

§ २५६. एत्थ गुणगारो तेत्तीससागरोवमणाणागुणहाणिसलागाणमण्णोण्णब्भत्थरासी संखेज्जरूवोवट्टिदोकड्डुक्कड्डणभागहारगुणिदो, असण्णिपच्छायदपढमपुढविणेरइयम्मि वोलाविदपडिवक्खबंधगद्धम्मि पत्तजहण्णभावत्ते अगलिदअंतोमुहुत्तूणतेत्तीससागरोवममेत्तणिसेगस्स पुव्विल्लादो तप्पडिवक्खसहावादो तावदि गुणत्ते विरोहाणुवलंभादो ।

❀ हस्से जहण्णपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं ।

§ २५७. एत्थ कारणं बंधगद्धाए संखेज्जगुणत्तं । ण च बंधगद्धाणुरूवो ण होइ, विरोहादो ।

❀ रदीए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ २५८. पयडिविसेसो एत्थ पच्चओ सुगमो ।

❀ सोगे जहण्णपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं ।

§ २५९. बंधगद्धावसेण ।

❀ अरदीए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ २६०. पयडिविसेसवसेण ।

❀ दुगुंछाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

---

§ २५६. यहाँ पर गुणाकारका प्रमाण अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारमें संख्यातका भाग देकर जो लब्ध आवे उससे तेतीस सागरकी नानागुणहानिशलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्तराशिके गुणित करने पर जो गुणनफल प्राप्त हो उतना है, क्योंकि असंज्ञियोंमेंसे आकर पहली पृथिवीके नारकीमें प्रतिपक्ष प्रकृतिके बन्धककालके व्यतीत होने पर जघन्यपनेके प्राप्त होनेसे अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरप्रमाण इस निषेकका पहलके उसके प्रतिपक्ष स्वभाव निषेकसे उतना गुणा होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

* उससे हास्यमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म संख्यातगुणा है ।

§ २५७. इसका कारण बन्धक कालका संख्यात होना है। और बन्धककालके अनुरूप सञ्चय नहीं होता है यह बात नहीं है, क्योंकि बन्धककालके अनुरूप सञ्चय नहीं होने पर विरोध आता है ।

* उससे रतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ २५८. प्रकृतिविशेष ही यहाँ पर कारण है, इसलिए वह सुगम है ।

* उससे शोकमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ २५९. क्योंकि उसका कारण बन्धककाल है ।

* उससे अरतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है

§ २६०. क्योंकि इसका कारण प्रकृतिविशेष है ।

* उससे जुगुप्सामें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ २६१. धुवबंधित्तेण हस्स-रइबंधगद्धाए वि एदिस्से बंधुवलंभादो।

❀ भए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ २६२. दोण्हं पि मोहणीयस्स दसमभागत्ते कुदो हीणाहियभावो? ण पयडिविसेसमस्सियूण तहाभावुवलंभादो।

❀ माणसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ २६३. मोहणीयसव्वदव्वस्स अट्ठमभागत्तादो।

❀ कोहसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

❀ मायासंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

❀ लोहसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ २६४. एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि अब्भंतरीकयपयडिविसेसकारणाणि सुगमाणि। संपहि एदेण णिरयगइसामण्णपडिबद्धजहण्णप्पाबहुअदंडएण सगंतोणिक्खित्तासेसणिरयगइमग्गणाबयणेण पुध पुध सत्तण्हं पि पुढवीणमप्पाबहुअं परूविदं चेव। णवरि सामित्तविसेसो तदणुसारेण च गुणयारविसेसो णायव्वो। णत्थि अण्णो विसेसो।

एवं णिरयगइजहण्णदंडओ समत्तो।

---

§ २६१. क्योंकि यह ध्रुवबन्धिनी प्रकृति होनेसे हास्य और रतिके बन्धकालमें भी इसका बन्ध पाया जाता है।

* उससे भयमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ २६२. **शंका**—ये दोनों प्रकृतियाँ मोहनीयके दसवें भागप्रमाण हैं, इसलिए इनके प्रदेशोंमें हीनाधिकपना कैसे बन सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रकृतिविशेषके आश्रयसे उस प्रकार हीनाधिकरूपसे प्रदेश पाये जाते हैं।

* उससे मानसंज्वलनमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ २६३. क्योंकि मोहनीयके सब द्रव्यके आठवें भागप्रमाण इसका द्रव्य है।

* उससे क्रोधसंज्वलनमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

* उससे मायासंज्वलनमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

* उससे लोभसंज्वलनमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ २६४. ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं, क्योंकि इन सूत्रोंमें जितना अल्पबहुत्व कहा है वे अलग अलग प्रकृतियाँ हैं। अब समस्त नरकगतिके अन्तर्भेद नरकगतिमें अन्तर्लीन हैं, इसलिए नरकगति सामान्यसे सम्बन्ध रखनेवाले इस अल्पबहुत्व दण्डकके द्वारा अलग अलग सातों ही पृथिवियोंका अल्पबहुत्व कह ही दिया है। इतनी विशेषता है कि स्वामित्वविशेष जान लेना चाहिए। यहाँ अन्य कोई विशेषता नहीं है।

❀ जहा णिरयगईए तहा सव्वासु गईसु ।

§ २६५. एदस्स अप्पणासुत्तस्स आलावसामण्णमवेक्खिय पयट्टस्स सामित्त-तदणुसारिगुणगारविसेसणिरवेक्खस्स अत्थपरूवणा अवहारिय सामित्तविसेसाणं सुगमा । एदेण गइसामण्णप्पणासुत्तेण मणुसगईए वि णिरओघभंगे अइयप्पसत्ते तव्वुदासदुवारेण तत्थ अववादपरूवणट्ठमुत्त सुत्तं भणदि—

❀ णवरि मणुसगदीए ओघं ।

§ २६६. एत्थ णवरि सद्दो पुव्विल्लप्पणादो एदस्स विसेससूचओ । को सो विसेसो ? मणुसगईए ओघमिदि मणुसगइओघालावमणूणाहियं लहदि त्ति वुत्तं होइ । तदो ओघालावो अणूणाहिओ एत्थ कायव्वो, मणुसगइसामण्णप्पणाए तदविरोहादो । विसेसप्पणाए पुण अत्थि भेदो, मणुसपज्जत्तएसु सुत्तदो बहिब्भूदइत्थिवेदोदएसु णवुंसयवेदस्सुवरि ओघम्मि विसेसाहियभावेण पदिदइत्थिवेदस्स चरिमफालिमाहप्पेण असंखेज्जगुणत्तुवलंभादो । मणुसिणीसु वि माणसंजलणस्सुवरि मायासंजलणे जहण्ण-पदेससंतकम्मं विसेसाहियं । इत्थिवेदे जहण्णपदेससंतकम्मं असंखेज्जगुणं; गुणसेढीए पाहण्णियादो । णवुंसयवेदे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं, वेछावट्ठीण-

---

* जिस प्रकार नरकगतिमें अल्पबहुत्व है उसी प्रकार सब मार्गणाओंमें जानना चाहिए ।

§ २६५. स्वामित्व और उसके अनुसार गुणकारविशेषकी अपेक्षा किये बिना आलाप-सामान्यकी अपेक्षा प्रवृत्त हुए इस अर्पणा सूत्रकी अर्थप्ररूपणा सुगम है । इस गतिमार्गणा-सबन्धी अर्पणासूत्रके आश्रयसे मनुष्यगतिमें भी सामन्य नारकियोंके समान भङ्गका अतिप्रसङ्ग प्राप्त होने पर उसके निराकरण द्वारा वहाँ पर अपवादका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिमें ओघके समान भङ्ग है ।

§ २६६. यहाँ पर 'णवरि' शब्द पहलेके सूत्रसे इसमें विशेषका सूचक है ।

शंका—वह विशेष क्या है ?

समाधान—'मनुष्यगतिमें ओघके समान है' ऐसा कहनेसे मनुष्यगतिमें ओघ आलाप न्यूनाधिकतासे रहित होकर प्राप्त होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है, इसलिए न्यूनता और अधिकतासे रहित ओघ आलाप यहाँ करना चाहिए, क्योंकि मनुष्यगति सामान्यकी विवक्षा होने पर उसमें ओघ आलापके घटित होनेमें विरोध नहीं आता । विशेषकी विवक्षा होनेपर तो भेद है ही, क्योंकि स्त्रीवेदके उदयसे रहित मनुष्यपर्याप्तकोंमें नपुंसकवेदके ऊपर ओघमें विशेष अधिकरूपसे प्राप्त हुआ स्त्रीवेद अन्तिम फालिके माहात्म्यसे असंख्यातगुणा उपलब्ध होता है । मनुष्यिनियोंमें भी मान संज्वलनके ऊपर माया संज्वलनमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है । उससे स्त्रीवेदमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है, क्योंकि यहाँ पर गुणश्रेणिकी प्रधानता

मगलणादो अधापवत्तचरिमसमए देसूणपुव्वकोडिणिज्जरादव्वपरिहीणसगसयल-दव्वेण सह जहण्णसामित्तविधाणादो । इस्से जहण्णपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं, दोण्हं पि देसूणपुव्वकोडिणिज्जराए सरिसीए संतीए बंधगद्धावसेण संखेज्जगुणत्तुवलंभादो त्ति । एसो च विसेसो दव्वट्ठियणयमस्सियूण सुत्तयारेण ण विवक्खिओ । पज्जवट्ठिय-णयावलंबणे पुण वक्खाणाइरिएहिं वक्खाणेयव्वो, व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिरिति न्यायात् । सुगममन्यत् । संपहि सेसमग्गणाणं देसामासियभावेण इंदियमग्गणावयव-भूदएइंदिएसु जहण्णप्पाबहुअपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तपबंधमाह—

❀ एइंदिएसु सव्वत्थोवं सम्मत्ते जहण्णपदेससंतकम्मं ।

§ २६७. कुदो ? खविदकम्मंसियस्स भमिदवेछावट्ठिसागरोवमस्स दीहुव्वेल्लण-कालदुचरिमसमए वट्टमाणस्स दुसमयकालट्ठिदिएयणिसेयट्ठिदसुट्ठु त्थोवयरजहण्ण-दव्वग्गहणादो

❀ सम्मामिच्छत्ते जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं ।

§ २६८. एत्थ कारणमोघसिद्धं । गुणगारो च सुगमो ।

❀ अणंताणुबंधिमाणे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं ।

है । उससे नपुंसकवेदमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म अन्तिम फालिके कारण असंख्यातगुणा है । उससे पुरुषवेदमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है, क्योंकि दो छयासठ सागर प्रमाण निषेकोंके नहीं गलनेसे अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें कुछ कम एक पूर्वकोटि प्रमाण निर्जराको प्राप्त हुए द्रव्यसे हीन अपने समस्त द्रव्यके साथ जघन्य स्वामित्वका विधान किया गया है । उससे हास्यमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म संख्यातगुणा है, क्योंकि दोनों ही कर्मोंकी कुछ कम एक पूर्वकोटि-काल तक होनेवाली निर्जराके समान होते हुए भी बन्धक कालके वशसे पुरुषवेदके जघन्य प्रदेश-सत्कर्मसे हास्यका जघन्य प्रदेशसत्कर्म संख्यातगुणा उपलब्ध होता है । इस प्रकारके इस विशेषकी द्रव्यार्थिकनयका आश्रय लेकर सूत्रकारने विवक्षा नहीं की है । परन्तु पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन लेकर व्याख्यानाचार्योंको व्याख्यान करना चाहिए, क्योंकि व्याख्यानसे विशेष प्रतिपत्ति होती है ऐसा न्यायवचन है । शेष कथन सुगम है । अब शेष मार्गणाओंके देशामर्षक-रूपसे इन्द्रियमार्गणाके अवान्तर भेद एकेन्द्रियोंमें जघन्य अल्पबहुत्वके कथन करनेके लिए आगेके सूत्रकलापको कहते हैं—

* एकन्द्रियोंमें सम्यक्त्वमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म सबसे स्तोक है ।

§ २६७. क्योंकि जो क्षपितकर्मांशिक जीव दो छयासठ सागर कालतक परिभ्रमण कर चुका है उसके दीर्घ उद्वेलनकालके द्विचरम समयमें विद्यमान रहते हुए दो समय कालकी स्थिति-वाले एक निषेकमें स्थित अत्यन्त स्तोकतर जघन्य द्रव्यका ग्रहण किया है ।

* उससे सम्यग्मिथ्यात्वमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है ।

§ २६८. यहां पर कारण ओघके समान सिद्ध है और गुणकार भी सुगम है ।

* उससे अनन्तानुबन्धी मानमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है ।

§ २६६. को गुणगारो ? वेछावट्ठिसागरोवमदीहुव्वेल्लणकालणाणागुणहाणिसलागाणमण्णोण्णब्भत्थरासी गुणसंकमोकड्डुक्कड्डणभागहारचरिमफालीहि गुणिय अधापवत्तभागहारेणोवट्टिदो। कुदो ? खविदकम्मंसियस्स अभवसिद्धियपाओग्गजहण्णसंतकम्मियस्स तसेसुप्पज्जिय विसंजोइदअणंताणुबंधिचउक्कस्स पुणो अंतोमुहुत्तसंजुत्तस्स फलाभावेण अभमादिदवेछावट्ठिसागरोवमस्स एइंदिएसुप्पण्णपढमसमए जहण्णसामित्तपरूवणादो। कुदो वेछावट्ठिसागरोवमपरिब्भमणे फलाभावो ? ण, एइंदिएसुप्पत्तिअण्णहाणुववत्तीए। पुणो वि मिच्छत्तं गच्छमाणेण अधापवत्तेण पडिच्छिज्जमाणवेछावट्ठिसागरोवमब्भंतरसंचिददिवड्डगुणहाणिगुणिदपंचिंदियसमयपबद्धमेत्तसेसकसायदव्वस्स पुव्वपरूविदसामियजहण्णदव्वादो जोअगुणगारमाहप्पेण असंखेज्जगुणत्तेण फलाणुवलंभादो। णिरयगईए वि अणंताणुबंधिचउक्कसामियस्स अपरिब्भमिदवेछावट्ठिसागरोवमस्स एइंदियजहण्णसंतकम्मेणेव पवेसणे एदं चेव कारणं वत्तव्वं, तत्थेव इत्थिवेदजहण्णसंतकम्मादो बंधगद्धावसेण णवुंसयवेदजहण्णसंतकम्मस्स संखेज्जगुणत्ते एवं तिपलिदोवमवेछावट्ठिसागरोवमाणमपरिब्भमणं कारणत्तेण[1] परूवेयव्वं।

§ २६६. गुणकार क्या है ? दो छ्यासठ सागरोपम दीर्घ उद्वेलन कालके भीतर प्राप्त नाना गुणहानि शलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्त राशिको गुणसंक्रमभागहार, अपकर्षण-उत्कर्षणभागहार और अन्तिम फालिसे गुणित करके अधःप्रवृत्तभाहारका भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना गुणकार है, क्योंकि जो क्षपितकर्मांशिक जीव अभव्योंके योग्य जघन्य सत्कर्म करके त्रसोंमें उत्पन्न हुआ। पुनः अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करके और अन्तर्मुहूर्तमें उससे संयुक्त होकर कोई लाभ न होनेसे दो छ्यासठ सागर काल तक भ्रमण किये बिना एकेन्द्रियोंमें उत्पन्ना हुआ है उसके वहाँ उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें जघन्य स्वामित्वका कथन किया है।

शंका—दो छ्यासठ सागर कालके भीतर परिभ्रमण करना निष्फल क्यों है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अन्यथा उसकी एकेन्द्रियोंमें उत्पत्ति बन नहीं सकती है। फिर भी मिथ्यात्वमें जाकर अधःप्रवृत्तभागहारके द्वारा संक्रमणको प्राप्त हुए और दो छ्यासठ सागर कालके भीतर सञ्चित हुए डेढ़ गुणहानिगुणित पञ्चेन्द्रियके समयप्रबद्धमात्र शेष कषायोंके द्रव्यके पहले कहे गये स्वामित्वविषयक जघन्य द्रव्यसे योग गुणकारके माहात्म्य वश असंख्यातगुणे होनेके कारण कोई फल नहीं उपलब्ध होता।

नरकगतिमें भी अनन्तानुबन्धीचतुष्कका स्वामित्व कहते समय उसे दो छ्यासठ सागर काल तक परिभ्रमण न करा कर एकेन्द्रियोंमें जघन्य सत्कर्मरूपसे प्रवेश कराने में यही कारण कहना चाहिए। तथा वहीं स्त्रीवेदके जघन्य सत्कर्मसे बन्धक काल वश नपुंसकवेदके जघन्य सत्कर्मके संख्यातगुणे होने पर इसी प्रकार तीन पल्य और दो छ्यासठ सागर कालके भीतर परिभ्रमण नहीं करना कारणरूपसे कहना चाहिए।

१. ता०प्रतौ '-मपरिब्भमणकारणत्तेण' इति पाठः।

❀ कोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

❀ मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

❀ लोभे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ २७०. एदाणि सुत्ताणि सगंतोक्खित्तपयडिविसेसपच्चयाणि[1] सुगमाणि त्ति ण वक्खाणायरो कीरदि ।

❀ मिच्छत्ते जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं ।

§ २७१. एत्थ चोदओ भणइ—जहा तुम्हेहि पुव्विल्लमणंताणुबंधीणं जहण्णसामित्तं परूविदं तहा मिच्छत्तादो तेसिं जहण्णपदेससंतकम्मेणासंखेज्जगुणेण होदव्वं, मिच्छत्तस्स वेछावट्ठीओ भमादियसम्मत्तादो परिवडिय एइंदिएसुप्पण्णपढमसमए जहण्णसामित्तदंसणादो तेसिमण्णहा सामित्तविहाणादो च । ण च मिच्छत्तजहण्णसामिणा वि वेछावट्ठिसागरोवमाणि ण हिंडिदाणि त्ति वोत्तुं जुत्तं, अण्णहा तस्स जहण्णभावाणुववत्तीदो तदपरिब्भमणे कारणाणुवलंभादो च । एदम्हादो उवरिमअपच्चक्खाणमाणजहण्णपदेससंतकम्मस्स असंखेज्जगुणत्तण्णहाणुववत्तीए च तस्सिद्धीदो । ण च अधापवत्तभागहारादो वेछावट्ठिसागरोवमब्भंतरणाणागुणहाणिसलागाणमण्णोण्णब्भत्थ-

* उससे अनन्तानुबन्धी क्रोधमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

* उससे अनन्तानुबन्धी मायामें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

* उससे अनन्तानुबन्धी लोभमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ २७०. उत्तरोत्तर विशेष अधिक होनेका कारण प्रकृतिविशेष होना यह बात इन सूत्रोंमें ही गर्भित होनेसे ये सुगम हैं, इसलिए इनका व्याख्यान नहीं करते हैं ।

* उससे मिथ्यात्वमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है ।

§ २७१. **शंका**—यहाँ पर प्रश्न करनेवाला कहता है कि जिस प्रकार तुमने पहले अनन्तानुबन्धियोंका जघन्य स्वामित्व कहा है उसी प्रकार मिथ्यात्वसे उनका जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा होना चाहिए, क्योंकि सम्यक्त्वके साथ दो छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण करके और मिथ्यात्वमें गिर कर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें मिथ्यात्वका जघन्य स्वामित्व देखा जाता है और अनन्तानुबन्धियोंका इससे अन्यथा प्रकारसे जघन्य स्वामित्वका विधान किया है। यदि कहा जाय मिथ्यात्वका जघन्य स्वामी भी दो छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण नहीं करता है सो उसका ऐसा कहना युक्त नहीं है, क्योंकि ऐसा नहीं मानने पर मिथ्यात्वका जघन्यपना नहीं बन सकता है, दूसरे दो छयासठ सागरके भीतर परिभ्रमण नहीं करनेका कारण उपलब्ध नहीं होता । इससे तथा आगे जो अप्रत्याख्यान मानका जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यतगुणा कहा है वह अन्यथा बन नहीं सकता इससे भी उक्त कथनकी सिद्धि होती है। कोई कहे कि उत्कर्षणभागहारके द्वारा उत्पन्न की गई दो छयासठ सागर कालके भीतर जो नाना गुणहानिशलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्त राशि है वह अधःप्रवृत्तभागहारसे

१. ता०प्रतौ '-पच्चयाणि' इति पाठः ।

रासीए उक्कड्डणभागहारपदुप्पणाए असंखेज्जगुणहीणत्तावलंबणेण पयददोसपरिहारो समंजसो, तत्तो तिस्से असंखेज्जगुणत्तपदुप्पायय उवरिमप्पाबहुअदंडएण सह विरोहप्पसंगादो। वेछावट्ठिसागरोवमणाणागुणहाणिसलागाणं पि तत्थ तत्तो असंखेज्जगुणत्तुवलंभादो उव्वेल्लणकालणाणागुणहाणिसलागाणमण्णोण्णब्भत्थरासीदो वि तस्सासंखेज्जगुणहीणत्तस्साणंतरमेव परूविदत्तादो च। तम्हा सामित्ताहिप्पाएणेवंविहेण हेट्ठुवरि णिवदेयव्वमेदेणप्पाबहुएण? ण तहाब्भुवगमो जुज्जंतओ, सुत्तेणेदेण सह विरोहादो। ण चेदमण्णहा काउं सक्किज्जइ, जिणाणमण्णहावाइत्तादो। तदो ण पुव्वुत्तमणंताणुबंधिजहण्णसामित्तगुणगारो वा घडंतओ त्ति? एत्थ परिहारो वुच्चदे—सच्चमेवेदं जइ सामित्तं तहाविहमेत्थ जहणत्तेणावलंबियं, तत्थ समणंतरपरूविददोसस्स परिहरेउमसक्कियत्तादो। किं तु अणंताणुबंधीणं पि मिच्छत्तस्सेव वेछावट्ठीओ भमाडिय जहण्णसामित्तविहाणेण पयददोसपरिहारो दट्ठव्वो, तस्स णिरवज्जत्तादो। ण एत्थ वि[2] पुव्वपरूविददोसो आसंकणिज्जो, वयाणुसारिआयावलंबणेण तस्स परिहारादो। ण संजुत्तावत्थाए वि एस पसंगो, तदण्णत्थ एवंविहणियमब्भुवगमादो भमिदवेछावट्ठि-

असंख्यातगुणी हीन होती है, अतः इस बातका अवलम्बन लेनेसे प्रकृत दोषका परिहार बन जायगा सो उसका ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि एक तो इस कथनका उससे अर्थात् अधःप्रवृत्तभागहारसे उसे अर्थात् दो छयासठ सागर कालके भीतर प्राप्त हुई अन्योन्याभ्यस्त राशिको असंख्यातगुणा उत्पन्न करनेवाले उपरिम अल्पबहुत्वदण्डकके साथ विरोधका प्रसङ्ग आता है, दूसरे वहाँ पर दो छयासठ सागर कालके भीतर प्राप्त हुई नाना गुणहानिशलाकाएँ भी उससे असंख्यातगुणी उपलब्ध होती हैं, तीसरे उद्वेलन कालके भीतर प्राप्त हुई नाना गुणहानिशलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्त राशिसे भी वह अधःप्रवृत्तभागहार असंख्यातगुणा हीन होता है यह अनन्तर पूर्व ही कह आये हैं, इसलिए स्वामित्वके अभिप्रायके अनुसार इस अल्पबहुत्वको इस प्रकार अर्थात् हमारे द्वारा बतलाई गई विधिके अनुसार आगे पीछे रखना चाहिए। परन्तु वैसा मानना युक्त नहीं है, क्योंकि इस सूत्रके साथ विरोध आता है और इस सूत्रको अन्यथा कर नहीं सकते, क्योंकि जिनेन्द्रदेव अन्यथावादी नहीं होते। इसलिए अनन्तानुबन्धीके जघन्य स्वामित्वका पूर्वोक्त गुणकार घटित नहीं होता ?

समाधान—अब यहाँ पर इस शंकाका परिहार करते हैं—यह सत्य ही है यदि उस प्रकारके जघन्य स्वामित्वका यहाँ पर अवलम्बन किया जावे, क्योंकि उस प्रकारसे जघन्य स्वामित्वके अवलम्बन करने पर अनन्तर पूर्व कहे गये दोषका परिहार करना अशक्य है। किन्तु मिथ्यात्वके समान ही दो छयासठ सागर कालके भीतर परिभ्रमण कराकर अनन्तानुबन्धियोंके जघन्य स्वामित्वका विधान करनेसे प्रकृत दोषका परिहार जान लेना चाहिए, क्योंकि यह कथन निर्दोष है। यदि कोई यहाँ पर भी पहले कहे गये दोषकी आशंका करे तो उसका ऐसा करना ठीक नहीं है, क्योंकि व्ययके अनुसार आयका अवलम्बन करनेसे उसका परिहार हो जाता है। संयुक्तावस्थामें भी यही प्रसङ्ग आता है यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि एक तो उस

१. 'ता०प्रतौ पदुप्पाइय उवरिम' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'ण तत्थ वि' इति पाठः।

सागरोवमखविदकम्मंसियम्मि तहाविहणियमावलंबणादो च। जइ एवं, णिरयगईए मिच्छत्ताणंताणुबंधीणं वेछावट्ठीओ भमादिय परिणामपच्चएण मिच्छत्तं णेदूण णेरईएसुप्पाइय तेत्तीससागरोवमाणि थोवूणाणि सम्मत्तमणुपालाविय जहण्णसामित्तं दायव्वमिदि ? ण एदं पि दोसाय, विरोहाभावेण तहाब्भुवगमादो। ण च वेछावट्ठिसागरोवमाणि परिभमिदस्स तेत्तीससागरोवमपरिब्भमणासंभवेण पच्चवट्ठेयं, वेछावट्ठिबहिब्भूदसागरोवमपुधत्तमेत्तसम्मत्तकालपरूवयसंकमसामित्तसुत्तबलेण तदविरोहसिद्धीए ण सो पसंगो। इत्थि-णवुंसयवेदाणमादेसजहण्णसामियस्स वि तत्थुवएसंतरमस्सियूण पयारंतरेण सामित्तविहाणादो। तं जहा—एत्थ बे उवएसा एक्को ताव सव्वासिं बंधपयडीणमाएण वयाणुसारिणा होदव्वमिदि। अण्णेगो णायाणुसारी वओ, वयाणुसारी वा आओ[1]। किंतु सव्वपयडीणमप्पप्पणो मूलदव्वाणुसारेण समयाविरोहेण संकमो होइ त्ति। तत्थ पढमोवएसमस्सिदूण पयट्टमेदं मिच्छत्ताणंताणुबंधीणमादेसजहण्णसामित्तप्पाबहुगं च इत्थि-णवुंसयवेदाणमोघजहण्णसामित्तं पि तदणुसारी[2] चेव।

अवस्थाके सिवा अन्यत्र इस प्रकारका नियम स्वीकार किया गया है। दूसरे जो क्षपितकर्मांशिक जीव दो छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण कर चुका है उसके उस प्रकारके नियमका अवलम्बन लिया गया है।

शंका—यदि ऐसा है तो दो छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण करा कर और परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वमें ले जाकर तथा नारकियोंमें उत्पन्न कराकर कुछ कम तेतीस सागर काल तक सम्यक्त्वका पालन कराकर नरकगतिमें मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्वामित्व देना चाहिए ?

समाधान—यही भी दोषाधायक नहीं है, क्योंकि विरोधका अभाव होनेसे उस प्रकारसे उक्त प्रकृतियोंका जघन्य स्वामित्व स्वीकार किया है। यदि कोई कहे कि जो दो छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण करता रहा है उसका तेतीस सागर काल तक परिभ्रमण करना असम्भव है सो ऐसा निश्चय करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि दो छयासठ सागरप्रमाण कालके बाहर सागर पृथक्त्वप्रमाण सम्यक्त्वके कालका कथन करनेवाले संक्रमस्वामित्वसूत्रके बलसे उक्त कथन अविरोधी सिद्ध होनेसे उक्त दोषका प्रसङ्ग नहीं आता है। तथा स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके आदेश जघन्य स्वामीका भी वहाँ पर उपदेशान्तरका आश्रय लेकर प्रकारान्तरसे स्वामित्वका विधान किया है। यथा—इस विषयमें दो उपदेश हैं—प्रथम उपदेश तो यह है कि सब बन्ध प्रकृतियोंके व्ययके अनुसार आय होना चाहिए। दूसरा उपदेश यह है कि आयके अनुसार व्यय नहीं होता तथा व्ययके अनुसार आय भी नहीं होता किन्तु सब प्रकृतियोंका अपने अपने मूल द्रव्यके अनुसार आगममें प्रतिपादित विधिके अनुसार संक्रम होता है। उनमेंसे प्रथम उपदेशके अनुसार मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धियोंका आदेश जघन्य स्वामित्वविषयक अल्पबहुत्व प्रवृत्त हुआ

---

१. ता०प्रतौ 'वयाणुसारी आओ' इति पाठः। २. ता०प्रतौ '–जहण्णं वि सामित्तं तदणुसारी' इति पाठः।

तत्थ सोदएण सामित्तविहाणट्ठं वेछावट्ठीओ भमाडिय मिच्छत्तढोवणादो तेसिमेव जहण्ण-सामित्तमादेसपडिबद्धं विदियउवएसावलंबणेण पयट्टं, तत्थ तदणुसारेणेवप्पाबहुअ-परूवणुवलंभादो। तम्हा अहिप्पायभेदमिममासेज्ज सव्वत्थ सुत्ताणमविरोहो घडावेयव्वो त्ति ण किंचि दुग्घडं पेच्छामो। तदो सिद्धमायाणुसारिवयावलंबिसामित्तावलंबणे-णाणंताणुबंधिलोभादो मिच्छत्तमसंखेज्जगुणमिदि। एत्थ गुणगारो अधापवत्तभागहारो पुव्वसुत्ते वि उव्वेल्लण०णाणागुणहाणिसलागाणमण्णोण्णब्भत्थरासीदो असंखेज्जगुणो त्ति घेत्तव्वो, हेट्ठिमरासिणा उवरिमरासिम्मि भागे हिदे तहोवलंभादो।

❀ **अपच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंतकम्मसंखेज्जगुणं।**

§ २७२. एत्थ गुणगारो वेछावट्ठिसागरोवमणाणागुणहाणिसलागाणमण्णोण्ण-ब्भत्थरासीदो असंखे०गुणो।

❀ **कोधे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।**

❀ **मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।**

❀ **लोभे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।**

§ २७३. एदाणि सुत्ताणि सुट्ठु सुगमाणि।

है। तथा स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका ओघ जघन्य स्वामित्व भी उसीके अनुसार प्रवृत्त हुआ है। उनमेंसे स्वोदयसे स्वामित्वका कथन करनेके लिए दो छ्यासठ सागर काल तक भ्रमण कराकर मिथ्यात्वका संक्रमण हो जानेसे उन्हींका आदेशप्रतिबद्ध जघन्य स्वामित्व द्वितीय उपदेशका अवलम्बन लेकर प्रवृत्त हुआ है, क्योंकि वहां पर उसीके अनुसार ही अल्प-बहुत्वका कथन उपलब्ध होता है, इसलिए इस भिन्न अभिप्रायका आश्रय लेकर सर्वत्र सूत्रोंमें अविरोध स्थापित कर लेना चाहिए, इसलिए हम कुछ भी दुर्घट नहीं देखते हैं।

इसलिए सिद्ध हुआ कि आयके अनुसार व्ययका अवलम्बन लेनेवाले स्वामित्वका अव-लम्बन लेनेसे अनन्तानुबन्धी लोभसे मिथ्यात्वका द्रव्य असंख्यतगुणा है। यहां पर गुणकार अधः-प्रवृत्तभागहार है जो पहलेके सूत्रमें भी उद्वेलन भागहारकी नाना गुणहानिशलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्त राशिसे असंख्यातगुणा है ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि अधःस्तन राशिका उपरिम राशिमें भाग देने पर उसकी उपलब्धि होती है।

* **उससे अप्रत्याख्यान मानमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म असंख्यातगुणा है।**

§ २७२. यहाँ पर गुणकार दो छ्यासठ सागरकी नाना गुणहानिशलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्त राशिसे असंख्यातगुणा है।

* **उससे अप्रत्याख्यान क्रोधमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

* **उससे अप्रत्याख्यान मायामें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

* **उससे अप्रत्याख्यान लोभमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

§ २७३. ये सूत्र अत्यन्त सुगम हैं।

❀ पच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

❀ कोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

❀ मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

❀ लोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ २७४. एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि।

❀ पुरिसवेदे जहण्णपदेससंतकम्ममणंतगुणं ।

§ २७५. कुदो ? देसघाइत्तादो बहूणं परिणामिकारणाणमुवलंभादो ।

❀ इत्थिवेदे जहण्णपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं ।

§ २७६. कुदो ? पुरिसवेदबंधगद्धादो इत्थिवेदबंधगद्धाए संखे०गुणत्तादो । एत्थ चोदओ भणइ, कथं वेछावट्ठिसागरोवमाणि परिभमिय एइंदिएसुप्पण्णपढमसमए जहण्णभावमुवगयस्सेदस्स तव्विवरीदसरूवादो पुरिसवेददव्वादो असंखेज्जगुणहीणत्तं मुच्चा संखेज्जगुणत्तं जुज्जदे । ण च एदमविवक्खिय एइंदियजहण्णसंतकम्मस्सेव संगहो त्ति वोत्तुं जुत्तं, एदम्हादो तस्स असंखे०गुणत्तेण जहण्णभावाणुववत्तीदो तदविवक्खाए फलाणुवलंभादो च । तदो ण एदं सुत्तं समंजसमिदि । एत्थ परिहारो वुच्चदे—ण एसो

*** उससे प्रत्याख्यान मानमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।**

*** उससे प्रत्याख्यान क्रोधमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।**

*** उससे प्रत्याख्यान मायामें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।**

*** उससे प्रत्याख्यान लोभमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।**

§ २७४. ये सूत्र सुगम हैं।

*** उससे पुरुषवेदमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म अनन्तगुणा है ।**

§ २७५. क्योंकि देशघाति होनेसे इसके परिणमन करानेके बहुतसे कारण पाये जाते हैं ।

*** उससे स्त्रीवेदमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म संख्यातगुणा है ।**

§ २७६. क्योंकि पुरुषवेदके बन्धक कालसे स्त्रीवेदका बन्धक काल संख्यातगुणा है ।

शंका—यहाँ पर शंकाकार कहता है कि दो छ्यासठ सागर काल तक परिभ्रमण करके एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें जघन्य भावको प्राप्त हुआ वेद उसके विपरीत स्वभाववाला होनेसे पुरुषवेदके द्रव्यसे असंख्यातगुणे हीनको छोड़कर संख्यातगुणा कैसे बन सकता है । यदि कहा जाय कि इसकी अविवक्षा करके एकेन्द्रियके जघन्य सत्कर्मका ही संग्रह किया है सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि इससे एकेन्द्रियका जघन्य सत्कर्म असंख्यातगुणा होनेसे जघन्यभावकी उत्पत्ति नहीं हो सकती और उसकी अविवक्षा करनेमें कोई फल नहीं उपलब्ध होता, इसलिए यह सूत्र ठीक नहीं है ?

समाधान—यहाँ इस शंकाका परिहार करते हैं—इस स्त्रीवेदके जघन्य स्वामीको दो

इत्थिवेदजहण्णसामिओ[1] वेछावट्ठिसागरोवमाणि भमादेयव्वो, तब्भमणे फलाणुवलंभादो। सो[2] च कुदो ? वेछावट्ठिसागरोवमाणि परिभमिय सम्मत्तादो परिवडिय इत्थिवेदं बंधमाणस्स पुरिसवेदादो अधापवत्तभागहारेण इत्थिवेदम्मि संकममाणदव्वस्स असंखेज्ज-पंचिंदियसमयपबद्धमेत्तस्स एइंदियपाओग्गजहण्णपदेससंतकम्मं पेक्खियूण असंखेज्ज-गुणत्तादो। तं पि कुदो णव्वदे ? अधापवत्तभागहारादो जोगगुणगारस्स असंखेज्ज-गुणत्तपरूवयसुत्तादो। तदो एइंदियसंचयस्स पाहण्णियादो बंधगद्धावसेण संखेज्ज-गुणत्तमविरुद्धं सिद्धं।

❀ हस्से जहण्णपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं।

§ २७७. कुदो ? इत्थिवेदबंधगद्धादो एइंदिएसु हस्स-रइबंधगद्धाए संखेज्ज-गुणत्तादो।

❀ रदीए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

§ २७८. पयडिविसेसेण।

❀ सोगे जहण्णपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं।

छ्यासठ सागर काल तक नहीं घुमाना चाहिए, क्योंकि उस कालके भीतर घुमानेमें कोई फल नहीं पाया जाता।

शंका—यह किस कारणसे है ?

समाधान—क्योंकि दो छ्यासठ सागर काल तक भ्रमण करके और सम्यक्त्वसे च्युत होकर स्त्रीवेदका बन्ध करनेवाले जीवके पुरुषवेदमेंसे अधःप्रवृत्तभागहारके द्वारा स्त्रीवेदमें संक्रमणको प्राप्त होनेवाला पञ्चेन्द्रियके असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य एकेन्द्रियके योग्य जघन्य प्रदेशसत्कर्मको देखते हुए असंख्यातगुणा होता है।

शंका—वह भी किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—अधःप्रवृत्त भागहारसे योगगुणकार असंख्यातगुणा होता है ऐसा कथन करनेवाले सूत्रसे जाना जाता है।

इसलिए एकेन्द्रियके सञ्चयकी प्रधानता होनेसे बन्धक कालके वशसे पुरुषवेदके द्रव्यसे स्त्रीवेदका द्रव्य अविरोधरूपसे संख्यातगुणा सिद्ध होता है।

*** उससे हास्यमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म संख्यातगुणा है।**

§ २७७. क्योंकि स्त्रीवेदके बन्धक कालसे एकेन्द्रियोंमें हास्य और रतिका बन्धक काल संख्यातगुणा है।

*** उससे रतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

§ २७८. क्योंकि यह प्रकृतिविशेष है।

*** उससे शोकमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म संख्यातगुणा है।**

---

१. ता०प्रतौ 'ण एस दोसो इत्थिवेदजहण्णसामिओ' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'फलाणुवलंभादो च। सो' इति पाठः।

§ २७९. बंधगद्धाए तहवट्ठाणादो।

❀ **अरदीए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।**

§ २८०. पयडिविसेसादो।

❀ **णवुंसयवेदे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।**

२८१. कुदो ? एइंदियअरदि-सोगबंधगद्धादो तत्थतणणवुंसयवेदबंधगद्धाए विसेसाहियत्तादो। केत्तियमेत्तो बंधगद्धाविसेसो ? हस्स-रदिबंधगद्धाए संखेज्जभाग-मेत्तो। तदणुसारेण च दव्वविसेसो परूवेयव्वो।

❀ **दुगुंछाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।**

§ २८२. धुवबंधित्तादो।

❀ **भए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।**

§ २८३. पयडिविसेसेण तहावट्ठाणादो।

❀ **माणसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।**

§ २८४. मोहणीयदसमभागं पेक्खियूण तदट्ठमभागस्स विसेसाहियत्ते संदेहा-भावादो।

❀ **कोहसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।**

❀ **मायासंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।**

---

§ २७९. क्योंकि बन्धक काल उस प्रकारसे अवस्थित है।

* **उससे अरतिमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

§ २८०. क्योंकि यह प्रकृतिविशेष है।

* **उससे नपुंसकवेदमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

§ २८१. क्योंकि एकेन्द्रियोंमें अरति और शोकके बन्धक कालसे वहाँ पर नपुंसकवेदका बन्धक काल विशेष अधिक है। बन्धककाल विशेषका प्रमाण कितना है ? हास्य और रतिके बन्धककालके संख्यातवें भागप्रमाण है। और उसीके अनुसार द्रव्यविशेषका कथन करना चाहिए।

* **उससे जुगुप्सामें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

§ २८२. क्योंकि यह ध्रुवबन्धिनी प्रकृति है।

उससे भयमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।

§ २८३. क्योंकि प्रकृतिविशेष होनेसे उसका उस रूपसे अवस्थान है।

* **उससे मानसंज्वलनमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

§ २८४. क्योंकि मोहनीयके दसम भागको देखते हुए उसका आठवाँ भाग विशेष अधिक होता है इसमें सन्देह नहीं है।

* **उससे क्रोध संज्वलनमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

* **उससे माया संज्वलनमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है।**

❀ लोभसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ २८५. सुगमं ।

एदेण देसामासियदंडएण सूचिदसेसासेसमग्गणाओ अणुमग्गिदव्वाओ जाव अणाहारि त्ति ।

एवमप्पाबहुअं समत्तं ।

❀ एत्तो भुजगारं पदणिक्खेव-वड्ढीओ च कादव्वाओ ।

§ २८६. एत्तो उवरि भुजगारं परूविय तदो पदणिक्खेव-वड्ढीओ कायव्वाओ त्ति उवरिमाणंतरसुत्तावेक्खो सुत्तत्थसंबंधो कायव्वो । संपहि एदस्स अत्थसमप्पणा-सुत्तस्स सूचिदासेसपरूवणस्स दव्वट्ठियणयावलंबिसिस्साणुग्गहकारिणो भगवदीए उच्चारणाए पसाएण पज्जवट्ठियपरूवणं भणिस्सामो । तं जहा—भुजगारविहत्तीए तत्थ इमाणि तेरसाणियोगद्दाराणि समुक्कित्तणा जाव अप्पाबहुए त्ति । तत्थ समुक्कित्तणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछाणमत्थि भुज० अप्प० अवट्ठिदविहत्तिओ । सम्म०-सम्मामि० अत्थि० भुज० अप्प० अवत्तव्वमवट्ठिदं च । अणंताणुबंधिचउक्कस्स अत्थि भुज० अप्प० अवट्ठिद० अवत्तव्वं । इत्थिवेद०-णवुंसय०-हस्स-रइ-अरइ-सोगाणमत्थि भुज० अप्प०विहत्तिओ । अवट्ठिदं च उवसमसेढीए । एवं सव्वणेरइय--सव्वतिरिक्ख-

---

❀ उससे लोभसंज्वलनमें जघन्य प्रदेशसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ २८५. ये सूत्र सुगम हैं । इस देशामर्षकदण्डकका अवलम्बन लेकर अनाहारक मार्गणा तक समस्त मार्गणाओंका अनुमार्गण करना चाहिए ।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

❀ इससे आगे भुजगार, पदनिक्षेप और वृद्धि करनी चाहिए ।

§ २८६. इससे आगे भुजगारका कथन करके अनन्तर पदनिक्षेप और वृद्धिका कथन करना चाहिए इस प्रकार उपरिम अनन्तर सूत्रकी अपेक्षा करके इस सूत्रके अर्थका सम्बन्ध करना चाहिए। अब समस्त प्ररूपणाओंको सूचन करनेवाले और द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेवाले शिष्योंका अनुग्रह करनेवाले और मुख्यरूपसे अधिकारका सूचन करनेवाले इस सूत्रकी भगवती उच्चारणाके प्रसादसे विशेष प्ररूपणा करते हैं । यथा—भुजगार विभक्तिमें ये तेरह अनुयोगद्वार होते हैं—समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व तक । उनमेंसे समुत्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघसे मिथ्यात्व, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्ति है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यविभक्ति है । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी भुजगार और अल्पतरविभक्ति है । तथा उपशमश्रेणिमें अवस्थितविभक्ति है । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सब मनुष्य, देव और भवनवासियोंसे लेकर उपरिम

सव्वमणुस्स-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति । णवरि मणुसतियवदिरित्तेसु इत्थि-णवुंस०-हस्स-रदि-अरदि-सोगाणमवट्ठिदं णत्थि। अण्णं च पंचिं०तिरिक्ख-अपज्ज०-मणुसअपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछ० अत्थि भुज० अप्प० अवट्ठि० । सत्तणोकसायाणमत्थि भुज० अप्प० । सम्मत्त०-सम्मामि० अत्थि अप्पदरविहत्ती । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क०-इत्थि-णवुंस० अत्थि अप्पदरविहत्ती । णवरि सम्म०-सम्मामि० भुजगारो वि दीसइ उवसमसेढीए कालं कादूण तत्थुप्पण्णउवसमसम्माइट्ठिम्मि त्ति तमेत्थ ण विवक्खियं, तदविवक्खाए कारणं जाणिय वत्तव्वं । बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछ० अत्थि भुज० अप्प० अवट्ठि० । हस्स-रइ-अरइ-सोगाणमत्थि भुज० अप्प०विहत्तिओ, उवसमसेढीदो अण्णत्थ एदेसिमवट्ठिदपदाभावादो । एवं जाव अणाहारि त्ति ।

समुक्कित्तणा गदा ।

§ २८७. सामित्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मिच्छ० भुज०विहत्ती कस्स ? अण्णद० मिच्छाइट्ठिस्स । अवट्ठि० कस्स ? अण्णद० मिच्छाइट्ठिस्स वा सासणसम्माइट्ठिस्स वा । अप्प० कस्स ? अण्णद० सम्माइट्ठिस्स वा मिच्छाइट्ठिस्स वा । सम्म०-सम्मामि० भुज०-अवत्त० कस्स ?

ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिकको छोड़कर शेषमें स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी अवस्थितविभक्ति नहीं है । और भी—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्ति है। सात नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्ति है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतरविभक्ति है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी अल्पतरविभक्ति है । इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगारविभक्ति भी दिखलाई देती है जो उपशमश्रेणिमें मरकर वहाँ उत्पन्न हुए उपशमसम्यग्दृष्टिके होती है परन्तु उसकी यहाँ विवक्षा नहीं है। उसकी विवक्षा न होनेका कारण जानकर कहना चाहिए। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्ति है । हास्य, रति, अरति और शोककी भुजगार और अल्पतरविभक्ति है, क्योंकि उपशमश्रेणिके सिवा अन्यत्र इसका अवस्थितपद नहीं पाया जाता। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए ।

इस प्रकार समुत्कीर्तना समाप्त हुई ।

§ २८७. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी भुजगारविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टिके होती है। अवस्थितविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टिके होती है। अल्पतरविभक्ति किससे होती है। अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिके होती है। सम्यक्त्व

अण्णद० सम्माइट्ठिस्स । अवट्ठि० कस्स ? अण्ण० सासणसम्माइट्ठिस्स । अप्प० कस्स ? अण्ण० सम्माइट्ठि० मिच्छाइट्ठिस्स वा । अणंताणु०चउक्कस्स मिच्छत्तभंगो । णवरि अवट्ठि० कस्स ? अण्ण० मिच्छाइट्ठिस्स । अवत्त० कस्स ? अण्णद० विसंजोइय पुणो संजुत्तपढमसमए वट्टमाणयस्स । बारसक०-भय-दुगुंछ० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० कस्स ? अण्ण० सम्माइट्ठि० मिच्छाइट्ठि० । इत्थि०-णवुंस० भुज०-विहत्ति० कस्स ? अण्णद० मिच्छाइट्ठिस्स । अप्प० कस्स ? अण्णद० सम्माइट्ठि० मिच्छाइट्ठि० वा । हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं भुज०-अप्पद० कस्स ? अण्ण० सम्मा० मिच्छाइट्ठिस्स वा । एदेसिं छण्णं पि णोकसायाणं अवट्ठि० कस्स ? अण्णद० चारित्तमोहउवसामयस्स सव्वुवसामणाए वट्टमाणयस्स । पुरिस० भुज०-अप्प० कस्स ? अण्णद० सम्माइट्ठि० मिच्छाइट्ठिस्स वा । अवट्ठि० कस्स ? अण्णद० सम्माइट्ठिस्स । एवं सव्वणेरइय--तिरिक्ख--पंचिंदियतिरिक्खतिय--मणुसतिय--देवगइदेवा भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति । णवरि छण्णोकसायाणमवट्ठिदविहत्ती मणुसतियवदिरित्तमग्गणासु णत्थि । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछ० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० कस्स ? अण्णद० सम्म० सम्मामि० । अप्प० कस्स० अण्णद० । सत्तणोक० भुज०-अप्प० कस्स ? अण्ण० । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति मिच्छ०-

और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अवक्तव्यविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टिके होती है । अवस्थितविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर सासादनसम्यग्दृष्टिके होती है । अल्पतरविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिके होती है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है । इतनी विशेषता है कि अवस्थितविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टिके होती है । अवक्तव्यविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर विसंयोजना करनेके बाद पुनः संयुक्त होनेके प्रथम समयमें विद्यमान जीवके होती है । बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिके होती है । स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी भुजगारविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टिके होती है । अल्पतरविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिके होती है । हास्य, रति, अरति और शोककी भुजगार और अल्पतरविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिके होती है । इन छहों नोकषयोंकी अवस्थितविभक्ति किसके होती है ? सर्वोपशामनाके साथ विद्यमान चारित्रमोहनीयकी उपशामना करनेवाले अन्यतर जीवके होती है । पुरुषवेदकी भुजगार और अल्पतरविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिके होती है । अवस्थितविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टिके होती है । इसी प्रकार सब नारकी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, मनुष्यत्रिक, देवगतिमें सामान्य देव और भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि छह नोकषायोंकी अवस्थितविभक्ति मनुष्यत्रिकके सिवा अन्य मार्गणाओंमें नहीं है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिके होती है । अल्पतरविभक्ति किसके होती है ? अन्यतरके होती है । सात नोकषायोंकी भुगजार और

सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क०-इत्थि०-णवुंस० अप्प० कस्स ? अण्णद० । बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछ० तिण्णि वि पदाणि कस्स ? अण्णद० । चउणोक० भुज०-अप्प० कस्स ? अण्णद० । एवं जाव अणाहारए त्ति ।

सामित्तं गदं ।

§ २८८. कालाणु० दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ०-अणंताणु०चउक्काणं भुज०विहत्ती केवचिरं ? जहण्णेण एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । अप्प०विह० जह० एगस०, उक्क० वेछावट्ठि० सागरोवमाणि सादिरेयाणि । अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । णवरि मिच्छ० उक्क० छावलियाओ । अणंताणु०चउक्क० अवत्त० जहण्णुक्क० एगस० । सम्म०-सम्मामि० भुज० जहण्णुक्क० अंतोमु० । अप्प० जह० अंतोमु०, उक्क० वेछावट्ठि-सागरो० सादिरेयाणि पलिदो० असंखे०भागेण । अवत्त० जहण्णुक्क० एगस० । अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० छावलियाओ । बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछ० भुज०-अप्प० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया अंतोमुहुत्तं वा उवसमसेढिं पडुच्च । इत्थि०-णवुंस० भुज० जह०

अल्पतरविभक्ति किसके होती है ? अन्यतरके होती है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी अल्पतरविभक्ति किसके होती है ? अन्यतरके होती है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्सा के तीनों पद किसके होते हैं ? अन्यतरके होते हैं। चार नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्ति किसके होती है ? अन्यतरके होती है। इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ।

§ २८८. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजगारविभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छ्यासठ सागरप्रमाण है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल छह आवलि है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगारविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अल्पतर विभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवां भाग अधिक दो छ्यासठ सागर है। अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल छह आवलि है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी भुजगार और अल्पतर विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय अथवा

एगस०, उक्क० अंतोमु० । अप्प० जह० एगसमओ, उक्क० वेछावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि । हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं भुज०-अप्प० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एदेसिं छण्णोक० अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० ।

अन्तर्मुहूर्त है उपशमश्रेणिकी अपेक्षा। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी भुजगारविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर है। हास्य, रति, अरति और शोककी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इन छह नोकषायोंकी अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—ओघसे मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजगारविभक्ति मिथ्यादृष्टि जीवके होती है। मिथ्यात्वमें भुजगारका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इनके इस पदका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। इनकी अल्पतरविभक्ति मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनोंके होती है, इसलिए इनके इस पदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवां भाग अधिक दो छयासठ सागर कहा है। यहाँ प्रारम्भमें उपशमसम्यक्त्वके साथ रखकर और मध्यमें सम्यग्मिथ्यात्वमें ले जाकर वेदकसम्यक्त्वके साथ उत्कृष्ट काल तक रखकर मिथ्यात्वमें भी यथासम्भव काल तक अल्पतरविभक्ति करानेसे यह काल प्राप्त होता है। इनकी अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है यह स्पष्ट ही है। मात्र सासादनगुणस्थानमें मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्ति उसके पूरे उत्कृष्ट काल तक बनी रहे यह सम्भव है, इसलिए यहाँ मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल छह आवलिप्रमाण कहा है। अवक्तव्यविभक्ति बन्ध या सत्त्वके प्रारम्भ होनेके प्रथम समयमें होती है, इसलिए अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगारविभक्ति उपशमसम्यक्त्वके समय होती है और इसका काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए यहाँ इन दो प्रकृतियोंकी भुजगारविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। इनकी अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक दो छयासठ सागरप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। इनकी अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय अनन्तानुबन्धीके समान तथा अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलि मिथ्यात्वके समान घटित कर लेना चाहिए। बारह कषाय आदिकी भुजगार और अल्पतरविभक्ति मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनोंके होती है पर इनका उत्कृष्ट काल मिथ्यादृष्टिके ही सम्भव है, क्योंकि वहीं पर इनके ये दोनों पद पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक हो सकते हैं, इसलिए इनके इन दोनों पदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। इनकी अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है यह स्पष्ट ही है। तथा उपशमश्रेणिमें अन्तर्मुहूर्त काल तक इनका अवस्थितपद सम्भव है, इसलिए इस अपेक्षासे इनके अवस्थितपदका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका भुजगारपद तो अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक ही होता है पर इनका अल्पतरपद साधिक दो छयासठ सागर काल तक भी सम्भव है, इसलिए इनके इन दोनों पदोंका जघन्य काल एक समय तक भुजगारका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त और अल्पतरका उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागरप्रमाण कहा है। हास्यादिका बन्ध

§ २८६. आदेसेण णेरइएसु मिच्छ० भुज० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अप्प० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीससागरोवमाणि देसूणाणि। अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया छावलिया वा। एवमणंताणु०चउक्कस्स। णवरि अवत्त० जहण्णुक्क० एगस०। अवट्ठिदस्स वि संखेज्जा चेव समया उक्कस्सकालो वत्तव्वो। सम्म०-सम्मामि० भुज० जह० उक्क० अंतोमु०। अप्प० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीस सागरोवमाणि। अवत्त० जहण्णुक्क० एगसमओ। अवट्ठि० ओघभंगो। बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछ० भुज०-अप्प० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० सत्तट्ठ समया। इत्थि०-णवुंस० भुज० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अप्प० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीस सागरो० देसूणाणि। हस्स-रइ-अरइ-सोग० भुज०-अप्प० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। एवं सत्तमाए पुढवीए।

सम्यग्दृष्टिके भी बदलता रहता है, इसलिए इनके अल्पतर और भुजगारपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होनेसे उक्त कालप्रमाण कहा है। इन छह नोकषायोंका अवस्थितपद उपशमश्रेणिमें भी सम्भव है, इसलिए इसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

§ २८६. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्वकी भुजगारविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है अथवा छह आवलि है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अवस्थितविभक्तिका भी उत्कृष्ट काल संख्यात समय ही कहना चाहिए। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगारविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थितविभक्तिका भङ्ग ओघके समान है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात आठ समय है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी भुजगारविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। हास्य, रति, अरति और शोककी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ सब प्रकृतियोंके सम्भव पदोंका काल ओघको देखकर घटित कर लेना चाहिए। मात्र अल्पतरविभक्तिके उत्कृष्ट कालमें जहाँ विशेषता है उसे और उपशमश्रेणिके कारण अवस्थित पदके कालमें जो विशेषता आती है वह यहां सम्भव न होनेसे उसे अलगसे घटित कर जान लेना चाहिए।

§ २६०. पढमाए जाव छट्ठि त्ति मिच्छ० भुज० ओघं। अप्प० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी भाणिदव्वा। अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० सत्तट्ठसमया आवलिया वा। सम्म०-सम्मामि० भुज० जह० उक्क० अंतोमु०। अप्प० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदीओ। अवत्त०-अवट्ठि० ओघभंगो। अणंताणु०-चउक्कस्स मिच्छत्तभंगो। णवरि अवत्त० जहण्णुक्क० एगस०। अवट्ठिद० उक्क० संखेज्जा चेव समया। बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछ० ओघो। इत्थि-णवुंस० भुज० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं णिरओघभंगो।

§ २६१. तिरिक्खगईए तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खतिए मिच्छ०-अणंताणु०-चउक्काणमोघो। णवरि अप्प० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पलिदो० असंखे०भागेण सादिरेयाणि। पंचिंदियतिरिक्खतियम्मि तिण्णि पलिदो० पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि। सम्म०-सम्मामि० भुज०-अवट्ठि०-अवत्त० ओघं। अप्प० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पलिदो० असंखे०भागेण सादिरेयाणि। पंचिंदियतिरिक्खतियम्मि तिण्णि पलिदो० पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि। बारसक०-

§ २६०. पहली पृथिवी से लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्वकी भुजगार विभक्तिका काल ओघके समान है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण कहना चाहिए। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात आठ समय अथवा छह आवलि है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगारविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। अवक्तव्य और अवस्थित-विभक्तिका भङ्ग ओघके समान है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थित-विभक्तिका उत्कृष्ट काल संख्यात ही समय है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका भङ्ग ओघके समान है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी भुजगारविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। हास्य, रति, अरति और शोकका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ जिन प्रकृतियोंके जिन पदोंका काल अपनी स्थितिप्रमाण कहा है वहां अपने अपने नरककी उत्कृष्ट स्थिति लेनी चाहिए। शेष कथन सुगम है।

§ २६१. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तिर्यञ्चोंमें पल्यका असंख्यातवां भाग अधिक तीन पल्य है तथा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें पूर्व कोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अवस्थित और अव्यक्तव्यविभक्तिका भङ्ग ओघके समान है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तिर्यञ्चोंमें पल्यका असंख्यातवां भाग अधिक तीन पल्य है और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें पूर्व कोटिपृथक्त्व अधिक

पुरिस०-भय-दुगुंछ० ओघो। णवरि अवट्ठि० अंतोमुहुत्तं णत्थि। इत्थि०-णवुंस० भुज० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अप्प० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि। जोणिणीसु देसूणाणि। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणमोघो। णवरि अवट्ठिदं णत्थि।

§ २९२. पंचिं०तिरिक्खअपज्ज० मिच्छ०--सोलसक०--भय- दुगुंछ० भुज०-अप्प० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। सम्म०-सम्मामि० अप्प० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। सत्तणोक० भुज०-अप्प० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। एवं मणुसअपज्जत्तएसु।

§ २९३. मणुसतिए पंचिंदियतिरिक्खभंगो। णवरि इत्थि०-णवुंस० अप्प० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडितिभागेण सादिरेयाणि। मणुसणीसु देसूणाणि। बारसक०-णवणोक० अवट्ठि० ओघभंगो।

तीन पल्य है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि अवस्थितविभक्तिका अन्तर्मुहूर्त काल नहीं है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी भुजगारविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अल्पतर विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन पल्य है। मात्र योनिनी जीवोंमें यह काल कुछ कम तीन पल्य है। हास्य, रति, अरति और शोकका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनका अवस्थित पद नहीं है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिककी कायस्थिति पूर्व कोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। इसलिए इनमें जिन प्रकृतियोंके जिन पदोंका काल उक्तप्रमाण कहा है वह अपनी अपनी कायस्थितिको ध्यानमें रखकर घटित कर लेना चाहिए। मात्र तिर्यञ्चोंकी कायस्थिति अनन्त काल है पर उनमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अल्पतर-विभक्ति पल्यके असंख्यातवें भाग अधिक तीन पल्य काल तक ही बन सकती है, इसलिए यह काल उक्त प्रमाण कहा है। इसी प्रकार शेष कालको भी विचार कर घटित कर लेना चाहिए।

§ २९२. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तक जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सात नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए।

§ २९३. मनुष्यत्रिकमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एक पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पल्य है। मात्र मनुष्यिनियोंमें कुछ कम तीन पल्य है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंके अवस्थित पदका भङ्ग ओघके समान है।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्य और मनुष्य पर्याप्त एक पूर्वकोटिके त्रिभाग अधिक तीन पल्य काल तक सम्यक्त्वी हो सकते हैं और इनके इतने काल तक स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका

§ २९४. देवगईए देवेसु मिच्छत्त-अणंताणु०चउक्क० भुज०-अवट्ठि० अणंताणु० चउक्क० अवत्त० ओघो। अप्प० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि। सम्म०-सम्मामि० भुज०-अवट्ठि०-अवत्त० ओघो। अप्प० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि। बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछ०-हस्स-रइ-अरइ-सोगाणमोघो। णवरि बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछ० अवट्ठि० उक्क० संखेज्जा[1] समया। चदुणोकसाय० अवट्ठिदं णत्थि। इत्थि०-णवुंस० भुज० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अप्प० जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि। एवं भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति। णवरि जत्थ तेत्तीसं सागरोवमाणि तत्थ सगट्ठिदी भाणिदव्वा। भवण०-वाण०-जोदिसि० इत्थि०-णवुंस० सगट्ठिदी देसूणा।

§ २९५. अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति मिच्छ०-सम्मामि०-इत्थि०-णवुंस० अप्पद० जहण्णुक्कस्से० जहण्णुक्कस्सट्ठिदीओ। सम्म० अप्प० जह० एगस०

अल्पतर पद बन जाता है। मात्र मनुष्यिनीमें यह काल कुछ कम तीन पल्य ही प्राप्त होता है। इसलिए इन तीन प्रकारके मनुष्योंमें उक्त दो वेदोंके अल्पतर पदका उक्त काल कहा है। शेष कथन सुगम है।

§ २९४. देवगतिमें देवोंमें मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजगार और अवस्थितविभक्तिका तथा अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिका भङ्ग ओघके समान है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तिका भङ्ग ओघके समान है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, हास्य, रति, अरति और शोकका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तथा चार नोकषायोंकी अवस्थितविभक्ति नहीं है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी भुजगारविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अल्पतर-विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसीप्रकार भवन-वासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयकतकके देवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जहां पर तेतीस सागर कहे हैं वहां पर अपनी स्थिति कहनी चाहिए। तथा भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी अल्पतरविभक्तिका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण कहना चाहिए।

विशेषार्थ—सौधर्मादिकमें सम्यग्दृष्टि जीव अपने पूरे काल तक पाये जाते हैं और भवनत्रिकमें नहीं, इसलिए यहाँ भवनत्रिकमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी अल्पतरविभक्तिका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण कहा है और सौधर्मादिकमें पूरी अपनी अपनी स्थितिप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

§ २९५. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी अल्पतरविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी जघन्य और

---

१. ता०प्रतौ 'अवट्ठि० संखेज्जा' इति पाठः।

कदकरणिज्जं पडुच्च, उक्क० सगट्ठिदी। अणंताणु०चउक्क० अप्प० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी। बारसक०-सत्तणोक० देवोघं। एवं जाव अणाहारि त्ति।

कालाणुगमो समत्तो।

§ २९९. अंतराणुगमेण दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ० भुज०विहत्तीए अंतरं जह० एगस०, उक्क० बेछावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि। अप्प० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। भुजगार-अप्पदरकालाणमण्णोण्णमणुसंधिय ट्ठिदाणमवट्ठिदविहत्तीए अंतरत्तेण गहणादो। कधं पादेक्कं पलिदो० असंखे०भागपमाणाणमण्णोण्णसंबंधेण एम्महत्तं? ण, बहुलेयरपक्खाणं व असंखेज्जपरियट्टणवारेहि तेसिं तहाभावे विरोहाभावादो। सम्म०-सम्मामि० भुज०-अप्प० जह० अंतोमु०, अवत्त०-अवट्ठि० जह० पलिदो० असंखे०भागो, उक्क० सव्वेसिं पि उवड्ढपोग्गलपरियट्टं। अणंताणु०चउक्क०

उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्वकी अल्पतरविभक्तिका कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। बारह कषाय और सात नोकषायोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। इसीप्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए।

विशेषार्थ—अनुदिशसे लेकर सब देव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, इसलिए इनमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका एक अल्पतर पद होता है, अतः इन प्रकृतियोंके उक्त पदका जघन्य और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिको ध्यानमें रख कर कहा है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

§ २९९. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्वकी भुजगारविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो छयासठ सागरप्रमाण है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। यहाँ पर भुजगार और अल्पतरविभक्तिके कालोंको परस्पर रोककर स्थित हुए जीवोंकी अवस्थितविभक्तिका अन्तर काल ग्रहण किया है।

शंका—भुजगार और अल्पतरविभक्तिमेंसे प्रत्येकका काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इन दोनोंके सम्बन्धसे इतना बड़ा काल कैसे बन सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षके समान असंख्यात बार परिवर्तनोंका अवलम्बन लेकर भुजगार और अल्पतरविभक्तिके उसप्रकारके होनेमें कोई विरोध नहीं आता।

सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, अवक्तव्य और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है और सबका उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी

भुज० मिच्छत्तभंगो। अप्प० जह० एगस०, उक्क० वेछावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि। अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अवत्त० जह० अंतोमु०, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं। बारसक०-भय-दुगुंछ० भुज०-अप्प० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अवट्ठि० मिच्छत्तभंगो। एवं पुरिस०। णवरि अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं। इत्थि० भुज० जह० एगस०, उक्क० वेछावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि। अप्प० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। एवं णवुंस०। णवरि भुज० जह० एगसमओ, उक्क० वेछावट्ठिसागरो० तीहि पलिदोवमेहि सादिरेयाणि। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं भुज०-अप्प० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। छण्णोक० अवट्ठि० जह० अंतोमु०, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं।

भुजगारविभक्तिका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो छयासठ सागरप्रमाण है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थितविभक्तिका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इसीप्रकार पुरुषवेदके विषयमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। स्त्रीवेदकी भुजगारविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो छयासठ सागरप्रमाण है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसीप्रकार नपुंसकवेदके विषयमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि भुजगारविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर तीन पल्य अधिक दो छयासठ सागरप्रमाण है। हास्य, रति, अरति और शोककी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। छह नोकषायोंकी अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वकी भुजगारविभक्ति मिथ्यात्व गुणस्थानमें होती है और मिथ्यात्व गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर दो छयासठ सागरप्रमाण है, इसलिए यहाँ मिथ्यात्वकी भुजगारविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो छयासठ सागर कहा है। यहाँ साधिकसे मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्वकी अल्पतरविभक्तिका काल ले लिया है। मिथ्यात्वकी भुजगारविभक्तिका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए यहाँ इसकी अल्पतरविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर काल असंख्यात लोकप्रमाण है इस बातका स्पष्टीकरण मूलमें ही किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका कमसे कम काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इनके उक्त दोनों पदोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। इनकी अवक्तव्यविभक्ति उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करनेके प्रथम समयमें ऐसे जीवके होती है जिसके इनका सत्त्व नहीं है और उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करनेका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए तो इनकी अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा इनकी अवस्थित-

§ २६७. आदेसेण णेरइएसु मिच्छ० भुज०-अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। अप्प० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। सम्म०-सम्मामि० भुज०-अवट्ठि०-अवत्त० जह० पलिदो० असंखे०भागो, अप्प०

विभक्ति सासादन गुणस्थानमें होती है, इसलिए इनकी अवस्थितविभक्तिका भी जघन्य अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। यह सम्भव है कि अर्ध पुद्गल परिवर्तनके प्रारम्भमें और अन्तमें इन दोनों प्रकृतियोंके उक्त चार पद हों और मध्यमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना हो जानेसे न हों, अतः यहाँ इनके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण कहा है। वेदकसम्यग्दृष्टि जीव यदि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना न करे तो दो छयासठ सागर काल तक अल्पतरविभक्ति होती है, इसलिए तो इनकी भुजगारविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर मिथ्यात्वकी भुजगारविभक्तिके समान उक्त कालप्रमाण कहा है और यदि विसंयोजना कर दे तथा मिथ्यात्वमें जाकर संयुक्त होकर अल्पतरविभक्ति करे तो इनकी अल्पतरविभक्तिका भी उक्त कालप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होनेसे वह भी उक्त कालप्रमाण कहा है। इनकी अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक जैसा मिथ्यात्वकी अवस्थितविभिक्तिका घटित करके मूलमें बतलाया है उसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। इनकी दो बार विसंयोजना होकर पुनः संयुक्त होनेमें जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त लगता है और विसंयोजना होकर संयुक्त होनेकी क्रिया अर्ध पुद्गल परिवर्तन कालके प्रारम्भमें एक बार हो तथा दूसरी बार अन्तमें हो यह भी सम्भव है, इसलिए इनके अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण कहा है। बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इनके इन दोनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर भी उक्त कालप्रमाण प्राप्त होनेसे उतना कहा है। इनकी अवस्थितविभक्तिका अन्तर काल मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिके समान है यह स्पष्ट ही है। पुरुषवेदके सब पदोंका भङ्ग इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र इसकी अवस्थितविभक्ति सम्यग्दृष्टिके होती है और सम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है, इसलिए इसके उक्त पदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। स्त्रीवेदकी अल्पतरविभक्तिका उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागरप्रमाण है और भुजगार-विभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए यहाँ इसकी भुजगारविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो छयासठ सागरप्रमाण और अल्पतरविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। नपुंसकवेदकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र भोगभूमिमें पर्याप्त होनेपर नपुंसकवेदका बन्ध नहीं होता, इसलिए इसकी भुजगार-विभिक्तका उत्कृष्ट अन्तर तीन पल्य अधिक दो छयासठ सागर प्राप्त होनेसे उक्त काल प्रमाण कहा है। हास्यादि चार सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होनेसे उक्त कालप्रमाण कहा है। यहाँ स्त्रीवेद आदि उक्त छह नोकषायोंकी अवस्थितविभक्ति उपशमश्रेणिमें प्राप्त होती है और उपशमश्रेणिका उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है, इसलिए इनके इस पदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। यहाँ सब प्रकृतियोंके सब पदोंका जघन्य अन्तर सुगम होनेसे घटित करके नहीं बतलाया है सो जान लेना।

§ २६७. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्वकी भुजगार और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सम्यक्त्व और

जह० अंतोमु०, उक्क० सव्वेसिं पि तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । अणंताणु०चउक्क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० जह० एगस०, अवत्त० जह० अंतोमु०, उक्क० चत्तारि वि पदाणि तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछ० भुज०-अप्प० ओघं । अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । इत्थि०-णवुंस० भुज० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीसं साग० देसूणाणि । अप्प० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । हस्स-रइ-अरइ-सोगाणमोघो । णवरि अवट्ठि० णत्थि । एवं पढमादि जाव सत्तमा त्ति । णवरि सगट्ठिदी देसूणा भाणियव्वा ।

§ २६८. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु मिच्छ० भुज० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पलिदो० असंखे०भाएण सादिरेयाणि । अप्प०-अवट्ठि० ओघो । सम्म०-सम्मामि० भुज०-अवट्ठि०-अवत्त० जह० पलिदो० असंखे०भागो, अप्प० जह० अंतोमु०, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं । अणंताणु०चउक्क० भुज०-अप्प० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरेयाणि । अप्प० देसूणाणि । अवट्ठि०-

---

सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित-विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और चारोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका भङ्ग ओघके समान है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी भुजगार-विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अल्पतर-विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। हास्य, रति, अरति और शोकका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनका अवस्थितपद नहीं है। पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक इसीप्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि कुछ कम अपनी स्थिति कहनी चाहिए।

विशेषार्थ—ओघमें हम सब प्रकृतियोंके अलग-अलग पदोंका अन्तर काल घटित करके बतला आये हैं। यहाँ नरकमें अपनी-अपनी विशेषताको ध्यानमें लेकर और यहाँके उत्कृष्ट कालको जानकर वह घटित कर लेना चाहिए। मात्र नरकमें उपशमश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव न होनेसे यहाँ स्त्रीवेद आदि छह नोकषायोंके अवस्थितपदका निषेध किया है। प्रत्येक नरकमें भी इन्हीं विशेषताओंको ध्यानमें लेकर यह अन्तर काल घटित कर लेना चाहिए।

§ २६८. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्वकी भुजगारविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग अधिक तीन पल्य है। अल्पतर और अवस्थितविभक्तिका भङ्ग ओघके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अल्पतर-विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और

अवत्त० ओघो। बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० ओघो। णवरि पुरिस० अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसूणाणि। इत्थि० भुज० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसूणाणि। अप्प० जह० एगस०, उक्क अंतोमु०। णवुंस० अप्प० ओघो। भुज० जह० एगस०, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणमोघो। णवरि अवट्ठि० णत्थि।

§ २६६. पंचिंदियतिरिक्खतिए मिच्छ० भुज०-अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अप्प० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अणंताणु०चउक्क० भुज०-अवट्ठि० मिच्छत्तभंगो। अप्प० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि

उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है। मात्र अल्पतरविभक्तिका कुछ कम तीन पल्य है। अवस्थित और अवक्तव्यविभक्तिका भङ्ग ओघके समान है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेदकी अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। स्त्रीवेदकी भुजगारविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। नपुंसकवेदकी अल्पतरविभक्तिका भङ्ग ओघके समान है। भुजगारविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूवकोटि है। हास्य, रति, अरति और शोकका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेपता है कि इनका अवस्थितपद नहीं है।

विशेषार्थ—कोई तिर्यञ्च पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक मिथ्यात्वकी अल्पतरविभक्ति करता रहा। उसके बाद तीन पल्यकी आयुके साथ भोगभूमिमें उत्पन्न हो वहाँ भी आयुके अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने तक मिथ्यात्वकी अल्पतरविभक्ति करता रहा, इस प्रकार भुजगार-विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण प्राप्त होनेसे वह तत्प्रमाण कहा है। अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी भुजगारविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर काल साधिक तीन पल्य इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अल्पतरविभक्ति उत्तम भोगभूमिमें कुछ कम तीन पल्य ही बन सकती है, क्योंकि तिर्यञ्चोंमें वेदक सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल इतना ही प्राप्त होता है, इसलिए इनकी अल्पतरविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य कहा है। पुरुषवेदकी अवस्थितविभक्ति सम्यग्दृष्टिके होती है और तिर्यञ्चोंमें वेदकसम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है, इसलिए यहाँ पुरुषवेदकी अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। सम्यग्दृष्टिके स्त्रीवेदकी भुजगारविभक्ति नहीं होती और तिर्यञ्चोंमें वेदकसम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है, इसलिए इनमें स्त्रीवेदकी भुजगारविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य कहा है। परन्तु नपुंसकवेदकी भुजगारविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर कर्मभूमिज तिर्यञ्चके ही प्राप्त होता है और इनमें वेदकसम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है, इसलिए तिर्यञ्चोंमें नपुंसकवेदकी भुजगारविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

§ २६६. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें मिथ्यात्वकी भुजगार और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनन्तानु

पलिदो० देसूणाणि। अवत्त० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। सम्म०-सम्मामि० भुज०-अवट्ठि०-अवत्त० जह० पलिदो० असंखे०भागो, अप्प० जह० अंतोमु०, उक्क० सव्वपदाणं सगट्ठिदी देसूणा। बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० भुज०-अप्पदर० ओघो। अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। पुरिस० तिण्णि पलिदो० देसूणाणि। इत्थि०-णवुंसय०-हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं तिरिक्खोघो।

§ ३००. पंचिं०तिरिक्खअपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछा० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० जह एगस०, उक्क० अंतोमु०। सत्तणोक० भुज०-अप्प० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। सम्म०-सम्मामि० अप्प० णत्थि अंतरं।

§ ३०१. मणुस्सगईए मणुस्सतियस्स पंचिंदियतिरिक्खभंगो। णवरि छण्णोक० अवट्ठि० जह० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं। सम्म०-सम्मामि० भुज० जह०

बन्धीचतुष्ककी भुजगार और अवस्थितविभक्तिका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्यप्रमाण है। अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका भङ्ग ओघके समान है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। मात्र पुरुषवेदकी अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोकका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिककी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। इसे ध्यान में रखकर यहाँ अन्तर काल घटित करके बतलाया गया है। शेष विशेषता स्वामित्वको ध्यानमें रखकर जान लेनी चाहिए।

§ ३००. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सात नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतरविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—इन तिर्यञ्चोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंके सम्भव पदोंका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका एक अल्पतरपद होता है, इसलिए उसके अन्तर कालका निषेध किया है।

§ ३०१. मनुष्यगतिमें मनुष्यत्रिकमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि छह नोकषायोंकी अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर

अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । मणुसअपज्ज० पंचिं०तिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

§ ३०२. देवगईए देवेसु मिच्छ० भुज०-अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि । अप्पद० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०-भागो । सम्म०-सम्मामि० भुज०-अवट्टि०-अवत्त० जह० पलिदो० असंखे०भागो, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि । अप्प० जह० अंतोमु०, उक्क० तं चेव । अणंताणु०चउक्क० भुज०-अप्प०-अवट्टि० जह० एगस०, अवत्त० जह० अंतोमु०, उक्क० चदुण्हं पि एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि । बारसक०--पुरिस०--भय-दुगुं० णेरइयभंगो । इत्थि०-णवुंस० भुज० जह० एग०, उक्क० एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि । अप्प० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । हस्स-रइ-अरइ-सोगाणमोघो । णवरि अवट्टि० णत्थि । भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति एवं चेव । णवरि सगट्टिदी भाणियव्वा ।

पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगारविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है ।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमें अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे और पूर्वकोटिपृथक्त्वके अन्तरसे उपशमश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव होनेसे यहाँ छह नोकषायोंकी अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण कहा है। तथा मनुष्यत्रिकमें उपशमसम्यक्त्व-की प्राप्तिके समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भुजगार होकर कमसे कम अन्तर्मुहूर्तके भीतर क्षायिकसम्यक्त्वकी प्राप्ति होने पर उस समय भी भुजगारपद सम्भव है या अधिकसे अधिक पूर्वकोटि पृथक्त्व कालके अन्तमें क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्ति होने पर उस समय भी भुजगारपद सम्भव है, इसलिए इन दोनों प्रकृतियोंकी भुजगारविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्वप्रमाण कहा है । शेष कथन सुगम है ।

§ ३०२. देवगतिमें देवोंमें मिथ्यात्वकी भुजगार और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर वही है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और चारों ही का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका भङ्ग नारकियोंके समान है । स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी भुजगारविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । हास्य, रति, अरति और शोकका भङ्ग ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि अवस्थितपद नहीं है । भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें इसीप्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी स्थिति कहलानी चाहिए ।

§ ३०३. अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०-चउक्क०-इत्थि-णवुंस अप्प०[1] णत्थि अंतरं। बारसक०-पुरिस०-भय०-दुगुंछा० भुज०-अप्प० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणमोघो। णवरि अवट्ठि० णत्थि। एवं जाव अणाहारि त्ति।

अंतरं गदं।

§ ३०४. णाणाजीवेहि भगविचयाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण छव्वीसं पयडीणं सव्वपदाणि णियमा अत्थि। णवरि अणंताणु०चउक्क० अवत्त० पुरिस०-इत्थि०-णवुंस०-हस्स-रइ-अरइ-सोग० अवट्ठि० भयणिज्जं। सम्म०-सम्मामि० अप्प० णियमा अत्थि। सेसपदाणि भयणिज्जाणि। एवं तिरिक्खेसु। णवरि छण्णोक० अवट्ठि० णत्थि।

§ ३०५. आदेसेण णेरइय० मिच्छ०-बारसक०-पुरिस०-भय०दुगुंछा० भुज०-

विशेषार्थ—देवोंमें नौवें ग्रैवेयक तक ही मिथ्यादृष्टि होते हैं, इसलिए इस बातको ध्यानमें रखकर अपने स्वामित्वके अनुसार यहाँ पर अन्तर काल घटित कर लेना चाहिए।

§ ३०३. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी अल्पतरविभक्तिका अन्तर काल नहीं है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। हास्य, रति, अरति और शोकका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनका अवस्थितपद नहीं है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

विशेषार्थ—अनुदिशसे लेकर आगेके देवोंमें सब सम्यग्दृष्टि होते हैं, इसलिए उनमें मिथ्यात्व आदि नौ प्रकृतियोंकी एक अल्पतरविभक्ति होनेसे उसके अन्तर कालका निषेध किया है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

इस प्रकार अन्तर काल समाप्त हुआ।

§ ३०४. नाना जीवोंका अवलम्बन लेकर भङ्ग विचयानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंके सब पद नियमसे हैं। इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्ति, पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी अवस्थितविभक्ति भजनीय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतरविभक्ति नियमसे है। शेष पद भजनीय हैं। इसी प्रकार तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि छह नोकषायोंकी अवस्थितविभक्ति नहीं है।

§ ३०५. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी

१. ता०प्रतौ 'णवुंस० भुज० अप्प०' इति पाठः।

अप्प० णियमा अत्थि। अवट्ठि० भयणिज्जा। एत्थ भंगाणि तिण्णि। सम्म०-सम्मामि०-छण्णोक० ओघो। णवरि छण्णोक० अवट्ठि० णत्थि। अणंताणु०चउक्क० भुज०-अप्प० णियमा अत्थि। सेसपदाणि भयणिज्जाणि। एवं सव्वणेरइय-पंचिंदियतिरिक्खतिय--मणुसतिय--देवगइदेवा भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति। णवरि मणुसतिए छण्णोक० अवट्ठि० ओघं।

§ ३०६. पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-भय--दुगुंछ० भुज०-अप्प० णियमा अत्थि। सिया एदे च अवट्ठिदविहत्तिओ च। सिया एदे च अवट्ठिदविहत्तिया च। सम्म०-सम्मामि- अप्प० णियमा अत्थि। सत्तणोक० भुज०-अप्प० णियमा अत्थि। मणुस्सअपज्ज० सव्वपयडीसु सव्वपदाणि भयणिज्जाणि। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क०-इत्थि०-णवुंस० अप्प० णियमा अत्थि। बारसक०-पुरिस०-भय०-दुगुंछ० णेरइयभंगो। चदुणोकसायाणमोघो। णवरि अवट्ठि० णत्थि। एवं जाव अणाहारि त्ति।

णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो समत्तो।

§ ३०७. भागाभागाणुगमेण दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य। ओघेण

भुजगार और अल्पतरविभक्ति नियमसे है। अवस्थितविभक्ति भजनीय है। यहाँ पर भङ्ग तीन हैं। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और छह नोकषायोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि छह नोकषायोंकी अवस्थितविभक्ति नहीं है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजगार और अल्पतरविभक्ति नियमसे है। शेष पद भजनीय हैं। इसी प्रकार सब नारकी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, मनुष्यत्रिक, देवगतिमें देव और भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिकमें छह नोकषायोंकी अवस्थितविभक्तिका भङ्ग ओघके समान है।

§ ३०६. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी भुजगार और अल्पतरविभक्ति नियमसे है। कदाचित् इन विभक्तियोंवाले नाना जीव हैं और अवस्थितविभक्तिवाला एक जीव है। कदाचित् इन विभक्तियोंवाले नाना जीव हैं और अवस्थितविभक्तिवाले नाना जीव हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतरविभक्ति नियमसे है। सात नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्ति नियमसे है। मनुष्यअपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके सब पद भजनीय हैं। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी अल्पतरविभक्ति नियमसे है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका भङ्ग नारकियोंके समान है। चार नोकषायोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि अवस्थितविभक्ति नहीं है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इसप्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचयानुगम समाप्त हुआ।

§ ३०७. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे

मिच्छत्त०-सोलसक०-भय-दुगुंछ० भुज०विहत्तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? संखेज्जा भागा। अप्प० सव्वजी० केव० ? संखे०भागो। अवट्ठि० सव्वजी० केव० ? असंखे०भागो। णवरि अणंताणु०चउक० अवत्त० सव्वजी० केव० ? अणंतिमभागो। सम्म०-सम्मामि० भुज०-अवत्त०-अवट्ठि० सव्वजी० केव० ? असंखे०भागो। अप्प० असंखेज्जा भागा। इत्थि-हस्स-रइ० भुज० सव्व० केव० ? संखे०भागो। अप्प० संखेज्जा भागा। पुरिस० एवं चेव। णवरि अवट्ठि० अणंतिमभागो। णवुंस०-अरदि-सोग० भुज० सव्वजी० केव० ? संखेज्जा भागा। अप्प० सव्वजी० केव० ? संखे०-भागो। छण्णोक० अवट्ठि० सव्वजी० के० ? अणंतिमभागो। एवं तिरिक्खा०। णवरि छण्णोक० अवट्ठि० णत्थि।

§ ३०८. आदेसेण णेरइय० मिच्छ०-सम्म०--सम्मामि०-बारसक०--अट्ठणो-कसायाणमोघो। णवरि छण्णोक० अवट्ठि० णत्थि। अणंताणु०चउक० भुज० सव्वजी० केव० ? संखेज्जा भागा। अप्प० सव्वजी० केव० ? संखे०भागो। सेसपदट्ठिद० असंखे०भागो। पुरिस० ओघो। णवरि अवट्ठि० सव्वजी० के० ? असंखे०भागो।

मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी भुजगारविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। अल्पतरविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यातवें भागप्रमाण हैं। अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अवक्तव्य और अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अल्पतरविभक्तिवाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। स्त्रीवेद, हास्य और रतिकी भुजगारविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यातवें भागप्रमाण हैं। अल्पतरविभक्तिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। पुरुषवेदका भङ्ग इसीप्रकार है। इतनी विशेषता है कि अवस्थितविभक्तिवाले जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं। नपुंसकवेद, अरति और शोककी भुजगारविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। अल्पतरविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यातवें भागप्रमाण हैं। छह नोकषायोंके अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं। इसीप्रकार तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें अवस्थितविभक्ति नहीं है।

§ ३०८. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और आठ नोकषायोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि छह नोकषायोंकी अवस्थित-विभक्ति नहीं है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजगारविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। अल्पतरविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यातवें भागप्रमाण हैं। शेष पदविभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। पुरुषवेदका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब

एवं सत्तसु पुढवीसु पंचिं०तिरिक्खतिय० मणुस्सोघो देवगइ भवणादि जाव सहस्सारे त्ति देवेसु णेदव्वं। णवरि मणुस्सेसु छण्णोक० अवट्ठि० असंखे०भागो।

§ ३०६. पंचिं०तिरिक्खअपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछ० भुज० सव्वजी० केव० ? संखेज्जा भागा। अप्प० सव्वजी० केव० ? संखे०भागो। अवट्ठि० असंखे०भागो। सम्म०-सम्मामि० णत्थि भागाभागो। कुदो ? एयपदत्तादो। इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रइ० भुज० सव्वजी० केव० ? संखे०भागो। अप्प० सव्वजी० केव० ? संखेज्जा भागा। णवुंस०-अरदि-सोग० भुज० संखेज्जा भागा। अप्प० संखे०भागो। एवं मणुसअपज्जत्ताणं।

§ ३१०. मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छत्त-बारसक०-भय-दुगुंछ० भुज० संखेज्जा भागा। अप्प०-अवट्ठि० संखे०भागो। एवमणंताणु०चउक्कस्स। णवरि अवत्त० संखे० भागो। सम्म०-सम्मामि० भुज०-अवट्ठि०-अवत्त० सव्वजी० के० ? संखे०भागो। अप्प० संखेज्जा भागा। इत्थि-हस्स-रइ भुज० संखे०भागो। अप्प० संखेज्जा भागा। एवं पुरिस०। णवरि अवट्ठि० संखे०भागो। णवुंस०-अरदि०-सोग० भुज० संखेज्जा

जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। इसीप्रकार सातों पृथिवियोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, सामान्य मनुष्य, देवगतिमें देव और भवनवासियोंसे लेकर सहस्रारकल्प तकके देवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्योंमें छह नोकषायोंकी अवस्थित-विभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

§ ३०६. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी भुजगारविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। अल्पतरविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं। संख्यातवें भागप्रमाण हैं। अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भागाभाग नहीं है, क्योंकि उनका एक पद है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिकी भुजगार-विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यातवें भागप्रमाण हैं। अल्पतर-विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। नपुंसकवेद, अरति और शोककी भुजगारविभक्तिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। अल्पतरविभक्तिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। इसीप्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए।

§ ३१०. मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी भुजगारविभक्तिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। इसीप्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यातवें भागप्रमाण हैं। अल्पतरविभक्तिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। स्त्रीवेद, हास्य और रतिकी भुजगारविभक्तिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। अल्पतरविभक्ति-वाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। इसीप्रकार पुरुषवेदकी अपेक्षा जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अवस्थितविभक्तिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। नपुंसकवेद, अरति और

भागा। अप्प० संखे०भागो। छण्णोक० अवट्ठि० संखे०भागो।

§ ३११. आणदादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति मिच्छ०-अणंताणु०चउक्क० भुज० संखे०भागो। अप्प० संखेज्जा भागा। अवट्ठि० अणंताणु०चउक्क० अवत्त० असंखे०भागो। सम्म०-सम्मामि०-बारसक०-भय-दुगुंछ० देवोघो। पुरिस० कसायभंगो। इत्थि०-हस्स-रइ-अरइ-सोगाणमोघो। णवरि अवट्ठि० णत्थि। णवुंस० इत्थिवेदभंगो। अणुदिसादि जाव अवराइदो त्ति मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणुचउक्क०-इत्थि०-णवुंसयवेदाणमेयपदत्तादो णत्थि भागाभागो। बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछ० आणदभंगो। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणमोघो। णवरि अवट्ठि० णत्थि। सव्वट्ठे एवं चेव। णवरि बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछ० भुज० सव्वजी० केव०? संखेज्जा भागा। अप्प०-अवट्ठि० संखे०भागो। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणमोघो। णवरि अवट्ठि० णत्थि। एवं जाव अणाहारि त्ति।

भागाभागो समत्तो।

§ ३१२. परिमाणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण

शोककी भुजगारविभक्तिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। अल्पतरविभक्तिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। छह नोकषायोंकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं।

§ ३११. आनतकल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयकतकके देवोंमें मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजगारविभक्तिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। अल्पतरविभक्तिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। अवस्थितविभक्तिवाले जीव और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। पुरुषवेदका भङ्ग कषायोंके समान है। स्त्रीवेद, हास्य, रति, अरति और शोकका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि अवस्थितविभक्ति नहीं है। नपुंसकवेदका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है। अनुदिशसे लेकर अपराजित विमानतकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका एक पद होनेसे भागाभाग नहीं है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका भङ्ग आनतकल्पके समान है। हास्य, रति, अरति और शोकका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि अवस्थितविभक्ति नहीं है। सर्वार्थसिद्धिमें इसीप्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी भुजगारविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं? संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके संख्यातवें भागप्रमाण हैं। हास्य, रति, अरति और शोकका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि अवस्थितविभक्ति नहीं है। इसीप्रकार अनाहारकमार्गणा तक जानना चाहिए।

इसप्रकार भागाभाग समाप्त हुआ।

§ ३१२. परिणामानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश।

मिच्छ०-सोलसक०-पुरिस०-भयं-दुगुंछ० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० केत्तिया ? अणंता। अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० पुरिस० अवट्ठि० केत्तिया ? असंखेज्जा। सम्म०-सम्मामि० पदचउक्कट्ठिदजीवा केत्तिया ? असंखेज्जा। छण्णोक० भुज०-अप्प० केत्तिया ? अणंता। अवट्ठि० के० ? संखेज्जा। एवं तिरिक्खा०। णवरि छण्णोक० अवट्ठि० णत्थि।

§ ३१३. आदेसेण णेरइय० अट्ठावीसं पयडीणं सव्वपदा केत्तिया ? असंखेज्जा। एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस्सअपज्ज०-देवगइदेवा भवणादि जाव अवराइद त्ति।

§ ३१४. मणुस्सेसु मिच्छ०-सोलसक०-भयं-दुगुंछ० तिण्णि पदा सम्म०-सम्मामि० अप्प० सत्तणोक० भुज०-अप्प० केत्ति० ? असंखेज्जा। सम्म०-सम्मामि० भुज०-अवट्ठि०-अवत्त० अणंताणु०चउक्क० अवत्त० पुरिस०-छण्णोक० अवट्ठि० केत्तिया ? संखेज्जा। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वट्ठसिद्धीसु सव्वपयडीणं सव्वपदा केत्तिया ? संखेज्जा। एवं जाव अणाहारि त्ति।

परिमाणाणुगमो समत्तो।

ओघसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य और पुरुषवेदकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके चार पदोंमें स्थित जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। छह नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। अवस्थितविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि छह नोकषायोंकी अवस्थितविभक्ति नहीं है।

§ ३१३. आदेशसे नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंके सब पदवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसीप्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, देवगतिमें देव और भवनवासियोंसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें जानना चाहिए।

§ ३१४. मनुष्योंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साके तीन पदवाले जीव, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतर पदवाले जीव तथा सात नोकषायोंके भुजगार और अल्पतर पदवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य पदवाले जीव, अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अवक्तव्य पदवाले जीव तथा पुरुषवेद और छह नोकषायोंके अवस्थित पदवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी और सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। इसप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इसप्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ।

१. आ०प्रतौ 'सोलसक० भय' इति पाठः।

§ ३१५. खेत्ताणुगमेण दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछा० तिण्णिपदा केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे। अणंताणु०चउक्क० अवत्त० के० खेत्ते ? लोग० असंखे०भागे। सम्म०-सम्मामि० भुज०-अप्प०-अवत्त०-अवट्ठि० के० खेत्ते ? लोग० असंखे०भागे। छण्णोक० भुज०-अप्प० के० खेत्ते ? सव्वलोगे। अवट्ठि० लोग० असंखे०भागे। एवं पुरिस०। एवं तिरिक्खोघो। णवरि छण्णोक० अवट्ठियं णत्थि।

§ ३१६. आदेसेण णिरय० मिच्छ०-सोलसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० अणंताणु०चउक्क० अवत्त केव० खे० ? लोगस्स असंखे०भागे। सम्म०-सम्मामि० सव्वपदा छण्णोक० भुज०-अप्प० के० खेत्ते ? लोगस्स असंखे०-भागे। एवं सव्वणेरइय-पंचिंदियतिरिक्खतिय-मणुसतिय-देवगइदेवा भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति। णवरि मणुसतिए छण्णोक० अवट्ठि० ओघं। पंचिं०तिरिक्ख-अपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछा० तिण्णि पदाणि सम्म०-सम्मामि० अप्प० सत्तणोक० भुज०-अप्प० केव० ? लोग० असंखे०भागे। एवं मणुसअपज्ज०।

---

§ ३१५. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साके तीन पदवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब लोक क्षेत्र है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अवक्तव्य पदवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है। लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार, अल्पतर, अवक्तव्य और अवस्थित पदवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। छह नोकषायोंके भुजगार और अल्पतर पदवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सर्व लोकप्रमाण क्षेत्र है। अवस्थित विभक्तिवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। इसीप्रकार पुरुषवेदकी अपेक्षा क्षेत्र जानना चाहिए। इसीप्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें छह नोकषायोंका अवस्थित पद नहीं है।

विशेषार्थ—यहाँ जिन प्रकृतियोंके जो पद एकेन्द्रिय जीवोंके होते हैं उनका क्षेत्र सर्व लोकप्रमाण कहा है और शेषका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण। इसीप्रकार आगे भी अपने अपने क्षेत्रको जानकर घटित कर लेना चाहिए।

§ ३१६. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदवाले जीवोंका तथा अनन्तानुबंधीचतुष्कके अवक्तव्य पदवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सब पदवाले जीवोंका तथा छह नोकषायोंके भुजगार और अल्पतर पदवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। इसीप्रकार सब नारकी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, मनुष्यत्रिक, देवगतिमें सामान्य देव और भवनवासियोंसे लेकर उपरिम-ग्रैवेयकतकके देवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिकमें छह नोकषायोंके अवस्थित पदका क्षेत्र ओघके समान है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साके तीन पदवाले जीवोंका, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतर पदवाले जीवोंका तथा सात नोकषायोंके भुजगार और अल्पतर पदवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ?

अणुद्दिसप्पहुडि जाव सव्वट्ठा त्ति मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० इत्थि०-णवुंस० अप्प० बारसक०-पुरिस०-भय--दुगुंछा० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं भुज०-अप्प० केव० ? लोग० असंखे०भागे। एवं जाव अणाहारि त्ति।

खेत्तं गदं।

§ ३१७. पोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ०-सोलसक०-भय--दुगुंछ० भुज०-अप्प०-अवट्ठिदविहत्तिएहि केव० पोसिदं ? सव्वलोगो। अणंताणु०चउक्क० अवत्त० लोगस्स असंखे०भागो अट्ठचोद्दस०। सम्म०-सम्मामि० भुज०-अवत्तव्वविहत्तिएहि लोगस्स असंखे०भागो अट्ठचोद्दस०। अप्प० के० ? लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस० सव्वलोगो वा। अवट्ठि० केव० पो० ? लोग० असंखे०भागो अट्ठ-बारहचोद्दस०। छण्णोक० भुज०-अप्प० केव० पोसिदं ? सव्वलोगो। तेसिं चेव अवट्ठि० लोगस्स असंखे०भागो। एवं पुरिस०। णवरि अवट्ठि० केव० फोसिदं ? लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस० देसूणा।

लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। इसीप्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके अल्पतर पदवाले जीवोंका, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदवाले जीवोंका तथा हास्य, रति, अरति और शोकके भुजगार और अल्पतर पदवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इसप्रकार क्षेत्र समाप्त हुआ।

§ ३१७. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अल्पतरविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। छह नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उन्हींकी अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसीप्रकार पुरुषवेदकी अपेक्षा स्पर्शन जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसकी अवस्थितविभक्तिवाले

§ ३१८. आदेसेण णेरइ० मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछ० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० केव० पोसिदं ? लोग० असंखे०भागो छचोद्दस०। अणंताणु०चउक्क० अवत्त० लोग० असंखे०भागो। सम्म०-सम्मामि० भुज०-अवत्त० खेत्तभंगो। अप्पदर० सत्तणोक० भुज०-अप्प० केव० फोसिदं ? लोगस्स असंखे०भागो छचोद्दस०। पुरिस० अवट्ठि० केव० पोसिदं ? लोग० असंखे०भागो। सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि०

जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व आदि उन्नीस प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पद एकेन्द्रियोंके भी होते हैं, इसलिए इनके उक्त पदवाले जीवोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अवक्तव्य पद ऐसे जीवोंके होता है जो इनकी विसंयोजना करके पुनः इनसे संयुक्त होते हैं। ऐसे जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन देवोंके विहार आदिकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण प्राप्त होनेसे तत्प्रमाण कहा है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन इसीप्रकार घटित कर लेना चाहिए। इनकी अल्पतर विभक्तिवालोंका उक्त स्पर्शन तो बन ही जाता है। तथा यह विभक्ति एकेन्द्रियादिके भी सम्भव है, इसलिए सर्व लोक प्रमाण स्पर्शन भी बन जाता है। इन दोनों प्रकृतियोंकी अवस्थितविभक्ति सासादनसम्यग्दृष्टियोंके होती है, इसलिए इस अपेक्षासे इनके अवस्थित पदका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। छह नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्ति एकेन्द्रियादि जीवोंके भी होती है, इसलिए इनके उक्त पदवाले जीवोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा इनकी अवस्थितविभक्ति उपशमश्रेणिमें होती है, इसलिए इनके इस पदवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। पुरुषवेदके भुजगार और अल्पतर पदवाले जीवोंका स्पर्शन तो छह नोकषायोंके ही समान है, इसलिए इसका भङ्ग छह नोकषायोंके समान जानने की सूचना की है। मात्र इसके अवस्थित पदके स्पर्शनमें अन्तर है। बात यह है कि पुरुषवेदका अवस्थित पद सम्यग्दृष्टि जीवोंके होता है, इसलिए इसके उक्त पदवाले जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है।

§ ३१८. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इनकी अल्पतरविभक्तिवाले जीवोंने और सात नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषवेदकी अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने कितने

केव० फोसिदं ? लोग० असंखे०भागो पंचचोद्दस० । पढमपुढवीए खेत्तभंगो । विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव । णवरि अप्पणो रज्जूओ फोसणं कायव्वं । सत्तमाए सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० खेत्तभंगो ।

§ ३१६. तिरिक्खगईए तिरिक्खेहि मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछ० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० केव० फोसिदं ? सव्वलोगो । अणंताणु०चउक्क० अवत्त० सम्म०-सम्मामि० भुज०-अवत्त० केव० फोसिदं ? लोग० असंखे०भागो । सम्म०-सम्मामि० अप्प० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो सत्त-चोद्दस० । सत्तणोक० भुज०-अप्प० केव० फोसिदं ? सव्वलोगो । णवरि पुरिस० अवट्ठि० लोगस्स असंखे०भागो ।

क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । पहली पृथिवीमें क्षेत्रके समान भङ्ग है । दूसरीसे लेकर सातवीं तकके नारकियोंमें इसीप्रकार भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि अपने अपने राजुओंमें स्पर्शन करना चाहिए । तथा सातवीं पृथिवीमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है ।

विशेषार्थ—यहाँ सामान्य नारकियोंमें जिन प्रकृतियोंके जिन पदोंका स्पर्शन उपपादपद या मारणान्तिक पदके समय सम्भव है उनका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है । तथा शेष पदोंका स्पर्शन मात्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। मात्र सासादनसम्यग्दृष्टि नारकी जीव छठवें नरकतकके ही मरकर अन्य गतिमें उत्पन्न होते हैं, इसलिए सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अवस्थित पदवाले जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। तथा सातवीं पृथिवीका सासादनसम्यग्दृष्टि मरकर अन्य गतिमें नहीं जाता, इसलिए इसमें उक्त दोनों प्रकृतियोंके अवस्थित पदवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान जाननेकी सूचना की है । शेष कथन सुगम है ।

§ ३१६. तिर्यञ्चगतिमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिवाले जीवोंने तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतरविभक्तवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इनकी अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम सात ब चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सात नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेदकी अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—सासादन तिर्यञ्चोंके ऊपर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्ति सम्भव होनेसे इनके उक्त पदवाले जीवोंका

§ ३२०. पंचिंदियतिरिक्खतिए मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछ० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० केव० ? लो० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। अणंताणु०चउक्क० अवत्त० सम्म०-सम्मामि० भुज०-अवत्त० केव० फोसिदं ? लोग० असंखे०भागो। दोण्हमप्पद० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो सत्तचोद्दस०। इत्थि० भुज० केव० ? लो० असंखे०भागो। अप्प० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। कुदो ? णवुंसयवेदबंधेण एइंदिएसुववज्जमाणपंचिंदियतिरिक्खतियस्स अप्पदरीकयइत्थिवेदस्स सव्वलोयव्वावित्तदंसणादो। पुरिस० भुज० केव० फोसिदं ? लोग० असंखे०भागो छचोद्दस०। अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो। कुदो छचोद्दसभागा ण फुसिज्जंति ? ण, असंखेज्जवासाउअपंचिंदियतिरिक्खतियसम्माइट्ठिं मोत्तूण अण्णत्थ अवट्ठिदपदस्सासंभवादो। तं पि कुदो ? पलिदो० असंखे०भागमेत्तकालेण विणा अवट्ठिदपाओग्गत्ताणुवलंभादो। अप्प० केव० फोसिदं ? लोग० असंखे०भागो

स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

§ ३२०. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिवाले तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है। लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दोनोंकी अल्पतरविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इनकी अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेदकी भुजगारविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अल्पतरविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है, क्योंकि नपुंसकवेदके बन्धके साथ एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकका स्त्रीवेदके अल्पतर पदके साथ समस्त लोकमें स्पर्शन देखा जाता है। पुरुषवेदकी भुजगारविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसकी अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

शंका—पुरुषवेदकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन क्यों नहीं करते ?

समाधान—नहीं, असंख्यात वर्षकी आयुवाले पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक सम्यग्दृष्टि जीवको छोड़कर अन्यत्र अवस्थित पदकी प्राप्ति असम्भव है।

शंका—वह भी कैसे है ?

समाधान—क्योंकि पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके बिना अवस्थितपदकी योग्यता नहीं उपलब्ध होती है।

पुरुषवेदकी अल्पतरविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके

सव्वलोगो वा। पंचणोक० भुज०-अप्प० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा।

§ ३२१. पंचिं०तिरि०अपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०--भय--दुगुंछ० भुज०--अप्प०-अवट्ठि० केव० फोसिदं ? लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। सम्म०-सम्मामि० अप्प० केव० फोसिदं ? लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। इत्थि-पुरिस० भुज० लोग० असंखे०भागो। अप्प० केव० फोसिदं ? लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। णवुंस०-चदुणोक० भुज०-अप्प० केव० फोसिदं ? लोग० असंखे०-भागो सव्वलोगो वा। एवं मणुसअपज्जत्तएसु।

§ ३२२. मणुसतिए मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछ० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० लोग० असं०भागो, सव्वलोगो वा। अणंताणु०चउक्क० अवत्त० सम्म०-सम्मामि० भुज०-अवत्त० लोग० असंखे०भागो। दोण्हमप्प० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा।

असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पाँच नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—यहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अवस्थित पदवालोंका लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन जिस प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें घटित करके बतला आए हैं उस प्रकार घटित कर लेना चाहिए। स्त्रीवेदकी अल्पतरविभक्तिवाले उक्त जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन तथा पुरुषवेदकी अवस्थितविभक्तिवाले उक्त जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन क्यों किया है इसका स्पष्टीकरण मूलमें ही किया है। शेष कथन सुगम है।

§ ३२१. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तक जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतरविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगारविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अल्पतर विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नपुंसकवेद और चार नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतर-विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—जो पञ्चेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त तिर्यञ्च एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं उनके स्त्रीवेद और पुरुषवेदका बन्ध न होनेसे भुजगारपद सम्भव नहीं है, इसलिए इनके उक्त पदवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

§ ३२२. मनुष्यत्रिकमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिवाले तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दोनोंकी अल्पतरविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और

अवट्ठि० केव० फोसिदं ? लोग० असंखे०भागो सत्तचोद्दस०[1] । इत्थि०-पुरिस० भुज० पुरिस० अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो । दोण्हमप्प० णवुंस०-चदुणोक० भुज०-अप्प० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । छण्णोक० अवट्ठि० खेत्तभंगो ।

§ ३२३. देवगईए देवेसु मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछ० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णवचोद्दस० । अणंताणु०चउक्क० अवत्त० सम्म०-सम्मामि० भुज०-अवत्त० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस० । सम्म०-सम्मामि० अप्पद०-अवट्ठि० केव० फोसिदं ? लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णवचोद्दस० । इत्थि० भुज० पुरिस० भुज०-अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्द० । दोण्हमप्प० लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णवचोद्दस० । पंचणोक० भुज०-अप्प० लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णवचोद्द० । एवं सोहम्मीसाणेसु ।

सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इनकी अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसानालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगारविभक्तिवाले तथा पुरुषवेद की अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दोनोंकी अल्पतरविभक्तिवाले तथा नपुंसकवेद और चार नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतर-विभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। छह नोकषायोंकी अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

§ ३२३. देवगतिमें देवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य-विभक्तिवाले तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है। लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेदकी भुजगारविभक्तिवाले तथा पुरुषवेदकी भुजगार और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनाली के कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दोनोंकी अल्पतरविभक्ति-वाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पाँच नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्ति-वाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सौधर्म और ऐशान कल्पके देवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—देवोंमें स्त्रीवेदकी भुजगारविभक्ति तथा पुरुषवेदकी भुजगार और अवस्थित-विभक्ति ऊपर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय सम्भव नहीं है, इसलिए

---

१. ता०आ० प्रत्योः 'सत्तणोक०' इति पाठः ।

§ ३२४. भवण०-वाण०-जोइसिएसु मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछ० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० लोगस्स असंखे०भागो अद्धुट्ठा वा अट्ठ-णवचोद्दस० । अणंताणु०-चउक्क० अवत्त० सम्म०-सम्मामि० भुज०-अवत्त० इत्थिवेद० भुज० पुरिस० भुज०-अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो अद्धुट्ठा वा अट्ठचोद्दस० । सम्म०-सम्मामि० अप्प०-अवट्ठि० इत्थि०-पुरिस० अप्प० णवुंस०-चदुणोक० भुज०-अप्प० लो० असंखे०-भागो अद्धुट्ठा वा अट्ठ-णवचोद्द० ।

§ ३२५. सणक्कुमारादि जाव सहस्सारा त्ति मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछा-पुरिस० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० अणंताणु०चउक्क० अवत्त० सम्म०-सम्मामि० भुज०-अप्प०-अवत्त०-अवट्ठि० इत्थि०-णवुंस०-चदुणोक० भुज०-अप्प० लोग० असंखे०-भागो अट्ठचोद्दस० । आणदादि जाव अच्चुदा त्ति सव्वपयडीणं सव्वपदेहि केव०

इन दोनों प्रकृतियोंके उक्त पदवाले देवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग और विहार आदिकी अपेक्षा स्पर्शन त्रस नालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

§ ३२४. भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रसनालीके कुछ कम साढ़े तीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिवाले, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अवक्तव्यविभक्तिवाले, स्त्रीवेदकी भुजगारविभक्तिवाले तथा पुरुषवेदकी भुजगार और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रसनालीके कुछ कम साढ़े तीन और कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले, स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी अल्पतरविभक्तिवाले तथा नपुंसकवेद और चार नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रसनालीके कुछ कम साढे तीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—यहाँ भी अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अवक्तव्य पद, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार और अवक्तव्यपद, स्त्रीवेदका भुजगारपद और पुरुषवेदका भुजगार और अवस्थितपद एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय नहीं होते, इसलिए इनकी अपेक्षा स्पर्शन कहते समय त्रसनालीका कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन नहीं कहा है। शेष कथन सुगम है।

§ ३२५. सनत्कुमार से लेकर सहस्रार कल्पतकके देवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पुरुषवेदकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले, अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिवाले, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अल्पतर, अवक्तव्य और अवस्थितविभक्तिवाले तथा स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और चार नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतर विभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आनत कल्पसे लेकर अच्युत कल्पतकके देवोंमें सब

फोसिदं ? लोग० असंखे०भागो छचोद्दस०। उवरि खेत्तभंगो। एवं जाव अणाहारि त्ति।

फोसणं समत्तं।

§ ३२६. णाणाजीवेहि कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछ० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० केवचिरं ? सव्वद्धा। अणंताणु०चउक्क०-सम्म०-सम्मामि० अवत्त० पुरिस० अवट्ठि० केव० ? जह० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। पुरिस० अवट्ठि० अंतोमुहुत्तं वा। सम्म०-सम्मामि० भुज० जह० अंतोमु०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अप्प० सत्तणोक० भुज०-अप्प० सव्वद्धा। छण्णोक० अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। एवं तिरिक्खोघो। णवरि छण्णोक० अवट्ठि० णत्थि। पुरिस० अवट्ठि० अंतोमुहुत्तं पि णत्थि।

प्रकृतियोंके सब पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। ऊपर के देवोंमें स्पर्शन का भङ्ग क्षेत्रके समान है। इसप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इसप्रकार स्पर्शन समाप्त हुआ।

§ ३२६. नाना जीवोंकी अपेक्षा कालानुगमके अनुसार निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिका कितना काल है ? सर्वदा काल है। अनन्तानुबन्धीचतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवक्तव्यविभक्तिका तथा पुरुषवेदकी अवस्थितविभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अथवा पुरुषवेदकी अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगारविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अल्पतरविभक्ति तथा सात नोकषायों की भुजगार और अल्पतर विभक्तिका काल सर्वदा है। छह नोकषायोंकी अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसीप्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें छह नोकषायोंकी अवस्थितविभक्ति नहीं है तथा पुरुषवेदकी अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त भी नहीं है।

विशेषार्थ—यहाँ मिथ्यात्व आदि उन्नीस प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपद एकेन्द्रिय आदि सब जीवोंके होते हैं, इसलिए नाना जीवोंकी अपेक्षा इनका सर्वदा काल बन जानेसे वह सर्वदा कहा है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अवक्तव्यपद ऐसे जीवोंके होता है जो विसंयोजनाके बाद पुनः उससे संयुक्त होते हैं, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद जो इनकी सत्ता से रहित जीव उपशमसम्यक्त्व प्राप्त करते हैं उसके प्रथम समयमें होता है और पुरुषवेदका अवस्थित पद सम्यग्दृष्टि जीवके होता है। यह सम्भव है कि एक या नाना जीव उक्त प्रकृतियोंके ये पद एक समय तक ही करें और यह भी सम्भव है कि आवलिके असंख्यातवें

§ ३२७. आदेसेण णेरइय० मिच्छ०-सोलसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछ० भुज०-अप्प० सव्वद्धा। अवट्ठि० अणंताणु०चउक्क० अवत्त० सम्म०-सम्मामि० अवत्त० जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। सम्म०-सम्मामि० भुज०-अवट्ठि० जह० अंतोमु० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अप्प० छण्णोक० भुज०-अप्प० सव्वद्धा। एवं सत्तसु पुढवीसु पंचिंदियतिरिक्खतिय-देवगइदेवा भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति।

§ ३२८. पंचिं०तिरि०अपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछा० भुज०-अप्प० सव्वद्धा। अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। सम्म०-सम्मामि०

भागप्रमाण काल तक करते रहें। यही कारण है कि इनके उक्त पदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा उपशमश्रेणिमें पुरुषवेदके अवस्थितपदका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जानेसे विकल्परूपसे उक्तप्रमाण कहा है। उपशम-सम्यक्त्वकी प्राप्ति होने पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगारविभक्ति अन्तर्मुहूर्त काल तक होती है, इसलिए तो इस विभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है और क्रमसे यदि नाना जीव इन प्रकृतियोंकी इस विभक्तिको करते रहें तो पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल प्राप्त होता है, इसलिए इनकी इस विभक्तिका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। नाना जीवोंकी अपेक्षा सासादनका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इनके अवस्थित पदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। इन दोनों प्रकृतियोंकी अल्पतरविभक्ति तथा सात नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्ति सर्वदा होती है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि उक्त प्रकृतियोंकी ये विभक्तियाँ एकेन्द्रियादि जीवोंके भी पाई जाती हैं। शेष कथन सुगम है।

§ ३२७. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका काल सर्वदा है। इनकी अवस्थितविभक्तिका, अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल क्रमसे अन्तर्मुहूर्त और एक समय है तथा दोनों विभक्तियोंका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इनकी अल्पतरविभक्तिका तथा छह नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका काल सर्वदा है। इसीप्रकार सातों पृथिवियोंमें, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, देवगतिमें देव और भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—ओघसे सब प्रकृतियोंके सब पदोंका काल घटित करके बतला आये हैं। यहाँ भी स्वामित्वको ध्यानमें रखकर वह घटित कर लेना चाहिए। विशेष वक्तव्य न होनेसे उसका अलगसे स्पष्टीकरण नहीं किया है। इसीप्रकार आगे भी जान लेना चाहिए।

§ ३२८. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका काल सर्वदा है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सम्यक्त्व और

अप्प० सत्तणोक० भुज०-अप्प० सव्वद्धा।

§ ३२९. मणुसगईए मणुसाणं णेरइयभंगो। णवरि तिण्हमवत्त० पुरिस० अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। सम्म०-सम्मामि० भुज०-अवट्ठि० जह० अंतोमु० एग०, उक्क० अंतोमुं०। एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु। णवरि सव्वेसिं अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। उवसमसेढीए मणुसतियम्मि बारसक०-णवणोक० अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०।

§ ३३०. मणुसअपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछा० भुज०-अप्प० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। सम्म०-सम्मामि० अप्पद० सत्तणोक० भुज०-अप्पद० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो।

सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतरविभक्तिका तथा सात नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका काल सर्वदा है।

§ ३२९. मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन तीनकी अवक्तव्यविभक्तिका तथा पुरुषवेदकी अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अवस्थितविभक्तिका क्रमसे जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और एक समय है तथा दोनों विभक्तियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसीप्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सबकी अवस्थित-विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। उपशमश्रेणिमें मनुष्यत्रिकमें बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—उपशमश्रेणिमें बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अवस्थितविभक्ति ऐसे जीवोंके भी होती है जो इनका एक समय तक अवस्थित पद करके और दूसरे समयमें मरकर देव हो जाते हैं। तथा जो उपशमश्रेणिमें इनका अवस्थितपद करके आरोहण और अवरोहण करते हैं उनके अन्तर्मुहूर्त काल तक इनकी अवस्थितविभक्ति होती है। कुछ जीव यहाँ अवस्थित-पद करनेके बाद उसके समाप्त होनेके अनन्तर समयमें भी यदि नाना जीव अवस्थितपद करें और इसप्रकार निरन्तर क्रम चले तो भी अन्तर्मुहूर्त काल लगता है, इसलिए मनुष्यत्रिकमें उक्त प्रकृतियोंके इस पदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

§ ३३०. मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतरविभक्तिका तथा सात नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

१. ता०प्रतौ 'अवट्ठि० उक्क० अंतोमु०' इति पाठः।

§ ३३१. अणुद्दिसादि जाव अवराइदा त्ति मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क०-इत्थिवेद०-णवुंस० अप्प० सव्वद्धा। बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा०-हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं देवोघो। एवं सव्वट्ठे। णवरि जम्हि आवलि० असंखे०भागो तम्हि संखेज्जा समया। एवं जाव अणाहारि त्ति।

णाणाजीवेहि कालो समत्तो।

§ ३३२. णाणाजीवेहि अंतरं दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछा० तिण्णिपदा णत्थि अंतरं णिरंतरं। अणंताणु०चउक्क० अवत्त० जह० एगस०, उक्क० चउवीसमहोरत्ताणि सादिरेयाणि। एवं सम्म०-सम्मामि० अवत्त०। सम्म०-सम्मामि० अप्प० णत्थि अंतरं णिरंतरं। भुज० जह० एगस०, उक्क० सत्त रादिंदियाणि। अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। छण्णोक० भुज०-अप्प० णत्थि अंतरं। अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं। एवं पुरिस०। णवरि अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। उवसमसेढिविवक्खाए पुण वासपुधत्तं।

विशेषार्थ—यह सान्तर मार्गणा है, इसलिए इसमें उक्त काल बन जाता है।

§ ३३१. अनुदिशसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी अल्पतरविभक्तिका काल सर्वदा है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, हास्य, रति, अरति और शोकका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। इसीप्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जहाँ आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल कहा है वहाँ संख्यात समय काल कहना चाहिए। इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इसप्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा काल समाप्त हुआ।

§ ३३२. नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर कालका निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साके तीन पदोंका अन्तर काल नहीं है वे निरन्तर हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन-रात है। इसीप्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवक्तव्यविभक्तिका अन्तर काल जानना चाहिए। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर विभक्तिका अन्तर काल नहीं है वह निरन्तर है। भुजगारविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन-रात है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। छह नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतर-विभक्तिका अन्तर काल नहीं है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। इसीप्रकार पुरुषवेदकी अपेक्षा जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। परन्तु उपशमश्रेणिकी विवक्षासे वर्ष पृथक्त्वप्रमाण है।

§ ३३३. आदेसेण णेरइय० मिच्छ०-सोलसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछ० भुज०-अप्प० णत्थि अंतरं णिर०। अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। सम्म०-सम्मामि०-छण्णोक० ओघो। णवरि छण्णोक० अवट्ठि० णत्थि। अणंताणु०चउक्क० अवत्त० ओघो। एवं सत्तसु पुढवीसु। पंचिं०तिरिक्खतिय-मणुसतिय-देवा भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति एवं चेव। णवरि मणुसतियम्मि सत्तणोक० अवट्ठि० ओघं। बारसक०-भय-दुगुंछाणं पि अवट्ठि० उवसमसेढिविवक्खाए

विशेषार्थ—ओघसे मिथ्यात्व आदि उन्नीस प्रकृतियोंके तीन पदोंका काल सर्वदा घटित करके बतला आये हैं, इसलिए यहां उक्त प्रकृतियोंके इन पदोंके अन्तरकालका निषेध किया है। यह सम्भव है कि जिन्होंने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना की है वे जीव कमसे कम एक समयके अन्तरसे उनसे संयुक्त हों, इसलिए तो इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और जिन्होंने इनकी विसंयोजना की है ऐसा एक भी जीव अधिकसे अधिक साधिक चौबीस दिन रात तक इनसे संयुक्त न हो यह भी सम्भव है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन-रात कहा है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन-रात इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीव निरन्तर पाये जाते हैं और वे उनकी अल्पतरविभक्ति ही करते हैं, इसलिए इनके अल्पतर पदके अन्तरकालका निषेध किया है। इनकी भुजगार विभक्ति सम्यग्दृष्टिके होती है और उपशमसम्यक्त्वका जघन्य अन्तर एक समय तथा उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात दिन-रात है, इसलिए इनके भुजगारपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात दिन-रात कहा है। तथा इनका अवस्थितपद सासादनसम्यग्दृष्टिके होता है, इसलिए सासादनके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकालके समान इनके अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। एकेन्द्रियादि जीवोंके भी छह नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्ति होती रहती है, इसलिए इनके उक्त दोनों पदोंके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा इनकी अवस्थितविभक्ति उपशमश्रेणिमें होती है, इसलिए इनके इस पदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्वप्रमाण कहा है। पुरुषवेदका अन्य सब भङ्ग छह नोकषायोंके समान ही है। मात्र उसके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तरकाल दो प्रकारसे बतलाया है सो विचार कर घटित कर लेना चाहिए।

§ ३३३. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका अन्तर काल नहीं है निरन्तर है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और छह नोकषायोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि यहाँ छह नोकषायोंका अवस्थित पद नहीं है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अवक्तव्य पदका भङ्ग ओघके समान है। इसीप्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, मनुष्यत्रिक, देव और भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें इसीप्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिकमें सात नोकषायोंके अवस्थितपदका भङ्ग ओघके समान है। तथा बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी भी अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर काल उपशश्रेणिकी विवक्षासे

१. आ०प्रतौ 'णिर०। णियमा अवट्ठि०' इति पाठः।

वासपुधत्तं ।

§ ३३४. तिरिक्खगईए तिरिक्खाणमोघो । णवरि छण्णोक० अवट्ठि० णत्थि। पुरिस० अवट्ठि० वासपुधत्तं णत्थि । पंचिं०तिरि०अपज्ज० पंचिंदियतिरिक्खभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० अप्प० पुरिस० भुज०-अप्प० णत्थि अंतरं । सेसपदाणि अणंताणु० अवत्तव्वं च णत्थि । मणुसअपज्ज० छव्वीसं पयडीणं भुज०-अप्प० सम्म०-सम्मामि० अप्प० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । जेसिमवट्ठिद-पदमत्थि तेसिं जह० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क०-इत्थि०-णवुंस० अप्प० चउणोक० भुज०-अप्प० णत्थि अंतरं । बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० णेरइयभंगो । एवं जाव अणाहारि त्ति ।

णाणा० अंतरं समत्तं ।

§ ३३५. भावाणुगमेण दु० णि०—ओघेण आदेसेण य । ओघेण सव्व-पयडीणं सव्वपदा त्ति को भावो ? ओदइओ भावो । एवं जाव अणाहारि त्ति ।

भावाणुगमो समत्तो ।

वर्षपृथक्त्वप्रमाण है ।

विशेषार्थ—अपने अपने स्वामित्वको देखकर यहाँ सब प्रकृतियोंके अपने अपने पदोंका अन्तर काल घटित कर लेना चाहिए। विशेष वक्तव्य न होनेसे हमने अलग अलग खुलासा नहीं किया है। तथा इसीप्रकार आगे भी जान लेना चाहिए ।

§ ३३४. तिर्यञ्चगतिमें सामान्य तिर्यञ्चोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि छह नोकषायोंका अवस्थितपद नहीं है। तथा पुरुषवेदके अवस्थित पदका वर्षपृथक्त्वप्रमाण अन्तर काल नहीं है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतरविभक्ति तथा पुरुषवेदकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका अन्तर काल नहीं है। इनके शेष पद तथा अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अवक्तव्यपद नहीं है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्ति तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। जिनका अवस्थितपद है उनके इस पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी अल्पतरविभक्ति तथा चार नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका अन्तर काल नहीं है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका भङ्ग नारकियोंके समान है। इसप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इसप्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर काल समाप्त हुआ।

§ ३३५. भावानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंके सब पदोंका कौन भाव है ? औदयिकभाव है। इसप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इसप्रकार भावानुगम समाप्त हुआ।

§ ३३६. अप्पाबहुआणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ०-बारसक०-भय-दुगुंछाणं सव्वत्थोवा अवट्ठिदविहत्तिया। अप्पद० असंखे०-गुणा। भुज० संखे०गुणा। सम्म०-सम्मामि० सव्वत्थोवा अवट्ठि०। अवत्त० असंखे०गुणा। भुज० असंखे०गुणा। अप्प० असंखे०गुणा। अणंताणु०चउक्कस्स सव्वत्थोवा अवत्त०। अवट्ठि० अणंतगुणा। सेसं मिच्छत्तभंगो। इत्थि०-हस्स-रईणं सव्वत्थोवा अवट्ठि०। भुज० अणंतगुणा। अप्प० संखे०गुणा। णवुंसय०-अरदि-सोगाणं सव्वत्थोवा अवट्ठि०। अप्प० अणंतगुणा। भुज० संखे०गुणा। पुरिसवेदस्स सव्वत्थोवा अवट्ठि०। भुज० अणंतगुणा। अप्प० संखे०गुणा। एवं तिरिक्खोघो। णवरि छण्णोक० अवट्ठि० णत्थि।

§ ३३७. आदेसेण णेरइय० अणंताणु०चउक्कस्स सव्वत्थोवा अवत्त०। अवट्ठि० असंखे०गुणा। अप्प० असंखे०गुणा। भुज० संखे०गुणा। पुरिस० सव्वत्थोवा अवट्ठि०। भुज० असंखे०गुणा। अप्प० संखे०गुणा। सेसाणमोघो। णवरि छण्णोक० अवट्ठि० णत्थि। एवं सव्वणेरइय-पंचिंदियतिरिक्खतिय-मणुस्सोघं देवगदीए देवा भवणादि जाव सहस्सार त्ति। णवरि मणुस्सेसु सम्म०-सम्मामि० सव्वत्थोवा अवट्ठि०।

---

§ ३३६. अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अल्पतरविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे भुजगारविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे भुजगारविभक्तिवाले जीव असंख्यात-गुणे हैं। उनसे अल्पतरविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं। शेष भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। स्त्रीवेद, हास्य और रतिके अवस्थितविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे भुजगारविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं। उनसे अल्पतरविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। नपुंसकवेद, अरति और शोकके अवस्थितविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अल्पतरविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं। उनसे भुजगारविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। पुरुषवेदके अवस्थितविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे भुजगारविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं। उनसे अल्पतरविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें छह नोकषायोंका अवस्थितपद नहीं है।

§ ३३७. आदेशसे नारकियोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अल्पतरविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे भुजगारविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। पुरुषवेदके अवस्थित-विभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे भुजगारविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अल्पतरविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि छह नोकषायोंका अवस्थितपद नहीं है। इसीप्रकार सब नारकी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, सामान्य मनुष्य, देवगतिमें देव और भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके

अवत्त० संखे०गुणा । भुज० संखे०गुणा । अप्प० असंखे०गुणा । इत्थि०-हस्स-रईणं सव्वत्थोवा अवट्ठि० । भुज० असंखे०गुणा । अप्प० संखे०गुणा । णवुंस०-अरइ-सोगाणं सव्वत्थोवा अवट्ठि० । अप्प० असंखे०गुणा । भुज० संखे०गुणा ।

§ ३३८. पंचिं०तिरि०अपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछाणमोघो । णवरि अणंताणु०चउक्क०अवत्त० णत्थि । सम्म०-सम्मामि० णत्थि अप्पाबहुअं, एयपदत्तादो । इत्थिवेद०-पुरिस-हस्स-रदीणं सव्वत्थोवा भुज० । अप्प० संखेज्जगुणा । णवुंस-अरदि-सोगाणं सव्वत्थोवा अप्प० । भुज० संखे०गुणा । एवं मणुसअपज्ज० ।

§ ३३९. मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छ०-बारसक०-भय-दुगुंछा० सव्वत्थोवा अवट्ठि० । अप्प० संखे०गुणा । भुज० संखे०गुणा । अणंताणु०चउक्क० सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्ठि० संखे०गुणा । सेसं मिच्छत्तभंगो । सम्म०-सम्मामि० सव्वत्थोवा अवट्ठि० । अवत्त० संखे०गुणा । भुज० संखे०गुणा । अप्प० संखे०गुणा । पुरिस० सव्वत्थोवा अवट्ठि० । भुज० संखे०गुणा । अप्प० संखे०गुणा । सेसमोघो । णवरि

देवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि मनुष्योंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अवस्थितविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे भुजगारविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे अल्पतरविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । स्त्रीवेद, हास्य और रतिके अवस्थितविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे भुजगारविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अल्पतरविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । नपुंसकवेद, अरति और शोकके अवस्थितविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अल्पतरविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे भुजगारविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ३३८. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साका भङ्ग ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अवक्तव्यपद नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि यहाँ इनका एक पद है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिके भुजगारविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अल्पतरविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । नपुंसकवेद, अरति और शोकके अल्पतरविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे भुजगारविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसीप्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए ।

§ ३३९. मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साके अवस्थितविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अल्पतरविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे भुजगारविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अवक्तव्य-विभविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । शेष भङ्ग मिथ्यात्वके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अवस्थितविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे भुजगारविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे अल्पतरविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । पुरुषवेदके अवस्थित-विभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे भुजगारविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे अल्पतरविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । शेष भङ्ग ओघके समान है । इतनी विशेषता है

छण्णोक० अवट्ठि० सव्वत्थोवं । उवरि संखेज्जगुणं कायव्वं ।

§ ३४०. आणदादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति बारसक०-इत्थि०-हस्स-रइ-अरइ--सोग-भय--दुगुंछा--सम्मत्त--सम्मामिच्छत्ताणं देवोघो । अणंताणु०चउक्कस्स सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्ठि० असंखे०गुणा । भुज० असंखे०गुणा । अप्प० संखे०-गुणा । एवं मिच्छ० । णवरि अवत्त० णत्थि । पुरिस० कसायभंगो । णवुंस० इत्थिवेदभंगो । अणुदिसादि जाव अवराइद त्ति दंसणतिय-अणंताणु०चउक्क०-इत्थि०-णवुंस०वेदाणं णत्थि अप्पाबहुअं। सेसाणमुवरिमगेवज्जभंगो । सव्वट्ठे एवं चेव। णवरि बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० संखे०गुणं कायव्वं । एवं जाव अणाहारए त्ति ।

एवं भुजगारविहत्ती समत्ता ।

❀ पदणिक्खेव-वड्ढीओ च कायव्वाओ ।

§ ३४१. एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे—पदाणमुक्कस्स-जहण्ण-वड्ढि-हाणि-अवट्ठाणावत्तव्वसण्णिदाणं णिक्खेवो समुक्कित्तणा-सामित्तादिविसेसेहि णिच्छयजणणं पदणिक्खेवो णाम । भुजगारविसेसो पदणिक्खेवो त्ति वुत्तं होइ । पदणिक्खेवविसेसो वड्ढी णाम । एदाओ दो वि विहत्तीओ भुजगाराणुसारेणेत्थ कायव्वाओ त्ति अत्थ-

---

कि छह नोकपायोंकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं । आगे संख्यातगुणा करना चाहिए ।

§ ३४०. आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें बारह कषाय, स्त्रीवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे भुजगारविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अल्पतरविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार मिथ्यात्वके सम्भव पदोंका अल्पबहुत्व है। इतनी विशेषता है कि इसकी अवक्तव्यविभक्ति नहीं है। पुरुषवेदका भङ्ग कषायोंके समान है। नपुंसकवेदका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है। अनुदिशसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें तीन दर्शनमोहनीय, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका अल्पबहुत्व नहीं है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग उपरिम ग्रैवेयकके समान है। सर्वार्थसिद्धिमें इसीप्रकार भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका अल्पबहुत्व कहते स॰य संख्यातगुणा करना चाहिए। इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इसप्रकार भुजगारविभक्ति समाप्त हुई।

❀ पदनिक्षेप और वृद्धि करनी चाहिए ।

३४१. इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—उत्कृष्ट और जघन्य वृद्धि, हानि, अवस्थान और अवक्तव्य संज्ञावाले पदोंका निक्षेप अर्थात् समुत्कीर्तना और स्वामित्व आदि विशेषोंके द्वारा निश्चय उत्पन्न करना पदनिक्षेप कहलाता है। भुजगारविशेषको पदनिक्षेप कहते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। तथा पदनिक्षेपविशेषको वृद्धि कहते हैं। ये दोनों ही विभक्तियाँ भुजगारके

समप्पणा एदेण कदा होइ। संपहि एदेण सुत्तेण समप्पिदत्थविवरणमुच्चारणबलेण कस्सामो। तं जहा—उत्तरपयडिपदणिक्खेवे त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि–समुक्कित्तणा सामित्तमप्पाबहुए त्ति।

§ ३४२. तत्थ समुक्कित्तणा दुविहा—जहण्णा उक्कस्सा। उक्कस्सए पयदं। दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ०-सोलसक०-पुरिस-भय-दु० अत्थि उक्कस्सिया वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च। सम्मत्त-सम्मामि०-इत्थि०-णवुंस०-हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं अत्थि उक्क० वड्ढी हाणी च। णवरि एत्थावट्ठिदस्स वि संभवो अत्थि, सासणसम्माइट्ठिम्मि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं तदुवलंभादो। सेसाणं पि उवसमसेढीए सव्वोवसामणम्मि तदुवलंभसंभवादो। तमेत्थ ण विवक्खियमिदि णेदव्वं। अदो चेव उवरिमो अप्पणागंथो सुसंबद्धो। एवं सव्वणेरइय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख३-मणुस३-देवा जाव उवरिमगेवज्जा त्ति।

§ ३४३. पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछा० अत्थि उक्क० वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च। सम्म०-सम्मामि० अत्थि उक्क० हाणी। सत्तणोक०[1] अत्थि उक्क० वड्ढी हाणी च। एवं मणुसअपज्ज०। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति

अनुसार यहाँ करनी चाहिए इसप्रकार इस सूत्र द्वारा अर्थका समर्पण किया गया है। अब इस सूत्र द्वारा समर्पित किए गये अर्थका विवरण उच्चारणाके बलसे करते हैं। यथा—उत्तरप्रकृतिपदनिक्षेपका प्रकरण है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व।

§ ३४२. समुत्कीर्तना दो प्रकारकी है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट हानि है। इतनी विशेषता है कि यहाँ पर अवस्थितपद भी सम्भव है, क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अवस्थितपद उपलब्ध होता है। तथा शेष प्रकृतियोंका भी अवस्थितपद उपशमश्रेणिमें सर्वोपशामना होने पर उपलब्ध होता है। परन्तु वह यहाँ पर विवक्षित नहीं है ऐसा जानना चाहिए और इसीलिए उपरिम अर्पणा ग्रन्थ सुसम्बद्ध है। इसी प्रकार सब नारकी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, मनुष्यत्रिक, देव और उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए।

§ ३४३. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि है। सात नोकषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि और हानि है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए।

१. ता०प्रतौ 'उक्क० हाणी। [सत्तणोक० अत्थि उक्क० हाणी] सत्तणोक०' इति पाठः।

मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस० अत्थि उक्क० हाणी। णवरि सम्म०-सम्मामि० वड्डीए वि संभवो दीसइ, उवसमसेढीए कालं कादूण तत्थुप्पण्ण-उवसमसम्मादिट्ठिम्मि दोण्हमेदेसिं कम्माणं वड्डिदंसणादो। एदमेत्थ ण विवक्खिय-मिदि णेदव्वं। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणमत्थि उक्क० वड्डी हाणी च। बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० ओघं। एवं जाव अणाहारि त्ति। एवं जहण्णयं पि णेदव्वं, विसेसाभावादो।

§ ३४४. सामित्तं दुविहं—जह० उक्क०। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ० उक्क० वड्डी कस्स? अण्णद० जो हदसमुप्पत्तियकम्मंसिओ कम्मं क्खवेहदि त्ति विवरीदं गंतूण सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु उववण्णो सव्वलहुं सव्वाहिं पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो उक्कस्ससंकिलेसमुक्कस्सगं च जोगं गदो तस्स उक्कस्सिया वड्डी। तस्सेव से काले उक्कस्सयमवट्ठाणं। णवरि तप्पाओग्ग-जहण्णसंतकम्मिओ खविदकम्मंसिओ आणेदव्वो, बंधाणुसारेणेदमुक्कस्सवड्डिसामित्तं पयट्टं, अण्णहा पुण गुणिदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण विवरीयभावेण सम्मत्त-सम्मा-मिच्छत्ताणि पूरेदूण तदो मिच्छत्तं गयस्स पढमसमए पयदसामित्तेण होदव्वं, तत्था-संखेज्जाणं गुणिदसमयपबद्धाणमधापवत्तेण मिच्छत्तस्सुवरि परिवड्डिदंसणादो। उक्क०

अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट हानि है। इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी वृद्धि भी सम्भव दिखलाई देती है, क्योंकि उपशमश्रेणिमें मरण करके वहाँ उत्पन्न हुए उपशमसम्यग्दृष्टि जीवमें इन दो कर्मोंकी वृद्धि देखी जाती है। किन्तु यह यहाँ पर विवक्षित नहीं है ऐसा जानना चाहिए। हास्य, रति, अरति और शोककी उत्कृष्ट वृद्धि और हानि है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए। तथा उत्कृष्टके समान जघन्य भी जानना चाहिए, क्योंकि उत्कृष्टसे इसमें कोई विशेषता नहीं है।

इस प्रकार समुत्कीर्तना समाप्त हुई।

§ ३४४. स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है? जो अन्यतर हतसमुत्पत्तिक कर्मांशिक जीव कर्मका क्षपण करेगा किन्तु विपरीत जाकर सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हो और अति शीघ्र सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो उत्कृष्ट संक्लेश और उत्कृष्ट योगको प्राप्त हुआ उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है। उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। इतनी विशेषता है कि तत्प्रायोग्य जघन्य सत्कर्मवाले क्षपितकर्मांशिक जीवको लाना चाहिए। बन्धके अनुसार यह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामित्व प्रवृत्त हुआ है, अन्यथा गुणितकर्मांशिक लक्षणसे आकर विपरीत भावसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको पूरकर अनन्तर मिथ्यात्वको प्राप्त होने पर उसके प्रथम समयमें प्रकृत स्वामित्व होना चाहिए, क्योंकि वहां पर असंख्यात गुणित समयप्रबद्धोंकी अधःप्रवृत्तभागाहारके द्वारा मिथ्यात्वके ऊपर वृद्धि देखी जाती है।

हाणी कस्स ? अण्णद० जो गुणिदकम्मंसिओ सत्तमादो पुढवीदो णिस्सरिदसमाणो दो-तिण्णि भवे पंचिंदिएसु बादरेइंदिएसु च गमेदूण तदो मणुस्सेसु गब्भोवक्कंतिएसु जादो सव्वलहुं जोणिणिक्खमणजम्मणेण जादो अट्ठवस्सिओ सम्मत्तं पडिवज्जिय दंसणमोहक्खवणाए अब्भुट्ठिदो तेण मिच्छत्तं खविज्जमाणं खविदं जाधे[1] अपच्छिम-ट्ठिदिखंडगं चरिमसमयसंछुब्भमाणगं संछुद्धं ताधे तस्स मिच्छत्तस्स उक्क० हाणी। सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० वड्ढी कस्स ? अण्णद० जो गुणिदकम्मंसिओ सत्तमीए पुढवीए णेरइओ अंतोमुहुत्तेण मिच्छत्तमुक्कस्सं काहिदि त्ति विवरीयं गंतूण सम्मत्तं पडिवण्णो। तत्थ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि गुणसंकमेण पूरिदाणि अंतोमुहुत्तमसंखेज्ज-गुणाए सेढीए सो से काले विज्झादं पडिहिदि त्ति तस्स उक्क० वड्ढी। अथवा दंसणमोहक्खवगेण गुणिदकम्मंसिएण जाधे मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्ते पक्खित्तं ताधे सम्मामिच्छत्तस्स उक्क० वड्ढी। तेणेव जाधे सम्मामिच्छत्तं सम्मत्ते पक्खित्तं ताधे [सम्मत्तस्स उक्क० वड्ढी]। सम्म० उक्क० हाणी कस्स ? अण्णद० गुणिदकम्मंसियस्स अक्खीणदंसणमोहणीयस्स चरिमसमए वट्टमाणस्स। सम्मामि० उक्क० हाणी कस्स ? गुणिदकम्मंसिएण सम्मामिच्छत्तं सम्मत्ते जाधे संपक्खित्तं ताधे तस्स उक्क० हाणी। अणंताणु०४ उक्क० वड्ढी अवट्ठाणं च मिच्छत्तभंगो। उक्क० हाणी कस्स ? अण्ण०

मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक जीव सातवीं पृथिवीसे निकल कर तथा दो तीन भव पञ्चेन्द्रियों और बादर एकेन्द्रियोंमें बिता कर अनन्तर गर्भज मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अतिशीघ्र योनिसे निकलने रूप जन्मसे आठ वर्षका होकर तथा सम्यक्त्वको प्राप्त हो दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके लिए उद्यत हुआ। उसने क्षयको प्राप्त होनेवाले मिथ्यात्वका क्षय करते हुए जब अन्तिम स्थितिकाण्डकका अन्तिम समयमें संक्रमण किया तब उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक जीव सातवीं पृथिवीमें नारकी होकर अन्तर्मुहूर्तमें मिथ्यात्वको उत्कृष्ट करेगा किन्तु विपरीत जाकर और सम्यक्त्वको प्राप्त होकर वहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको गुणसंक्रमके द्वारा अन्तर्मुहूर्त काल तक असंख्यातगुणी गुणश्रेणिरूपसे पूरकर अनन्तर समयमें विध्यातको प्राप्त होगा ऐसे उस जीवके उत्कृष्ट वृद्धि होती है। अथवा दर्शनमोहनीयका क्षपक जो गुणितकर्मांशिक जीव जब मिथ्यात्वको सम्यग्मिथ्यात्वमें प्रक्षिप्त करता है तब उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है। तथा वही जब सम्यग्मिथ्यात्वको सम्यक्त्वमें प्रक्षिप्त करता है तब सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है। सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो अन्यतर दर्शनमोहनीयका क्षय करनेवाला गुणितकर्मांशिक जीव अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट हानि होती है। सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो गुणितकर्मांशिक जीव जब सम्यग्मिथ्यात्वको सम्यक्त्वमें प्रक्षिप्त करता है तब उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि होती है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इनकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो अन्यतर

१. ता०प्रतौ 'जादे (धे)' आ०प्रतौ 'जादे' इति पाठः।

गुणिदकम्मंसिओ जो सत्तमाए पुढवीए णेरइयो कम्ममंतोमुहुत्तेण गुणेहिदि त्ति सम्मत्तं पडिवण्णो अंतोमुहुत्तेण अणंताणुबंधी विसंजोजयंतेण तेण अपच्छिमे ट्ठिदिखंडए संकामिदे तस्स उक्क० हाणी। अट्ठण्हं कसायाणमुक्कस्सवड्ढी अवट्ठाणं मिच्छत्तभंगो। उक्क० हाणी कस्स? गुणिदकम्मंसियस्स अणियट्टिखवगस्स अट्ठण्हं कसायाणमपच्छिमे ट्ठिदिखंडए संकामिदे तस्स उक्क० हाणी। तिण्हं संजलणाणमट्ठ-कसायभंगो। लोहसंजलणस्स एवं चेव। णवरि सुहुमसांपराइयस्स चरिमसमए उक्क० हाणी। इत्थि-णवुंस०-हस्स-रइ-अरइ-सोगाणमुक्क० वड्ढी मिच्छत्तभंगो। उक्क० हाणी कस्स? अण्णद० गुणिदकम्मंसियस्स खवगस्स चरिमे ट्ठिदिखंडए चरिमसमय-संकामिदे इत्थि-णवुंस० उक्क० हाणी। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणमुक्क० हाणी गुणिद-कम्मंसियस्स खवगस्स चरिमट्ठिदिखंडयदुचरिमसमयसंकामयस्स। पुरिसवेद० उक्क० वड्ढी मिच्छत्तभंगो। अवट्ठाणं कस्स? अण्णद० असंजदसम्माइट्ठिस्स अवट्ठिदपाओग्ग-संतकम्मिएण उक्कस्सवड्ढिं कादूणावट्ठिदस्स तस्स उक्क० अवट्ठाणं। उक्क० हाणी कस्स? अण्णद० गुणिदकम्मंसियस्स खवगस्स चरिमट्ठिदिखंडयं विणासेमाणगस्स उक्क० हाणी। भय-दुगुंछाणं वड्ढि-अवट्ठाणमुक्कस्सं मिच्छत्तभंगो। उक्क० हाणी कस्स? अण्णद० गुणिदकम्मंसियस्स खवगस्स चरिमट्ठिदिखंडयदुचरिमसमए वट्टमाणगस्स।

गुणितकर्मांशिक सातवीं पृथिवीका नारकी जीव कर्मको अन्तर्मुहूर्तके द्वारा गुणित करेगा, इसलिए सम्यक्त्वको प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्तके द्वारा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करते हुए जब अन्तिम स्थितिकाण्डकका संक्रमण करता है तब उसके अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट हानि होती है। आठ कषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इनकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है? जो गुणितकर्मांशिक अनिवृत्तिक्षपक जीव आठ कषायोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकका संक्रमण करता है उसके इनकी उत्कृष्ट हानि होती है। तीन संज्वलनोंका भङ्ग आठ कषायोंके समान है। लोभसंज्वलनका भङ्ग इसीप्रकार है। इतनी विशेषता है कि सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें इसकी उत्कृष्ट हानि होती है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी उत्कृष्ट वृद्धिका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इनकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक क्षपक जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकका अन्तिम समयमें संक्रमण कर रहा है उसके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट हानि होती है। तथा जो गुणितकर्मांशिक क्षपक जीव हास्य, रति, अरति और शोकके अन्तिम स्थितिकाण्डकके द्विचरम समयमें संक्रमण कर रहा है उसके इनकी उत्कृष्ट हानि होती है। पुरुषवेदकी उत्कृष्ट वृद्धिका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इसका उत्कृष्ट अवस्थान किसके होता है? जो अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि जीव अवस्थितप्रायोग्य सत्कर्मके साथ उत्कृष्ट वृद्धि करके अवस्थित है उसके इसका उत्कृष्ट अवस्थान होता है। इसकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक क्षपक जीव चरम स्थितिकाण्डकका विनाश कर रहा है उसके इसकी उत्कृष्ट हानि होती है। भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इनकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक क्षपक जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकके द्विचरम समयमें विद्यमान है उसके इनकी उत्कृष्ट हानि होती है।

§ ३४५. आदेसेण णेरइय० मिच्छत्त० उक्कस्सवड्डि-अवट्ठाणमोघभंगो। उक्कस्सिया हाणी कस्स ? अण्णद० जो गुणिदकम्मंसिओ अंतोमुहुत्तेण कम्मं गुणेहिदि त्ति तदो सम्मत्तं पडिवण्णो सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि गुणसंकमेण पूरेदूण से काले विज्झादं पडिहिदि त्ति तस्स उक्क० हाणी। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सिया वड्डी कस्स ? अण्णदरस्स गुणिदकम्मंसियस्स जो सत्तमाए पुढवीए णेरइओ अंतोमुहुत्तेण कम्मं गुणेहिदि त्ति सम्मत्तं पडिवण्णो तदो सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि गुणसंकमेण पूरेयूण से काले विज्झादं पडिहिदि त्ति तस्स उक्क० वड्डी। सम्म० उक्क० हाणी कस्स ? अण्णद० जो गुणिदकम्मंसिओ चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीओ तस्स उक्कस्सिया हाणी। सम्मामि० उक्क० हाणी कस्स ? अण्णद० गुणसंकमेण सम्मामिच्छत्तादो सम्मत्तं पूरेयूण विज्झादं पदिदपढमसमए तस्स उक्क० हाणी। अणंताणु०४ उक्कस्सवड्डी अवट्ठाणं मिच्छत्तभंगो। उक्कस्सिया हाणी कस्स ? अण्णद० गुणिदकम्मंसियस्स सम्मत्तं पडिवज्जियूण अणंताणु०४ विसंजोए तस्स तस्स अपच्छिमे ट्ठिदिखंडए चरिमसमयसंछोहयस्स तस्स उक्क० हाणी। बारसक०-भय-दुगुंछा० उक्कस्सवड्डी अवट्ठाणं मिच्छत्तभंगो। उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरस्स गुणिदकम्मंसियस्स कदकरणिज्जभावेण णेरइएसु उववण्णस्स जाधे गुणसेढिसीसयाणि उदयमागदाणि ताधे तस्स उक्कसिया हाणी। एवं पुरिसवेदस्स। णवरि अवट्ठाणं सम्माइट्ठिस्स।

---

§ ३४५. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग ओघके समान है। उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक जीव अन्तर्मुहूर्तके द्वारा कर्मको गुणित करेगा किन्तु सम्यक्त्वको प्राप्त हो सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको गुणसंक्रमके द्वारा पूरकर अनन्तर समयमें विध्यातको प्राप्त होगा उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी वृद्धि किसके होती है ? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक सातवीं पृथिवीका नारकी जीव अन्तर्मुहूर्तके द्वारा कर्मको गुणित करेगा किन्तु सम्यक्त्वको प्राप्त होकर अनन्तर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको गुणसंक्रमके द्वारा पूरकर अनन्तर समयमें विध्यातको प्राप्त होगा उसके इनकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है। सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक जीव अन्तिम समयमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणा कर रहा है उसके इसकी उत्कृष्ट हानि होती है। सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो अन्यतर जीव गुणसंक्रमके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वसे सम्यक्त्वको पूरकर विध्यातको प्राप्त होता है उसके प्रथम समयमें उसकी उत्कृष्ट हानि होती है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इनकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक जीव सम्यक्त्वको प्राप्त होकर अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करते समय अन्तिम स्थितिकाण्डकका अन्तिम समयमें संक्रमण कर रहा है उसके इनकी उत्कृष्ट हानि होती है। बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इनकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक जीव कृतकृत्यभावसे नारकियोंमें उत्पन्न हुआ उसके जब गुणश्रेणिशीर्ष उदयको प्राप्त होता है तब उसके इनकी उत्कृष्ट हानि होती है। इसीप्रकार पुरुषवेदके विषयमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसका अवस्थान

इट्ठिस्स। इत्थि-णवुंस०-चदुणोकसाय० [उक्क०] वड्ढी मिच्छत्तभंगो। अवट्ठाणं णत्थि। हाणी भय-दुगुंछभंगो। जेसिमुदयो णत्थि तेसिं पि थिउक्कसंकमेणं पयदसिद्धी वत्तव्वा। पढमाए एवं चेव। णवरि अप्पणो पुढवीए उववज्जावेयव्वो। विदियादिं जाव सत्तमा त्ति एवं चेव। णवरि अप्पप्पणो पुढवीए णामं घेत्तूण उववज्जावेयव्वो। णवरि सम्मत्तस्स उक्क० हाणी कस्स? अण्णद० गुणिदकम्मंसियस्स सम्मत्तं पडिवज्जियूण अणंताणुबंधिं विसंजोइय ट्ठिदस्स जाधे गुणसेढिसीसयाणि उदयमागयाणि ताधे तस्स उक्क० हाणी। बारसक०-णवणोक० उक्क० हाणी एवं चेव।

§ ३४६. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु मिच्छत्तस्स उक्कस्सिया वड्ढी कस्स? अण्णद० खविदकम्मंसिओ विवरीदं गंतूण तिरिक्खगईए उववण्णो सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो उक्कस्सजोगमुक्कस्ससंकिलेसं च गदो तस्स उक्क० वड्ढी। तस्सेव से काले उक्कस्सयमवट्ठाणं। उक्कस्सिया हाणी कस्स? अण्णद० गुणिदकम्मंसियस्स संजमासंजम-संजम-सम्मत्तगुणसेढीओ कादूण मिच्छत्तं गदो तदो अविणट्ठासु गुणसेढीसु तिरिक्खेसु उववण्णस्स तस्स जाधे गुणसेढिसीसयाणि उदयमागदाणि ताधे मिच्छत्तस्स उक्क० हाणी। अथवा णेरइयभंगो। सम्मत्त०-सम्मामि० उक्कस्सिया वड्ढी कस्स? अण्णद० गुणिदकम्मंसिय-

सम्यग्दृष्टिके होता है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और चार नोकषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इनका अवस्थान नहीं है। इनकी उत्कृष्ट हानिका भङ्ग भय और जुगुप्साके समान है। तथा जिन प्रकृतियोंका उदय नहीं है उनकी भी स्तिवुकसंक्रमणसे प्रकृत विषयकी सिद्धि करनी चाहिए। पहली पृथिवीमें इसीप्रकार भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी पृथिवीमें उत्पन्न कराना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक इसीप्रकार भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी पृथिवीका नाम लेकर उत्पन्न कराना चाहिए। इतनी और विशेषता है कि सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक जीव सम्यक्त्वको प्राप्त होकर और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करके स्थित है उसके जब गुणश्रेणिशीर्ष उदयको प्राप्त होते हैं तब उसके सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट हानि होती है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंका भङ्ग इसीप्रकार है।

§ ३४६. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है? जो अन्यतर क्षपितकर्मांशिक जीव विपरीत जाकर तिर्यञ्चगतिमें उत्पन्न हो और सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो उत्कृष्ट योग और उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त हुआ उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है। तथा उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। उत्कृष्ट हानि किसके होती है? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक जीव संयमासंयम, संयम और सम्यक्त्वकी गुणश्रेणियाँ करके मिथ्यात्वको प्राप्त हो अनन्तर गुणश्रेणियोंके नष्ट हुए बिना तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न हुआ उसके जब गुणश्रेणिशीर्ष उदयको प्राप्त हुए तब उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि होती है। अथवा इसका भङ्ग नारकियोंके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक

१. ता०प्रतौ 'छिउक्कसंकमेण' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'एवं चेव। णामं घेत्तूण। विदियादि' इति पाठः।

तिरिक्खो सम्मत्तं पडिवण्णो जाधे गुणसंकमेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि पूरेयूण से काले वि-ज्झादं पडिहिदि त्ति ताधे तस्स उक्कस्सिया वड्ढी। हाणी वि सम्मामिच्छत्तस्स विज्झादे पदिदस्स पढमसमए कायव्वा। सम्मत्तस्स उक्कस्सिया हाणी ओघं। अणंताणु०४ वड्ढी अवट्ठाणं च मिच्छत्तभंगो। उक्क० हाणी कस्स? अण्णद० गुणिद-कम्मंसियस्स अणंताणुबंधी विसंजोजेंतस्स अपच्छिमे ट्ठिदिखंडए संकामिदे तस्स उक्क० हाणी। बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० वड्ढी अवट्ठाणं मिच्छत्तभंगो। णवरि पुरिस० अवट्ठाणं सम्माइट्ठिस्स कायव्वं। उक्कस्सिया हाणी णेरइयभंगो। इत्थि-णवुंस०-चदुणोक० उक्क० वड्ढी मिच्छत्तभंगो। उक्कस्सिया हाणी पुरिसवेदभंगो। एवं पंचिंदियतिरिक्खतिए। णवरि जोणिणीसु सम्म०-बारसक०-णवणोक० उक्क० हाणी कस्स? अण्णद० गुणिदकम्मंसियस्स संजम-संजमासंजम-सम्मत्तगुणसेढीओ कादूण तदो अविणट्ठासु गुणसेढीसु मिच्छत्तं गंतूण जोणिणीसु उववण्णो जाधे गुणसेढिसीसयाणि उदयमागदाणि ताधे तस्स उक्क० हाणी।

§ ३४७. पंचिं०तिरिक्ख०अपज्ज० मिच्छत्त--सोलसक०-भय--दुगुंछा० उक्क० वड्ढी कस्स? अण्णद० खविदकम्मंसियस्स जो विवरीदं गंतूण पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्तएसु उववण्णो अंतोमुहुत्तेण उक्कस्सजोगं गदो उक्कस्सयं च संकिलेसं पडिवण्णो तस्स उक्क० वड्ढी। तस्सेव से काले उक्कस्सयमवट्ठाणं। उक्क० हाणी कस्स? अण्णद०

तिर्यञ्च जीव सम्यक्त्वको प्राप्त हो जब गुणसंक्रमके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको पूरकर अनन्तर समयमें विध्यातको प्राप्त करेगा तब उसके इनकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है। हानि भी सम्यग्मिथ्यात्वकी विध्यातको प्राप्त हुए तिर्यञ्चके प्रथम समयमें करनी चाहिए। सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट हानिका भङ्ग ओघके समान है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इनकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है? अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करनेवाला जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकका संक्रमण करता है उसके इनकी उत्कृष्ट हानि होती है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेदका अवस्थान पद सम्यग्दृष्टिके करना चाहिए। इनकी उत्कृष्ट हानिका भङ्ग नारकियोंके समान है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और चार नोकषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। तथा इनकी उत्कृष्ट हानिका भङ्ग पुरुषवेदके समान है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि योनिनीतिर्यञ्चोंमें सम्यक्त्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक जीव संयम, संयमासंयम और सम्यक्त्वकी गुणश्रेणियाँ करके अनन्तर गुणिश्रेणियोंके नष्ट हुए बिना मिथ्यात्वमें जाकर योनिनी तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ उसके जब गुणश्रेणिशीर्ष उदयको प्राप्त हुए तब उसके इनकी उत्कृष्ट हानि होती है।

§ ३४७. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक जीव विपरीत जाकर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हो अन्तर्मुहूर्तमें उत्कृष्ट योग और उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त हुआ उसके इनकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है। तथा उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। इनकी

गुणिदकम्मंसिओ जो सम्मत्त-संजमासंजम-संजमगुणसेढीओ कादूण मिच्छत्तं गदो अविणट्ठासु गुणसेढीसु अपज्जत्तएसु उववण्णो तस्स गुणसेढिसीसएसु उदयमागदेसु उक्क० हाणी। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सिया हाणी तस्सेव। सत्तणोक० उक्क० वड्ढि-हाणीणं मिच्छत्तभंगो।

§ ३४८. मणुसगदीए मणुसेसु मिच्छत्तस्स उक्क० वड्ढी कस्स? अण्णदरो खविदकम्मंसिओ अंतोमुहुत्तेण कम्मं खवेहिदि त्ति विवरीयं गंतूण मिच्छत्तं गदो उक्कस्सजोगमुक्कस्ससंकिलेसं च पडिवण्णो तस्स उक्क० वड्ढी। तस्सेव से काले उक्कस्सयमवट्ठाणं। उक्कस्सिया हाणी कस्स? अण्णदरो गुणिदकम्मंसिओ दंसण-मोहक्खवणाए अब्भुट्ठिदो जाधे तेण अपिच्छमं ट्ठिदिखंडयं गुणसेढिसीसगस्स संखेज्जदिभागेण सह हदं ताधे तस्स उक्क० हाणी। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० वड्ढी कस्स? अण्णद० गुणिदकम्मंसियस्स सव्वलहुं मणुसेसु आगदो जोणिणिक्खमण-जम्मणेण जादो अट्ठवस्सिगो सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि गुणसंकमेण असंखे०गुणाए सेढीए अंतोमुहुत्तं पूरेयूण से काले विज्झादं पडिहिदि त्ति तस्स उक्कस्सिया वड्ढी। अथवा दंसणमोहक्खवगस्स कायव्वं। सम्मत्तस्स उक्क० हाणी कस्स? अण्णद० गुणिदकम्मंसियस्स चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स। सम्मामिच्छत्तस्स एदेणेव दंसणमोहं खवेंतेण जाधे गुणसेढिसीसगेण सह सम्मामि० अपच्छिमट्ठिदिखंडयं

उत्कृष्ट हानि किसके होती है? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक जीव सम्यक्त्व, संयमासंयम और संयम गुणश्रेणियोंको प्राप्त होकर तथा मिथ्यात्वमें जाकर गुणश्रेणियोंके नष्ट हुए बिना अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ उसके गुणश्रेणिशीर्षोंके उदयको प्राप्त होने पर उत्कृष्ट हानि होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि उसीके होती है। सात नोकषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि और हानिका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है।

§ ३४८. मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है? जो अन्यतर क्षपितकर्मांशिक जीव अन्तर्मुहूर्तमें कर्मोंका क्षय करेगा किन्तु विपरीत जाकर मिथ्यात्वको प्राप्त हो उत्कृष्ट योग और उत्कृष्ट संक्लेशका अधिकारी हुआ उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है। तथा उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। इसकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक जीव दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेके लिए उद्यत हुआ। उसने जब अन्तिम स्थितिकाण्डकका गुणश्रेणिशीर्षके संख्यातवें भागके साथ हनन किया तब उसके मिथ्यात्व-की उत्कृष्ट हानि होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक जीव अतिशीघ्र मनुष्योंमें आकर और योनिनिष्क्रमण जन्मसे आठ वर्षका होकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको गुणसंक्रमके द्वारा असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे अन्तर्मुहूर्ततक पूरकर अनन्तर समयमें विध्यातको प्राप्त होगा उसके उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है। अथवा इनकी उत्कृष्ट वृद्धि दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाले जीवके करनी चाहिए। सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक जीव दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके अन्तिम समयमें अवस्थित है उसके सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट हानि होती है। तथा यही दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाला जीव जब गुणश्रेणिशीर्षके साथ सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तिम

चरिमसमयं पक्खित्तं ताधे उक्क० हाणी। अणंताणु० उक्क० वड्ढी अवट्ठाणं च मिच्छत्तभंगो। उक्कस्सिया हाणी कस्स ? गुणिदकम्मंसियस्स सव्वलहुं जोणिणिक्खमण-जम्मणेण जादो अट्ठवस्सिओ सम्मत्तं पडिवण्णो भूयो अंतोमुहुत्तेण अणंताणुबंधी विसंजोएदि जाधे तेण गुणसेढिसीसगस्स संखेज्जदिभागेण सह अपच्छिमट्ठिदिखंडयं णिग्गालिदं ताधे अणंताणु० उक्क० हाणी। अट्ठण्हं कसायाणमुक्कस्सवड्ढि-अवट्ठाणं मिच्छत्तभंगो। उक्क० हाणी कस्स ? अण्णद० गुणिदकम्मंसियस्स सव्वलहुं जोणि-णिक्खमणजम्मणेण जादो अट्ठवस्सिओ खवणाए अब्भुट्ठिदो जाधे अपच्छिमट्ठिदिखंडयं गुणसेढिसीसगेहि सह संजलणाए संपक्खित्तं ताधे उक्क० हाणी। कोहसंजलणस्स उक्क० वड्ढी कस्स ? अण्णद० गुणिदकम्मंसियस्स खवगस्स जाधे पुरिसवेदो छण्णो-कसाएहि सह कोधे संपक्खित्तो ताधे कोधसंज० उक्क० वड्ढी। ओघसामित्तं पि एदं चेव कायव्वं। अवट्ठाणं मिच्छत्तभंगो। उक्क० हाणी कस्स ? जाधे कोधो माणे संपक्खित्तो ताधे कोधस्स उक्क० हाणी। माणस्स उक्क० वड्ढी कस्स ? तेणेव जाधे कोधो माणे संपक्खित्तो ताधे माणस्स उक्क० वड्ढी। अवट्ठाणं मिच्छत्तभंगो। हाणी कस्स ? तस्स चेव जाधे माणो मायाए संपक्खित्तो ताधे उक्क० हाणी। मायाए उक्क० वड्ढी कस्स ? तेणेव माणउक्कस्सविभत्तिगेण जाधे माणो मायाए संपक्खित्तो ताधे तस्स उक्क० वड्ढी। [अवट्ठाणं मिच्छत्तभंगो।] हाणी कस्स ? जो मायाए उक्कस्ससंतकम्मंसिओ

स्थितिकाण्डकका अन्तिम समयमें संक्रमण करता है तब उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि होती है। अनन्तानुबन्धीचतुष्क की उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इनकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक जीव अतिशीघ्र योनिसे निकलने रूप जन्मके द्वारा आठ वर्षका होकर सम्यक्त्वको प्राप्त हो पुनः अन्तर्मुहूर्तमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करता है उसके जब गुणश्रेणिशीर्षके संख्यातवें भागके साथ अन्तिम स्थितिकाण्डक गलित हुआ तब उसके अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट हानि होती है। आठ कषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानका भंग मिथ्यात्वके समान है। इनकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक जीव अतिशीघ्र योनिसे निकलेनरूप जन्मसे आठ वर्षका होकर क्षपणाके लिए उद्यत हुआ। उसने जब अन्तिम स्थितिकाण्डकको गुणश्रेणिशीर्षोंके साथ संज्वलनमें प्रक्षिप्त किया तब उसके इनकी उत्कृष्ट हानि होती है। क्रोधसंज्वलनकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक क्षपक जीव जब छह नोकषायोंके साथ पुरुषवेदको क्रोधमें प्रक्षिप्त करता है तब उसके क्रोधसंज्वलनकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है। ओघस्वामित्व भी इसी प्रकार करना चाहिए। इसके अवस्थानका भंग मिथ्यात्वके समान है। इसकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जब क्रोधको मानमें प्रक्षिप्त करता है तब क्रोधकी उत्कृष्ट हानि होती है। मानकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? उसीने जब क्रोधको मानमें प्रक्षिप्त किया तब मानकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है। इसके अवस्थानका भंग मिथ्यात्वके समान है। इसकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? वही जब मानको मायामें प्रक्षिप्त करता है तब मानकी उत्कृष्ट हानि होती है। मायाकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? मानकी उत्कृष्ट विभक्तिवाले उसी जीवने जब मानको मायामें प्रक्षिप्त किया तब उसकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है। अवस्थानका भंग मिथ्यात्वके समान है। मायाकी उत्कृष्ट हानि किसके

मायं लोभे संपक्खिवदि तस्स उक्क० हाणी। लोभसंज० उक्क० वड्ढी कस्स? तस्सेव कायव्वा, विसेसाभावादो। अवट्ठाणं मिच्छत्तभंगो। हाणी उक्क० कस्स? तस्स चेव सुहुमसांपराइयस्स चरिमसमए वट्टमाणगस्स। इत्थिवेद० उक्क० वड्ढी कस्स? जो खविदकम्मंसिओ अंतोमुहुत्तेण कम्मं खवेहिदि त्ति विवरीदं गंतूण मिच्छत्तं गदो इत्थिवेद० पबद्धो तदो उक्कस्सजोगमुक्कस्सगं च संकिलेसं गदो तस्स उक्क० वड्ढी। हाणी कस्स? अण्णदरस्स गुणिदकम्मंसिओ खवणाए अब्भुट्ठिदो तेण जाधे अपच्छिमट्ठिदि-खंडयं उदयवज्जं संछुब्भमाणगं संछुद्धं ताधे उक्क० हाणी। एवं णवुंसय०। पुरिस० उक्क० वड्ढी कस्स? अण्णद० गुणिद० णवुंसयवेदोदयक्खवगस्स जाधे इत्थि-णवुंसय-वेदा पुरिसवेदम्हि संपक्खित्ता[1] ताधे उक्क वड्ढी। एवमोघसामित्तं पि णायव्वं। उक्क० अवट्ठाणं कस्स? अण्णद० असंजदसम्मादिट्ठिस्स अवट्ठिदपाओग्गसंतकम्मियस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सियाए वड्ढीए वड्ढियूणावट्ठिदस्स। उक्क० हाणी कस्स? अण्णद० गुणिदकम्मंसि० पुरिसवेदचिराणसंतकम्मं जाधे कोधम्मि संपक्खित्तं ताधे तस्स उक्क० हाणी। छण्णोकसायाणमुक्क० वड्ढी कस्स? अण्णद० गुणिदकम्मंसियस्स खवणाए अब्भुट्ठिदस्स अपुव्वकरणचरिमसमए उक्कस्सगुणसंकमेण सह उक्कस्सजोगं

होती है? जो मायाका उत्कृष्ट सत्कर्मवाला जीव जब मायाको लोभमें निक्षिप्त करेगा तब उसके मायाकी उत्कृष्ट हानि होती है। लोभसंज्वलनकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है? उसी जीवके करनी चाहिए, क्योंकि कोई विशेषता नहीं है। इसके अवस्थानका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इसकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है? वही सूक्ष्मसाम्पराय जीव जब अन्तिम समयमें विद्यमान होता है तब उसके लोभकी उत्कृष्ट हानि होती है। स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है? जो क्षपितकर्मांशिक जीव अन्तर्मुहूर्तके द्वारा कर्मका क्षय करेगा किन्तु विपरीत जाकर मिथ्यात्वको प्राप्त हो स्त्रीवेदका बन्धकर अनन्तर जिसने उत्कृष्ट योग और उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त किया उसके स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है। इसकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है? जो अन्यतर गुणित-कर्मांशिक जीव क्षपणाके लिए उद्यत हुआ। उसने जब उदयको छोड़कर अन्तिम स्थितिकाण्डकका संक्रमण करते हुए संक्रमण किया तब उसके स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट हानि होती है। इसीप्रकार नपुंसक-वेदका स्वामी जानना चाहिए। पुरुषवेदकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है? जो अन्यतर गुणित-कर्मांशिक जीव नपुंसकवेदके उदयके साथ क्षपक है वह जब स्त्रीवेद और नपुंसकवेदको पुरुषवेदमें निक्षिप्त करता है तब उसके पुरुषवेदकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है। इसीप्रकार ओघ स्वामित्व भी जानना चाहिए। इसका उत्कृष्ट अवस्थान किसके होता है? जो अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि जीव अवस्थितप्रायोग्य सत्कर्मवाला है, उत्कृष्ट योगसे युक्त है और उत्कृष्ट वृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हो अवस्थित है उसके इसका उत्कृष्ट अवस्थान होता है। इसकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है? जिस अन्यतर गुणितकर्मांशिक जीवने पुरुषवेदके पुराने सत्कर्मको जब क्रोधमें प्रक्षिप्त किया तब उसके इसकी उत्कृष्ट हानि होती है। छह नोकषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक जीव क्षपणाके लिए उद्यत हो अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें उत्कृष्ट

1. ता०प्रतौ 'संपक्खित्तो (त्ता)', आ०प्रतौ 'संपक्खित्तो' इति पाठः।

गदस्स तस्स उक्क० वड्ढी । णवरि अरदि-सोगाणमधापवत्तचरिमसमए भय-दुगुंछोदएण विणा सोदए वट्टमाणस्स । उक्क० हाणी कस्स ? अण्णद० खवगस्स गुणिदकम्मंसियस्स अपच्छिमे ट्ठिदिखंडए दुचरिमसमए वट्टमाणगस्स तस्स उक्क० हाणी । एवं मणुसपज्ज० । णवरि इत्थिवेद० हाणी छण्णोकसायाणं व भाणियव्वा । एवं चेव मणुसिणीसु वि । णवरि पुरिस०-णवुंस० छण्णोकसायाणं व भाणियव्वा । मणुस-अपज्ज० पंचिं०तिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

§ ३४६. देवगदीए देवेसु मिच्छत्त०-बारसक०-भय-दुगुंछा० उक्क० वड्ढी कस्स ? अण्णद० खविदकम्मंसियस्स जो अंतोमुहुत्तेण कम्मं खवेहदि त्ति विवरीयभावेण मिच्छत्तं गंतूण देवेसुववण्णो सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो उक्कस्सजोगमागदो उक्कस्सयं च संकिलेसं गदो तस्स उक्कस्सिया वड्ढी। तस्सेव से काले उक्कस्सयमवट्ठाणं । मिच्छत्तस्स उक्कस्सहाणी णारयभंगो । सेसाणं उक्क० हाणी कस्स ? जो गुणिद-कम्मंसिओ सम्मत्त-संजमासंजम-संजमगुणसेढीओ कादूण तदो मदो देवेसुववण्णो तस्स गुणसेढिसीसगेसु उदयमागदेसु उक्क० हाणी । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० वड्ढी कस्स ? अण्णद० गुणिदकम्मंसियस्स सम्मत्तं पडिवण्णल्लयस्स सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि गुणसंकमेण पूरेयूण से काले विज्झादं पडिहिदि त्ति तस्स उक्क० वड्ढी । सम्मत्त०

गुणसंक्रमके साथ उत्कृष्ट योगको प्राप्त हुआ उसके इनकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है। इतनी विशेषता है कि अरति और शोककी अधःप्रवृत्तके अन्तिम समयमें भय और जुगुप्साके उदयके बिना स्वोदयसे विद्यमान रहते हुए उत्कृष्ट वृद्धि होती है। इनकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो अन्यतर क्षपक गुणितकर्मांशिक जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकके द्विचरम समयमें विद्यमान है उसके इनकी उत्कृष्ट हानि होती है। इसीप्रकार मनुष्यपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट हानि छह नोकषायोंके समान कहनी चाहिए। इसीप्रकार मनुष्यिनियोंमें भी कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेद और नपुंसकवेदका भङ्ग छह नोकषायोंके समान कहना चाहिए। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है।

§ ३४६. देवगतिमें देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? जो अन्यतर क्षपितकर्मांशिक जीव अन्तर्मुहूर्तके द्वारा कर्मका क्षय करेगा किन्तु विपरीत भावसे मिथ्यात्वमें जाकर देवोंमें उत्पन्न हो और सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो उत्कृष्ट योगको और उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त हुआ उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है। तथा उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानिका भङ्ग नारकियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो गुणितकर्मांशिक जीव सम्यक्त्व, संयमासंयम और संयमसम्बन्धी गुणश्रेणियोंको करके अनन्तर मरकर देवोंमें उत्पन्न हुआ उसके गुणश्रेणिशीर्षोंके उदयमें आनेपर शेष कर्मोंकी उत्कृष्ट हानि होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? जो अन्यतर गुणितकर्मांशिक जीव सम्यक्त्वको प्राप्त हो सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको गुणसंक्रमके द्वारा पूरकर अनन्तर समयमें विध्यातको प्राप्त करेगा उसके इनकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है। सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है? जो

उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो गुणिदकम्मंसिओ दंसणमोहक्खवगो कदकरणिज्जो होदूण देवेसुववण्णो तस्स दुचरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स उक्क० हाणी। सम्मामि० उक्क० हाणी कस्स ? विज्झादपदिदस्स। अणंताणुबंधीणमुक्कस्सवड्ढि-अवट्ठाणं मिच्छत्तभंगो। हाणी ओघभंगो। इत्थि०-णवुंस० उक्क० वड्ढी कस्स ? अण्णदरो खविदकम्मंसिओ मिच्छत्तं गदो तदो उक्कस्सजोगमागदो तप्पाओग्ग-संकिलिट्ठो इत्थि-णवुंसयवेदं पबद्धो तस्स उक्क० वड्ढी। हाणी भय-दुगुंछभंगो। एवं चदुणोकसायाणं। पुरिसवेद० एवं चेव। णवरि अवट्ठाणं वेदगसम्माइट्ठिस्स। एवं सोहम्मादिउवरिमगेवज्जा त्ति। भवण०-वाणवें०-जोदिसि० एवं चेव। णवरि सम्मत्त० वड्ढि-हाणी सम्मामिच्छत्तभंगो।

§ ३५०. अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति बारसक०-पुरिसवेद-भय-दुगुंछ० उक्क० वड्ढी कस्स ? खविदकम्मंसिओ उक्कस्ससंकिलिट्ठो उक्कस्सजोगमागदो सम्मत्त-संजम-संजमासंजमगुणसेढीसु पुव्वभवसंबंधिणीसु उदयमागदासु णिग्गलिदासु तदो उक्कस्सजोगमागदस्स तस्स उक्क० वड्ढी। तस्सेव से काले उक्कस्सयमवट्ठाणं। उक्क० हाणी कस्स ? तस्सेव संजमासंजम-संजमगुणसेढीसु उदयमागदासु उक्क० हाणी। मिच्छत्त-इत्थि-णवुंस० उक्क० हाणी कस्स ? अण्णद० सम्मत्त-संजम-संजमासंजम-

---

अन्यतर गुणितकर्मांशिक दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाला जीव कृतकृत्य होकर देवोंमें उत्पन्न हुआ उसके द्विचरम समयमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करते समय सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट हानि होती है। सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? विध्यातको प्राप्त हुए जीवके होती है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। तथा इनकी हानिका भङ्ग ओघके समान है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? जिस अन्यतर क्षपितकर्मांशिक जीवने मिथ्यात्वको प्राप्त हो अनन्तर उत्कृष्ट योग और तत्प्रायोग्य संक्लेशके साथ स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका बन्ध किया उसके इनकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है। इनकी उत्कृष्ट हानिका भङ्ग भय और जुगुप्साके समान है। इसी प्रकार चार नोकषायोंका भङ्ग जानना चाहिए। पुरुषवेदका भंग इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि इसका अवस्थान वेदकसम्यग्दृष्टिके होता है। इस प्रकार सौधर्मसे लेकर उपरिमग्रैवयक तक जानना चाहिए। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्वकी वृद्धि और हानिका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है।

§ ३५०. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? जो क्षपितकर्मांशिक उत्कृष्ट संक्लेशवाला जीव उत्कृष्ट योगको प्राप्त हो पूर्व भवसम्बन्धी सम्यक्त्व, संयम और संयमासंयम गुणश्रेणियोंके उदयमें आकर गलित हो जानेपर अनन्तर उत्कृष्ट योगको प्राप्त हुआ उसके उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है। तथा उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? उसीके संयमासंयम और संयम गुणश्रेणियोंके उदयमें आ लेनेपर उत्कृष्ट हानि होती है। मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जिस अन्यतर जीवके

गुणसेढीसु त्थिउक्केण उदयमागदासु तस्स उक्क० हाणी। सम्मामिच्छ० एवं चेव। सम्मत्त-अणंताणु०४ हाणी ओघं। हस्स-रइ-अरइ-सोग० उक्क० वड्ढी कस्स ? अण्णद० संजमगुणसेढिसीसयाणि जाधे उदएण णिग्गलिदाणि ताधे उक्कस्सजोग-मागदस्स संकिलेसं च तप्पाओग्गं पडिवण्णस्स तस्स उक्क० वड्ढी। हाणी कस्स ? अण्णद० सम्मत्त-संजम-संजमासंजमगुणसेढीसु अविणट्ठासु देवेसुववण्णल्लयस्स जाधे गुणसेढिसीसगाणि उदयमागदाणि ताधे उक्क० हाणी। एवं जाव अणाहारि त्ति।

§ ३५१. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ०-सोलसक०-पुरिसवेद-भय-दुगुंछ० जह० वड्ढी कस्स ? अण्णद० असंखेज्ज०-भागेण वड्ढियूण वड्ढी हाइदूण हाणी अण्णदरत्थ अवट्ठाणं। सम्मत्त-सम्मामि०-इत्थि-णवुंस०-हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागेण वड्ढियूण वड्ढी हाइदूण हाणी। एवं सव्व-णेरइय०-सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस्सदेव जाव उवरिमगेवज्जा त्ति। णवरि अपज्जत्तएसु सम्म०-सम्मामि० वड्ढी णत्थि। पुरिसवे० सम्माइट्ठिम्मि अवट्ठिदं णायव्वं। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति बारसक०-पुरिसवेद०-भय-दुगुंछ० जहण्णवड्ढि-हाणी कस्स ? अण्णद० असंखेज्ज०भागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी।

सम्यक्त्व, संयम और संयमासंयम गुणश्रेणियोंके स्तिवुकसंक्रमणके द्वारा उदयमें आ गई हैं उसके उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट हानि होती है। सम्यग्मिथ्यात्वका भंग इसी प्रकार है। सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट हानिका भंग ओघके समान है। हास्य, रति, अरति और शोककी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? जो अन्यतर जीव संयमगुणश्रेणिशीर्षोंको जब उदयके द्वारा गला देता है तब उत्कृष्ट योग और तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त हुए उस जीवके उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है। उनकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो अन्यतर जीव सम्यक्त्व, संयम और संयमासंयम गुणश्रेणिशीर्षोंके नाश किये विना देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके जब गुणश्रेणिशीर्ष उदयको प्राप्त हुए तब उसके उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट हानि होती है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

§ ३५१. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? अन्यतर जीवके असंख्यातवें भाग वृद्धि करनेसे वृद्धि होती है, इतनी ही हानि करनेसे हानि होती है और इनमेंसे किसी एक स्थानमें अवस्थान होता है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातवें भागप्रमाण वृद्धि होकर वृद्धि और हानि होकर हानि होती है। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सब मनुष्य और सामान्य देवोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी वृद्धि नहीं है। पुरुषवेदका अवस्थितपद सम्यग्दृष्टि जीवमें जानना चाहिए। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी जघन्य वृद्धि और हानि किसके होती है ? अन्यतरके असंख्यातवें भागप्रमाण वृद्धि होकर वृद्धि

अण्णदरत्थ अवट्ठाणं। मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०४-इत्थि-णवुंस० ज० हाणी कस्स ? अण्णद०। हस्स-रइ-अरइ-सोग० जहण्णवड्ढि-हाणी कस्स ? अण्णद०। एवं जाव अणाहारि त्ति।

§ ३५२. अप्पाबहुअं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्तस्स सव्वत्थोवा उक्क० वड्ढी। अवट्ठाणं तत्तियं चेव। हाणी असंखे०गुणा। सम्मत्तस्स सव्वत्थोवा उक्क० हाणी। वड्ढी असंखेज्जगुणा। सम्मामि० सव्वत्थोवा उक्क० वड्ढी। हाणी असंखेज्जगुणा। बारसक०-भय-दुगुंछा० सव्वत्थावा उक्क० वड्ढी। अवट्ठाणं तत्तियं चेव। हाणी असंखे०गुणा। तिण्णिसंजल० सव्वत्थोवा उक्कस्सयमवट्ठाणं। वड्ढी असंखे०गुणा हाणी विसेसा०। एवं पुरिस०। लोभसंजल० सव्वत्थोव० उक्कस्सयमवट्ठाणं। हाणी असंखे०गुणा। वड्ढी असंखे०गुणा। इत्थि-णवुंस०-हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं सव्वत्थो० उक्क० वड्ढी। हाणी असंखे०गुणा।

§ ३५३ आदेसेण मिच्छत्त-सोलसक०-पुरिसवेद-भय-दुगुंछ० सव्वत्थोवा उक्क० वड्ढी अवट्ठाणं। हाणी असंखे०गुणा। सम्म०-सम्मामि० सव्वत्थोव० उक्क० वड्ढी। हाणी असंखे०गुणा। इत्थि०-णवुंस०-हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं सव्वत्थो० उक्क० वड्ढी। हाणी

और हानि होकर हानि होती है। तथा इनमेंसे किसी एक स्थानमें अवस्थान होता है। मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्मग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य हानि किसके होती है ? अन्यतरके होती है। हास्य, रति, अरति और शोककी जघन्य वृद्धि और हानि किसके होती है ? अन्यतरके होती है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

§ ३५२. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है। अवस्थान उतना ही है। उससे उत्कृष्ट हानि असंख्यातगुणी है। सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट हानि सबसे स्तोक है। उससे उत्कृष्ट वृद्धि असंख्यातगुणी है। सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है। उससे उत्कृष्ट हानि असंख्यातगुणी है। बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है। अवस्थान उतना ही है। उससे उत्कृष्ट हानि असंख्यातगुणी है। तीन संज्वलनोंका उत्कृष्ट अवस्थान सबसे स्तोक है। उससे उत्कृष्ट वृद्धि असंख्यातगुणी है। उससे उत्कृष्ट हानि विशेष अधिक है। इसी प्रकार पुरुषवेदकी अपेक्षा अल्पबहुत्व है। लोभसंज्वलनका उत्कृष्ट अवस्थान सबसे स्तोक है। उससे उत्कृष्ट हानि असंख्यातगुणी है। उससे उत्कृष्ट वृद्धि असंख्यातगुणी है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है। उससे उत्कृष्ट हानि असंख्यातगुणी है।

§ ३५३. आदेशसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थान सबसे स्तोक है। उससे उत्कृष्ट हानि असंख्यातगुणी है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है। उससे उत्कृष्ट हानि असंख्यातगुणी है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है। उससे उत्कृष्ट हानि

१. आ० प्रतौ 'उक्क० हाणी। वड्ढी असंखे०गुणा' इति पाठः।

असंखे०गुणा। एवं सव्वणेरइय०-तिरिक्ख-पंचिं०तिरिक्खतिय-देवा जाव उवरिमगेवज्जा त्ति। पंचिं०तिरिक्खअपज्ज० एवं चेव। णवरि पुरिस० इत्थिवेदभंगो। सम्मत्त-सम्मामि० णत्थि अप्पाबहुअं।

§ ३५४. मणुसगदी० मणुसाणमोघं। मणुसपज्ज० एवं चेव। एवं मणुसिणीसु। णवरि पुरिस० सव्वत्थोवं उक्क० अवट्ठाणं। हाणी असंखे०गुणा। वड्ढी असंखे०गुणा। मणुसअपज्ज० पंचिंदियतिरि०अपज्जत्तभंगो। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० सव्वत्थोवा उक्क० वड्ढी अवट्ठाणं। हाणी असंखे०गुणा। मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु ४-इत्थि-णवुंस० णत्थि अप्पाबहुअं। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं सव्वत्थो० उक्क० वड्ढी। हाणी असंखे०गुणा। एवं जाव अणाहारि त्ति।

§ ३५५. जहण्णए पयदं। दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ०-सोलसक०-पुरिसवेद-भय-दुगुंछा० जहण्णवड्ढी हाणी अवट्ठाणं सरिसं। सम्म०-सम्मामि० सव्वत्थो० जह० हाणी। वड्ढी असंखे०गुणा। इत्थिवेद-णवुंस०-चदुणोक० जहण्णवड्ढी हाणी सरिसा। एवं सव्वणेर०-सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस-देवा जाव उवरिमगेवज्जा त्ति। णवरि पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० पुरिस० इत्थिवेदेण सह भाणिदव्वा। एवं मणुस०अपज्ज०। णवरि उहयत्थ वि सम्मत्त-सम्मामि० अप्पाबहुअं

असंख्यातगुणी है। इसी प्रकार सब नारकी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक और सामान्य देवोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें इसी प्रकार भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें पुरुषवेदका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है। इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अल्पबहुत्व नहीं है।

§ ३५४. मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें ओघके समान भङ्ग है। मनुष्य पर्याप्तकोंमें इसी प्रकार भङ्ग है। इसी प्रकार मनुष्यिनियोंमें है। इतनी विशेषता है कि इनमें पुरुषवेदका उत्कृष्ट अवस्थान सबसे स्तोक है। उससे उत्कृष्ट हानि असंख्यातगुणी है। उससे उत्कृष्ट वृद्धि असंख्यातगुणी है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भंग है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थान सबसे स्तोक है। उससे उत्कृष्ट हानि असंख्यातगुणी है। मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, और नपुंसकवेदका अल्पबहुत्व नहीं है। हास्य, रति, अरति और शोककी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है। उससे उत्कृष्ट हानि असंख्यातगुणी है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

§ ३५५. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान समान हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य हानि सबसे स्तोक है। उससे जघन्य वृद्धि असंख्यातगुणी है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और चार नोकषायोंकी जघन्य वृद्धि और हानि समान है। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सब मनुष्य और समान्य देवोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें पुरुषवेदको स्त्रीवेदके साथ कहलाना चाहिए। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना जाहिए।

णत्थि। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० जहण्णवड्ढि-हाणी अवट्ठाणं सरिसं। मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०४-इत्थि-णवुंस० णत्थि अप्पाबहुअं। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं जहण्णवड्ढी हाणी सरिसा। एवं जाव०।

एवं पदणिक्खेवे त्ति समत्तं०।

§ ३५६. वड्ढिविहत्ति त्ति तत्थ इमाणि तेरस अणिओगद्दाराणि—समुक्कित्तणा जाव अप्पाबहुए त्ति। समुक्कित्तणाणु० दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ०-अट्ठक०-पुरिस० अत्थि असंखे०भागवड्ढि-हाणि-अवट्ठिदाणि असंखे०गुण-हाणी च। सम्म०-सम्मामि० अत्थि असंखे०भागवड्ढी हाणी असंखे०गुणवड्ढी हाणी अवत्त०विहत्ती। अणंताणु०४ अत्थि असंखे०भागवड्ढी हाणी संखे०भागवड्ढी संखे०-गुणवड्ढी असंखे०गुणवड्ढी हाणी अवट्ठि० अवत्त०विह०। चदुसंज० अत्थि असंखे०-भागवड्ढी हाणी संखे०गुणवड्ढी असंखे०गुणहाणी अवट्ठि०विह०। णवरि लोभसंजल० असंखेज्जगुणहाणी णत्थि। इत्थि-णवुंस० अत्थि असंखे०भागवड्ढी हाणी असंखे०-गुणहाणिविह०। हस्स-रदि-अरदि-सोग० अत्थि असंखे०भागवड्ढी हाणी। भय-दुगुंछ० अत्थि असंखे०भागवड्ढी हाणी अवट्ठि०। णवरि पुरिसवेद० संखे०गुणवड्ढि-हाणी संखे०भागवड्ढि-हाणी सम्म०-सम्मामि०-तिण्णिसंजल० संखे०गुणहाणि-संखे०भाग-

---

इतनी विशेता है कि उभयत्र अर्थात् दोनों अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अल्पबहुत्व नही है। अनुदिशासे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी जघन्य हानि और अवस्थान समान हैं। मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका अल्पबहुत्व नहीं है। हास्य, रति अरति और शोककी जघन्य वृद्धि और हानि समान हैं। इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इस प्रकार पदनिक्षेप अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ ३५६. वृद्धिविभक्तिका प्रकरण है। उसमें ये तेरह अनुयोगद्वार होते हैं—समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व तक। समुत्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, आठ कषाय और पुरुषवेदकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि, अवस्थित और असंख्यातगुणहानि है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यवृद्धि है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि, अवस्थितविभक्ति और अवक्तव्यविभक्ति है। चार संज्वलनोंकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवस्थितविभक्ति है। इतनी विशेषता है कि लोभसंज्वलनकी असंख्यातगुणहानि नहीं है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और असंख्यातगुणहानिविभक्ति है। हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानि है। भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्ति है। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेदकी संख्यातगुणवृद्धि, संख्यातगुणहानि, संख्यातभागवृद्धि और संख्यात-

हाणीओ च संभवंति । एदाओ सव्वाणिओगद्दारेसु जहासंभवमणुमग्गियव्वाओ । एवं मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु । णवरि पज्जत्त० इत्थिवेद० हस्सभंगो । मणुसिणीसु पुरिस०-णवुंस० असंखेज्जगुणहाणी णत्थि ।

§ ३५७. आदेसेण णेरइय० मिच्छ०-बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० अत्थि असंखे०भागवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० । सम्म०-सम्मामि० अत्थि असंखे०भागवड्ढि-हाणि-असंखे०गुणवड्ढि-हाणि-अवत्त० । अणंताणु०४ अत्थि असंखे०भागवड्ढि-हाणि-संखे०-भागवड्ढि-संखे०गुणवड्ढि-असंखे०गुणवड्ढि-हाणि-अवट्ठि०-अवत्त० । इत्थि-णवुंस०-हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं अत्थि असंखे०भागवड्ढि-हाणी० । एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख० । मणुसा० ओघं । देवा भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति णारयभंगो ।

§ ३५८. पंचिं०तिरि०अपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछ० अत्थि असंखे०-भागवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० । सम्म०-सम्मामि० अत्थि असंखे०भागहाणि-असंखे०गुण-हाणि० । इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं अत्थि असंखे०भागवड्ढि-हाणि० । एवं मणुसअपज्ज० । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०४-इत्थि-णवुंस० अत्थि असंखे०भागहाणि० । णवरि अणंताणु०४

भागहानि तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और तीन संज्वलनोंकी संख्यातगुणहानि और संख्यात-भागहानि भी सम्भव हैं । इनका सब अनुयोगद्वारोंमें यथासम्भव अनुमार्गण करना चाहिए । इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदका भङ्ग हास्यके समान है । तथा मनुष्यिनियोंमें पुरुषवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यात-गुणहानि नहीं है ।

§ ३५७. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्ति है । सम्यक्त्व और सम्य-ग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्ति है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि, अवस्थित और अवक्तव्यविभक्ति है । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानि है । इसीप्रकार सब नारकी और सब तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए । मनुष्योंमें ओघके समान भङ्ग है । सामान्य देव और भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है ।

§ ३५८. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्ति है । सम्यक्त्व और सम्य-ग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानि और असंख्यातगुणहानि है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानि है । इसीप्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागहानि है । इतनी

अत्थि असंखे०गुणहाणिवि० । बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० अत्थि असंखे०भागवड्ढि-हाणि०-अवट्ठि० । हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं अत्थि असंखे०भागवड्ढि-हाणि० । एवं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ३५६. सामित्ताणु० दु० णि०—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ० असंखे०भागवड्ढि० कस्स ? अण्णद० मिच्छाइट्ठिस्स । असंखे०भागहाणी कस्स ? सम्माइट्ठिस्स वा मिच्छाइट्ठिस्स वा । असंखे०गुणहाणी कस्स ? अण्णद० दंसण-मोहक्खवगस्स चरिमट्ठिदिखंडए अवगदे । अवट्ठिदं कस्स ? अण्णद० मिच्छाइट्ठिस्स । सम्मत्त०-सम्मामि० असंखे०भागवड्ढी असंखे०गुणवड्ढी अवत्त० कस्स ? अण्णद० सम्माइट्ठिस्स । असंखे०भागहाणी कस्स ? अण्णद० सम्माइट्ठिस्स वा मिच्छाइट्ठिस्स वा । असंखे०गुणहाणी कस्स ? अण्णद० दंसणमोहक्खवगस्स चरिमे ट्ठिदिखंडगे सम्मत्ते पक्खित्ते सम्मामि० असंखे०गुणहाणी उव्वेल्लणाए वा । सम्मत्तस्स असंखे०-गुणहाणी कस्स ? अण्णद० उव्वेल्लणचरिमट्ठिदिखंडगे मिच्छत्ते संपक्खित्ते ताधे । अणंताणु० असंखे०भागवड्ढी अवट्ठिदं कस्स ? अण्णद० मिच्छाइट्ठिस्स । [असंखे०-भागहाणी कस्स ? अण्णद० सम्माइट्ठिस्स मिच्छाइट्ठिस्स वा ।] संखे०भागवड्ढी संखे०-

---

विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातगुणहानि भी है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्ति है। हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानि है। इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इस प्रकार समुत्कीर्तना समाप्त हुई।

§ ३५६. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि किसके होती है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टिके होती है। असंख्यात-भागहानि किसके होती है ? सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होती है। असंख्यातगुणहानि किसके होती है ? अन्यतर दर्शनमोहनीयके क्षपकके अन्तिम स्थितिकाण्डकके अपगत होने पर होती है। अवस्थितविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टिके होती है। सम्यक्त्व और सम्य-ग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अवक्तव्यविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टिके होती है। असंख्यातभागहानि किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिथ्या-दृष्टिके होती है। असंख्यातगुणहानि किसके होती है ? जिस दर्शनमोहनीयके क्षपक अन्यतर जीवने चरम स्थितिकाण्डकको सम्यक्त्वमें प्रक्षिप्त किया है उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानि होती है। अथवा उद्वेलनाके समय होती है। सम्यक्त्वकी असंख्यातगुणहानि किसके होती है ? जिस अन्यतर जीवने उद्वेलनाके समय अन्तिम स्थितिकाण्डकको मिथ्यात्वमें प्रक्षिप्त किया है। उसके इस समय सम्यक्त्वकी असंख्यातगुणहानि होती है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यात-भागवृद्धि और अवस्थितविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टिके होती है। असंख्यात-भागहानि किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होती है। संख्यातभागवृद्धि,

गुणवड्ढी असंखे०गुणवड्ढी च कस्स ? अण्णद० अणंताणु० विसंजोएदूण मिच्छत्तं गदस्स आवलियमिच्छाइट्ठिस्स । अवत्त० कस्स ? अण्णद० पढमसमयसंजुत्तस्स । असंखे०गुणहाणी कस्स ? अण्णद० अणंताणु० विसंजोजयस्स चरिमट्ठिदिखंडए अवणिदे । अट्ठकसाय० असंखे०भागवड्ढी अवट्ठि० असंखे०भागहाणी कस्स ? अण्णद० सम्माइट्ठिस्स वा मिच्छाइट्ठिस्स वा । असंखे०गुणहाणी कस्स ? अण्णद० खवगस्स अपच्छिमे ट्ठिदिखंडए गुणसेढिसीसगेण सह आगायिदूण णिल्लेविदे । कोहसंजल० असंखे०भागवड्ढि-हाणी अवट्ठिदं अट्ठकसायभंगो । संखेज्जगुणवड्ढी कस्स ? अण्णद० पुरिसवेदो कोधे संपक्खित्तो ताधे कोधस्स संखे०गुणवड्ढी । माणस्स असंखे०भागवड्ढी हाणी अवट्ठि० कोहभंगो । संखे०गुणवड्ढी कस्स ? अण्णद० कोधस्स पुव्वसंतकम्मे माणे संपक्खित्ते ताधे तस्स संखे०गुणवड्ढी । मायाए असंखे०भागवड्ढी हाणी अवट्ठिदं माणभंगो । संखे०गुणवड्ढी कस्स ? अण्णद० माणसंजलणं जाधे मायाए संपक्खित्तं ताधे । लोभसंजलण० असंखे०भागवड्ढी हाणी अवट्ठि० मायासंजलणभंगो । संखे०-गुणवड्ढी कस्स ? अण्णद० खवगस्स मायाए पोराणसंतकम्मं जाधे लोभे संपक्खित्तं ताधे । तिण्हं संजलणाणं असंखे०गुणहाणी कस्स ? अण्णद० खवगस्स चरिम-

---

संख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणवृद्धि किसके होती है ? जिस अन्यतर जीवको अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी विसंयोजना करके मिथ्यात्वमें जाकर मिथ्यादृष्टि हुए एक आवलि हुआ है उसके होती है । अवक्तव्यविभक्ति किसके होती है ? प्रथम समयमें संयुक्त हुए अन्यतर जीवके होती है । असंख्यातगुणहानि किसके होती है ? अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करनेवाले अन्यतर जीवके अन्तिम स्थितिकाण्डकके अपगत होने पर होती है । आठ कषायोंकी असंख्यातभागवृद्धि, अवस्थितविभक्ति और असख्यातभागहानि किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होती है । असंख्यातगुणहानि किसके होती है ? जिस अन्यतर क्षपक जीवने अन्तिम स्थिति-काण्डकका गुणश्रेणिशीर्षके साथ ग्रहणकर निर्लेपन किया है उसके होती है । क्रोधसंज्वलनकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिका भङ्ग आठ कषायोंके समान है । संख्यातगुणवृद्धि किसके होती है ? जिस अन्यतर जीवने जब पुरुषवेदको क्रोधमें प्रक्षिप्त किया है तब उसके क्रोधसंज्वलनकी संख्यातगुणवृद्धि होती है । मानसंज्वलनकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिका भङ्ग क्रोधसंज्वलनके समान है । संख्यातगुणवृद्धि किसके होती है ? जिस अन्यतर जीवने क्रोधसंज्वलनके पूर्वके सत्कर्मको मानसंज्वलनमें प्रक्षिप्त किया है तब उसके उसकी संख्यातगुणवृद्धि होती है । मायासंज्वलनकी असंख्यातवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिका भङ्ग मानसंज्वलनके समान है । इसकी संख्यात-गुणवृद्धि किसके होती है ? जिस अन्यतर जीवने मानसंज्वलनको जब मायासंज्वलनमें प्रक्षिप्त किया तब उसके मायासंज्वलनकी संख्यातगुणवृद्धि होती है । लोभसंज्वलनकी असंख्यात-भागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिका भङ्ग मायासंज्वलनके समान है । इसकी संख्यातगुणवृद्धि किसके होती है ? जो अन्यतर क्षपक जीव मायासंज्वलनके प्राचीन सत्कर्मको जब लोभसंज्वलनमें प्रक्षिप्त करता है तब इसकी संख्यातगुणवृद्धि होती है । तीनों संज्वलनोंकी असंख्यातगुणहानि किसके होती है ? जो अन्यतर क्षपक चरम स्थितिकाण्डकका

ट्ठिदिखंडयं संकामेंतस्स । लोभसंजलणाए असंखे०गुणहाणी णत्थि। इत्थिवेद० असंखे०भागवड्ढी कस्स ? अण्णद० मिच्छादिट्ठिस्स । असंखे०भागहाणी कस्स ? अण्णद० सम्मादिट्ठिस्स वा मिच्छादिट्ठिस्स वा । असंखे०गुणहाणी कस्स ? अण्णद० खवगस्स चरिमट्ठिदिखंडयं संकामेंतस्स । एवं णवुंस० । पुरिसवे० असंखे०भागवड्ढि-हाणी अवट्ठिदं संजलणभंगो । णवरि अवट्ठि० सम्माइट्ठिस्स । असंखे०गुणहाणी कस्स ? अण्णद० खवगस्स पुव्वसंतकम्मं कोधे संछुभमाणगस्स । हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्ढि-हाणी कस्स ? अण्णद० सम्माइट्ठिस्स मिच्छाइट्ठिस्स वा । भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्ढि-हाणी अवट्ठिदं कस्स ? अण्णद० सम्माइट्ठिस्स मिच्छाइट्ठिस्स वा ।

§ ३६०. आदेसेण मिच्छ० असंखे०भागवड्ढी अवट्ठिदं कस्स ? अण्णद० मिच्छाइट्ठिस्स । असंखे०भागहाणी कस्स ? अण्णद० सम्माइट्ठिस्स वा मिच्छाइट्ठिस्स वा । सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागवड्ढी कस्स ? अण्णदर० सम्माइट्ठिस्स । असंखे०-भागहाणी कस्स ? अण्णद० सम्माइट्ठिस्स वा मिच्छाइट्ठिस्स वा । असंखे०गुणवड्ढी कस्स ? अण्णद० उवसमसम्माइट्ठिस्स गुणसंकमेण अंतोमुहुत्तं पूरेमाणस्स जाव से काले विज्झादं पडिहदि त्ति । असंखे०गुणहाणी कस्स ? अण्णद० उव्वेल्लमाणगस्स

संक्रमण कर रहा है उसके होती है। लोभसंज्वलनकी असंख्यातगुणहानि नहीं होती। स्त्रीवेदकी असंख्यातभागवृद्धि किसके होती है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टिके होती है। असंख्यातभागहानि किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होती है। असंख्यातगुणहानि किसके होती है ? जो अन्यतर क्षपक चरम स्थितिकाण्डकका संक्रमण कर रहा है उसके होती है। इसी प्रकार नपुंसकवेदकी अपेक्षासे स्वामित्व जानना चाहिए। पुरुषवेदकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिका भङ्ग संज्वलनके समान है। इतनी विशेपता है कि अवस्थितविभक्ति सम्यग्दृष्टिके होती है। असंख्यातगुणहानि किसके होती है ? जो अन्यतर क्षपक पहलेके सत्कर्मको क्रोधमें प्रक्षिप्त कर रहा है उसके होती है। हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानि किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होती है। भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होती है।

§ ३६०. आदेशसे मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थितविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टिके होती है। असंख्यातभागहानि किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टिके होती है। असंख्यातभागहानि किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होती है। असंख्यातगुणवृद्धि किसके होती है ? जो अन्यतर उपशमसम्यग्दृष्टि जीव गुणसंक्रमके द्वारा अन्तर्मुहूर्त तक पूरकर जब अनन्तर समयमें विध्यात-संक्रमको प्राप्त करेगा तब उसके असंख्यातगुणवृद्धि होती है। असंख्यातगुणहानि किसके

चरिमट्ठिदिखंडगे अवगदे। अवत्तव्वं कस्स ? अण्णद० पढमसमयसम्माइट्ठिस्स। अणंताणु०४ असंखे०भागवड्ढी अवट्ठि० कस्स ? अण्णद० मिच्छाइट्ठिस्स। असंखे०-भागहाणी कस्स ? अण्ण० सम्माइट्ठिस्स वा मिच्छाइट्ठिस्स वा। संखे०भागवड्ढी संखे०गुणवड्ढी असंखे०गुणवड्ढी कस्स ? अण्णद० अणंताणु० विसंजोएदूण संजुत्तस्स आवलिगमिच्छादिट्ठिस्स। असंखे०गुणहाणी कस्स ? अण्णद० अणंताणु० विसंजो-जेंतस्स अपच्छिमे ट्ठिदिखंडगे णिल्लेविदे। अवत्त० कस्स ? अण्णद० पढमसमय-संजुत्तस्स। बारसक०-भय-दुगुंछा० [असंखे०] भागवड्ढी हाणी अवट्ठि० कस्स ? अण्णद० सम्माइट्ठिस्स वा मिच्छाइट्ठिस्स वा। इत्थि-णवुंस० असंखे०भागवड्ढी कस्स ? अण्णद० मिच्छाइट्ठिस्स। असंखे०भागहाणी कस्स ? अण्णद० सम्माइट्ठि० मिच्छाइट्ठिस्स वा। पुरिस० असंखे०भागवड्ढी हाणी कस्स ? अण्णद० सम्माइट्ठि० मिच्छाइट्ठिस्स वा। अवट्ठिदं कस्स ? अण्णद० सम्माइट्ठिस्स। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्ढी हाणी कस्स ? अण्णद० सम्मा० मिच्छाइट्ठिस्स वा। एवं सत्तसु पुढवीसु तिरिक्खगदितिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्ख३ देवा भवणादि जाव उवरिम-गेवज्जा त्ति।

§ ३६१. पंचिं०तिरि०अपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछा० असंखे०-

होती है ? जो अन्यतर उद्वेलना करनेवाला जीव चरम स्थितिकाण्डकको बिता चुका है उसके होती है। अवक्तव्यविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर प्रथम समयवर्ती सम्यग्दृष्टिके होती है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थितविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टिके होती है। असंख्यातभागहानि किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिथ्या-दृष्टिके होती है। संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणवृद्धि किसके होती है ? जो अन्यतर जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके अनन्तर संयुक्त होकर एक आवलि कालतक मिथ्यादृष्टि रहा है उसके होती है। असंख्यातगुणहानि किसके होती है ? अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाले जिस अन्यतर जीवने अन्तिम स्थितिकाण्डकका निर्लेपन किया है उसके होती है। अवक्तव्यविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर जीवके संयुक्त होनेके प्रथम समयमें होती है। बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यात-भागहानि और अवस्थितविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होती है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागवृद्धि किसके होती है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टिके होती है। असंख्यातभागहानि किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होती है। पुरुषवेदकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानि किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होती है। अवस्थितविभक्ति किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टिके होती है। हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानि किसके होती है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होती है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें तथा तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, सामान्य देव और भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए।

§ ३६१. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी

भागवड्डी हाणी अवट्टि० सम्मत्त-सम्मामि० असंखे०भागहाणी असंखे०गुणहाणी सत्तणोक० असंखे०भागवड्डि-हाणी कस्स ? अण्णद०। णवरि सम्मत्त-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी क० ? अण्णद० अपच्छिमट्ठिदिखंडयं गालेमाणस्स।

§ ३६२. मणुसा० ओघं। एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु। णवरि मणुसपज्ज० इत्थिवेद० छण्णोकसायभंगो। मणुसिणीसु पुरिस-णवुंस० छण्णोकसायभंगो। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति दंसणतिय-अणंताणु०चउक्क०-इत्थि०-णवुंस० असंखे०-भागहाणी कस्स ? अण्णद०। अणंताणु०४ असंखे०गुणहाणी कस्स ? अण्णद० अणंताणु० विसंजोए तस्स अपच्छिमे ट्ठिदिखंडए गुणसेढिसीसगेण सह आगाइदूण णिल्लेविदे। बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्डी हाणी अवट्ठिदं हस्स-रइ--अरइ--सोगाणं असंखे०भागवड्डी हाणी कस्स ? अण्णदरस्स। एवं जाव अणाहारि त्ति।

§ ३६३. कालाणुगमेण दुविहो णिद्दे सो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्तस्स असंखे०भागवड्डी० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। हाणी० जह० एगस०, उक्क० वेछावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि। असंखे०गुणहाणी०

असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्ति, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानि और असंख्यातगुणहानि तथा सात नोकषायोंकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानि किसके होती है। अन्यतरके होती है। इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानि किसके होती है ? अन्तिम स्थितिकाण्डकको गलानेवाले अन्यतरके होती है।

§ ३६२. मनुष्योंमें ओघके समान भङ्ग है। इसीप्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यपर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदका भङ्ग छह नोकषायोंके समान है। मनुष्यिनियोंमें पुरुषवेद और नपुंसकवेदका भङ्ग छह नोकषायोंके समान है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें तीन दर्शनमोहनीय, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागहानि किसके होती है ? अन्यतरके होती है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातगुणहानि किसके होती है ? अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाला जो अन्यतर जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकको गुणश्रेणिशीर्षके साथ ग्रहण कर निर्लेपन करता है उसके होती है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी असंख्यातवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्ति तथा हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानि किसके होती है ? अन्यतरके होती है। इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इसप्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ।

§ ३६३. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल

जह० उक्क० एगस० । अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० सत्तट्ठ समया । सम्मत्त०-सम्मामि० असंखे०भागवड्ढी० जह० उक्क० अंतोमु०। असंखे०भागहाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० वेछावट्ठिसाग० पलिदो० असंखे०भागेण सादिरेयाणि । असंखे०गुणवड्ढी० जह० उक्क० अंतोमु० । असंखे०गुणहाणी० अवत्त० जह० उक्क० एगस० । अणंताणु० असंखे०भागवड्ढी० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । हाणी० जह० एगस०, उक्क० वेछावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि। संखे०भागवड्ढी० संखे०गुणवड्ढी० जह० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । असंखे०गुणवड्ढी० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० सत्तट्ठ समया । अवत्त० असंखे०गुणहाणी० जहण्णुक्क० एगस० । अट्ठकसाय० असंखे०भागवड्ढी० हाणी० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० सत्तट्ठ समया । असंखे०-गुणहाणी० जह० उक्क० एगस० । कोह-माण-मायासंजल० असंखे०भागवड्ढी० हाणी० अवट्ठि० अपच्चक्खाणभंगो। संखे०गुणवड्ढी० असंखे०गुणहाणी० जह० उक्क० एगस०। एवं लोभसंजल० । णवरि असंखे०गुणहाणी णत्थि । इत्थि० असंखे०भागवड्ढी० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । असंखे०भागहा० जह० एगस०, उक्क० वेछावट्ठिसागरो०

साधिक दो छयासठ सागरप्रमाण है। असंख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात आठ समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। असंख्यातभागहानिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग अधिक दो छयासठ सागर है। असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर है। संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात आठ समय है। अवक्तव्यविभक्ति और असंख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। आठ कषायोंकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात आठ समय है। असंख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। क्रोध, मान और मायासंज्वलनकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिका भङ्ग अप्रत्याख्यान कषायके समान है। संख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। इसीप्रकार लोभसंज्वलनकी अपेक्षासे काल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसकी असंख्यातगुणहानि नहीं है। स्त्रीवेदकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक दो

सादिरेयाणि । असंखे०गुणहाणी० जह० उक्क० एगस० । णवुंस० असंखे०भागवड्ढी० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । असंखे०भागहाणी० जह० एगस०, उक्क० वेछावट्ठि-सागरो० तीहि पलिदो० सादिरेयाणि । असंखे०गुणहाणी० जह० उक्क० एगस० । पुरिस० असंखे०भागवड्ढी० हा० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। असंखे०-गुणहाणी० जह० उक्क० एगस० । अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० सत्तट्ठ समया । हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्ढी० हाणी० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्ढी० हा० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० सत्तट्ठ समया ।

§ ३६४. आदेसेण णेरइय० मिच्छ० असंखे०भागवड्ढी० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । असंखे०भागहाणी० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० सत्तट्ठ समया । बारसक०-भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्ढी० हा० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० सत्तट्ठ समया । सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागवड्ढी० जह० उक्क० अंतोमु० । हाणी० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । असंखे०गुणवड्ढी०

छयासठ सागर है । असंख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । नपुंसकवेदकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन पल्य अधिक दो छयासठ सागर है । असंख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । पुरुषवेदकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । असंख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात आठ समय है । हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्तातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात आठ समय है ।

§ ३६४. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है । अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात आठ समय है । बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात आठ समय है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त

जह० उक्क० अंतोमु० । असंखे०गुणहाणी० अवत्त० जह० उक्क० एगस० । अणंताणु०४ असंखे०भागवड्ढी० अवट्ठि० मिच्छत्तभंगो । हाणी० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू० । संखे०भागवड्ढी० संखे०गुणवड्ढी० जह० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०-भागो । असंखे०गुणवड्ढी० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । असंखे०गुणहाणी० अवत्त० ज० उक्क० एगस० । इत्थि०-णवुंस० असंखे०भागवड्ढी० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । हाणी० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । पुरिस० असंखे०भागवड्ढी० हाणी० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० सत्तट्ठ समया । चदुणोक० ओघं । एवं सत्तसु पुढवीसु । णवरि जम्हि तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि तम्हि सगट्ठिदी देसूणा । सत्तमपुढविवज्जासु मिच्छ०-अणंताणु० सगट्ठिदी ।

§ ३६५. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छ० असंखे०भागवड्ढी० अवट्ठि० ओघं । असंखे०भागहाणी० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरेयाणि । बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्ढी० हाणी० अवट्ठि० ओघं । सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागवड्ढी० जह० उक्क० अंतोमु० । असंखे०भागहा० ज० एगस०,

---

है । असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थितिविभक्तिका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है । असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है । संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है । पुरुषवेदकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यात-भागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात आठ समय है । चार नोकषायोंका भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि जहाँ पर कुछ कम तेतीस सागर कहा है वहाँ पर कुछ कम अपनी अपनी स्थिति कहनी चाहिए । तथा सातवीं पृथिवीको छोड़कर शेषमें मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपनी अपनी स्थिति कहनी चाहिए ।

§ ३६५. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थित-विभक्तिका भङ्ग ओघके समान है । असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है । बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिका भङ्ग ओघके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक

उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरेयाणि। असंखे०गुणवड्डी० जह० उक्क० अंतोमु०। असंखे०गुणहा० अवत्त० ज० उक्क० एगस०। अणंताणु० असंखे०भागवड्डी० अवट्ठि० ओघं। असंखे०भागहाणी० जह० एगस०, उक्क० तिण्णिपलिदो० सादिरेयाणि। संखेज्जभागवड्डी० संखे०गुणवड्डी० ज० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। असंखे०गुणवड्डी० ज० एगस०, उक्क० आवलिया समयूणा। असंखे०गुणहा० अवत्त० ज० उक्क० एगस०। इत्थि० असंखे०भागवड्डी० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। असंखे०भागहाणी० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि। एवं णवुंस०। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्डी० हाणी० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। एवं पंचिंदियतिरिक्ख०३। णवरि जोणिणीसु इत्थि-णवुंस० असंखेभागहा० तिण्णि पलिदो० देसूणाणि।

§ ३६६. पंचिं०तिरिक्खअपज्ज० मिच्छत्त०-सोलसक०-भय-दुगुंछा० असंखे० भागवड्डि-हाणी० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० सत्तट्ठ समया। सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागहा० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०-पुधत्तं। असंखे०गुणहा० जह० उक्क० एगस०। सत्तणोक० असंखे०भागवड्डि-हाणि० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०।

तीन पल्य है। असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका भङ्ग ओघके समान है। असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है। संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भाग-प्रमाण है। असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एक समय कम आवलिप्रमाण है। असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। स्त्रीवेदकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन पल्य है। इसीप्रकार नपुंसकवेदकी अपेक्षासे काल जानना चाहिए। हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यात-भागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसीप्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है।

§ ३६६. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्याभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात आठ समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त पृथक्त्वप्रमाण है। असंख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। सात नोकषायोंकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य काल

§ ३६७. मणुसगदि० मणुस० मिच्छ० असंखे०भागवड्ढि-अवट्ठि० ओघं । असंखे०भागहाणी० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरेयाणि । असंखे०-गुणहाणी० ज० उक्क० एगस० । सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागवड्ढी० जह० उक्क० अंतोमुहुत्तं । असंखे०भागहा० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडि-पुधत्तेणब्भहियाणि । असंखे०गुणवड्ढी० जह० उक्क० अंतोमु० । असंखे०गुणहाणी० अवत्त० जह० उक्क० एगस० । अणंताणु०४ असंखे०भागवड्ढी० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । हाणी० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरेयाणि । संखे०भागवड्ढि-संखे०गुणवड्ढी० जह० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । असंखे०-गुणवड्ढी० जह० एगस०, उक्क० आवलिया समयूणा । असंखे०गुणहाणि-अवत्त० जह० उक्क० एगस० । अट्ठक०-पुरिसवेद० असंखे०भागवड्ढि हाणी० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । असंखे०गुणहाणी० जह० उक्क० एगस० । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० सत्तट्ठ समया । तिण्णिसंज० असंखे०भागवड्ढि-हाणी० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । संखे०गुणवड्ढि-असंखे०गुणहाणी० जह० उक्क० एगसमओ । अवट्ठि० ओघं । एवं लोहसंज० । णवरि असंखे०गुणहाणी

एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ३६७. मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थित-विभक्तिका भङ्ग ओघके समान है। असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है। असंख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। असंख्यात-गुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है। संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एक समय कम एक आवलि है। असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। आठ कषाय और पुरुषवेदकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग-प्रमाण है। असंख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात आठ समय है। तीन संज्वलनोंकी असंख्यात-भागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। संख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थितविभक्तिका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार लोभसंज्वलनकी अपेक्षासे काल

णत्थि। इत्थि० असंखे०भागवड्डी० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। असंखे०-भागहाणी० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरेयाणि। असंखे०गुणहाणी० ज०० उक्क० एगस०। एवं णवुंस०। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्डि-हाणी० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। भय-दुगुंछ० असंखे०भागवड्डि-हाणी० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अवट्टि० ज० एगस०, उक्क० सत्तट्ठ समया। मणुसपज्ज० एवं चेव। णवरि इत्थिवेद० असंखे०गुणहाणी णत्थि। मणुसिणीसु एवं चेव। णवरि पुरिस०-णवुंस० असंखे०गुणहाणी णत्थि। इत्थि-णवुंस० असंखे०भागहाणी० तिण्णि पलिदो० देसूणाणि। मणुसअपज्ज० पंचिंदिय-तिरिक्खअपज्जत्तभंगो।

§ ३६८. देवगदीए देवेसु मिच्छत्त० असंखे०भागवड्डी० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। असंखे०भागहा० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि। अवट्टि० ओघं। सम्मत्त०-सम्मामि० असंखे०भागवड्डी० जह० उक्क० अंतोमु०। असंखे०भागहा० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो०। असंखे०-गुणवड्डी० जह० उक्क० अंतोमु०। असंखे०गुणहाणि-अवत्त० ज० उक्क० एगस०। अणंताणु०४ असंखे०भागवड्डि-अवट्टि० ओघं। असंखे०भागहाणी० ज० एगस०,

---

जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणहानि नहीं है। स्त्रीवेदकी असंख्यातभाग-वृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है। असंख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। इसी प्रकार नपुंसकवेदकी अपेक्षासे काल जानना चाहिए। हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात आठ समय है। मनुष्यपर्याप्तकोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदकी असंख्यातगुण-हानि नहीं है। मनुष्यिनियोंमें इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातगुणहानि नहीं है। तथा स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है।

§ ३६८. देवगतिमें देवोंमें मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। अवस्थितविभक्तिका भङ्ग ओघके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। असंख्यात-गुणवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्ति-का जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका भङ्ग ओघके समान है। असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है

उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । संखे०भागवड्डि०-संखे०गुणवड्डी० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । असंखे०गुणवड्डी० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । असंखे०गुणहाणि-अवत्त० ज० उक्क० एगस० । अवट्ठि० ओघं । बारसक०-पुरिसवेद० भय-दुगुंछ० असंखे०भागवड्डि-हाणी० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०-भागो । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० सत्तट्ठ समया । इत्थि०-णवुंस० असंखे०-भागवड्डी० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । असंखे०भागहाणी० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्डि-हाणी० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । एवं भवणवासियादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति । णवरि जत्थ तेत्तीसं सागरो० तत्थ सगट्ठिदी भाणियव्वा ।

§ ३६६. अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति मिच्छत्त० असंखेज्जभागहाणी० जहण्णुक्क० जहण्णुक्कस्सट्ठिदीओ । अणंताणु०४ असंखे०भागहाणी० जह० आवलिया दुसमयूणा, उक्क० सगट्ठिदीओ । असंखे०गुणहाणी० जह० उक्क० एगस० । सम्म० असंखे०भागहा० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदीओ । सम्मामि० असंखे०भागहाणी० जह० जहण्णट्ठिदी, उक्क० उक्कस्सट्ठिदीओ । बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० असंखे०-

और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थितविभक्तिका भङ्ग ओघके समान है । बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात आठ समय है । स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार भवनवासी देवोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि जहां पर तेतीस सागर कहा है वहां पर अपनी अपनी स्थिति कहनी चाहिए ।

§ ३६६. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागहानिका जघन्य काल दो समय कम एक आवलि है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । असंख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । सम्यक्त्व की असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानिका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी असंख्यात-

भागवड्डि० हाणी० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अवट्ठि० ओघं। इत्थि-णवुंस० असंखे०भागहाणी० जह० जहण्णट्ठिदी, उक्क० उक्कस्सट्ठिदी। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्डी० हाणी० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। एवं जाव अणाहारि त्ति।

§ ३७०. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्त० असंखे०भागवड्डी० ज० एगस०, उक्क० वेछावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि। असंखे०भागहा० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। असंखे०गुणहाणी० णत्थि अंतरं। अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० असंखे० लोगा। सम्मत्त-सम्मामि० असंखे०भागवड्डी० जह० पलिदो० असंखे०भागो, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं। असंखे०भागहाणी० जह० एगस०, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं। असंखे०गुणवड्डि-हाणि-अवत्त० जह० पलिदो० असंखे०भागो, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं। दोण्ह-मसंखे०गुणवड्डी० सम्मामि० असंखे०गुणहाणी० जह० अंतोमुहुत्तं। अणंताणु०४ असंखे०भागवड्डि-हाणी० जह० एगसमओ, उक्क० वेछावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि। अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। संखे०भागवड्डि-संखे०गुणवड्डि-

---

भागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थितविभक्तिका भङ्ग ओघके समान है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेद-की असंख्यातभागहानिका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण है। हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

§ ३७०. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो छयासठ सागर है। असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। असंख्यातगुणहानिका अन्तरकाल नहीं है। अवस्थित-विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। दोनोंकी असंख्यातगुणवृद्धिका और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो छयासठ सागर है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट

असंखे०गुणवड्ढि--हाणि--अवत्त० जह० अंतोमु० उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं । अट्ठकसा० असंखे०भागवड्ढि-हाणी० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०-भागो । असंखे०गुणहाणी० णत्थि अंतरं । अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । एवं चदुसंजलणाणं । णवरि असंखे०गुणहाणि-संखे०गुणवड्ढी० णत्थि अंतरं । लोहसंज० असंखे०गुणहाणी णत्थि । इत्थि० असंखे०भागवड्ढी० ज० एगस०, उक्क० वेछावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि । असंखे०भागहाणी० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । असंखे०गुणहाणी० णत्थि अंतरं । पुरिस० असंखे०भागवड्ढि-हाणी० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं । असंखे०गुणहाणी० णत्थि अंतरं । णवुंस० असंखे०भागवड्ढी० ज० एगस०, उक्क० वेछावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि तीहि पलिदो० देसूणाणि । असंखे०भागहा० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । असंखे०गुणहाणी० णत्थि अंतरं । हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्ढि-हाणी० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । भय-दुगुंछा० असंखे०-भागवड्ढि-हाणी० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा ।

अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । आठ कषायोंकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानि-का जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । असंख्यात-गुणहानिका अन्तरकाल नहीं है । अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । इसी प्रकार चार संज्वलनोंकी अपेक्षासे अन्तरकाल जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणहानि और संख्यातगुणवृद्धिका अन्तरकाल नहीं है । लोभसंज्वलनकी असंख्यातगुणहानि नहीं है । स्त्रीवेदकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो छ्यासठ सागरप्रमाण है । असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । असंख्यातगुणहानिका अन्तर-काल नहीं है । पुरुषवेदकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । असंख्यातगुणहानिका अन्तरकाल नहीं है । नपुंसकवेदकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छ्यासठ सागरप्रमाण है । असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । असंख्यातगुणहानिका अन्तरकाल नहीं है । हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है ।

§ ३७१. आदेसेण णेरइय० मिच्छ० असंखे०भागवड्ढी० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। एवमवट्टि०। असंखे०भागहाणी० जह० एयस०, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो। सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागवड्ढि-असंखे०गुणवड्ढि-हाणि-अवत्त० ज० पलिदो० असंखे०भागो, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। असंखे०-भागहा० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। अणंताणु०४ असंखे०-भागवड्ढी० अवट्टि० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। संखे०भाग-वड्ढी० संखे०गुणवड्ढी० असंखे०गुणवड्ढी० हाणी० अवत्त० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्ढी० हा० ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अवट्टि० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। इत्थि०-णवुंस० असंखे०भागवड्ढी० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। असंखे०भागहाणी० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्ढी० हाणी० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। एवं सत्तसु पुढवीसु। णवरि जम्हि तेत्तीसं सागरोवमाणि तम्हि सगट्ठिदी देसूणा।

§ ३७२. तिरिक्खगई० तिरिक्खा० मिच्छ० असंखे०भागवड्ढी० जह० एगस०,

---

§ ३७१. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। इसी प्रकार अवस्थितविभक्तिका अन्तर-काल है। असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यात-गुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यात-भागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थित-विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्त-र्मुहूर्त है। हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जहां पर कुछ कम तेतीस सागर कहा गया है वहां पर कुछ कम अपनी अपनी स्थिति कहनी चाहिए।

§ ३७२. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य अन्तर एक

उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरेयाणि। असंखे०भागहा० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागवड्ढी० जह० पलिदो० असंखे०भागो, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं। असंखे०भागहा० ज० एगस०, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टा। असंखे०गुणवड्ढी० हा० अवत्त० ज० पलिदो० असंखे०भागो, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं। अणंताणु०४ असंखे०भागवड्ढी० हा० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरेयाणि। हाणीए देसूणा। संखेज्जभागवड्ढी० संखे०गुणवड्ढी० असंखे०गुणवड्ढी० हाणी० अवत्त० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० उवड्ढपोग्गल०। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। बारसक०-भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्ढी० हाणी० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० असंखेजा लोगा। एवं पुरिस०। णवरि अवट्ठि० ओघं। इत्थि० असंखे०भागवड्ढि० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसूणाणि। असंखे०भागहा० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। णवुंस० असंखे०-भागवड्ढी० ज० एगस०, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। असंखे०भागहा० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्ढी० हाणी० ज० एगस०,

---

समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है। असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यात-भागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है। मात्र असंख्यातभागहानिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। इसी प्रकार पुरुषवेदकी अपेक्षासे अन्तरकाल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अवस्थितविभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है। स्त्रीवेदकी असंख्यात-भागवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। असंख्यात-भागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। नपुंसकवेदकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक

उक्क० अंतोमु० ।

§ ३७३. पंचिंदियतिरिक्खतिय३ मिच्छ० असंखे०भागवड्डी० ज० एगस०, उक्क० तिण्णिपलिदो० सादिरेयाणि । असंखे०भागहाणी० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागवड्डी० असंखे०गुणवड्डी० हाणी० अवत्त० ज० पलिदो० असंखे०भागो, उक्क० तिण्णिपलिदो० पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि । एवमसंखे०भागहाणी० । णवरि जह० एगस० । अणंताणु०४ असंखे०भागवड्डी० हा० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरेयाणि । हाणी० देसूणा । अवट्ठि० मिच्छत्तभंगो । संखे०भागवड्डी० संखे०गुणवड्डी० असंखे०गुणवड्डी० हा० अवत्त० ज० अंतोमु०, उक्क० तिण्णिपलिदो० पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि । बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्डी० हाणी० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । इत्थि० असंखे०भागवड्डी० जह० एगस०, उक्क० तिण्णिपलिदो० देसूणाणि । असंखे०भागहाणी० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । णवुंस० असंखे०भागवड्डी० जह० एगस०, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा । असंखे०-

समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ३७३. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है । असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है । इसी प्रकार असंख्यातभागहानिका अन्तर काल जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इसका जघन्य अन्तर एक समय है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है । मात्र असंख्यातभागहानिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है । अवस्थितविभक्तिका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है । संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है । बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । स्त्रीवेदकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है । असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । नपुंसकवेदकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है । असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय

भागहा० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्ढी० हाणी० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० ।

§ ३७४. पंचिं०तिरि०अपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछा० असंखे०-भागवड्ढी० हाणी० अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं । सम्मत्त-सम्मामि० असंखे०भागहा० जह० उक्क० एगस० । असंखे०गुणहाणी० णत्थि अंतरं । सत्तणोक० असंखेज्जभागवड्ढी० हा० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० ।

§ ३७५. मणुसगदि० मणुस० पंचिं०तिरिक्खभंगो । णवरि मिच्छ०-एक्कारस०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस० असंखे०गुणहाणी० चदुसंजल० असंखे०गुणवड्ढी० णत्थि अंतरं । सम्मत्त-सम्मामि० असंखे०गुणवड्ढी० सम्मामि० असंखे०गुणहा० जह० अंतोमु० । मणुसपज्ज० एवं चेव । णवरि इत्थि० असंखे०गुणहाणी णत्थि । मणुसिणीसु एवं चेव । णवरि पुरिस०-णवुंस० असंखे०गुणहाणी णत्थि । मणुसअपज्ज० पंचिं०तिरिक्ख०अपज्जत्तभंगो ।

§ ३७६. देवगदि० देवा० मिच्छ० असंखे०भागवड्ढी० अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि । असंखे०भागहाणी० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागवड्ढी० असंखे०गुणवड्ढी०

है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ३७४. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । असंख्यातगुणहानिका अन्तरकाल नहीं है । सात नोकषायोंकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ३७५. मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्व, ग्यारह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातगुणहानि और चार संज्वलनोंकी असंख्यातगुणवृद्धिका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणवृद्धि और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । मनुष्यपर्याप्तकोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमें स्त्रीवेदकी असंख्यातगुणहानि नहीं है । मनुष्यिनियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमें पुरुषवेदकी असंख्यातगुणहानि नहीं है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है ।

§ ३७६. देवगतिमें देवोंमें मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सम्यक्त्व

हा० अवत्त० ज० पलिदो० असंखे०, भागहा० ज० एगस०, उक्क० दो वि एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि। अणंताणु०४ असंखे०भागवड्ढी० हाणी० अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० एक्कतीसं सागरो० देसूणाणि। संखे०भागवड्ढी० संखे०गुणवड्ढी० असंखे०-गुणवड्ढी० हाणी० अवत्त० ज० अंतोमु०, उक्क० एक्कतीसं० सागरो० देसूणाणि। बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्ढी० हा० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। इत्थि-णवुंस० असंखे०भागवड्ढी० जह० एगस०, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि। असंखे०भागहा० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०-भागवड्ढी० हाणी० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। एवं भवणादि जाव उवरिम-गेवज्जा त्ति। णवरि जम्हि एक्कत्तीसं जम्हि य तेत्तीसं तम्हि सगट्ठिदीओ भाणिदव्वाओ।

§ ३७७. अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-इत्थि-णवुंस० असंखे०भागहाणी० णत्थि अंतरं। अणंताणु०४ असंखे०भागहा० ज० उक्क० एगसमओ, बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछ० असंखे०भागवड्ढि-हा० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अवट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा।

और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण और एक समय है तथा उत्कृष्ट अन्तर दोनों ही कुछ कम इकतीस सागर है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यात-भागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यात-भागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार भवन-वासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जहां पर इकतीस सागर और जहां पर तेतीस सागर कहा है वहां वर अपनी अपनी स्थिति कहनी चाहिए।

§ ३७७. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागहानिका अन्तरकाल नहीं है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी असंख्याभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और

हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्ढि-हाणी० जह० एगस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं। एवं जाव अणाहारि त्ति।

§ ३७८. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ० असंखे०भागवड्ढि-हा०-अवट्ठि० णियमा अत्थि। सिया एदे च असंखे०गुणहाणिविहत्तिओ च। सिया एदे च असंखे०गुणहा०विहत्तिया च। एवमट्ठकसाय०। सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागहा० णियमा अत्थि। सेसपदाणि भजियव्वाणि। अणंताणु०४ असंखे०भागवड्ढि-हा०-अवट्ठि० णियमा अत्थि। सेसपदाणि भजियव्वाणि। चदुसंज० एवं चेव। इत्थि०-णवुंस० असंखे०भागवड्ढि-हा० णियमा अत्थि। सिया एदे च असंखे०गुणहा०विहत्तिओ च। सिया एदे च असंखे०-गुणहाणिविहत्तिया च। पुरिस० असंखे०भागवड्ढि-हाणि० णियमा अत्थि। सेसपदाणि भयणिज्जाणि। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्ढि-हाणि० णियमा अत्थि। भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० णियमा अत्थि।

§ ३७९. आदेसेण णेरइय० मिच्छत्त-बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्ढि-हाणि० णियमा अत्थि। सिया एदे च अवट्ठिओ च। सिया एदे च

उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यात भागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ।

§ ३७८. नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्ग विचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्ति-वाले जीव नियमसे हैं। कदाचित् ये जीव हैं और असंख्यातगुणहानिविभक्तिवाला एक जीव है। कदाचित् ये जीव हैं और असंख्यातगुणहाणिविभक्तिवाले नाना जीव हैं। इसी प्रकार आठ कषायोंकी अपेक्षा भङ्ग जानना चाहिए। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानिवाले जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। चार संज्वलनोंकी अपेक्षा इसी प्रकार भङ्ग है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीव नियमसे हैं। कदाचित् ये जीव हैं और असंख्यातगुणहानिवाला एक जीव है। कदाचित् ये जीव हैं और असंख्तातगुणहानिवाले अनेक जीव हैं। पुरुषवेदकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीव नियमसे हैं। भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्ति-वाले जीव नियमसे हैं।

§ ३७८. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीव नियमसे हैं। कदाचित् ये जीव हैं और

अवट्ठिदा च। सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागहाणि० णियमा अत्थि। सेसपदाणि भयणिज्जाणि। अणंताणु०४ असंखे०भागवड्डि-हाणि० णियमा अत्थि। सेसपदाणि भयणिज्जाणि। इत्थि०-णवुंस०-हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्डि-हाणि० णियमा अत्थि। एवं सव्वणेरइय० पंचिंदियतिरिक्ख०३ देवगदीए देवा भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति।

§ ३८०. तिरिक्खगईए तिरिक्खा० मिच्छत्त-बारसक०-भय-दुगुंछा० असंखे०-भागवड्डि-हाणि-अवट्ठिदा णियमा अत्थि। सम्म०-सम्मामि असंखे०भागहा० णियमा अत्थि। सेसपदा भयणिज्जा। अणंताणु०४ असंखे०भागवड्डि-हाणि-अवट्ठि० णियमा अत्थि। सेसपदा भयणिज्जा। इत्थि-णवुंस०-चदुणोक० असंखे०भागवड्डि-हा० णियमा अत्थि। पुरिस० असंखे०भागवड्डि-हाणि० णियमा अत्थि। सिया एदे च अवट्ठिविहत्तिओ च। सिया एदे च अवट्ठिदविहत्तिया च।

§ ३८१. पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछा० असंखे०-भागवड्डि-हाणि० णियमा अत्थि। सिया एदे च अवट्ठिदविहत्तिओ च। सिया एदे च अवट्ठिदविहत्तिया च। सम्मत्त-सम्मामि० असंखे०भागहा० णियमा अत्थि। सिया

अवस्थितविभक्तिवाला एक जीव है, कदाचित् ये जीव हैं और अवस्थितविभक्तिवाले नाना जीव हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानिवाले जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीव नियमसे हैं। इसीप्रकार सब नारकी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, देवगतिमें देव और भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए।

§ ३८०. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानिवाले जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और चार नोकषायोंकी असंख्यात-भागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीव नियमसे हैं। पुरुषवेदकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीव नियमसे हैं। कदाचित् ये जीव हैं और अवस्थितविभक्तिवाला एक जीव है, कदाचित् ये जीव हैं और अवस्थितविभक्तिवाले नाना जीव हैं।

§ ३८१. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीव नियमसे हैं। कदाचित् ये जीव हैं और अवस्थितविभक्तिवाला एक जीव है, कदाचित् ये जीव हैं और अवस्थितविभक्तिवाले नाना जीव हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानिवाले जीव नियमसे हैं। कदाचित् ये

एदे च असंखे०गुणहाणिविहत्तिओ च। सिया एदे च असंखे०गुणहाणिविहत्तिया च। सत्तणोक० असंखे०भागवड्डि-हाणि० णियमा अत्थि।

§ ३८२. मणुसगदी० मणुसा० मिच्छ०--सोलसक०--पुरिस०--भय--दुगुंछ० असंखे०भागवड्डि-हाणि० णियमा अत्थि। सेसपदा भयणिज्जा। सम्मत्त०-सम्मामि० असंखे०भागहा० णियमा अत्थि। सेसपदा भयणिज्जा। इत्थि०--णवुंस० अत्थि असंखे०भागवड्डि-हाणिविहत्तिया। सिया एदे च असंखे०गुणहाणिविहत्तिओ च। सिया एदे च असंखे०गुणहाणिविहत्तिया च। हस्स--रइ--अरइ--सोगाणं असंखे०भागवड्डि-हाणि० णियमा अत्थि। मणुसपज्ज० एवं चेव। णवरि इत्थिवेद० असंखे०गुणहाणि० णत्थि। एवं चेव मणुसिणीसु। णवरि पुरिस०-णवुंस० असंखे०गुणहाणि० णत्थि। मणुसअपज्ज० अट्ठावीसं पयडीणं सव्वपदा भयणिज्जा।

§ ३८३. अणुदिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्डि-हाणि० णियमा अत्थि। सिया एदे च अवट्ठिदविहत्तिओ च। सिया एदे च अवट्ठिदविहत्तिया च। मिच्छत्त--सम्म०--सम्मामि०--इत्थि०--णवुंस० असंखे०भागहा० णियमा अत्थि। अणंताणु०४ असंखे०भागहा० णियमा अत्थि। सिया एदे च असंखे०गुणहाणिविहत्तिओ च। सिया एदे च असंखे०गुणहाणिविहत्तिया

जीव हैं और असंख्यातगुणहानिवाला एक जीव है, कदाचित् ये जीव हैं और असंख्यातगुणहानिवाले नाना जीव हैं। सात नोकषायोंकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीव नियमसे हैं।

§ ३८२. मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानिवाले जीव नियमसे हैं। शेप पद भजनीय हैं। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीव नियमसे हैं। कदाचित् ये जीव हैं और असंख्यातगुणहानिविभक्तिवाला एक जीव है, कदाचित् ये जीव हैं और असंख्यातगुणहानिविभक्तिवाले नाना जीव हैं। हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीव नियमसे हैं। मनुष्यपर्याप्तकोंमें इसी प्रकार भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें स्त्रीवेदकी असंख्यातगुणहानि नहीं है। इसीप्रकार मनुष्यिनियोंमें भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें पुरुषवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातगुणहानि नहीं है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंके सब पद भजनीय हैं।

§ ३८३. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीव नियमसे हैं। कदाचित् ये जीव हैं और अवस्थितविभक्तिवाला एक जीव है, कदाचित् ये जीव हैं और अवस्थितविभक्तिवाले नाना जीव हैं। मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागहानिवाले जीव नियमसे हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागहानिवाले जीव नियमसे हैं। कदाचित् ये जीव हैं और असंख्यातगुणहानिविभक्तिवाला एक जीव है, कदाचित् ये जीव हैं और असंख्यातगुणहानिविभक्तिवाले नाना जीव हैं। हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यात-

च । हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्डि-हा०विह० णियमा अत्थि । एवं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ३८४. भागाभागाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ० असंखे०गुणहाणिविह० सव्वजी० केवडिओ भागो ? अणंतभागो । अवट्टि०विह० सव्वजी० केव० ? असंखे०भागो । असंखे०भागहा० सव्वजी० केव० ? संखे०भागो । असंखे०भागवड्डि० सव्वजी० केव० ? संखेज्जा भागा । एवमट्ठकसाय० । सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागवड्डि--असंखे०गुणवड्डि- हाणि-अवत्त० सव्वजी० केव० ? असंखे०भागो । असंखे०भागहा० सव्वजी० केव० ? असंखेज्जा भागा । अणंताणु०४ संखे०भागवड्डि--संखे०गुणवड्डि-असंखे०गुणवड्डि-हाणि-अवत्त० सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । अवट्ठि० असंखे०-भागो । असंखे०भागहा० संखे०भागो । असंखे०भागवड्डि० सव्वजीवा केव० ? संखेज्जा भागा । चदुसंजल० संखे०गुणवड्डि-असंखे०गुणहा० सव्वजी० के० ? अणंतभागो । अवट्ठि० असंखे०भागो । असंखे०भागहा० केव० ? संखे०भागो । असंखे०भागवड्डि० के० ? संखेज्जा भागा । णवरि लोभसंज० असंखे०गुणहाणि०

भागवृद्धि और असंख्यातभागहानिविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । इसप्रकार अनाहारकमार्गणा तक ले जाना चाहिए ।

इसप्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय समाप्त हुआ ।

§ ३८४. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं । अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । असंख्यातभागहानिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यातवें भागप्रमाण हैं । असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । इसीप्रकार आठ कषायोंकी अपेक्षा भागाभाग जानना चाहिए । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । असंख्यातभागहानिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं । अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं । असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । चार संज्वलनोंकी संख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं । अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । असंख्यातभागहानिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यातवें भागप्रमाण हैं । असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । इतनी विशेषता है

णत्थि । इत्थि-णवुंस० असंखे०गुणहा० सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । असंखे० भागवड्ढि० संखे०भागो । असंखे०भागहाणि० संखेज्जा भागा । णवरि णवुंस० असंखे०भागवड्ढि-हाणीणं विवज्जासो कायव्वो । पुरिस० असंखे०गुणहा०-संखे०-गुणवड्ढि-अवट्ठि० अणंतभागो । असंखे०भागवड्ढि० संखे०भागो । असंखे०भागहा० संखेज्जा भागा । हस्स-रइ-अरइ-सो० असंखे०भागवड्ढि० संखे०भागो । असंखे०-भागहा०. संखेज्जा भागा । अरदि-सोग० असंखे०भागहाणि० संखे०भागो । असंखे०-भागवड्ढि० संखेज्जा भागा । भय-दुगुंछा० अवट्ठि० असंखे०भागो । असंखे०भागहा० संखे०भागो । असंखे०भागवड्ढि० संखेज्जा भागा ।

§ ३८५. आदेसेण णेरइय० मिच्छ०-बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० अवट्ठि० सव्वजी० केव० ? असंखे०भागो । असंखे०भागहा० के० ? संखे०भागो । असंखे०-भागवड्ढि० संखेज्जा भागा । णवरि पुरिस० वड्ढि-हाणीणं विवज्जासो कायव्वो । सम्मत्त-सम्मामि० असंखे०भागहा० सव्वजी० केव० ? असंखेज्जा भागा । सेसपदा असंखे०भागो । अणंताणु०४ अवट्ठि० संखे०भागवड्ढि-संखे०गुणवड्ढि-असंखे०गुणवड्ढि-हाणि-अवत्त० सव्वजी० केव० ? असंखे०भागो । असंखे०भागहा० संखे०भागो ।

कि लोभसंज्वलनकी असंख्यातगुणहानि नहीं है । स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातगुणहानि-वाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं । असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं । असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका विपर्यास करना चाहिए । पुरुषवेदकी असंख्यातगुणहानि, संख्यातगुणवृद्धि और अवस्थितविभक्तिवाले जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं । असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं । असंख्यात-भागहानिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यात-भागवृद्धिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं । असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । अरति और शोककी असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं । असंख्यात-भागवृद्धिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण है । भय और जुगुप्साकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । असंख्यातभागहानिवाले जीव सख्यातवें भागप्रमाण हैं । असंख्यात-भागवृद्धिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं ।

§ ३८५. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । असंख्यातभागहानिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यातवें भागप्राण हैं ? असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । इतनी विशेषता है कि पुरुषवेदकी वृद्धि और हानिका विपर्यास करना चाहिए । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यात-भागहानिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । शेष पदवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवस्थितविभक्ति, संख्यात-भागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । असंख्यातभागहानिवाले

असंखे०भागवड्ढि० संखेज्जा भागा। इत्थि०-णवुंस०-हस्स-रइ-अरइ-सोग० असंखे०-भागवड्ढि० केव० ? संखे०भागो। असंखे०भागहा० सव्वजी० संखेज्जा भागा। णवरि णवुंस अरइ-सोगाणं विवरीयं कायव्वं। एवं सव्वणेरइय० पंचि०तिरिक्ख०३ देवगई० देवा भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति। णवरि आणदादिसु पुरिस-णवुंस०-मिच्छत्त०-अणंताणु०४ असंखे०भागवड्ढि-हाणीणं विवज्जासो कायव्वो।

§ ३८६. तिरिक्खगई० तिरिक्खा० मिच्छ०-बारसक०-भय-दुगुंछ० अवट्ठि० सव्वजी० असंखे०भागो। असंखे०भागहाणि० संखे०भागो। असंखे०भागवड्ढि० संखेज्जा भागा। सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागहा० असंखेज्जा भागा। सेसपदा असंखे०भागो। अणंताणु०४ संखे०भागवड्ढि-संखे०गुणवड्ढि-असंखे०गुणवड्ढि-हाणि-अवत्त० अणंतभागो। अवट्ठि० असंखे०भागो। असंखे०भागहा० संखे०-भागो। असंखे०भागवड्ढि० संखेज्जा भागा। इत्थि-णवुंस०-हस्स-रइ-अरइ-सोगा० णेरइयभंगो। पुरिस० अवट्ठि० सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। असंखे०भागवड्ढि० संखे०भागो। असंखे०भागहाणि० संखेज्जा भागा।

§ ३८७. पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछा० अवट्ठि०

जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागहानिवाले जीव सब जीवोंके संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेद, अरति और शोकका विपरीत करना चाहिए। इसीप्रकार सब नारकी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, देवगतिमें देव और भवनवासियों से लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आनतादिकमें पुरुषवेद, नपुंसकवेद, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यात-भागहानिका विपर्यास करना चाहिए।

§ ३८६. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी अवस्थित-विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। शेष पदवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं। अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोकका भङ्ग नारकियोंके समान है। पुरुषवेदकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण है। असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं।

§ ३८७. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी

सव्वजी० असंखे०भागो। असंखे०भागहाणि० संखे०भागो। असंखे०भागवड्ढि० संखेज्जा भागा। सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहा० असंखे०भागो। असंखे०-भागहा० असंखेज्जा भागा। सत्तणोक० णेरइयभंगो। णवरि पुरिस० अवट्ठि० णत्थि। एवं मणुसअपज्ज०।

§ ३८८. मणुसगई० मणुस्सा० मिच्छ०-अट्ठक० असंखे०गुणहा०-अवट्ठि० सव्वजी० केव० ? असंखे०भागो। असंखे०भागहाणि० संखे०भागो। असंखे०भागवड्ढि० संखे०भागा। सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणवड्ढि-हाणि-असंखे०भागवड्ढि-अवत्त० असंखे०भागो। असंखे०भागहा० असंखेज्जा भागा। अणंताणु०४ अवट्ठि०-संखे०भागवड्ढि-संखे०गुणवड्ढि--असंखे०गुणवड्ढि--हाणि--अवत्त० असंखे०भागो। असंखे०भागहा० संखे०भागो। असंखे०भागवड्ढि० संखेज्जा भागा। तिण्हिसंज० अवट्ठि० संखे०गुणवड्ढि--असंखे०गुणहाणि० सव्वजी० केव० ? असंखे०भागो। असंखे०भागहा० संखे०भागो। असंखे०भागवड्ढि० संखे०भागा। लोहसंजल० संखे०गुणवड्ढि०-अवट्ठि० सव्वजी० असंखे०भागो। असंखे०भागहा० संखे०भागो। असंखे०भागवड्ढि० संखेज्जा भागा। इत्थिणवुंस० असंखे०गुणहा० सव्वजी०

अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। सात नोकषायोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेदकी अवस्थितविभक्ति नहीं है। इसीप्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए।

§ ३८८. मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें मिथ्यात्व और आठ कषायोंकी असंख्यातगुणहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि असंख्यातभागवृद्धि और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागहानि-वाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवस्थितविभक्ति, संख्यातभाग-वृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यात-भागवृद्धिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। तीन संज्वलनोंकी अवस्थितविभक्ति, संख्यात-गुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागवृद्धि-वाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। लोभसंज्वलनकी संख्यातगुणवृद्धि और अवस्थितविभक्ति-वाले जीव सब जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। स्त्रीवेद और नपुंसकवेद-

असंखे०भागो। असंखे०भागवड्ढि-हाणीणं णेरइयभंगो। पुरिसवेद० संखे०गुणवड्ढि-अवट्ठि-असंखे०गुणहाणि० असंखे०भागो। असंखे०भागवड्ढि० संखे०भागो। असंखे०भागहा० संखेज्जा भागा। हस्स-रइ-अरइ-सोगा० असंखे०भागवड्ढि-हाणि० ओघं। भय-दुगुंछा० अवट्ठि० असंखे०भागो। असंखे०भागहाणि० संखे०भागो। असंखे०भागवड्ढि० संखेज्जा भागा। मणुसपज्ज० एवं चेव। णवरि जम्हि असंखे० भागो तम्हि संखे०भागो। इत्थिवेद० हस्सभंगो। एवं मणुसिणीसु। णवरि पुरिस०-णवुंस० असंखे०गुणहा० णत्थि।

§ ३८९. अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-इत्थि-णवुंस० णत्थि भागाभागो। अणंताणु०४ असंखे०गुणहाणि० असंखे०भागो। असंखे०भागहाणि० असंखे०भागा। सव्वट्ठे णवरि संखे०भागो संखेज्जा भागा। बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० अवट्ठि० सव्वजी० असंखे०भागो। असंखे०भागहा० संखे०भागो। असंखे०भागवड्ढि० संखेज्जा भागा। सव्वट्ठे संखेज्जं कायव्वं। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं देवोघं। एवं जाव अणाहारि त्ति।

की असंख्यातगुणहानिवाले जीव सब जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका भङ्ग नारकियोंके समान है। पुरुषवेदकी संख्यातगुणवृद्धि, अवस्थितविभक्ति और असंख्यातगुणहानिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका भङ्ग ओघके समान है। भय और जुगुप्साकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। मनुष्य पर्याप्तकोंमें इसीप्रकार भागाभाग है। इतनी विशेपता है कि जहाँ असंख्यातवें भागप्रमाण हैं वहाँ पर संख्यातवें भागप्रमाण जानना चाहिए। तथा स्त्रीवेदका भङ्ग हास्यके समान है। इसीप्रकार मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेपता है कि पुरुषवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातगुणहानि नहीं है।

§ ३८९. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका भागाभाग नहीं है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातगुणहानिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। इतनी विशेषता है कि सर्वार्थसिद्धिमें क्रमसे संख्यातवें भाग और संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। बारह कषाय, पुरुपवेद, भय और जुगुप्साकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। मात्र सर्वार्थसिद्धिमें असंख्यातके स्थानमें संख्यात करना चाहिए। हास्य, रति, अरति और शोकका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। इसप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इसप्रकार भागाभाग समाप्त हुआ।

§ ३६०. परिमाणाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ०-बारसक०-भय-दुगुंछा० अवट्ठि० असंखे०भागवड्ढि-हाणिविह० केत्ति० ? अणंता। असंखे०गुणहाणि० चउसंज० संखे०गुणवड्ढि० संखेज्जा। णवरि लोभसंज०-भय-दुगुंछा० असंखे०गुणहाणि० णत्थि। सम्म०-सम्मामि० सव्वपदवि० असंखेज्जा। अणंताणु०४ अवट्ठि०-असंखे०भागवड्ढि-हाणि० के० ? अणंता। सेसपदा० असंखेज्जा। इत्थि०-पुरिस०-णवुंस० असंखे०भागवड्ढि-हाणि० केत्ति० ? अणंता। पुरिस० अवट्ठि० असंखेज्जा। सव्वेसिमसंखे०गुणहाणि० पुरिस० संखे०गुणवड्ढि० संखेज्जा। हस्स-रइ-अरइ-सोगा० असंखे०भागवड्ढि-हाणि० केत्ति० ? अणंता। एवं तिरिक्खा०। णवरि सेढिपदाणि मोत्तूण वत्तव्वं।

§ ३६१. आदेसेण णेरइय० अट्ठावीसं पयडीणं सव्वपदा० केत्ति० ? असंखेज्जा। एवं सव्वणेरइय० सव्वपंचिंदियतिरिक्ख० देवगई० देवा भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति। मणुसगदीए एवं चेव। णवरि सेढिपदा मिच्छ० असंखे०-गुणहाणि० अणंताणु० पंचपदा संखेज्जा। पंचिं०तिरिक्ख०अप० २८ पयडीणं सव्वपदा असंखेज्जा। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु जाणि पदाणि अत्थि ताणि संखेज्जा। मणुसअपज्ज० २८ पय० सव्वपदा केत्तिया ? असंखेज्जा। अणुद्दिसादि जाव

§ ३६०. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी अवस्थित, असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यात-भागहानिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। असंख्यातगुणहानिवाले और चार संज्वलनोंकी संख्यातगुणवृद्धिवाले जीव संख्यात हैं। इतनी विशेषता है कि लोभसंज्वलन, भय और जुगुप्साकी असंख्यातगुणहानि नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सब पदविभक्ति-वाले जीव असंख्यात हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवस्थितविभक्ति, असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। शेष पदवाले जीव असंख्यात हैं। स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। पुरुषवेदकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। सबकी असंख्यातगुणहानि-वाले और पुरुषवेदकी संख्यातगुणवृद्धिवाले जीव संख्यात हैं। हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। इसीप्रकार तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रेणिसम्बन्धी पदोंको छोड़कर कथन करना चाहिए।

§ ३६१. आदेशसे नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंके सब पदवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसीप्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, देवगतिमें देव और भवनवासियों से लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए। मनुष्यगतिमें इसीप्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें श्रेणिसम्बन्धी पदवाले, मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानि-वाले और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके पाँच पदवाले जीव संख्यात हैं। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंके सब पदवाले जीव असंख्यात हैं। मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जो पदवाले हैं वे संख्यात हैं। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंके सब पदवाले जीव कितने

अवराइदा त्ति मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-इत्थि०-णवुंस० असंखे०भागहा० अणंताणु०४ असंखे०भागहा०-असंखे०गुणहा० बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० चदुणोक० असंखे०भागवड्ढि-हा० केत्तिया ? असंखेज्जा। सव्वट्ठ० सव्वपय० सव्वपदा संखेज्जा। एवं जाव अणाहारि त्ति।

§ ३९२. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ०-अट्ठक०-भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्ढि-हा०-अवट्ठि० के० खेत्ते ? सव्वलोगे। भय-दुगुंछवज्ज० असंखे०गुणहाणि० के० खेत्ते ? लोग० असंखे०भागे। सम्म०-सम्मामि० सव्वपदा० लोग० असंखे०भागे। अणंताणु०४ मिच्छत्तभंगो। णवरि संखे०भागवड्ढि-संखे०गुणवड्ढि--असंखे०गुणवड्ढि--हाणि-अवत्त० लोग० असंखे०भागे। चदुसंज० असंखे०भागवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० के० खेत्ते ? सव्वलोगे। संखे०गुणवड्ढि० लोभसंजलणं वज्ज० असंखे०गुणहाणि० लोग० असंखे०भागे। इत्थि०-णवुंस० असंखे०भागवड्ढि-हाणि० सव्वलोगे। असंखे०गुणहाणि० लोग० असंखे०भागे। एवं पुरिस०। णवरि अवट्ठि०-असंखे०गुणवड्ढि० लोग० असंखे०भागे। चदुणोक० असंखे०भागवड्ढि-

हैं ? असंख्यात हैं। अनुदिशसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागहानिवाले, अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागहानि और असंख्यातगुणहानिवाले, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले तथा चार नोकषायोंकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। सर्वार्थसिद्धिमें सब प्रकृतियोंके सब पदवाले जीव संख्यात हैं। इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इसीप्रकार परिमाण समाप्त हुआ।

§ ३९२. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, आठ कषाय, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब लोक क्षेत्र है। भय और जुगुप्साको छोड़कर असंख्यातगुणहानिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सब पदवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इतनी विशेषता है कि संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमण है। चार संज्वलनोंकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब लोक क्षेत्र है। संख्यातगुणवृद्धिवाले जीवोंका और लोभसंज्वलनको छोड़कर शेषकी असंख्यातगुणहानिवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका क्षेत्र सब लोक है। असंख्यातगुणहानिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसीप्रकार पुरुषवेदकी अपेक्षा क्षेत्र जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अवस्थितविभक्ति और असंख्यातगुणवृद्धिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। चार नोकषायोंकी

हाणि० सव्वलोगे। एवं तिरिक्खा०। णवरि सेढिपदा मिच्छ० असंखे०गुणहाणि० च णत्थि।

§ ३६३. आदेसेण णेरइय २८ पय० सव्वपदा लोग० असंखे०भागे। एवं सव्वणेरइय०। सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-सव्वमणुस्स० सव्वपदा त्ति जासिं जाणि पदाणि संभवंति तासिं लोग० असंखे०भागे। एवं जाव अणाहारि त्ति।

§ ३६४. पोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ०-अट्ठक० असंखे०भागवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० केव० खेत्तं पोसिदं? सव्वलोगो। असंखे० गुणहाणि० लोग० असंखे०भागो। सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागवड्ढि-असंखे०गुणवड्ढि-हाणि-अवत्त० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस०। असंखे०भागहाणि० लोग० असंखे० भागो सव्वलोगो वा। अणंताणु०४ मिच्छत्तभंगो। णवरि संखेज्जभागवड्ढि-संखे०-गुणवड्ढि—असंखे०गुणवड्ढि—हाणि—अवत्त० लोग० असंखे०भागो अट्ठचो० देसूणा। चदुसंजल० संखे०गुणवड्ढि० लोभं वज्ज असंखे०गुणहाणि० लोग० असंखे०भागो। सेसं मिच्छत्तभंगो। इत्थि-णवुंस० असंखे०भागवड्ढि-हाणि० सव्वलोगो। असंखे०गुण-

---

असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका क्षेत्र सब लोक है। इसीप्रकार तिर्यञ्चों में जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें श्रेणिसम्बन्धी पद और मिथ्यात्वकी असंख्यात-गुणहानि नहीं है।

§ ३६३. आदेशसे नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंके सब पदवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसीप्रकार सब नारकियोंमें जानना चाहिए। सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और सब मनुष्योंमें सब पदोंमेंसे जिन प्रकृतियोंके जो पद सम्भव हैं उनका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इसप्रकार क्षेत्र समाप्त हुआ।

§ ३६४. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व और आठ कषायकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। असंख्यातगुणहानिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यात-गुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। असंख्यातभागहानिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इतनी विशेषता है कि संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्य-विभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। चार संज्वलनकी संख्यातगुणवृद्धिवाले और लोभसंज्वलनको छोड़कर शेषकी असंख्यातगुणहानिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागवृद्धि

हाणि० लोग० असंखे०भागो। पुरिस० असंखे०भागवड्ढि-हा० सव्वलोगो। अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्द०। असंखे०गुणहाणि-संखे०गुणवड्ढि० लोग० असंखे०-भागो। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्ढि-हाणि० सव्वलोगो। भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० सव्वलोगो।

§ ३६५. आदेसेण णेरइय० मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो छचोद्दस०। सम्म०-सम्मामि० असंखे०-भागहाणि-असंखे०गुणहाणि० लोग० असंखे०भागो छचोद्दस०। सेसपदा० खेत्तं। अणंताणु०४ संखे०भागवड्ढि--संखे०गुणवड्ढि--असंखे०गुणवड्ढि--असंखे०गुणहाणि-अवत्त० खेत्तभंगो। इत्थि०-णवुंस० असंखे०भागवड्ढि-हाणि० लोग० असंखे०भागो छचोद्दस०। पुरिस० असंखे०भागवड्ढि-हाणि० लोग० असंखे०भागो छचोद्दस०। अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्ढि-हाणि० लोग० असंखे०भागो छचोद्दस०। पढमाए खेत्तभंगो। विदियादि जाव सत्तमा त्ति

और असंख्यातभागहानिवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। असंख्यात-गुणहानिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषवेदकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। असंख्यातगुणहानि और संख्यात-गुणवृद्धिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

§ ३६५. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी असंख्यात-भागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानि और असंख्यातगुणहानिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष पदोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यात-गुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीवोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषवेदकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवस्थित-विभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पहली पृथिवीमें क्षेत्रके समान भङ्ग है। दूसरीसे लेकर सातवीं तककी पृथिवियोंमें सामान्य

णिरओघं। णवरि सगपोसणं।

§ ३६६. तिरिक्खा० मिच्छ०--सोलसक०--भय-दुगुंछ० असंखे०भागवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० सव्वलोगो। सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागहाणि-असंखे०गुणहाणि० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। सेसपदा० लोग० असंखे०भागो। अणंताणु०४ संखे०भागवड्ढि-संखे०गुणवड्ढि-असंखे०गुणवड्ढि-हाणि-अवत्त० लोग० असंखे०भागो। पुरिस० असंखे०भागवड्ढि-हाणि० सव्वलोगो। अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो। इत्थि०-णवुंस०हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्ढि-हाणि० सव्वलोगो।

§ ३६७. पंचिंदियतिरिक्ख३ मिच्छत्त-बारसक०भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। सम्म०-सम्मामि० असंखे०-भागहा०-असंखे०गुणहाणि० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। सेसपदवि० लोग० असंखे०भागो। अणंताणु०४ असंखे०भागवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० लोग० असंखे० भागो सव्वलोगो वा। संखे०भागवड्ढि०-संखे०गुणवड्ढि-असंखे०गुणवड्ढि-हाणि-अवत्त० लोग० असंखे०भागो।। इत्थि० असंखे०भागवड्ढि० लोग० असंखे०भागो दिवड्ढ-

नारकियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेपता है अपना अपना स्पर्शन कहना चाहिए।

§ ३६६. तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानि और असंख्यातगुणहानिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष पदवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी संख्यात-भागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषवेदकी असंख्यातभाग-वृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवस्थित-विभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

§ ३९७. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें मिथ्यात्व, बारह कपाय, भय और जुगुप्साकी असंख्यात-भागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यात-भागहानि और असंख्यातगुणहानिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष पदविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्तातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्य-विभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेदकी असंख्यात-

चोद्दस० । असंखे०भागहा० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । पुरिस० असंखे०-भागवड्डि० लोग० असंखे०भागो छचोद्दस० । असंखे०भागहाणि० लोग० असंखे०-भागो सव्वलोगो वा । अवट्ठि० तिरिक्खोघं । णवुंस०-हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०-भागवड्डि-हाणि० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा ।

§ ३६८. पंचिंदिय-तिरिक्खअपज्ज० मिच्छ०--सोलसक०--भय--दुगुंछा० असंखे०भागवड्डि--हा०--अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागहाणि-असंखे०गुणहाणि० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । इत्थि०-पुरिस० असंखे०भागवड्डि० लोग० असंखे०भागो । दोण्हमसंखे०भाग-हाणि० णवुंस०हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं असंखे०भागवड्डि-हाणि० लोग० असंखे०-भागो सव्वलोगो वा । मणुसगईए मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु पंचिंदियतिरिक्खभंगो । णवरि जम्हि वज्जो तम्हि लोग० असंखे०भागो । सेढिपदा० लोग० असंखे०भागो । मणुसअपज्ज० पंचिं०तिरि०अपज्जत्तभंगो ।

§ ३६९. देवगईए देवेसु मिच्छत्त-बारसक०-भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्डि-

---

भागवृद्धिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। असंख्यातभागहानिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषवेदकी असंख्यातभागवृद्धिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। असंख्यातभागहानिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

§ ३६८. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यात-भागहानि और असंख्यातगुणहानिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागवृद्धिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दोनोंकी असंख्यातभागहानिवाले जीवोंने तथा नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानि-वाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यगति में मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि जहाँ पर वर्जनीय है वहाँ पर लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन है। तथा श्रेणिसम्बन्धी पदवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है।

§ ३६९. देवगतिमें देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी असंख्यात-

हाणि-अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णवचोद्दसभागा वा देसूणा। सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागहाणि-असंखे०गुणहाणि० लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णवचोद्द०। सेस-पदा० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्द०। अणंताणु०४ असंखे०भागवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णवचोद्द०। संखे०भागवड्ढि-संखे०गुणवड्ढि-असंखे०गुणवड्ढि-हाणि-अवत्त० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्द०। इत्थि० असंखे०-भागवड्ढि० पुरिस० असंखेज्जभागवड्ढि-अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्द० देसूणा। दोण्हमसंखे०भागहा० चदुणोक० असंखे०भागवड्ढि-हाणि० लोग० असंखे०-भागो अट्ठ-णवचोद्द०। एवं सोहम्म०। भवण०-वाण०-जोदिसि० एवं चेव। णवरि सगरज्जू०। सणक्कुमारादि जाव सहस्सारे त्ति आणदादि जाव अच्चुदा त्ति सग-पोसणं। उवरि खेत्तभंगो। एवं जाव अणाहारि त्ति।

§ ४००. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ०-अट्ठक० असंखे०भागवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० सव्वद्धा। असंखे०गुणहाणि० जह०

भागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानि और असंख्यातगुणहानिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष पदविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभाहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेदकी असंख्यातभागवृद्धि तथा पुरुषवेदकी असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दोनोंकी असंख्याभागहानि तथा चार नोकषायोंकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसीप्रकार सौधर्म और ऐशान कल्पमें स्पर्शन है। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें स्पर्शन इसीप्रकार है। इतनी विशेषता है कि अपने अपने राजु कहने चाहिए। सनत्कुमार-से लेकर सहस्रार कल्पतक और आनतसे लेकर अच्युत कल्पतकके देवोंमें अपना अपना स्पर्शन कहना चाहिए। आगेके देवोंमें स्पर्शनका भङ्ग क्षेत्रके समान है। इसप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इसप्रकार स्पर्शन समाप्त हुआ।

§ ४००. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे **मिथ्यात्व और आठ कषायोंकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिका**

एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया। सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागवड्ढि-असंखे०-गुणवड्ढि० जह० अंतोमु०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। असं०भागहाणि० सव्वद्धा। असंखे०गुणहाणि-अवत्त० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अणंताणु०४ असंखे०भागवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० सव्वद्धा। संखेज्जभागवड्ढि-संखे०-गुणवड्ढि-असंखे०गुणहाणि-अवत्तव्व० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। असंखे०गुणवड्ढि० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। चदुसंजल० असंखे०भागवड्ढि--हाणि--अवट्ठि० सव्वद्धा। संखे०गुणवड्ढि० लोभसंज० वज्ज० असंखे०गुणहा० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। इत्थि-णवुंस० असंखे०भाग-वड्ढि-हाणि० सव्वद्धा। असंखे०गुणहाणि० जह० एगसमओ, उक्क० संखे० समया। पुरिस० असं०भागवड्ढि-हा० सव्वद्धा। अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० आवलि० असं०। असं०गुणहा०-संखे०गुणवड्ढि० ज० एगस०, उक्क० संखे० समया। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्ढि-हाणि० सव्वद्धा। भय०-दु० असं०भागवड्ढि-हा०-अवट्ठि० सव्वद्धा।

§ ४०१. आदेसेण णेरइय० मिच्छ०-बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० असंखे०-

---

काल सर्वदा है। असंख्यातगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। असंख्यात-भागहानिका काल सर्वदा है। असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्तातभागहानि और अवस्थितविभक्तिका काल सर्वदा है। संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। चार संज्वलनकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिका काल सर्वदा है। संख्यात-गुणवृद्धिका तथा लोभसंज्वलनको छोड़कर असंख्यातगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यात-भागहानिका काल सर्वदा है। असंख्यातगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। पुरुषवेदकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका काल सर्वदा है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। असंख्यातगुणहानि और संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका काल सर्वदा है। भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यात-भागहानि और अवस्थितविभक्तिका काल सर्वदा है।

§ ४०१. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी

भागवड्ढि-हाणि० सव्वद्धा। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागहा० सव्वद्धा। असंखे०गुणहाणि-अवत्त० जह० एगस०, उक्क० आव० असंखे०भागो। असंखे०भागवड्ढि-असंखे०गुणवड्ढि० जह० अंतोमु०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अणंताणु०४ असंखे०भागवड्ढि०-हाणि० सव्वद्धा। संखे०भागवड्ढि--संखे०गुणवड्ढि--असंखे०गुणहाणि--अवट्ठि०-अवत्त० जह० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। असंखे०गुणवड्ढि० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। इत्थि०-णवुंस०-हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्ढि-हाणि० सव्वद्धा। एवं सत्तसु पुढवीसु।

§ ४०२. तिरिक्खगदी० तिरिक्खा० ओघं। णवरि सेढिपदाणि मोत्तूण। पंचिंदियतिरिक्खतिए णारयभंगो। पंचि०तिरि०अपज्ज० मिच्छत्त०-सोलसक०-भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्ढि--हाणि० सव्वद्धा। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागहाणि० सव्वद्धा। असंखे०गुणहाणि० जह० एगसमओ, उक्क० आव० असं०भागो। सत्तणोक० असंखे०भागवड्ढि-हाणि० सव्वद्धा।

असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका काल सर्वदा है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानिका काल सर्वदा है। असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्य-विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका काल सर्वदा है। संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि, अवस्थित और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका काल सर्वदा है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए।

§ ४०२. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि श्रेणि-सम्बन्धी पदोंको छोड़कर कहना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें नारकियोंके समान भङ्ग है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी असंख्यात-भागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका काल सर्वदा है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानिका काल सर्वदा है। असंख्यातगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सात नोकषायोंकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका काल सर्वदा है।

§ ४०३. मणुसाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो। णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०-भागवड्डि-असंखे०गुणवड्डि० जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं। अणंताणु०४ असंखे०गुणवड्डि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। छण्हमवत्त० अणंताणु०४ असंखे०गुणहाणि० पुरिस० अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। खवगपदाणमोघं। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु एवं चेव। णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणि० धुवबंधीणमवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। मणुसपज्ज० इत्थि० असंखे०गुणहाणि० णत्थि। मणुसिणी० पुरिस०-णवुंस० असंखे०गुणहाणि० णत्थि।

§ ४०४. मणुसअपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्डि-हाणि० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागहाणि० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। असंखे०गुणहाणि० जह० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। सत्तणोक० असंखे०भागवड्डि-हाणि० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो।

§ ४०५. देवगई० देवा० भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति णारयभंगो। अणुदिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-इत्थि०-णवुंस० असंखे०-

§ ४०३. मनुष्योंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेपता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। छहकी अवक्तव्यविभक्तिका, अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यात-गुणहानिका और पुरुषवेदकी अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। क्षपक पदोंका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानिका तथा ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंकी अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। मनुष्य पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदकी असंख्यातगुणहानि नहीं है। मनुष्यिनियोंमें पुरुषवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातगुणहानि नहीं है।

§ ४०४. मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी असंख्यात-भागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। असंख्यात-गुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सात नोकषायोंकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

§ ४०५. देवगतिमें देवोंमें तथा भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व,

भागहाणि० सव्वद्धा । एवमणंताणु०४ । णवरि असंखे०गुणहाणि० जह० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्ढि-हाणि० सव्वद्धा । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्ढि-हाणि० सव्वद्धा । णवरि सव्वट्ठे जम्हि आवलि० असंखेज्जो भागो तम्हि संखेज्जा समया । एवं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ४०६. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ०-अट्ठक० असंखे०भागवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० णत्थि अंतरं । असंखे०गुणहा० ज० एगस०, उक्क० छम्मासा । सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागहा० णत्थि अंतरं । असंखे०भागवड्ढि--असंखे०गुणवड्ढि--हाणि--अवत्त० जह० एगस०, उक्क० चउवीस-महोरत्ते सादि० । अणंताणु०४ असंखे०भागवड्ढि--हाणि--अवट्ठि० णत्थि अंतरं । संखे०भागवड्ढि-संखे०गुणवड्ढि-असंखे०गुणवड्ढि-हाणि-अवत्त० जह० एगस०, उक्क० चउवीसमहोरत्ते साधिगे । चदुसंजल० असंखे०भागवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० णत्थि अंतरं । संखेज्जगुणवड्ढि-असंखे०गुणवड्ढि-हाणि० ज० एगस०, उक्क० छम्मासा । णवरि

सम्यग्मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षासे काल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि असंख्यात-गुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका काल सर्वदा है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका काल सर्वदा है। इतनी विशेषता है कि जहाँ आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल कहा है वहाँ सर्वार्थसिद्धिमें संख्यात समय काल है। इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इसप्रकार काल समाप्त हुआ।

§ ४०६. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व और आठ कषायोंकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिका अन्तर काल नहीं है। असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानिका अन्तर काल नहीं है। असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन-रात है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तका अन्तरकाल नहीं है। संख्यात-भागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन-रात है। चार संज्वलनोंकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिका अन्तर काल नहीं है। संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है

लोभसंज० असंखे०गुणहाणि० णत्थि। पुरिस० अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। संखे०गुणवड्ढि-असंखे०गुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० छम्मासा। सेसं मिच्छत्तभंगो। इत्थि णवुंस० असंखे०भागवड्ढि-हाणि० णत्थि अंतरं। असंखे०-गुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्ढि-हाणि० णत्थि अंतरं। भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० णत्थि अंतरं। एवं तिरिक्खा०। णवरि सेढिपदा णत्थि दंसणमोहक्खवणा च।

§ ४०७. आदेसेण णेरइय० मिच्छ०--बारसक०--पुरिस०--भय--दुगुंछा० असंखे०भागवड्ढि-हाणि० णत्थि० अंतरं। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। सम्मत्त-सम्मामि० असंखे०भागहाणि० णत्थि अंतरं। असंखे०भागवड्ढि०-असंखे०गुणवड्ढि-हाणि-अवत्त० जह० एगस०, उक्क० चउवीसमहोरत्ते साधिगे। अणंताणु०४ असंखे०भागवड्ढि-हाणि० णत्थि अंतरं। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। संखे०भागवड्ढि-संखेज्जगुणवड्ढि-असंखे०गुणहाणि-अवत्त० जह० एगस०, उक्क० चउवीसमहोरत्ते साधिगे। इत्थि--णवुंस०--हस्स-रइ-अरइ--सोगाणं असंखे०भागवड्ढि-हाणि० णत्थि अंतरं। एवं सव्वणेरइय० पंचिंदियतिरिक्खतिय०

और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। इतनी विशेषता है कि लोभसंज्वलनकी असंख्यातगुणहानि नहीं है। पुरुषवेदकी अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। संख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। शेष भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका अन्तर काल नहीं है। असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका अन्तर काल नहीं है। भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिका अन्तर काल नहीं है। इसीप्रकार तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें श्रेणिसम्बन्धी पद तथा दर्शनमोहनीयकी क्षपणा नहीं है।

§ ४०७. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका अन्तरकाल नहीं है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व-की असंख्यातभागहानिका अन्तर काल नहीं है। असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन-रात है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यात-भागहानिका अन्तर काल नहीं है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन-रात है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका अन्तर काल नहीं है। इसीप्रकार सब नारकी, पञ्चेन्द्रिय

देवगई० देवा भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति ।

§ ४०८. पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछा० असंखे०-भागवड्ढि-हाणि० णत्थि अंतरं। अवट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० असंखेज्जा लोगा। सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागहाणि० णत्थि अंतरं। असंखेज्जगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० चउवीसमहोरत्ते साधिगे। सत्तणोक० असंखे०भागवड्ढि-हाणि० णत्थि अंतरं।

§ ४०९. मणुसगई० मणुसा० पंचिंदियतिरिक्खभंगो। णवरि सेढिपदाणमोघं। मणुसपज्जत्ता० एवं चेव। णवरि इत्थिवेद० असंखे०गुणहाणि० णत्थि। मणुसिणीसु एवं चेव। णवरि पुरिस०-णवुंस० असंखे०गुणहाणि० णत्थि। णवरि जम्हि छम्मासा तम्हि वासपुधत्तं। मणुसअपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछा० असंखे०भागवड्ढि-हाणि० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागहाणि--असंखे०गुणहाणि० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। सत्तणोक० असंखे०भागवड्ढि-हाणि० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो।

तिर्यञ्चत्रिक, देवगतिमें सामान्य देव और भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए।

§ ४०८. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका अन्तर काल नहीं है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानिका अन्तर काल नहीं है। असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन-रात है। सात नोकषायोंकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका अन्तरकाल नहीं है।

§ ४०९. मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि श्रेणिसम्बन्धी पदोंका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यपर्याप्तकोंमें इसीप्रकार है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदकी असंख्यातगुणहानि नहीं है। मनुष्यिनियोंमें इसीप्रकार है। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेद और नपुसकवेदकी असंख्यातगुणहानि नहीं है। इतनी और विशेषता है कि जहाँ पर छह महीना अन्तर काल कहा है वहाँ पर वर्षपृथक्त्व कहना चाहिए। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यात-भागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सात नोकषायोंकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्लातवें भागप्रमाण है।

§ ४१०. अणुदिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-इत्थि०-णवुंस० असंखे०भागहाणि० णत्थि अंतरं। अणंताणु०४ असंखेज्जभागहाणि० णत्थि अंतरं। असंखे०गुणहाणि० जह० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं। सव्वट्ठे पलिदो० संखे०भागो। बारसक०-पुरिसवे०-भय-दुगुंछ० असंखे०भागवड्ढि-हाणि० णत्थि अंतरं। अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं असंखे०भागवड्ढि-हाणि० णत्थि अंतरं। एवं जाव अणाहारि त्ति।

§ ४११. भावाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण अट्ठावीसं पयडीणं सव्वपदा त्ति को भावो? ओदइओ भावो। एवं जाव अणाहारि त्ति।

§ ४१२. अप्पाबहुआणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्त-अट्ठक० सव्वत्थोवा असंखे०गुणहाणि०। अवट्ठि० अणंतगुणा। असंखे०-भागहाणि० असंखे०गुणा। असंखे०भागवड्ढि० संखे०गुणा। सम्मत्त-सम्मामि० सव्वत्थोवा असंखे०गुणहाणि०। अवत्त० असंखे०गुणा। असंखेज्जगुणवड्ढि० असंखे०-गुणा। असंखे०भागवड्ढि० संखेज्जगुणा। असंखे०भागहाणि० असंखे०गुणा।

---

§ ४१०. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातभागहानिका अन्तर काल नहीं है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागहानिका अन्तर काल नहीं है। असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। मात्र सर्वार्थसिद्धिमें पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यात-भागहानिका अन्तर काल नहीं है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। हास्य, रति, अरति और शोककी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका अन्तर काल नहीं है। इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इसप्रकार अन्तर काल समाप्त हुआ।

§ ४११. भावानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे अट्ठाईस प्रकृतियोंके सब पदोंका कौन भाव है? औदयिक भाव है। इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इसप्रकार भाव समाप्त हुआ।

§ ४१२. अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व और आठ कषायोंकी असंख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातगुणवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव

अणंताणु०४ सव्वत्थोवा अवत्त० । असंखे०गुणहाणि० असंखे०गुणा । संखे०-भागवड्ढि० असंखे०गुणा । संखे०गुणवड्ढि० संखे०गुणा । असंखे०गुणवड्ढि० असंखे०-गुणा । अवट्ठि० अणंतगुणा । असंखे०भागहाणि० असंखे०गुणा । असंखे०भागवड्ढि० संखेज्जगुणा । तिण्हं संजलणाणं सव्वत्थोवा संखेज्जगुणवड्ढि० । असंखे०गुणहाणि० तत्तिया चेव । अवट्ठि० अणंतगुणा । असंखे०भागहाणि० असंखे०गुणा । असंखे०-भागवड्ढि० संखे०गुणा । लोभसंजलणाए सव्वत्थोवा संखे०गुणवड्ढि० । अवट्ठि० अणंतगुणा । असंखे०भागहाणि० असंखे०गुणा । असंखे०भागवड्ढि० संखे०गुणा । इत्थि० सव्वत्थोवा असंखे०गुणहाणि० । असंखे०भागवड्ढि० अणंतगुणा । असंखे०-भागहाणि० संखे०गुणा । पुरिस० सव्वत्थोवा संखेज्जगुणवड्ढि० । असंखे०गुणहाणि० तत्तिया चेव । अवट्ठि० असंखे०गुणा । असंखे०भागवड्ढि० अणंतगुणा । असंखे०-भागहाणि० संखे०गुणा । णवुंस० सव्वत्थोवा असंखे०गुणहाणि० । असंखे०-भागहाणि० अणंतगुणा । असंखे०भागवड्ढि० संखे०गुणा । एवमरदि-सोगा० । णवरि असंखे०गुणहाणि० णत्थि । हस्स-रइ० सव्वत्थोवा असंखे०भागवड्ढि० । असंखे०-भागहाणि० संखे०गुणा । भय-दुगुंछा० सव्वत्थोवा अवट्ठि० । असंखे०भागहा०

संख्यातगुणे हैं । उनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे असंख्यातगुणहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यातभागवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यातगुणवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे असंख्यातगुणवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । उनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । तीन संज्वलनोंकी संख्यातगुणवृद्धिवाले जीव सबसे स्तोक हैं । असंख्यातगुणहानिवाले जीव उतने ही हैं । उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । उनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । लोभसंज्वलनकी संख्यातगुणवृद्धिवाले जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । उनसे असंख्यात-भागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । स्त्रीवेदकी असंख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । उनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । पुरुषवेदकी संख्यातगुणवृद्धि-वाले जीव सबसे स्तोक हैं । असंख्यातगुणहानिवाले जीव उतने ही हैं । उनसे अवस्थितविभक्ति-वाले जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । उनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । नपुंसकवेदकी असंख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । उनसे असंख्यातभाग-वृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार अरति और शोककी अपेक्षा अल्पबहुत्व है । इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणहानि नहीं है । हास्य और रतिकी असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । भय और जुगुप्साकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे

असंखे०गुणा । असंखे०भागवड्ढि० संखे०गुणा ।

§ ४१३. आदेसेण णेरइय० मिच्छत्त-बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछा० सव्वत्थोवा अवट्ठि० । असंखे०भागहाणि० असंखे०गुणा । असंखे०भागवड्ढि० संखे०गुणा । णवरि पुरिस० वड्ढि-हाणीणं विवज्जासो कायव्वो । सम्मत्त-सम्मामि० सव्वत्थोवा असंखे०गुणहाणि० । अवत्त० असंखे०गुणा । असंखे०गुणवड्ढि० असंखे०गुणा । असंखे०भागवड्ढि० संखे०गुणा । असंखे०भागहाणि० असंखे०गुणा । अणंताणु०४ सव्वत्थोवा अवत्त० । असंखे०गुणहाणि० असंखे०गुणा । संखे०भागवड्ढि० असंखे०गुणा । संखे०गुणवड्ढि० संखे०गुणा । असंखे०गुणवड्ढि० असंखे०गुणा । अवट्ठि० असंखे०गुणा । असंखे०भागहाणि० असंखे०गुणा । असंखे०भागवड्ढि० संखेज्जगुणा । इत्थि-णवुंस०-चदुणोक० ओघं । णवरि इत्थि०-णवुंस० असंखे०गुणहाणि० णत्थि । एवं सत्तसु पुढवीसु पंचिंदियतिरिक्ख०३ देवा भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति । णवरि आणदादिसु पुरिस० भयभंगो । णवुंसय० इत्थि०-भंगो । मिच्छ०-अणंताणु०४ वड्ढि-हाणीणं विवज्जासो च कायव्वो ।

हैं। उनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं।

§ ४१३. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेदकी वृद्धि और हानिका विपर्यास करना चाहिए। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातगुणवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे असंख्यातगुणहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातभागवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातगुणवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातगुणवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और चार नोकषायोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातगुणहानि नहीं है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें तथा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, सामान्य देव और भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आनतादिकमें पुरुषवेदका भङ्ग भयके समान है। नपुंसकवेदका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है। तथा मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी वृद्धि और हानिका विपर्यास करना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ सामान्य नारकी आदिमें स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और चार नोकषायोंका भङ्ग ओघके समान जाननेकी सूचना की है सो जहाँ पर ओघमें अनन्तगुणा कहा है वहाँ पर इन मार्गणाओंमें असंख्तातगुणा करना चाहिए। ये सब मार्गणाएँ असंख्यात संख्यावाली होनेसे मूलमें इस विशेषताका खुलासा नहीं किया है।

§ ४१४. तिरिक्खगई० तिरिक्खा० मिच्छत्त-बारसक०भय-दुगुंछा० सव्वत्थोवा अवट्ठि० । असंखे०भागहाणि० असंखे०गुणा । असंखे०भागवड्ढि० संखे०गुणा । एवं पुरिस० । णवरि असंखे०भागवड्ढि० अणंतगुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०४ ओघं । इत्थि०-णवुंस०-चदुणोक० णारयभंगो । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछा० सव्वत्थोवा अवट्ठि० । असंखे०भागहाणि० असंखे०गुणा । असंखे०भागवड्ढि संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि० सव्वत्थोवा असंखे०गुणहाणि० । असंखे०भागहाणि० असंखे०गुणा । सत्तणोकसाय० णारयभंगो । णवरि पुरिस० अवट्ठि० णत्थि ।

§ ४१५. मणुसगई० मणुस्सा० मिच्छ०-अट्ठकसा० सव्वत्थोवा अ०संखे-गुणहाणि० । अवट्ठि० असंखे०गुणा । असंखे०भागहाणि० असंखे०गुणा । असंखे०-भागवड्ढि० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि० सव्वत्थोवा अवत्त० । असंखे०गुणवड्ढि० संखे०गुणा । असंखे०भागवड्ढि० संखे०गुणा । असंखे०गुणहाणि० असंखे०गुणा । असंखे०भागहाणि० असंखे०गुणा । अणंताणुबंधिचउक्क० सव्वत्थोवा अवत्त० । असंखे०गुणहाणि० संखे०गुणा । संखे०भागवड्ढि० संखे०गुणा । संखे०गुणवड्ढि० संखे०गुणा । असंखे०गुणवड्ढि० संखेज्जगुणा । अवट्ठि० असंखे०गुणा । असंखे०-

---

§ ४१४. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार पुरुषवेदकी अपेक्षा अल्पबहुत्व है। इतनी विशेषता है कि इसकी असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव अनन्तगुणे हैं। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग ओघके समान है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और चार नोकषायोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। सात नोकषायोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेदका अवस्थितपद नहीं है।

§ ४१५. मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें मिथ्यात्व और आठ कषायोंकी असंख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यात-भागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे असंख्यात गुणवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातगुणहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यात-गुणे हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे असंख्यात-गुणहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातगुणवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातगुणवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं।

भागहाणि० असंखे०गुणा। असंखे०भागवड्ढि० संखे०गुणा। तिण्हं संजलणाणं सव्वत्थोवा संखे०गुणवड्ढि०। असंखे०गुणहाणि० तत्तिया चेव। अवट्ठि० असंखे०-गुणा। असंखे०भागहाणि० असंखे०गुणा। असंखे०भागवड्ढि० संखे०गुणा। लोभ-संजल० सव्वत्थोवा संखे०गुणवड्ढि०। अवट्ठि० असंखे०गुणा। असंखे०भागहाणि० असंखे०गुणा। असंखे०भागवड्ढि० संखे०गुणा। इत्थि० सव्वत्थोवा असंखे०-गुणहाणि०। असंखे०भागवड्ढि० असंखेज्जगुणा। असंखे०भागहाणि० संखे०गुणा। एवं णवुंस०। णवरि वड्ढि-हाणीणं विवज्जासो कायव्वो। पुरिसवेद० सव्वत्थोवा संखे०गुणवड्ढि०। असंखे०गुणहाणि० तत्तिया चेव। अवट्ठि० संखे०गुणा। असंखे०-भागवड्ढि० असंखे०गुणा। असंखे०भागहाणि० संखे०गुणा। चदुणोकसाय० ओघं। भय-दुगुंछा० सव्वत्थोवा अवट्ठि०। असंखे०भागहाणि० असंखे०गुणा। असंखे०-भागवड्ढि० संखेज्जगुणा। एवं मणुसपज्जत्ता०। णवरि जम्हि असंखे०गुणं तम्हि संखे०गुणं कायव्वं। इत्थि० हस्सभंगो। एवं चेव मणुसिणीसु। णवरि पुरिस०-णवुंस० असंखे०गुणहाणि० णत्थि। मणुसअपज्ज० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो।

§ ४१६. अणुद्दिसादि जाव अवराइद त्ति मिच्छत्त-सम्मत्त०-सम्मामि०-इत्थि०-

---

उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यात भागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। तीनों संज्वलनोंकी संख्यातगुणवृद्धिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। असंख्यातगुणहानिवाले जीव उतने ही हैं। उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यात-भागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। लोभसंज्वलनकी संख्यातगुणवृद्धिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यात-भागवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। स्त्रीवेदकी असंख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार नपुंसकवेदकी अपेक्षा अल्पबहुत्व है। इतनी विशेषता है कि वृद्धि और हानिका विपर्यास करना चाहिए। पुरुषवेदकी संख्यातगुणवृद्धिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। असंख्यातगुणहानिवाले जीव उतने ही हैं। उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। चार नोकषायोंका भङ्ग ओघके समान है। भय और जुगुप्साकी अवस्थित-विभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार मनुष्य पर्याप्तकोंमें अल्पबहुत्व है। इतनी विशेषता है कि जहाँ असंख्यातगुणा है वहाँ संख्यातगुणा करना चाहिए। मात्र स्त्रीवेदका भङ्ग हास्यके समान है। इसीप्रकार मनुष्यिनियोंमें अल्पबहुत्व है। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातगुणहानि नहीं है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है।

§ ४१६. अनुदिशसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व,

णवुंस० णत्थि अप्पाबहुअं। अणंताणु०४ सव्वत्थोवा असंखे०गुणहाणि०। असंखे०-भागहाणि० असंखे०गुणा। बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुंछ० सव्वत्थोवा अवट्ठि०। असंखे०भागहाणि० असंखे०गुणा। असंखे०भागवड्ढि० संखे०गुणा। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं ओघं। एवं सव्वट्ठे। णवरि सव्वत्थ संखेज्जगुणं कायव्वं। एवं जाव अणाहारि त्ति णेदव्वं।

तदो अप्पाबहुए समत्ते वड्ढिविहत्ती समत्ता।

पदणिक्खेवविभागं वड्ढिविहत्तिं च किं चि सुत्तादो।
वित्थरियं वित्थरदो सुत्तत्थविसारदो समत्थे तु ॥१॥
सो जयइ जस्स परमो अप्पाबहुअं पि दव्व-पज्जायं।
जाणइ णाणपुरंतो लोयालोएक्कदप्पणओ ॥२॥

❀ जहा उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं तहा संतकम्मट्ठाणाणि।

§ ४१७. सामित्तादिअणियोगद्दारेहि जहा उक्कस्सपदेससंतकम्मं परूविदं तहा पदेससंतकम्मट्ठाणाणि वि परूवेयव्वाणि, विसेसाभावादो। णवरि एत्थ तिण्णि अणियोगद्दाराणि—परूवणा पमाणमप्पाबहुए त्ति। तत्थ परूवणा सव्वकम्माणं जहण्ण-पदेससंतकम्मट्ठाणप्पहुडि जाव उक्कस्सपदेससंतकम्मट्ठाणं ति ताव कमेण संतवियप्पपरूवणं।

सम्यग्मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका अल्पबहुत्व नहीं है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। हास्य, रति, अरति और शोकका भङ्ग ओघके समान है। इसीप्रकार सर्वार्थसिद्धि में अल्पबहुत्व है। इतनी विशेषता है कि सर्वत्र संख्यातगुणा करना चाहिए। इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त होनेपर वृद्धिविभक्ति समाप्त हुई।

जो सूत्रका अर्थ करनेमें विशारद और समर्थ हैं उन्होंने पदनिक्षेपविभक्ति और वृद्धि-विभक्तिका सूत्रके अनुसार विस्तारसे कुछ व्याख्यान किया है ॥ १ ॥

जिनके ज्ञानरूपी पुरके भीतर लोकालोकरूपी एक उत्कृष्ट दर्पण अल्पबहुत्वको लिए हुए समस्त द्रव्य और पर्यायोंको जानता है वे भगवान् जयवन्त हों ॥ २ ॥

*** जिस प्रकार उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म है उसप्रकार सत्कर्मस्थान हैं।**

§ ४१७. स्वामित्व आदि अनुयोगद्वारोंका आश्रय लेकर जिस प्रकार उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मका कथन किया है उसप्रकार प्रदेशसत्कर्मस्थानोंका भी कथन करना चाहिए, क्योंकि कोई विशेषता नहीं है। इतनी विशेषता है कि यहाँ पर तीन अनुयोगद्वार हैं—प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व। उनमेंसे सब कर्मोंके जघन्य प्रदेशसत्कर्मस्थानसे लेकर उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मस्थान तक क्रमसे

सा च जहण्णसामित्तविहाणेण परूविदा त्ति ण पुणो परूविज्जदे। अहवा सव्व-कम्माणमत्थि पदेससंतकम्मट्ठाणाणि त्ति संतपरूवणा परूवणा णाम। पमाणं सव्वेसिं कम्माणमणंताणि पदेससंतकम्मट्ठाणाणि त्ति। अप्पाबहुअं जहा उक्कस्सपदेससंत-कम्मस्स परूविदं तहा अणूणाहियमेत्थ परूवेयव्वं। णवरि जस्स कम्मस्स पदेसग्गं विसेसाहियं तस्स पदेससंतकम्मट्ठाणाणि विसेसाहियाणि, संखेज्जगुणस्स संखेज्जगुणाणि, असंखेज्जगुणस्स असंखेज्जगुणाणि, अणंतगुणस्स अणंतगुणाणि त्ति आलावकओ विसेसो। सेसं सुगमं। एवमेदेसु पदणिक्खेव-वड्डि-ट्ठाणेसु सवित्थरं परूविदेसु उत्तरपयडिपदेसविहत्ती समत्ता होदि।

एवं पदेसविहत्ती समत्ता।

झीणाझीणचूलिया

झाइय जिणिंदयंदं झाणाणलझीणघाइकम्मंसं।
झीणाझीणहियारं जहोवएसं पयासेहं ॥ १ ॥

❀ एत्तो झीणमझीणं ति पदस्स विहासा कायव्वा।

§ ४१८. एत्तो उवरि झीणमझीणं ति जं पदं तस्स विहासा कायव्वा त्ति

सत्कर्मके भेदोंका कथन करना प्ररूपणा है। परन्तु वह जघन्य स्वामित्वविधिके साथ कही गई है, इसलिए पुनः इसका कथन नहीं करते। अथवा सब कर्मोंके प्रदेशसत्कर्मस्थान हैं, इसलिए सत्कर्मोंकी प्ररूपणा करना प्ररूपणा है। प्रमाण—सब कर्मोंके अनन्त प्रदेशसत्कर्मस्थान हैं। अल्पबहुत्व—जिसप्रकार उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मका कथन किया है उस प्रकार न्यूनाधिकतासे रहित यहाँ पर कथन करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जिस कर्मका प्रदेशाग्र विशेष अधिक है उसके प्रदेशसत्कर्मस्थान विशेष अधिक हैं, संख्यातगुणेके संख्यातगुणे हैं, असंख्यातगुणेके असंख्यातगुणे हैं और अनन्तगुणेके अनन्तगुणे हैं इसप्रकार कथनकृत विशेषता है। शेष कथन सुगम है। इसप्रकार इन पदनिक्षेप, वृद्धि और स्थानोंका विस्तारके साथ कथन करनेपर उत्तरप्रकृति-प्रदेशविभक्ति समाप्त होती है।

इसप्रकार प्रदेशविभक्ति समाप्त हुई।

झीनाझीनचूलिका

जिन जिनेन्द्र चन्द्र या चन्द्रप्रभ जिनेन्द्रने ध्यानरूपी अग्निके द्वारा घातिकर्मोंको विध्वस्त कर दिया है उनका ध्यान करके मैं (टीकाकार) झीनाझीन नामक अधिकारको उपदेशानुसार प्रकाशित करता हूँ ॥ १ ॥

* इससे आगे 'झीणमझीणं' इस पदका विवरण करना चाहिये।

§ ४१८. अब तक गाथामें आये हुए 'उक्कस्समणुक्कस्सं' इस पद तकका विवरण किया। अब इससे आगे जो 'झीणमझीणं' पद आया है उसका विवरण करना चाहिए इस प्रकार सूत्रार्थका सम्बन्ध है।

सुत्तत्थसंबंधो। तत्थ का विहासा णाम ? सुत्तेण सूचिदत्थस्स विसेसियूण भासा विहासा विवरणं ति वुत्तं होदि। पदेसविहत्तीए सवित्थरं परूविय समत्ताए किमट्ठमेसो अहियारो ओदिण्णो त्ति ण पच्चवट्ठेयं, तिस्से चेव चूलियाभावेणेदस्सावयारब्भुवगमादो। कथमेसो पदेसविहत्तीए चूलिया त्ति वुत्ते वुच्चदे—तत्थ खलु उक्कड्डणाए उक्कस्सपदेससंचओ परूविदो ओकड्डणावसेण च खविदकम्मंसियम्मि जहण्णपदेससंचओ। तत्थ य कदमाए ट्ठिदीए ट्ठिदपदेसग्गमुक्कड्डणाए ओकड्डणाए च पाओग्गमप्पाओग्गं वा त्ति ण एरिसो विसेसो सम्ममवहारिओ। तदो तस्स तहाविहसत्तिविरहाविरहलक्खणत्तेण पत्तझीणाझीणववएसस्स ट्ठिदीओ अस्सिदूण परूवणट्ठमेसो अहियारो ओदिण्णो त्ति चूलियाववएसो ण विरुज्झदे।

शंका—सूत्रमें आये हुए 'विभाषा' इस पदका क्या अर्थ है ?

समाधान—सूत्रसे जो अर्थ सूचित होता है उसका विशेष रूपसे विवरण करना विभाषा है यह इस पदका अर्थ है। विभाषाका अर्थ विवरण है यह इसका तात्पर्य है।

यदि कोई ऐसी आशंका करे कि प्रदेशविभक्तिका विस्तारसे कथन हो लिया है, अतः इस अधिकारके कथन करनेकी क्या आवश्यकता है सो उसकी ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि उसीके चूलिका रूपसे यह अधिकार स्वीकार किया गया है।

शंका—यह अधिकार प्रदेशविभक्ति अधिकारका चूलिका है सो कैसे ?

समाधान—प्रदेशविभक्तिका कथन करते समय उत्कर्षणके द्वारा उत्कृष्ट प्रदेशसंचयका भी कथन किया है और अपकर्षणके वशसे क्षपित कर्मांशके जघन्य प्रदेशसञ्चयका भी कथन किया है। किन्तु वहाँ इस विशेषताका सम्यक् रीतिसे विचार नहीं किया गया है कि किस स्थितिमें स्थित कर्म उत्कर्षण और अपकर्षणके योग्य हैं तथा किस स्थितिमें स्थित कर्म उत्कर्षण और अपकर्षणके अयोग्य हैं, तथापि इसका विचार किया जाना आवश्यक है अतः इसप्रकारकी शक्तिके सद्भाव और असद्भावके कारण झीनाझीन इस संज्ञाको प्राप्त हुए कर्मपरमाणुओंका स्थितियोंकी अपेक्षा कथन करनेके लिए यह अधिकार आया है, इसलिए इसे चूलिका कहनेमें कोई विरोध नहीं है।

विशेषार्थ—पूर्वमें प्रदेशविक्तका विस्तारसे विवेचन किया है। तथापि उससे यह ज्ञात न हो सका कि सत्तामें स्थित कर्मपरमाणुओंमेंसे कौनसे कर्मपरमाणु उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण और उदयके योग्य हैं और कौनसे कर्मपरमाणु इनके अयोग्य हैं। इसीप्रकार इससे यह भी ज्ञात न हो सका कि इन कर्मपरमाणुओंमेंसे कौनसे कर्मपरमाणु उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त हैं, कौनसे कर्मपरमाणु निषेकस्थिति प्राप्त हैं, कौनसे कर्मपरमाणु अधःनिषेकस्थितिप्राप्त हैं और कौनसे कर्मपरमाणु उदयस्थितिप्राप्त हैं। परन्तु इन सब बातोंका ज्ञान करना आवश्यक है, इसीलिए प्रदेशविभक्तिके चूलिकारूपसे झीनाझीन और स्थितिग ये दो अधिकार आये हैं। चूलिकाका अर्थ है पूर्वमें कहे गये किसी विषयके सम्बन्धमें विशेष वक्तव्य। आशय यह है कि पूर्वमें जिस विषयका वर्णन कर चुकते हैं उसमें बहुतसी ऐसी बातें छूट जाती हैं जिनका कथन करना आवश्यक रहता है या जिनका कथन किये बिना उस विषयकी पूरी जानकारी नहीं हो पाती, इसलिये इन सब बातोंका खुलासा करनेके लिये एक या एकसे अधिक स्वतन्त्र अधिकार रचे जाते हैं जिनका पूर्व

§ ४१९. एत्थ चत्तारि अणियोगद्दाराणि सुत्तसिद्धाणि। तं जहा—समुक्तिणा परूवणा सामित्तमप्पाबहुअं चेदि। तत्थ समुक्तिणा णाम मोहणीयसव्वपयडीण-मुक्कड्डणादीहि चउहि झीणाझीणद्विदियस्स पदेसग्गस्स अत्थित्तमेत्तपरूवणा। तप्परूवणट्ट-मुत्तरपुच्छासुत्तेण अवसरो कीरदे—

❀ तं जहा।

§ ४२०. सुगममेदं पुच्छासुत्तं।

❀ **अत्थि ओकड्डणादो झीणट्ठिदियं उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं संकमणादो झीणट्ठिदियं उदयादो झीणट्ठिदियं।**

§ ४२१. एत्थ ताव सुत्तस्सेदस्स पढममवयवत्थविवरणं कस्सामो। 'अत्थि'सद्दो आदिदीवयभावेण चउण्हं पि सुत्तावयवाणं वावओ त्ति पादेक्कं संबंधणिज्जो। ओकड्डणा णाम परिणामविसेसेण कम्मपदेसाणं ट्ठिदीए दहरीकरणं। तदो झीणा अप्पाओग्गभावेण अवट्ठिदा ट्ठिदी जस्स पदेसग्गस्स तमोकड्डणादो झीणट्ठिदियं

अधिकारसे सम्बन्ध रहता है वे सब अधिकार चूलिका कहलाते हैं। प्रकृतमें प्रदेशविभक्तिका कथन किया जा चुका है किन्तु उसमें ऐसी बहुतसी बातें रह गई हैं जिनका निर्देश करना आवश्यक था। इसीकी पूर्तिके लिये झीनाझीन और स्थितिग ये दो चूलिका अधिकार आये हैं।

§ ४१९. इस झीनाझीन नामक चूलिकामें चार अनुयोगद्वार हैं जो आगे कहे जानेवाले सूत्रोंसे ही सिद्ध हैं। वे ये हैं—समुत्कीर्तना, प्ररूपणा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व। यहां समुत्कीर्तनाका अर्थ है मोहनीयकी सब प्रकृतियोंके उत्कर्षण आदि चारकी अपेक्षा झीनाझीन स्थितिवाले कर्म परमाणुओंके अस्तित्वमात्रका कथन करना। अब इसका कथन करनेके लिये आगेका पृच्छासूत्र कहते हैं—

* जैसे—

§ ४२०. यह पृच्छासूत्र सुगम है।

* **अपकर्षणसे झीन स्थितिवाले कर्मपरमाणु हैं, उत्कर्षणसे झीन स्थिति-वाले कर्मपरमाणु हैं, संक्रमणसे झीन स्थितिवाले कर्मपरमाणु हैं और उदयसे झीन स्थितिवाले कर्मपरमाणु हैं। आशय यह है कि ऐसे भी कर्मपरमाणु हैं जिनका अपकर्षण नहीं हो सकता, ऐसे भी कर्मपरमाणु हैं जिनका उत्कर्षण नहीं हो सकता, ऐसे भी कर्मपरमाणु हैं जिनका संक्रमण नहीं हो सकता और ऐसे भी कर्मपरमाणु हैं जो उदयप्राप्त होनेसे जिनका पुनः उदय नहीं हो सकता।**

§ ४२१. यहां अब सबसे पहले इस सूत्रमें जो 'अस्ति' पद आया है उसका खुलासा करते हैं। 'अस्ति' पद आदिदीपक होनेसे वह सूत्रके चारों ही अवयवोंसे सम्बन्ध रखता है, इसलिये उसे प्रत्येक अवयवके साथ जोड़ लेना चाहिये।

ओकड्डणादो झीणट्ठिदियं—परिणामविशेषके कारण कर्मपरमाणुओंकी स्थितिका कम करना अपकर्षण है। जिन कर्मपरमाणुओंकी स्थिति अपकर्षणसे झीन अर्थात् अपकर्षणके अयोग्य रूपसे स्थित है वे अपकर्षणसे झीन स्थितिवाले कर्मपरमाणु हैं। यह अवस्था यथायोग्य

सव्वकम्माणमत्थि। अहवा ओकड्डणादो भीणा परिहीणा जा ट्ठिदी तं गच्छदि त्ति ओकड्डणादो भीणट्ठिदियमिदि समासो कायव्वो। एवमुवरि सव्वत्थ। दहरट्ठिदिट्ठिद-पदेसग्गाणं ट्ठिदीए परिणामविसेसेण वड्ढावणमुक्कड्डणा णाम। तत्तो भीणा ट्ठिदी जस्स तं पदेसग्गं सव्वपयडीणमत्थि। संकमादो समयाविरोहेण एयपयडिट्ठिदिपदेसाणं अण्ण-पयडिसरूवेण परिणमणलक्खणादो भीणा ट्ठिदी जस्स तं पि पदेसग्गमत्थि सव्वेसिं कम्माणं। उदयादो कम्माणं फलप्पदाणलक्खणादो भीणा ट्ठिदी जस्स पदेसग्गस्स तं च सव्वकम्माणमत्थि त्ति। एत्थ सुत्तसमत्तीए 'चेदि' सद्दो किमट्ठं ण पवुत्तो? ण, सुत्तमेत्तियमेत्तं चेव ण होदि, किंतु अण्णं पि अज्झाहरिज्जमाणमत्थि। तदो तस्स समत्तीए 'चेदि' सद्दो अज्झाहारेयव्वो त्ति जाणावणट्ठं वक्कपरिसमत्तीए अकरणादो। किं तमज्झाहारिज्जमाणं सुत्तसेसमिदि चे वुच्चदे—ओकड्डणादो अभीणट्ठिदियं उक्कड्डणादो अभीणट्ठिदियं संकमणादो अभीणट्ठिदियं उदयादो अभीणट्ठिदियं चेदि त्ति। कधमेदमण्णहा भीणाभीणाणं परूवयसुत्तं हवेज्ज। सुत्ते पुण एसो अज्झाहारो सामत्थियलद्धो त्ति ण णिद्दिट्ठो।

सब कर्मोंमें सम्भव है। अथवा 'भीणट्ठिदियं' का संस्कृतरूप 'भीनस्थितिगं' भी होता है। इसलिये ऐसा समास करना चाहिए कि जो कर्म परमाणु अपकर्षणसे रहित स्थितिको प्राप्त हैं वे अपकर्षणसे भीन स्थितिवाले कर्मपरमाणु हैं। इसीप्रकार आगे सर्वत्र सब पदोंका दो प्रकारसे कथन करना चाहिये।

उक्कड्डणादो भीणट्ठिदियं—परिणाम विशेषके कारण अल्पस्थितिवाले कर्मपरमाणुओंकी स्थितिका बढ़ाना उत्कर्षणा है। सब प्रकृतियोंमें ऐसे भी कर्मपरमाणु हैं जिनकी स्थिति उत्कर्षणके अयोग्य है।

संकमणादो भीणट्ठिदियं—जैसा आगममें बतलाया है तदनुसार एक प्रकृतिके स्थितिगत कर्मपरमाणुओंका अन्य[1] सजातीय प्रकृतिरूप परिणमना संक्रमण है। सब कर्मोंमें ऐसे भी कर्मपरमाणु हैं जिनकी स्थिति संक्रमणके अयोग्य है, इसलिये वे संक्रमणसे भीन स्थितिवाले कर्मपरमाणु हैं।

उदयादो भीणट्ठिदियं—कर्मोंका फल देना उदय है। सब कर्मोंमें ऐसे भी कर्मपरमाणु हैं जिनकी स्थिति उदयके अयोग्य है, इसलिये वे उदयसे भीन स्थितिवाले कर्मपरमाणु हैं।

शंका—यहाँ सूत्रके अन्तमें 'चेदि' शब्द क्यों नहीं रखा?

समाधान—नहीं, क्योंकि सूत्र केवल इतना ही नहीं है किन्तु और भी अध्याहार करने योग्य है और तब जाकर उस अध्याहृत वाक्यके अन्तमें 'चेदि' शब्दका अध्याहार करना चाहिये। इसप्रकार यह बात बतलानेके लिए सूत्रवाक्यको समाप्त न करके यों ही छोड़ दिया है।

शंका—सूत्रका वह कौनसा अंश शेष है जो अध्याहार करने योग्य है?

समाधान—'ओकड्डणादो अभीणट्ठिदियं उक्कड्डणादो अभीणट्ठिदियं संकमणादो अभीणट्ठिदियं उदयादो अभीणट्ठिदियं चेदि' यह वाक्य है जो अध्याहार करने योग्य है।

यदि ऐसा न माना जाय तो यह सूत्र भीनाभीन दोनोंका प्ररूपक कैसे हो सकता है। तथापि इतना अध्याहार सामर्थ्यलभ्य है, इसलिये इसका सूत्रमें निर्देश नहीं किया।

§ ४२२. संपहि समुक्कित्तणाणियोगद्दारेण समुक्किन्तिदाणमेदेसिं सरूवविसय-णिण्णयजणणट्ठं परूवणाणिओगद्दारं परूवयमाणो जहा उद्देसो तहा णिद्देसो त्ति णाएण पहिल्लमेव ताव ओकड्डणादो झीणट्ठिदियं सपडिवक्खमासंकासुत्तेण पत्तावसरं करेदि—

❀ ओकड्डणादो झीणट्ठिदियं णाम किं ?

§ ४२३. अत्थि ओकड्डणादो झीणट्ठिदिगमिदि पुव्वं समुक्कित्तिदं। तत्थ कदममोकड्डणादो झीणट्ठिदियं ? किमविसेसेण सव्वट्ठिदिट्ठिदपदेसग्गमाहो अत्थि को वि विसेसो त्ति एसो पदस्स भावत्थो। एवमासंकिय तव्विसेसपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ जं कम्ममुदयावलियब्भंतरे ट्ठियं तमोकड्डणादो झीणट्ठिदियं। जमुदयावलियबाहिरे ट्ठिदं तमोकड्डणादो अज्झीणट्ठिदियं।

विशेषार्थ—झीनाझीन अधिकारका समुत्कीर्तना, प्ररूपणा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व इन चार उपअधिकारों द्वारा वर्णन किया गया है। इन चारोंका अर्थ स्पष्ट है। यहाँ सर्वप्रथम समुत्कीर्तनाका निर्देश करते हुए चूर्णिसूत्रकारने यह बतलाया है कि मोहनीयकी सब प्रकृतियोंमें ऐसे बहुतसे कर्मपरमाणु हैं जो यथासम्भव अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण और उदयके अयोग्य हैं। तथा बहुतसे ऐसे भी कर्मपरमाणु हैं जो यथासम्भव इनके योग्य भी हैं। यहाँ सूत्रमें यद्यपि सूत्रकारने अपर्षण आदिके अयोग्य परमाणुओंके होनेकी सूचना की है तथापि इस अधिकारका नाम झीनाझीन होनेसे यह भी सूचित हो जाता है कि बहुतसे ऐसे भी कर्मपरमाणु हैं जो अपकर्षण आदिके योग्य भी हैं। यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

§ ४२२. अब समुत्कीर्तना अनुयोगद्वारके द्वारा कहे गये इनके स्वरूप विषयक निर्णयका ज्ञान करानेके लिए प्ररूपणा अनुयोगद्वारका कथन करते हैं। उसमें भी उद्देश्यके अनुसार निर्देश किया जाता है इस न्यायके अनुसार सर्वप्रथम आंशकासूत्रद्वारा अपने प्रतिपक्षभूत कर्मके साथ अपकर्षणसे झीन स्थितिवाले कर्मके कथन करनेकी सूचना करते हैं—

* वे कौनसे कर्मपरमाणु हैं जो अपकर्षणसे झीन स्थितिवाले हैं।

§ ४२३. अपकर्षणसे झीन (रहित) स्थितिवाले कर्मपरमाणु हैं यह पहले कह आये हैं। अब इस विषयमें यह प्रश्न है कि वे कौनसे कर्मपरमाणु हैं जो अपकर्षणसे झीन स्थितिवाले हैं। क्या सामान्यसे सब स्थितियोंमें स्थित कर्मपरमाणु ऐसे हैं या कुछ विशेषता है यह इस सूत्रका भाव है। ऐसी आशंका कर अब उस विशेषताका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* जो कर्मपरमाणु उदयावलिके भीतर स्थित हैं वे अपकर्षणसे झीन स्थितिवाले हैं और जो कर्मपरमाणु उदयावलिके बाहर स्थित हैं वे अपकर्षणसे अझीन स्थितिवाले हैं। अर्थात् उदयावलिके भीतर स्थित कर्मपरमाणुओंका अपकर्षण नहीं होता किन्तु उदयावलिके बाहर स्थित कर्मपरमाणुओंका अपकर्षण हो सकता है।

§ ४२४. एत्थ जं कम्ममिदि वुत्ते जो कम्मपदेसो त्ति घेत्तव्वं। उदयावलिया त्ति उदयसमयप्पहुडि आवलियमेत्तट्ठिदीणमुत्तावलियायारेण ट्ठिदाणं सण्णा। कुदो ? उदयसहस्स उवलक्खणभावेण ठविदत्तादो। तदब्भंतरे ट्ठिदं जं पदेसग्गं तमोकड्डणादो झीणट्ठिदिगं। ण एदस्स ट्ठिदीए ओकड्डणमत्थि त्ति भावत्थो। कुदो ? सहावदो। एरिसो एदस्स सहावो त्ति कत्तो णव्वदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो। जं पुण उदयावलियबाहिरे ट्ठिदं पदेसग्गं तमोकड्डणादो अज्झीणट्ठिदिगमिदि एदेण सुत्तावयवेण उदयावलियबाहिरासेसट्ठिदिट्ठिदपदेसग्गं सव्वमोकड्डणापाओग्गमिदि वुत्तं होदि। एत्थ चोदओ भणदि—उदयावलियबाहिरे वि ओकड्डणादो ज्झीणट्ठिदियमप्पसत्थउवसामणा-णिधत्तीकरण-णिकाचणाकरणेहि अत्थि चेव जाव दंसणचरित्तमोहक्खवणुवसामयंअपुव्वकरणचरिमसमओ त्ति तदो किं वुच्चदे उदयावलियबाहिरट्ठिदिट्ठिदपदेसग्गमोकड्डणादो अज्झीणट्ठिदियमिदि ? एत्थ परिहारो वुच्चदे—जिस्से ट्ठिदीए पदेसग्गस्स ओकड्डणा अच्चंतं ण संभवइ सा ट्ठिदी ओकड्डणादो झीणा वुच्चइ, तिस्से अच्चंताभावेण पडिग्गहियत्तादो। ण च णिकाचिदपरमाणूणमेवंविहो णियमो अत्थि, अपुव्वकरण-

---

§ ४२४. यहाँ सूत्रमें जो 'जं कम्मं' ऐसा कहा है सो उससे 'जो कर्मपरमाणु' ऐसा अर्थ लेना चाहिये। जो उदय समयसे लेकर आवलिप्रमाण स्थितियाँ मुक्तावलिके समान स्थित हैं उनकी उदयावलि यह संज्ञा है, क्योंकि ये सब स्थितियाँ उपलक्षणरूपसे उदयप्राप्त स्थितिके साथ स्थापित हैं। इस उदयावलिके भीतर जो कर्मपरमाणु स्थित हैं वे अपकर्षणसे झीन स्थितिवाले हैं। इस उदयावलिप्रमाण स्थितियोंका अपकर्षण नहीं होता यह इस सूत्रका भाव है।

शंका—उदयावलिप्रमाण स्थितियोंका अपकर्षण क्यों नहीं होता ?

समाधान—क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

शंका—इसका ऐसा स्वभाव है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है।

किन्तु जो कर्मपरमाणु उदयावलिके बाहर स्थित हैं वे अपकर्षणसे अझीन स्थितिवाले हैं। इसप्रकार सूत्रके इस दूसरे वाक्यद्वारा यह कहा गया है कि उदयावलिके बाहर समस्त स्थितियोंमें स्थित जितने कर्मपरमाणु हैं वे सब अपकर्षणके योग्य हैं।

शंका—यहां पर शंकाकार कहता है कि उदयावलिके बाहर भी अप्रशस्त उपशामना, निधत्तीकरण और निकाचनाकरणके सम्बन्धसे ऐसे कर्मपरमाणु बच रहते हैं जो अपकर्षणके अयोग्य हैं। और उनकी यह अयोग्यता दर्शनमोहनीय या चरित्रमोहनीयकी क्षपणा या उपशामना करनेवाले जीवके अपूर्वकरणके अन्तिम समय तक बनी रहती है, तब फिर यह क्यों कहा जाता है कि उदयावलिके बाहरकी स्थितियोंमें स्थित कर्मपरमाणु अपकर्षणके योग्य हैं।

समाधान—जिस स्थितिके कर्मपरमाणुओंकी अपकर्षणा बिलकुल ही सम्भव नहीं, केवल वही स्थिति यहाँ अपकर्षणाके अयोग्य कही गई है, क्योंकि यहाँ ऐसे कर्मपरमाणुओंकी अपकर्षणाका निषेध किया है जो किसी भी हालतमें सम्भव नहीं है। किन्तु निकाचित आदि अवस्थाको प्राप्त हुए कर्मपरमाणुओंका ऐसा नियम तो है नहीं, क्योंकि वे कर्मपरमाणु अपूर्वकरण

सचरिमसमयादो उवरि तेसिमोकड्डणादिपाओग्गभावेण पडिणिययकालपडिबद्धाए ओकड्डणादीणमणागमणपइज्जाए अणुवलंभादो। एदेण सासणसम्माइट्ठिम्मि दंसणतियस्स उक्कड्डणादीहिंतो झीणट्ठिदियत्तसंभवविप्पडिवत्ती णिराकरिया, तत्थ वि सव्वकालमणागमणपइज्जाए अभावादो। एत्थ मिच्छत्तादिपयडिविसेसणिद्दे सं काऊण परूवणा किमट्ठं ण कीरदे? ण, विसेसविवक्खमकाऊण मूलुत्तरपयडीणं साहारणसरूवेण अट्ठपदस्स परूवणादो। ण च सामण्णे परूविदे विसेसा अपरूविदा णाम, तेसिं तत्तो पुधभूदाणमणुवलंभादो। तदो एत्थ पादेक्कं सव्वपयडीणमेसा अट्ठपदपरूवणा वित्थररुइसिस्साणुग्गहट्ठं कायव्वा।

के अन्तिम समयके बाद अनिवृत्तिकरणमें अपकर्षण आदिके योग्य हो जाते हैं और तब फिर उनकी अपकर्षण आदिको नहीं प्राप्त होनेकी जो प्रतिनियत काल तककी प्रतिज्ञा है वह भी नहीं रहती।

इस कथनसे सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंकी स्थितिकी उत्कर्षण आदि सम्भव नहीं होनेसे जो विप्रतिपत्ति उत्पन्न होती है उसका भी निराकरण कर दिया, क्योंकि उनमें भी उत्कर्षण आदिके नहीं होनेकी प्रतिज्ञा सदा नहीं पाई जाती।

शंका—इस सूत्रमें मिथ्यात्व आदि प्रकृतिविशेषका निर्देश करके कथन क्यों नहीं किया गया है?

समाधान—नहीं, क्योंकि यहाँ विशेष कथनकी विवक्षा न करके जो मूल और उत्तर प्रकृतियोंमें साधारण है ऐसे अर्थपदका निर्देश किया है और सामान्यकी प्ररूपणामें विशेषकी प्ररूपणा अप्ररूपित नहीं रहती, क्योंकि विशेष सामान्यसे पृथक् नहीं पाये जाते। किन्तु जो शिष्य विस्तारसे समझनेकी रुचि रखते हैं उनके उपकारके लिए यही अर्थपद प्ररूपणा सब प्रकृतियोंकी पृथक् पृथक् करनी चाहिये।

विशेषार्थ—यहाँपर यह बतलाया है कि कौन कर्मपरमाणु अपकर्षणके अयोग्य हैं और कौन कर्मपरमाणु अपकर्षणके योग्य हैं। एक ऐसा नियम है कि उदयावलिके भीतर स्थित कर्मपरमाणु सकल करणोंके अयोग्य होते हैं। अर्थात् उदयावलिके भीतर स्थित कर्मपरमाणुओंका अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमण आदि कुछ भी सम्भव नहीं है, उनका स्वमुख से या परमुखसे केवल उदय ही होता है, इसलिए इस परसे यह निष्कर्ष निकला कि उदयावलिके भीतर स्थित कर्मपरमाणु अपकर्षणके अयोग्य हैं, हाँ उदयावलिके बाहर जो कर्मपरमाणु स्थित हैं उनका अपकर्षण अवश्य हो सकता है। इसीलिए चूर्णिसूत्रकारने अपकर्षणके विषयमें यह नियम बनाया है कि उदयावलिके भीतर स्थित कर्मपरमाणु अपकर्षणसे झीन स्थितिवाले हैं और उदयावलिके बाहर स्थित कर्मपरमाणु अपकर्षणसे अझीन स्थितिवाले हैं। तब भी यह प्रश्न तो है ही कि उदयावलिके बाहर स्थित सब कर्मपरमाणु अपकर्षणके योग्य ही होते हैं ऐसा एकान्त नियम तो किया नहीं जा सकता, क्योंकि उदयावलिके बाहर स्थित जिन कर्मपरमाणुओंकी अप्रशस्त उपशम, निधत्तीकरण और निकाचनाकरण ये अवस्थाएँ हैं उनका अपकर्षण नहीं होता। इसीप्रकार सासादन गुणस्थानमें भी दर्शनमोहनीयकी तीनों प्रकृतियोंका अपकर्षण नहीं होता, इसलिये चूर्णिसूत्रकारने जो यह कहा है कि उदयावलिके बाहर स्थित कर्मपरमाणुओंका अपकर्षण हो सकता है सो उनका ऐसा कथन

§ ४२५. संपहि उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं सपडिवक्खं परूवयमाणो सुत्तयारो पुच्छासुत्तेण पत्थावमारभेइ—

❀ उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं णाम किं ?

§ ४२६. एत्थ उक्कड्डणादो अज्झीणट्ठिदियं णाम किमिदि वक्कसेसो कायव्वो। सेसं सुगमं। एवं पुच्छिदत्थविसए णिण्णयजणणट्ठमुत्तरसुत्तकलावं भणइ—

❀ जं ताव उदयावलियपविट्ठं तं ताव उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं।

§ ४२७. कुदो एदस्स उदयावलियपविट्ठस्स उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियत्तं ? सहावदो। को एत्थ सहावो णाम ? अच्चंताभावो। एदमेवमप्पवण्णणिज्जित्तादो

करना उचित नहीं है। इस प्रश्नका जो समाधान किया गया है उसका भाव यह है कि जो कर्मपरमाणु अप्रशस्त उपशामना, निधत्तीकरण या निकाचनाकरण अवस्थाको प्राप्त हैं उनकी वह अवस्था सदा नहीं बनी रहती है। किन्तु अनिवृत्तिकरणमें जाकर वह समाप्त हो जाती है और पहले जिनका अपकर्षण नहीं होता रहा अब उनका अपकर्षण होने लगता है। इसी प्रकार सासादनगुणस्थानका काल निकल जानेपर सासादनमें जिनका अपकर्षण नहीं होता रहा उनका तदनन्तर अपकर्षण होने लगता है, इसलिये उदयावलिके बाहर स्थित कर्मपरमाणुओं-को निरपवादरूपसे अपकर्षणके अयोग्य कहनेमें कोई आपत्ति नहीं है। यहां पर एक शंका और उठाई गई है कि अपकर्षणके योग्य और अयोग्य कर्मपरमाणुओंका कथन करते समय कर्म विशेषका निर्देश क्यों नहीं किया। अर्थात् यह क्यों नहीं बतलाया कि इस प्रकारकी अवस्था मोहनीयके किन किन कर्मोंमें पैदा होती है। इस शंकाका वीरसेन स्वामीने जो समाधान किया है उसका भाव यह है कि यहां जो सामान्य नियम बांधा गया है वह निरपवादरूपसे सब कर्मोंमें सम्भव है, इसलिये उसका प्रत्येक कर्मकी अपेक्षासे कथन नहीं किया है। तथापि जो शिष्य विस्तारसे समझना चाहते हैं उनके लिये इसी नियमका प्रत्येक कर्मकी अपेक्षासे कथन करनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

§ ४२५. अब चूर्णिसूत्रकार अपने प्रतिपक्षभूत कर्मपरमाणुओंके साथ उत्कर्षणसे झीन स्थितिवाले कर्मपरमाणुओंके कथन करनेकी इच्छासे पृच्छासूत्रद्वारा उसके कथन करनेका प्रस्ताव करते हैं—

*** वे कौनसे कर्मपरमाणु हैं जो उत्कर्षणसे झीन स्थितिवाले हैं।**

§ ४२६. इस सूत्रमें 'वे कौनसे कर्मपरमाणु हैं जो उत्कर्षणसे अझीन स्थितिवाले हैं' इतना वाक्य और जोड़ देना चाहिये। शेष कथन सुगम है। इस प्रकार पूछे गये अर्थके विषयमें निर्णय करनेके लिये आगेके सूत्रकलापको कहते हैं—

*** जो कर्म उदयावलिके भीतर स्थित हैं वे उत्कर्षणसे झीन स्थितिवाले हैं।**

§ ४२७. **शंका**—जो कर्मपरमाणु उदयावलिके भीतर स्थित हैं वे उत्कर्षणसे झीन स्थितिवाले क्यों हैं ?

समाधान—स्वभावसे।

शंका—यहाँ स्वभावसे क्या अभिप्रेत है ?

समाधान—अत्यन्ताभाव। अर्थात् उदयावलिके भीतर स्थित कर्मपरमाणुओंमें उत्कर्षण

सुगमत्तादो च सिद्धमरूवेण परूविय संपहि उदयावलियबाहिरे वि उक्कड्डणाए अप्पाओग्गपदेसस्स णिदरिसणं परूवेमाणो तदत्थित्ते पइज्जं करेदि—

*** उदयावलियबाहिरे वि अत्थि पदेसग्गमुक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं। तस्स णिदरिसणं। तं जहा।**

§ ४२८. एदं पुच्छासुत्तं णिदंसणविसयं सुगमं। एवं पुच्छिदे णिरुद्धट्ठिदि-परूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

*** जा समयाहियाए उदयावलियाए ट्ठिदी एदिस्से ट्ठिदीए जं पदेसग्गं तमादिट्ठं।**

§ ४२९. एत्थ समयाहियाए उदयावलियाए चरिमसमए ट्ठिदा जा ट्ठिदी णाणासमयपबद्धप्पिया एदिस्से ट्ठिदीए जं पदेसग्गं तमादिट्ठं विवक्खियमिदि सुत्तत्थ-संबंधो कायव्वो।

होनेकी योग्यताका अत्यन्त अभाव है।

इसप्रकार यह कथन अल्प होनेसे या सुगम होनेसे इसका सिद्ध रूप पहले बतलाकर अब उदयावलिके बाहर भी उत्कर्षणके अयोग्य कर्मपरमाणुओंका उदाहरण द्वारा दिखलाते हुए पहले उनके अस्तित्वकी प्रतिज्ञा करते हैं—

*** उदयावलिके बाहर भी उत्कर्षणसे झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणु हैं। उनका उदाहरण। जैसे—**

§ ४२८. यह उदाहरणविषयक पृच्छासूत्र है, जो सुगम है। ऐसा पूछनेपर उससे निरुद्ध स्थितिका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** एक समय अधिक उदयावलिके अन्तमें जो स्थिति स्थित है उस स्थितिके जो कर्मपरमाणु हैं वे यहाँ उदाहरणरूपसे विवक्षित हैं।**

§ ४२९. एक समय अधिक उदयावलिके अन्तिम समयमें नाना समयप्रबद्धोंसे सम्बन्ध रखनेवाली जो स्थिति स्थित है और उस स्थितिमें स्थित जो कर्मपरमाणु हैं वे यहाँ आदिष्ट अर्थात् विवक्षित हैं ऐसा इस सूत्रके अर्थका सम्बन्ध करना चाहिए।

विशेषार्थ—जिन कर्मपरमाणुओंकी स्थिति कम है उनकी तत्काल बँधनवाले कर्मके सम्बन्धसे स्थितिका बढ़ाना उत्कर्षण है। यह उत्कर्षण उदयावलिके भीतर स्थित कर्मपरमाणुओंका तो होता ही नहीं, क्योंकि उदयावलिके भीतर स्थित कर्मपरमाणुओंके स्वमुख या परमुखसे होनेवाले उदयको छोड़कर अन्य कोई अवस्था नहीं होती ऐसा नियम है। इसके साथ उदयावलिके बाहर जो कर्मपरमाणु स्थित हैं उनमें भी बहुतोंका उत्कर्षण नहीं हो सकता। प्रकृतमें यही बतलाना है कि वे कौनसे कर्मपरमाणु हैं जिनका उत्कर्षण नहीं हो सकता। इसके लिए सर्वप्रथम उदयावलिके बाहर प्रथम स्थितिमें स्थित कर्मपरमाणु यहाँ उदाहरणरूपसे लिये गये हैं। उदयावलिके बाहर प्रथम स्थितिमें स्थित उन सब कर्मपरमाणुओंमें यह विवेक करना है कि उनमें ऐसे कौनसे कर्मपरमाणु हैं जिनका उत्कर्षण नहीं हो सकता, क्योंकि वे कर्मपरमाणु नाना समयप्रबद्धसम्बन्धी हैं। इसलिए उनमेंसे कुछ कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण हो सकता है और कुछका नहीं।

§ ४३०. एत्थतणपदेसग्गं कम्मट्ठिदियब्भंतरे संचिदाणेगसमयपबद्धपडिबद्ध-मत्थि किं तं सव्वमेव उक्कड्डणाए अप्पाओग्गमाहो अत्थि को इ विसेसो त्ति आसंका-णिरायरणट्ठमुत्तरसुत्तमोयरइ—

❀ तस्स पदेसग्गस्स जइ समयाहियाए आवलियाए ऊणिया कम्म-ट्ठिदी विदिक्कंता बद्धस्स तं कम्मं ण सक्का उक्कड्डिदुं ।

§ ४३१. तस्स णिरुद्धट्ठिदीए पदेसग्गस्स जइ समयाहियाए आवलियाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता बद्धस्स बंधसमयादो पहुडि तं कम्मं णो सक्का उक्कड्डिदुं, सत्तिट्ठिदीए तत्तो उवरि एगसमयमेत्तस्स वि अभावादो । ण च उदयसमए ट्ठिदो जीवो उदयावलियबाहिराणंतरट्ठिदिपदेसग्गमुव्वरिदतेत्तियमेत्तकम्मट्ठिदिय-मुक्कड्डिदुं समत्थो, उक्कड्डणापाओग्गभावस्स कम्मट्ठिदिपरिहाणीए विणट्ठत्तादो । तदो एदमुक्कड्डणादो झीणट्ठिदियमिदि एसो सुत्तस्स भावत्थो ।

---

§ ४३०. इस पूर्वोक्त स्थितिके कर्मपरमाणु कर्मस्थितिके भीतर सञ्चित हुए अनेक समय-प्रबद्धसम्बन्धी हैं सो क्या वे सबके सब उत्कर्षणके अयोग्य हैं या इनमें कोई विशेषता है ? इस प्रकार इस आशंकाके निराकरण करनेके लिए आगेका सूत्र आया है—

*** किन्तु उन कर्म परमाणुओंकी बन्ध समयसे लेकर यदि एक समय अधिक एक आवलिसे न्यून सब कर्मस्थिति व्यतीत हो गई है तो उन कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण नहीं हो सकता ।**

§ ४३१. पहले उदाहरणरूपसे जिस स्थितिका निर्देश किया है उसके उन कर्मपरमाणुओंकी बद्धस्स अर्थात् बन्धके समयसे लेकर यदि एक समय अधिक एक आवलिसे न्यून शेष सब कर्मस्थिति व्यतीत हो गई है तो उन कर्म परमाणुओंका उत्कर्षण नहीं हो सकता, क्योंकि उनकी उस स्थितिसे अधिक एक समयमात्र भी शक्तिस्थिति नहीं पाई जाती। और उदय समयमें स्थित हुआ जीव उदयावलिके बाहर अनन्तर समयवर्ती स्थितिके ऐसे कर्म परमाणुओंका, जिनकी कर्मस्थिति उतनी ही अर्थात् एक समय अधिक उदयावलि प्रमाण ही शेष रही है, उत्कर्षण करनेमें समर्थ नहीं हो सकता; क्योंकि कर्मस्थितिकी हानि हो जानेसे उन कर्म परमाणुओंके उत्कर्षणकी योग्यता ही नष्ट हो गई है, इसलिये ये कर्मपरमाणु उत्कर्षणसे झीन स्थितिवाले हैं यह इस सूत्रका भावार्थ है ।

विशेषार्थ—यह तो पहले ही बतला आये हैं कि उत्कर्षण सब कर्म परमाणुओंका न होकर कुछका होता है और कुछका नहीं होता। जिनका नहीं होता उनका संक्षेपमें व्योरा इस प्रकार है—

१—उदयावलिके भीतर स्थित कर्म परमाणुओंका उकर्षण नहीं होता ।

२—उदयावलिके बाहर भी सत्तामें स्थित जिन कर्मपरमाणुओंकी कर्मस्थिति उत्कर्षणके समय बँधनेवाले कर्मोंकी आबाधाके बराबर या इससे कम शेष रही है उनका भी उत्कर्षण नहीं होता ।

३ - निर्व्याघात दशामें उत्कर्षणको प्राप्त होनेवाले कर्म परमाणुओंकी अतिस्थापना कमसे

§ ४३२. तिस्से चेव णिरुद्धट्ठिदीए अण्णं पि पदेसग्गमुक्कड्डणादो परिहीण-ट्ठिदियमत्थि त्ति परूवणट्ठमुवरिमसुत्तमोइण्णं —

*** तस्सेव पदेसग्गस्स जइ वि दुसमयाहियाए आवलियाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता तं पि उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं।**

§ ४३३. सुगमं। किमट्ठमेदस्स उवरिमाणंतरट्ठिदीए ण उक्कड्डिज्जइ तं पदेसग्गं? ण, जहण्णाबाहामेत्ताए अइच्छावणाए अभावादो। ण च आबाहाए अब्भंतरे उक्कड्डणस्स संभवो, 'बंधे उक्कड्डदि' त्ति वयणादो। ण हि अहिणवबज्झमाणपरमाणू आबाहाए अब्भंतरे अत्थि, विरोहादो।

कम एक आवलिप्रमाण बनजाई है, इसलिये अतिस्थापनारूप द्रव्यमें उत्कर्षित द्रव्यका निक्षेप नहीं होता।

४—व्याघात दशामें कमसे कम आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण अतिस्थापना और इतना ही निक्षेप प्राप्त होनेपर उत्कर्षण होता है, अन्यथा नहीं होता।

जहाँ अतिस्थापना एक आवलि और निक्षेप आवलिका असंख्यातवाँ भाग आदि बन जाता है वहाँ निर्व्याघात दशा होती है और जहाँ अतिस्थापनाके एक आवलिप्रमाण होनेमें बाधा आती है वहाँ व्याघात दशा होती है। जब प्राचीन सत्तामें स्थित कर्म परमाणुओंकी स्थितिसे नूतन बन्ध अधिक हो पर इस अधिकका प्रमाण एक आवलि और एक आवलिके असंख्यातवें भागके भीतर ही प्राप्त हो तब यह व्याघात दशा होती है। इसके सिवा उत्कर्षणमें सर्वत्र निर्व्याघात दशा ही जाननी चाहिये।

प्रकृतमें जिन कर्मपरमाणुओंके उत्कर्षणका निषेध किया है उनसे सम्बन्ध रखनेवाले समयप्रबद्धकी कर्मस्थिति केवल एक समय अधिक एक आवलिमात्र ही शेष रही है, इसलिये इनका नियम नम्बर दो के अनुसार उत्कर्षण नहीं हो सकता; क्योंकि यहाँ जिन कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण विवक्षित है उनका कर्मपरमाणुओंसे सम्बन्ध रखनेवाले समयप्रबद्धकी कर्मस्थिति उतनी ही शेष रही है, इसलिये उन कर्मपरमाणुओंमें शक्तिस्थितिका सर्वथा अभाव होनेसे उनका उत्कर्षण नहीं हो सकता।

§ ४३२. उसी विवक्षित स्थितिके अन्य कर्म परमाणु भी उत्कर्षणके अयोग्य हैं, अब इस बातका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

*** उन्हीं कर्मपरमाणुओंकी यदि दो समय अधिक एक आवलिसे न्यून शेष कर्मस्थिति व्यतीत हो गई है तो वे कर्मपरमाणु भी उत्कर्षणसे झीन स्थितिवाले हैं।**

§ ४३३. यह सूत्र सुगम है।

शंका—अपनेसे ऊपरकी अनन्तरवर्ती एक स्थितिमें उन कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण क्यों नहीं होता?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहाँ जघन्य आबाधाप्रमाण अतिस्थापना नहीं पाई जाती और आबाधाके भीतर उत्कर्षण हो नहीं सकता, क्योंकि 'बन्धके समय ही उत्कर्षण होता है' ऐसा आगमवचन है। यदि कहा जाय कि नूतन बँधनेवाले कर्म परमाणु आबाधाके भीतर पाये जाते हैं सो भी बात नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता है।

✱ एवं गंतूण जदि वि जहण्णियाए आबाहाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता तं पि उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं ।

§ ४३४. एवं तिसमयाहियावलियादिपरिहीणकम्मट्ठिदिं समाणिय ट्ठिदिपदेसग्गाणमुक्कड्डणादो झीणट्ठिदियत्तं वत्तव्वं, अइच्छावणाए पडिवुण्णत्ताभावेण णिक्खेवस्स च अच्चंताभावेण पुव्विल्लादो विसेसाभावा। 'एवं गंतूण जइ वि जहण्णियाए० झीणट्ठिदिगं' इदि एत्थ चरिमवियप्पे जइ वि अइच्छावणा संपुण्णा तो वि णिक्खेवाभावेण झीणट्ठिदियत्तं पडिवज्जेयव्वं। सेसं सुगमं।

विशेषार्थ—पहले यह बतलाया गया है कि जिन कर्मपरमाणुओंकी कर्मस्थिति उदयावलि से केवल एक समय अधिक शेष है उनका उत्कर्षण नहीं होता। तब यह प्रश्न हुआ कि जिस समयप्रबद्धकी कर्मस्थिति दो समय अधिक एक आवलिप्रमाण शेष है उसी समयप्रबद्धके एक समय अधिक उदयावलिके अन्तिम समयमें स्थित कर्मपरमाणुओंका अनन्तरवर्ती उपरितन स्थितिमें उत्कर्षण होता है क्या? इसी प्रश्नका उत्तर देते हुए यहां यह बतलाया गया है कि तब भी उत्कर्षण सम्भव नहीं है। इसका यहां पर जो कारण बतलाया है उसका आशय यह है कि उत्कर्षण बन्धके समय ही होता है। फिर भी उत्कर्षित द्रव्यका निक्षेप अतिस्थापना प्रमाण स्थितिको छोड़कर ऊपरकी स्थितिमें ही होता है और प्रकृतमें अतिस्थापना जघन्य आबाधासे कम तो हो ही नहीं सकती, क्योंकि आबाधाकालके भीतर नवीन बंधे हुए कर्मोंकी निषेक रचना न होनेसे आबाधाकालके भीतर उत्कर्षणको प्राप्त हुए द्रव्यका निक्षेप ही सम्भव नहीं है। यह माना कि आबाधाकालके भीतर सत्तामें स्थित कर्मोंकी निषेक रचना पाई जाती है, किन्तु 'बन्धके समय ही उत्कर्षण होता है' ऐसा कथन करनेसे यह निष्कर्ष निकलता है कि उत्कर्षणको प्राप्त हुए द्रव्यका निक्षेप तत्काल बँधनेवाले कर्मके निषेकों में ही होता है। पर यह निषेक रचना आबाधाकालके भीतर नहीं पाई जाती, इसलिये आबाधा निक्षेपके अयोग्य है यह सिद्ध होता है। इस प्रकार उदयावलिके अनन्तर समयवर्ती कर्म परमाणुओंका उदयावलिके अनन्तर द्वितीय समयवर्ती स्थितिमें निक्षेप नहीं हो सकता यह सिद्ध होता है और यही प्रकृत सूत्रका आशय है।

✱ इस प्रकार जाकर यद्यपि विवक्षित कर्म परमाणुओंकी जघन्य आबाधासे न्यून कर्मस्थिति व्यतीत हो गई है तो भी वे कर्म परमाणु उत्कर्षणसे झीन स्थितिवाले होते हैं।

§ ४३४. तीन समय अधिक एक आवलिसे न्यून शेष सब कर्मस्थितिको समाप्त करके स्थित हुए कर्म परमाणु भी उत्कर्षणसे झीन स्थितिवाले होते हैं ऐसा यहाँ कथन करना चाहिये, क्योंकि अतिस्थापना पूरी न होनेसे और निक्षेपका अत्यन्त अभाव होनेसे पूर्व सूत्रके कथनसे इसमें कोई विशेषता नहीं है। 'इस प्रकार जाकर यद्यपि जघन्य आबाधासे न्यून कर्मस्थिति व्यतीत हो गई है तो भी वे कर्मपरमाणु उत्कर्षणसे झीन स्थितिवाले होते हैं' इस प्रकार इस अन्तिम विकल्पमें यद्यपि अतिस्थापना पूरी है तो भी निक्षेपका अभाव होनेसे (एक समय अधिक एक आवलिके अन्तिम समयवर्ती कर्म परमाणुओंका) उत्कर्षणसे झीन स्थितिपना जानना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

विशेषार्थ—पहले उदाहरणरूपसे जो एक समय अधिक उदयावलिके अन्तिम समयमें

४३५. संपहि अज्झीणट्ठिदियस्स उक्कड्डणापाओग्गस्स तस्सेव णिरुद्धट्ठिदि-पदेसग्गस्स परूवणट्ठमुत्तरसुत्तमागयं—

⁂ समयुत्तराए उदयावलियाए तिस्से ट्ठिदीए जं पदेसग्गं तस्स पदेसग्गस्स जइ जहण्णियाए आबाहाए समयुत्तराए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता तं पदेसग्गं सक्का आबाधामेत्तमुक्कड्डिउमेक्किस्से ट्ठिदीए णिसिंचिदुं।

§ ४३६. गयत्थमेदं, सुगमासेसावयवत्तादो। णवरि आबाधामेत्तमुक्कड्डिउमिदि एत्थ उक्कड्डियूण त्ति घेत्तव्वं। अहवा, आबाहामेत्तमुक्कड्डिदुमेक्किस्से ट्ठिदीए णिसिंचिदुं चेदि संबंधो कायव्वो। च सद्देण विणा वि समुच्चयट्ठावगमादो। एदस्स सुत्तस्स भावत्थो—पुव्वमादिट्ठट्ठिदीए पदेसग्गस्स बंधसमयादो पहुडि जइ जहण्णाबाहाए समयाहियाए ऊणिया कम्मट्ठिदी वदिक्कंता होज्ज तो तं पदेसग्गं जहण्णाबाहामेत्त-मुक्कड्डिय उवरिमाणंतराए एक्किस्से ट्ठिदीए णिसिंचिदुं सक्कं, तप्पाओग्गजहण्णाए

स्थित कर्म परमाणु बनलाये हैं सो उनका उत्कर्षण कब तक नहीं हो सकता यह इस सूत्रमें बतलाया है। यदि तीन समय अधिक उदयावलिप्रमाण स्थिति शेष हो और बाकीकी स्थिति गल गई हो तो भी एक समय अधिक उदयावलिके अन्तिम समयवर्ती उन कर्म परमाणुओंका शेष दो स्थितिमें उत्कर्षण नहीं होता, क्योंकि प्रकृतमें अतिस्थापनाका प्रमाण जो जघन्य आबाधा बतलाया है वह अभी पूरा नहीं हुआ है और निक्षेपका अभाव तो बना हुआ ही है। इसी प्रकार चार समय अधिक, पांच समय अधिक उदयावलिप्रमाण स्थितिसे लेकर आबाधाकाल प्रमाण स्थितिके शेष रहने पर भी उक्त कर्म परमाणुओंका उत्कर्षण नहीं होता, क्योंकि यहां अन्तिम विकल्पके सिवा और सब विकल्पोंमें अतिस्थापना तो पूरी हुई नहीं और निक्षेपका अभाव तो सर्वत्र ही बना हुआ है।

§ ४३५. अब उसी स्थितिके जो कर्म परमाणु उत्कर्षणसे अझीन स्थितिवाले अर्थात् उत्कर्षणके योग्य हैं उनका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

⁂ एक समय अधिक उदयावलिप्रमाण उसी स्थितिके ऐसे कर्म परमाणु लो जिनकी यदि एक समय अधिक जघन्य अबाधासे न्यून शेष कर्मस्थिति गली है तो उन कर्म परमाणुओंका जघन्य आबाधप्रमाण उत्कर्षण और आबाधासे ऊपर की एक स्थितिमें निक्षेप ये दोनों बातें शक्य हैं।

§ ४३६ इस सूत्रका अर्थ अवगतप्राय है, क्योंकि इसके सब अवयवोंका अर्थ सुगम है। किन्तु इतनी विशेपता है कि 'आबाधामेत्तमुकड्डिउं' इस वाक्यमें स्थित 'उक्कड्डिउं' का अर्थ 'उत्कर्षण करके' करना चाहिये। अथवा 'आबाधाप्रमाण उत्कर्षण करनेके लिये और एक स्थिति में निक्षेप करनेके लिये शक्य है' ऐसा सम्बन्ध कर लेना चाहिये, क्योंकि यद्यपि वाक्य में 'च' पद नहीं दिया है तो भी समुच्चयरूप अर्थका ज्ञान हो जाता है। इस सूत्र का यह भावार्थ है कि पहले उदाहरणरूपसे निर्दिष्ट की गई स्थितिके कर्मपरमाणुओंकी यदि बन्ध समयसे लेकर एक समय अधिक जघन्य आबाधासे न्यून शेष कर्मस्थिति व्यतीत हो गई हो तो उन कर्मपरमाणुओं का जघन्य आबाधाप्रमाण उत्कर्षण होकर उसके ऊपर अनन्तर समयवर्ती एक स्थितिमें निक्षेप

मइच्छावणाणिक्खेवाणमेत्थुवलंभादो। तदो एदमुक्कड्डणादो अज्झीणट्ठिदियमिदि उवरि सव्वत्थ उक्कड्डणापडिसेहो णत्थि त्ति जाणावणट्ठं तव्विसयमाहप्पमुत्तरसुत्तेण भणइ—

*** जइ दुसमयाहियाए आबाहाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता तिसमयाहियाए वा आबाहाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता। एवं गंतूण वस्सेण वा वासपुधत्तेण वा सागरोवमेण वा सागरोवमपुधत्तेण वा ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता तं सव्वं पदेसग्गं उक्कड्डणादो अज्झीणट्ठिदियं।**

§ ४३७. एदस्स सुत्तस्स सुगमासेसावयवकलावस्स भावत्थो—पुव्वणिरुद्धाए समयाहियउदयावलियचरिमट्ठिदीए पदेसग्गस्स बंधसमयप्पहुडि वोलाविय समयाहियजहण्णाबाहादिउवरिमासेससुत्तुत्तवियप्पपरिहीणकम्मट्ठिदियस्स णत्थि उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियत्तं। सव्वमेव तमुक्कड्डणापाओग्गमिदि सव्वस्स वि एदस्स समयाविरोहेण उक्कड्डिज्जमाणयस्स आबाहमेत्ती अइच्छावणा। णिक्खेवो पुण समयुत्तरादिकमेण वड्ढमाणो गच्छदि जाव उक्कस्साबाहाए समयाहियावलियाए च ऊणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ त्ति। एत्थ सागरोवमपुधत्तेण वा त्ति एदेण वा सद्देण अवुत्तसमुच्चयट्ठेण सागरोवमदसपुधत्तेण वा सदपुधत्तेण वा सहस्सपुधत्तेण वा लक्खपुधत्तेण वा कोडिपुधत्तेण वा अंतोकोडाकोडीए वा कोडाकोडिपुधत्तेण वा त्ति एदे संभविणो वियप्पा घेत्तव्वा।

होना शक्य है, क्योंकि यहां तद्योग्य जघन्य अतिस्थापना और निक्षेप ये दोनों पाये जाते हैं, इसलिये ये कर्मपरमाणु उत्कर्षणसे अझीन स्थितिवाले हैं। अब आगे सर्वत्र उत्कर्षणका निषेध नहीं है यह जतानेके लिये अगले सूत्रद्वारा उस विषयका माहात्म्य बतलाते हैं—

*** तथा उसी पूर्वोक्त स्थितिकी यदि दो समय अधिक आबाधासे न्यून कर्मस्थिति गली है या तीन समय अधिक आबाधासे न्यून कर्मस्थिति गली है। इसी प्रकार आगे जाकर यदि एक वर्ष, वर्षपृथक्त्व, एक सागर या सागर पृथक्त्वसे न्यून शेष कर्मस्थिति गली है तो वे सब कर्मपरमाणु उत्कर्षणसे अझीन स्थितिवाले होते हैं।**

§ ४३७. इस सूत्रके सब पद यद्यपि सुगम हैं तथापि उसका भावार्थ यह है कि पूर्व निर्दिष्ट एक समय अधिक उदयावलिके अन्तिम समयमें स्थित स्थितिके कर्मपरमाणुओंकी जिसने बन्ध समयसे लेकर एक समय अधिक जघन्य आबाधा आदि आगेकी सूत्रोक्त सब स्थितिविकल्पोंसे न्यून कर्मस्थितिको गला दिया है उसके वे कर्मपरमाणु उत्कर्षणसे झीन स्थितिवाले नहीं होते अर्थात् उसके वे कर्मपरमाणु उत्कर्षणके योग्य होते हैं, इसलिये इन सभी कर्मपरमाणुओं का यथाशास्त्र उत्कर्षण होता है। और तब अतिस्थापना आबाधाप्रमाण होती है। किन्तु निक्षेप एक समयसे लेकर उत्तरोत्तर एक एक समय बढ़ता हुआ उत्कृष्ट आबाधा और एक समय अधिक एक आवलिसे न्यून सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरके प्राप्त होने तक बढ़ता जाता है। इस सूत्रमें 'सागरोवमपुधत्तेण वा' यहां पर आया हुआ 'वा' शब्द अनुक्त विकल्पोंके समुच्चयके लिये है जिससे दस सागरपृथक्त्व, सौ सागर पृथक्त्व, हजार सागर पृथक्त्व, लाख सागर पृथक्त्व, कोड़ी सागर पृथक्त्व, अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर और कोड़ाकोड़ी सागर पृथक्त्व ये सब सम्भव

मुत्तुत्तवियप्पाणं देसामासयभावेण वा एदेसिं संगहो कायव्वो ।

विकल्प ग्रहण करने चाहिए या सूत्रोक्त विकल्प देशामर्षक होनेसे इन विकल्पोंका संग्रह करना चाहिए ।

विशेषार्थ—पहले यह बतलाया जा चुका है कि एक समय अधिक उदयावलिके अन्तिम समयमें स्थित कौनसे कर्मपरमाणु उत्कर्षणके अयोग्य हैं। अब पिछले दो सूत्रोंमें यह बतलाया गया है कि कौनसे कर्मपरमाणु उत्कर्षणके योग्य हैं। इसका खुलासा करते हुए जो बतलाया गया है उसका भाव यह है कि उस एक समय अधिक उदयावलिके अन्तिम समयमें स्थित जिन कर्मपरमाणुओंसम्बन्धी समयप्रबद्धोंकी स्थिति यदि आबाधासे एक समय आदि के क्रम से अधिक शेष रहती है तो उन कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण हो सकता है और ऐसा होते हुए जितनी आबाधा होती है उतना अतिस्थापनाका प्रमाण होता है तथा आबाधासे जितनी अधिक स्थिति होती है उतना निक्षेप का प्रमाण होता है। यदि आबाधासे एक समय अधिक होती है तो निक्षेपका प्रमाण एक समय होता है। यदि दो समय अधिक होती है तो निक्षेपका प्रमाण दो समय होता है। इसी प्रकार तीन समय, चार समय, संख्यात समय, असंख्यात समय, एक दिन, एक मास, एक वर्ष, वर्षपृथक्त्व, एक सागर, सागर पृथक्त्व, दस सागर पृथक्त्व, सौ सागर पृथक्त्व, हजार सागर पृथक्त्व, लाख सागर पृथक्त्व, करोड़ सागर पृथक्त्व, अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर, कोड़ाकोड़ीसागर पृथक्त्वरूप जितनी स्थिति शेष रहती है उतना निक्षेपका प्रमाण होता है। इस प्रकार यदि उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण प्राप्त किया जाता है तो वह उत्कृष्ट आबाधा और एक समय अधिक एक आवलिसे न्यून सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण प्राप्त होता है। यह उत्कृष्ट निक्षेप एक समय अधिक बन्धावलिको गलाकर उदयावलिकी उपरितन स्थितिमें स्थित कर्म परमाणुओंका उत्कर्षण करने पर प्राप्त होता है। परन्तु उस उदयावलिकी उपरितन स्थितिमें अनेक समयप्रबद्धोंके परमाणु होते हैं, इसलिये किन परमाणुओंका उत्कर्षण करने पर यह उत्कृष्ट निक्षेप प्राप्त होता है इसका खुलासा करते हैं—

किसी एक संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवने मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किया। फिर बन्धावलिको गलाकर उसने आबाधाके बाहर स्थितिमें स्थित कर्मपरमाणुओंका अपकर्षण करके उदयावलिके बाहर निक्षेप किया। यहाँ उदयावलिके बाहर द्वितीय समयवर्ती स्थितिमें अपकर्षण करके निक्षिप्त किया गया द्रव्य विवक्षित है, क्योंकि उदयावलिके बाहर प्रथम समयमें निक्षिप्त द्रव्यका तदनन्तर समय में उदयावलिके भीतर प्रवेश हो जाता है, इसलिये उसका उत्कर्षण नहीं हो सकता। अनन्तर दूसरे समयमें उत्कृष्ट संक्लेशके वशसे उत्कृष्ट स्थितिको बांधता हुआ विवक्षित कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण करके उन्हें वह आबाधाके बाहर प्रथम निषेकस्थितिसे लेकर सब निषेक स्थितियोंमें निक्षेप करता है। केवल एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण अन्तिम स्थितियोंमें निक्षेप नहीं करता, क्योंकि उनमें निक्षेप करने योग्य उन कर्म परमाणुओंकी शक्तिस्थिति नहीं पाई जाती। यहाँ उत्कृष्ट आबाधाके भीतर निक्षेप नहीं है और अन्तकी एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण स्थितियोंमें निक्षेप नहीं हैं, इसलिये उत्कृष्ट स्थितिमेंसे इतना कम कर देने पर निक्षेपका प्रमाण उत्कृष्ट आबाधा और एक समय अधिक एक आवलिसे न्यून उत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण प्राप्त होता है।

अब यहाँ प्रकरणसे उत्कर्षणका काल, अतिस्थापना, निक्षेप और शक्तिस्थिति इन चार बातोंका भी खुलासा किया जाता है, क्योंकि इनको जाने बिना उत्कर्षणका ठीक तरहसे ज्ञान नहीं हो सकता।

§ ४३८ संपहि उदयट्ठिदीदो हेट्ठिमासेसकम्मट्ठिदिसंचिदसमयपबद्धपदेसग्गस्स अहियारट्ठिदीए अविसेसेण संभवविसयासंकाणिरायरणदुवारेण अवत्थुवियप्पाणं णवकबंधमस्सियूण परूवणट्ठमुत्तरसुत्ताणमवयारो। ण च एदेसिं परूवणा णिरत्थिया, तप्पदुप्पायणमुहेण उक्कड्डणाविसए सिस्साणं णिण्णयजणणेण एदिस्से फलोवलंभादो।

१ उत्कर्षणका काल—उत्कर्षण बन्धके समय ही होता है। अर्थात् जब जिस कर्मका बन्ध हो रहा हो तभी उस कर्मके सत्तामें स्थित कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण हो सकता है, अन्यका नहीं। उदाहरणार्थ—यदि कोई जीव साता प्रकृतिका बन्ध कर रहा है तो उस समय सत्तामें स्थित साता प्रकृतिके कर्मपरमाणुओंका ही उत्कर्षण होगा असाताके कर्म परमाणुओंका नहीं।

२ अतिस्थापना—कर्म परमाणुओंका उत्कर्षण होते समय उनका अपनेसे ऊपरकी जितनी स्थितिमें निक्षेप नहीं होता वह अतिस्थापनारूप स्थिति कहलाती है। अव्याघात दशामें जघन्य अतिस्थापना एक आवलिप्रमाण और उत्कृष्ट अतिस्थापना उत्कृष्ट आबाधाप्रमाण होती है। किन्तु व्याघात दशामें जघन्य अतिस्थापना आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण और उत्कृष्ट अतिस्थापना एक समय कम एक आवलिप्रमाण होती है।

३ निक्षेप—उत्कर्षण होकर कर्मपरमाणुओंका जिन स्थितिविकल्पोंमें पतन होता है उनकी निक्षेप संज्ञा है। अव्याघात दशामें जघन्य निक्षेपका प्रमाण एक समय और उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण उत्कृष्ट आबाधा और एक समय अधिक एक आवलिसे न्यून सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है। तथा व्याघात दशामें जघन्य और उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

४ शक्तिस्थिति—बन्धके समय उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होने पर अन्तिम निषेककी सबकी सब व्यक्तस्थिति होती है। आशय यह है कि अन्तिम निषेककी एक समयमात्र भी शक्तिस्थिति नहीं पाई जाती। तथा इससे उपान्त्य निषेककी एक समयमात्र शक्तिस्थिति होती है और शेष स्थिति व्यक्त रहती है। इस प्रकार उत्तरोत्तर एक-एक निषेक नीचे जाने पर शक्तिस्थितिका एक एक समय बढ़ता जाता है और व्यक्तस्थितिका एक एक समय घटता जाता है। इस क्रमसे प्रथम निषेककी शक्तिस्थिति और व्यक्तस्थितिका विचार करने पर व्यक्तस्थिति एक समय अधिक उत्कृष्ट आबाधाप्रमाण प्राप्त होती है और इस व्यक्तिस्थितिको पूरी स्थितिमेंसे घटा देने पर जितनी स्थिति शेष रहे उतनी शक्तिस्थिति प्राप्त होती है। यह तो बन्धके समय जैसी निषेक रचना होती है उसके अनुसार विचार हुआ। किन्तु अपकर्षणसे इसमें कुछ विशेषता आ जाती है। बात यह है कि अपकर्षण द्वारा जिस निषेककी जितनी व्यक्तस्थिति घट जाती है उसकी उतनी शक्तिस्थिति बढ़ जाती है। यह उत्कृष्ट स्थितिबन्धकी अपेक्षा शक्तिस्थिति और व्यक्तस्थितिका विचार है। उत्कृष्ट स्थितिबन्ध न होने पर जितना स्थितिबन्ध कम हो उतनी अन्तिम निषेककी शक्तिस्थिति होती है और शेष निषेकोंकी इसीके अनुसार शक्तिस्थिति बढ़ती जाती है।

§ ४३८. अब उदयस्थितिसे नीचेकी सब कर्मस्थितियोंमें संचित हुए समयप्रबद्धों सम्बन्धी कर्म परमाणुओंके अधिकृत स्थितिमें सामान्यसे सम्भव होनेरूप आशंकाके निराकरणद्वारा नवकबन्धकी अपेक्षा अवस्तु विकल्पोंका कथन करनेके लिये आगेके सूत्र आये हैं। यदि कहा जाय कि इन विकल्पोंका कथन करना निरर्थक है सो भी बात नहीं है, क्योंकि इनके कथन करनेका यही फल है कि इससे शिष्योंको उत्कर्षणके विषयमें ठीक ठीक निर्णय करनेका अवसर मिलता है।

*** समयाहियाए उदयावलियाए तिस्से चेव ट्ठिदीए पदेसग्गस्स एगो समओ पबद्धस्स अइच्छिदो त्ति अवत्थु, दो समया पबद्धस्स अइच्छिदा त्ति अवत्थु, तिण्णि समया पबद्धस्स अइच्छिदा त्ति अवत्थु, एवं णिरंतरं गंतूण आवलिया पबद्धस्स अइच्छिदा त्ति अवत्थु।**

§ ४३९ जा पुव्वमाइट्ठा समयाहियाए उदयावलियाए चरिमट्ठिदी तिस्से चेव ट्ठिदीए पदेसग्गस्स पबद्धस्स पारद्धबंधस्स बंधसमयप्पहुडि एओ समओ अइच्छिदो त्ति अइक्कंतो त्ति अवत्थु। तं पदेसग्गमेदिस्से ट्ठिदीए णत्थि। कुदो? आबाहामेत्तमुवरि गंतूण तस्सावट्ठाणादो। एवं सव्वत्थ वत्तव्वं। अहवा जा समयाहियाए उदयावलियाए ट्ठिदी एदिस्से ट्ठिदीए जं पदेसग्गं तमाट्ठिदमिदि पुव्वं परूविदं। तिस्से च ट्ठिदीए उदयट्ठिदीदो हेट्ठिमासेससमयपबद्धाणं पदेसग्गमत्थि आहो णत्थि संतं वा किमुक्कड्डणादो झीणट्ठिदिगमझीणट्ठिदिगं वा उक्कड्डिज्जमाणं वा केत्तियमद्धाण-मुक्कड्डिज्जइ का वा एदस्स अधिच्छावणा णिक्खेवो वा त्ति ण एसो विसेसो सम्म-मवहारिओ तदो तप्परूवणट्ठमेदेसिं सुत्ताणमवयारो त्ति वक्खाणेयव्वं।

---

* एक समय अधिक उदयावलिकी जो अन्तिम स्थिति है उसमें वे कर्म-परमाणु नहीं हैं जिन्हें बांधनेके बाद एक समय व्यतीत हुआ है, वे कर्मपरमाणु भी नहीं हैं जिन्हें बांधनेके बाद दो समय व्यतीत हुए हैं, वे कर्म परमाणु भी नहीं हैं जिन्हें बांधनेके बाद तीन समय व्यतीत हुए हैं। इस प्रकार निरन्तर जाकर ऐसे कर्मपरमाणु भी नहीं हैं जिन्हें बांधनेके बाद एक आवलि व्यतीत हुई है।

§ ४३९. जिन कर्मपरमाणुओंका बन्धके बाद अर्थात् बन्धसमयसे लेकर एक समय व्यतीत हुआ है वे कर्मपरमाणु पूर्वमें जो एक समय अधिक उदयावलिकी अन्तिम स्थिति कह आये हैं उसमें अवस्तु हैं। अर्थात् वे कर्मपरमाणु इस स्थितिमें नहीं पाये जाते, क्यों कि आबाधाके बाद उनका सद्भाव पाया जाता है। इसी प्रकार सर्वत्र कथन करना चाहिये। अथवा यहाँ यह व्याख्यान करना चाहिये कि एक समय अधिक उदयावलिकी जो अन्तिम स्थिति है और इसके जो कर्म परमाणु हैं वे यहां विवक्षित हैं ऐसा जो पहले कहा है सो उस स्थितिमें उदय स्थितिसे नीचेके अर्थात् पूर्वके सब समयप्रबद्धोंके कर्मपरमाणु हैं या नहीं हैं। यदि हैं तो वे क्या उत्कर्षणसे झीन स्थितिवाले हैं या अझीन स्थितिवाले हैं। यदि उत्कर्षण होता है तो कितना उत्कर्षण होता है। तथा इनका अतिस्थापना और निक्षेप कितना है। इस प्रकार यह सब विशेषता भले प्रकारसे ज्ञात नहीं हुई, इसलिये इस विशेषताका कथन करनेके लिये इन सूत्रोंका अवतार हुआ है ऐसा यहाँ व्याख्यान करना चाहिए।

विशेषार्थ—प्रकृत सूत्रमें यह बतलाया है कि एक समय अधिक उदयावलिकी अन्तिम स्थितिमें किन समयप्रबद्धोंके कर्म परमाणु नहीं पाये जाते। ऐसा नियम है कि बंधे हुए कर्म अपने बन्धकालसे लेकर एक आवलिप्रमाण कालतक तदवस्थ रहते हैं। एक यह भी नियम है कि बंधने-वाले कर्मकी अपने आबाधाकालमें निषेक रचना नहीं पाई जाती। इन दो नियमोंको ध्यानमें रख कर यदि विचार किया जाता है तो इससे यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि वर्तमान कालसे एक

§ ४४० एवमेदेण सुत्तेण आवलियमेत्ते अवत्थुवियप्पे परूविय संपहि उक्कड्डणपाओग्गवत्थुवियप्पपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

⊛ तिस्से चेव ट्ठिदीए पदेसग्गस्स समयुत्तरावलिया बद्धस्स अइच्छिदा त्ति एसो आदेसो होज्ज ।

§ ४४१ एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे—तिस्से चेव पुव्वणिरुद्धसमयाहियावलियचरिमट्ठिदीए पदेसग्गस्स उक्कस्सदो दोआवलियपरिहीणकम्मट्ठिदिमेत्तसमयपबद्धपडिबद्धस्स अब्भंतरे जस्स पदेसग्गस्स बंधसमयादो पहुडि उदयट्ठिदीदो हेट्ठा समयुत्तरावलिया अधिच्छिदा सो एत्थ आदेसो होज्ज । आदिश्यत इत्यादेशो विवक्षितस्थितौ वस्तुरूपेणावस्थितः प्रदेश आदेश इति यावत् । कथमेदस्स आबाहादो उवरि णिसित्तस्स आदिट्ठट्ठिदीए संभवो ? ण, बंधावलियाए वोलीणाए एगेण समएणोकड्डिय पयदट्ठिदीए णिक्खित्तस्स तत्थत्थित्तं पडि विरोहाभावादो। ण एस कमो

आवलि तक पूर्वके बंधे हुए समयप्रबद्धोंके कर्मपरमाणुओंका विवक्षित स्थितिमें अर्थात् एक समय अधिक उदयावलिकी अन्तिम स्थितिमें पाया जाना सम्भव नहीं है। यहां वर्तमान काल ही उदयकाल है और इससे लेकर एक आवलिकाल उदयावलि काल कहलाता है तथा इससे आगेकी स्थिति एक समय अधिक उदयावलिकी अन्तिम स्थिति कहलाती है। अब वर्तमान काल अर्थात् उदयकालमें विचार यह करना है कि उक्त स्थितिमें कितने समयप्रबद्धोंके कर्मपरमाणु नहीं पाये जाते। प्रकृत सूत्रमें इसी प्रश्नका उत्तर दिया गया है। उसका आशय यह है कि उदयकालसे पूर्व एक आवलि काल तकके बंधे हुए समयप्रबद्ध उक्त स्थितिमें नहीं पाये जाते, क्योंकि उक्त स्थिति आबाधाकालके भीतर आ जाती है और आबाधाकालमें निषेक रचना नहीं होती यह पहले ही लिख आये हैं।

§ ४४०. इस प्रकार इस सूत्र द्वारा आवलिप्रमाण अवस्तुरूप विकल्पोंका कथन करके अब उत्कर्षण के योग्य वस्तुरूप विकल्पोंका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** किन्तु उसी स्थितिमें वे कर्म परमाणु हैं जिनकी बाँधनेके बाद एक समय अधिक एक आवलि व्यतीत हुई है।**

§ ४४१. अब इस सूत्र का अर्थ कहते हैं—उसी पूर्व निर्दिष्ट एक समय अधिक एक आवलिकी अन्तिम स्थितिमें जो कर्मपरमाणु हैं वे यद्यपि उत्कृष्ट रूपसे दो आवलिकम कर्मस्थितिप्रमाण समयप्रबद्धोंके हैं तथापि इनके भीतर जिन कर्मपरमाणुओंकी बन्ध समयसे लेकर उदय स्थितिसे पहले-पहले एक समय अधिक एक आवलि व्यतीत हो गई है उनका यहाँ सद्भाव है। आदेश का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है—आदिश्यते अर्थात् विवक्षित स्थितिमें वास्तविक रूपसे अवस्थित प्रदेश।

शंका—जब कि बन्धके समय सब कर्मपरमाणु आबाधासे ऊपरकी स्थितिमें निक्षिप्त किये जाते हैं तब वे विवक्षित स्थितिमें कैसे सम्भव हो सकते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि बन्धावलिके व्यतीत होनेके पश्चात् एक समय द्वारा अपकर्षण करके आबाधासे उपरितन स्थितिमें स्थित कर्मपरमाणु प्रकृत स्थितिमें निक्षिप्त कर दिये जाते हैं, इसलिये इनका वहाँ अस्तित्व माननेमें कोई विरोध नहीं आता।

पुव्वुत्तावलियमेत्तसमयपबद्धपरमाणूणमत्थि, तेसिं बंधावलियाए असमत्तीदो उक्कड्डणा-पाओग्गत्ताभावादो । समाणिदबंधावलियस्स वि तत्थतणचरिमवियप्पपडिग्गहिय-समयपबद्धस्स उदयसमयमहिट्ठिदजीवेणोकड्डणावावदेण णिरुद्धट्ठिदिविसयमाणिदस्स संतस्स वि पयदुक्कड्डणाणुवजोगित्तेणावत्थुत्तं पडिवज्जेयव्वं । तदो तेसिमेत्था-वत्थुत्तमेदस्स च वत्थुत्तं सिद्धं ।

§ ४४२. एवमादिट्ठस्स पदेसग्गस्स उक्कड्डणाद्धाणपरूवणमुत्तरसुत्तेण कुणइ—

❀ **तं पुण पदेसग्गं कम्मट्ठिदिं णो सक्का उक्कड्डिदुं, समयाहियाए आवलियाए ऊणियं कम्मट्ठिदिं सक्का उक्कड्डिदुं ।**

§ ४४३. कुदो ? एत्तियमेत्तीए चेव सत्तिट्ठिदीए अवट्ठिदत्तादो । एदं जट्ठिदिं पडुच्च वुत्तं । णिसेयट्ठिदिं पुण पडुच्च दुसमयाहियदोआवलियाहि ऊणियं कम्म-

किन्तु यह क्रम पूर्वोक्त आवलिप्रमाण समयप्रबद्धोंके कर्मपरमाणुओंका नहीं बनता, क्योंकि उनकी बन्धावलि समाप्त नहीं हुई है, इसलिये तब अपकर्षणकी योग्यता नहीं पाई जाती है। बन्धावलिके समाप्त हो जाने पर भी जो समयप्रबद्ध वहाँ अन्तिम विकल्परूपसे स्वीकृत है उसका उदय समयमें स्थित जीवके द्वारा अपकर्षण होकर वह यद्यपि निर्दिष्ट स्थितिके विषय-भावको प्राप्त हो रहा है फिर भी प्रकृत उत्कर्षणके अयोग्य होनेसे वह अवस्तु है, इसलिये उसे छोड़ देना चाहिये। इसलिए उदय समयसे पूर्वकी एक आवलिके भीतर बंधनेवाले कर्मपरमाणु प्रकृत स्थितिमें नहीं हैं और जिन कर्मपरमाणुओंको बँधे हुए बन्ध समयसे लेकर उदय समय तक एक समय अधिक एक आवलि व्यतीत हुई है वे कर्मपरमाणु प्रकृत स्थितिमें हैं यह सिद्ध हुआ।

विशेषार्थ—पहले यह बतला आये हैं कि प्रकृत स्थितिमें कितने समयप्रबद्धोंके कर्म-परमाणु नहीं पाये जाते हैं। अब इस सूत्रद्वारा यह बतलाया गया है कि प्रकृत स्थितिमें जिन कर्म-परमाणुओंको बँधे एक समय अधिक एक आवलि व्यतीत हुआ है उनका पाया जाना सम्भव है। इसपर यह शंका हुई कि जब कि आबाधा कालके भीतर निषेक रचना नहीं होती और प्रकृत स्थिति आबाधा कालके भीतर पाई जाती है तब फिर इस स्थितिमें जिन कर्मपरमाणुओंको बँधे हुए एक समय अधिक एक आवलिकाल व्यतीत हुआ है उनका पाया जाना कैसे सम्भव है। इस शंकाका मूलमें जो समाधान किया है उसका भाव यह है कि बन्धावलिके व्यतीत हो जाने पर बँधे हुए द्रव्यका अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण और उदीरणा हो सकती है, इसलिये एक समय अधिक एक आवलि पूर्व बँधा हुआ द्रव्य विवक्षित स्थितिमें पाया जाता है ऐसा माननेमें कोई बाधा नहीं आती।

§ ४४२. अब इस प्रकार विवक्षित हुए कर्मपरमाणुओंके उत्कर्षण अध्वानका कथन आगेके सूत्रद्वारा करते हैं—

*** किन्तु उन कर्म परमाणुओंका कर्मस्थितिप्रमाण उत्कर्षण नहीं हो सकता। हाँ एक समय अधिक एक आवलिसे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण उत्कर्षण हो सकता है।**

§ ४४३. क्योंकि उन कर्मपरमाणुओंमें इतनीमात्र शक्तिस्थिति पाई जाती है। तथापि यह कथन यत्स्थितिकी अपेक्षासे किया है। निषेकस्थितिकी अपेक्षासे विचार करने पर

हिदिं मक्कमुक्कड्डिदुमिदि वत्तव्वं, उदयट्ठिदीदो समयाहियउदयावलियमेत्तमद्धाण-मुवरिं गंतूण पयदणिसेयस्स अवट्ठाणादो। एदस्स सुत्तस्स भावत्थो—उदयट्ठिदीदो हेट्ठा समयाहियावलियमेत्तमद्धाणमोयरिय बद्धसमयपबद्धप्पहुडि सेसासेसकम्मट्ठिदि-अब्भंतरसंचिदसमयपबद्धपरमाणूणमहियारट्ठिदीए अत्थित्ते विरोहो णत्थि तदो ण ते उक्कड्डणादो भीणट्ठिदिया। उक्कड्डिज्जमाणा च ते जेत्तियमद्धाणं हेट्ठदो ओयरिय बद्धा तेत्तियमेत्तेणूणियं कम्मट्ठिदिमाबाहामेत्तमविच्छाविय णवकबंधस्सुवरि णिक्खिप्पंति, तेत्तियमेत्ताए चेव सत्तिट्ठिदीए अवसिट्ठत्तादो त्ति। णवरि कम्मट्ठिदीए आदीदो प्पहुडि जहण्णाबाहमेत्ताणं समयपबद्धाणं जहासंभवमुक्कड्डणादो भीणट्ठिदियत्तं पुव्विल्लपरूवणादो जाणिय वत्तव्वं। ण पुव्विल्लपरूवणादो एदिस्से णवकबंध-मस्सियूण पयट्टाए अवत्थु-वत्थुपरूवणाए अविसिट्ठत्तमासंकणिज्जं, तिस्से कम्मट्ठिदीए आदीदो प्पहुडि पुव्वाणुपुव्वीए संतकम्ममस्सियूण पवदत्तादो, एदिस्से चेव णवकबंधमस्सियूण पच्छाणुपुव्वीए पयट्टत्तादो। पढमपरूवणाए संतकम्ममस्सियूण आवलियमेत्ता अवत्थुवियप्पा किण्ण परूविदा? तं जहा—सत्तरिसागरोवम-कोडाकोडिमेत्तकम्मट्ठिदिं सव्वं गालिय पुणो से काले णिल्लेविहिदि त्ति उदयट्ठिदीए ट्ठिदपदेसग्गमेदिस्से समयाहियावलियचरिमट्ठिदीए अवत्थु। तिस्से चेव ट्ठिदीए

तो दो समय अधिक दो आवलिसे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण ही उत्कर्षण हो सकता है ऐसा यहाँ कथन करना चाहिये, क्योंकि उदय स्थितिसे एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण स्थान ऊपर जाकर ही प्रकृत निषेक स्थित है। इस सूत्रका यह भावार्थ है कि उदय स्थितिसे एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण स्थान नीचे उतर कर जो समयप्रबद्ध बँधा है उससे लेकर बाकीके सब कर्मस्थितिके भीतर संचित हुए समयप्रबद्धोंके कर्मपरमाणुओंका विवक्षित स्थितिमें अस्तित्व माननेमें कोई विरोध नहीं है, इसलिये वे उत्कर्षणसे भीनस्थितिवाले नहीं है। उत्कर्षण होते हुए भी जितना स्थान नीचे (पीछे) जाकर वे बँधे होते हैं उतने स्थानसे न्यून शेष रही कर्मस्थितिमें उनका उत्कर्षण होता है। उसमें भी आबाधाप्रमाण अतिस्थापनाको छोड़कर नवकबन्धमें इनका निक्षेप होता है। शेष रही कर्मस्थितिमें इनका उत्कर्षण इसलिए होता है कि उनकी उतनी ही शक्तिस्थिति शेष है। किन्तु इतनी विशेषता है कि कर्मस्थितिके आदिसे लेकर जो जघन्य आबाधाप्रमाण समयप्रबद्ध हैं वे यथासम्भव उत्कर्षणसे भीनस्थितिवाले हैं यह कथन पहले की गई प्ररूपणासे जानकर करना चाहिये। यदि कहा जाय कि पूर्व प्ररूपणासे नवकबन्धकी अपेक्षा अवस्तु और वस्तु विकल्पोंके कथनमें प्रवृत्त हुई इस प्ररूपणामें कोई विशेषता नहीं है सो ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि वह पूर्व प्ररूपणा कर्मस्थितिके प्रारम्भसे लेकर पूर्वानुपूर्वीसे सत्कर्मकी अपेक्षा प्रवृत्त हुई है और यह प्ररूपणा नवकबन्धकी अपेक्षा पश्चादानुपूर्वीसे प्रवृत्त हुई है, इसलिये इन दोनों प्ररूपणाओंमें अन्तर है।

शंका—प्रथम प्ररूपणामें सत्कर्मकी अपेक्षा एक आवलिप्रमाण अवस्तुरूप विकल्पोंका कथन क्यों नहीं किया है? जिनका खुलासा इस प्रकार है—सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण सब कर्मस्थितिको गलाकर फिर तदनन्तर समयमें उस कर्मस्थितिका अभाव होगा। इस प्रकार केवल उदय स्थितिमें स्थित उस कर्मस्थितिके कर्मपरमाणु इस एक समय अधिक आवलिकी अन्तिम

जस्स पदेसग्गस्स दुसमयूणा कम्मट्ठिदी विदिक्कंता त्ति एदं पि अवत्थु । एवं णिरंतरं गंतूण जइ वि आवलियाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता होज्ज तं पि अवत्थु त्ति । एवमेदे अवत्थुवियप्पे आवलियमेत्ते अपरूविय समयाहियाए आवलियाए ऊणिया कम्मट्ठिदी जस्स विदिक्कंता तदो प्पहुडि वत्थुवियप्पाणं झीणाझीणट्ठिदियत्तगवेसणं कुणमाणस्स चुण्णिसुत्तयारस्स को अहिप्पाओ त्ति ? ण एस दोसो, समयाहियावलियमेत्तावसिट्ठकम्मट्ठिदियस्स समयपबद्धपदेसग्गस्स उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियस्स परूवणाए चेव तेसिमवत्थुवियप्पाणमणुत्तसिद्धीदो । ण च एदम्हादो हेट्ठिमाणमेत्तियमेत्ती ट्ठिदी अत्थि जेणेदेसिमेत्थ वत्थुत्तसंभवो होज्ज, विरोहादो । ण च संतमत्थं सुत्तं ण विसईकरेइ, तस्स अव्वावयत्तावत्तीदो । तदो तप्परिहारदुवारेण सेसपरूवणादो चेव तेसिमवत्थुत्तं सुत्तयारेण सूचिदमिदि ण किं चि विरुद्धं पेच्छामो । णवकबंधमस्सियूण परूविदाणमावलियमेत्ताणमेदेसिमवत्थुवियप्पाणं देसामासयभावेण वा तेसिमेत्थ परूवणा कायव्वा ।

स्थितिमें नहीं पाये जाते । तथा जिन कर्मपरमाणुओंकी दो समय कम पूरी कर्मस्थिति व्यतीत हो गई है वे कर्मपरमाणु भी इस विवक्षित स्थितिमें नहीं हैं । इसी प्रकार निरन्तर जाकर यदि एक आवलिकम कर्मस्थिति व्यतीत हो गई हो तो वे एक आवलिके कर्मपरमाणु भी इस विवक्षित स्थितिमें नहीं हैं । इस प्रकार एक आवलिप्रमाण अवस्तु विकल्पोंका कथन न करके चूर्णिसूत्रकारने जो 'एक समय अधिक एक आवलिसे न्यून कर्मस्थिति जिसकी व्यतीत हो गई है' यहाँसे लेकर वस्तुविकल्पोंमें झीनाझीनस्थितिपनेका विचार किया है सो उनका इस प्रकारके कथन करनेमें क्या अभिप्राय है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जब एक समय अधिक एक आवलि शेष रही कर्मस्थितिसम्बन्धी समयप्रबद्धोंके कर्मपरमाणुओंको उत्कर्षणके अयोग्य कह दिया तब इसीसे उन आवलिप्रमाण अवस्तुविकल्पोंकी विना कहे सिद्धि हो जाती है । और एक समय अधिक एक आवलिकी अन्तिम स्थितिसे नीचेके निषेकोंकी इतनी अर्थात् एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण स्थिति तो हो नहीं सकती जिससे इन नीचेके निषेकोंका यहाँ सद्भाव माना जावे, क्योंकि ऐसा होनेमें विरोध आता है । और सूत्र जो अर्थ विद्यमान है उसे विषय नहीं करता यह बात कही नहीं जा सकती, क्योंकि ऐसा होनेपर सूत्रको अव्यापक मानना पड़ेगा । इसलिये उन आवलिप्रमाण विकल्पोंका कथन न करके सूत्रकारने शेष प्ररूपणा द्वारा ही उनका असद्भाव सूचित कर दिया है, इसलिए इस कथनमें हम कोई विरोध नहीं देखते । अथवा इस दूसरी प्ररूपणामें जो नवकबन्धकी अपेक्षा एक आवलिप्रमाण अवस्तु विकल्प कहे गये हैं उनके देशामर्षकरूपसे प्रथम प्ररूपणासम्बन्धी उन एक आवलिप्रमाण अवस्तुविकल्पोंकी यहाँ प्ररूपणा कर लेनी चाहिये ।

विशेषार्थ—इस सूत्रकी व्याख्या करते हुए वीरसेन स्वामीने कई बातों पर प्रकाश डाला है । यथा—

(१) नवकबन्धके जो कर्मपरमाणु अपकर्षित होकर विवक्षित स्थिति अर्थात् एक समय अधिक एक आवलिकी अन्तिम स्थितिमें निक्षिप्त हुए हैं उनका उत्कर्षणके समय बांधनेवाले

कर्मकी कितनी स्थितिमें उत्कर्षण हो सकता है ?

(२) पूर्व प्ररूपणासे इस प्ररूपणामें तात्त्विक अन्तर क्या है ?

(३) पूर्व प्ररूपणामें क्या अवस्तु विकल्प सम्भव हैं यदि हों तो उनका उस प्ररूपणाका विवेचन करते समय कथन क्यों नहीं किया ?

इनका क्रमशः खुलासा इस प्रकार है—

(१) जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है कि कर्मोंमें दो प्रकारकी स्थिति होती है—एक व्यक्तस्थिति और दूसरी शक्तिस्थिति। जिस कर्मकी जितनी उत्कृष्ट कर्मस्थिति होती है उस कर्मके अन्तिम निषेककी वह व्यक्तस्थिति है। उस अन्तिम निषेकमें शक्ति स्थिति नहीं पाई जाती। किन्तु शेष निषेकोंमें यथासम्भव शक्तिस्थिति और व्यक्तस्थिति दोनों पाई जाती हैं। उदाहरणार्थ एक कर्मकी ४८ समय कर्मस्थिति है। इसमेंसे प्रारम्भके १२ समय आबाधाके निकाल देने पर शेष ३६ समयोंमें निषेक रचना हुई। इस प्रकार पहले निषेककी १३ समय स्थिति पड़ी और दूसरे निषेककी १४ समय स्थिति पड़ी। इसप्रकार उत्तरोत्तर एक एक निषेक की एक एक समयप्रमाण स्थित बढ़ कर अन्तिम निषेककी ४८ समय स्थिति पड़ी। यह सबकी सब स्थिति व्यक्तस्थिति है। अब जो प्रथम निषेककी १३ समय स्थिति पड़ी है सो उसके सिवा उसकी शेष ३५ समय स्थिति शक्तिस्थिति है। दूसरे निषेककी १४ समय के सिवा शेष ३४ समय शक्तिस्थिति है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिये। इस उदाहरणसे स्पष्ट है कि उत्कृष्ट कर्मस्थितिके अन्तिम निषेकमें शक्तिस्थिति नहीं पाई जाती। किन्तु शेष निषेकोंमें शक्तिस्थिति और व्यक्तस्थिति दोनों प्रकारकी स्थितियाँ पाई जाती हैं।

अब किसी एक जीवने बन्धावलिके बाद नवकबन्धका अपकर्षण करके उसका उदयावलि के ऊपर प्रथम स्थितिमें निक्षेप किया और तदनन्तर समयमें वह उसका उत्कर्षण करना चाहता है तो यहां यह विचार करना है कि इस अपकर्षित द्रव्यका तत्काल बंधनेवाले कर्म के ऊपर कितनी स्थितिमें उत्कर्षण हो कर निक्षेप होगा। यह अपकर्षण बन्धावलिके बाद हुआ है, इसलिये एक आवलि तो यह कम हो गई और एक समय अपकर्षणमें लगा, इसलिये एक समय यह कम हो गया। इस प्रकार प्रकृत कर्मस्थितिमेंसे एक समय अधिक एक आवलिके घटा देने पर जो शेष कर्मस्थिति बची है तत्काल बंधनेवाले कर्मकी उतनी स्थितिमें इस अपकर्षित द्रव्यका उत्कर्षण हो सकता है। उदाहणार्थ पहले जो ४८ समय स्थितिवाले नवकबन्धका दृष्टान्त दे आये हैं सो उसके अनुसार बन्धावलिके ३ समय बाद चौथे समयमें आबाधाके ऊपरके द्रव्यका अपकर्षण करके उसे उदयावलिके ऊपरकी स्थितिमें निक्षेप किया। यहां बन्धावलिके बाद उदयावलि ले लेना चाहिये और उदयावलिके बाद एक समय छोड़कर अगली स्थितिमें अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप कराना चाहिये, क्योंकि एक समय अपकर्षणरूप क्रियामें लग कर दूसरे समयमें वह उदयावलिमें प्रविष्ट हो जाता है। इस हिसाबसे अपकर्षित होकर स्थित हुए द्रव्यका आठवें समयमें उत्कर्षण होगा। पर यह उत्कर्षण की क्रिया बन्धावलिके बाद दूसरे समयमें हो रही है इसलिये सर्व स्थिति ४८ समयमेंसे बन्धावलिके ३ और अपकर्षणका १ इस प्रकार ४ समय घटा देने पर तत्काल बँधनेवाले कर्ममें आबाधाके बाद १३ समयसे लेकर ४४ वें समयतक इस द्रव्यका निक्षेप होगा। इस प्रकार इसकी स्थिति एक समय अधिक बन्धावलिसे न्यून ४४ समय प्राप्त हुई। यह यत्स्थिति है। उत्कर्षण और संक्रमणके समय जो स्थिति रहे वह यत्स्थिति है। किन्तु उत्कर्षण उदयावलिके ऊपरके निषेक में स्थित द्रव्यका हुआ है, इसलिये निषेकस्थितिमें एक समय अधिक एक आवलि और घट जाती है, इसलिये

§ ४४४ एत्तियमेत्तिएण पबंधेण पुव्वणिरुद्धाए ट्ठिदीए उक्कड्डणादो झीणाझीण-ट्ठिदियपदेसग्गगवेसणं काऊण तस्संबंधेण च पसंगागयमवत्थुवियप्पपरूवणं समाणिय संपहि पयदमत्थमुवसंहरेमाणो इदमाह—

*** एदे वियप्पा जा समयाहियउदयावलिया तिस्से ट्ठिदीए पदेसग्गस्स।**

§ ४४५ गयत्थमेदमुवसंहारसुत्तं। एवं विस्सरणालुआणं सिस्साणं पुव्वुत्तमट्ठं संभालिय संपहि एदेसिमेव वियप्पाणमप्पणमुवरि त्ति एदेण समाणपरूवणासु ट्ठिदिविसेसेसु कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

निषेकस्थिति ४४ समय न प्राप्त होकर ४० समय प्राप्त होगी। इस प्रकार अपकर्षित द्रव्यका उत्कर्षणके समय बंधनेवाले कर्मकी कितनी स्थितिमें उत्कर्षण हो सकता है इसका विचार हुआ।

(२) प्रथम प्ररूपणामें सत्कर्मकी अपेक्षा विचार किया है उसमें बतलाया है कि जिस कर्मकी केवल एक समय अधिक उदयावलिप्रमाण कर्मस्थिति शेष रही है उसका उत्कर्षण नहीं हो सकता। जिसकी दो समय अधिक उदयावलिप्रमाण कर्मस्थिति शेष है उसका भी उत्कर्षण नहीं हो सकता। तात्पर्य यह कि उत्कर्षणके समय बँधनेवाले कर्मकी जितनी आबाधा पड़े उतनी स्थितिके शेष रहने तक सत्तामें स्थित कर्मोंका उत्कर्षण नहीं हो सकता। हाँ सत्कर्मकी आबाधासे अधिक स्थितिके शेष रहने पर नूतन बन्धमें उसका उत्कर्षण हो सकता है। इस प्रकार प्रथम प्ररूपणामें सत्कर्मकी अपेक्षा पूर्वानुपूर्वीसे विचार किया है। किन्तु इस दूसरी प्ररूपणामें यह बतलाया है कि नूतन बन्ध होने पर बन्धावलि तक तो वह तदवस्थ रहता है। हां बन्धावलिके बाद अपकर्षण होकर उसका तत्काल बँधनेवाले कर्ममें उत्कर्षण हो सकता है। इस प्रकार दूसरी प्ररूपणामें पश्चादानुपूर्वीसे नूतन बन्धके उत्कर्षणका विचार किया है, इसलिये इन दोनों प्ररूपणाओंमें तात्त्विक भेद है।

(३) जब यह बतला दिया कि जिस कर्मकी स्थिति एक समय अधिक एक आवलि शेष है उसका उत्कर्षण नहीं हो सकता तब यह अर्थ सुतरां फलित हो जाता है कि जिस कर्मकी एक समय, दो समय, तीन समय इसी प्रकार उदयावलिप्रमाण स्थिति शेष है उसका न तो उत्कर्षण ही हो सकता है और न उस स्थितिके कर्म परमाणुओंका एक समय अधिक उदयावलिकी अन्तिम स्थितिमें ही पाया जाना सम्भव है। यही कारण है कि प्रथम प्ररूपणामें एक आवलि-प्रमाण अवस्तु विकल्पोंके रहते हुए भी उनका निर्देश नहीं किया है।

§ ४४४. इस प्रकार इतने प्रबन्धके द्वारा दो बातोंका विचार किया। प्रथम तो यह विचार किया कि पूर्व निरुद्ध स्थितिमें कौनसे कर्मपरमाणु उत्कर्षणसे झीन स्थितिवाले हैं और कौनसे कर्मपरमाणु उत्कर्षणसे अझीन स्थितिवाले हैं। दूसरे इसके सम्बन्धसे प्रसंगानुसार अवस्तु विकल्पोंका कथन किया। अब प्रकृत अर्थके उपसंहार करनेकी इच्छासे अगला सूत्र कहते हैं—

*** एक समय अधिक उदयावलिकी जो अन्तिम स्थिति है उसके कर्म परमाणुओंके इतने विकल्प होते हैं।**

§ ४४५. इस उपसंहार सूत्रका अर्थ गतार्थ है। इस प्रकार विस्मरणशील शिष्योंको पूर्वोक्त अर्थकी संम्हाल करा कर अब जिन स्थितियोंकी प्ररूपणा इस स्थितिके समान है उनमें इन सब विकल्पोंको बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** एदे चेव वियप्पा अपरिसेसा जा दुसमयाहिया उदयावलिया तिस्से ट्ठिदीए पदेसग्गस्स ।**

§ ४४६. एदस्स सुत्तस्स अत्थो उच्चदे । तं जहा—जे ते पुव्वणिरुद्धसमयाहिय-उदयावलियचरिमट्ठिदीए दोहि वि परूवणाहि परूविदा वियप्पा एदे चेव अणूणाहिया वत्तव्वा जा दुसमयाहिया उदयावलिया तिस्से ट्ठिदीए पदेसग्गस्स णिरुंभणं काऊण । णवरि पढमपरूवणाए कीरमाणाए एदिस्से ट्ठिदीए पदेसग्गस्स जइ समयाहियाए आवलियाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता बद्धस्स तं कम्ममुक्कड्डणाए अवत्थु, हेट्ठिमाए चेव ट्ठिदीए तस्स णिट्ठविदकम्मट्ठिदियत्तादो । तदो हेट्ठिमाणं पुण अवत्थुत्तं पुव्वं व अणुत्तसिद्धं । तस्सेव पदेसग्गस्स जइ दुसमयाहियाए आवलियाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता तं कम्ममेत्थ आदेसो होतं पि ण सक्कमुक्कड्डिदुं; तत्तो उवरि सत्ति-ट्ठिदीए एगस्स वि समयस्स अभावादो । तस्सेव पदेसग्गस्स जइ वि तिसमयाहियाए आवलियाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता तं पि उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं । एत्थ कारणमणंतरपरूविदं । एत्तो उवरि पुव्वं व सेसजहण्णाबाहमेत्ता झीणट्ठिदिय-वियप्पा उप्पाएयव्वा । तत्तो परमझीणट्ठिदिया, जहण्णाबाहमेत्तमविच्छाविय एक्किस्से ट्ठिदीए णिक्खेवस्स तदणंतरउवरिमवियप्पे संभवादो । एदेण कारणेण अवत्थुवियप्पा

*** दो समय अधिक उदयावलिकी जो अन्तिम स्थिति है उस स्थितिके कर्म परमाणुओंके भी ये ही सबके सब विकल्प होते हैं ।**

§ ४४६. अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है—पूर्व निर्दिष्ट एक समय अधिक उदयावलिकी अन्तिम स्थितिके दोनों ही प्ररूपणाओंके द्वारा जितने भी विकल्प कहे हैं न्यूनाधिक किये बिना वे सबके सब विकल्प यहां भी दो समय अधिक उदयावलिकी अन्तिम स्थितिके कर्म परमाणुओंको विवक्षित करके कहने चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि प्रथम प्ररूपणाके करने पर यदि बन्ध होनेके बाद कर्मपरमाणुओंकी एक समय अधिक आवलिसे न्यून कर्मस्थिति व्यतीत हो गई हो तो वे कर्मपरमाणु इस विवक्षित स्थितिमें नहीं होते, क्योंकि इस विवक्षित स्थितिसे नीचेकी स्थितिमें ही उन कर्मपरमाणुओंकी स्थिति समाप्त हो गयी है । किन्तु इससे नीचेकी स्थितियोंके कर्मपरमाणुओंका इस विवक्षित स्थितिमें नहीं पाया जाना पहलेके समान अनुक्तसिद्ध है । उन्हीं कर्मपरमाणुओंकी यदि दो समय अधिक आवलिसे न्यून कर्मस्थिति व्यतीत हो गई हो तो वे कर्मपरमाणु यद्यपि इस विवक्षित स्थितिमें पाये अवश्य जाते हैं परन्तु उनका उत्कर्षण नहीं हो सकता, क्योंकि इसके ऊपर शक्तिस्थितिका एक भी समय नहीं पाया जाता है । उन्हीं कर्मपरमाणुओंकी यदि तीन समय अधिक आवलिसे न्यून कर्मस्थिति व्यतीत हो गई हो तो वे कर्मपरमाणु भी उत्कर्षणसे झीन स्थितिवाले हैं । ये कर्मपरमाणु उत्कर्षणसे झीन स्थितिवाले क्यों हैं इसका कारण पहले कह आये हैं । इसी प्रकार इसके आगे भी पहलेके समान बाकीके जघन्य आबाधाप्रमाण झीन स्थितिविकल्प उत्पन्न कर लेने चाहिये । इससे आगे अझीन स्थितिविकल्प होते हैं, क्योंकि इसके आगेके विकल्पमें जघन्य आबाधाप्रमाण स्थितिको अतिस्थापनारूपसे स्थापित करके आबाधाके ऊपरकी एक स्थितिमें निक्षेप सम्भव है । इस कारणसे यहाँ अवस्तुविकल्प एक अधिक होते हैं

रूवाहिया झीणट्ठिदियवियप्पा च रूवूणा होंति। अझीणट्ठिदीएसु णत्थि णाणत्तं। विदियपरूवणाए वि एदिस्से ट्ठिदीए पदेसग्गस्स एगो समओ पबद्धस्स अइच्छिदो त्ति अवत्थु। दो समया पबद्धस्स अधिच्छिदा त्ति अवत्थु। एवं णिरंतरं गंतूण आवलिया समयपबद्धस्स पुव्वं व अइच्छिदा त्ति अवत्थु। तिस्से चेव ट्ठिदीए पदेसग्गस्स समयुत्तरावलिया बद्धस्स अइच्छिदा त्ति एसो आदेसो होज्ज। तं पुण पदेसग्गं कम्मट्ठिदिं णो सक्कमुक्कड्डिदुं, समयाहियाए आवलियाए णिसेगं पडुच्च तिसमयाहियदोआवलियाहि वा ऊणियं कम्मट्ठिदिं सक्कमुक्कड्डिदुं, तेत्तियमेत्तीए चेव सत्तिट्ठिदीए अवसेसादो त्ति। एत्तिओ चेव विसेसो णत्थि अण्णत्थ कत्थ वि। एसो चेव विसेसो सुत्तणिलीणो चेय पज्जवट्ठियणयावलंबणेण परूविदो ण सुत्तबहिब्भूदो त्ति।

और झीन स्थितिविकल्प एक कम होते हैं। हाँ अझीन स्थितियोंमें कोई भेद नहीं है। दूसरी प्ररूपणाके करने पर भी जिन कर्मपरमाणुओंको बन्ध करनेके बाद एक समय व्यतीत हुआ है वे कर्मपरमाणु इस विवक्षित स्थितिमें नहीं हैं। जिन्हें बांधनेके बाद दो समय व्यतीत हुए हैं वे कर्मपरमाणु भी नहीं हैं। इस प्रकार निरन्तर जाकर बांधनेके बाद जिन्हें एक आवलि व्यतीत हुई है वे कर्मपरमाणु भी नहीं हैं। मात्र जिन कर्मपरमाणुओंको बांधनेके बाद एक समय अधिक एक आवलि व्यतीत हुई है वे कर्मपरमाणु इस विवक्षित स्थितिमें हैं। किन्तु उन कर्मपरमाणुओंका कर्मस्थितिप्रमाण उत्कर्षण नहीं हो सकता; किन्तु यत्स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिक एक आवलि कम कर्मस्थितिप्रमाण और निषेक स्थितिकी अपेक्षा तीन समय अधिक दो आवलिकम कर्मस्थितिप्रमाण उत्कर्षण हो सकता है; क्योंकि उन कर्मपरमाणुओंमें उतनी ही शक्ति स्थिति शेष है। इस प्रकार इस स्थितिकी अपेक्षा इतनी ही विशेषता है, अन्यत्र और कोई विशेषता नहीं। किन्तु यह विशेषता सूत्रमें गर्भित है जिसका पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे कथन किया गया है। अतः यह विशेषता सूत्रके बाहर नहीं है।

विशेषार्थ—पहले एक समय अधिक एक आवलिकी अन्तिम स्थितिकी प्रधानतासे दो प्रकार की प्ररूपणाओं द्वारा उत्कर्षणविषयक प्ररूपणा की गई रही। अब यहाँ दो समय अधिक एक आवलिकी अन्तिम स्थितिकी प्रधानतासे उत्कर्षण विषयक प्ररूपणा की गई है। सो सामान्यसे इन दोनों स्थितियोंमें स्थित कर्मपरमाणुओंकी अपेक्षा उत्कर्षण विषयक प्ररूपणामें कोई अन्तर नहीं है। पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा जो भी थोड़ा बहुत अन्तर है उसका उल्लेख टीकामें कर ही दिया है। पहली प्ररूपणाके अनुसार तो यह अन्तर बतलाया है कि एक समय अधिक एक आवलिकी अन्तिम स्थितिमें जितने अवस्तुविकल्प और झीन स्थिति-विकल्प होते हैं उनसे इस विवक्षित स्थितिमें अवस्तु विकल्प एक अधिक और झीन स्थितिविकल्प एक कम होते हैं। पूर्वमें उदयावलिके ऊपरकी प्रथम स्थितिको लेकर विचार किया गया था, इसलिये अवस्तु विकल्प एक आवलिप्रमाण थे किन्तु यहाँ उदयावलिके ऊपर द्वितीय स्थितिको लेकर विचार किया जा रहा है इसलिये यहाँ अवस्तु विकल्प एक अधिक हो गया है। और यहाँ आबाधामें एक समय कम हो गया है इसलिये पहलेसे झीनस्थिति विकल्प एक कम हो गया है। तथा दूसरी प्ररूपणाके अनुसार निषेकस्थितिकी अपेक्षा उत्कर्षण एक समय घट जाता है, क्योंकि जिस स्थितिका उत्कर्षण हो रहा है उसमें एक समय बढ़ गया है, इसलिये शक्तिस्थितिमें एक समय घट जाने से निषेकस्थितिकी अपेक्षा उत्कर्षण एक समय कम प्राप्त होता है।

*** एवं तिसमयाहियाए चदुसमयाहियाए जाव आबाधाए आवलि-यूणाए एवदिमादो त्ति ।**

§ ४४७. एत्थ उदयावलियाए इदि अणुवट्टदे । तेणेवं संबंधो कायव्वो, जहा समयाहियाए दुसमयाहियाए च उदयावलियाए णिरुंभणं काऊण एदे वियप्पा परूविदा, एवं तिसमयाहियाए चउसमयाहियाए उदयावलियाए इच्चादिट्ठिदीणं पुध पुध णिरुंभणं काऊण पुव्वुत्तासेसवियप्पा वत्तव्वा जाव आबाधाए आवलियूणाए जाव चरिमट्ठिदी एवदिमादो त्ति । णवरि संतकम्ममस्सियूण अवत्थुवियप्पा ट्ठिदिं पडि रूवाहियकमेण झीणट्ठिदिवियप्पा च रूवूणकमेण णेदव्वा । णवकबंधमस्सियूण णत्थि णाणत्तं । एदासिं च ट्ठिदीणमइच्छावणा रूवूणादिकमेणाणवट्ठिदा दट्ठव्वा । आबाहाचरिमसमयादो उवरिमाणंतरट्ठिदीए सव्वासिं पि एदासिमझीणट्ठिदियस्स पदेसग्गस्स उक्कड्डणाए णिक्खेवुवलंभादो । ण एस कमो उवरिमासु ट्ठिदीसु, तत्थ आवलियमेत्तीए अइच्छावणा [ए] अवट्ठिदसरूवेणुवलंभादो । एदस्स च विसेसस्स अत्थित्तपरूवणट्ठमेत्थ आवलियूणाबाहाचरिमट्ठिदीए सुत्तयारेण णिसेयपरूवणा-विसओ कओ ।

*** इसी प्रकार तीन समय अधिक और चार समय अधिक उदयावलिसे लेकर एक आवलि कम आबाधा काल तक की पृथक् पृथक् स्थितिमें पूर्वोक्त सब विकल्प होते हैं ।**

§ ४४७. इस सूत्रमें 'उदयावलियाए' इस पदकी अनुवृत्ति होती है । उससे इस सूत्रका इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिए कि जिस प्रकार एक समय अधिक और दो समय अधिक उदयावलिको विवक्षित करके ये विकल्प कहे हैं उसी प्रकार तीन समय अधिक और चार समय अधिक उदयावलि आदि स्थितियोंको पृथक्-पृथक् विवक्षित करके पूर्वोक्त सब विकल्प कहने चाहिये । इस प्रकार यह क्रम एक आवलि कम आबाधा काल तक जाता है । यही अन्तिम स्थिति है जहाँ तक ये विकल्प प्राप्त होते हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि सत्कर्मकी अपेक्षा उत्तरोत्तर एक एक स्थितिके प्रति अवस्तु विकल्प एक एक बढ़ता जाता है और झीन स्थितिविकल्प एक एक कम होता जाता है । किन्तु नवकबन्धकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है । फिर भी इन स्थितियोंकी अतिस्थापना उत्तरोत्तर एक एक समय कम होती जानेके कारण वह अनवस्थित जाननी चाहिये; क्योंकि आबाधाके अन्तिम समयसे आगेकी अनन्तर स्थितिमें इन सभी स्थितियोंके अझीन-स्थितिवाले कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण होकर निक्षेप देखा जाता है । परन्तु यह क्रम एक आवलिकम आबाधाकालसे आगेकी स्थितियोंमें नहीं बनता, क्योंकि वहाँ पर अवस्थितरूपसे एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना पाई जाती है । इस विशेषके अस्तित्वका कथन करनेके लिए यहाँ पर एक आवलि कम आबाधाकी चरम स्थितिको सूत्रकारने निषेक प्ररूपणाका विषय किया है ।

विशेषार्थ—एक समय अधिक उदयावलि और दो समय अधिक उदयावलिको विवक्षित करके सामान्यसे जितने विकल्प प्राप्त हुए थे वे सबके सब विकल्प और कितनी स्थितियों-

ॐ आवलियाए समयूणाए ऊणियाए आबाहाए एवडिमाए हिदीए जं पदेसग्गं तस्स के वियप्पा ?

§ ४४८. पुव्वमावलियाए ऊणिया जा आबाहा तिस्से चरिमट्ठिदीए पदेसग्गमवहिं काऊण हेट्ठिमासेसट्ठिदीणं वियप्पा परूविदा । संपहि तदणंतरउवरिमाए ट्ठिदीए आवलियाए समयूणाए ऊणिया जा आबाहा एवडिमाए जं पदेसग्गं तस्स के वियप्पा होंति ? ण ताव पुव्वुत्ता चेव णिरवसेसा, तेसिं हेट्ठिमाणंतरट्ठिदीए मज्जादाभावेण परूविदत्तादो । ण च तेसिमेत्थ वि संभवे तत्तो परूवणं सफलं होदि, विप्पडिसेहादो । अह अण्णे, के ते ? ण तेसिं सरूवं जाणामो त्ति एसो एदस्स

को विवक्षित करनेसे प्राप्त हो सकते हैं यह बात यहां बतलाई गई है। बात यह है कि एक समय अधिक उदयावलिकी अन्तिम स्थितिमें कितनी स्थितियोंके कर्मपरमाणु सम्भव हैं और कितनी स्थितियोंके नहीं। तथा इस स्थितिके किन कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण हो सकता है और किनका नहीं यह जैसे पहले बतलाया है वैसे ही एक आवलिकम आबाधाके भीतर सब स्थितियोंमें सामान्यसे वही क्रम बन जाता है, इसलिये इस सब कथनको सामान्यसे एक समान कहा है। किन्तु विवक्षित स्थिति उत्तरोत्तर आगे आगेकी होती जानेके कारण अवस्तु विकल्प एक एक बढ़ता जाता है और झीनस्थितिविकल्प एक एक कम होता जाता है। तथा अतिस्थापना भी घटती जाती है। जब समयाधिक उदयावलिकी अन्तिम स्थितिके कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण विवक्षित था तब अतिस्थापना समयाधिक आवलिसे न्यून आबाधाकाल प्रमाण थी। जब दो समय अधिक उदयावलिकी अन्तिम स्थितिके कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण विवक्षित हुआ तब अतिस्थापना दो समय अधिक एक आवलिसे न्यून आबाधाकाल प्रमाण रही। इसी प्रकार आगे आगे अतिस्थापनामें एक एक समय कम होता जाता है। यहाँ इतना विशेष और जानना चाहिए कि जिस हिसाबसे अतिस्थापना कम होती जाती है उसी हिसाबसे शक्तिस्थिति भी घटती जाती है। अब देखना यह है कि यहीं क्रम आवलिकम आबाधासे आगेकी स्थितियों का क्यों नहीं बतलाया। टीकाकारने इस प्रश्नका यह उत्तर दिया है कि आवलिकम आबाधासे आगेकी स्थितियोंमें स्थित कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण होने पर अतिस्थापना निश्चितरूपसे एक आवलि प्राप्त होती है। यही कारण है कि आवलिकम आबाधासे आगेकी स्थितियोंका क्रम भिन्न प्रकारसे बतलाया है।

*** एक समय कम एक आवलिसे न्यून आबाधाप्रमाण स्थितिमें जो कर्मपरमाणु पाये जाते हैं उनके कितने विकल्प होते हैं।**

§ ४४८. पहले आवलिकम आबाधाकी अन्तिम स्थितिके कर्मपरमाणुओंकी मर्यादा करके पूर्वकी सब स्थितियोंके विकल्प कहे। अब यह बतलाना है कि उससे आगेकी जो एक समय कम एक आवलिसे न्यून आबाधा है और उसमें जो कर्मपरमाणु हैं उनके कितने विकल्प होते हैं ? यदि कहा जाय कि पूर्वोक्त सब विकल्प होते हैं सो तो बात है नहीं, क्योंकि वे सब विकल्प इससे अनन्तरवर्ती पूर्वकी स्थिति तक ही कहे हैं। अब यदि उनको यहाँ भी सम्भव मानकर इस प्रकारके कथनको सफल कहा जाय सो भी बात नहीं है, क्योंकि ऐसा कथन करना निषिद्ध है। अब यदि अन्य विकल्प होते हैं तो वे कौन हैं, क्योंकि हम उनके स्वरूपको नहीं

पुच्छासुत्तस्स भावत्थो। संपहि एदिस्से पुच्छाए उत्तरमाह—

*** जस्स पदेसग्गस्स समयाहियाए आवलियाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता तं पि पदेसग्गमेदिस्से ट्ठिदीए णत्थि।**

§ ४४९. एदिस्से णिरुद्धाए ट्ठिदीए तं पदेसग्गं णत्थि जस्स समयाहियाए आवलियाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता। कुदो? एत्तो दूरयरं हेट्ठदो ओसरिय तस्स अवट्ठाणादो। तत्तो पुण हेट्ठिमा आवलियमेत्ता अवत्थुवियप्पा अणुत्तसिद्धा त्ति ण परूविदा।

*** जस्स पदेसग्गस्स दुसमयाहियाए आवलियाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता तं पि णत्थि।**

§ ४५०. एत्थ एदिस्से ट्ठिदीए इदि अणुवट्टदे। सेसं सुगमं।

जानते इस प्रकार यह इस पृच्छासूत्रका भावार्थ है। अब इस पृच्छाका उत्तर कहते हैं—

*** जिन कर्म परमाणुओंकी एक समय अधिक आवलिसे न्यून कर्मस्थिति व्यतीत हो गई है वे कर्मपरमाणु भी इस स्थितिमें नहीं हैं।**

§ ४४९. इस विवक्षित स्थितिमें वे कर्म परमाणु नहीं हैं जिनकी एक समय अधिक एक आवलिसे न्यून कर्मस्थिति व्यतीत हो गई है; क्योंकि वे कर्मपरमाणु इस विवक्षित स्थितिसे बहुत दूर पीछे जाकर अवस्थित हैं। तथा इन कर्मपरमाणुओंसे पूर्वकी एक आवलिप्रमाण स्थितिमें स्थित कर्मपरमाणु भी इस विवक्षित स्थितिमें नहीं हैं यह बात अनुक्तसिद्ध है, इसलिये इसका यहाँ कथन नहीं किया।

विशेषार्थ—आबाधाकालमें से एक समय कम एक आवलिके घटा देने पर जो अन्तकी स्थिति प्राप्त हो वह यहाँ विवक्षित स्थिति है। अब यह विचार करना है कि इस स्थितिमें किन स्थितियोंके कर्मपरमाणु हैं और किनके नहीं। एक समय अधिक उदयावलिकी अन्तिम स्थितिसे यह विवक्षित स्थिति बहुत काल आगे जाकर प्राप्त होती है, इसलिये इस विवक्षित स्थितिमें एक समय अधिक उदयावलिकी अन्तिम स्थितिके कर्मपरमाणु नहीं पाये जा सकते यह इस सूत्रका तात्पर्य है। किन्तु इस विवक्षित स्थितिमें एक समय अधिक उदयावलिकी अन्तिम स्थितिसे पूर्वकी एक आवलिप्रमाण स्थितियोंके कर्मपरमाणु भी तो नहीं पाये जाते फिर यहाँ उनका निषेध क्यों नहीं किया, यह एक प्रश्न है जिसका समाधान किया जाना आवश्यक है। अतएव इसी प्रश्नका समाधान करनेके लिये टीकामें यह बतलाया है कि जब अगली स्थितिके कर्मपरमाणुओंका विवक्षित स्थितिमें निषेध कर दिया तब इससे पिछली स्थितियोंके कर्मपरमाणुओंका विवक्षित स्थितिमें निषेध बिना कहे ही हो जाता है, इसलिये उनके निषेधका यहाँ अलगसे उल्लेख नहीं किया।

*** जिन कर्मपरमाणुओंकी दो समय अधिक एक आवलिसे न्यून कर्मस्थिति व्यतीत हो गई है वे कर्मपरमाणु भी इस विवक्षित स्थितिमें नहीं हैं।**

§ ४५०. इस सूत्रमें 'एदिस्से ट्ठिदीए' इस पदकी अनुवृत्ति होती है। शेष अर्थ सुगम है।

❀ एवं गंतूण जहेही एसा ट्ठिदी एत्तिएण ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता जस्स पदेसग्गस्स तमेदिस्से ट्ठिदीए पदेसग्गं होज्ज। तं पुण उक्कड्डणादो भीणट्ठिदियं।

§ ४५१. केदेही एसा ट्ठिदी ? जदेही समयूणावलियपरिहीणाबाहा तदेही। सेसं सुगमं।

❀ एदं ट्ठिदिमादिं कादूण जाव जहण्णियाए आबाहाए एत्तिएण ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता जस्स पदेसग्गस्स तं पि पदेसग्गमेदिस्से ट्ठिदीए होज्ज। तं पुण सव्वमुक्कड्डणादो भीणट्ठिदियं।

§ ४५२. कुदो ? अवट्ठिदाए अइच्छावणाए आवलियमेत्तीए समयूणत्तणेण अज्ज वि संपुण्णत्ताभावादो। एदमेत्थतणचरिमवियप्पस्स वुत्तं, सेसासेसमज्झिम-वियप्पाणं पि एदं चेव कारणं वत्तव्वं, विसेसाभावादो।

---

* इस प्रकार आगे जाकर जितनी यह विवक्षित स्थिति है इससे न्यून शेष कर्मस्थिति जिन कर्मपरमाणुओंकी व्यतीत हो गई है वे कर्मपरमाणु इस स्थितिमें हो सकते हैं। परन्तु वे कर्मपरमाणु उत्कर्षणसे भीन स्थितिवाले हैं।

§ ४५१. शंका—इस स्थितिका कितना प्रमाण है ?

समाधान—एक समय कम आवलिसे न्यून आबाधा जितनी है उतना इस स्थितिका प्रमाण है।

शेष कथन सुगम है।

विशेषार्थ—इस सूत्रमें यह बतलाया है कि इस विवक्षित स्थितिमें किस स्थितिसे पूर्वके कर्मपरमाणु नहीं हैं और वह प्रारम्भकी कौनसी स्थिति है जिसके परमाणु इसमें हैं। जैसा कि पहले लिख आये हैं कि इस विवक्षित स्थितिमें जिन कर्मपरमाणुओंकी एक समय अधिक आवलिसे न्यून कर्मस्थिति व्यतीत हो गई है वे कर्मपरमाणु नहीं है। जिनकी दो समय अधिक आवलिसे न्यून कर्मस्थिति व्यतीत हो गई है वे कर्मपरमाणु भी नहीं हैं। इसी प्रकार उत्तरोत्तर एक एक समय बढ़ाते हुए जिनकी एक आवलि न्यून आबाधाप्रमाण कर्मस्थिति शेष रही है वे कर्मपरमाणु भी इस विवक्षित स्थितिमें नहीं हैं। मात्र जिनकी एक समय कम आवलिसे न्यून आबाधाप्रमाण कर्मस्थिति शेष है वे कर्मपरमाणु इस विवक्षित स्थितिमें अवश्य पाये जाते हैं। फिर भी इन कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण नहीं हो सकता, क्योंकि इनमें एक समयमात्र भी शक्ति-स्थिति नहीं पाई जाती है यह इस सूत्रका भाव है।

* इस स्थितिसे लेकर जघन्य आबाधा तक जितनी स्थिति है उससे न्यून कर्मस्थिति जिन कर्मपरमाणुओंकी व्यतीत हो गई है वे कर्मपरमाणु भी इस विवक्षित स्थितिमें हैं परन्तु वे सबके सब उत्कर्षणसे भीन स्थितिवाले हैं।

§ ४५२. क्योंकि अवस्थित अतिस्थापना एक आवलिप्रमाण बतलाई है वह एक समय कम होनेसे अभी पूरी नहीं हुई है। यह यहाँ अन्तिम विकल्पका कारण कहा है। बाकीके सब मध्यम विकल्पोंका भी यही कारण कहना चाहिये, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है।

§ ४५३. संपहियणिरुद्धट्ठिदीए पुव्वमाविट्ठहेट्ठिमट्ठिदीणं च साहारणी एसा परूवणा; तत्थ वि आवाहामेत्तावसेसकम्मट्ठिदियस्स पदेसग्गस्स झीणट्ठिदियत्तुवलंभादो। संपहि एत्थतणअसामण्णवियप्पपरूवणट्ठमुत्तरो पबंधो—

*** आबाधाए समयुत्तराए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता जस्स पदेसग्गस्स तं पि एदिस्से ट्ठिदीए पदेसग्गं होज्ज। तं पुण उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं।**

§ ४५४. जइ वि एत्थ अइच्छावणा आवलियमेत्ती पुण्णा तो वि णिक्खेवाभावेण उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियत्तमिदि घेत्तव्वं। कुदो णिक्खेवाभावो? आवलियमेत्तं मोत्तूण उवरि सत्तिट्ठिदीए अभावादो। एसो एत्थ णिरुद्धट्ठिदीए संतकम्ममस्सियूण

विशेषार्थ—प्रकृत सूत्रमें यह बतलाया है कि इस विवक्षित स्थितिमें स्थित किस स्थिति तकके कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण नहीं हो सकता। यह तो पहले ही बतला आये हैं कि एक समय कम एक आवलिसे न्यून आबाधाप्रमाण स्थितिसे लेकर आगे सर्वत्र अतिस्थापना एक आवलि प्राप्त होती है। अब जब इस नियमको सामने रखकर विचार किया जाता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि जिन कर्मपरमाणुओंकी एक समय कम एक आवलिसे न्यून आबाधा प्रमाण स्थितिसे लेकर आबाधाप्रमाण स्थिति शेष है उनका भी उत्कर्षण नहीं हो सकता, क्योंकि इसमें प्रारम्भके विकल्पमें एक समयमात्र भी शक्तिस्थिति या अतिस्थापना नहीं पाई जाती। दूसरे विकल्पमें अतिस्थापना केवल एक समयमात्र पाई जाती है। तीसरे विकल्पमें दो समय अतिस्थापना पाई जाती है इस प्रकार आगे आगे जाने पर अन्तिम विकल्पमें वह अतिस्थापना एक समय कम एक आवलि पाई जाती है। परन्तु पूरी आवलिप्रमाण अतिस्थापना किसी भी विकल्पमें नहीं पाई जाती इसलिये इन कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण नहीं हो सकता यह इस सूत्रका भाव है।

§ ४५३. किन्तु इस समय जो स्थिति विवक्षित है और इससे पूर्वकी जो स्थितियाँ विवक्षित रहीं उन दोनोंके प्रति यह प्ररूपणा साधारण है; क्योंकि वहाँ भी जिन कर्मपरमाणुओंकी स्थिति आबाधाप्रमाण शेष रही है उनमें झीनस्थितिपना स्वीकार किया गया है। अब इस स्थितिसम्बन्धी असाधारण विकल्पका कथन करनेके लिये आगेकी रचना है—

*** जिन कर्मपरमाणुओंकी एक समय अधिक आबाधासे न्यून कर्मस्थिति व्यतीत हुई है वे कर्मपरमाणु भी इस स्थितिमें हैं पर वे उत्कर्षणसे झीन स्थितिवाले हैं।**

§ ४५४. यद्यपि यहाँ एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना पूरी हो गई है तो भी निक्षेपका अभाव होनेसे वे कर्मपरमाणु उत्कर्षणसे झीनस्थितिवाले हैं यह यहाँ ग्रहण करना चाहिये।

शंका—निक्षेपका अभाव क्यों है?

समाधान—क्योंकि इन कर्मपरमाणुओंकी एक आवलिके सिवा और अधिक शक्ति स्थिति नहीं पाई जाती, इसलिये निक्षेपका अभाव है।

इस विवक्षित स्थितिमें सत्कर्मकी अपेक्षासे जो यह विकल्प विशेष कहा है सो यह

हेट्ठिल्लट्ठिदीहिंतो अपुणरुत्तो वियप्पविसेसो हेट्ठिमट्ठिदिपदेसग्गाणमाबाहासेसमेत्त-मधिच्छाविय तदणंतरोवरिमाए एक्किस्से ट्ठिदीए णिक्खेवुवलंभादो । णवकबंध-मस्सियूण पुण आवलियमेत्ता चेय अवत्थुवियप्पा पुव्वं व सव्वत्थ अणूणाहिया होंति त्ति णत्थि तत्थ णाणत्तं । णवरि पुव्वपरूविदाणमावलियमेत्तणवकबंधाणं मज्झे पढमसमयपबद्धस्सावलियाविच्छिदबंधस्स जहा णिसेयसरूवेण वत्थुत्तमेत्थ दीसइ; हेट्ठिमसमए चेव तदाबाहापरिच्छित्तिदंसणादो । तं पि कुदो ? जहण्णाबाहाए चेव सव्वत्थ विवक्खियत्तादो । कधं पुण संपुण्णावलियमेत्तपमाणमेत्थ तव्वियप्पाणमिदि णासंकणिज्जं, तक्कालियणवकबंधेण सह तेसिं तदविरोहादो । एत्तिओ चेव विसेसो, णत्थि अण्णो को इ विसेसो त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तं—

* तेण परमज्झीणट्ठिदियं ।

§ ४५५. तत्तो समयुत्तरबाहापरिहीणविदिक्कंतकम्मट्ठिदियादो णिरुद्धट्ठिदि-पदेसग्गादो परमण्णं पदेसग्गमज्झीणट्ठिदियमुक्कड्डणादो त्ति अहियारवसेणाहिसंबंधो । कुदो एदमज्झीणट्ठिदियं ? अधिच्छावणा-णिक्खेवाणमेत्थ संभवादो । केत्तियमेत्ती

विकल्प पूर्वकी स्थितियोंसे अपुनरुक्त है; क्योंकि पूर्वकी स्थितियोंके कर्मपरमाणुओंकी जो आबाधा शेष रहती है उसे अतिस्थापनारूपसे स्थापित करके उससे आगेकी एक स्थितिमें निक्षेप पाया जाता है। नवकबन्धकी अपेक्षा तो सर्वत्र न्यूनाधिकतासे रहित पहलेके समान एक आवलिप्रमाण ही अवस्तु विकल्प होते हैं, इसलिये उनके कथनमें सर्वत्र कोई भेद नहीं है। किन्तु इतनी विशेषता है कि पहले जो एक आवलिप्रमाण नवकबन्ध कहे हैं उनमेंसे जिसे बँधे एक आवलि हो गया है ऐसे प्रथम समयप्रबद्धके निषेकोंकी जैसी रचना हुई उसके अनुसार सद्भाव यहाँ विवक्षित स्थितिमें दिखाई देता है; क्योंकि इससे पूर्वके समयमें ही उस समयप्रबद्धके आबाधाका अन्त देखा जाता है।

शंका—सो कैसे ?

समाधान—क्योंकि सर्वत्र जघन्य आबाधा ही विवक्षित है।

यदि ऐसा है तो फिर यहाँ पर नवकबन्धसम्बन्धी अवस्तुविकल्प पूरी आवलिप्रमाण कैसे हो सकते हैं सो ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि तत्कालिक नवकबन्धके साथ उन्हें पूरी आवलिप्रमाण माननेमें कोई विरोध नहीं आता। यहाँ इतनी ही विशेषता है अन्य कोई विशेषता नहीं है इस प्रकार इस बातके जतानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* उससे आगे अझीनस्थितिवाले कर्मपरमाणु हैं।

§ ४५५. उससे आगे अर्थात् पहले जो एक समय अधिक आबाधासे हीन कर्मस्थिति और इस स्थितिके जो कर्मपरमाणु कहे हैं उनसे आगे अन्य कर्मपरमाणु उत्कर्षणसे अझीन स्थितिवाले हैं ऐसा यहाँ अधिकारके अनुसार अर्थ करना चाहिये।

शंका—ये कर्म परमाणु अझीन स्थितिवाले क्यों हैं ?

समाधान—क्योंकि यहाँ अतिस्थापना और निक्षेप दोनों सम्भव हैं।

एत्थतणी अधिच्छावणा ? आवलियमेत्ती अवट्ठिदा चेयमुवरि सव्वत्थ। केत्तिओ पुण एत्थ णिक्खेवो ? एओ समओ । सो च अणवट्ठिओ समउत्तरादिकमेण उवरिम-वियप्पेसु वट्टमाणो गच्छइ ।

§ ४५६. संपहि पयदट्ठिदीए वियप्पे समाणिय उवरिमासु ट्ठिदीसु वियप्पगवेसणं कुणमाणो चुण्णिसुत्तयारो इदमाह—

❀ समयूणाए आवलियाए ऊणिया आबाहा। एदिस्से ट्ठिदीए वियप्पा समत्ता।

§ ४५७. सुगमं ।

❀ एदादो ट्ठिदीदो समयुत्तराए ट्ठिदीए वियप्पे भणिस्सामो ।

शंका—यहाँ अतिस्थापनाका प्रमाण कितना है ?

समाधान—एक आवली, जो कि आगे सर्वत्र अवस्थित ही जानना चाहिये।

शंका—यहाँ निक्षेपका प्रमाण कितना है ?

समाधान—एक समय जो कि अनवस्थित है, क्योंकि वह आगेके विकल्पोंमें एक-एक समय अधिकके क्रमसे बढ़ता जाता है।

विशेषार्थ—पहले यह बतलाकर कि एक समय कम आवलिसे न्यून आबाधाप्रमाण कर्मस्थितिमें जिन कर्मपरमाणुओंकी स्थिति एक समय अधिक आबाधाप्रमाण शेष हो उनका उत्कर्षण नहीं हो सकता, क्योंकि यहाँ आवलिप्रमाण अतिस्थापनाके रहने पर भी निक्षेपका सर्वथा अभाव है। अब यह बतलाया गया है कि उसी विवक्षित स्थितिमें जिन कर्मपरमाणुओंकी स्थिति उक्त स्थितिसे अधिक शेष हो उनका उत्कर्षण हो सकता है। यहाँ सर्वत्र अतिस्थापना तो एक आवलिप्रमाण ही प्राप्त होती है न्यूनाधिक नहीं। पर निक्षेप उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। यदि पूर्वस्थितिसे एक समय अधिक स्थिति शेष हो तो निक्षेप एक समय प्राप्त होता है। यदि दो समय अधिक शेष हो तो निक्षेप दो समय प्राप्त होता है। इस प्रकार आगे आगे शेष रही स्थितिके अनुसार निक्षेप बढ़ता जाता है।

§ ४५६. अब प्रकृत स्थितिमें विकल्पोंको समाप्त करके आगेकी स्थितियोंमें विकल्पोंका विचार करते हुए चूर्णिसूत्रकार आगेका सूत्र कहते हैं—

*** विवक्षित स्थितिमें एक समय कम आवलिसे न्यून आबाधाप्रमाण अवस्तु विकल्प होते हैं। इस प्रकार इस स्थितिके विकल्प समाप्त हुए।**

४५७. यह सूत्र सरल है।

विशेषार्थ—विवक्षित स्थिति दो समय कम आवलिसे न्यून आबाधाकी अन्तिम स्थिति है, अतः इसमें, जिन कर्मपरमाणुओंकी स्थिति उदय समयसे लेकर एक समय कम आवलिसे न्यून आबाधाकाल तक शेष रही है, वे कर्मपरमाणु नहीं पाये जाते। इसीसे इस विवक्षित स्थितिमें एक समय कम आवलिसे न्यून आबाधाप्रमाण अवस्तुविकल्प बतलाये हैं।

*** अब इस स्थितिसे एक समय अधिक स्थितिके विकल्प कहेंगे।**

§ ४५८. इमादो पुव्वणिरुद्धट्ठिदीदो समयुत्तरा जा ट्ठिदी तिस्से पदेसग्गस्स अवत्थुवियप्पे भीणाभीणट्ठिदियवियप्पे च भणिस्सामो त्ति सुत्तत्थो ।

❀ सा पुण का ट्ठिदी ।

§ ४५९. सा पुण संपहि णिरुंभिज्जमाणा का ट्ठिदी, कइन्थी सा, उदयट्ठिदीदो केत्तियमद्धाणमुवरि चडिय ववट्ठिदा, आवाहा चरिमसमयादो वा केत्तियमेत्तमोइण्णा त्ति एवमासंकिय सिस्सं णिरारेयं काउमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ दुसमयूणाए आवलियाए ऊणिया जा आवाहा एसा सा ट्ठिदी ।

§ ४६०. जेत्तिया दुसमयूणाए आवलियाए ऊणिया आवाहा एसा सा ट्ठिदी, एवडिमा सा ट्ठिदी जा संपहि वियप्पपरूवणट्ठमाइट्ठा । उदयट्ठिदीदो दुसयूणावलिय-परिहीणाबाहामेत्तमद्धाणमुवरि चडिय आवाहाचरिमसमयादो दुसमयूणावलियमेत्तं हेट्ठदो वोसरिय पुव्वाणंतरणिरुद्धट्ठिदीए उवरि ट्ठिदा एसा ट्ठिदि त्ति वुत्तं होइ ।

❀ इदाणिमेदिस्से ट्ठिदीए अवत्थुवियप्पा केत्तिया ।

§ ४६१. सुगमं ।

❀ जावदिया हेट्ठिल्लियाए ट्ठिदीए अवत्थुवियप्पा तदो रूवुत्तरा ।

---

§ ४५८. इससे अर्थात् पूर्व विवक्षित स्थितिसे जो एक समय अधिक स्थिति है उस स्थितिके कर्मपरमाणुओंके अवस्तुविकल्प और भीनाभीन स्थितिविकल्प कहेंगे यह इस सूत्रका भाव है ।

* वह कौनसी स्थिति है ?

§ ४५९. जो इस समय विवक्षित है वह कौनसी स्थिति है, उसका क्या प्रमाण है, उदयस्थितिसे कितना स्थान आगे जाकर वह स्थित है, या आबाधाके अन्तिम समयसे कितना काल पीछे जाकर वह पाई जाती है इस प्रकारकी शंका करनेवाले शिष्यको निःशंक करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* दो समय कम आवलिसे न्यून जो आबाधा है यह वह स्थिति है ।

§ ४६०. दो समय कम आवलिसे न्यून आबाधाका जितना प्रमाण हो इतनी वह स्थिति है जो इस समय विकल्पोंका कथन करनेके लिये विवक्षित है । उदय स्थितिसे दो समय कम आवलिसे हीन आबाधाप्रमाण स्थान आगे जाकर और आबाधाके अन्तिम समयसे दो समय कम आवलिप्रमाण स्थान पीछे जाकर पूर्वोक्त अनन्तरवर्ती विवक्षित स्थितिके आगे यह स्थिति है यह इस सूत्रका भाव है ।

* अब इस स्थितिके अवस्तुविकल्प कितने हैं ।

§ ४६१. यह सूत्र सरल है ।

* पिछली स्थितिके जितने अवस्तु विकल्प हैं उनसे एक अधिक हैं ।

§ ४६२. संतकम्ममस्सियूण जेत्तिया अणंतरहेट्ठिमाए अवत्थुवियप्पा तदो रूवुत्तरा एत्थ ते वत्तव्वा, तत्तो रूवुत्तरमद्धाणं चडिय एदिस्से अवट्ठाणादो। एदं रूवुत्तरवयणमंतदीवयं। तेण हेट्ठिमासेसट्ठिदीणमवत्थुवियप्पा अणंतराणंतरादो रूवुत्तरा त्ति घेत्तव्वं। एदं च संतकम्ममस्सियूण परूविदं, ण णवकबंधमस्सिय, तत्थावलियमेत्ताणमवत्थुवियप्पाणमवट्ठिदसरूवेणावट्ठाणादो। एवमवत्थुवियप्पे परूविय वत्थुवियप्पाणं झीणाझीणट्ठिदियभेदभिण्णाणं परूवणट्ठमुत्तरो पबंधो—

ॐ जद्देही एसा ट्ठिदी तत्तियं ट्ठिदिसंतकम्मं कम्मट्ठिदीए सेसयं जस्स पदेसग्गस्स तं पयेसग्गमेदिस्से ट्ठिदीए होज्ज तं पुण उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं।

§ ४६३. कुदो? उवरि सत्तिट्ठिदीए एयस्स वि समयस्स अभावादो।

ॐ एदादो ट्ठिदीदो समयुत्तरट्ठिदिसंतकम्मं कम्मट्ठिदीए सेसयं जस्स पदेसग्गस्स तमुक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं।

§ ४६४. सुगमं।

ॐ एवं गंतूण आबाहामेत्तट्ठिदिसंतकम्मं कम्मट्ठिदीए सेसं जस्स पदेसग्गस्स एदीए ट्ठिदीए दीसइ तं पि उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं।

---

§ ४६२. सत्कर्मकी अपेक्षा जितने अनन्तरवर्ती पिछली स्थितिके अवस्तुविकल्प हैं उनसे एक अधिक यहाँ वे विकल्प हैं, क्योंकि पूर्वस्थितिसे एक स्थान आगे जाकर यह स्थिति अवस्थित है। इस सूत्रमें जो 'रूवुत्तरा' वचन आया है सो यह अन्तदीपक है। इससे यह मालूम होता है कि पीछे सर्वत्र पूर्व पूर्व अनन्तरवर्ती स्थितिसे आगे आगेकी स्थितिके अवस्तु विकल्प एक एक अधिक होते हैं। यह सब सत्कर्मकी अपेक्षासे कहा है, नवकबन्धकी अपेक्षासे नहीं, क्योंकि नवकबन्धकी अपेक्षासे सर्वत्र एक आवलिप्रमाण ही अवस्तुविकल्प पाये जाते हैं। इस प्रकार अवस्तुविकल्पोंका कथन करके झीनाझीनस्थितियोंकी अपेक्षासे अनेक प्रकारके वस्तुविकल्पोंका कथन करनेके लिये आगेकी रचना है —

*** जितनी यह स्थिति है उतना स्थितिसत्कर्म जिन कर्मपरमाणुओंका शेष है व कर्मपरमाणु इस स्थितिमें हैं। किन्तु वे उत्कर्षणसे झीनस्थितिवाले हैं।**

§ ४६३. क्योंकि ऊपर एक समयमात्र भी शक्तिस्थिति नहीं पाई जाती है।

*** इस स्थितिसे जिन कर्मपरमाणुओंका कर्मस्थितिमें एक समय अधिक स्थितिसत्कर्म शेष है वे कर्मपरमाणु भी उत्कर्षणसे झीनस्थितिवाले हैं।**

§ ४६४. यह सूत्र सरल है।

*** इसी प्रकार आगे जाकर कर्मस्थितिमें जिन कर्मपरमाणुओंका आबाधाप्रमाण स्थितिसत्कर्म शेष है वे कर्मपरमाणु भी इस स्थितिमें पाये जाते हैं। परन्तु वे भी उत्कर्षणसे झीन स्थितिवाले हैं।**

§ ४६५. एत्थ तं पि सद्दो आवित्तीए दोवारमहिसंबंधेयव्वो । तं पि पदेसग्गमेदम्मि ट्ठिदीए दीसइ । दिस्समाणं पि तमुक्कड्डणादो झीणट्ठिदियमिदि ।

*** आबाहासमयुत्तरमेत्तं ट्ठिदिसंतकम्मं कम्मट्ठिदीए सेसं जस्स पदेसग्गस्स तं पि उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं ।**

§ ४६६. कम्मट्ठिदीए अब्भंतरे जस्स पदेसग्गस्स समयुत्तराबाहामेत्तट्ठिदिसंतकम्ममवसेसं तं पि एदिस्से ट्ठिदीए ट्ठिदमुक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं । कुदो ? अधिच्छावणाए अज्ज वि समयूणत्तदंसणादो ।

*** आबाधादुसमयुत्तरमेत्तट्ठिदिसंतकम्मं कम्मट्ठिदीए सेसं जस्स पदेसग्गस्स एदिस्से ट्ठिदीए दिस्सइ न पदेसग्गमुक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं ।**

§ ४६७. कुदो अधिच्छावणाए आवलियमेत्तीए संपुण्णाए संतीए झीणट्ठिदियत्तमेदस्स ? ण, णिक्खेवाभावेण तहाभावाविरोहादो ।

---

§ ४६५. इस सूत्रमें 'तं पि' शब्दकी आवृत्ति करके दो बार सम्बन्ध कर लेना चाहिये । यथा—वे कर्मपरमाणु भी इस स्थितिमें पाये जाते हैं । पाये जाकर भी वे उत्कर्षणसे झीन स्थितिवाले हैं ।

*** तथा जिन कर्मपरमाणुओंकी कर्मस्थितिमें एक समय अधिक आबाधाप्रमाण स्थिति शेष है वे कर्मपरमाणु भी उत्कर्षणसे झीन स्थितिवाले हैं ।**

§ ४६६. कर्मस्थितिके भीतर जिन कर्मपरमाणुओंका एक समय अधिक आबाधाप्रमाण स्थितिसत्कर्म शेष है वे कर्मपरमाणु भी यद्यपि इस स्थितिमें हैं तो भी वे उत्कर्षणसे झीन स्थितिवाले हैं, क्योंकि अभी भी अतिस्थापनामें एक समय कम देखा जाता है ।

*** कर्मस्थितिके भीतर जिन कर्मपरमाणुओंका दो समय अधिक आबाधाप्रमाण स्थितिसत्कर्म शेष है वे कर्मपरमाणु भी इस स्थितिमें पाये जाते हैं । परन्तु वे उत्कर्षणसे झीन स्थितिवाले हैं ।**

§ ४६७. **शंका**—जब कि अतिस्थापना एक आवलिप्रमाण पूरी है तब इन कर्मपरमाणुओंमें झीनस्थितिपना कैसे है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि निक्षेपका अभाव होनेसे इन कर्मपरमाणुओंमें झीनस्थितिपनेके होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

विशेषार्थ—इन पूर्वोक्त सूत्रोंमें यह बतलाया है कि तीन समय अधिक आवलिसे न्यून आबाधाप्रमाण स्थितिमें झीनस्थिति विकल्प कहाँसे लेकर कहाँ तक होते हैं । यह तो पहले ही बतलाया जा चुका है कि एक समय कम आवलिसे न्यून आबाधाप्रमाण स्थितिसे लेकर आगे सर्वत्र अतिस्थापना एक आवलि प्राप्त होती है । विवक्षित स्थिति भी उक्त स्थितिसे दो समय आगे जाकर प्राप्त है, इसलिये इसमें भी अतिस्थापनाका प्रमाण एक आवलि प्राप्त होता है । आशय यह है कि इस स्थितिमें जो कर्मपरमाणु स्थित हैं उनमेंसे जिनकी स्थिति उसी विवक्षित

❀ तेण परमुक्कड्डणादो अझीणट्ठिदियं ।

§ ४६८. आवलियमेत्तमइच्छावि एक्किस्से अणंतरोवरिमट्ठिदीए णिक्खेवुवलंभादो उवरि णिक्खेवस्स समयुत्तरकमेण वड्ढिदंसणादो च ।

❀ दुसमयूणाए आवलियाए ऊणिया आबाहा एवडिमाए ट्ठिदीए वियप्पा समत्ता ।

❀ एत्तो समयुत्तराए ट्ठिदीए वियप्पे भणिस्सामो ।

§ ४६९. एत्तो समणंतरविदिक्कंतणिरुद्धट्ठिदीदो जा समयुत्तरा ट्ठिदी तिस्से वियप्पे अवत्थु झीणाझीणट्ठिदियभेदभिण्णे भणिस्सामो त्ति पइज्जासुत्तमेदं ।

❀ एत्तो पुण ट्ठिदीदो समयुत्तरा ट्ठिदी कदमा ।

§ ४७०. सुगमं ।

❀ जहण्णिया आबाहा तिसमयूणाए आवलियाए ऊणिया एवडिमा ट्ठिदी ।

स्थितिप्रमाण या उससे एक समयसे लेकर एक आवलि तक अधिक है उनका उत्कर्षण नहीं हो सकता, क्योंकि यहाँ अन्तिम विकल्पमें यद्यपि अतिस्थापना पूरी हो गई है तो भी निक्षेपका सर्वत्र अभाव है।

*** उससे आगे उत्कर्षणसे अझीन स्थितिवाले कर्मपरमाणु हैं ।**

§ ४६८. क्योंकि यहाँ एक आवलिप्रमाण स्थितियोंको अतिस्थापनारूपसे स्थापित करके अनन्तरवर्ती आगेकी एक स्थितिमें निक्षेप देखा जाता है और आगे भी एक एक समय अधिकके क्रमसे निक्षेपकी वृद्धि देखी जाती है।

विशेषार्थ—दो समय कम आवलिसे न्यून आबाधाप्रमाण स्थितिमें जिन कर्मपरमाणुओंकी स्थिति तीन समय अधिक आबाधा प्रमाण या इससे भी अधिक है उन कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण हो सकता है, क्योंकि यहाँ अतिस्थापना और निक्षेप दोनों पाये जाते हैं यह इस सूत्रका आशय है।

*** दो समय कम आवलिसे न्यून आबाधाप्रमाण स्थितिके विकल्प समाप्त हुए ।**

*** अब इस पूर्वोक्त स्थितिसे एक समय अधिक स्थितिके विकल्प कहेंगे ।**

§ ४६९. अब इस समनन्तर व्यतीत हुई विवक्षित स्थितिसे जो एक समय अधिक स्थिति है उसके अवस्तु और झीनाझीन स्थितियोंकी अपेक्षा नाना प्रकारके विकल्पोंको कहेंगे इस प्रकार यह प्रतिज्ञा सूत्र है।

*** किन्तु इस स्थितिसे एक समय अधिक स्थिति कौन सी है ।**

§ ४७०. यह सूत्र सुगम है।

*** तीन समय कम आवलिसे न्यून जघन्य आबाधाका जितना प्रमाण है यह वह स्थिति है ।**

§ ४७१. उदयट्ठिदीदो तिसमयूणावलियपरिहीणजहण्णाबाहामेत्तमुवरि चडिय आबाहाचरिमसमयादो तिसमयूणावलियमेत्तमोदरिय एसा ट्ठिदी ट्ठिदा त्ति वुत्तं होदि। एदिस्से ट्ठिदीए केत्तिया वियप्पा होंति त्ति सिस्साभिप्पायमासंकिय एत्तियमेत्ता होंति त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

✽ एदिस्से ट्ठिदीए एत्तिया चेव वियप्पा। णवरि अवत्थुवियप्पा रूवुत्तरा।

§ ४७२. एदिस्से संपहि णिरुद्धट्ठिदीए एत्तिया चेव वियप्पा होंति जेत्तिया अणंतरहेट्ठिमाए। णवरि संतकम्मसस्सियूण अवत्थुवियप्पा रूवुत्तरा होंति, तत्तो रूवुत्तरमेत्तमद्धाणमुवरि गंतूणावट्ठाणादो।

✽ एस कमो जाव जहण्णिया आबाहा समयुत्तरा त्ति।

§ ४७३. एस अणंतरपरूविदो कमो जाव जहण्णिया आबाहा समयुत्तरा त्ति अवट्ठिदाणं दुसमयूणावलियमेत्तियाणमुवरिमट्ठिदीणं पि अणूणाहिओ जाणेयव्वो, विसेसाभावादो। णवरि आबाहाचरिमसमयादो अणंतरोवरिमाए ट्ठिदीए णवकबंधमस्सियूण अवत्थुवियप्पा ण लब्भंति। आबाहाए बाहिं तक्कालियस्स वि णवकबंध-

---

§ ४७१. उदय स्थितिसे तीन समय कम आवलिसे न्यून जघन्य आबाधाप्रमाण स्थान आगे जाकर और आबाधाके अन्तिम समयसे तीन समय कम एक आवलिप्रमाण स्थान पीछे आकर यह स्थिति स्थित है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस स्थितिमें कितने विकल्प होते हैं इस प्रकार शिष्यके अभिप्रायानुसार आशंका करके इतने विकल्प होते हैं यह बतलानेके लिये आगेका सूत्र आया है—

✽ इस स्थितिमें इतने ही विकल्प होते हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवस्तुविकल्प एक अधिक होते हैं।

§ ४७२. इस समय जो स्थिति विवक्षित है उसमें इतने ही विकल्प होते हैं जितने अनन्तर पूर्ववर्ती स्थितिमें बतला आये हैं। किन्तु सत्कर्मकी अपेक्षा अवस्तुविकल्प एक अधिक होते हैं, क्योंकि पूर्व स्थितिसे एक स्थान आगे जाकर यह स्थिति अवस्थित है।

विशेषार्थ—पूर्व स्थितिसे इस स्थितिमें और कोई विशेषता नहीं है, इसलिये इसके और सब विकल्प तो पूर्व स्थितिके ही समान हैं। किन्तु अवस्तुविकल्पोंमें एककी वृद्धि हो जाती है, क्योंकि पूर्व स्थितिसे एक स्थान आगे जाकर यह स्थिति स्थित है यह इस सूत्रका भाव है।

✽ एक समय अधिक जघन्य आबाधाप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक यही क्रम जानना चाहिये।

§ ४७३. यह जो इससे पहले क्रम कहा है वह एक समय अधिक जघन्य आबाधाके प्राप्त होने तक जो दो समय कम एक आवलिप्रमाण स्थितियाँ अवस्थित हैं उन आगेकी स्थितियोंका भी न्यूनाधिकताके विना पूर्ववत् जानना चाहिये, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है। किन्तु इतनी विशेषता है कि आबाधाके अन्तिम समयसे अनन्तर स्थित आगेकी स्थितिमें नवकबन्धकी अपेक्षा अवस्तुविकल्प नहीं पाये जाते, क्योंकि आबाधाके बाहर जिस

पदेसणिसेयस्स पडिसेहाभावादो ।

*** जहण्णियाए आबाहाए दुसमयुत्तराए पहुडि णत्थि उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं ।**

§ ४७४. एदस्स सुत्तस्स अवयवत्थपरूवणा सुगमा। एत्थ चोदओ भणदि—दुसमयुत्तरजहण्णाबाहाओ उवरिमट्ठिदीसु वि उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं पदेसग्गमत्थि, तत्थेव णिट्ठियकम्मट्ठिदियसमयपबद्धपदेसग्गप्पहुडि अइच्छावणावलियमेत्ताणमेत्थ झीणट्ठिदियवियप्पाणमुवलंभादो। ण च णवकबंधमस्सियूण अवत्थुवियप्पा णत्थि त्ति तहा परूवणं णाइयं, तेसिमेत्थ पहाणत्ताभावादो। तदो आवलियमेत्तेसु झीणट्ठिदियवियप्पेसु आबाहादो उवरि वि ट्ठिदिं पडि लब्भमाणेसु किमेदं वुच्चदे—आबाहाए दुसमयुत्तराए पहुडि णत्थि उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियमिदि? एत्थ परिहारो वुच्चदे—उक्कड्डणादो झीणा ट्ठिदी जस्स पदेसग्गस्स तमुक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं णाम। ण च एदं दुसमयुत्तराबाहप्पहुडि उवरिमासु ट्ठिदीसु संभवइ, तत्थ समाणिद-

---

समय बन्ध होता है उस समय भी नवकबन्धके निषेकोंका प्रतिषेध नहीं है।

विशेषार्थ—तीन समय कम आवलिसे न्यून जघन्य आबाधाप्रमाण स्थितिके सम्बन्धमें जो क्रम कहा है वही क्रम एक समय अधिक आबाधाप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक भी प्रत्येक स्थितिका जानना चाहिये यह इस सूत्रका आशय है। किन्तु आबाधाप्रमाण स्थितिसे आगेकी स्थितिमें नवकबन्धकी अपेक्षा अवस्तुविकल्प नहीं पाये जाते, यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये। इसका कारण यह है कि आबाधाके भीतर निषेकरचना नहीं होनेके कारण सर्वत्र एक आवलिप्रमाण अवस्तुविकल्प प्राप्त हो जाते हैं। पर आबाधाके बाहर तो प्रारम्भसे ही निषेकरचना पाई जाती है, इसलिये वहाँ नवकबन्धकी अपेक्षा अवस्तुविकल्प किसी भी हालतमें सम्भव नहीं हैं।

*** दो समय अधिक जघन्य आबाधाप्रमाण स्थितिसे लेकर आगे उत्कर्षणसे झीन स्थितिवाले कर्मपरमाणु नहीं हैं।**

§ ४७४. इस सूत्रके प्रत्येक पदका व्याख्यान सुगम है।

शंका—यहाँ पर शंकाकार कहता है कि दो समय अधिक जघन्य आबाधाप्रमाण स्थितिसे लेकर आगेकी स्थितियोंमें भी उत्कर्षणसे झीन स्थितिवाले कर्मपरमाणु हैं, क्योंकि समयप्रबद्धके जिन कर्मपरमाणुओंकी कर्मस्थिति वहीं समाप्त हो गई है उन कर्मपरमाणुओंसे लेकर अतिस्थापनावलिप्रमाण झीनस्थितिविकल्प यहाँ पाये जाते हैं। यदि कहा जाय कि नवकबन्धकी अपेक्षा अवस्तुविकल्प नहीं हैं, इसलिये ऐसा कथन करना न्याय्य है सो भी बात नहीं है, क्योंकि उनकी यहाँ प्रधानता नहीं है। इसलिए जब कि आबाधासे ऊपर प्रत्येक स्थितिके प्रति एक आवलिप्रमाण झीनस्थितिविकल्प पाये जाते हैं तब फिर यह क्यों कहा जाता है कि दो समय अधिक आबाधाप्रमाण स्थितिसे आगे उत्कर्षणसे झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणु नहीं हैं?

समाधान—अब यहाँ इस शंकाका परिहार करते हैं—जिन कर्मपरमाणुओंकी स्थिति उत्कर्षणसे झीन है वे कर्मपरमाणु उत्कर्षणसे झीनस्थितिवाले कहलाते हैं। किन्तु यह अर्थ दो समय अधिक आबाधासे आगेकी स्थितियोंमें सम्भव नहीं है, क्योंकि समयप्रबद्धके जिन

कम्मट्ठिदियसमयपबद्धपडिबद्धपदेसग्गस्स ओकड्डणाए आबाहाब्भंतरे णिक्खित्तस्स पुणो वि उक्कड्डियूण आबाहादो उवरि णिक्खेवसंभवेण तत्तो झीणट्ठिदियत्ताणुव-लंभादो। ण च णिरुद्धट्ठिदीए चेव समवट्ठिदाणमुक्कड्डणा ण संभवदि त्ति तत्तो झीणट्ठिदियत्तं वोत्तुं जुत्तं, जत्थ वा तत्थ वा ट्ठिदस्स णिरुद्धट्ठिदिपदेसग्गस्स उक्कड्डणासत्तीए अच्चंताभावस्सेह विवक्खियत्तादो। एसा सव्वा वि उक्कड्डणादो झीणाझीणट्ठिदियाणमट्ठपदपरूवणा ओघेण मूलुत्तरपयडिविसेसविवक्खमकाऊण सामण्णेण परूविदा। एत्तो सव्वासु वि मग्गणासु सगसगजहण्णाबाहाओ अस्सियूण पुध पुध सव्वकम्माणमादेसपरूवणा कायव्वा।

❀ एवमुक्कड्डणादो झीणट्ठिदियस्स अट्ठपदं समत्तं।

❀ एत्तो संकमणादो झीणट्ठिदियं।

§ ४७५. एत्तो उवरि संकमणादो झीणट्ठिदियं भणिस्सामो त्ति पइज्जासुत्तमेदं।

❀ जं उदयावलियपविट्ठं तं, णत्थि अण्णो वियप्पो।

§ ४७६. एत्थ संकमणादो झीणट्ठिदियमिदि अणुवट्टदे। तेण जमुदयावलियं पइट्ठं तं संकमणादो झीणट्ठिदियं होदि त्ति संबंधो कायव्वो। कुदो उदयावलियब्भंतरे

कर्मपरमाणुओंने वहाँ अपनी स्थिति समाप्त कर ली हो उनको अपकर्षण द्वारा आबाधाके भीतर निक्षिप्त कर देने पर उत्कर्षण होकर फिर भी उनका आबाधाके ऊपर निक्षेप सम्भव है, इसलिये उनमें उत्कर्षणसे झीनस्थितिपना नहीं पाया जाता।

यदि कहा जाय कि विवक्षित स्थितिमें ही अवस्थित रहते हुए इनका उत्कर्षण सम्भव नहीं है, इसलिये इन्हें उत्कर्षणसे झीनस्थितिवाला कहना युक्त है सो भी बात नहीं है, क्योंकि विवक्षित स्थितिके कर्मपरमाणु कहीं भी स्थित रहें किन्तु यहाँ तो उत्कर्षणशक्तिका अत्यन्त अभाव विवक्षित है। उत्कर्षणसे झीनाझीनस्थितिवाले कर्मपरमाणुओंकी यह सबकी सब अर्थपदप्ररूपणा ओघसे मूल और उत्तर प्रकृतिविशेषकी विवक्षा न करके सामान्यसे यहाँ कही है। आगे सभी मार्गणाओंमें अपनी अपनी जघन्य आबाधाओंकी अपेक्षा पृथक्-पृथक् सब कर्मोंकी आदेशप्ररूपणा करनी चाहिये।

*** इस प्रकार उत्कर्षणसे झीनस्थितिक प्रदेशाग्रका अर्थपद समाप्त हुआ।**

*** अब इससे आगे संक्रमणसे झीनस्थितिक अधिकारका निर्देश करते हैं।**

§ ४७५. इससे आगे संक्रमणसे झीनस्थितिक अधिकारको कहेंगे इस प्रकार यह प्रतिज्ञासूत्र है।

*** जो कर्मपरमाणु उदयावलिके भीतर स्थित हैं वे संक्रमणसे झीनस्थितिवाले हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ दूसरा विकल्प नहीं है।**

§ ४७६. इस सूत्रमें 'संकमणादो झीणट्ठिदियं' इस पदकी अनुवृत्ति होती है। इससे इस सूत्रका यह अर्थ होता है कि जो कर्म उदयावलिके भीतर स्थित है वह कर्म संक्रमणसे झीन-

संकमो णत्थि ? सहावदो। एत्तिओ चेव संकमणादो झीणट्ठिदिओ पदेसविसेसो त्ति जाणावणट्ठमेदं सुत्तं। णत्थि अण्णो वियप्पो त्ति उदयावलियबाहिरट्ठिदपदेसग्गं बंधावलियवदिक्कंतं सव्वमेव संकमपाओग्गत्तेण तत्तो अझीणट्ठिदियमिदि वुत्तं होइ।

❀ उदयादो झीणट्ठिदियं।

§ ४७७. एत्तो उदयादो झीणट्ठिदियं वुच्चइ त्ति अहियारसंभालणसुत्तमेदं।

❀ जमुदिण्णं तं, णत्थि अण्णं।

§ ४७८. एत्थ जमुदिण्णं दिण्णफलं होऊण तक्कालगलमाणं तमुदयादो झीणट्ठिदियमिदि सुत्तत्थसंबंधो। णत्थि अण्णं। कुदो ? सेसासेसट्ठिदिपदेसग्गस्स कमेण उदयपाओग्गत्तदंसणादो।

स्थितिवाला है, क्योंकि उदयावलिके भीतर संक्रमण नहीं होता ऐसा स्वभाव है। इतने ही कर्मपरमाणु संक्रमणसे झीनस्थितिवाले हैं यह जतानेके लिये यह सूत्र आया है। यहाँ इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं है। इसका यह अभिप्राय है कि बन्धावलिके सिवा उदयावलिके बाहर जितने भी कर्मपरमाणु स्थित हैं वे सब संक्रमणके योग्य हैं, इसलिये वे संक्रमणसे अझीन-स्थितिवाले हैं।

विशेषार्थ—विवक्षित कर्मके परमाणुओंका सजातीय कर्मरूप हो जाना संक्रमण कहलाता है। यहाँ यह बतलाया है कि इस प्रकारका संक्रमण किन परमाणुओंका हो सकता है और किनका नहीं। जो कर्मपरमाणु उदयावलिके भीतर स्थित हैं वे सबके सब संक्रमणके अयोग्य हैं और उदयावलिके बाहर जो कर्मपरमाणु स्थित हैं वे सबके सब संक्रमणके योग्य हैं यह इसका भाव है। किन्तु इससे तत्काल बँधे हुए कर्मोंका भी बन्धावलिके भीतर संक्रमण प्राप्त हुआ जो कि होता नहीं, इसलिये इसका निषेध करनेके लिये टीकामें इतना विशेष और कहा है कि बन्धावलिके सिवा उदयावलिके बाहरके कर्मपरमाणुओंका संक्रमण होता है। अब यहाँ प्रश्न यह है कि ऐसे भी कर्म हैं जिनका उदयावलिके बाहर भी संक्रमण सम्भव नहीं। जैसे आयुकर्म। अतः यहाँ इनके संक्रमणका निषेध क्यों नहीं किया सो इसका यह समाधान है कि जिन कर्मोंमें संक्रमण सम्भव है उन्हींकी अपेक्षासे यहाँ विचार करके यह बतलाया है कि उनमेंसे किन कर्मपरमाणुओंका संक्रमण हो सकता है और किनका नहीं। आयु कर्म ऐसा है जिसका संक्रमण ही नहीं होता, अतः उसकी यहाँ विवक्षा नहीं है।

*** अब उदयसे झीनस्थितिक अधिकारका निर्देश करते हैं।**

§ ४७७. संक्रमणसे झीनस्थितिक अधिकारका निर्देश करनेके बाद अब उदयसे झीन-स्थितिक अधिकारका कथन करते हैं इस प्रकार यह सूत्र स्वतन्त्र अधिकारकी संम्हाल करनेके लिये आया है।

*** जो कर्म उदीर्ण हो रहा है वह उदयसे झीनस्थितिवाला है। इसके अतिरिक्त यहाँ और कोई दूसरा विकल्प नहीं है।**

§ ४७८. जो कर्म उदीर्ण हो रहा है अर्थात् फल देकर तत्काल गल रहा है वह उदयसे झीनस्थितिवाला है यह यहाँ इस सूत्रका अभिप्राय है। इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा विकल्प नहीं, क्योंकि बाकीकी सब स्थितियोंके कर्मपरमाणु क्रमसे उदयके योग्य देखे जाते हैं।

§ ४७६. एवं सामण्णेण चउण्हं पि झीणट्ठिदियाणं सपडिवक्खाणमट्ठपदपरूवणं काऊण संपहि एदेसिं चेव विसेसिय परूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ एत्तो एगेगझीणट्ठिदियमुक्कस्सयमणुक्कस्सयं जहण्णयमजहण्णयं च।

§ ४८०. जहासंखणाएण विणा पादेक्कमेदेसिं झीणट्ठिदियाणमुक्कस्सादिपदेहि संबंधपरूवणफलो एगेगे त्ति णिद्देसो, अण्णहा समसंखाणमेदेसिं तहाहिसंबंधप्पसंगादो। तदो तमेक्केक्कं चउव्वियप्पसंजुत्तं णिद्दिसइ—उक्कस्सयमणुक्कस्सयं जहण्णयमजहण्णयं चेदि। जत्थ बहुवयरं पदेसग्गमोकड्डणादिचउण्हं पि झीणट्ठिदियमुवलंभइ तमुक्कस्सं णाम। एवं सेसपदाणं वत्तव्वं। एवं परूवणा गदा।

❀ सामित्तं।

विशेषार्थ—यहाँ यह बतलाया है कि कौनसे कर्मपरमाणु उदयसे झीनस्थितिवाले हैं और कौनसे कर्मपरमाणु उदयसे अझीनस्थितिवाले हैं। जिन कर्मपरमाणुओंका उदय हो रहा है उनका पुनः उदयमें आना सम्भव नहीं, इसलिये फल देकर तत्काल गलनेवाले कर्मपरमाणु उदयसे झीनस्थितिवाले हैं और इनके अतिरिक्त शेष सब कर्मपरमाणु उदयसे अझीनस्थितिवाले हैं यह इस सूत्रका भाव है।

§ ४७६. इस प्रकार सामान्यसे अपने प्रतिपक्षभूत कर्मपरमाणुओंके साथ चारों ही झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणुओंके अर्थपदका कथन करके अब इन्हींकी विशेषताका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** इनमेंसे प्रत्येक झीनस्थितिवाले कर्म उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य हैं।**

§ ४८०. चार प्रकारके झीनस्थितिवाले कर्मोंका क्रमसे उत्कृष्ट आदि चार पदोंके साथ सम्बन्ध नहीं है, इसलिये यथासंख्य न्यायके बिना अलग अलग इन झीनस्थितिवाले कर्मोंका उत्कृष्ट आदि पदोंके साथ सम्बन्धका प्ररूपण करनेके लिये सूत्रमें 'एगेग' पदका निर्देश किया है। नहीं तो दोनों ही समसंख्यावाले होनेसे दोनोंका यथाक्रमसे सम्बन्ध हो जाता। इसलिये यह सूत्र वे एक एक उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य इस प्रकार चार चार प्रकारके हैं इस बातका निर्देश करता है। जहाँ पर सर्वाधिक कर्मपरमाणु अपकर्षण आदि चारोंसे झीनस्थितिपनेको प्राप्त होते हैं वहाँ उत्कृष्ट विकल्प होता है। इसी प्रकार शेष पदोंका कथन करना चाहिये।

विशेषार्थ—अपकर्षणसे झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणु, उत्कर्षणसे झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणु, संक्रमणसे झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणु और उदयसे झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणु ये चार हैं। ये चारों ही प्रत्येक उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य इस प्रकार चार चार प्रकारके हैं यह इस सूत्रका भाव है।

इस प्रकार प्ररूपणा समाप्त हुई।

*** अब स्वामित्वका अधिकार है।**

§ ४८१. एत्तो सामित्तं वत्तइस्सामो त्ति अहियारसंभालणसुत्तमेदं ।

❀ मिच्छत्तस्स उक्कस्सयमोकड्डणादो झीणट्ठिदियं कस्स ?

§ ४८२. सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

❀ गुणिदकम्मंसियस्स सव्वलहुं दंसणमोहणीयं खवेंतस्स अपच्छिम-ट्ठिदिखंडयं संछुभमाणयं संछुद्धमावलिया समयूणा सेसा तस्स उक्कस्सय-मोकड्डणादो झीणट्ठिदियं ।

§ ४८३. एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा—मिच्छत्तस्स उक्कस्सय-मोकड्डणादो झीणट्ठिदियं कस्से त्ति जादसंदेहस्स सिस्सस्स तव्विसयणिच्छयजणणट्ठं गुणिदकम्मंसियस्से त्ति वुत्तं, अण्णत्थ पदेसग्गस्स वुक्कस्सभावाणुववत्तीदो । किं सव्वस्सेव गुणिदकम्मंसियस्स ? नेत्याह—सव्वलहुं दंसणमोहणीयं खवेंतस्स । गुणिदकम्मंसिय-लक्खणेणागंतूण सत्तमपुढविणेरइयचरिमसमए ओघुक्कस्समिच्छत्तदव्वं काऊण तत्तो णिप्पिडिय पंचिंदियतिरिक्खेसु एइंदिएसु च दोण्णि तिण्णि भवग्गहणाणि भमिय पुणो मणुस्सेसुप्पज्जिय अट्ठ वस्साणि वोलाविय सव्वलहुएण कालेण दंसणमोहणीय-कम्मं खवेदुमाढत्तस्से त्ति वुत्तं होइ ।

---

§ ४८१. अब इसके आगे स्वामित्वको बतलाते हैं इस प्रकार यह सूत्र अधिकारकी संम्हाल करता है ।

*** मिथ्यात्वके अपकर्षणसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी कौन है ।**

§ ४८२. यह पृच्छा सूत्र सुगम है ।

*** गुणितकर्मांशवाले जिस जीवके सबसे थोड़े कालमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करनेके बाद अन्तिम स्थितिकाण्डकका पतन करके एक समय कम एक आवलि काल शेष रहा वह अपकर्षणसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी है ।**

§ ४८३. अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है—मिथ्यात्वके अपकर्षणसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणु किसके होते हैं इस प्रकार शिष्यको सन्देह हो जानेपर तद्विषयक निश्चयके पैदा करनेके लिये सूत्रमें गुणिदकम्मंसियस्स' यह पद कहा है, क्योंकि गुणित कर्मांशवाले जीवके सिवा अन्यत्र अपकर्षणसे झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणु उत्कृष्ट नहीं हो सकते । क्या सभी गुणितकर्मांशवाले जीवोंके अपकर्षणसे झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणु उत्कृष्ट होते हैं ? नहीं, यही बतलानेके लिये सूत्रमें 'सव्वलहुं दंसणमोहणीयं खवेंतस्स' यह पद कहा है । गुणित-कर्मांशकी जो विधि बतलाई है उस विधिसे आकर और सातवीं पृथिवीका नारकी होकर उसके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वके द्रव्यको ओघसे उत्कृष्ट करके फिर वहाँसे निकलकर तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंच और एकेन्द्रियोंमें दो तीन भवतक भ्रमण करके मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और वहाँ आठ वर्ष बिताकर अति थोड़े कालके द्वारा जिसने दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ किया उस गुणितकर्मांशवाले जीवके अपकर्षणसे झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणु उत्कृष्ट होते हैं यह

§ ४८४. संपहि दंसणमोहणीयं खवेंतस्स कम्हि उद्देसे सामित्तं होदि त्ति आसंकिय तदुद्देसपदुप्पायणट्ठमाह—अपच्छिमट्ठिदिखंडयं संछुभमाणयं संछुद्धमावलिया समयूणा सेसा इच्चादि। अपुव्वकरणपढमसमयप्पहुडि बहुएसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु पादेक्कमणुभागखंडयसहस्साविणाभावीसु अंतोमुहुत्तमेत्तुक्कीरणद्धापडिबद्धेसु पदिदेसु पुणो अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु वोलीणेसु णिप्पच्छिमं ट्ठिदिखंडयं पलिदोवमासंखेज्जभागपमाणायाममावलियवज्जं संछुभमाणयं सम्मामिच्छत्तस्सुवरि णिरवसेसं संछुद्धं। जाधे उदयावलिया समयूणा सेसा ताधे तस्स गुणिदकम्मंसियस्स उक्कस्सयमोकड्डणादो झीणट्ठिदियं मिच्छत्तपदेसग्गं होदि। कुदो आवलियाए समयूणत्तं? उदयाभावेण सम्मत्तस्सुवरि तदुदयणिसेयसमाणमिच्छत्तेयट्ठिदीए थिवुक्कसंकमेण संकंतीदो। कुदो पुण एदस्स आवलियपइट्ठपदेसग्गस्स ओकड्डणादो झीणट्ठिदियस्स उक्कस्सत्तं? ण, पडिसमयमसंखेज्जगुणाए सेडीए आवूरिदगुणसेडिगोवुच्छाणं हेट्ठिमासेसतव्वियप्पेहिंतो असंखेज्जगुणाणमुक्कस्सभावस्स णाइयत्तादो।

उक्त कथनका तात्पर्य है।

§ ४८४. अब दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करते हुए भी किस स्थान पर उत्कृष्ट स्वामित्व होता है ऐसी आशंकाके होने पर उस स्थानका निर्देश करनेके लिये 'अपच्छिमट्ठिदिखंडयं संछुभमाणयं संछुद्धमावलिया समयूणा सेसा' इत्यादि सूत्र कहा है। अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कीरण कालसे सम्बन्ध रखनेवाले हजारों स्थितिकाण्डकोंका और एक एक स्थितिकाण्डकके प्रति हजारों अनुभागकाण्डकोंका पतन करनेके पश्चात् जब यह जीव अनिवृत्तिकरणमें प्रवेश करके और उसके संख्यात बहुभागोंके व्यतीत होने पर एक आवलिके सिवा पल्यके असंख्यातवें भाग आयामवाले अन्तिम स्थितिकाण्डकका पतन करनेका प्रारम्भ करता है और उसे सबका सब सम्यग्मिथ्यात्वमें निक्षेप करनेके बाद जब एक समयकम एक आवलिकाल शेष रहता है तब इस गुणितकर्मांशवाले जीवके मिथ्यात्वके अपकर्षणसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणु होते हैं।

शंका—यहाँ आवलिको एक समय कम क्यों बतलाया?

समाधान—क्योंकि वहाँ मिथ्यात्वका उदय न होनेसे सम्यक्त्वके उदयरूप निषेकके बराबरकी मिथ्यात्वकी एक स्थिति स्तिवुक संक्रमणके द्वारा सम्यक्त्वके द्रव्यमें संक्रान्त हो गई है, इसलिये आवलिमें एक समय कम बतलाया है।

शंका—अपकर्षणसे झीनस्थितिवाले ये कर्मपरमाणु आवलिके भीतर प्रविष्ट होनेपर ही उत्कृष्ट क्यों होते हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि वे कर्मपरमाणु प्रति समय असंख्यातगुणी श्रेणिके द्वारा गुणश्रेणिगोपुच्छाको प्राप्त हैं और नीचेके तत्सम्बन्धी और सब विकल्पोंसे असंख्यातगुणे हैं, इसलिये इन्हें उत्कृष्ट मानना न्याय्य है।

विशेषार्थ—यह तो पहले ही बतला आये हैं कि जो कर्मपरमाणु उदयावलिके भीतर स्थित हैं वे अपकर्षणसे झीनस्थितिवाले हैं और जो कर्मपरमाणु उदयावलिके बाहर स्थित हैं वे अपकर्षणसे अझीन स्थितिवाले हैं। अब इन झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणुओंमें मिथ्यात्वकी अपेक्षा उत्कृष्ट विकल्प कहाँ प्राप्त होता है यह बतलाया है। मिथ्यात्वका अन्यत्र उदयावलिमें

§ ४८५. संपहि एदस्स सामित्तविसईकयदव्वस्स पमाणाणुगमं कस्सामो। तं जहा—दिवड्डगुणहाणिमेत्तुक्कस्ससमयपबद्धे ठविय पुणो समयूणावलियाए ओवट्टिद-चरिमफालीए तप्पाओग्गपलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तरूवभजिदाए भागे हिदे एदं दव्वमागच्छदि, अब्भंतरीकयचरिमफालिणिसेयस्स गुणसेडिगोवुच्छदव्वस्स पाहण्णियादो। अथवा दिवड्डगुणहाणिगुणिदमुक्कस्ससमयपबद्धं ठविय ओकड्डुक्कड्डणभागहारेण तप्पाओग्गपलिदोवमासंखेज्जभागेण गुणिय किंचूणीकएण तम्मि भागे हिदे पयदसामित्त-विसईकयदव्वमागच्छदि त्ति वत्तव्वं। एवमुवरि वि सव्वत्थ वत्तव्वं। संपहि एदेण समाणसामियाणं उक्कड्डणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियाणमेदेण चेय गयत्थाणं सामित्तपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

❀ **तस्सेव उक्कस्सयमुक्कड्डणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं।**

§ ४८६. गयत्थमेदं सुत्तं। संपहि उदयादो झीणट्ठिदियस्स उक्कस्ससामित्त-परूवणट्ठं पुच्छासुत्तेणावसरं करेइ—

❀ **उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स ?**[1]

जितना द्रव्य रहता है उस सबसे अधिक क्षपणाके समय अन्तिम स्थितिकाण्डकके पतनके बाद उदयावलिमें रहता है, क्योंकि यहाँ उदयावलिमें गुणश्रेणिशीर्षका द्रव्य पाया जाता है जो कि उत्तरोत्तर असंख्यात गुणितक्रमसे स्थापित है, इसलिये जो जीव मिथ्यात्वकी अन्तिम स्थितिका खण्डन करके उदयावलिके भीतर प्रविष्ट है वह मिथ्यात्वके अपकर्षणसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

§ ४८५. अब उत्कृष्ट स्वामित्वके विषयभूत द्रव्यके प्रमाणका विचार करते हैं जो इस प्रकार है—डेढ़ गुणहानिप्रमाण उत्कृष्ट समयप्रबद्धोंको स्थापित करके उनमें, तद्योग्य पल्यके असंख्यातवें भागसे भाजित अन्तिम फालिमें एक समय कम आवलिका भाग देनेसे जो लब्ध आवे उसका भाग देनेपर यह उत्कृष्ट द्रव्य आता है, क्योंकि यहाँ अन्तिम फालिके निषेकोंके भीतर गुणश्रेणि गोपुच्छाका द्रव्य प्रधान है। अथवा डेढ़गुणहानिसे गुणित उत्कृष्ट समयप्रबद्धको स्थापित करके उसमें, तत्प्रायोग्य पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणित अपकर्षण भागहारको कुछ कम करके उसका भाग देनेपर प्रकृत स्वामित्वसे सम्बन्ध रखनेवाला द्रव्य आता है ऐसा यहाँ कथन करना चाहिये। तथा इसी प्रकार आगे भी सर्वत्र कथन करना चाहिये। अब जिनका स्वामी इसीके समान हैं और जिनके स्वामीका ज्ञान इसीसे हो जाता है, ऐसे उत्कर्षण और संक्रमणसे झीन स्थितिवालोंके स्वामित्वका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

* **तथा वही उत्कर्षण और संक्रमणसे उत्कृष्ट झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणुओं-का स्वामी है।**

§ ४८६. इस सूत्रका अर्थ अवगतप्राय है। अब उदयसे झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणुओंके उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन करनेके लिये पृच्छासूत्र कहते हैं—

* **उदयसे झीन स्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी कौन है।**

---

१. "मिच्छत्तस्स उक्कस्सओ पदेसउदओ कस्स।"—धव० आ० प० १०६५।

§ ४८७. सुगमं।

❀ गुणिदकम्मंसिओ संजमासंजमगुणसेडी संजमगुणसेडी च एदाओ गुणसेडीओ काऊण मिच्छत्तं गदो। जाधे गुणसेडिसीसयाणि पढमसमय-मिच्छादिट्ठिस्स उदयमागयाणि ताधे तस्स उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं।

§ ४८८. एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे। तं जहा—जो गुणिदकम्मंसिओ संजमासंजमगुणसेडी संजमगुणसेडी चेदि एदाओ गुणसेडीओ सव्वुक्कस्सपरिणामेहि काऊण परिणामपच्चएण मिच्छत्तं गओ तस्स पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स जाधे गुणसेडि-सीसयाणि दो वि एगीभूदाणि उदयमागदाणि ताधे मिच्छत्तस्स उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं होदि त्ति पदसंबंधो। कधमेदाओ दो वि गुणसेडीओ भिण्णकालसंबंधिणीओ एयट्ठं काउं सक्किज्जंति? ण, संजमगुणसेडिणिक्खेवायामादो संजमासंजमगुणसेडि-णिक्खेवदीहत्तस्स संखेज्जगुणत्तेण कमेण कीरमाणीणं तासिं तहाभावाविरोहादो। तदो गुणिदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण सत्तमपुढवीदो उव्वट्टिय सव्वलहुं समयाविरोहेण

§ ४८७. यह सूत्र सुगम है।

❀ कोई एक गुणितकर्मांशवाला जीव संयमासंयमगुणश्रेणि और संयम-गुणश्रेणि इन दोनों गुणश्रेणियोंको करके मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार इस जीवके जब मिथ्यात्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें गुणश्रेणिशीर्ष उदयको प्राप्त होते हैं तब वह उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है।

§ ४८८. अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं जो इस प्रकार है—जो गुणितकर्मांशवाला जीव सर्वोत्कृष्ट परिणामोंके द्वारा संयमासंयमगुणश्रेणि और संयमगुणश्रेणि इन दोनों गुणश्रेणियोंको करके अनन्तर परिणाम विशेषके कारण मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ उस मिथ्यादृष्टिके प्रथम समयमें जब दोनों ही गुणश्रेणिशीर्ष मिलकर उदयको प्राप्त होते हैं तब मिथ्यात्वके उदयकी अपेक्षा उत्कृष्ट झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणु होते हैं यह इस सूत्रका वाक्यार्थ है।

शंका—ये दोनों ही गुणश्रेणियाँ भिन्न कालसे सम्बन्ध रखती हैं, इसलिये इन्हें एकत्र कैसे किया जा सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि संयमगुणश्रेणिके निक्षेपकी दीर्घतासे संयमासंयमगुणश्रेणिके निक्षेपकी दीर्घता संख्यातगुणी है, इसलिये इन्हें क्रमसे करनेपर इनके एकत्र होनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

किसी एक जीवने गुणित कर्मांशकी विधिसे आकर और सातवीं पृथिवीसे निकलकर अतिशीघ्र आगमोक्त विधिसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करके उपशम सम्यक्त्वके कालको व्यतीत

१. 'गुणिदकम्मंसियस्स दोगुणसेडीसीसयस्स।'— धव० आ० प० १०६५।
'मिच्छत्तमीसणंताणुबंधिअसमत्तथीणगिद्धीणं।
तिरिउदएगंताण य बिइया तइया य गुणसेडी॥'—कर्मप्र० उदय गा० १३।

पढमसम्मत्तमुप्पाइय उवसमसम्मत्तद्धं वोलाविय अधापवत्त-अपुव्वकरणाणि करिय अपुव्वकरणचरिमसमयादो से काले गहिदसंजमासंजमो एयंताणुवड्ढी[1]वड्ढिपढमसमयप्पहुडि जाव तिस्से चरिमसमओ त्ति ताव पडिसमयमणंतगुणाए संजमासंजमविसोहीए विसुज्झंतो अंतोमुहुत्तमेत्तकालं सव्वकम्माणं समयं पडि असंखेज्जगुणं दव्वमोकड्डिय उदयावलियबाहिरे अंतोमुहुत्तायाममवट्ठिदगुणसेढिणिक्खेवं काऊण पुणो अधापवत्तसंजदासंजदविसोहीए वि पदिदो संतो अंतोमुहुत्तकालं चदुहि वड्ढि-हाणीहि गुणसेढिं काऊण पुणो वि ताणि चेव दो करणाणि करिय गहिदसंजमपढमसमयप्पहुडि मिच्छत्तपदेसग्गमसंखेज्जगुणाए सेढीए ओकड्डिय उदयावलियबाहिरट्ठिदिमादिं कादूण अंतोमुहुत्तमेत्तट्ठिदीसु संजदासंजदगुणसेढिणिक्खेवादो संखेज्जगुणहीणासु अंतोमुहुत्तमेत्तकालमवट्ठिदगुणसेढिणिक्खेवमणंतगुणाए संजमविसोहीए करेमाणो संजदासंजद-एयंताणुवड्ढिचरिमसमयकदगुणसेढिणिक्खेवस्स संखेज्जे भागे गंतूण संखेज्जदिभागमेत्ते सेसे तदेयंताणुवड्ढिचरिमसमयकदगुणसेढिसीसएण सरिसं सगएयंताणुवड्ढिचरिमसमय-गुणसेढिसीसयं णिक्खिविय एवं दो वि गुणसेढिसीसयाणि एक्कदो काऊण पुणो अधापवत्तसंजदभावेण परिणमिय दोण्हमेदेसिमहिकयगुणसेढिसीसयाणमुवरि

किया। अनन्तर वह अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरणको करके अपूर्वकरणके अन्तिम समयसे अनन्तर समयमें संयमासंयमको प्राप्त हुआ। यहाँ इसके सर्वप्रथम एकान्तानुवृद्धिका प्रारम्भ होता है, इसलिये उसने एकान्तानुवृद्धिके प्रारम्भ होनेके प्रथम समयसे लेकर उसके अन्तिम समयके प्राप्त होने तक प्रत्येक समयमें अनन्तगुणी संयमासंयमविशुद्धिसे विशुद्ध होकर अन्तर्मुहूर्त कालतक सब कर्मोंके प्रत्येक समयमें उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे द्रव्यका अपकर्षण करके उसे उदयावलिके बाहर अन्तर्मुहूर्त आयामवाले अवस्थित गुणश्रेणिरूपसे निक्षिप्त किया। फिर अधःप्रवृत्त संयतासंयत विशुद्धिसे भी गिरता हुआ अन्तर्मुहूर्त कालतक चार वृद्धि और चार हानियोंके द्वारा गुणश्रेणि की। इसके बाद फिर भी उन दो करणोंको करके संयमको प्राप्त हुआ। और इस प्रकार संयमको प्राप्त करके उसके प्रथम समयसे लेकर मिथ्यात्वके कर्मपरमाणुओंको असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे अपकर्षित करके उदयावलिके बाहरकी स्थितिसे लेकर संयतासंयतके गुणश्रेणिनिक्षेपसे संख्यातगुणी हीन अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितियोंमें अनन्तगुणी संयमसम्बन्धी विशुद्धिके द्वारा अन्तर्मुहूर्तकाल तक अवस्थित गुणश्रेणिका निक्षेप करता है। यहाँ पर संयतासंयतके एकान्तानु-वृद्धिरूप परिणामोंके अन्तिम समयमें किये गये गुणश्रेणिनिक्षेपके संख्यात बहुभागको बिताकर और संख्यातवें भागकालके शेष रहने पर जो संयतासंयतके एकान्तानुवृद्धिरूप परिणामोंके अन्तिम समयमें गुणश्रेणिशीर्षका निक्षेप किया गया है सो उसीके समान संयत भी अपने एकान्तानुवृद्धिरूप परिणामोंके अन्तिम समयमें गुणश्रेणिशीर्षका निक्षेप करे। और इस प्रकार दोनों ही गुणश्रेणिशीर्षोंको एक करके फिर अधःप्रवृत्तसंयतभावको प्राप्त हो जाय। और इस

---

१. वड्ढावड्ढी एवं भणिदे तासु चेव संजमासंजमसंजमलद्धीसु अलद्धपुव्वासु पडिलद्धासु तल्लाभ-पढमसमयप्पहुडि अंतोमुहुत्तकालब्भंतरे पडिसमयमणंतगुणाए सेढीए परिणामवड्ढी गहेयव्वा; उवरुवरि परिणामवड्ढीए वड्ढावड्ढीववएसालंवणादो।'—जयध० पु० का० ६३१६।

अंतोमुहुत्तमेत्तकालं छवड्ढि-हाणिपरिणामेहि ओकड्डिज्जमाणपदेसग्गस्स चउव्विहवड्ढि-हाणिकारणभूदेहि गुणसेढिं करेमाणो ताव गच्छदि जाव एवं पूरिदाणि गुणसेढिसीसयाणि दो वि दुचरिमसमयअपत्तउदयट्ठिदियाणि त्ति। तदो से काले मिच्छत्तं गदस्स तस्स जाधे गुणसेढिसीसयाणि एत्तिएण पयत्तेण पूरिदाणि दो वि जुगवमुदिण्णाणि ताधे मिच्छत्तस्स उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं होदि त्ति एसो सुत्तस्स समुदायत्थो। कुदो एदस्स उदिण्णस्स उदयादो झीणट्ठिदियत्तं ? ण, पुणो तप्पाओग्गत्ताभावं पेक्खियूण तहोवएसादो। एत्थ जाधे दो वि गुणसेढिसीसयाणि उदयावलियं ण पविसंति ताधे चेय संजदो किमट्ठं मिच्छत्तं ण णीदो ? ण, अधापवत्तसंजदगुणसेढिलाहस्स अभावप्पसंगादो। जइ एवं, गुणसेढिसीसएसु उदयावलियब्भंतरं पइट्ठेसु मिच्छत्तं णेदामो उवरि अविणट्ठेणुवसंजमेणावट्ठाणफलाणुवलंभादो त्ति ? ण, मिच्छाइट्ठिउदीरणादो विसोहिवसेणासंखेज्जगुणसंजदउदीरणाए जणिदलाहस्स एत्थ वि अभावावत्तीदो। ण च तत्थ मिच्छत्तस्स उदयाभावपुव्वउदीरणाभावेण पयदफलाभावो आसंकणिज्जो,

---

प्रकार इस भावको प्राप्त करके अधिकृत दोनों ही गुणश्रेणिशीर्षोंके आगे अपकर्षणको प्राप्त होनेवाले कर्मपरमाणुओंके चार प्रकारकी हानि और वृद्धियोंके कारणभूत छह प्रकारकी वृद्धि और हानिरूप परिणामोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्त कालतक गुणश्रेणिको करता हुआ तब तक जाता है जब जाकर पूर्वोक्त विधिसे पूरे गये दोनों ही गुणश्रेणिशीर्ष उदयस्थितिके उपान्त्य समयको प्राप्त होते हैं। इसके बाद तदनन्तर समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त होने पर इसके इतने प्रयत्नसे पूरे गये दोनों ही गुणश्रेणिशीर्ष मिलकर उदयमें आते हैं तब मिथ्यात्वके उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्म-परमाणु होते हैं। इस प्रकार यह इस सूत्रका समुदायार्थ है।

शंका—जब कि ये उदयप्राप्त हैं तब ये उदयसे झीनस्थितिवाले कैसे हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि ये फिरसे उदययोग्य नहीं हो सकते, इसलिये इन्हें उदयसे झीनस्थितिवाला कहा है।

शंका—यहाँ दोनों ही गुणश्रेणिशीर्षोंके उदयावलिमें प्रवेश करनेके पहले संयतको मिथ्यात्व गुणस्थान क्यों नहीं प्राप्त कराया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि ऐसा करनेसे इसके अधःप्रवृत्तसंयतके होनेवाली गुणश्रेणिके लाभका अभाव प्राप्त होता।

शंका—यदि ऐसा है तो गुणश्रेणिशीर्षोंके उदयावलिमें प्रवेश करनेपर मिथ्यात्व गुणस्थानमें ले जाना उचित था, क्योंकि इसके आगे संयमका नाश किये बिना उसके साथ रहनेका कोई फल नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मिथ्यादृष्टिके होनेवाली उदीरणाकी अपेक्षा विशुद्धिके कारण संयतके होनेवाली असंख्यातगुणी उदीरणासे होनेवाला लाभ ऐसी हालतमें भी नहीं बन सकेगा, इसलिये गुणश्रेणिशीर्षोंके उदयावलिमें प्रवेश करते ही इसे मिथ्यात्वमें नहीं ले गये हैं।

यदि कहा जाय कि संयतके मिथ्यात्वका उदय न हो सकनेसे उदीरणा भी नहीं हो सकती, इसलिये यहाँ उदीरणासे होनेवाले फलकी प्राप्ति नहीं हो सकती सो ऐसी आशंका करना भी ठीक

सम्मत्तथिवुक्कसंकममस्सियूण लाहदंसणादो। अण्णं च आवलियमेत्तकालावसेसे मिच्छत्तं गच्छमाणो पुव्वमेव संकिलिस्सदि त्ति विसोहिणिबंधणो गुणसेढिलाहो बहुओ ण लब्भदि। ण च संकिलेसावूरणेण विणा मिच्छत्ताहिमुहभावसंभवो, तस्स तदविणाभावित्तादो। तेण कारणेण जाव गुणसेढिसीसयाणि दुचरिमसमयअणुदिण्णाणि ताव संजदभावेणच्छाविय पुणो से काले एगंताणुवड्ढिचरिमगुणसेढिसीसयाणि दो वि एक्कलग्गाणि उदयमागच्छिहिंति त्ति मिच्छत्तं गदपढमसमए उक्कस्सयउदयादो झीणट्ठिदियस्स सामित्तं दिण्णं। एत्थ पमाणाणुगमो जाणिय कायव्वो। अहवा गुणसेढिसीसयाणि त्ति वुत्ते दोण्हमोघचरिमगुणसेढिसीसयाणि सव्वुक्कस्सविसोहिणिबंधणाणि घेप्पंति ण एयंतवड्ढावड्ढिचरिमगुणसेढिसीसयाणि, तत्थतणचरिमविसोहीदो अधापवत्तसंजदसत्थाणविसोहीए अणंतगुणत्तादो। ण चेदं णिण्णिबंधणं, लद्धिट्ठाणपरूवणाए परूविस्समाणप्पाबहुअणिबंधणत्तादो। तदो ओघचरिमसंजदासंजदगुणसेढिसीसयस्सुवरि सव्वविसुद्धसंजदणिक्खित्तगुणसेढिसीसयमेत्थ घेत्तव्वं। एवं घेत्तूण एदमणंतगुणविसोहीए कदगुणसेढिसीसयदव्वं संजदासंजदगुणसेढिसीसएण सह जाधे पढमसमयमिच्छादिट्ठिस्स उदयमागयं ताधे उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियमिदि सामित्तं वत्तव्वं।

नहीं है, क्योंकि सम्यक्त्वसम्बन्धी स्तिवुक संक्रमणकी अपेक्षा लाभ देखा जाता है। दूसरे एक आवलिकालके शेष रहने पर यदि इस जीवको मिथ्यात्वमें ले जाते हैं तो वह पहलेसे संक्लिष्ट हो जायगा और ऐसी हालतमें विशुद्धिनिमित्तक अधिक गुणश्रेणिका लाभ नहीं हो सकेगा। यदि कहा जाय कि संक्लेशरूप परिणाम हुए बिना ही मिथ्यात्वके अनुकूल भाव हो सकते हैं सो भी बात नहीं है; क्योंकि इन दोनोंका परस्परमें अविनाभाव सम्बन्ध है, इसलिये जब तक गुणश्रेणिशीर्ष उदयके उपान्त्य समयको नहीं प्राप्त होते तब तक इस जीवको संयत ही रहने दे। किन्तु तदनन्तर समयमें एकान्तानुवृद्धिके अन्तिम समयमें की गई दोनों ही गुणश्रेणियाँ उदयको प्राप्त होंगी, इसलिये मिथ्यात्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें ही उदयसे झीनस्थितिवाले कर्मपरमणुओंका स्वामी बतलाया है। यहाँ इनके प्रमाणका विचार जानकर कर लेना चाहिये। अथवा गुणश्रेणिशीर्ष ऐसा कहने पर संयमासंयम और संयम इन दोनों अवस्थाओंके सबसे उत्कृष्ट विशुद्धिके निमित्तसे अन्तमें होनेवाले ओघ गुणश्रेणिशीर्ष लेने चाहिये, एकान्तवृद्धिके अन्तमें होनेवाले गुणश्रेणिणीर्ष नहीं, क्योंकि एकान्तवृद्धिके अन्तमें होनेवाली विशुद्धिसे अधःप्रवृत्तसंयतकी स्वस्थानविशुद्धि अनन्तगुणी होती है। यदि कहा जाय कि यह कथन अहेतुक है सो भी बात नहीं है, क्योंकि लब्धिस्थानोंका कथन करते समय जो अल्पबहुत्व कहा है उससे इसकी पुष्टि होती है, इसलिये ओघसे अन्तमें प्राप्त हुए संयतासंयतके गुणश्रेणिशीर्षके ऊपर सर्वविशुद्ध संयतके प्राप्त हुआ गुणश्रेणिशीर्षका यहाँ पर ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार अनन्तगुणी विशुद्धिसे निष्पन्न हुआ यह गुणश्रेणिशीर्षका द्रव्य संयतासंयतसम्बन्धी गुणश्रेणिशीर्षके साथ जब मिथ्यात्वके प्रथम समयमें उदयको प्राप्त होता है तब उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है ऐसा यहाँ कथन करना चाहिये।

विशेषार्थ—यहाँ मिथ्यात्व कर्मकी अपेक्षा उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्म-

परमाणुओंका स्वामी बतलाते हुए जो कुछ लिखा है उसका आशय यह है कि ऐसा जीव एक तो गुणितकर्मांशवाला होना चाहिये, क्योंकि अन्य जीवके कर्मपरमाणुओंका उत्कृष्ट संचय नहीं हो सकता। दूसरे गुणितकर्मांश होनेके बाद यथासम्भव अतिशीघ्र संयमासंयम और तदनन्तर संयमकी प्राप्ति कराकर इसे एकान्तवृद्धि परिणामों के द्वारा संयमासंयम गुणश्रेणि और संयमगुणश्रेणिकी प्राप्ति करा देनी चाहिये। किन्तु इनकी प्राप्ति इस ढंगसे करानी चाहिये जिससे इन दोनों गुणश्रेणियोंका शीर्ष एक समयवर्ती हो जाय। फिर गुणश्रेणिशीर्षोंके उपान्त्य समयके प्राप्त होने तक जीवको वहीं संयमभावके साथ रहने देना चाहिये। किन्तु जब तक यह जीव संयमभावके साथ रहे तब तक भी इसके गुणश्रेणिका क्रम चालू ही रखना चाहिये, क्योंकि जब तक संयमासंयमरूप या संयमरूप परिणाम बने रहते हैं तब तक गुणश्रेणिरचनाके चालू रहनेमें कोई बाधा नहीं आती। बात इतनी है कि इन दोनों भावोंकी प्राप्ति होनेके प्रथम समयसे एकान्तवृद्धिरूप परिणाम होते हैं, इसलिये इनके निमित्तसे गुणश्रेणिरचना होती है और बादमें अधःप्रवृत्तसंयमासंयम या अधःप्रवृत्तसंयमरूप अवस्था आ जाती है, इसलिये इनके निमित्तसे गुणश्रेणि रचना होने लगती है। जिन परिणामोंकी अन्तर्मुहूर्त काल तक उत्तरोत्तर अनन्तगुणी विशुद्धि होती जाती है और जिनके होनेपर स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात तथा स्थितिबन्धापसरण ये क्रियाएँ पूर्ववत् चालू रहती हैं वे एकान्तवृद्धिरूप परिणाम हैं। तथा जिनके होने पर स्वस्थानके योग्य संक्लेश और विशुद्धि होती रहती है वे अधःप्रवृत्त परिणाम हैं। एकान्तवृद्धिरूप परिणामोंके होने पर मिथ्यात्वकर्मकी अपेक्षा गुणश्रेणिरचनाका क्रम इस प्रकार है—

संयमासंयमगुणको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें उपरिम स्थितिमें स्थित द्रव्यका अपकर्षण करके उदयावलिके बाहर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थितियोंमें गुणश्रेणिशीर्षतक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे द्रव्यका निक्षेप करता है। अर्थात् उदयावलिके बाहर अनन्तर स्थित स्थितिमें जितने द्रव्यका निक्षेप करता है उससे अगली स्थितिमें उससे भी असंख्यातगुणे द्रव्यका निक्षेप करता है। इस प्रकार यह क्रम गुणश्रेणिशीर्ष तक जानना चाहिये। किन्तु गुणश्रेणिशीर्षसे अगली स्थितिमें असंख्यातगुणे हीन द्रव्यका निक्षेप करता है और इसके आगे विशेष हीन द्रव्यका निक्षेप करता है। दूसरे समयमें प्रथम समयकी अपेक्षा भी असंख्यातगुणे द्रव्यका पूर्वोक्त क्रमसे निक्षेप करता है। इस प्रकार एकान्तानुवृद्धिका काल समाप्त होने तक यही क्रम चालू रहता है।

किन्तु अधःप्रवृत्तरूप परिणामोंकी अपेक्षा गुणश्रेणिरचनाके क्रममें कुछ अन्तर है। बात यह है कि अधःप्रवृत्तरूप परिणाम सदा एकसे नहीं रहते किन्तु संक्लेश और विशुद्धिके अनुसार उनमें घटाबढ़ी हुआ करती है, इसलिये जब जैसे परिणाम होते हैं तब उन परिणामोंके अनुसार गुणश्रेणि रचनामें भी कर्म परमाणु न्यूनाधिक प्राप्त होते हैं। विशुद्धिकी न्यूनाधिकताके अनुसार कभी प्रति समय असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे द्रव्यका अपकर्षण करके गुणश्रेणि रचना करता है। कभी प्रति समय संख्यातगुणे संख्यातगुणे द्रव्यका अपकर्षण करके गुणश्रेणि रचना करता है। इसी प्रकार कभी प्रति समय संख्यातवें भाग अधिक या कभी असंख्यातवें भाग अधिक द्रव्यका अपकर्षण करके गुणश्रेणि रचना करता है। और यदि संक्लेशरूप परिणाम हुए तो उनमें भी जब जैसी न्यूनाधिकता होती है उसके अनुसार कभी असंख्यातगुणे हीन कभी संख्यातगुणे हीन और कभी संख्यातवें भाग हीन और कभी असंख्यातवें भाग हीन द्रव्यका अपकर्षण करके गुणश्रेणिरचना करता है। इस प्रकार संयमासंयम और संयमके अन्त तक यह क्रम चालू रहता है।

यदि संयमासंयम या संयमसे च्युत होकर अतिशीघ्र इन भावोंको जीव पुनः

❀ **सम्मत्तस उक्कस्सयमोकड्डणादो उक्कड्डणादो संकमणादो उदयादो च झीणट्ठिदियं कस्स ।**

§ ४८९. सुगममेदं पुच्छासुत्तं । णवरि उदयावलियबाहिरट्ठिदिसमवट्ठिदस्स सम्मत्तपदेसाणं बज्झमाणमिच्छत्तस्सुवरि समट्ठिदीए संकंताणमुक्कड्डणासंभवं पेक्खियूण सम्मत्तस्स तत्तो झीणाझीणट्ठिदियत्तमेत्थ घेत्तव्वं, अण्णहा तदणुववत्तीदो ।

❀ **गुणिदकम्मंसिओ सव्वलहुं दंसणमोहणीयं कम्मं खवेदुमाढत्तो**

प्राप्त करता है तो एकान्तवृद्धिरूप परिणाम और उनके कार्य नहीं होते । यहाँ एकान्तवृद्धिमें उत्तरोत्तर प्रति समय अनन्तगुणी परिणामोंकी विशुद्धि होती जाती है, इसलिये संयमासंयमी और संयमीके इन परिणामोंके अन्तमें जो गुणश्रेणिशीर्ष होते हैं उनकी अपेक्षा यहाँ उत्कृष्ट स्वामित्व कहा है· अथवा यद्यपि अधःप्रवृत्तरूप परिणाम घटते वढ़ते रहते हैं तथापि सर्वोत्कृष्ट विशुद्धिके कारणभूत ये परिणाम अन्तिम समयमें होनेवाले एकान्तवृद्धिरूप परिणामोंसे भी अनन्तगुणे होते हैं, अतः इन परिणामोंके निमित्तसे जो गुणश्रेणिशीर्ष प्राप्त हों उनकी अपेक्षा यहाँ उत्कृष्ट स्वामित्व कहना चाहिये । इस प्रकार मिथ्यात्वकी अपेक्षा उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका उत्कृष्ट स्वामी कौन है इसका विचार किया । यहाँ उत्कृष्ट स्वामित्वका विचार करते हुए टीकामें अनेक शंका प्रतिशंकाएँ की गई हैं पर उनका विचार वहाँ किया ही है, अतः उनका यहाँ निर्देश नहीं किया ।

* **सम्यक्त्वके अपकर्षणसे, उत्कर्षणसे संक्रमणसे और उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी कौन है ।**

§ ४८९. यह पृच्छासूत्र सरल है । किन्तु इतनी विशेषता है कि उदयावलिके बाहरकी स्थितिमें स्थित जो सम्यक्त्वके प्रदेश बँधनेवाले मिथ्यात्वके ऊपर समान स्थितिमें संक्रान्त होते हैं उनका उत्कर्षण सम्भव है इसी अपेक्षासे ही यहाँ सम्यक्त्वके उत्कर्षणसे झीनाझीन-स्थितिपनेका ग्रहण करना चाहिये, अन्यथा सम्यक्त्वक उत्कर्षणसे झीनाझीनस्थितिपना नहीं बन सकता ।

विशेषार्थ—सम्यक्त्व यह बँधनेवाली प्रकृति नहीं है, इसलिये इसका अपने बन्धकी अपेक्षा उत्कर्षण ही सम्भव नहीं है । हाँ मिथ्यात्वके बन्धकालमें सम्यक्त्वके कर्मपरमाणुओंका मिथ्यात्वमें संक्रमण होकर उनका उत्कर्षण हो सकता है । यद्यपि यह संक्रमित द्रव्य मिथ्यात्वका एक हिस्सा हो गया है तथापि पूर्वमें ये सम्यक्त्वके परमाणु रहे इस अपेक्षासे इस उत्कर्षणको सम्यक्त्वके कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण कहनेमें भी आपत्ति नहीं । इस प्रकार इस अपेक्षासे सम्यक्त्वके परमाणुओंका उत्कर्षण मानकर फिर यह विचार किया गया है कि सम्यक्त्वके कौनसे कर्मपरमाणु उत्कर्षणसे झीनस्थितिवाले हैं और कौनसे कर्मपरमाणु उत्कर्षणसे अझीन स्थितिवाले हैं । यदि ऐसा न माना जाय तो सम्यक्त्व प्रकृतिके कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण ही घटित नहीं होता है । और तब फिर सम्यक्त्वका उत्कर्षणसे झीनाझीन स्थितिपना भी कैसे बन सकता है । अर्थात् नहीं बन सकता है । इसलिये सम्यक्त्वके उत्कर्षणकी व्यवस्था उक्त प्रकारसे करके ही झीनाझीनस्थितिपनेका विचार करना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

* **जिस गुणित कर्मांशवाले जीवने अतिशीघ्र दर्शनमोहनीय कर्मके क्षय करनेका**

अधट्ठिदियं गलंतं जाधे उदयावलियं पविस्समाणं पविट्ठं ताधे उक्कस्सय-मोकड्डणादो वि उक्कड्डणादो वि संकमणादो वि झीणट्ठिदियं ।

§ ४९०. एदस्स तिण्हं झीणट्ठिदियाणं सामित्तपरूवणासुत्तस्स अत्थो—जो गुणिदकम्मंसिओ पुव्वविहाणेणागदो सव्वलहुं दंसणमोहणीयं कम्मं खवेदुमाढत्तो अपुव्वअणियट्टिकरणपरिणामेहि बहुएहि ट्ठिदिअणुभागखंडएहि मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्ते संछुहिय पुणो तं पि पलिदोवमस्स असंखे०भागमेत्तचरिमट्ठिदिखंडयचरिमफालि-सरूवेण सम्मत्ते संछुहंतो सम्मत्तस्स वि तक्कालिएण ट्ठिदिखंडएण पलिदोवमासंखेज्जदि भागिएण अट्ठवस्समेत्तट्ठिदिसंतकम्मावसेसं काऊण तत्थ संछुहिय पुणो वि संखेज्जट्ठिदिखंडयसहस्सेहि सम्मत्तट्ठिदिमइदहरीकरिय कदकरणिज्जो होदूणावट्ठिदो तस्स अधट्ठिदियं गलंतं सम्मत्तं जाधे कमेण उदयावलियं पविसमाणं संतं णिरवसेसं पइट्ठं ताधे आवलियमेत्तगुणसेढिगोवुच्छा ओदरिय अवट्ठिदस्स ओकड्डणादो वि उक्कड्डणादो वि संकमणादो वि झीणट्ठिदियं पदेसग्गं होइ। एत्थ उदयावलियं पविसमाणं पविट्ठमिदि वयणमकमपवेसासंकाणिरायरणदुवारेण कम्मपदेस-प्पदुप्पायणट्ठं दट्ठव्वं । सेसं सुगमं ।

आरम्भ किया है उसके अधःस्थितिके द्वारा गलता हुआ सम्यक्त्व जब उदयावलिमें प्रवेश करता है तब वह अपकर्षणसे, उत्कर्षणसे और संक्रमणसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है ।

§ ४९०. अब तीन झीन स्थितिवाले कर्मपरमाणुओंके स्वामित्वका कथन करनेवाले इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—पूर्वविधिसे आये हुए गुणितकर्मांशवाले जिस जीवने अतिशीघ्र दर्शन-मोहनीय कर्मके क्षयका आरम्भ करके अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंके निमित्तसे बहुतसे स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकोंके द्वारा मिथ्यात्वको सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमित किया। फिर सम्यग्मिथ्यात्वको भी पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिरूपसे सम्यक्त्वमें संक्रमित किया। फिर सम्यक्त्वका भी उसी समय होनेवाले पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिकाण्डकके द्वारा आठ वर्षप्रमाण स्थिति सत्कर्म शेष रखकर शेषको उसी शेष स्थितिमें निक्षिप्त किया। इसके बाद फिर भी संख्यात हजार स्थिति-काण्डकोंके द्वारा सम्यक्त्व की स्थितिको अत्यन्त ह्रस्व करके जो कृतकृत्य होकर स्थित हुआ उसके अधःस्थितिके द्वारा गलता हुआ सम्यक्त्व जब क्रमसे उदयावलिमें पूराका पूरा प्रवेश कर जाता है तब एक आवलिप्रमाण गोपुच्छा उतर कर स्थित हुए इस जीवके अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमण इन तीनोंसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणु होते हैं। यहाँ सूत्रमें जो 'उदयावलियं पविसमाणं पविट्ठं' यह वचन कहा है सो यह युगपत् प्रवेशकी आशंकाके निराकरण द्वारा क्रमसे होनेवाले प्रवेशका सूचन करनेके लिये जानना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

विशेषार्थ—इस सूत्रमें अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणकी अपेक्षा सम्यक्त्वके झीन स्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंके स्वामीका निर्देश किया है। यद्यपि यहाँ जो दृष्टान्त दिया है

§ ४६१. संपहि उदयादो उक्कस्सज्भीणट्ठिदियस्स सामित्तविसेसपरूवणट्ठमुत्तर-सुत्तस्सावयारो—

* **तस्सेव चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स सव्वमुदयं तमुक्कस्सयमुदयादो भीणट्ठिदियं ।**

§ ४६२. तस्सेव पुव्वपरूविदजीवस्स पुणो वि गालिदसमयूणावलियमेत्त-गोवुच्छस्स चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयभावे वट्टमाणस्स जं सव्वमुदयं तं पदेसग्गं तमुक्कस्सयमुदयादो भीणट्ठिदियमिदि सुत्तत्थसंबंधो । एत्थ सव्वमुदयं तमिदि वुत्ते सर्वेषामुदयानामन्त्यं निःपश्चिममुदयप्रदेशाग्रं सर्वोदयान्त्यमिति व्याख्येयं । कुदो पुण एदस्स सव्वोदयंतस्स सव्वुक्कस्सत्तं ? ण, दंसणमोहणीयदव्वस्स सव्वस्सेव त्थोवूणस्स पुंजीभूदस्सेत्थुवलंभादो । तदो चेयं पाठंतरमवलंबिय वक्खाणंतरमेत्थ चरिम-समयअक्खीणं जं दंसणमोहणीयं तस्स जो सव्वोदओ अविवक्खियकिंचूणभावो तं घेत्तूण उक्कस्सयमुदयादो भीणट्ठिदियं होदि त्ति ।

वह दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके समयका है और तब न तो सम्यक्त्वका संक्रमण ही होता है और न उत्कर्षण ही । तथापि उदयावलिके भीतर स्थित कर्मपरमाणु इन तीनोंके अयोग्य हैं इस सामान्य कथनके अनुसार उनका उत्कृष्ट प्रमाण कहाँ प्राप्त होता है इस विवक्षासे यह स्वामित्व जानना चाहिये ।

§ ४६१. अब उदयसे उत्कृष्ट झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणुओंके स्वामित्वविशेषका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* **जिसने दर्शनमोहनीयकी पूरी क्षपणा नहीं की है ऐसे उसी जीवके दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके अन्तिम समयमें जो सब कर्मपरमाणु उदयमें आते हैं वे उदयसे भीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणु हैं ।**

§ ४६२. जिसने और भी एक समय कम आवलिप्रमाण गोपुच्छाओंको गला दिया है और दर्शनमोहनीयकी पूरी क्षपणा न होनेसे उसके अन्तिम समयमें विद्यमान है ऐसे उसी पूर्वमें कहे गये जीवके जो सम्यक्त्वके सब कर्मपरमाणु उदयमें आते हैं वे उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणु हैं यह इस सूत्रका अभिप्राय है । यहाँ सूत्रमें जो 'सव्वमुदयं तं' ऐसा कहा है सो इस पदका ऐसा व्याख्यान करना चाहिये कि सब उदयोंके अन्तमें जो कर्मपरमाणु हैं वे यहाँ लिये गये हैं ।

शंका—सब उदयोंके अन्तमें स्थित ये कर्मपरमाणु सबसे उत्कृष्ट कैसे हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि दर्शनमोहनीयका कुछ कम सब द्रव्य एकत्रित होकर यहाँ पाया जाता है, इसलिये ये कर्मपरमाणु सबसे उत्कृष्ट हैं । उक्त सूत्रका यह एक व्याख्यान हुआ । अब पाठान्तरका अवलम्ब लेकर इसका दूसरा व्याख्यान करते हैं । यथा—अन्तिम समयमें जो अक्षीण दर्शनमोहनीय है उसका जो सर्वोदय है उसकी अपेक्षा उदयसे भीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्म परमाणु होते हैं । यहाँ किंचित् ऊनपनेकी विवक्षा न करके सर्वोदय पदका प्रयोग किया है इतना विशेष जानना चाहिए ।

*** सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सयमोकड्डणादो उक्कड्डणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं कस्स ।**

§ ४९३. सुगममेदं पुच्छासुत्तं । णवरि सम्मत्तस्सेव एत्थ उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियस्स संभवो वत्तव्वो ।

*** गुणिदकम्मंसियस्स सव्वलहुं दंसणमोहणीयं खवेमाणस्स सम्मामिच्छत्तस्स अपच्छिमट्ठिदिखंडयं संछुभमाणयं संछुद्धमुदयावलिया उदयवज्जा**

विशेषार्थ—प्रकृत सूत्रमें सम्यक्त्वकी अपेक्षा उदयसे झीन स्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी कौन है यह बतलाया है। गुणितकर्मांशकी विधिसे आकर जिसने अतिशीघ्र दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ किया है वह पहले मिथ्यात्वको सम्यग्मिथ्यात्वमें और सम्यग्मिथ्यात्वको सम्यक्त्वमें प्रक्षिप्त करनेके बाद कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि होता है। फिर सम्यक्त्वको अधःस्थितिके द्वारा गलाता हुआ क्रमसे उदयके अन्तिम समयको प्राप्त होता है। इस प्रकार इस उदय समयमें सम्यक्त्वका जितना द्रव्य पाया जाता है उतना अन्यत्र सम्भव नहीं, इसलिये इसे उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी बतलाया है। यहाँ सूत्रमें आये हुए 'चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स सव्वमुदयं' इसके दो पाठ मानकर दो अर्थ सूचित किये गये हैं। प्रथम पाठ तो यही है और इसके अनुसार 'चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स' यह सूत्रमें आये हुए 'तस्सेव' पदका विशेषण हो जाता है और 'सव्वमुदयं' पाठ स्वतन्त्र हो जाता है। किन्तु दूसरा पाठ 'चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयसव्वोदयं' ध्वनित होता है और इसके अनुसार 'अन्तिम समयमें अक्षीण जो दर्शनमोहनीय उसका जो सर्वोदय उसकी अपेक्षा' यह अर्थ प्राप्त होता है। मालूम होता है कि ये दो पाठ टीकाकारने दो भिन्न प्रतियोंके आधारसे सूचित किये हैं। फिर भी वे प्रथम पाठ को मुख्य मानते रहे, इसलिये उसे प्रथम स्थान दिया और पाठान्तररूपसे दूसरेकी सूचना की। यहाँ पाठ कोई भी विवक्षित रहे तब भी निष्कर्षमें कोई फरक नहीं पड़ता, क्योंकि यह दोनों ही पाठोंका निष्कर्ष है कि इस प्रकार सम्यक्त्वकी क्षपणाके अन्तिम समयमें जो उदयगत कर्मपरमाणु प्राप्त होते हैं वे उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणु हैं।

*** सम्यग्मिथ्यात्वके अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणसे झीन स्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी कौन है।**

§ ४९३. यह पृच्छासूत्र सुगम है। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ पर सम्यक्त्वके समान ही उत्कर्षणसे झीनस्थितिपनेके सद्भावका कथन करना चाहिये। आशय यह है सम्यक्त्वके समान सम्यग्मिथ्यात्वका भी बन्ध नहीं होता, इसलिये अपने बन्धकी अपेक्षा इसका उत्कर्षण नहीं बन सकता। अतएव जिस क्रमसे सम्यक्त्वमें उत्कर्षण घटित करके बतला आये हैं वैसे ही सम्यग्मिथ्यात्वमें घटित कर लेना चाहिये।

*** अति शीघ्र दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाले गुणितकर्मांशवाले जिस जीवके सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिकाण्डकका क्रमसे क्षेपण हो गया है और**

भरिदल्लिया तस्स उक्कस्सयमोकड्डणादो उक्कड्डणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं।

§ ४६४. एदस्स सामित्तविहाययसुत्तस्सासेसावयवत्थपरूवणा सुगमा, मिच्छत्त-सामित्तसुत्तम्मि परूविदत्तादो। णवरि उदयावलिया त्ति वुत्ते उदयसमयं मोत्तूण समयूणावलियमेत्तदंसणमोहणीयक्खवणगुणसेढिगोवुच्छाहि जावदि सक्कं ताव आवूरिदपदेसग्गाहि उदयावलिया संपुण्णीकया त्ति घेत्तव्वं। उदयसमओ किमिदि वज्जिदो ? ण, उदयाभावेण तस्स त्थिवुक्कसंकमेण सम्मत्तुदयगोवुच्छाए उवरि संकमिय विपच्चंतस्स एत्थाणुवजोगित्तादो।

❀ उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स।

§ ४६५. सुगमं।

❀ गुणिदकम्मंसिओ संजमासंजम-संजमगुणसेढीओ काऊण ताधे गदो सम्मामिच्छत्तं जाधे गुणसेढिसीसयाणि पढमसमयसम्मामिच्छाइट्ठिस्स

उदयसमयके सिवा शेष उदयावलि पूरित हो गई है वह सम्यग्मिथ्यात्वके अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणसे झीन स्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है।

§ ४६४. स्वामित्वका विधान करनेवाले इस सूत्रके सब अवयवोंका अर्थ सुगम है, क्योंकि मिथ्यात्वके स्वामित्वका कथन करनेवाले सूत्रमें उनका प्ररूपण कर आये हैं। किन्तु सूत्रमें जो 'उदयावलिया उदयवज्जा भरिदल्लिया' ऐसा कहा है सो इसका आशय यह है कि उदयसमय के सिवा एक समय कम उदयावलिप्रमाण जो दर्शनमोहनीयकी क्षपणासम्बन्धी गोपुच्छाएँ हैं, जो कि यथासम्भव अधिकसे अधिक कर्मपरमाणुओंसे पूरित की गई हैं, उनसे उदयावलिको परिपूर्ण करे।

शंका—यहाँ उदय समयका वर्जन क्यों किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वका उदय न होनेसे वह उदयसम्बन्धी गोपुच्छा स्तिवुक संक्रमणके द्वारा सम्यक्त्वकी उदयसम्बन्धी गोपुच्छामें संक्रमित होकर फल देने लगती है, इसलिये वह यहाँ उपयोगी नहीं है।

विशेषार्थ—जो गुणितकर्मांशवाला जीव अतिशीघ्र आकर दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करता है उसके सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिकाण्डकका पतन हो जानेके बाद जो एक समय कम उदयावलि प्रमाण कर्म परमाणु शेष रहते हैं वे अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणसे झीन-स्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणु हैं यह इस सूत्रका भाव है। शेष विशेषता जैसे सम्यक्त्वके उत्कृष्ट स्वामित्वका विशेष खुलासा करते समय लिख आये है उसी प्रकार यहाँ भी जान लेनी चाहिये।

*** उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्म परमाणुओंका स्वामी कौन है।**

§ ४६५. यह सूत्र सुगम है।

*** गुणितकर्मांशवाला जो जीव संयमासंयम और संयमसम्बन्धी गुणश्रेणियोंको करके तब सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ जब सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेके प्रथम**

उदयमागदाणि ताधे तस्स पढमसमयसम्मामिच्छाइट्ठिस्स उक्कस्सयमुदयादो भीणट्ठिदियं ।

§ ४९६. एत्थ जो गुणिदकम्मंसिओ संजमासंजम-संजमगुणसेढीओ काऊण ताधे सम्मामिच्छत्तं गदो जाधे पढमसमयसम्मामिच्छाइट्ठिस्स गुणसेढिसीसयाणि उदयमागयाणि त्ति पदसंबंधो कायव्वो । सेसपरूवणाए मिच्छत्तभंगो ।

§ ४९७. एत्थ के वि आइरिया एवं भणंति—जहा सम्मामिच्छत्तस्स उदयादो भीणट्ठिदियं णाम अत्थसंबंधेण संजदासंजद-संजदगुणसेढीओ काऊण पुणो अणंताणुबंधिविसंजोयणगुणसेढीए सह जाधे एदाणि तिण्णि वि गुणसेढिसीसयाणि पढमसमयसम्मामिच्छाइट्ठिस्स उदयमागच्छंति ताधे तस्स उक्कस्सयं होइ, अणंताणुबंधिविसंजोयणगुणसेढीए सुत्तपरूविददोगुणसेढीहिंतो पदेसग्गं पडुच्च असंखेज्जगुणत्तादो । जइ वि संजमासंजम-संजमगुणसेढीओ अणंताणुबंधिविसंजोयणाए ण लब्भंति तो वि एदीए चेव पज्जत्तं, तत्तो असंखेज्जगुणत्तादो । णवरि अणंताणुबंधिविसंजोयणगुणसेढिसीसयं गंथयारेण ण जोइदमिदि ण एदं घडदे । कुदो ? अणंताणुबंधिविसंजोयणगुणसेढीए अविणट्ठसरूवाए अच्छंतीए सम्मामिच्छत्तगुणपरिणमणाभावादो । एदं कुदो णव्वदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो । ण च संतमत्थं ण परूवेदि सुत्तं, तस्स अव्वावयत्त-

---

समयमें गुणश्रेणिशीर्ष उदयको प्राप्त होते हैं तो प्रथम समयवर्ती वह सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है ।

§ ४९६. यहाँपर जो गुणितकर्मांशवाला जीव संयमासंयम और संयमसम्बन्धी गुणश्रेणियोंको करके तब सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ जब सम्यग्मिथ्यादृष्टिके प्रथम समयमें गुणश्रेणिशीर्ष उदयको प्राप्त होते हैं इस प्रकार पदोंका सम्बन्ध कर लेना चाहिये । शेष प्ररूपणा मिथ्यात्वके समान है ।

§ ४९७. यहाँपर कितने ही आचार्य इस प्रकार कथन करते हैं कि उदयसे सम्यग्मिथ्यात्वका झीनस्थितिपना जैसे किसी एक गुणितकर्मांशवाले जीवने संयतासंयत और संयतकी गुणश्रेणियोंको किया । फिर उसके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनासम्बन्धी गुणश्रेणिशीर्षके साथ जब ये तीनों ही गुणश्रेणिशीर्ष सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके प्रथम समयमें उदयको प्राप्त होते हैं तब उसके उत्कृष्ट झीनस्थिति द्रव्य होता है, क्योंकि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनासम्बन्धी गुणश्रेणिसूत्रमें कही गई दो गुणश्रेणियाँ कर्मपरमाणुओंकी अपेक्षा असंख्यातगुणी होती हैं । यद्यपि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाके समय संयमासंयम और संयमसम्बन्धी गुणश्रेणियाँ नहीं प्राप्त होती हैं तो भी यही केवल पर्याप्त है, क्यों कि यह उन दोनोंसे असंख्यातगुणी होती है । किन्तु ग्रन्थकारने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनासम्बन्धी गुणश्रेणिशीर्षको नहीं जोड़ा है इसलिये यह बात नहीं बनती, क्योंकि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनासम्बन्धी गुणश्रेणिके निर्जीर्ण हुए विना रहते हुए सम्यग्मिथ्यात्वगुणकी प्राप्ति नहीं होती ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है ।

दोसप्पसंगादो ।

§ ४६८. अण्णं च एदस्स णिबंधणमत्थि । तं जहा--संतकम्ममहाहियारे कदि-वेदणादिचउवीसमणियोगद्दारेसु पडिबद्धे उदओ णाम अत्थाहियारो द्विदि-अणु-भाग-पदेसाणं पयडिसमण्णियाणमुक्कस्साणुक्कस्सजहण्णाजहण्णुदयपरूवणेयवावारो, तत्थुक्कस्सपदेसुदयसामित्तसाहणट्ठं सम्मत्तुप्पत्तियादिएक्कारसगुणसेढीओ परूविय पुणो जाओ[1] गुणसेढीओ संकिलेसेण सह भवंतरं संकामेंति ताओ वत्तइस्सामो । तं जहा--उवसमसम्मत्तगुणसेढी संजदासंजदगुणसेढी अधापवत्तसंजदगुणसेढी त्ति एदाओ तिण्णि गुणसेढीओ अप्पसत्थमरणेण वि मदस्स परभवे दीसंति । सेसासु गुणसेढीसु झीणासु अप्पसत्थमरणं भवे इदि वुत्तं तं पि केणाहिप्पाएण वुत्तं, उक्कस्स-संकिलेसेण सह तासिं विरोहादो त्ति । तं पि कुदो ? संकिलेसावूरणकालादो पयदगुण-सेढीणमायामस्स संखेज्जगुणहीणत्तब्भुवगमादो । तदो एदेण साहणेण एत्थ वि तासि-

यदि कहा जाय कि सूत्र विद्यमान अर्थका कथन नहीं करता है सो भी बात नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेपर सूत्रको अव्यापकत्व दोषका प्रसंग प्राप्त होता है ।

§ ४६८. तथा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनासम्बन्धी गुणश्रेणिके सद्भावमें जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणको नहीं प्राप्त होता इसका एक अन्य कारण है जो इस प्रकार है--कृति, वेदना आदि चौबीस अनुयोगद्वारोंसे सम्बन्ध रखनेवाले सत्कर्म महाधिकारमें प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्यरूप उदयके कथन करनेमें व्यापृत एक उदय नामका अर्थाधिकार है । वहाँ उत्कृष्ट प्रदेशोदयके स्वामित्वका साधन करनेके लिये सम्यक्त्वकी उत्पत्ति आदि ग्यारह गुणश्रेणियोंका कथन करनेके बाद फिर "जो गुणश्रेणियाँ संक्लेशरूप परिणामोंके साथ भवान्तरमें जाती हैं उन्हें बतलाते हैं । जैसे—उपशम सम्यक्त्व-गुणश्रेणि, संयतासंयतगुणश्रेणि और अधःप्रवृत्तसंयतगुणश्रेणि इस प्रकार ये तीन गुणश्रेणियां अप्रशस्त मरणके साथ भी मरे हुए जीवके परभवमें दिखाई देती हैं । किन्तु शेष गुणश्रेणियोंके क्षयको प्राप्त होने पर ही अप्रशस्त मरण होता है ।" यह कहा है सो यह किस अभिप्रायसे कहा है ? मालूम होता है कि शेष गुणश्रेणियोंका उत्कृष्ट संक्लेशके साथ विरोध है, इसलिये ऐसा कहा है ।

शंका—यह भी कैसे जाना ?

समाधान—संक्लेशको पूरा करनेका जो काल है उससे प्रकृत गुणश्रेणियोंका आयाम संख्यातगुणा हीन स्वीकार किया है, इससे जाना जाता है कि शेष गुणश्रेणियोंका उत्कृष्ट संक्लेशके साथ विरोध है ।

इसलिये इस साधनसे यहाँ भी अर्थात् सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें भी उनका अभाव

१. ध० आ०, पत्र १०६५ । "तिन्नि वि पढमिल्लाओ मिच्छत्ताए वि होज अन्नभवे ।"—कर्म प्र० उदय गा० १० । 'सम्मत्तुप्पादगुणसेढी देसविरदगुणसेढी अहापमत्तसंजयगुणसेढी य एया तिन्नि वि पढ-मिल्लीओ गुणसेढीतो मिच्छत्तं वि होज अन्नभवे' त्ति मिच्छत्तं गंतूण अप्पसत्थं, मरणेण मओ गुणसेढितियदलियं परभवगतो वि किं त्रिकालं वेदिजा ।'—चूर्णि ।

मभावो सिद्धो। ण च एत्थ संकिलेसो णत्थि त्ति वोत्तुं जुत्तं, संकिलेसावूरणेण विणा सम्माइट्ठिस्स सम्मामिच्छत्तगुणपरिणामासंभवादो। ण च तत्थ अप्पसत्थमरणं तं तंते ण वुत्तं, संकिलेसमेत्तेण सह तासिं विरोहपदुप्पायणट्ठं तहोवएसादो। तम्हा सुत्तपरूविदाणि चेय दोगुणसेढिसीसयाणि संकिलेसकाले वि अविणस्संतसरूवाणि जाधे पढमसमयसम्मामिच्छाइट्ठिस्स उदयमागयाणि ताधे तस्स उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियस्स मिच्छत्तस्सेव सामित्तं वत्तव्वमिदि सिद्धं।

सिद्ध हुआ। यदि कहा जाय कि यहाँ संक्लेश नहीं होता सो भी बात नहीं है, क्योंकि संक्लेश पूरा हुए बिना सम्यग्दृष्टिके सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानकी प्राप्ति सम्भव नहीं। यदि कहा जाय कि सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें अप्रशस्त मरण होता है यह बात आगममें नहीं कही है सो ऐसा कहकर भी मुख्य बात को नहीं टाला जा सकता है, क्योंकि संक्लेशमात्रके साथ उक्त गुणश्रेणियों के विरोधका कथन करनेके लिये वैसा उपदेश दिया है। इसलिये सूत्रमें कहे गये दो गुणश्रेणिशीर्ष ही नाशको प्राप्त हुए बिना जब सम्यग्मिथ्यादृष्टिके प्रथम समयमें उदयको प्राप्त होते हैं तभी उसके उदयसे झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणुओंका मिथ्यात्वके समान उत्कृष्ट स्वामित्व कहना चाहिए यह सिद्ध हुआ।

विशेषार्थ—जो जीव गुणितकर्मांशकी विधिसे आया और अतिशीघ्र संयमासंयम और संयमसम्बन्धी गुणश्रेणियोंको करके इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ जब सम्यग्मिथ्यात्वके प्रथम समयमें इन दोनों गुणश्रेणियोंके शीर्ष उदयको प्राप्त हुए तब इसके उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणु प्राप्त होते हैं। किन्तु कुछ आचार्य इन दो गुणश्रेणिशीर्षोंके उदयके साथ अनन्तानुबन्धीके विसंयोजनासम्बन्धी गुणश्रेणिशीर्षके उदयको मिलाकर तीन गुणश्रेणिशीर्षोंका उदय होनेपर उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन करते हैं। इतना ही नहीं किन्तु, वे यह भी कहते हैं कि यदि इन तीनों गुणश्रेणिशीर्षोंका उदय सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानके प्रथम समयमें सम्भव न हो तो केवल एक अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनासम्बन्धी गुणश्रेणिशीर्षका उदय ही पर्याप्त है, क्योंकि संयमासंयम और संयमसम्बन्धी गुणश्रेणिशीर्षोंमें जितने कर्मपरमाणु पाये जाते हैं उनसे इस गुणश्रेणिशीर्षमें असंख्यातगुणे कर्मपरमाणु पाये जाते हैं। किन्तु टीकाकारने उक्त आचार्योंके इस कथनको दो कारणोंसे नहीं माना है। प्रथम कारण तो यह है कि यदि सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनासम्बन्धी गुणश्रेणि पाई जाती होती तो चूर्णिसूत्रकार ने उक्त दो गुणश्रेणियोंके साथ इसका अवश्य ही समावेश किया होता, या स्वतन्त्रभावसे इसका आश्रय लेकर ही उत्कृष्ट स्वामित्वका प्रतिपादन किया होता। किन्तु जिस कारणसे सूत्रकारने ऐसा नहीं किया इससे ज्ञात होता है कि सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनासम्बन्धी गुणश्रेणि नहीं पाई जाती। दूसरे सत्कर्म नामक महाधिकारमें प्रदेशोदयके उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन करनेके लिये ग्यारह गुणश्रेणियोंका निर्देश करते हुए बतलाया है कि 'उपशमसम्यक्त्वगुणश्रेणि, संयतासंयतगुणश्रेणि और अधःप्रवृत्तसंयत गुणश्रेणि ये तीन गुणश्रेणियाँ ही मरणके बाद परभवमें दिखाई देती हैं।' इससे ज्ञात होता है कि संक्लेश परिणामों के प्राप्त होने पर केवल ये तीन गुणश्रेणियाँ ही पाई जाती हैं शेष गुणश्रेणियाँ नहीं, क्योंकि उनका काल संक्लेशको पूरा करनेके कालसे थोड़ा है। यतः सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानकी प्राप्ति संक्लेशरूप परिणाम हुए बिना बन नहीं सकती अतः सिद्ध हुआ कि सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनासम्बन्धी गुणश्रेणि नहीं पाई जाती।

❀ अणंताणुबंधीणमुक्कस्सयमोकड्डुणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स ?

§ ४६६. सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

❀ गुणिदकम्मंसिओ संजमासंजम-संजमगुणसेढीहि अविणट्ठाहि अणंताणुबंधी विसंजोएदुमाढत्तो, तेसिमपच्छिमट्ठिदिखंडयं संछुभमाणयं संछुद्धं तस्स उक्कस्सयमोकड्डुणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं ।

§ ५००. जो गुणिदकम्मंसिओ सव्वलहुमणंताणुबंधिकसाए विसंजोएदुमाढत्तो । किंभूदो सो संजमासंजम-संजमगुणसेढीए अविणट्ठसरूवाहि उवलक्खिओ तेण जाधे तेसिमपच्छिमट्ठिदिखंडयं सेसकसायाणमुवरि संछुब्भमाणायं संछुद्धं ताधे तस्स उक्कस्सयमोकड्डुणादीणं तिण्हं पि संबंधि झीणट्ठिदियं होदि त्ति सुत्तत्थसंबंधो । कुदो एदस्स उक्कस्सत्तं ? ण; तिण्हं पि सग-सगुक्कस्सपरिणामेहि कयगुणसेढिगोवुच्छाणं

यहाँ एक यह तर्क किया जा सकता है कि सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें मरण नहीं होता और उपशामसम्यक्त्व गुणश्रेणि आदि तीनके सिवा शेषका निषेध मरणका आलम्बन लेकर किया है संक्लेशका आलम्बन लेकर नहीं, अतः सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना-सम्बन्धी गुणश्रेणिके माननेमें कोई आपत्ति नहीं है । पर यह तर्क भी ठीक नहीं ज्ञात होता, क्योंकि संक्लेशका और मरणका परस्पर सम्बन्ध है । संक्लेशके होने पर मरण आवश्यक है यह बात नहीं पर मरणके लिये संक्लेश आवश्यक है । इसलिये यहाँ तीनके सिवा शेष गुणश्रेणियाँ संक्लेशमात्रमें सम्भव नहीं यह तात्पर्य निकलता है । यद्यपि सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनावाला जीव जाता है पर वह तभी जाता है जब गुणश्रेणिका काल समाप्त हो लेता है । अतः संयमासंयम और संयम इन दो गुणश्रेणिशीर्षोंके उदयकी अपेक्षा ही सम्यग्मिथ्यात्वके प्रथम समयमें उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणु कहने चाहिये यह तात्पर्य निकलता है ।

* अनन्तानुबन्धीके अपकर्षण आदि तीनोंके झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्म-परमाणुओंका स्वामी कौन है ?

§ ४६६. यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

* जिस गुणितकर्मांशवाले जीवने संयमासंयम और संयमकी गुणश्रेणियोंका नाश किये बिना अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाका आरम्भ किया और जिसके अनन्तानुबन्धियोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकका क्रमसे नाश हो गया वह अपकर्षण आदि तीनोंके झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है ।

§ ५००. गुणितकर्मांशवाले जिस जीवने अतिशीघ्र अनन्तानुबन्धी कषायकी विसंयोजना का प्रारम्भ किया । विसंयोजनाका प्रारम्भ करनेवाला जो नाशको नहीं प्राप्त हुई संयमासंयम और संयमसम्बन्धी गुणश्रेणियोंसे युक्त है । उसने जब उन अनन्तानुबन्धी कषायोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकको शेष कषायोंमें क्रमसे निक्षिप्त कर दिया तब उसके अपकर्षणादि तीनों सम्बन्धी उत्कृष्ट झीनस्थिति होती है यह इस सूत्रका अभिप्राय है ।

शंका—इसीके उत्कृष्टपना कैसे होता है ?

समयूणावलियमेत्ताणमेत्थुवलंभादो। एत्थाणंताणुबंधिविसंजोयणगुणसेढी चेव पहाणा, सेसाणमेत्तो असंखेज्जगुणहीणत्तदंसणादो।

❀ **उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स ?**

§ ५०१. सुगमं।

❀ **संजमासंजम-संजमगुणसेढीओ काऊण तत्थ मिच्छत्तं गदो जाधे गुणसेढिसीसयाणि पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स उदयमागयाणि ताधे तस्स पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं।**

§ ५०२. एत्थ गुणिदकम्मंसियणिद्देसो किमट्ठं ण कदो ? ण, तस्स पुव्विल्ल-सामित्तसुत्तादो अणुवुत्तिदंसणादो। गुणसेढीणं परिणामपरतंतभावेण ण तं णिप्फलं, पयडिगोवुच्छाए लाहदंसणादो। एत्थ पदसंबंधो संजमासंजम-संजमगुणसेढीओ काऊण तत्थुद्देसे मिच्छत्तं गओ जाधे गयस्स पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स दो वि गुणसेढि-

---

समाधान—नहीं, क्योंकि अपने-अपने उत्कृष्ट परिणामोंके द्वारा की गई तीनों ही गुणश्रेणिगोपुच्छाएँ एक समय कम एक आवलिप्रमाण यहाँ पाई जाती हैं, इसलिये अपकर्षणादि की झीनस्थितियोंकी अपेक्षा इसीके उत्कृष्टपना है। तो भी यहाँ अनन्तानुन्धीकी विसंयोजना-सम्बन्धी गुणश्रेणि ही प्रधान है, क्योंकि शेष दो गुणश्रेणियाँ इससे असंख्यातगुणी हीन देखी जाती हैं।

विशेषार्थ—जो गुणितकर्मांशवाला जीव अतिशीघ्र संयमासंयम, संयम और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना इन तीनों सम्बन्धी गुणश्रेणियोंको क्रमसे करके तदनन्तर अनन्तानुबन्धीके अन्तिम स्थितिकाण्डकका पतन करके स्थित होता है उसके अनन्तानुबन्धीके अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणु पाये जाते हैं यह उक्त सूत्रका आशय है।

* **उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी कौन है ?**

§ ५०१. यह सूत्र सुगम है।

* **जो संयमासंयम और संयमसम्बन्धी गुणश्रेणियोंको करके मिथ्यात्वमें गया और वहाँ पहुँचने पर मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके प्रथम समयमें जब गुणश्रेणिशीर्ष उदयको प्राप्त होते हैं तब वह प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है।**

§ ५०२. **शंका**—इस सूत्रमें 'गुणिदकम्मंसिय' पदका निर्देश क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उस पदकी पूर्वके स्वामित्वसूत्रसे अनुवृत्ति देखी जाती है। और गुणश्रेणियाँ परिणामोंके अधीन रहती हैं, इसलिये यह निष्फल भी नहीं है, क्योंकि इससे प्रकृतिगोपुच्छाका लाभ दिखाई देता है।

अब इस सूत्रके पदोंका इस प्रकार सम्बन्ध करे कि संयमासंयम और संयमसम्बन्धी गुणश्रेणियोंको करके फिर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और जब मिथ्यात्वमें जाकर प्रथम

सीसयाणि उदयमागदाणि होज्ज ताधे तस्स उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियमिदि। सम्माइट्ठिम्मि अणंताणुबंधीणमुदयाभावेण उदीरणा णत्थि त्ति गुणसेढिसीसएसु आवलियपइट्ठेसु उदीरणादव्वसंगहट्ठमेसो मिच्छत्तं णेदव्वो त्ति णासंकणिज्जं, तत्थ पुव्वमेव संकिलेसवसेण लाहादो असंखेज्जगुणसेढिदव्वस्स हाणिदंसणादो। ण च विसोहिपरतंता गुणसेढिणिज्जरा उदीरणा वा संकिलेसकाले बहुगी होइ, विरोहादो।

❀ अट्ठण्हं कसायाणमुक्कस्सयमोकड्डणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स ?

§ ५०३. सुगमं।

❀ गुणिदकम्मंसिओ कसायक्खवणाए अब्भुट्ठिदो जाधे अट्ठण्हं

समयमें दोनों ही गुणश्रेणिशीर्ष उदयको प्राप्त हुए उसी समय उसके उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणु होते हैं। यदि यह कहा जाय कि सम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धियोंका उदय नहीं होनेसे उदीरणा नहीं होती अतएव उदीरणाद्रव्यके संग्रह करनेके लिए जब गुणश्रेणिशीर्ष आवलिके भीतर प्रविष्ट हो जायँ तभी इसे मिथ्यात्वमें ले जाना चाहिये सो ऐसी आशंका भी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वहाँ पहले ही संक्लेशके वशसे लाभकी अपेक्षा असंख्यातगुणे श्रेणिद्रव्यकी हानि देखी जाती है। और जो गुणश्रेणिनिर्जरा विशुद्धिके निमित्तसे होती है वह संक्लेशकालमें उदीरणाके समान बहुत होगी सो भी बात नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता है।

विशेषार्थ—इस सूत्रमें अनन्तानुबन्धीकी अपेक्षा उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंके स्वामीका निर्देश किया है। जो गुणितकर्मांशकी विधिसे आकर अतिशीघ्र संयमासंयम और संयमकी गुणश्रेणियाँ करके मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है उसके वहाँ प्रथम समयमें ही यदि उक्त गुणश्रेणियोंके शीर्ष उदयमें आ जाते हैं तो उत्कृष्ट स्वामित्व प्राप्त होता है यह इस सूत्रका भाव है। यहाँ एक शंका यह की गई है कि उदय समयमें ही इस जीवको मिथ्यात्वमें न लाकर एक आवलि पहलेसे ले आना चाहिये। इससे लाभ यह होगा कि उदीरणाका द्रव्य प्राप्त हो जानेसे गुणश्रेणिशीर्षके परमाणु और अधिक हो जायँगे। इस शंकाका जो समाधान किया गया है उसका भाव यह है कि संक्लेश परिणामोंके बिना तो मिथ्यात्व गुणस्थानकी प्राप्ति होती नहीं। अब जब कि गुणश्रेणिशीर्षके आवलिके भीतर प्रवेश करते ही इसे मिथ्यात्वमें ले जाना है तो पूर्वमें ही संक्लेश परिणाम हो जानेसे उदीरणाके द्वारा होनेवाले लाभसे असंख्यातगुणे द्रव्यकी हानि हो जाती है, क्योंकि इतने समय पहलेसे ही इसकी गुणश्रेणिरचनाका क्रम बन्द हो जायगा। इसलिये ऐसे समय ही इसे मिथ्यात्वमें ले जाना चाहिये जब मिथ्यात्वमें पहुँचते ही गुणश्रेणिशीर्षका उदय हो जाय।

*** आठ कषायोंके अपकर्षण आदि तीनोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी कौन है।**

§ ५०३. यह सूत्र सुगम है।

*** जिस गुणितकर्मांशवाले जीवने कषायोंकी क्षपणाका आरम्भ किया है वह**

कसायाणमपच्छिमट्ठिदिखंडयं संछुभमाणं संछुद्धं ताधे उक्कस्सयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं ।

§ ५०४. एत्थ पदसंबंधो एवं कायव्वो—जो गुणिदकम्मंसिओ सव्वलहु-मट्ठवस्साणमंतोमुहुत्तब्भहियाणमुवरि कदासेसकरणिज्जो होऊण कसायक्खवणाए अब्भुट्ठिदो तेण जाधे अपुव्वाणियट्टिकरणपरिणामेहि ट्ठिदिखंडयसहस्साणि पादेंतेण अट्ठण्हं कसायाणमपच्छिमट्ठिदिखंडयमावलियवज्जं संजलणाणमुवरि संछुभमाणयं संछुद्धं ताधे तस्स उक्कस्सयमोकड्डणादीणं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं होइ त्ति। कुदो एदमावलियपइट्ठदव्वमुक्कस्सं ? ण, समयूणावलियमेत्तखवयगुणसेढीणमेत्थुवलंभादो । हेट्ठा चेय संजमासंजम-संजम-दंसणमोहणीयक्खवणगुणसेढीओ घेत्तूण सामित्तं किमिदि ण परूविदं ? ण, तासिं सव्वासिं पि मिलिदाणं खवगगुणसेढीए असंखेज्जदि-भागत्तादो ।

※ उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स ?

जब आठ कषायोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकका क्रमसे पतन कर देता है तब वह अपकर्षण आदि तीनोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है ।

§ ५०४. यहाँ पर पदोंका सम्बन्ध इस प्रकार करना चाहिये कि जो गुणितकर्मांशवाला जीव अतिशीघ्र आठ वर्ष और अन्तमुहूर्तके बाद करने योग्य सब कार्योंको करके कषायोंकी क्षपणाके लिये उद्यत हुआ, वह जब अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंके द्वारा हजारों स्थितिकाण्डकोंका पतन करके आठ कषायोंके एक आवलिके सिवा अन्तिम स्थितिकाण्डकको संज्वलनोंमें क्रमसे निक्षिप्त करता है तब वह अपकर्षण आदि तीनोंके झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है ।

शंका—आवलिके भीतर प्रविष्ट हुआ यह द्रव्य उत्कृष्ट कैसे है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि एक समय कम आवलिप्रमाण क्षपकगुणश्रेणियाँ यहाँ पाई जाती हैं, इसलिये यह द्रव्य उत्कृष्ट है ।

शंका—इसके पूर्वमें ही संयमासंयम, संयम और दर्शनमोहनीयकी क्षपणा इन तीनों गुणश्रेणियोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन क्यों नहीं किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वे सब मिलकर भी क्षपकगुणश्रेणिके असंख्यातवें भाग-प्रमाण होती हैं ।

विशेषार्थ—गुणितकर्मांशवाला जो जीव आठ कषायोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकका पतन करके जब स्थित होता है तब उसके आठ कषायोंके अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणु पाये जाते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । शेष शंका-समाधान सरल है ।

※ उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी कौन है ?

§ ५०५. एत्थ अट्ठण्हं कसायाणमिदि अहियारसंबंधो । सुगममन्यत् ।

❀ **गुणिदकम्मंसियस्स संजमासंजम-संजम-दंसणमोहणीयक्खवण-गुणसेढीओ एदाओ तिण्णि गुणसेढीओ काऊण असंजमं गदो तस्स पढम-समयअसंजदस्स गुणसेढिसीसयाणि उदयमागदाणि तस्स अट्ठकसायाण-मुक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं ।**

५०६. एत्थ पदसंबंधो एवं कायव्वो । तं जहा—गुणिदकम्मंसियस्स अट्ठ-कसायाणमुक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं होइ । किं सर्वस्यैव ? नेत्याह—संजमासंजम-संजम-दंसणमोहणीयक्खवणगुणसेढीओ त्ति एदाओ तिण्णि गुणसेढीओ कमेण काऊण असंजमं गदो तस्स पढमसमयअसंजदस्स जाधे गुणसेढिसीसयाणि उदयमागदाणि ताधे पयदुक्कस्ससामित्तं होइ त्ति । किमट्ठमेसो पयदसामिओ असंजमं णीदो ? ण, अण्णहा अट्ठकसायाणमुदयासंभवादो । एत्थाणंताणुबंधिविसंजोयणगुणसेढीए सह चत्तारि गुणसेढीओ किण्ण परूविदाओ त्ति णासंकणिज्जं, तिस्से सगअपुव्वाणियट्टि-करणद्धाहिंतो विसेसाहियगलिदसेससरूवाए एत्तियमेत्तकालमवट्ठाणासंभवादो । तम्हा

§ ५०५. इस सूत्रमें अधिकारके अनुसार 'आठ कषायोंके' इन पदोंका सम्बन्ध कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

※ **जो गुणितकर्मांशवाला जीव संयमासंयम, संयम और दर्शनमोहनीयकी क्षपणासम्बन्धी इन तीन गुणश्रेणियोंको करके असंयमको प्राप्त हुआ है उस असंयतके जब प्रथम समयमें गुणश्रेणिशीर्ष उदयको प्राप्त होते हैं तब वह आठ कषायोंके उदयकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है ।**

§ ५०६. यहाँ पदोंके सम्बन्ध करनेका क्रम इस प्रकार है—गुणितकर्मांशवाला जीव आठ कषायोंके उदयकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है ।

शंका—क्या सभी गुणितकर्मांशवाले जीव स्वामी होते हैं ?

समाधान—नहीं, किन्तु जो संयमासंयम, संयम और दर्शनमोहनीयकी क्षपणा सम्बन्धी इन तीन गुणश्रेणियोंको क्रमसे करके असंयमको प्राप्त हुआ है प्रथम समयवर्ती उस असंयतके जब गुणश्रेणिशीर्ष उदयको प्राप्त होते हैं तब प्रकृत उत्कृष्ट स्वामित्व प्राप्त होता है ।

शंका—यह प्रकृत स्वामी असंयमको क्यों प्राप्त कराया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अन्यथा आठ कषायोंका उदय नहीं बन सकता था । और यहाँ उनका उदय अपेक्षित था, इसलिये यह असंयमको प्राप्त कराया गया है ।

शंका—यहाँ अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनासम्बन्धी गुणश्रेणिके साथ चार गुण-श्रेणियोंका कथन क्यों नहीं किया ?

समाधान—यहाँ ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि वह अपने अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालसे कुछ ही अधिक होती है, इसलिये शेष भागके गल जानेसे इतने कालतक उसका सद्भाव मानना असंभव है ।

गुणिदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण संजदासंजद-संजदगुणसेढीओ काऊण पुणो अणंताणुबंधी विसंजोइय दंसणमोहणीयं खवेमाणो वि अट्ठकसायाणं पुव्विल्लदोगुणसेढिसीसएहि सरिसमप्पणो गुणसेढिसीसयं काऊण अधापवत्तसंजदो जादो। गुणसेढिसीसएसु उदयमागच्छमाणेसु कालं काऊण देवेसुप्पण्णपढमसमए वट्टमाणओ जो जीवो तस्स पढमसमयअसंजदस्स उदिण्णगुणसेढिसीसयस्स अट्ठकसायाणमुक्कस्समुदयादो झीणट्ठिदियं होदि त्ति सिद्धं। एत्थ सत्थाणम्मि चेव असंजमं णेऊण सामित्तं किण्ण दिण्णं? ण, सत्थाणम्मि असंजमं गच्छमाणो पुव्वमेव अंतोमुहुत्तकालं संकिलेसमावूरेइ त्ति एत्तियमेत्तकालपडिबद्धगुणसेडिलाहस्स विणासप्पसंगादो। सिस्सो[1] भणइ—एदम्हादो उवसमसेढिमस्सियूण उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं बहुअं लहिस्सामो। तं जहा—जो गुणिदकम्मंसिओ सव्वलहुं कसायउवसामणाए अब्भुट्ठिदो अपुव्वकरणपढमसमयप्पहुडि गुणसेढिं करेमाणो अपुव्वकरणद्धादो अणियट्टिअद्धाओ च विसेसाहियं काऊण अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु से काले अंतरं पारभदि त्ति मदो देवो जादो तस्स अंतोमुहुत्तोववण्णल्लयस्स जाधे

इसलिये गुणितकर्मांशकी विधिसे आकर और संयतासंयत तथा संयतसम्बन्धी गुणश्रेणियोंको करके फिर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करता हुआ भी आठ कषायोंके पहले दो गुणश्रेणिशीर्षोंके समान अपने गुणश्रेणिशीर्षको करके अधःप्रवृत्तसंयत हो गया। फिर गुणश्रेणिशीर्षोंके उदयमें आनेपर मरकर देवोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार देवोंमें उत्पन्न होकर जो प्रथम समयमें विद्यमान है उस प्रथम समयवर्ती असंयतके गुणश्रेणिशीर्षके उदय होनेपर आठ कषायोंके उदयकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणु होते हैं यह सिद्ध हुआ।

शंका—यहाँ स्वस्थानमें ही असंयम प्राप्त कराकर स्वामित्वका कथन क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यदि इस जीवको स्वस्थानमें ही असंयम प्राप्त कराते हैं तो अन्तर्मुहूर्त काल पहलेसे ही इसे संक्लेशकी प्राप्ति करानी होगी जिससे इतने कालसे सम्बन्ध रखनेवाली गुणश्रेणिका लाभ न मिल सकेगा, अतः स्वस्थानमें ही असंयम प्राप्त कराकर स्वामित्वका कथन न करके इसे देवोंमें उत्पन्न कराया गया है।

शंका—यहाँ शिष्यका कहना है कि पीछे जो क्रम कहा है इसके स्थानमें यदि उपशमश्रेणिकी अपेक्षा यह कथन किया जाय तो उदयसे झीनस्थितिवाले अधिक परमाणु प्राप्त हो सकते हैं और तब इन्हें उत्कृष्ट कहना ठीक होगा। खुलासा इस प्रकार है—गुणितकर्मांशवाला जो जीव अतिशीघ्र कषायोंका उपशम करनेके लिये उद्यत हुआ। फिर अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर गुणश्रेणिको करता हुआ अपूर्वकरणके कालसे अनिवृत्तिकरणके कालको विशेषाधिक करके अनिवृत्तिकरणके कालका संख्यात बहुभाग व्यतीत हो जाने पर तदनन्तर समयमें अन्तरकरणका प्रारम्भ करता किन्तु ऐसा न करके मरा और देव हो गया उसके वहाँ उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त

१. 'अंतरकरणं होदि त्ति जायदेवस्स तं मुहुत्तंतो। अट्ठण्हकसायाणं।'—कर्मप्र० उदय गा० १४।

गुणसेढिसीसयमुदिण्णं ताधे उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं। एदं च पुव्विल्लसव्व-गुणसेढिसीसयदव्वादो विसोहिपाहम्मेण असंखेज्जगुणं, तम्हा एत्थोवसामित्तेण होदव्वं। जइ वि एसो अंतोमुहुत्तकालमुक्कड्डिय गुणसेढिदव्वमुवरि संछुहदि परपयडीसु च अधापवत्तसंकमेण संकामेदि तो वि एदं विणासिज्जमाणसव्वदव्वमप्पहाणं गुणसेढिसीसयस्स असंखेज्जभागत्तादो त्ति णेदं घडदे, देवेसुववज्जिय अंतोमुहुत्तकाल-मच्छमाणस्स ओकड्डुक्कड्डणादीहि गुणसेढिसीसयस्स असंखेज्जाणं भागाणं परिक्खय-दंसणादो। ण चेदमसिद्धं, एदम्हादो चेव सुत्तादो तहाभावसाहणादो। ण च देवेसुप्पण्णपढमसमए चेव उवसामणगुणसेढिगोवुच्छावलंबणेण पयदसामित्तसमत्थणं पि समंजसं, तत्थतणगुणसेढिगोवुच्छदव्वस्स दंसणमोहक्खवयगुणसेढिसीसयादो असंखेज्ज-गुणत्तणिण्णयादो। सुत्तयाराहिप्पाएण पुण दंसणमोहक्खवयगुणसेढिसीसयस्सेव तत्तो असंखेज्जगुणत्तणिण्णयादो। अण्णहा तप्परिहारेणेत्थेव सामित्तविहाणाणुववत्तीदो। ण च दंसणमोहक्खवयगुणसेढिसीसएण सह तं घेत्तूण सामित्तावलंबणं पि घडमाणयं गलिदसेससरूवदंसणमोहक्खवयगुणसेढिसीसयस्स तेत्तियमेत्तकालावट्ठाणस्स अच्चंत-मसंभवादो। तम्हा सुत्तुत्तमेव सामित्तमविरुद्धं सिद्धं। अहवा णिव्वाघादेण सत्थाणे

बाद जब गुणश्रेणिशीर्ष उदयको प्राप्त होता है तब उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणु होते हैं। और यह द्रव्य विशुद्धिकी अधिकतासे संचित होता है, इसलिये पिछले सब गुणश्रेणि-शीर्षोंके द्रव्यसे असंख्यातगुणा है। इसलिये यहाँ अन्य कोई स्वामी न होकर उपशामक होना चाहिये। यद्यपि यह अन्तर्मुहूर्तकाल तक उत्कर्षण करके गुणश्रेणिके द्रव्यको ऊपर निक्षिप्त करता है और अधःप्रवृत्त संक्रमणके द्वारा पर प्रकृतियोंमें भी संक्रमित करता है तो भी इस प्रकारसे विनाशको प्राप्त होनेवाला यह सब द्रव्य अप्रधान है, क्योंकि यह गुणश्रेणिशीर्षके असंख्यातवें-भागप्रमाण है ?

समाधान—सो यह कहना घटित नहीं होता है, क्योंकि देवोंमें उत्पन्न होकर अन्त-र्मुहूर्तकालतक रहते हुए इसके अपकर्षण, उत्कर्षण आदिके द्वारा गुणश्रेणिशीर्षके असंख्यात बहुभागोंका क्षय देखा जाता है और यह बात असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि इसी सूत्रसे इसकी सिद्धि होती है। यदि कहा जाय कि देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही उपशमश्रेणिसम्बन्धी गोपुच्छोंके अवलम्बनसे प्रकृत स्वामित्वका समर्थन भी उचित है, क्योंकि यह बात निर्णीत-सी है कि वहाँ प्रथम समयमें जो गुणश्रेणिगोपुच्छका द्रव्य प्राप्त होता है वह दर्शनमोहनीयके क्षपणा-सम्बन्धी शीर्षसे असंख्यातगुणा होता है। सो ऐसा कहना भी उचित नहीं है; क्योंकि सूत्रकारके अभिप्रायसे तो दर्शनमोहनीयका क्षपणासम्बन्धी गुणश्रेणिशीर्ष ही उससे असंख्यातगुणा होता है यह बात निर्णीत है। यदि ऐसा न होता तो उपशमश्रेणिकी अपेक्षा स्वामित्वके कथनका त्याग करके सूत्रमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणाकी अपेक्षा ही स्वामित्वका विधान नहीं बन सकता था। यदि कहा जाय कि दर्शनमोहके क्षपकसम्बन्धी गुणश्रेणिशीर्षके साथ उपशमश्रेणिसम्बन्धी गुणश्रेणिको लेकर स्वामित्वका कथन बन जायगा सो भी बात नहीं है, क्योंकि दर्शनमोहक्षपक-सम्बन्धी गुणश्रेणिशीर्षका जो अंश गलकर शेष बचता है उसका चारित्रमोहनीयकी उपशामना होते हुए अन्तरकरणके कालके प्राप्त होनेके एक समय बादतक अवस्थित रहना अत्यन्त असम्भव है। इसलिये सूत्रमें जो स्वामित्व कहा है वही ठीक है यह बात सिद्ध हुई। अथवा निर्व्याघातसे

चेव सामित्तमेत्थ सुत्तयाराहिप्पेदं। ण च उवसमसेढीए तहा संभवो, विरोहादो। तदो सत्थाणे चेव असंजमं णेदूण सामित्तमेदं वत्तव्वमिदि।

यहाँ स्वस्थानमें ही स्वामित्व सूत्रकारको अभिप्रेत है। किन्तु उपशमश्रेणिमें इस प्रकारसे स्वामित्वकी प्राप्ति सम्भव नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता है, इसलिये स्वस्थानमें ही असंयमको प्राप्त कराके इस स्वामित्वका कथन करना चाहिये।

विशेषार्थ—यहां आठ कषायोंके उदयकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्म-परमाणुओंके स्वामीका निर्देश करते हुए सूत्रमें तो केवल इतना ही कहा है कि जो गुणितकर्मांश-वाला जीव संयमासंयम, संयम और दर्शनमोहक्षपकसम्बन्धी गुणश्रेणियोंको करके जब असंयम-भावको प्राप्त होता है तब उसके प्रथम समयमें इन तीनों गुणश्रेणियोंके शीर्षके उदय होने पर उत्कृष्ट स्वामित्व प्राप्त होता है। किन्तु इसका व्याख्यान करते हुए वीरसेन स्वामीने इतना विशेष बतलाया है कि ऐसे जीवको देवपर्यायमें ले जाकर वहां प्रथम समयमें गुणश्रेणिशीर्षके उदयको प्राप्त होने पर उत्कृष्ट स्वामित्व कहना चाहिये। उन्होंने इस व्यवस्थासे यह लाभ बतलाया है कि ऐसा करनेसे असंयमकी प्राप्तिके लिये अन्तर्मुहूर्तप्रमाण संक्लेशपूरण काल बच जाता है। जिससे अधिक गुणश्रेणिका लाभ मिल जाता है। अब यदि इसे देवपर्यायमें न ले जाकर स्वस्थानमें ही असंयमभावकी प्राप्ति कराई जाती है तो एक अन्तर्मुहूर्त पहलेसे गुणश्रेणिका कार्य वन्द हो जायगा जिससे लाभके स्थानमें हानि होगी, इसलिये असंयमभावकी प्राप्तिके समय इसे देवपर्यायमें ले जाना ही उचित है। यह वह व्याख्यान है जिसपर टीकामें अधिक जोर दिया गया है। इसके बाद एक दूसरे प्रकारसे उत्कृष्ट स्वामित्वकी उपस्थापना करके उसका खण्डन किया गया है। यह मत धवला सत्कर्ममहाधिकारके उदयप्रकरणमें और श्वेताम्बर कर्मप्रकृति व पंचसंग्रहमें पाया जाता है। इसका आशय यह है कि कोई एक गुणितकर्मांशवाला जीव उपशमश्रेणिपर चढ़ा और वहां अपूर्वकरण तथा अनिवृत्तिकरणमें अन्तरकरण क्रियाके पहले तक उसने गुणश्रेणि रचना की। इसके बाद मरकर वह देव हो गया। इसप्रकार इस देवके अन्तर्मुहूर्तमें जब गुणश्रेणिशीर्षका उदय होता है तब उत्कृष्ट स्वामित्व प्राप्त होता है। बात यह है कि दर्शनमोहक्षपकगुणश्रेणिसे उपशामकगुणश्रेणि असंख्यातगुणी बतलाई है, इसलिये इस कथनको पूर्वोक्त कथनसे अधिक बल प्राप्त हो जाता है। तथापि टीकामें यह कहकर इस मतको अस्वीकार किया गया है कि देव होने के बाद बीचका जो अन्तर्मुहूर्त काल है उस कालमें अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमण आदिके द्वारा गुणश्रेणिके बहुभाग द्रव्यका अभाव हो जाता है, इसलिये इस स्थलपर उत्कृष्ट स्वामित्व न बतलाकर चूर्णिसूत्रकारके अभिप्रायानुसार ही उत्कृष्ट स्वामित्व बतलाना ठीक है। वैसे तो इन दोनों मतोंपर विचार करनेसे यह प्रतीत होता है कि ये दोनों ही मत भिन्न-भिन्न दो परम्पराओंके द्योतक हैं, अतएव अपने-अपने स्थानमें इन दोनोंको ही प्रमाण मानना उचित है। यद्यपि इनमेंसे कोई एक मत सही होगा पर इस समय इसका निर्णय करना कठिन है। इसीप्रकार टीकामें यह मत भी दिया है कि उपशमश्रेणिमें पूर्वोक्त प्रकारसे मरकर जो देव होता है उसके प्रथम समयमें जो आठ कषायोंका द्रव्य उदयमें आता है वह पूर्वोक्त तीन गुण-श्रेणिशीर्षोंके द्रव्यसे अधिक होता है, इसलिये उत्कृष्ट स्वामित्व तीन गुणश्रेणिशीर्षोंके उदयमें न प्राप्त होकर उपशमश्रेणिमें मरकर देवपर्याय प्राप्त होनेके प्रथम समयमें प्राप्त होता पर टीकामें इस मतका भी यह कहकर निराकरण किया गया है कि सूत्रकारका यह अभिप्राय नहीं है, क्योंकि सूत्रकार तीन गुणश्रेणिशीर्षोंके द्रव्यको इससे अधिक मानते हैं। तभी तो उन्होंने तीन गुणश्रेणि-शीर्षोंसे उदयमें उत्कृष्ट स्वामित्वका विधान किया है। इसके साथ ही साथ प्रसंगसे इन दो

* कोहसंजलणस्स उक्कस्सयमोकड्डणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स ?

§ ५०७. सुगमं ।

* गुणिदकम्मंसियस्स कोधं खवेंतस्स चरिमट्ठिदिखंडयचरिमसमए असंछुहमाणयस्स उक्कस्सयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं ।

§ ५०८. एत्थ चरिमट्ठिदिखंडयचरिमसमयअसंछुहमाणयस्से त्ति वुत्ते गुणिदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण सव्वलहुं कसायक्खवणाए अब्भुट्ठिदस्स कोहपढमट्ठिदिं गुणसेढिआयारेणावट्ठिदं समयाहियोदयावलियवज्जं सव्वमधट्ठिदीए गालिय कोहवेदगचरिमसमए से काले माणवेदओ होहदि त्ति कोहचरिमट्ठिदिकंडयचरिमसमयअसंछोहयभावेणावट्ठिदस्स आवलियपइट्ठगुणसेढिगोवुच्छाओ गुणसेढिसीसएण सह

आपत्तियोंका और निराकरण करके टीकामें प्रकारान्तरसे सूत्रकारके अभिप्रायकी पुष्टि की गई है। प्रथम आपत्ति तो यह है कि पूर्वोक्त तीन गुणश्रेणिशीर्षोंमें अनन्तानुबन्धीविसंयोजनासम्बन्धी गुणश्रेणिशीर्षको मिलाकर इन चारोंके उदयमें उत्कृष्ट स्वामित्व कहना अधिक उपयुक्त होता। पर यह कथन इसलिये नहीं बनता कि अनन्तानुबन्धीविसंयोजनागुणश्रेणिका काल इतना बड़ा नहीं है कि उसका सद्भाव दर्शनमोहक्षपणाके बाद तक रहा आवे, इसलिये तो पहली आपत्तिका निराकरण हो जाता है। तथा दूसरी आपत्ति यह है कि दर्शनमोहक्षपणासम्बन्धी गुणश्रेणिको उपशमश्रेणिसम्बन्धीगुणश्रेणिके साथ मिलाकर उत्कृष्ट स्वामित्व क्यों नहीं कहा ? इसका भी यही कहकर निराकरण किया गया है कि दर्शनमोहक्षपणासम्बन्धी गुणश्रेणि उपशमश्रेणिसम्बन्धी गुणश्रेणिके उक्त काल तक रह नहीं सकती, अतः यह कथन भी नहीं बनता। अन्तमें प्रकारान्तरसे जो सूत्रकारके अभिप्रायका समर्थन किया है उससे ऐसा ज्ञात होता है कि सूत्रकारको स्वस्थानमें ही उत्कृष्ट स्वामित्व इष्ट रहा है। यदि उन्हें देवपर्यायमें ले जाकर स्वामित्वका कथन करना इष्ट होता तो वे सूत्रमें इसका स्पष्ट उल्लेख करते।

* क्रोधसंज्वलनके अपकर्षण आदि तीनोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी कौन है ?

§ ५०७. यह सूत्र सुगम है।

* जो गुणित कर्मांशवाला जीव क्रोधका क्षय कर रहा है। पर ऐसा करते हुए जिसने अन्तिम स्थितिकाण्डकके अन्तिम समयमें पहुंचकर भी अभी उसका पतन नहीं किया है वह उक्त तीनोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी है।

§ ५०८. यहां 'अन्तिम स्थितिकाण्डकके अन्तिम समयमें जिसने उसका पतन किया है उसके ऐसा कथन करनेसे यह अभिप्राय लेना चाहिये कि गुणितकर्मांशकी विधिसे आकर जो अतिशीघ्र कषायकी क्षपणाके लिये उद्यत हुआ है और ऐसा करते हुए एक समय अधिक एक आवलिके सिवा क्रोधकी गुणश्रेणिरूपसे स्थित शेष सब प्रथम स्थितिको अधःस्थिति द्वारा गलाकर जो क्रोधवेदकके अन्तिम समयमें स्थित है उसके गुणश्रेणिशीर्षके साथ आवलिके भीतर प्रविष्ट हुई गुणश्रेणिगोपुच्छाओंके रहते हुए प्रकृत उत्कृष्ट स्वामित्व होता है। यह जीव अगले

वट्टमाणाओ घेत्तूण पयदुक्कस्ससामित्तं होदि त्ति घेत्तव्वं ।

§ ५०६. ण एत्थ गुणसेढिसीसयस्स बहिब्भावो त्ति पढमसमयमाणवेदयम्मि समयूणुच्छिट्ठावलियमेत्तट्ठिदीओ घेत्तूण सामित्तं दायव्वमिदि संकणिज्जं, उप्पायाणुच्छेयमस्सिदूण गुणसेढिसीसयस्स वि एत्थंतब्भावुवलंभादो । एवमेवं चेय घेत्तव्वं, अण्णहा तस्सेव उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं परूविस्समाणेणुत्तरसुत्तेण सह विरोहादो । अहवा दव्वट्ठियणयावलंबीभूदपुव्वगइणायावलंबणेण पढमसमयमाणवेदयस्सेव कोहचरिमट्ठिदिखंडयचरिमसमयअसंछोहयत्तं परूवेदव्वं । ण च एवं संते उवरिमसुत्तत्थो दुग्घडो, भयणवाईणमम्हाणं तत्थ अणुप्पायाणुच्छेदं पज्जवट्ठियणयणियमेण समवलंबिय घडावणादो । एदमत्थपदमुवरिमाणंतरसुत्तेसु वि जोजेयव्वं ।

समयमें मानवेदक होगा, इसलिये यह समय क्रोधके अन्तिम स्थितिकाण्डकका अन्तिम समय होनेसे अभी इसके अन्तिम स्थितिकाण्डकका पतन नहीं हुआ है ।

§ ५०९. यदि कोई यहां ऐसी आशंका करे कि यहां गुणश्रेणिशीर्ष बहिर्भूत है, इसलिये मानवेदकके प्रथम समयमें एक समय कम उच्छिष्टावलिप्रमाण स्थितियोंकी अपेक्षा स्वामित्वका विधान करना चाहिये सो उसकी ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि उत्पादानुच्छेदकी अपेक्षा गुणश्रेणिशीर्षका भी यहां अन्तर्भाव पाया जाता है । और यह अर्थ प्रकृतमें इसी रूपसे लेना चाहिये, अन्यथा आगे जो यह सूत्र आया है कि 'इसी जीवके उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणु होते हैं' सो इसके साथ विरोध प्राप्त होता है । अथवा द्रव्यार्थिक नयका आलम्बनभूत भूतपूर्वगति न्यायका सहारा लेकर प्रथम समयवर्ती मानवेदकके ही अपने अन्तिम समयवर्ती क्रोधके अन्तिम स्थितिकाण्डकका सद्भाव कहना चाहिये । यदि कहा जाय कि ऐसा मानने पर आगेके सूत्रका अर्थ घटित करना कठिन हो जायगा सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि हम लोग तो भजनावादी हैं, इसलिए पर्यायार्थिक नयके नियमानुसार अनुत्पादानुच्छेदका आलम्बन लेकर उक्त अर्थ घटित कर दिया जायगा । इस अर्थ पदको आगेके अन्तरवर्ती सूत्रोंमें भी घटित कर लेना चाहिये ।

विशेषार्थ—वस्तुस्थिति यह है कि जो गुणितकर्मांशवाला जीव क्षपणाके समय क्रोधवेदकके कालको बिताकर मानवेदकके कालमें स्थित है वह क्रोधसंज्वलनके अपकर्षण आदि तीनकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है । किन्तु यहां सूत्रमें यह स्वामित्व क्रोधवेदकके अन्तिम समयमें ही बतलाया गया है जिसे घटित करनेमें बड़ी कठिनाई जाती है । बल्कि एक शंकाकारने तो इस सूत्र प्रतिपादित विषयका प्रकारान्तरसे खण्डन ही कर दिया है । वह कहता है कि यहां गुणश्रेणिशीर्षकी तो चर्चा ही छोड़ देनी चाहिये । उत्कृष्ट स्वामित्वका जितना भी द्रव्य है उसमें इसका सद्भाव तो कथमपि नहीं किया जा सकता । हां मानवेदकके प्रथम समयमें जो एक समय कम उच्छिष्टावलिप्रमाण द्रव्य शेष रहता है उसकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्वामित्व कहना ठीक है । पर टीकाकारने इस विरोधको दो प्रकारसे शमन किया है । (१) प्रथम तो उन्होंने उत्पादानुच्छेदकी अपेक्षासे इस विरोधको शान्त किया है । उत्पादनानुच्छेद द्रव्यार्थिक नयको कहते हैं । यह सत्त्वावस्थामें ही विनाशको स्वीकार करता है । उदाहरणार्थ सूक्ष्मसाम्पराय नामक दसवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें सूक्ष्म लोभका उदय है पर वहां उसकी उदयव्युच्छित्ति बतलाई जाती है सो यह कथन उत्पादानुच्छेदकी अपेक्षासे जानना

❀ उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं पि तस्सेव ।

§ ५१०. एत्थ कोहसंजलणस्से त्ति अणुवट्टदे, तेणेवमहिसंबंधो कायव्वो— तस्सेव णयदयविसयीकयस्स पुव्विल्लसामियस्स कोहसंजलणसंबंधि उक्कस्सय- मुदयादो झीणट्ठिदियमिदि । सेसं पुव्वं व । णवरि उदिण्णमेदपदेसग्गमेयट्ठिदि- पडिवद्धमेत्थ सामित्तविसईकयं होइ ।

❀ एवं चेव माणसंजलणस्स । णवरि ट्ठिदिकंडयं चरिमसमयअसंछुह- माणयस्स तस्स चत्तारि वि उक्कस्सयाणि झीणट्ठिदियाणि ।

§ ५११. माणसंजलणस्स वि एवं चेव सामित्तं दायव्वं । णवरि माणट्ठिदि- कंडयं चरिमसमयअसंछुहमाणयस्से त्ति सणामपडिवद्धो आलावभेदो चेव णत्थि अण्णो त्ति समप्पणासुत्तमेयं ।

चाहिये । इसीप्रकार प्रकृतमें भी जब कि क्रोधवेदकके अन्तिम समयमें उत्कृष्ट स्वामित्व स्वीकार कर लिया तब गुणश्रेणिशीर्षका उत्कृष्ट स्वामित्वविषयक द्रव्यमें अन्तर्भाव माननेमें कोई आपत्ति नहीं है । इस कथनको इसी रूपमें माननेके लिये इसलिये भी जोर दिया है कि अगले सूत्रमें जो उदयकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणुओंका उत्कृष्ट स्वामित्व बतलाया है वह ऐसा माने बिना बन नहीं सकता । (२) दूसरे भूतपूर्व न्यायकी अपेक्षा मानवेदकके यह सब स्वीकार करके उक्त विरोधका शमन किया गया है । यद्यपि ऐसा करनेसे अगले सूत्रके साथ संगति बिठलानेमें कठिनाई जाती है पर अगले सूत्रका अर्थ अनुत्पादानुच्छेद अर्थात् पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे कर लेनेपर वह कठिनाई दूर हो जाती है । इसप्रकार विविध दृष्टियोंसे विचार करके जहां जो अर्थ संगत बैठे उसे घटित कर लेना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

*** उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्म परमाणुओंका स्वामी भी वही है ।**

§ ५१०. इस सूत्रमें 'कोहसंजलणस्स' इस पदकी अनुवृत्ति होती है, इसलिये इस सूत्रका ऐसा सम्बन्ध करना चाहिये कि जिसे पहले दो नयोंका विषय बतला आये हैं उसी पूर्वोक्त स्वामीके क्रोधसंज्वलनकी अपेक्षा उदयसे झीन स्थितिवाले उत्कृष्ट परमाणु होते हैं । शेष कथन पहलेके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि एक स्थितिगत जो कर्मपरमाणु उदयमें आ रहे हैं उनका ही यहां स्वामित्वसे सम्बन्ध है ।

विशेषार्थ—क्रोधवेदकके अन्तिम समयमें क्रोधके जिन कर्मपरमाणुओंका उदय हो रहा है उसमें गुणश्रेणिशीर्षका द्रव्य सम्मिलित है, अतः यहां उत्कृष्ट स्वामित्व कहा है, क्योंकि उदयगत कर्मपरमाणुओंकी यह संख्या अन्यत्र नहीं प्राप्त होती ।

*** इसी प्रकार मानसंज्वलनका कथन करना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि जिसने अपने अन्तिम समयमें मानस्थितिकाण्डकका पतन नहीं किया है वह चारोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी है ।**

§ ५११. मानसंज्वलनके स्वामित्वका भी इसीप्रकार अर्थात् क्रोधसंज्वलनके समान विधान करना चाहिये । किन्तु जिसने मानस्थितिकाण्डकके अन्तिम समयमें उसका पतन नहीं किया है इसप्रकार यहां क्रोधके स्थानमें मानका सम्बन्ध होनेसे कथनमें इतना भेद हो जाता है, इसके सिवा अन्य कोई भेद नहीं है । इसप्रकार यह समर्पणासूत्र है ।

❀ एवं चेव मायासंजलणस्स । णवरि मायाट्ठिदिकंडयं चरिमसमय-असंछुहमाणयस्स तस्स चत्तारि वि उक्कस्सयाणि झीणट्ठिदियाणि ।

§ ५१२. सुगमं ।

❀ लोहसंजलणस्स उक्कस्सयमोकड्डणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स ?

§ ५१३. सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

❀ गुणिदकम्मंसियस्स सव्वसंतकम्ममावलियं पविस्समाणयं पविट्ठं ताधे तस्स उक्कस्सयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं ।

§ ५१४. एत्थ गुणिदकम्मंसियणिद्देसो तव्विवरीयकम्मंसियणिवारणफलो । तं पि कुदो ? गुणिदकम्मंसियादो अण्णत्थ पदेससंचयस्स उक्कस्सभावाणुववत्तीदो ।

---

* इसीप्रकार मायासंज्वलनका कथन करना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि जिसने मायास्थितिकाण्डकके अन्तिम समयमें उसका पतन नहीं किया है वह चारोंकी ही अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट परमाणुओंका स्वामी है ।

§ ५१२. यह सूत्र सुगम है ।

विशेषार्थ—पहले जैसे क्रोधसंज्वलनके अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण और उदयकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंके स्वामीका कथन कर आये हैं वैसे ही मान-संज्वलन और माया संज्वलनकी अपेक्षा भी जानना चाहिये । यदि उक्त कथनसे इसमें कोई विशेषता है तो वह इतनी ही कि क्रोधसंज्वलनके वेदककालमें उस प्रकृतिकी अपेक्षासे कथन किया था किन्तु यहां मानसंज्वलन और मायासंज्वलनके वेदककालमें इनकी अपेक्षा कथन करना चाहिये ।

* लोभसंज्वलनके अपकर्षण आदि तीनोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी कौन है ?

§ ५१३. यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

* जिस गुणितकर्मांश जीवके सब सत्कर्म जब क्रमसे एक आवलिके भीतर प्रविष्ट हो जाते हैं तब वह अपकर्षण आदि तीनोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है ।

§ ५१४. यहाँ सूत्रमें 'गुणितकर्मांश' पदका निर्देश इससे विपरीत कर्मांशके निवारण करनेके लिये किया है ।

शंका—ऐसा करनेका क्या प्रयोजन है ?

समाधान—क्योंकि गुणितकर्मांशके सिवा अन्यत्र कर्मपरमाणुओंका उत्कृष्ट संचय नहीं हो सकता । बस यही एक प्रयोजन है जिस कारणसे इस सूत्रमें 'गुणितकर्मांश' पदका निर्देश किया है ।

तस्स सव्वलहुं खवणाए अब्भुट्ठिदस्स जाधे सव्वसंतकम्ममविवक्खिय थोवूणभाव- मावलियं पविस्समाणयं पविस्समाणयं कमेण पविट्ठं ताधे पयदुक्कस्ससामित्तं होइ। सव्वसंतकम्मवयणेणेदेण विणट्ठासेसदव्वमेदस्स असंखेज्जदिभागत्तेण अप्पहाणमिदि सूचिदं पविस्समाणयं पविट्ठमिदि एदेण अक्कमपवेसो पडिसिद्धो।

❀ उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स ?

§ ५१५. सुगमं।

❀ चरिमसमयसकसायखवगस्स।

§ ५१६. एत्थ चरिमसमयसकसाओ जो खवगो सुहुमसांपरायसण्णिदो तस्स पयदुक्कस्ससामित्तं होइ त्ति संबंधो कायव्वो। कुदो एदमुक्कस्सयं ? मोहणीय- सव्वदव्वस्स एत्थेव पुंजीभूदस्सुवलंभादो। एत्थ दव्वपमाणाणयणं जाणिय वत्तव्वं।

इस जीवके अतिशीघ्र क्षपणाके लिये उद्यत होनेपर जब सब सत्कर्म क्रमसे आवलिके भीतर प्रविष्ट हो जाता है तब प्रकृत उत्कृष्ट स्वामित्व होता है। यहाँ यद्यपि कुछ ऐसे कर्म बच जाते हैं जो आवलिके भीतर प्रविष्ट नहीं होते, किन्तु यहाँ उनकी विवक्षा नहीं की गई है। इस सूत्रमें जो 'सब सत्कर्म' यह वचन दिया है सो इससे यह सूचित किया है कि जो द्रव्य नष्ट हो गया है वह इसका असंख्यातवाँ भागप्रमाण होनेसे अप्रधान है। तथा सूत्रमें जो 'पविस्समाणयं पविट्ठं' यह वचन दिया है सो इससे अक्रमप्रवेशका निषेध कर दिया है। आशय यह है कि सब सत्कर्म क्रमसे ही आवलिके भीतर प्रविष्ट होता है।

विशेषार्थ—गुणितकर्मांशवाला जीव अतिशीघ्र क्षपणाके लिये उद्यत होकर जब क्रमसे सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें पहुँचकर लोभके सब कर्मपरमाणुओंको आवलिके भीतर प्रवेश करा देता है तब इसके उदयावलिके भीतर प्रविष्ट हुआ द्रव्य सबसे उत्कृष्ट होता है। किन्तु यह अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणके अयोग्य होता है। इसीसे इन तीनोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी इसे बतलाया है।

*** उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी कौन है।**

§ ५१५. यह सूत्र सरल है।

*** जो क्षपक सकषाय अवस्थाके अन्तिम समयमें स्थित है वह उदयसे झीन- स्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी है।**

§ ५१६. यहाँ पर जो क्षपक सकषाय अवस्थाके अन्तिम समयमें स्थित है और जिसे सूक्ष्मसांपरायसंयत कहते हैं उसके प्रकृत उत्कृष्ट स्वामित्व होता है ऐसा सम्बन्ध कर लेना चाहिये।

शंका—इसे ही उत्कृष्ट स्वामी क्यों कहा ?

समाधान—क्योंकि यहाँ पर मोहनीय कर्मका सब द्रव्य एकत्रित होकर पाया जाता है।

यहाँ पर इस उत्कृष्ट द्रव्यके लानेके क्रमको जानकर उसका कथन करना चाहिये।

विशेषार्थ—सूक्ष्मसाम्पराय संयतके अन्तिम गुणश्रेणिशीर्षका सब द्रव्य इस गुणस्थानके अन्तिम समयमें उदयमें देखा जाता है। इसमें अब तक निर्जीर्ण हुए द्रव्यको छोड़कर शेष सब चारित्रमोहनीयका द्रव्य आ जाता है, इसलिये इसे उत्कृष्ट कहा है। आशय

❀ इत्थिवेदस्स उक्कस्सयमोकड्डणादिचउण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स ?

§ ५१७. सुगममेदं सामित्तविसयं पुच्छासुत्तं। एवं पुच्छिदे तत्थ ताव तिण्हं झीणट्ठिदियाणमेयसामियाणं परूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ इत्थिवेदपूरिदकम्मंसियस्स आवलियचरिमसमयअसंछोहयस्स तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि उक्कस्सयाणि।

§ ५१८. गुणिदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तसगपूरणकालब्भंतरे इत्थिवेदं पूरेमाणाणमप्पविट्ठविहाणे कस्स सामित्तं होइ किमविसेसेण पूरिदकम्मंसियस्स तं होइ त्ति आसंकाणिरायरणट्ठं विसेसणमाह—'आवलियचरिमसमयअसंछोहयस्स'। चरिमसमय-दुचरिमसमयअसंछोहयादिकमेण हेट्ठदो ओयरिय आवलियचरिमसमयअसंछोहयभावेणावट्ठिदजीवस्से त्ति वुत्तं होइ। एत्थ समयूणावलियचरिमसमयअसंछोहयस्से त्ति वत्तव्वं, सवेददुचरिमसमए इत्थिवेदचरिमफालीए णिल्लेवाणुवलंभादो त्ति ? ण एस दोसो, अणुप्पायाणुच्छेदमस्सियूण चरिमसमय-

---

यह है कि संज्वलन लोभके उदयसे झीनस्थितिवाले इतने कर्मपरमाणु अन्यत्र नहीं पाये जाते, अतः सूक्ष्म लोभके अन्तिम समयमें विद्यमान जीव ही संज्वलन लोभके उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है।

*** स्त्रीवेदके अपकर्षणादि चारोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी कौन है ?**

§ ५१७. यह स्वामित्वविषयक पृच्छासूत्र सरल है। इस प्रकार पूछने पर उनमेंसे पहले एकस्वामिक तीन झीनस्थितिवालोंका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** जिसने गुणितकर्मांशकी विधिसे स्त्रीवेदको उसके कर्मपरमाणुओंसे भर दिया है और जो एक आवलिके अन्तिम समयमें उसका अपकर्षण आदि नहीं कर रहा है वह अपकर्षण आदि तीनोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी है।**

§ ५१८. गुणितकर्मांशकी विधिसे आकर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण अपने पूरण कालके भीतर स्त्रीवेदको पूरा करनेवाले जीवोंमें भेद किये बिना यह समझना कठिन है कि स्वामित्व किसको प्राप्त है ? क्या सामान्यसे गुणितकर्मांशवाले सभी जीवोंको यह स्वामित्व प्राप्त है ? इसप्रकार इस आशंकाके निराकरण करनेके लिये 'आवलियचरिमसमयअसंछोहयस्स' यह विशेषण कहा है। जो अन्तिम समयमें या उपान्त्य समयमें स्त्रीवेदके अपकर्षण आदिसे रहित है। तथा इसी क्रमसे पीछे जाकर जो एक आवलिके अन्तिम समयमें अपकर्षण आदि भावसे रहित है वह जीव स्वामी होता है यह उक्त कथनका तात्पय है।

शंका—यहां 'समयूणावलियचरिमसमयअसंछोहयस्स' ऐसा कहना चाहिये, क्योंकि सवेदभागके द्विचरम समयमें स्त्रीवेदकी अन्तिम फालिका अभाव नहीं पाया जाता ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अनुत्पादानुच्छेदकी अपेक्षा अन्तिम

सवेदस्सेव तहाभावोवयारादो । एसो अत्थो पुरिस-णवुंसयवेदसामित्तसुत्तेसु वि जोजेयव्वो, विसेसाभावादो। पुव्वविहाणेण गंतूण सव्वलहुं खवणाए अब्भुट्ठिय सोदएण इत्थिवेदं संछुहमाणयस्स विदियट्ठिदीए चरिमट्ठिदिखंडयपमाणेणावट्ठिदाए पढमट्ठिदीए च आवलियमेत्तीए गुणसेढिसरूवेणावसिट्ठाए तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि उक्कस्सयाणि होंति त्ति सुत्तत्थसंगहो।

§ ५१९. संपहि पुव्विल्लपुच्छासुत्तविसईकयमुक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदिय-सामित्तमुत्तरसुत्तेण भणइ—

❀ उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं चरिमसमयइत्थिवेदक्खवयस्स।

§ ५२०. तस्सेव समयूणावलियमेत्तट्ठिदीओ गालिय ट्ठिदस्स जाधे पढमट्ठिदीए चरिमणिसेओ उदिण्णो ताधे तस्स चरिमसमयइत्थिवेदक्खवयस्स उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियमिदि सुत्तत्थसंबंधो।

❀ पुरिसवेदस्स उक्कस्सयमोकड्डुणादिचदुण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स ?

§ ५२१. सुगमं।

समयवर्ती सवेदीके ही स्त्रीवेदकी अन्तिम फालिका अभाव उपचारसे मान लिया है। पुरुषवेद और नपुंसकवेदके स्वामित्वविषयक सूत्रोंका कथन करते समय भी इसी अर्थकी योजना कर लेनी चाहिये, क्योंकि इससे उनमें कोई विशेषता नहीं है।

जो कोई एक जीव पूर्वविधिसे आकर और अतिशीघ्र क्षपणाके लिये उद्यत होकर स्वोदयसे स्त्रीवेदका पतन कर रहा है उसके द्वितीय स्थितिमें अन्तिम स्थितिकाण्डकके शेष रहनेपर तथा प्रथम स्थितिमें एक आवलिप्रमाण गुणश्रेणिके अवस्थित रहनेपर तीनों ही झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणु उत्कृष्ट होते हैं यह इस सूत्रका अभिप्राय है।

§ ५१९. अब जिसका पिछले पृच्छासूत्रमें उल्लेख कर आये हैं ऐसे उदयसे झीनस्थिति-वाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंके स्वामित्वका कथन अगले सूत्रद्वारा करते हैं—

*** तथा स्त्रीवेदका क्षपक जीव अपने अन्तिम समयमें उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी है।**

§ ५२०. एक समय कम आवलिप्रमाण स्थितियोंको गलाकर स्थित हुए उसी जीवके जब प्रथम स्थितिका अन्तिम निषेक उदयको प्राप्त होता है तब अन्तिम समयवर्ती वह स्त्रीवेदी क्षपक जीव उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है यह इस सूत्रका अभिप्राय है।

*** पुरुषवेदके अपकर्षण आदि चारोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्म-परमाणुओंका स्वामी कौन है ?**

§ ५२१. यह सूत्र सुगम है।

❀ गुणिदकम्मंसियस्स पुरिसवेदं खवेमाणयस्स आवलियचरिमसमय-असंछोहयस्स तस्स उक्कस्सयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं।

§ ५२२. एत्थ गुणिदकम्मंसियवयणेण तिण्हं वेदाणं पूरिदकम्मंसियस्स गहणं कायव्वं, अण्णहा पुरिसवेदुक्कस्ससंचयाणुववत्तीदो। सेसं सुगमं।

❀ उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं चरिमसमयपुरिसवेदयस्स।

§ ५२३. तस्सेव पुरिसवेदोदएण खवगसेढिमारूढस्स अधट्ठिदीए गालिदपढम-ट्ठिदियस्स चरिमसमयपुरिसवेदयस्स पयदुक्कस्ससामित्तं होइ त्ति सुत्तत्थो।

❀ णवुंसयवेदयस्स उक्कस्सयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स ?

§ ५२४. सुगममेदमासंकासुत्तं।

❀ गुणिदकम्मंसियस्स णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स खवयस्स णवुंसयवेदआवलियचरिमसमयअसंछोहयस्स तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि उक्कस्सयाणि।

§ ५२५. एत्थ गुणिदकम्मंसियस्स पयदुक्कस्सझीणट्ठिदियाणि होंति त्ति

*** जो गुणितकर्मांशवाला जीव पुरुषवेदकी क्षपणा करता हुआ आवलिके चरम समयमें असंक्षोभक है वह अपकर्षण आदि तीनोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी है।**

§ ५२२. इस सूत्रमें जो गुणितकर्मांश यह वचन आया है सो इससे तीनों वेदोंके गुणित-कर्मांशवाले जीवका ग्रहण करना चाहिये। अन्यथा पुरुषवेदका उत्कृष्ट संचय नहीं बन सकता है। शेष कथन सुगम है।

*** तथा पुरुषवेदका क्षपक जीव अपने अन्तिम समयमें उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी है।**

§ ५२३. जो पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ा है और जिसने अधःस्थितिके द्वारा प्रथम स्थितिको गला दिया है उसके पुरुषवेदके उदयके अन्तिम समयमें प्रकृत उत्कृष्ट स्वामित्व होता है यह इस सूत्रका अर्थ है।

*** नपुंसकवेदके अपकर्षण आदि तीनोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी कौन है ?**

§ ५२४. यह आशंका सूत्र सरल है।

*** जो गुणितकर्मांशवाला जीव नपुंसकवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर आरोहण करके नपुंसकवेदका आवलिके चरम समयमें असंक्षोभक है वह अपकर्षण आदि तीनोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी है।**

§ ५२५. यहाँ गुणितकर्मांशवाले जीवके प्रकृत उत्कृष्ट झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणु होते हैं

संबंधो कायव्वो। किमविसेसेण ? नेत्याह–णवुंसयवेदेण उवट्ठिदखवयस्स पुणो वि तिस्सेव विसेसणमावलियचरिमसमयअसंछोहयस्से त्ति। जो आवलियमेत्तकालेण चरिमसमयअसंछोहओ होहिदि तस्स आवलियमेत्तगुणसेढिगोवुच्छाओ घेत्तूण सामित्तमेदं दट्ठव्वमिदि वुत्तं होइ।

❀ उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं तस्सेव चरिमसमयणवुंसयवेदक्खवयस्स।

§ ५२६. तस्सेव चरिमसमयणवुंसयवेदक्खवयभावेणावट्ठियस्स णवुंसयवेदसंबंधिपयदुक्कस्ससामित्तं होइ। सेसं सुगमं।

❀ छण्णोकसायाणमुक्कस्सियाणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि कस्स ?

§ ५२७. सुबोहमेदं पुच्छासुत्तं।

❀ गुणिदकम्मंसिएण खवएण जाधे अंतरं कीरमाणं कदं तेसिं चेव कम्मंसाणमुदयावलियाओ उदयवज्जाओ पुण्णाओ ताधे उक्कस्सयाणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि।

ऐसा सम्बन्ध कर लेना चाहिये। तो क्या यह स्वामित्व सामान्यसे सभी गुणितकर्मांशवाले जीवोंके होता है ? नहीं होता, बस यही बतलानेके लिये 'जो नपुंसकवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़ा है' यह कहा है। और फिर इसका भी विशेषण 'आवलियचरिमसमयअसंछोहयस्स' दिया है। जो एक आवलिप्रमाण कालके द्वारा अन्तिम समयमें अपकर्षणादि नहीं करेगा उसके एक आवलिप्रमाण गुणश्रेणिगोपुच्छाओंकी अपेक्षा यह स्वामित्व जानना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

*** तथा वही अन्तिम समयवर्ती नपुंसकवेदी क्षपक जीव उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी है।**

§ ५२६. जो अन्तिम समयमें नपुंसकवेदकी क्षपणा करता हुआ स्थित है उसीके नपुंसकवेदसम्बन्धी प्रकृत उत्कृष्ट स्वामित्व होता है। शेष कथन सुगम है।

*** छह नोकषायोंके अपकर्षण आदि तीनोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी कौन है ?**

§ ५२७. इस पृच्छासूत्रका अर्थ समझनेके लिये सरल है।

*** जो गुणितकर्मांशवाला क्षपक जीव अन्तरकरण करनेके बाद जब उन्हीं कर्मपरमाणुओंकी गुणश्रेणि द्वारा उदय समयके सिवा उदयावलिको भर देता है तब वह अपकर्षण आदि तीनोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी है।**

§ ५२८. एत्थेवं सुत्तत्थसंबंधो कायव्वो—गुणिदकम्मंसियलक्खणेणागदखवगेण जाधे छण्णोकसायाणमंतरं कमेण कीरमाणमंतोमुहुत्तेण कदं। तेसिं चेव कम्मंसाणमुदयावलियाओ उदयवज्जाओ गुणसेढिगोवुच्छाहि पुण्णाओ अवसिट्ठाओ ताधे तत्तियमेत्तगुणसेढिगोवुच्छाओ घेत्तूण तस्स जीवस्स उक्कस्सयाणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि होंति त्ति। किमट्ठमेत्थ उदयसमयवज्जिदो, ण; उदयाभावेण परपयडीसु थिवुक्केण तस्स सकंतिदंसणादो।

❀ **तेसिं चेव उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स ?**

§ ५२९. सुगमं।

❀ **गुणिदकम्मंसियस्स खवयस्स चरिमसमयअपुव्वकरणे वट्टमाणयस्स।**

§ ५३०. एत्थ गुणिदकम्मंसियणिद्देसो तव्विवरीयकम्मंसियपडिसेहफलो। खवयणिद्देसो उवसामयणिरायरणट्ठो। तं पि कुदो ? तव्विसोहीदो अणंतगुणक्खवय-

§ ५२८. यहां इस सूत्रका इस प्रकार अर्थ घटित करना चाहिये कि कोई एक जीव गुणितकर्मांशकी विधिसे आकर क्षपक हुआ फिर जब वह क्रमसे अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर छह नोकषायोंका अन्तर कर देता है और जब उनके उन्हीं कर्मोंकी गुणश्रेणिगोपुच्छाओंके द्वारा परिपूर्ण हुई उदय समयके सिवा उदयावलिप्रमाण गोपुच्छाएँ शेष रह जाती हैं तब वह उतनी गुणश्रेणिगोपुच्छाओंका आश्रय लेकर अपकर्षण आदि तीनोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है।

शंका—यहाँ उदय समयको क्यों छोड़ दिया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यहाँ छह नोकषायोंका उदय नहीं होनेसे उसका स्तिवुक संक्रमणके द्वारा पर प्रकृतियोंमें संक्रमण देखा जाता है।

विशेषार्थ—छह नोकषायोंका उदय यथासम्भव आठवें गुणस्थान तक ही होता है, अतः क्षपकके नौवें गुणस्थानमें उदय समयके सिवा उदयावलिप्रमाण गुणश्रेणिगोपुच्छाओंका आश्रय लेकर यहाँ उत्कृष्ट स्वामित्व कहा है।

* **उन्हीं छह नोकषायोंके उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी कौन है ?**

§ ५२९. यह सूत्र सुगम है।

* **जो गुणितकर्मांश क्षपक जीव अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें विद्यमान है वह छह नोकषायोंके उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओंका स्वामी है।**

§ ५३०. इस सूत्रमें गुणितकर्मांश पदका निर्देश इससे विपरीत क्षपितकर्मांश जीवका निषेध करनेके लिये किया है। तथा क्षपक पदका निर्देश उपशामक जीवका निवारण करनेके लिये किया है।

शंका—ऐसा क्यों किया ?

विसोहीए बहुअस्स गुणसेढिदव्वस्स संगहट्ठं। दुचरिमसमयादिहेट्ठिमापुव्वकरण-णिवारणफलो चरिमसमयअपुव्वकरणणिद्देसो। तस्स पयदुक्कस्ससामित्तं होइ। तत्तो उवरि बहुदव्वावूरिदगुणसेढिणिसेए उदिण्णे सामित्तं किण्ण दिण्णं? ण, तत्थेवेदेसिमुदय-वोच्छेदेण उवरि दादुमसत्तीदो। उवसमसेढीए अणियट्टिउवसामओ से काले अंतरं काहिदि त्ति मदो देवो जादो तस्स अंतोमुहुत्तुववण्णल्लयस्स जाधे अपच्छिमं गुणसेढि-सीसयमुदयमागयं ताधे छण्हमेदेसिं कम्मंसाणं पयदुक्कस्ससामित्तं दायव्वमिदि णासंकणिज्जं, तत्थतणविसोहीदो अणंतगुणउवसंतकसायुक्कस्सविसोहिं पेक्खियूण सव्व-जहण्णियाए वि अपुव्वकरणक्खवयविसोहीए अणंतगुणत्तुवलंभादो। एत्थेव विसेसंतर-पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं—

* णवरि हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं जइ कीरइ भय-दुगुंछाणमवेदगो

समाधान—क्योंकि उपशामककी विशुद्धिसे क्षपककी विशुद्धि अनन्तगुणी होती है जिससे गुणश्रेणि द्रव्यका अधिक संचय होता है। यही कारण है कि यहाँ उपशामक पदका निर्देश न करके क्षपक पदका निर्देश किया है।

यहाँ अपूर्वकरणके उपान्त्य समय आदि पिछले समयोंका निषेध करनेके लिये 'चरिम-समयअपुव्वकरण' पदका निर्देश किया है, क्योंकि प्रकृत विषयका उत्कृष्ट स्वामित्व इसीके होता है।

शंका—अपूर्वकरणके अन्तिम समयसे आगे अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें जिसमें बहुत द्रव्यका संचय है ऐसे गुणश्रेणिनिषेकका उदय होता है, अतः इस उत्कृष्ट स्वामित्वका विधान वहाँ जाकर करना चाहिये था?

समाधान—नहीं, क्योंकि अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें ही इन प्रकृतियोंकी उदय-व्युच्छित्ति हो जाती है, अतः उत्कृष्ट स्वामित्वका विधान आगे नहीं किया जा सकता।

शंका—उपशमश्रेणिमें अनिवृत्तिकरण उपशामक तदनन्तर समयमें अन्तर करेगा किन्तु अन्तर न करके मरा और देव हो गया। उसके वहाँ उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त बाद जब अन्तिम गुणश्रेणिशीर्ष उदयमें आता है तब इन छह कर्मोंके प्रकृत उत्कृष्ट स्वामित्वका विधान करना चाहिये?

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि उपशामक अनिवृत्तिकरणमें अन्तरकरण करनेके पूर्व जितनी विशुद्धि होती है उससे उपशान्तकषायकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है और इससे भी क्षपक अपूर्वकरणकी सबसे जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी बतलाई है। इसीसे इन छह कर्मोंके प्रकृत उत्कृष्ट स्वामित्वका विधान अन्यत्र न करके क्षपक अपूर्व-करणके अन्तिम समयमें किया है।

अब इस विषयमें जो विशेष अन्तर है उसका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** किन्तु इतनी विशेषता है कि हास्य, रति, अरति या शोकका यदि कर रहा**

कायव्वो। जइ भयस्स तदो दुगुंछाए अवेदगो कायव्वो। अह दुगुंछाए तदो भयस्स अवेदगो कायव्वो।

§ ५३१. कुदो एवं कीरदे ? ण, अविवक्खियाणं णोकसायाणमवेदगत्ते त्थिवुक्कसंकममस्सियाणं विवक्खियपयडीणमसंखेज्जसमयपबद्धमेत्तगुणसेढिगोवुच्छदव्वस्स लाहदंसणादो।

§ ५३२. संपहि पयदस्स उवसंहरणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

*** उक्कस्सयं सामित्तं समत्तमोघेण।**

है तो उसे भय और जुगुप्साका अवेदक रखना चाहिये। यदि भयका कर रहा है तो उसे जुगुप्साका अवेदक रखना चाहिये और जुगुप्साका कर रहा है तो भयका अवेदक रखना चाहिये।

§ ५३१. **शंका**—इस व्यवस्थाके करनेका क्या कारण है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यदि यह जीव अविवक्षित नोकषायोंका अवेदक रहता है तो इसके विवक्षित प्रकृतियोंमें स्तिवुक संक्रमणके द्वारा असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण गुणश्रेणिगोपुच्छाके द्रव्यका लाभ देखा जाता है।

विशेषार्थ—यहाँ पर गुणितकर्मांश क्षपक जीवके अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें उत्कृष्ट स्वामित्व बतलाया है सो इसका कारण यह है कि छह नोकषायोंका उदयगत उत्कृष्ट द्रव्य वहीं पर प्राप्त होता है अन्यत्र नहीं। यद्यपि शंकाकार यह समझकर कि अपूर्वकरणसे अनिवृत्तिकरणमें अधिक द्रव्यका संचय होता है ऐसे जीवको अनिवृत्तिकरणमें ले गया है और वहाँ नोकषायोंका उदय न होनेसे उदयगत उत्कृष्ट द्रव्यके प्राप्त करनेके लिये उसे देवपर्यायमें उत्पन्न कराया है। किन्तु उपशमश्रेणिसे उपशान्तकषाय गुणस्थानमें और इससे क्षपक जीवके परिणामोंकी विशुद्धि अनन्तगुणी होती है, इसलिये गुणश्रेणिका उत्कृष्ट संचय क्षपक अपूर्वकरणमें ही होगा। यही कारण है कि उत्कृष्ट स्वामित्वका प्रतिपादन अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें किया है। तथापि ऐसा नियम है कि किसीके भय और जुगुप्सा दोनोंका उदय होता है। किसीके इनमेंसे किसी एकका उदय होता है और किसीके दोनोंका ही उदय नहीं होता। इसलिये यदि हास्य, रति, अरति या शोककी अपेक्षा उत्कृष्ट स्वामित्व कहना हो तो दोनोंके उदयके अभावमें कहना चाहिये। यदि भयकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्वामित्व कहना हो तो जुगुप्साके अभावमें कहना चाहिये और जुगुप्साकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्वामित्व कहना हो तो भयके अभावमें कहना चाहिये। ऐसा करनेसे लाभ यह है कि जब जिस प्रकृतिका उत्कृष्ट स्वामित्व प्राप्त किया जायगा तब उसे जिन प्रकृतियोंका उदय न होगा, स्तिवुक संक्रमणके द्वारा उनका द्रव्य भी मिल जायगा।

§ ५३२. अब प्रकृत विषयका उपसंहार करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

*** इस प्रकार ओघसे उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ।**

§ ५३३. सुगमं । एदेण सुत्तेण सूचिदो आदेसो गदि-इंदियादिचोद्दसमग्गणासु अणुमग्गियव्वो । एत्थ अणुक्कस्ससामित्तं किण्ण परूविदं इदि णासंका कायव्वा, उक्कस्सपरूवणादो चेव तस्स वि अणुत्तसिद्धीदो । उक्कस्सादो वदिरित्तमणुक्कस्समिदि ।

❀ एत्तो जहण्णयं सामित्तं वत्तइस्सामो ।

§ ५३४. एत्तो अणंतरं जहण्णयमोकड्डुक्कड्डणादिचदुण्हं झीणट्ठिदियाणं सामित्तमणुवत्तइस्सामो त्ति पइज्जासुत्तमेदं ।

❀ मिच्छत्तस्स जहण्णयमोकड्डणादो उक्कड्डणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं कस्स ?

§ ५३५. सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

❀ उवसामओ छसु आवलियासु सेसासु आसाणं गओ तस्स पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स जहण्णयमोकड्डणादो उक्कड्डणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं ।

---

§ ५३३. यह सूत्र सुगम है। इस सूत्रमें आये हुए ओघ पदसे आदेशका भी सूचन हो जाता है, इसलिये उसका गति और इन्द्रिय आदि चौदह मार्गणाओंमें विचार कर कथन करना चाहिये ।

शंका—यहाँ अनुत्कृष्ट स्वामित्वका कथन क्यों नहीं किया है ?

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन कर देनेसे ही अनुत्कृष्ट स्वामित्वका कथन हो जाता है, क्योंकि उत्कृष्टके सिवा अनुत्कृष्ट होता है ।

विशेषार्थ—चूर्णिसूत्रकारने केवल ओघसे अपकर्षणादि चारोंकी अपेक्षा झीनस्थितिक उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन किया है और इसीलिये प्रकरणके अन्तमें 'ओघसे उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ' यह सूत्र रचा है। निश्चयतः इस सूत्रमें ओघ पद देखकर ही टीकामें यह सूचना की गई है कि इसी प्रकार विचार कर आदेशकी अपेक्षा भी गति आदि मार्गणाओंमें इस उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन करना चाहिये।

*** अब इससे आगे जघन्य स्वामित्वको बतलाते हैं ।**

§ ५३४. अब इस उत्कृष्ट स्वामित्वके बाद अपकर्षणादि चारों झीनस्थितिवालोंके जघन्य स्वामित्वको बतलाते हैं इस प्रकार यह प्रतिज्ञासूत्र है ।

*** मिथ्यात्वके अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले जघन्य कर्मपरमाणुओंका स्वामी कौन है ।**

§ ५३५. यह पृच्छासूत्र सरल है ।

*** जो उपशमसम्यग्दृष्टि छह आवलियोंके शेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ उसके मिथ्यात्वको प्राप्त होनेपर प्रथम समयमें वह अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले जघन्य कमपरमाणुओंका स्वामी है ।**

§ ५३६. एत्थ उवसामगो त्ति वुत्ते दंसणमोहणीयउवसामओ घेत्तव्वो, मिच्छत्तेणाहियारादो। जइ एवमुवसमसम्माइट्ठि त्ति वत्तव्वं, अण्णहा उवसामणावावदावत्थाए चेव गहणप्पसंगादो ? ण एस दोसो, पाचओ भुंजइ' त्ति णिव्वावारावत्थाए वि किरियाणिमित्तववएसुवलंभादो। छसु आवलियासु सेसासु आसाणं गओ त्ति एदेण वा उवसंतदंसणमोहणीयावत्थस्स गहणं कायव्वं। ण च तदवत्थस्स आसाणगमणे संभवो, विरोहादो। किमासाणं णाम ? सम्मत्तविराहणं। तं पि किंपच्चइयं ? परिणामपच्चइयमिदि भणामो। ण च सो परिणामो णिरहेउओ, अणंताणुबंधितिव्वोदयहेउत्तादो।

§ ५३७. सम्मद्दंसणपरम्मुहीभावेण मिच्छत्ताहिमुहीभावो अणंताणुबंधितिव्वोदयजणियतिव्वयरसंकिलेसदूसिओ आसाणमिदि वुत्तं होइ। किमट्ठमेसो छसु आवलियासु सेसासु आसाणं णीदो, ण वुणो उवसमसम्माइट्ठी चेय मिच्छत्तं णिज्जइ

§ ५३६. यहाँ सूत्रमें जो 'उपशामक' पद कहा है सो उससे दर्शनमोहनीयका उपशामक लेना चाहिये, क्योंकि यहाँ मिथ्यात्वका अधिकार है।

शंका—यदि ऐसा है तो सूत्रमें 'उपशमसम्यग्दृष्टि' इस पदका निर्देश करना चाहिये, अन्यथा उपशामनारूप अवस्थाके ही ग्रहणका प्रसंग प्राप्त होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जैसे 'पाचक भोजन करता है' यहाँ पाचन क्रियाके अभावमें भी पाचक शब्दका प्रयोग किया गया है वैसे ही व्यापार रहित अवस्थामें भी क्रियानिमित्तक संज्ञाका व्यवहार देखा जाता है, अतः उपशमसम्यग्दृष्टिको भी उपशामक कहनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

अथवा सूत्रमें आये हुए 'छसु आवलियासु सेसासु आसाणं गओ' इस वचनसे दर्शनमोहनीय अवस्थाका उपशम करके उपशमसम्यग्दृष्टि हुए जीवका ग्रहण करना चाहिये। कारण कि उपशामकका सासादनमें जाना नहीं बन सकता, क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता है।

शंका—सासादनका क्या अर्थ है ?

समाधान—सम्यक्त्वकी विराधना करना यही सासादनका अर्थ है।

शंका—वह सासादन किस निमित्तसे होता है ?

समाधान—परिणामोंके निमित्तसे होता है ऐसा हम कहते हैं। परन्तु वह परिणाम बिना कारणके नहीं होता, क्योंकि यह अनन्तानुबन्धीके तीव्र उदयसे होता है।

§ ५३७. सम्यग्दर्शनसे विमुख होकर जो अनन्तानुबन्धीके तीव्र उदयसे उत्पन्न हुआ तीव्रतर संक्लेशरूप दूषित मिथ्यात्वके अनुकूल परिणाम होता है वह सासादन है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—यह जीव छह आवलिकाल शेष रहने पर सासादन गुणस्थानमें क्यों ले जाया गया है, सीधा उपशमसम्यग्दृष्टि ही मिथ्यात्वमें क्यों नहीं ले जाया गया ?

त्ति णासंकणिज्जं; तत्थतणसंकिलेसादो एत्थ संकिलेसबहुत्तुवलंभेण तहा करणादो। कुदो संकिलेसबहुत्तमिच्छिज्जदि त्ति चे ण, मिच्छत्तं गदपढमसमए ओकड्डि य उदयावलियब्भंतरे णिसिंचमाणदव्वस्स थोवयरीकरणट्टं तहाब्भुवगमादो। ण च संकिलेसकाले बहुदव्वोकड्डणासंभवो, विरोहादो।

§ ५३८. तदो एवं सुत्तत्थसंबंधो कायव्वो—जो उवसमसम्माइट्ठी उवसमसम्मत्तद्धाए छसु आवलियासु सेसासु परिणामपच्चएण आसाणं गदो, तदो तस्स अणंताणुबंधितिव्वोदयवसेण पडिसमयमणंतगुणाए संकिलेसवुड्ढीए वोलाविय सगद्धस्स पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स जहण्णयमोकड्डणादो झीणट्ठिदियमिदि। एसो पयदसामिओ खविद-गुणिदकम्मंसियाणं कदरो? अण्णदरो। कुदो? सुत्ते खविदेयरविसेसणादंसणादो। खविदकम्मंसियत्तं किण्ण इच्छिज्जदे? ण, एत्थ परिणामवसेण संकिलेसावूरणलक्खणेण उदयावलियब्भंतरे ओकड्डिय णिसिंचमाणदव्वस्स खविद-गुणिदकम्मंसिएसु समाणपरिणामेसु सरिसत्तदंसणेण खविदकम्मंसियगहणे फलविसेसाणुव-

---

समाधान—ऐसी आशंका करनी ठीक नहीं है, क्योंकि सम्यग्दृष्टिके प्राप्त होनेवाले संक्लेशसे सासादनमें बहुत अधिक संक्लेश पाया जाता है, इसलिये ऐसा किया है।

शंका—यहाँ अधिक संक्लेश किसलिये चाहा गया है?

समाधान—नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें अपकर्षण होकर उदयावलिके भीतर दिये जानेवाले द्रव्यके थोड़ा प्राप्त करनेके लिये ऐसा स्वीकार किया है। यदि कहा जाय कि संक्लेशाके समय बहुत द्रव्यका अपकर्षेषण हो जायगा सो बात नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता है।

§ ५३८. इसलिये इस सूत्रका यह अर्थ समझना चाहिये कि जो उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्वके कालमें छह आवलि कालके शेष रहने पर परिणामोंके निमित्तसे सासादनको प्राप्त हुआ। फिर वहाँ अनन्तानुबन्धीके तीव्रोदयसे प्रति समय अनन्तगुणी हुई संक्लेशाकी वृद्धिको बिताकर जब वह मिथ्यादृष्टि होता है तब मिथ्यादृष्टि होनेके प्रथम समयमें वह अपकर्षण आदि तीनसे झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है।

शंका—यह प्रकृत स्वामी क्षपितकर्मांश और गुणितकर्मांश इनमेंसे कौन-सा है?

सामाधान—दोनोंमेंसे कोई भी हो सकता है।

शंका—सो कैसे?

समाधान—क्योंकि सूत्रमें क्षपितकर्मांश या गुणितकर्मांश ऐसा कोई विशेषण नहीं दिखाई देता।

शंका—यहाँ क्षपितकर्मांश क्यों नहीं स्वीकार किया जाता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि संक्लेशको पूरा करनेवाले परिणामके निमित्तसे अपकर्षण करके उदयावलिके भीतर जो द्रव्य दिया जाता है वह एक समान परिणामवाले क्षपितकर्मांश और गुणितकर्मांश जीवोंके समान देखा जाता है, इसलिये यहाँ सूत्रमें क्षपितकर्मांश पदके ग्रहण

लंभादो। तदो जेण वा तेण वा लक्खणेणागंतूण उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय सगद्धाए छावलियावसेसियाए आसाणमासादिय संकिलेसं पूरेयूण मिच्छत्तं गदपढमसमए उदीरिदथोवयरकम्मपदेसे घेत्तूण तस्स पयदजहण्णसामित्तं होइ त्ति णिस्संसयं पडिवज्जेयव्वं।

§ ५३६. एत्थ पयददव्वविसए सिस्साणं णिण्णयजणणट्ठमंतरपूरणविहाणं वत्तइस्सामो। तत्थ ताव अंतरं सेसदीहत्तमुवसमसम्मत्तद्धादो संखेज्जगुणं होदि। कुदो एदं परिच्छिज्जदे? दंसणमोहणीयउवसामणाए परूविस्समाणपणुवीसपडिअप्पाबहुअ-दंडयादो। तदो पुव्वविहाणेणागदपढमसमयमिच्छाइट्ठी अंतरविदियट्ठिदिपढमणिसेय-मादिं कादूण जाव मिच्छत्तस्स अंतोकोडाकोडिमेत्तट्ठिदीए चरिमणिसेओ त्ति ताव एदेसिं पदेसग्गं पलिदोवमासंखे०भागमेत्तोकड्डुक्कड्डणभागहारेण खंडेयूण तत्थेयखंड-मंतरावूरणट्ठमोकड्डदि। पुणो एवमोकड्डिददव्वमसंखेज्जालोगमेत्तभागहारेण खंडिय तत्थेयखंडं घेत्तूण उदए बहुअं णिसिंचदि। विदियसमए विसेसहीणं णिसेयभागहारेण। एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जावुदयावलियचरिमसमयमेत्तद्धाणं गंतूण असंखेज्जलोग-

करनेमें विशेष लाभ नहीं है।

इसलिये क्षपितकर्मांश और गुणितकर्मांश इनमेंसे किसी भी एक विधिसे आकर और उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करके जब उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलि शेष रह जाय तब सासादन गुणस्थानको प्राप्त कर और संक्लेशको पूरा कर मिथ्यात्वमें जाय। इस प्रकार मिथ्यात्व को प्राप्त हुए इस जीवके उसके प्रथम समयमें उदीरणाको प्राप्त हुए थोड़ेसे कर्मपरमाणुओंकी अपेक्षा प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता है इस प्रकार यह बात निःशंसयरूपसे जाननी चाहिये।

§ ५३६. अब यहाँ प्रकृत द्रव्यके विषयमें शिष्योंको निर्णय हो जाय इसलिये अन्तरके पूरा करनेकी विधि बतलाते हैं—यहाँ उपशमसम्यक्त्वके रहते हुए जितना अन्तरकाल समाप्त हुआ है उससे जो अन्तरकाल शेष बचा रहता है वह उपशमसम्यक्त्वके कालसे संख्यातगुणा होता है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—दर्शनमोहनीयकी उपशामनाके सिलसिलेमें जो पचीस स्थानीय अल्पबहुत्व-दंडक कहा जायगा उससे यह जाना जाता है।

अतएव पूर्व विधिसे आकर जो मिथ्यादृष्टि हो गया है वह मिथ्यात्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें अन्तरकालके ऊपर दूसरी स्थितिमें स्थित प्रथम निषेकसे लेकर मिथ्यात्वकी अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिके अन्तिम निषेक तक जितनी स्थितियाँ हैं उन सबके कर्म-परमाणुओंमें पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारका भाग देकर वहाँ जो एक भाग प्राप्त होता है उसे अन्तरको पूरा करनेके लिये अपकर्षित करता है। फिर इस प्रकार अपकर्षित हुए द्रव्यमें असंख्यात लोकप्रमाण भागहारका भाग देकर जो एक भाग प्राप्त हो उसमेंसे बहुभाग उदयमें देता है। दूसरे समयमें विशेष हीन देता है। यह विशेषका प्रमाण निषेक-भागहारसे ले आना चाहिये। इस प्रकार उदयावलिके अन्तिम समय तक विशेष हीन विशेष हीन द्रव्य देना चाहिये। यहाँ उदय समयसे लेकर उदयावलिके अन्तिम समय तक असंख्यात-

पडिभागेण गहिददव्वं णिट्ठिदं ति। एदं च पयदसामित्तविसयीकयं जहण्णदव्वं। पुणो सेसअसंखेज्जभागे घेत्तूणुवरिमाणंतरट्ठिदीए असंखेज्जगुणं णिसिंचदि। को एत्थ गुणगारो? असंखेज्जा लोगा। तत्तो णिसेयभागहारेण दोगुणहाणिपमाणेण विसेसहीणं णिक्खिवदि जावंतरचरिमट्ठिदि त्ति। पुणो अणंतरउवरिमट्ठिदीए दिस्समाणपदेसग्गस्सुवरिं असंखेज्जगुणहीणं संछुहदि। तत्तो प्पहुडि पुव्वविहाणेण विसेसहीणं विसेसहीणं देदि जावप्पप्पणो गहिदपदेसमहिच्छावणावलियामेत्तेण अपत्तं ति।

§ ५४०. एत्थ विदियट्ठिदिपढमणिसेयम्मि दिज्जमाणदव्वस्स अंतरचरिमट्ठिदिणिमित्तपदेसग्गादो असंखेज्जगुणहीणत्तसाहणट्ठमिमा ताव परूवणा कीरदे। तं जहा-- अंतोकोडाकोडिमेत्तविदियट्ठिदिसव्वदव्वमप्पणो पढमणिसेयपमाणेण कीरमाणं दिवड्ढगुणहाणिमेत्तं होइ त्ति कट्टु दिवड्ढगुणहाणी आयामं विदियट्ठिदिपढमणिसेयविक्खंभं खेत्तमुड्ढायारेण ठविय पुणो ओकड्डुक्कड्डणभागहारमेत्तफालीओ उड्ढं फालिय तत्थेयफालिं घेत्तूण दक्खिणपासे ठविदे पढमसमयमिच्छादिट्ठीणं अंतरावूरणट्ठमोकड्डिददव्वं खेत्तायारेण पुव्वुत्तायामं पुव्विल्लविक्खंभादो असंखेज्जगुणहीणं विक्खंभं होऊण

लोकप्रतिभागसे प्राप्त हुआ एक भागप्रमाण द्रव्य समाप्त हो जाता है। यह प्रकृत स्वामित्वका विषयभूत जघन्य द्रव्य है। फिर शेष असंख्यात बहुभागप्रमाण द्रव्यमेंसे उपरिम अनन्तरवर्ती स्थितिमें असंख्यातगुणे द्रव्यका निक्षेप करता है।

शंका—यहाँ गुणकारका प्रमाण क्या है?

समाधान—असंख्यात लोक।

फिर इससे आगेकी स्थितिमें दो गुणहानिप्रमाण निषेकभागहारकी अपेक्षा विशेष हीन द्रव्यका निक्षेप करता है। इस प्रकार यह क्रम अन्तरकालके अन्तिम समय तक चालू रहता है। फिर इससे आगेकी उपरिम स्थितिमें दृश्यमान कर्मपरमाणुओंके ऊपर असंख्यातगुणे हीन द्रव्यका निक्षेप करता है। फिर इससे आगे अतिस्थापनावलिके प्राप्त होनेके पूर्व तक पूर्वविधिसे विशेष हीन विशेष हीन द्रव्यका निक्षेप करता है।

§ ५४०. अब यहाँ द्वितीय स्थितिके प्रथम निषेकमें दिया गया द्रव्य अन्तरकालकी अन्तिम स्थितिमें दिये गये द्रव्यसे जो असंख्यातगुणा हीन है सो इसकी सिद्धि करनेके लिये यह आगेकी प्ररूपणा करते हैं। जो इस प्रकार है—अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण दूसरी स्थितिमें स्थित सब द्रव्यके अपने प्रथम निषेकके बराबर हिस्से करने पर वे डेढ़ गुणहानिप्रमाण प्राप्त होते हैं ऐसा समझकर डेढ़ गुणहानिप्रमाण लम्बे और दूसरी स्थितिके प्रथम निषेकप्रमाण चौड़े क्षेत्रकी ऊर्ध्वाकाररूपसे स्थापना करो। फिर अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारप्रमाण फालियोंको ऊपरसे नीचे तक एक रेखामें फाड़ कर उनमेंसे एक फालिको ग्रहण करके उसे दक्षिण पार्श्वमें रखो। इस प्रकार रखी गई इस फालिका प्रमाण मिथ्यादृष्टियोंके प्रथम समयमें अन्तरको पूरा करनेके लिये जो द्रव्य अपकर्षित किया जाता है उतना होगा और क्षेत्रके आकार रूपसे देखने पर यह पहले जो क्षेत्रकी लम्बाई बतला आये हैं उतनी लम्बी तथा पहले बतलाये गये क्षेत्रकी चौड़ाईसे

चिट्ठइ। एत्थ असंखेज्जलोगपडिभागेण उदयावलियब्भंतरे णिसित्तदव्वमप्पहाणं काऊण सयलसमत्थाए एदिस्से फालीए आयामे अंतोमुहुत्तोवट्टिददिवड्ढगुणहाणीए खंडिदे अंतरदीहरा अणंतरपरूविदविक्खंभा संपहियभागहारमेत्ता खंडा लब्भंति। पुणो एदेसिमंतरे रूवूणोकड्डुक्कड्डणभागहारमेत्तखंडे घेत्तूण पुव्विल्लखेत्तस्स हेट्ठदो संधिय ट्ठविदे ट्ठिदिं पडि विदियट्ठिदिपढमणिसेयदिस्समाणपदेसग्गपमाणेण अंतरं णिरंतरमावूरिदं होइ। णवरि गोवुच्छविसेसादिउत्तरअंतोमुहुत्तगच्छसंकलणाखेत्तमवसिट्ठरूवूणोकड्डुक्कड्डणभागहारपरिहीणपुव्वभागहारमेत्तखंडदव्वपुंजादो घेत्तूण विवज्जासं काऊण अंतरब्भंतरे ठवेयव्वं। अण्णहा गोवुच्छायाराणुप्पत्तीदो। एवमंतरट्ठिदीसु पदिददव्वपमाणपरूवणा कदा।

§ ५४१. संपहि विदियट्ठिदिपढमणिसेए पडमाणदव्वपमाणाणुगमं कस्सामो। तं जहा—पुव्विल्लपुधट्ठविदखंडेहिंतो परूविदायामविक्खंभपमाणेहिंतो एयं खंडं उच्चाइय एदमुदयावलियबाहिरट्ठिदीसु सव्वासु वि विहज्जिय पदइ त्ति अंतरोवट्टिददिवड्ढगुणहाणीए रूवाहियाए विक्खंभमोवट्टिय वित्थारिदे एयखंडमस्सियूण णिरुद्धट्ठिदीए पदिदपदेसग्गमप्पणो मूलदव्वमोकड्डुक्कड्डणभागहारेण संपहियभागहारपदुप्पण्णेण खंडिय तत्थेयखंडपमाणं होइ। सेसखंडाणि वि अस्सियूण एत्तियमेत्तं चेय

असंख्यातगुणी हीन चौड़ी होकर स्थित होती है। यहाँ असंख्यात लोकप्रमाण प्रतिभागके द्वारा उदयावलिके भीतर निक्षिप्त किये गये द्रव्यकी प्रधानता न करके पूरी समर्थ इस फालिके आयाममें अन्तर्मुहूर्तसे भाजित डेढ़ गुणहानिका भाग देनेपर अन्तरकाल प्रमाण लम्बे और पूर्वोक्त विष्कम्भवाले साम्प्रतिक भागहारप्रमाण खण्ड प्राप्त होते हैं। फिर इन खण्डोंमेंसे एक कम अपकर्षण-उत्कर्षण-भागहारप्रमाण खण्डोंको ग्रहण कर पूर्वोक्त क्षेत्रके नीचे मिलाकर स्थापित करने पर प्रत्येक स्थितिके प्रति द्वितीय स्थितिके प्रथम निषेकमें दृश्यमान कर्मपरमाणुओंके प्रमाणके हिसाबसे अन्तर निरन्तर क्रमसे आपूरित हो जाता है। किन्तु गोपुच्छविशेषके प्रारम्भसे लेकर अन्त तक जो अन्तर्मुहूर्तप्रमाण गच्छ है उसके संकलनरूप क्षेत्रको एक कम अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारसे हीन पूर्वभागहारप्रमाण खण्डभूत द्रव्यपुंजोंमेंसे ग्रहण करके और विपरीत करके अन्तरके भीतर स्थापित कर देना चाहिये। अन्यथा गोपुच्छके आकारकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है। इस प्रकार अन्तरस्थितियोंमें जितना द्रव्य प्राप्त होता है उसके प्रमाणका कथन किया।

§ ५४१. अब द्वितीय स्थितिके प्रथम निषेकमें जो द्रव्य प्राप्त होता है उसके प्रमाणका विचार करते हैं जो इस प्रकार है—जिसके आयाम और विष्कम्भके प्रमाणका पहले कथन कर आये हैं ऐसे पृथक् स्थापित पूर्वोक्त खण्डमेंसे एक खण्डको निकाल ले। फिर यह खण्ड उदयावलिके बाहरकी सभी स्थितियोंमें विभक्त होकर प्राप्त होता है, इसलिये डेढ़ गुणहानिमें अन्तरकालका भाग देने पर जो लब्ध आवे एक अधिक उसका विष्कम्भमें भाग देकर प्राप्त हुई राशिको फैलाने पर एक खण्डकी अपेक्षा विवक्षित स्थितिमें जो कर्मपरमाणु प्राप्त होते हैं उनकी संख्या आती है जो अपने मूल द्रव्यमें सांप्रतिक भागहारसे गुणित अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारका भाग देने पर प्राप्त हुए एक खण्डप्रमाण होता है। शेष खण्डोंकी अपेक्षा भी इतना ही द्रव्य प्राप्त होता

दव्वं लहामो त्ति खंडगुणयारो पुव्वपरूविदपमाणो एदस्स गुणयारसरूवेण ठवेयव्वो। एवं कदे सव्वखंडाणि अस्सियूण अहियारट्ठिदीए पदिददव्वमागच्छदि। एत्थ जइ गुणगारभागहारा सरिसा होंति तो सयलेयखंडपडिभागियं पयदणिसेयदव्वपमाणं होज्ज ? ण च एवं, भागहारं पेक्खियूण गुणगारस्स ओकड्डुक्कड्डणभागहारमेत्तरूवेहि हीणत्तदंसणादो। तदो किंचूणमेयखंडपडिबद्धदव्वं पयदणिसेए दिज्जमाणं होइ। अंतरचरिमट्ठिदिणिसित्तदव्वे पुण एदेण पमाणेण कीरमाणे सादिरेयओकड्डुक्कड्डण-भागहारमेत्ताओ सलागाओ लब्भंति, पुव्विल्लदव्वस्सुवरि एत्तियमेत्तदव्वस्स सविसेसस्स पवेसुवलंभादो। खंडं पडि उव्वरिददव्वस्स अणंतरभागहारोवट्टिदसंपुण्णोकड्डुक्कड्डण-भागहारपदुप्पण्णसयलेयखंडपमाणत्तुवलंभादो च। एत्थ तेरासियं काऊण सिस्साणं सादिरेयओकड्डुक्कड्डणभागहारमेत्तगुणयारविसओ पबोहो कायव्वो। तम्हा अणंतर-चरिमट्ठिदिणिसित्तदव्वादो विदियट्ठिदिपढमणिसेयम्मि णिवदंतदव्वमसंखेज्जगुणहीण-मिदि सिद्धं। दिस्समाणपदेसग्गं पुण विसेसहीणं णिसेयभागहारपडिभागेण। तदो उदयावलियबाहिरे अंतरपढमट्ठिदिमादिं कादूण एया गोवुच्छा। जेणेवमंतरम्मि उदया-वलियवज्जम्मि बहुअं दव्वं णिक्खिवदि तेणंतरस्स हेट्ठदो उदयावलियब्भंतरे असंखेज्जगुणहीणा एयगोउच्छा जादा। तदो एवंविहउदयावलियब्भंतरणिसित्त-दव्वं घेत्तूण पयदजहण्णसामित्तमिदि सुसंबद्धं।

है, इसलिये पूर्वोक्त प्रमाण खण्डगुणकारको इसके गुणकाररूपसे स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार करने पर सब खण्डोंकी अपेक्षा विवक्षित स्थितिमें जितना द्रव्य प्राप्त होता है उसका प्रमाण आता है। यहाँ यदि गुणकार और भागहार समान होते तो पूरे एक खण्डका प्रतिभाग प्रकृत निषेकके द्रव्यप्रमाण प्राप्त होता। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि भागहारकी अपेक्षा गुणकार अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारके जितने अंक हैं उतना कम देखा जाता है। इसलिये कुछ कम एक खण्डसम्बन्धी द्रव्य प्रकृत निषेकमें दीयमान द्रव्य होता है। किन्तु अन्तरकालकी अन्तिम स्थितिमें जो द्रव्य निक्षिप्त किया गया है उसे इस प्रमाणसे करने पर साधिक अपकर्षण-उत्कर्षण-भागहार शलाकाएँ प्राप्त होती हैं, क्योंकि पूर्वकालीन द्रव्यके ऊपर साधिक इतने द्रव्यका प्रवेश पाया जाया है और एक खण्डके प्रति जो द्रव्य शेष बचता है वह, अन्तरभागहारसे पूरे अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारमें भाग देकर जो प्राप्त हो उससे पूरे एक खण्डको गुणा करने पर जो प्राप्त हो, उतना होता है। यहाँ पर त्रैराशिक करके शिष्योंको साधिक अपकर्षण-उत्कर्षणभागहार-प्रमाण गुणकारका ज्ञान कराना चाहिये। इसलिये अनन्तर अन्तिम स्थितिमें निक्षिप्त हुए द्रव्यसे द्वितीय स्थितिके प्रथम निषेकमें निक्षिप्त होनेवाला द्रव्य असंख्यातगुणा हीन होता है यह सिद्ध हुआ। किन्तु दृश्यमान कर्मपरमाणु निषेकभागहाररूप प्रतिभागकी अपेक्षा विशेष हीन होते हैं। इसलिये उदयावलिके बाहर अन्तरकालकी प्रथम स्थितिसे लेकर एक गोपुच्छा है। यतः इस प्रकार उदयावलिके सिवा अन्तरकालके भीतर बहुत द्रव्य निक्षिप्त होता है अतः अन्तरकालके नीचे उदयावलिके भीतर असंख्यातगुणी हीन एक गोपुच्छा प्राप्त होती है। इसलिये इस प्रकार उदयावलिके भीतर प्राप्त हुए द्रव्यकी अपेक्षा प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता है यह बात सुसम्बद्ध हैं।

विशेषार्थ—यहाँ अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणकी अपेक्षा मिथ्यात्वके झीनस्थिति-

§ ५४२. संपहि जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्से त्ति आसंकाए णिरायरणट्ठमिदमाह—

* उदयादो जहण्णयं झीणट्ठिदियं तस्सेव आवलियमिच्छादिट्ठिस्स ।

§ ५४३. तस्सेव उवसामयस्स उवसमसम्मत्तद्धाए छ आवलियाओ अत्थि त्ति आसाणं गंतूण संकिलेसेण वोलाविदसगद्धस्स मिच्छत्तमुवणमिय पढमसमयमिच्छादिट्ठिआदिकमेण आवलियमिच्छादिट्ठिभावेणावट्ठिदस्स जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं

वाले कर्मपरमाणुओंके जघन्य स्वामित्वका विचार किया जा रहा है। उदयावलिके भीतर स्थित कर्मपरमाणु इन तीनोंके अयोग्य हैं यह तो पहले ही बतला आये हैं। अब यहाँ यह देखना है कि उदयावलिके भीतर मिथ्यात्वके कमसे कम कर्मपरमाणु कहाँ प्राप्त होते हैं। उपशमसम्यक्त्वके कालसे अन्तरकाल संख्यातगुणा बड़ा होता है ऐसा नियम है, अतः ऐसा जीव जब उपशमसम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यात्व गुणस्थानमें आता है तो उसे वहाँ मिथ्यात्वका अपकर्षण करके अन्तरकालके भीतर फिरसे निषेक रचना करनी पड़ती है, इसलिये यहाँ उदयावलिमें पूर्व संचित द्रव्य न होनेसे वह कमती प्राप्त होता है। यद्यपि ऐसे जीवके संक्लेशरूप परिणाम तो होते हैं पर यह जीव उपशमसम्यक्त्वके कालको समाप्त करके मिथ्यात्वमें गया है इसलिये इसके संक्लेशरूप परिणामोंकी उत्कृष्टता नहीं प्राप्त हो सकती है और संक्लेशरूप परिणामोंकी जितनी न्यूनता रहेगी कर्मपरमाणुओंका उतना ही अधिक अपकर्षण होगा ऐसा नियम है, अतः इस प्रकार जो जीव सीधा उपशमसम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यात्वको प्राप्त होता है उसके भी अपकर्षण आदि तीनोंके अयोग्य मिथ्यात्वका जघन्य द्रव्य नहीं पाया जाता है। इसीसे चूर्णिसूत्रकारने इसे छह आवलि काल शेष रहने पर पहले सासादन गुणस्थानमें उत्पन्न कराया है और फिर मिथ्यात्वमें ले गये हैं। ऐसे जीवके संक्लेशकी अधिकता रहनेसे मिथ्यात्वके प्रथम समयमें बहुत कम मिथ्यात्वके कर्मपरमाणुओंका अपकर्षण होता है। ऐसा जीव गुणितकर्मांश भी हो सकता है और क्षपितकर्मांश भी, क्योंकि एक तो अन्तरकालके भीतर द्रव्य नहीं रहता, दूसरे इन दोनोंके उपशमसम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यात्वमें पहुँचने तक समान परिणाम रहते हैं, अतः इन दोनोंके ही द्वितीय स्थितिमें स्थित द्रव्यमें महान् अन्तर रहते हुए भी मिथ्यात्वके प्रथम समयमें समान द्रव्यका अपकर्षण होता है। इसलिये अपकर्षण आदि तीनोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणुओंका जघन्य स्वामित्व ऐसे ही प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीवके कहना चाहिये जो उपशमसम्यक्त्वसे च्युत होकर छह आवलि कालतक सासादन गुणस्थानमें रहा है और फिर वहाँसे मिथ्यात्वमें गया है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

§ ५४२. अब उदयसे झीनस्थितिवाले जघन्य कर्मपरमाणुओंका स्वामी कौन है इस आशंकाके निराकरण करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* वही मिथ्यादृष्टि जीव एक आवलि कालके अन्तमें उदयसे झीनस्थितिवाले जघन्य कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है।

§ ५४३. वही उपशामक उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलि कालके रहने पर सासादनमें जाकर और संक्लेशके साथ सासादनके कालको बिताकर जब मिथ्यात्वको प्राप्त होकर वहाँ प्रथम समयसे लेकर एक आवलि कालतक मिथ्यात्वरूप परिणामोंके साथ अवस्थित रहता है तब वह उदयसे झीनस्थितिवाले जघन्य कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है। मिथ्यादृष्टिके

होदि । मिच्छाइट्ठिपढमसमयप्पहुडि पडिसमयमणंतगुणं संकिलेसमावूरिय समयूणावलियमेत्तकालमहियारट्ठिदीए णिसिंचमाणदव्वस्स समयूणावलियमेत्तगोवुच्छविसेसेहिंतो असंखेज्जगुणहीणत्तादो पढमसमयमिच्छाइट्ठिपरिहारेणावलियमिच्छाइट्ठिम्मि सामित्तं दिण्णं, अण्णहा पढमसमयम्मि चेव सामित्तप्पसंगादो । कुदो एदं परिच्छिज्जदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो ।

❀ सम्मत्तस्स जहण्णयमोकड्डणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स ?

§ ५४४. सुगमं ।

❀ उवसमसम्मत्तपच्छायदस्स पढमसमयवेदयसम्माइट्ठिस्स ओकड्डणादो उक्कड्डणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं ।

§ ५४५. पढमसमयवेदयसम्माइट्ठिस्स पयदसामित्तं होइ त्ति सुत्तत्थसंबंधो । किमविसिट्ठस्स ? नेत्याह उवसमसम्मत्तपच्छायदस्स उवशमसम्यक्त्वं पश्चात्कृतं येन

प्रथम समयसे लेकर प्रत्येक समयमें अनन्तगुणे संक्लेशको प्राप्त करके एक समय कम आवलिप्रमाण कालतक अधिकृत स्थितिमें जो द्रव्य प्राप्त होता है वह एक समय कम आवलिप्रमाण-गोपुच्छाविशेषोंसे असंख्यातगुणा हीन होता है, इसलिये प्रथमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिको छोड़कर एक आवलि कालतक रहे मिथ्यादृष्टिके जघन्य स्वामित्व कहा है। अन्यथा प्रथम समयमें ही जघन्य स्वामित्वका प्रसंग प्राप्त हो जाता।

शंका—जिसे मिथ्यात्व प्राप्त हुए एक आवलि काल हुआ है उसे जघन्य स्वामित्व प्राप्त होता है यह किस प्रमाणसे जाना ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना।

विशेषार्थ—यद्यपि जो जीव उपशमसम्यक्त्वसे च्युत होकर और छह आवलि कालतक सासादन गुणस्थानमें रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है उसके पहले समयमें ही मिथ्यात्वका उदय हो जाता है परन्तु इस समय जो उदयगत द्रव्य है उससे एक आवलिकालके अन्तमें उदयमें आनेवाला द्रव्य न्यून होता है। इसीसे उदयसे झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणुओंका जघन्य स्वामित्व मिथ्यात्वको प्राप्त होनेके समयसे लेकर एक आवलिप्रमाण कालके व्यतीत होनेपर उसके अन्तिम समयमें कहा है।

*** सम्यक्त्वके अपकर्षण आदि तीनोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले जघन्य कर्मपरमाणुओंका स्वामी कौन है ?**

§ ५४४. यह सूत्र सुगम है।

*** जो उपशमसम्यक्त्वसे वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है उसके प्रथम समयमें वह अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणसे झीनस्थितिवाले जघन्य कर्मपरमाणुओंका स्वामी है।**

§ ५४५. प्रथम समयवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टिके प्रकृत स्वामित्व होता है यह इस सूत्रका अभिप्राय है। क्या सामान्यसे सभी प्रथम समयवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टियोंके जघन्य स्वामित्व होता है ? नहीं, बस इसी बातके बतलानेके लिये 'उपशामसम्मत्तपच्छायदस्स' यह पद कहा है।

स तथोच्यते। उवसमसम्मत्तं पच्छायरिय गहिदवेदयसम्मत्तस्स पढमसमए असंखेज्ज-लोयपडिभाएण उदयावलियब्भंतरे णिसित्तदव्वं घेत्तूण सम्मत्तस्स अप्पियसामित्तमिदि वुत्तं होइ। सेसपरूवणाए मिच्छत्तभंगो।

§ ५४६. संपहि जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्से त्ति आसंकाणिवारणट्ठ-मुत्तरसुत्तमोइण्णं—

❀ तस्सेव आवलियवेदयसम्माइट्ठिस्स जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं।

§ ५४७. तस्सेव पुव्विल्लसामियस्स आवलियमेत्तकालं वेदयसम्मत्ताणुपालणेण आवलियवेदयसम्माइट्ठिववएसमुव्वहंतस्स पयदजहण्णसामित्तं होइ। एत्थ पढमसमय-वेदयसम्माइट्ठिपरिहारेण उदयावलियचरिमसमए सामित्तविहाणे पुव्वं व कारणं परूवेयव्वं।

इसका अर्थ है जिसने उपशमसम्यक्त्वको पीछे कर दिया है वह जो उपशमसम्यक्त्वको त्याग कर वेदकसम्यग्दृष्टि हुआ है उसके प्रथम समयमें असंख्यात लोकप्रमाण प्रतिभागके अनुसार उदयावलिके भीतर प्राप्त हुए द्रव्यकी अपेक्षा सम्यक्त्वका विवक्षित स्वामित्व होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। शेष सब कथन मिथ्यात्वके समान है।

विशेषार्थ—जब उपशमसम्यग्दृष्टि उपशमसम्यक्त्वके कालको समाप्त करके वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त होता है तब वह अपने प्रथम समयमें ही सम्यक्त्व प्रकृतिका अपकर्षण करके उससे अन्तरकालको भर देता है। यद्यपि इस प्रकार अन्तरकालके भीतर अपकर्षित द्रव्य प्राप्त होता है तथापि यहाँ पूर्व संचित द्रव्य नहीं रहनेसे यह द्रव्य अति थोड़ा है, इसलिये ऐसे जीवको ही सम्यक्त्व प्रकृतिकी अपेक्षा अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणसे झीनस्थितिवाले जघन्य कर्मपरमाणुओंका स्वामी कहा है। यहाँ पर यह प्रश्न किया जा सकता है कि उपशमसम्यग्दृष्टि-को मिथ्यात्वमें ले जाकर जघन्य स्वामी क्यों नहीं कहा; क्योंकि वहाँ वेदक सम्यग्दृष्टिसे कम द्रव्यका अपकर्षण होता है। पर बात यह है कि जिस प्रकृतिका उदय होता है उदय समयसे लेकर अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप उसी प्रकृतिका होता है। किन्तु मिथ्यात्व गुणस्थानमें सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होता नहीं, इसलिये ऐसे जीवके मिथ्यात्वमें एक आवलि कालतक उदयावलिप्रमाण निषेक ही सम्भव नहीं, अतः जघन्य स्वामित्व मिथ्यात्वमें न बतला कर वेदक सम्यक्त्वके प्रथम समयमें बतलाया है।

§ ५४६. अब उदयसे झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणुओंका स्वामी कौन है इस आशंकाके निवारण करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ वही वेदक सम्यग्दृष्टि जीव एक आवलि कालके अन्तमें उदयसे झीन-स्थितिवाले जघन्य कर्मपरमाणुओंका स्वामी है।

§ ५४७. एक आवलिप्रमाण कालतक वेदकसम्यक्त्वका पालन करनेसे 'आवलिक वेदक-सम्यग्दृष्टि' इस संज्ञाको प्राप्त हुए उसी पूर्वोक्त जीवके प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता है। यहाँ प्रथम समयवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टिका परिहार करके जो उदयावलिके अन्तिम समयमें स्वामित्वका विधान किया है सो इसका पहलेके समान कारण कहना चाहिये।

विशेषार्थ—जैसे मिथ्यात्वका उदयकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले जघन्य कर्मपरमाणुओंका स्वामित्व उदयावलिके अन्तिम समयमें कहा है उसी प्रकार प्रकृतमें जानना चाहिये।

❀ एवं सम्मामिच्छत्तस्स ।

§ ५४८. सुगममेदमप्पणासुत्तं ।

❀ णवरि पढमसमयसम्मामिच्छाइट्ठिस्स आवलियसम्मामिच्छाइट्ठिस्स चेदि ।

§ ५४९. दोसु वि सामित्तसुत्तेसु आलावकओ विसेसो जाणियव्वो ।

❀ अट्ठकसाय-चउसंजलण-पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछाणं जहण्णय-मोकड्डणादो उक्कणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं कस्स ?

§ ५५०. सुगममेदं ।

❀ उवसंतकसाओ मदो देवो जादो तस्स पढमसमयदेवस्स जहण्णय-मोकड्डणादो उक्कड्डणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं ।

§ ५५१. जो उवसंतकसाओ वीदरागछदुमत्थो अण्णदरकम्मंसियलक्खणेणा-गंतूण सेढिमारूढो कालगदसमाणो मदो देवो जादो तस्स पढमसमयदेवभावेणावट्ठियस्स

*** इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वके विषयमें जानना चाहिये ।**

§ ५४८. यह अर्पणासूत्र सुगम है ।

*** किन्तु इतनी विशेषता है कि प्रथम समयवर्ती सम्यग्मिथ्यादृष्टिके और उदयावलिके अन्तिम समयवर्ती सम्यग्मिथ्यादृष्टिके जघन्य स्वामित्व कहना चाहिये ।**

§ ५४९. दोनों ही स्वामित्व सूत्रोंमें व्याख्यानकृत विशेषता प्रकरणसे जान लेनी चाहिये ।

विशेषार्थ—जैसे सम्यक्त्व प्रकृतिकी अपेक्षा जघन्य स्वामित्वका कथन करते समय जीवको उपशमसम्यक्त्वसे वेदकसम्यक्त्वमें ले जाकर उसके प्रथम समयमें अपकर्षणादि तीनकी अपेक्षा और उदयावलिके अन्तिम समयमें उदयकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले जघन्य कर्म-परमाणुओंका स्वामी कहा है वैसे ही उपशमसम्यक्त्वसे सम्यग्मिथ्यात्वमें ले जाकर उसके प्रथम समयमें अपकर्षणादि तीनकी अपेक्षा और उदयावलिके अन्तिम समयमें उदयकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले जघन्य कर्मपरमाणुओंका स्वामी कहना चाहिये यह उक्त सूत्रका अभिप्राय है ।

*** आठ कषाय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हस्य, रति, भय और जुगुप्साके अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले जघन्य कर्मपरमाणुओंका स्वामी कौन है ?**

§ ५५०. यह सूत्र सुगम है ।

*** जो उपशान्तकषाय जीव मरकर देव हो गया, प्रथम समयवर्ती वह देव उक्त प्रकृतियोंके अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले जघन्य कर्मपरमाणुओंका स्वामी है ।**

§ ५५१. क्षपितकर्मांश या गुणितकर्मांश इनमेंसे किसी भी एक विधिसे आकर जो जीव उपशमश्रेणिपर चढ़कर उपशान्तकषाय वीतरागछद्मस्थ हो गया और फिर मरकर देव हो गया

जहण्णयमोकड्डणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं होइ त्ति सुत्तत्थसंबंधो। कधं देवेसुप्पण्णपढमसमए विदियट्ठिदीए ट्ठिदपदेसग्गाणमंतरट्ठिदीसु असंताणमेक्कसराहेण उदयावलियप्पवेसो? ण, सव्वेसिं कारणाणं परिणामवसेण अक्कमेणुग्घादाणुवलंभादो। तदो उवसंतकसाएण देवेसुप्पण्णपढमसमए पुव्वुत्तविहाणेणंतरं पूरेमाणेण उदयावलियब्भंतरे असंखेज्जलोयपडिभाएण णिसित्तदव्वं घेत्तूण सुत्तुत्तासेसकम्माणं विवक्खियजहण्णसामित्तं होइ त्ति घेतव्वं। एत्थ केइ आइरिया एवं भणंति—जहा होउ णाम लोभसंजलणस्स उवसंतकसायपच्छायददेवम्मि देवपज्जायपढमसमए वट्टमाणयम्मि जहण्णसामित्तं, अण्णहाकाउमसत्तीदो। कुदो एवं चेव? हेट्ठा अण्णदरसंजलणपढमट्ठिदीए णिल्लेवणासंभवादो। तहा सेससंजलणाणं पि तत्थेव सामित्तं होउ णाम, अण्णहा देवेसुप्पण्णपढमसमए विवक्खियसंजलणाणमुवरि अविवक्खियसंजलणगुणसेढिदव्वस्स त्थिवुक्कसंकमप्पसंगेण जहण्णत्ताणुववत्तीदो। ण पुणो सेसकसायाणमेत्थ सामित्तेण होयव्वं, चढमाणअणियट्टिचरदेवम्मि तेसिमंतरं काऊण देवेसुप्पण्णपढमसमए वट्टमाणयम्मि जहण्णसामित्ते लाहदंसणादो। तं जहा—सो देवेसुप्पण्णपढमसमए जेसिमुदओ

वह प्रथम समयवर्ती देव अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले जघन्य कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है यह इस सूत्रका भावार्थ है।

शंका—जो कर्मपरमाणु अन्तरकालकी स्थितियोंमें न पाये जाकर द्वितीय स्थितिमें पाये जाते हैं उनका देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही एकदम उदयावलिमें कैसे प्रवेश हो जाता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहां परिणामोंकी परिवशतासे सभी कारणोंका युगपत् उद्घाटन पाया जाता है, इसलिये जो उपशान्तकषाय जीव देवोंमें उत्पन्न होता है वह वहां प्रथम समयमें ही पूर्वोक्त विधिसे अन्तरकालको कर्मनिषेकोंसे पूरा कर देता है। और इसप्रकार उदयावलिके भीतर असंख्यात लोकप्रमाण प्रतिभागके अनुसार जो द्रव्य निक्षिप्त होता है उसकी अपेक्षा सूत्रमें कहे गये सब कर्मोंका विवक्षित जघन्य स्वामित्व प्राप्त होता है, यह अर्थ यहां लेना चाहिये।

शंका—यहांपर कितने ही आचार्य इसप्रकार कथन करते हैं कि जो उपशान्तकषाय जीव मरकर देव हुआ और देव पर्यायके प्रथम समयमें विद्यमान है उसके लोभसंज्वलनका जघन्य स्वामित्व भले ही रहा आओ, क्योंकि इसको अन्य प्रकारसे घटित करना शक्य नहीं है। ऐसा ही क्यों है ऐसा पूछनेपर शंकाकार कहता है कि इससे नीचे संज्वलनकी सब प्रकृतियोंकी प्रथम स्थितिका अभाव असंभव है अतः वहां जघन्य स्वामित्व नहीं दिया जा सकता है। उसीप्रकार शेष संज्वलनोंका भी स्वामित्व वहींपर रहा आवे, अन्यथा देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें विवक्षित संज्वलनोंके ऊपर अविवक्षित संज्वलनोंके गुणश्रेणिद्रव्यका स्तिबुक संक्रमण प्राप्त होनेसे जघन्यपना नहीं बन सकता है। परन्तु शेष कषायोंका स्वामित्व यहांपर नहीं होना चाहिये, क्योंकि जो उपशमश्रेणिपर चढ़ते हुए अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें मरकर देवोंमें उत्पन्न होता है वह पहले अनिवृत्तिकरणमें उक्त प्रकृतियोंका अन्तर करके जब मरकर देवोंमें उत्पन्न हुआ तब वहां उत्पन्न होनेके प्रथम समयवर्ती उसके जघन्य स्वामित्वका कथन करनेमें लाभ देखा जाता

अत्थि तेसिमुदीरिज्जमाणदव्वमुवसंतकसायचरमदेवविसोहीदो अणंतगुणहीणविसोहिए पुव्विल्लसामिदव्वादो थोवयरमुदयादी संछुहदि, विसोहिपरतंताए उदीरणाए तत्तारतमाणुविहाणस्स णाइयत्तादो। ण एत्थ त्थिवुक्कसंकमस्स संभवो आसंकणिज्जो, जेसिमुदयो णत्थि तेसिमुदयावलियबाहिरे एयगोवुच्छायारेण णिसेयदंसणादो विवक्खियकसायस्स सजादियसंजलणपढमट्ठिदीए सह तत्थुप्पायणादो च। तम्हा अट्ठकसायाणं मज्झे जस्स जस्स जहण्णसामित्तमिच्छिज्जदि तस्स तस्स एवं देवेसुप्पण्णपढमसमए उदयं काऊण सामित्तं दायव्वं, अण्णहा जहण्णभावाणुववत्तीदो। तहा पुरिसवेद--हस्स--रदि--भय--दुगुंछाणमप्पप्पणो ट्ठाणे ओयरमाणअणियट्टिउवसामओ ओकड्डियूण उदए दाहिदि त्ति अदाऊण कालं करिय देवेसुप्पण्णपढमसमए ओकड्डणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियजहण्णसामित्तमत्थसंबंधेण दायव्वं? ण एत्थ वि कसायाणं त्थिवुक्कसंकमसंभावो आसंकियव्वो, कसायत्थिवुक्कसंकमस्स णोकसाएसु अणब्भुवगमादो। कुदो एवं चे? त्थिवुक्कसंकमस्स पाएण समाणजाइयपयडीसु चेव पडिबंधब्भुवगमादो। तम्हा णिरवज्जमेदमेत्थ सामित्तमिदि। एत्थ परिहारो उच्चदे—उवसमसेढीए कालं काऊण देवेसुप्पण्णपढमसमए जस्स वा तस्स वा विसोही

है। यथा—यह तो प्रसिद्ध बात है कि उपशान्तकषायचर देवसे इसकी विशुद्धि अनन्तगुणी हीन होती है, इसलिये उपशान्तकषायचर देव अपने प्रथम समयमें जिन प्रकृतियोंका उदय है उनकी उदीरणा करते हुए जितने द्रव्यको उदयादिमें निक्षिप्त करता है उससे यह जीव थोड़े द्रव्यको उदयादिमें निक्षिप्त करता है, क्योंकि उदीरणा विशुद्धिके अनुसार होती है, इसलिये यहां जो उदीरणाके होनेका इसप्रकारका विधान किया है सो वह न्याय्य है। यहां स्तिबुकसंक्रमणकी सम्भावनाविषयक आशंका करना भी उचित नहीं है, क्योंकि एक तो यहां जिनका उदय नहीं होता उनके केवल उदयावलिके बाहर ही एक गोपुच्छके आकाररूपसे निषेक देखे जाते हैं और दूसरे विवक्षित कषायका सजातीय संज्वलनकी प्रथम स्थितिके साथ वहीं उत्पाद होता है, इसलिये आठ कषायोंमेंसे जिस जिसका जघन्य स्वामित्व चाहा जाय उस उसका पूर्वोक्त प्रकारसे देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें उदय कराके स्वामित्वका विधान करना चाहिये, अन्यथा जघन्यपना नहीं प्राप्त हो सकता। तथा जो उपशामक उतरकर अनिवृत्तिकरणमें आया है वह पुरुषवेद, हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इनका अपने अपने स्थानमें अपकर्षण करके उदयमें देगा किन्तु न देकर मरा और देवोंमें उत्पन्न हो गया उसके वहां उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें अपकर्षणादि तीनोंके ही झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणुओंका जघन्य स्वामित्व प्रकरणवश देना चाहिये। किन्तु यहांपर भी कषायोंके स्तिबुक संक्रमणकी सम्भावनाकी आशंका करना उचित नहीं है, क्योंकि कषायोंका स्तिबुक संक्रमण नोकषायोंमें नहीं स्वीकार किया है। यदि कहा जाय कि ऐसा क्यों है सो इसका उत्तर यह है कि स्तिबुकसंक्रमणका सम्बन्ध प्रायः समान जातीय प्रकृतियोंमें ही स्वीकार किया है, इसलिये यहांपर जो उक्त प्रकारसे स्वामित्व बतलाया है वह निर्दोष है?

समाधान—अब यहां इसका परिहार करते हैं—जो भी कोई उपशमश्रेणिमें मरकर देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके वहां उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें विशुद्धि समान ही होती है इस

सरिसी चेव सेढीए अणंतगुणहीणाहियभावणिरवेक्खा होइ त्ति एदेणाहिप्पाएण पयट्टमेदं सुत्तं। जइ एवं, जत्थ वा तत्थ वा सामित्तमदाऊण केणाहिप्पाएण उवसंतकसायचरो चेय देवो अवलंबिओ? ण, अण्णत्थ सुत्तुत्तासेसपयडीणं सामित्तस्स दाउमसक्कियत्तेणेत्थेव सामित्तविहाणादो। एत्थ जस्स जस्स जहण्णसामित्तमिच्छिज्जइ तस्स तस्स उवसंतकसायपच्छायददेवपढमसमए उदयं काऊण गहेयव्वं, अण्णहा अणुदइल्लत्तेण उदयावलियब्भंतरे णिक्खेवासंभवादो। एत्थ चोदओ भणइ—ण एदं घडदे, देवेसुप्पण्णपढमसमए लोभं मोत्तूण सेसकसायाणमुदयासंभवादो। कुदो एस विसेसो लब्भए चे? परमगुरूवएसादो। तदो लोभकसायवदिरित्तकसायाणमेत्थ सामित्तेण ण होदव्वं, तत्थ तेसिमुदयाभावादो त्ति। एत्थ परिहारो वुच्चदे—सच्चमेवेदमेत्थ वि जइ तहाविहो अहिप्पाओ अवलंबिओ होज्ज, किंतु ण देवेसुप्पण्णपढमसमए एवंविहो णियमो अत्थि, अविसेसेण सव्वकसायाणमुदओ तत्थ ण विरुज्झइ त्ति एसो चुण्णिसुत्तयाराहिप्पाओ, अण्णहा एत्थ सामित्तविहाणाणुववत्तीए। तदो देवेसुप्पण्णपढमसमए सव्वकसायाणमुदओ संभवइ त्ति तत्थ जहण्णसामित्तविहाणमविरुद्धं सिद्धं।

अभिप्रायसे यह सूत्र प्रवृत्त हुआ है। किन्तु इतनी विशेषता है कि उपशमश्रेणिमें जो विशुद्धिका अनन्तगुणा हीनाधिकभाव देखा जाता है उसकी यहां अपेक्षा नहीं की गई है।

शंका—यदि ऐसा है तो जहां कहीं भी स्वामित्वका विधान न करके उपशान्तकषायचर देवकी अपेक्षा ही स्वामित्वका विधान किस अभिप्रायसे किया है?

समाधान—नहीं, क्योंकि अन्यत्र सूत्रमें कही गई सब प्रकृतियोंके स्वामित्वका विधान करना सम्भव नहीं था, इसलिये यहां ही स्वामित्वका विधान किया है। यहांपर जिस जिस प्रकृतिका जघन्य स्वामित्व लाना इष्ट हो उस उसका उपशान्तकषायसे मरकर देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें उदय कराकर स्वामित्वका ग्रहण करना चाहिये, अन्यथा उदय न होनेके कारण उदयावलिके भीतर अनुदयवाली प्रकृतियोंके निषेकोंका निक्षेप होना सम्भव नहीं है।

शंका—यहांपर शंकाकारका कहना है कि उक्त कथन नहीं बन सकता है, क्योंकि देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें लोभको छोड़कर शेष कषायोंका उदय नहीं पाया जाता है। यदि कहा जाय कि यह विशेषता कहांसे प्राप्त हुई तो इसका उत्तर यह है कि परम गुरुके उपदेशसे यह विशेषता प्राप्त हुई है, इसलिये लोभकषायके सिवा शेष कषायोंका स्वामित्व यहां देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें नहीं होना चाहिये, क्योंकि वहां उनका उदय नहीं पाया जाता?

समाधान—अब यहां इस शंकाका परिहार करते हैं—यह कहना तब सही होता जब यहां भी वैसा ही अभिप्राय विवक्षित होता। किन्तु प्रकृतमें चूर्णिसूत्रकारका यह अभिप्राय है कि देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें इसप्रकारका नियम नहीं पाया जाता और सामान्यसे सब कषायोंका उदय वहाँ विरोधको नहीं प्राप्त होता। यदि ऐसा न होता तो यहां स्वामित्वका विधान ही नहीं किया जा सकता था, यतः देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें सब कषायोंका उदय सम्भव है इसलिये वहां जो जघन्य स्वामित्वका विधान किया है सो वह बिना विरोधके सिद्ध है।

विशेषार्थ—यहां पर आठ कषाय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इन प्रकृतियोंके अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले कर्म-परमाणुओंके जघन्य स्वामित्वका विधान करते हुए यह बतलाया है कि जो उपशान्तकषाय छद्मस्थ जीव मरकर देवोंमें उत्पन्न होता है उसके प्रथम समयमें यह जघन्य स्वामित्व प्राप्त होता है। यहांपर शंकाकारने मुख्यतया तीन शंकाएं उठाई हैं जिनमेंसे पहली शंकाका भाव यह है कि उपशान्तकषायमें बारह कषायों और नोकषायोंकी प्रथम स्थिति तो पाई नहीं जाती, क्योंकि वहां अन्तरकालकी स्थितियोंमें निषेकोंका अभाव रहता है। अब जब यह जीव मरकर देवोंमें उत्पन्न होता है तब वहां इनकी प्रथम स्थिति एकसाथ कैसे उत्पन्न हो सकती है। इस शंकाका जो समाधान किया है उसका भाव यह है कि उपशान्तकषाय गुणस्थानमें जो करण उपशान्त रहते हैं वे देवके प्रथम समयमें अपना काम करने लगते हैं, इसलिये वहां द्वितीय स्थितिमें स्थित इन कर्मोंके कर्म-परमाणु अपकर्षित होकर प्रथम स्थितिमें आ जाते हैं। उसमें भी जिन प्रकृतियोंका प्रथम समयसे ही उदय होता है उनके कर्मपरमाणु उदय समयसे निक्षिप्त होते हैं और जिनका उदय प्रथम समयसे नहीं होता उनके कर्मपरमाणु उदयावलिके बाहरकी स्थितिमें निक्षिप्त होते हैं, इसलिये वहां प्रथम स्थितिमें विवक्षित प्रकृतियोंके कर्मपरमाणु सम्भव हो जानेसे जघन्य स्वामित्व भी प्राप्त किया जा सकता है। दूसरी शंका यह है कि यतः संज्वलन लोभका उपशम दसवें गुणस्थानके अन्तमें होता है अतः इसकी अपेक्षा जो उपशान्तकषाय छद्मस्थ जीव मरकर देवोंमें उत्पन्न होता है उसके प्रथम समयमें जघन्य स्वामित्व भले ही प्राप्त होओ, क्योंकि इसके पूर्व मरकर जो जीव देवोंमें उत्पन्न होता है उसके संज्वलन लोभकी उदय समयसे लेकर अन्तरकालके पूर्व तककी या अन्तरकालके बिना ही प्रथम स्थिति पूर्ववत् बनी रहती है अतः ऐसे जीवको देवोंमें उत्पन्न करानेपर संज्वलन लोभकी अपेक्षा जघन्य स्वामित्व नहीं प्राप्त किया जा सकता। तथा शेष तीन संज्वलनोंकी अपेक्षा भी जघन्य स्वामित्व पूर्वोक्त प्रकारसे भले ही प्राप्त हो जाओ, क्योंकि इनकी अपेक्षा भी जघन्य स्वामित्व अन्य प्रकारसे नहीं बन सकता है। उदाहरणार्थ एक सूक्ष्मसाम्पराय संयत जीव मरकर देव हुआ और उसके देव होनेके प्रथम समयमें मायासंज्वलनका उदय है तो इसमें लोभसज्वलनके निषेक स्तिवुकसंक्रमण द्वारा संक्रमित होंगे जिससे मायासंज्वलनकी अपेक्षा जघन्य स्वामित्व नहीं बन सकेगा। इसीप्रकार मान और क्रोधसंज्वलनके सम्बन्धमें जानना चाहिये। इसलिये यद्यपि संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रकारसे जघन्य स्वामित्व बन जाता है पर शेष कषायोंकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रकारसे जघन्य स्वामित्व नहीं बनता, क्योंकि यदि अनिवृत्तिकरण गुणस्थानका जीव उनका अन्तर करके मरता और देवोंमें उत्पन्न होता है तो उसके उपशान्तकषायचर देवकी अपेक्षा उदयावलिमें कम परमाणु पाये जाते हैं, इसलिये सूत्रमें उपशान्तकषायचर देवकी अपेक्षा आठ कषायोंका जघन्य स्वामित्व कहना ठीक नहीं। इसप्रकार पुरुषवेद, हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इन नोकषायोंका जघन्य स्वामित्व भी उपशान्तकषायचर देवकी अपेक्षा नहीं कहना चाहिये, क्योंकि जो जीव उपशम-श्रेणिसे उतरकर और अनिवृत्तिकरणमें पहुँचकर इनका अपकर्षण करनेके एक समय पहले मरकर देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें इनका अपकर्षण करता है उसके उपशान्तकषायचर देवकी अपेक्षा उदयावलिमें कम परमाणु प्राप्त होते हैं, इसलिये इनका जघन्य स्वामित्व भी अनिवृत्ति-चर देवके ही होता है उपशान्तकषायचर देवके नहीं। उपशान्तकषायचर देवकी अपेक्षा अनिवृत्तिचर देवके प्रथम समयमें अपकर्षणसे उदयावलिमें कम परमाणु संक्लेशकी अधिकतासे प्राप्त होते हैं, क्योंकि ऐसा नियम है कि जिसके संक्लेशकी अधिकता होती है उसके अपकर्षण कम परमाणुओं का होता है और जिसके विशुद्धिकी अधिकता होती है उसके अपकर्षण अधिक परमाणुओंका

*** तस्सेव आवलियउववण्णस्स जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं।**

§ ५५२. तस्सेव उवसंतकसायचरदेवस्स उप्पत्तिपढमसमयप्पहुडि आवलियमेत्तकालं वोलाविय समवट्ठियस्स जहण्णयमुदयादो होइ। कुदो पढमसमयउववण्णं परिहरिय एत्थ पयदजहण्णसामित्तं दिज्जइ त्ति णासंकणिज्जं, तत्थतणपढमणिसेयादो एदस्स विवक्खियणिसेयस्स समऊणावलियमेत्तगोवुच्छविसेसेहि हीणत्तदंसणादो। ण च एत्थ वि समऊणावलियमेत्तकालमसंखेज्जलोयपडिभाएणोदीरिददव्वं तत्थासंतमत्थि

होता है। यतः उपशान्तकषायचर देवके विशुद्धिकी अधिकता होती है अतः इसके अधिक परमाणुओंका अपकर्षण होगा। तथा अनिवृत्तिचर देवके संक्लेशकी अधिकता होती है अतः इसके कम परमाणुओंका अपकर्षण होगा, इसलिये आठ कषाय आदि उक्त प्रकृतियोंका स्वामित्व उपशान्तकषायचर देवको न देकर अनिवृत्तिचर देवको देना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है। टीकामें इस शंकाका समाधान करते हुए जो यह बतलाया गया है कि उपशमश्रेणिमें कहींसे भी मर कर जो देव होता है उसके एकसे परिणाम होते हैं इस विवक्षासे यह सूत्र प्रवृत्त हुआ है और यहाँ पर उपशमश्रेणिमें स्थान भेदसे जो हीनाधिक परिणाम पाये जाते हैं उनकी विवक्षा नहीं की गई है सो इस समाधानका आशय यह है कि चूर्णिसूत्रकारने यद्यपि उपशान्तचर देवके उक्त प्रकृतियोंका जघन्य स्वामित्व बतलाया है पर वह अनिवृत्तिचर देवके भी सम्यक् प्रकारसे बन जाता है फिर भी चूर्णिसूत्रकारने एक साथ सब प्रकृतियोंके स्वामित्वके प्रतिपादनके लिहाजसे वैसा किया है।

एक मत यह पाया जाता है कि नरकगतिमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें क्रोधका, तिर्यंचगतिमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें मायाका मनुष्यगतिमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें मानका और देवगतिमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें लोभका उदय रहता है। इस नियमके आधारसे शंकाकारका कहना है कि इस हिसाबसे देवगतिके प्रथम समयमें केवल लोभका जघन्य स्वामित्व प्राप्त हो सकता है अन्यका नहीं, क्योंकि जिस जीवने उपशमश्रेणिमें बारह कषायोंका अन्तर कर दिया है उसके देवोंमें उत्पन्न होनेपर प्रथम समयमें अपकर्षण होकर लोभका ही उदय समयसे निक्षेप होगा अन्यका नहीं। अतः जब वहाँ अन्य प्रकृतियोंका उदयावलिमें निक्षेप ही सम्भव नहीं तब उनका जघन्य स्वामित्व कैसे प्राप्त किया जा सकता है? इस शंकाका जो समाधान किया गया है उसका आशय यह है कि देव पर्यायके प्रथम समयमें केवल लोभके उदयका ही नियम नहीं है अतः वहाँ उक्त सभी कषायोंका जघन्य स्वामित्व बन जाता है।

*** उसी देवको जब उत्पन्न हुए एक आवलि काल हो जाता है तब वह उदयसे झीनस्थितिवाले कर्मपरमाणुओंका स्वामी है।**

§ ५५२. वही उपशान्तकषायचर देव जब उत्पत्तिकालसे लेकर एक आवलिकाल बिताकर स्थित होता है तब वह उदयसे झीनस्थितिवाले जघन्य कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है। यदि ऐसी आशंका की जाय कि प्रथम समयमें उत्पन्न हुए देवको छोड़कर यहाँ उत्पन्न होनेसे एक आवलि कालके अन्तमें प्रकृत जघन्य स्वामित्वका विधान क्यों किया जा रहा है सो ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि प्रथम समयवर्ती जीवके जो निषेक होता है उससे यह विवक्षित निषेक एक समयकम आवलिप्रमाण गोपुच्छविशेषोंसे हीन देखा जाता है। यदि कहा जाय कि एक समय कम आवलिप्रमाण काल तक असंख्यात लोकप्रमाण प्रतिभागके अनुसार उदीरणाको प्राप्त हुआ द्रव्य जो कि प्रथम समयमें नहीं है यहाँ पर पाया जाता है सो ऐसा

त्ति पच्चवट्ठेयं, एदम्हादो चेव सुत्तादो तत्तो एदस्स थोवभावसिद्धीदो ।

❀ अणंताणुबंधीणं जहण्णयमोकड्डुणादो उक्कड्डुणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं कस्स ?

§ ५५३. सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

❀ सुहुमणिगोएसु कम्मट्ठिदिमणुपालियूण संजमासंजमं संजमं च बहुसो लभिदाउओ चत्तारि वारे कसाए उवसामेयूण तदो अणंताणुबंधी विसंजोएऊण संजोइदो तदो वेछावट्ठिसागरोवमाणि सम्मत्तमणुपालेयूण तदो मिच्छत्तं गदो तस्स पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स जहण्णयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं ।

§ ५५४. खविदकम्मंसियपच्छायदभमिदवेछावट्ठिसागरोवमपढमसमयमिच्छा-

निश्चय करना ठीक नहीं है, क्यों इसी सूत्रसे प्रथम समयवर्ती द्रव्यकी अपेक्षा यह विवक्षित द्रव्य कम सिद्ध होता है ।

विशेषार्थ—यहाँ पर उपशान्तकषायचर देवके उत्पन्न होनेके समयसे लेकर एक आवलिकालके अन्तमें जघन्य स्वामित्व बतलाया है, देवपर्यायमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें क्यों नहीं बतलाया इसका उत्तर यह है कि उदय समयसे लेकर एक आवलिकाल तक निषेकोंकी जो रचना होती है वह उत्तरोत्तर चयहीन क्रमसे होती है अतः प्रथम समयमें जो द्रव्य प्राप्त होता है उससे आवलिके अन्तिम समयमें प्राप्त होनेवाला द्रव्य एक समय कम एक आवलिप्रमाण चयोंसे हीन होता है यही कारण है कि विवक्षित जघन्य स्वामित्व देव पर्यायमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें न देकर प्रथम समयसे लेकर एक आवलिप्रमाण कालके अन्तिम समयमें दिया है । यद्यपि यह आवलिप्रमाण कालका अन्तिम समय जब तक उदय समयको प्राप्त होता है तब तक इसमें प्रति समय उदीरणाको प्राप्त होनेवाले द्रव्यका संचय होता रहता है तो भी वह सब मिलकर उक्त सूत्रके अभिप्रायानुसार प्रथम समयवर्ती द्रव्यसे न्यून होता है, इसलिये विवक्षित जघन्य स्वामित्व प्रथम समयमें नहीं दिया है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

※ अनन्तानुबन्धियोंके अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणसे झीनस्थितिवाले जघन्य कर्मपरमाणुओंका स्वामी कौन है ?

§ ५५३. यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

※ कोई एक जीव है जो सूक्ष्मनिगोदियोंमें कर्मस्थितिप्रमाणकाल तक रहा तदनन्तर अनेक बार संयमासंयम और संयमको प्राप्त करके चार बार कषायोंका उपशम किया । फिर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके उससे संयुक्त हुआ । फिर दो छयासठ सागरप्रमाण कालतक सम्यक्त्वका पालन करके मिथ्यात्वमें गया । वह प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि अपकर्षण आदि तीनकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले जघन्य कर्मपरमाणुओंका स्वामी है ।

§ ५५४. जो क्षपित कर्मांशविधिसे आकर और दो छयासठ सागर काल तक भ्रमण

इट्ठिस्स पयदजहण्णसामित्तं होइ त्ति सुत्तत्थसंगहो । किमट्ठमेसो सुहुमणिगोदेसु कम्मट्ठिदिं हिंडाविदो ? ण, कम्मट्ठिदिमेत्तकालं तत्थावट्ठाणेण विणा जहण्णसंचयाणुववत्तीदो । अदो चेय संपुण्णा एसा सुहुमणिगोदेसु समाणेयव्वा । सुत्ते पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणियं कम्मट्ठिदिमच्छिदो त्ति अपरूवणादो । तत्थ य संसरमाणस्स वावारविसेसो छावासयपडिबद्धो पुव्वं परूविदो त्ति ण पुणो परूविज्जदि गंथगउरवभएण । तदो कम्मट्ठिदिबहिब्भूदपलिदोवमासंखेज्जदिभागमेत्तकालब्भंतरे संजमासंजमं संजमं च बहुसो लभिदाउओ । एत्थतण 'च' सद्देण अवुत्तसमुच्चयट्ठेण सम्मत्ताणंताणुबंधिविसंजोयणकंडयाणमंतब्भावो वत्तव्वो । बहुसो बहुवारं लभिदाउओ लद्धवंतओ । संजमासंजमादीणमसइं लंभो ण णिप्पओजणो, गुणसेढिणिज्जराए बहुदव्वगालणफलत्तादो । तत्थेव अवांतरवावारविसेसपरूवणट्ठमेदं वुत्तं । चत्तारि वारे कसाए उवसामियूण तदो अणंताणुबंधी विसंजोएऊण संजोइदो त्ति । बहुआ कसाउवसामणवारा किण्ण होंति ? ण, एयजीवस्स चत्तारि वारे मोत्तूण उवसमसेढिआरोहणासंभवादो । कसायुवसामणवाराणं व संजमासंजम संजम-सम्मत्त-अणंताणुबंधिविसंजोयण-

करके मिथ्यादृष्टि हुआ है उस मिथ्यादृष्टिके प्रथम समयमें जघन्य स्वामित्व होता है यह इस सूत्रका सार है ।

शंका—इसे कर्मस्थितिप्रमाण काल तक सूक्ष्मनिगोदियोंमें क्यों भ्रमाया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि कर्मस्थितिप्रमाण कालतक वहां रहे विना जघन्य संचय नहीं बन सकता है । और इसीलिये पूरी कर्मस्थितिप्रमाण कालको सूक्ष्मनिगोदियोंमें बिताना चाहिये, क्योंकि सूत्रमें पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालसे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कालतक रहा ऐसा सूचित भी नहीं किया है ।

कर्मस्थितिप्रमाण कालके भीतर परिभ्रमण करते हुए जो छह आवश्यकसम्बन्धी व्यापार विशेष होता है उसका पहले कथन कर आये हैं, इसलिये ग्रन्थके बढ़ जानेके भयसे उनका यहाँ पुनः कथन नहीं किया जाता है । तदनन्तर कर्मस्थितिके बाहर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके भीतर बहुत बार संयमासंयम और संयमको प्राप्त किया । यहाँ सूत्रमें जो 'च' शब्द है वह अनुक्त विषयका समुच्चय करनेके लिये आया है जिससे सम्यक्त्वके काण्डकोंके अन्तर्भावका और विसंयोजनासम्बन्धी काण्डकोंके अन्तर्भावका कथन कर लेना चाहिये । इस प्रकार इन सबको बहुत बार प्राप्त करता हुआ । इन सबका अनेक बार प्राप्त करना निष्प्रयोजन नहीं है, क्योंकि इसका फल गुणश्रेणिनिर्जराके द्वारा बहुत द्रव्यका गला देना है । या वहीं पर अवान्तर व्यापारविशेषका कथन करनेके लिये यह कहा है । फिर चार बार कषायोंका उपशम करके फिर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके उससे संयुक्त हुआ ।

शंका—कषायोंके उपशमानेके बार चारसे अधिक बहुत क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि एक जीव चार बार ही उपशमश्रेणि पर आरोहण कर सकता है, इससे और अधिक बार उपशमश्रेणि पर आरोहण करना सम्भव नहीं है ।

शंका—जैसे कषायोंके उपशमानेके बारोंका स्पष्ट निर्देश किया है वैसे ही संयमासंयम,

परियट्टणवाराणं एत्तियमेत्ता त्ति पमाणपरूवणा किण्ण कया ? ण, सव्वुक्कस्सा ण एत्थ होंति, किंतु तप्पाओग्गा चेवे त्ति जाणावणट्ठमेत्तियमेत्ता त्ति अपरूवणादो। कुदो सव्वुक्कस्सवाराणमसंभवो ? ण, तहा संते णिव्वाणगमणं मोत्तूण वेछावट्ठिसागरोवम-मेत्तकालं संसारे परिब्भमणाभावादो। ण चेसा सव्वा खविदकिरिया विसंजोइज्ज-माणाणमणंताणुबंधीणं णिरत्थिया, सेसकसायदव्वस्स थोवयरीकरणेण फलोवलंभादो। णेदं पयदाणुवजोगी, अणंताणुबंधी विसंजोएऊण पुणो वि अंतोमुहुत्तेण संजुज्जंतस्स अधापवत्तसंकमेण पडिछिज्जमाणसेसकसायदव्वाणमप्पदरीभूदाणमुवजोगित्तदंसणादो। एवमणंताणुबंधी विसंजोइय अंतोमुहुत्तसंजुत्तो अधापवत्तसंकमेण पडिछिज्जमाणसस-कसायदव्वाणमप्पदरीभूदाणमुवजोगित्तदंसणादो। एवमणंताणुबंधी विसंजोइय अंतोमुहुत्तसंजुत्तो अधापवत्तभागहारोवट्टिददिवड्ढगुणहाणिमेत्तेइंदियसमयपबद्धदव्वं सेसकसाएहिंतो पडिच्छिदं सगंतोभाविदअंतोमुहुत्तमेत्तणवकबंधं घेत्तूण तदो वेछावट्ठि-सागरोवमाणि सम्मत्तमणुपालियूण मिच्छत्तं गओ। किमट्ठमेत्तो सम्मत्तलंभेण वेछावट्ठि-

संयम, सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना इनके परिवर्तनवार इतने होते हैं इस प्रकार इनके प्रमाणका कथन क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यहाँ पर उन संयमासंयमादिके सर्वोत्कृष्ट बार नहीं होते, किन्तु तत्प्रायोग्य होते हैं इस प्रकार इस बातके जतानेके लिये इतने होते हैं यह कथन नहीं किया।

शंका—यहाँ सर्वोत्कृष्ट वार क्यों सम्भव नहीं हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यहाँ पर सर्वोत्कृष्ट बारोंके मान लेनेपर निर्वाण गमनके सिवा दो छयासठ सागर कालतक संसारमें परिभ्रमण करना नहीं बन सकता है, इसलिये यहाँ पर सर्वोत्कृष्ट बार सम्भव नहीं है।

यदि कहा जाय कि विसंयोजनाको प्राप्त होनेवालीं अनन्तानुबन्धियोंकी यह सब क्षपणा सम्बन्धी क्रिया निरर्थक है सो भी बात नहीं है, क्योंकि शेष कषायोंके द्रव्यका परिमाण अल्प कर देना यही इसका फल है। यदि कहा जाय कि शेष कषायोंका द्रव्य अल्प होता है तो होओ पर इसका प्रकृतमें क्या उपयोग है सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके अन्तर्मुहूर्तमें पुनः इससे संयुक्त होने पर अधःप्रवृत्तसंक्रमणके द्वारा शेष कषायोंका अल्प द्रव्य विच्छिन्न होकर इसमें प्राप्त होता है, इसलिये शेष कषायोंके द्रव्यके अल्प होनेकी उपयोगिता है। इस प्रकार अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके और अन्तर्मुहूर्तमें उससे संयुक्त होकर अल्प हुए शेष कषायोंके द्रव्यके अधःप्रवृत्तसंक्रमणके द्वारा उनसे विच्छिन्न होकर इसमें प्राप्त होने पर शेष कषायोंके द्रव्यके अल्प होनेकी उपयोगिता देखी जाती है। इस प्रकार अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके जब पुनः अन्तर्मुहूर्तमें इससे संयुक्त होता है तब अधःप्रवृत्तभागहारसे भाजित डेढ़ गुणहानि प्रमाण एकेन्द्रियसम्बन्धी समयप्रबद्ध द्रव्य शेष कषायोंसे विभक्त होकर इसमें प्राप्त होता है तथा अन्तर्मुहूर्त काल तक मिथ्यात्वमें रहनेके कारण अन्तर्मुहूर्त प्रमाण नवकसमयप्रबद्ध प्राप्त होते हैं। इस प्रकार अनन्ताबन्धीके इतने द्रव्यको प्राप्त करके और तदनन्तर दो छयासठ सागर काल तक सम्यक्त्वका पालन करके यह जीव मिथ्यात्वमें जाता है।

सागरोवमाणि भमाडिदो ? ण, सम्मत्तमाहप्पेण बंधविरहियाणमणंताणुबंधीणमाएण विणा वयमुवगच्छंताणमइजहण्णगोवुच्छविहाणट्ठं तहा भमाडणादो। पुणो मिच्छत्तं किं णीदो ? ण, अण्णहा एत्थुद्देसे दंसणमोहक्खवणमाढवेंतस्स पयदजहण्णसामित्त-विघादप्पसंगादो। तस्स पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स जहण्णयं तिण्णं पि ओकड्डणादो झीणट्ठिदियं होइ। एत्थ सिस्सो भणइ—मिच्छाइट्ठिपढमसमए अणंताणुबंधीणं सोदएण आवलियमेत्तट्ठिदीओ सामित्तविसईकयाओ होंति। सम्माइट्ठिचरिमसमए पुण तेसिमुदयाभावेण त्थिवुक्कसंकमणादो समयूणावलियमेत्तट्ठिदीओ लब्भंति, तदो तत्थेव जहण्णसामित्तं दाहामो लाहदंसणादो त्ति ? ण एस दोसो, एत्थ वि अणंताणुबंधिकोहादीणमण्णदरस्स जहण्णभावे इच्छिज्जमाणे तस्साणुदयं कादूण परोदएणेव सामित्तविहाणे समयूणावलियमेत्ताणं चेव गोवुच्छाणमुवलंभादो। तदो तप्परिहारेणेत्थेव सामित्तं दिण्णं, गोवुच्छविसेसं पडुच्च विसेसोवलद्धीदो। जइ एवमुदयावलियमाबाहं वा आवलियूणं वोलाविय उवरि जहण्णसामित्तं दाहामो ?

शंका—आगे सम्यक्त्व प्राप्त कराकर दो छयासठ सागरप्रमाण काल तक क्यों भ्रमण कराया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सम्यक्त्वके माहात्म्यसे बन्ध न होनेके कारण आयके बिना व्ययको प्राप्त होनेवाली अनन्तानुबन्धियोंकी गोपुच्छाओंको अत्यन्त जघन्य करनेके लिये इस प्रकार भ्रमण कराया गया है।

शंका—इस जीवको पुनः मिथ्यात्वमें क्यों ले जाया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यदि इसे पुनः मिथ्यात्वमें नहीं ले जाया गया होता तो वह दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ कर देता जिससे इसके प्रकृत जघन्य स्वामित्वका विघात प्राप्त हो जाता।

शंका—प्रथम समयवर्ती वह मिथ्यादृष्टि अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा झीन स्थितिवाले जघन्य कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है इस प्रकार यह जो कहा है सो इस विषयमें शिष्यका कहना है कि मिथ्यादृष्टिके प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धियोंका उदय होनेके कारण एक आवलि-प्रमाण स्थितियाँ स्वामित्वके विषयरूपसे प्राप्त होती हैं। किन्तु सम्यग्दृष्टिके अन्तिम समयमें तो अनन्तानुबन्धियोंका उदय नहीं होनेके कारण और उदय स्थितिका स्तिवुक संक्रमणद्वारा संक्रमण हो जानेसे एक समय कम एक आवलिप्रमाण स्थितियाँ प्राप्त होती हैं, इसलिये सम्यग्दृष्टिके अन्तिम समयमें ही प्रकृत स्वामित्वके देनेमें अधिक लाभ है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यहाँ मिथ्यात्व गुणस्थानके प्रथम समयमें भी अनन्तानुबन्धिसम्बन्धी क्रोधादिकमेंसे जिसका जघन्य स्वामित्व इच्छित हो उसका अनुदय कराके परोदयसे ही स्वामित्वका कथन करने पर एक समय कम एक आवलिप्रमाण ही गोपुच्छाएं पाई जाती हैं, इसलिये सम्यग्दृष्टिके अन्तिम समयको छोड़कर मिथ्यादृष्टिके प्रथम समयमें ही स्वामित्वका विधान किया है, क्योंकि गोपुच्छविशेषकी अपेक्षा विशेषकी उपलब्धि होती है।

शंका—यदि ऐसा है तो उदयावलिको बिताकर या एक आवलि कम आबाधा कालको

तत्थतणगोवुच्छाणमेत्तो चडिदद्धाणमेत्तविसेसेहि हीणत्तेण लाहदंसणादो। ण एत्थ णवकबंधासंका कायव्वा, आबाहादो उवरि तस्सावट्ठाणादो त्ति ? णेदं घडदे, कुदो ? उदयावलियबाहिरे मिच्छाइट्ठिपढमसमयप्पहुडि बज्झमाणाणमणंताणुबंधीणमुवरि समट्ठिदीए सेसकसायदव्वस्स अधापवत्तेण संकमोवलंभादो बंधावलियमेत्तकालं वोलाविय सगणवकबंधस्स चिराणसंतेण सह ओकड्डिय समयाविरोहेणाबाहाब्भंतरे णिक्खित्तस्सोवलंभादो च। तम्हा अधापवत्तसंकमेण पडिच्छिददव्वे उदयावलिय-बाहिरट्ठिदे संते जहण्णसामित्तं दिज्जइ त्ति समंजसमेदं सुत्तं।

§ ५५५. तदो सुत्तस्स समुदायत्थो एवं वत्तव्वो—खविदकम्मंसियलक्खणेण कम्मट्ठिदिं समयाविरोहेण परिभमिय पुणो तसभावेण संजमासंजम-संजम-सम्मत्ताणं-ताणुबंधिविसंजोयणकंडयाणि तप्पाओग्गपमाणाणि बहूणि लद्धूण चत्तारि वारे कसाए उवसामिय पुणो वि एइंदिएसु पलिदोवमासंखेज्जदिभागमेत्तकालब्भंतरे उवसामय-समयपबद्धे णिग्गालिय तत्तो णिप्पिडिय असण्णिपंचिंदिएसु अंतोमुहुत्तं वोलाविय आउअबंधवसेण देवेसुप्पज्जिय अंतोमुहुत्तेण छप्पज्जत्तीओ समाणिय उवसमसम्मत्तं

बिताकर ऊपरका स्थितियोंमें जघन्य स्वामित्वका विधान करना चाहिये, क्योंकि वहाँ की गोपुच्छाएँ यहाँसे जितना स्थान ऊपर जाकर वे प्राप्त हुई हैं उतने विशेषोंसे हीन हैं, अतः वहाँ जघन्य स्वामित्वका विधान करनेमें लाभ दिखाई देता है। और यहाँ नवकबन्धके प्राप्त होनेकी भो आशंका नहीं है, क्योंकि नवकबन्धका अवस्थान आबाधाके ऊपर पाया जाता है ?

समाधान—परन्तु यह कहना घटित नहीं होता, क्योंकि एक तो उदयावलिके बाहर मिथ्यादृष्टिके प्रथम समयसे लेकर बँधनेवाले अनन्तानुबन्धियोंके ऊपर समान स्थितिमें शेष कषायोंके द्रव्यका अधःप्रवृत्तसंक्रमणके द्वारा संक्रमण पाया जाता है और दूसरे बन्धावलिप्रमाण कालको बिताकर अपने नवकबन्धका प्राचीन सत्तामें स्थित कर्मके साथ अपकर्षण होकर आगममें बतलाई गई विधिके अनुसार आबाधाके भीतर निक्षेप देखा जाता है, इसलिये उदयावलिको बिताकर या एक आवलि कम आबाधाकालको बिताकर ऊपरकी स्थितियोंमें प्रकृत जघन्य स्वामित्वका विधान करना उचित नहीं है।

इसलिये अधःप्रवृत्त संक्रमणके द्वारा विच्छिन्न हुए द्रव्यके उदयावलिके बाहर स्थित रहते हुए जघन्य स्वामित्वका विधान किया गया है इसलिये यह सूत्र ठीक है।

§ ५५५. इतने निष्कर्षके बाद इस सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ इस प्रकार कहना चाहिये—जैसी आगममें विधि बतलाई है तदनुसार कोई एक जीव क्षपितकर्मांशकी विधिसे कर्मस्थिति-प्रमाण काल तक परिभ्रमण करता रहा। फिर त्रस होकर तत्प्रायोग्य बहुत बार संयमासंयम, संयम, सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजनासम्बन्धी काण्डकोंको करके चार बार कषायोंका उपशम किया। फिर दूसरी बार भी एकेन्द्रियोंमें जाकर पल्यके असंख्यातवें भाग-प्रमाण कालके भीतर उपशामकसम्बन्धी समयप्रबद्धोंको गलाकर और वहाँसे निकलकर असंज्ञी पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ और वहाँ अन्तर्मुहूर्त रहकर आयुबन्ध हो जानेसे देवोंमें उत्पन्न हुआ। फिर अन्तर्मुहूर्तमें छह पर्याप्तियोंको पूरा करके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। फिर उपशम-

पडिवज्जिय उवसमसम्मत्तकालब्भंतरे चेय अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइय पुणो वि परिणामवसेण अंतोमुहुत्तेण संजोइय पुव्वमुक्कड्डिदसेसकसायदव्वमधापवत्तसंकमेण पडिच्छिय अधट्ठिदिगलणेण विज्झादसंकमेण च तग्गालणट्ठं बेछावट्ठीओ समत्त-मणुपालिय मिच्छत्तं गदपढमसमए वट्टंतओ जो जीवो तस्स तेमिमुक्कड्डणादितिण्हं पि जहण्णयं झीणट्ठिदियं होइ त्ति ।

ॐ तस्सेव आवलियसमयमिच्छाइट्ठिस्स जहण्णयमुदयादो झीण-ट्ठिदियं ।

§ ५५६. तस्सेव खविदकम्मंसियपच्छायदभमिदवेछावट्ठिसागरोवममिच्छा-इट्ठिस्स पढमसमयमिच्छाइट्ठिआदिकमेण आवलियसमयमिच्छाइट्ठिभावेणावट्ठियस्स अहिकयकम्माणं जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं होइ त्ति सुत्तत्थो। एत्थ पढमसमय-मिच्छाइट्ठिपरिहारेणावलियचरिमसमए जहण्णसामित्तविहाणे कारणं पुव्वं परूविदं। उदयावलियबाहिरे जहण्णसामित्तं किण्ण दिण्णमिदि चे? ण, समट्ठिदिसंकमपडिच्छिद-दव्वस्स उदयं पइ समाणस्स तत्थ बहुत्तुवलंभादो ।

सम्यक्त्वके कालके भीतर ही अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करके फिर भी परिणामोंकी परवशताके कारण अन्तर्मुहूर्तमें उससे संयुक्त हुआ। फिर पहले उत्कर्षणको प्राप्त हुए शेष कषायोंके द्रव्यको अधःप्रवृत्तसंक्रमणके द्वारा प्राप्त करके उसे अधःस्थितिगलनाके द्वारा और विध्यात संक्रमणके द्वारा गलानेके लिये दो छयासठ सागर काल तक सम्यक्त्वका पालन किया। फिर मिथ्यात्वमें जाकर जब यह जीव उसके प्रथम समयमें विद्यमान होता है तब वह अनन्तानु-बन्धियोंके अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले जघन्य कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है।

*** एक आवलि काल तक मिथ्यात्वके साथ रहा हुआ वही जीव उदयसे झीनस्थितिवाले जघन्य कर्म परमाणुओंका स्वामी है।**

§ ५५६. जो क्षपित कर्मांशकी विधिसे आकर दो छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण करके मिथ्यादृष्टि हुआ है और जिसे मिथ्यादृष्टिके प्रथम समयसे लेकर मिथ्यात्वके साथ रहते हुए एक आवलिकाल हुआ है ऐसा वही मिथ्यादृष्टि जीव अधिकृत कर्मोंके उदयकी अपेक्षा झीन स्थितिवाले जघन्य कर्म परमाणुओंका स्वामी होता है यह इस सूत्रका अर्थ है। यहाँ पर प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टिको छोड़कर एक आवलिके अन्तिम समयमें जघन्य स्वामित्वके कथन करनेका कारण पहले कह आये हैं।

शंका—उदयावलिके बाहर जघन्य स्वामित्व क्यों नहीं दिया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उदयावलिके बाहर समान स्थितिमें स्थित द्रव्यका संक्रमण हो जानेसे उसकी अपेक्षा उदयमें अधिक द्रव्यकी प्राप्ति हो जाती है, इसलिये उदयावलिके बाहर जघन्य स्वामित्व नहीं दिया।

विशेषार्थ—यहाँ उदयकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धियोंके झीनस्थितिवाले जघन्य कर्म परमाणुओंका स्वामी बतलाया है। यद्यपि इसका स्वामी भी वही होता है जो क्षपितकर्मांशकी

❀ णवुंसयवेदस्स जहण्णयमोकड्डणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स ?

§ ५५७. सुगमं ।

❀ अभवसिद्धियपाओग्गेण जहण्णएण कम्मेण तिपलिदोवमिएसु उववण्णो । तदो अंतोमुहुत्तसेसे सम्मत्तं लद्धं, वेछावट्ठिसागरोवमाणि सम्मत्तमणुपालिदं, संजमासंजमं संजमं च बहुसो गदो । चत्तारि वारे कसाए उवसामित्ता अपच्छिमे भवे पुव्वकोडिआउओ मणुस्सो जादो । तदो देसूण-पुव्वकोडिसंजममणुपालियूण अंतोमुहुत्तसेसे परिणामपच्चएण असंजमं गदो । ताव असंजदो जाव गुणसेढी णिग्गलिदा त्ति । तदो संजमं पडिवज्जियूण अंतोमुहुत्तेण कम्मक्खयं काहिदि त्ति तस्स पढमसमयसंजमं पडिवण्णस्स जहण्णयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं ।

§ ५५८. एदस्स सामित्तसुत्तस्स अत्थविवरणं कस्सामो । तं जहा—जो जीवो

विधिसे आकर और दो छयासठ सागर काल तक सम्यक्त्वके साथ रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है पर यह स्वामित्व मिथ्यात्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें न देकर एक आवलिके अन्तिम समयमें देना चाहिये, क्योंकि तब उदयमें अनन्तानुबन्धीके सबसे कम कर्मपरमाणु पाये जाते हैं । इस पर किसी शंकाकारका कहना है कि स्थितिके अनुसार उत्तरोत्तर एक एक चयकी हानि होती जाती है, अतः उदयावलिके बाहरके निषेकके उदयमें प्राप्त होने पर और भी कम द्रव्य प्राप्त होगा, इसलिये यह जघन्य स्वामित्व उदयावलिकी अन्तिम स्थितिमें न देकर उदयावलिके बाहरकी स्थितिमें देना चाहिये । पर यह शंका ठीक नहीं है, क्योंकि मिथ्यात्वमें अनन्तानुबन्धीका बन्ध होता है, इसलिये इसमें अन्य सजातीय प्रकृतियोंका संक्रमण होकर उदयावलिके बाहरका द्रव्य बढ़ जाता है, इसलिये वहाँ जघन्य स्वामित्व नहीं दिया जा सकता है ।

*** नपुंसकवेदके अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले जघन्य कर्म-परमाणुओंका स्वामी कौन है ?**

§ ५५७. यह सूत्र सुगम है ।

*** कोई एक जीव अभव्योंके योग्य जघन्य सत्कर्मके साथ तीन पल्योपमकी आयुवालोंमें उत्पन्न हुआ । फिर अन्तर्मुहूर्त शेष रह जाने पर सम्यक्त्वको प्राप्त करके दो छयासठ सागर कालतक सम्यक्त्वका पालन किया । फिर बहुत बार संयमासंयम और संयमको प्राप्त हुआ । फिर चार बार कषायोंका उपशम करके अन्तिम भवमें एक पूर्व कोटिकी आयुवाला मनुष्य हुआ । फिर कुछ कम एक पूर्व कोटि काल तक संयमका पालन करके जब अन्तर्मुहूर्त शेष रहा तब परिणामवश असंयमको प्राप्त हुआ और गुणश्रेणिके गलने तक असंयमके साथ रहा । फिर संयमको प्राप्त होकर जो अन्तर्मुहूर्तमें कर्मक्षय करेगा वह प्रथम समयवर्ती संयमी जीव तीनोंकी अपेक्षा झीन स्थितिवाले जघन्य कर्म परमाणुओंका स्वामी है ।**

§ ५५८. अब इस स्वामित्व सूत्रके अर्थका खुलासा करते हैं । वह इस प्रकार है—जो जीव

अभवसिद्धियपाओग्गेण जहण्णएण कम्मेण सह गदो तिपलिदोवमिएसु उववण्णो त्ति एत्थ पदसंबंधो। किमट्ठमेसो तिपलिदोवमिएसुप्पाइदो चे ? ण, णवुंसयवेदबंध-विरहिएसु सुहतिलेस्सिएसु पज्जत्तकाले तब्बंधवोच्छेदं काऊणाएण विणा अधट्ठिदीए परपयडिसंकमेण च थोवयरगोवुच्छाओ गालिय अइजहण्णीकयणिरुद्धगोवुच्छगहणट्ठं तत्थुप्पायणादो। तदो चेय तेण गालिदतिपलिदोवममेत्तणवुंसयवेदणिसेएण सगाउए अंतोमुहुत्तसेसे सम्मत्तं लद्धं वेछावट्ठिसागरोवमाणि सम्मत्तमणुपालिदमिदि सुत्तावयवो सुसंबद्धो। सम्मत्तपाहम्मेण बंधविरहियस्स णवुंसयवेदस्स तत्थ वेछावट्ठिसागरोवम-पमाणथूलगोवुच्छाओ गालिय अइसण्हगोवुच्छाहिं जहण्णसामित्तविहाणट्ठं तहा भमाडणस्स सहलत्तदंसणादो। एत्थेव विसेसंतरपरूवणट्ठं संजमासंजमं संजमं च बहुसो गदो त्ति सुत्तावयवस्स अवयारो। ण बहुवारं संजमासंजमादिलंभो णिरत्थओ, गुणसेढिणिज्जराए णवुंसयवेदपयदणिसेयाणं णिज्जरणेण तस्स सहलत्तदंसणादो। किमेसो वेछावट्ठिसागरोवमाणमब्भंतरे चेय असइं संजमासंजम-अणंताणुबंधिविसंजोयण-परियट्टणवारे करेइ आहो तत्तो पुव्वमेवे त्ति पुच्छिदे तत्तो पुव्वमेव अभवसिद्धिय-

---

अभव्योंके योग्य जघन्य कर्मके साथ गया और तीन पल्यकी आयुवालोंमें उत्पन्न हुआ इस प्रकार यहाँ पदोंका सम्बन्ध कर लेना चाहिये।

शंका—इस जीवको तीन पल्यकी आयुवालोंमें क्यों उत्पन्न कराया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि एक तो वहाँ नपुंसकवेदका बन्ध नहीं होता दूसरे शुभ तीन लेश्याएँ पाई जाती हैं इसलिये वहाँ पर्याप्त कालमें नपुंसकवेदकी बन्ध व्युच्छित्ति कराकर आयके बिना अधःस्थितिके द्वारा और परप्रकृति संक्रमणके द्वारा स्तोकतर गोपुच्छाओंको गलाकर विवक्षित कर्मके अति जघन्य गोपुच्छा प्राप्त करनेके लिये इस जीवको तीन पल्यकी आयुवालोंमें उत्पन्न कराया है।

तदन्तर तीन पल्य प्रमाण नपुंसकवेदके निषेकोंको गलाकर जब आयुमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहता है तब सम्यक्त्वको ग्रहण कर उसने दो छ्यासठ सागर काल तक उसका पालन किया। इस प्रकार सूत्रके पद सुसंबद्ध हैं। फिर सम्यक्त्वके प्रभावसे वहाँ बन्धरहित नपुंसकवेदके दो छ्यासठ सागरप्रमाण स्थूल गोपुच्छाओंको गलाकर अतिसूक्ष्म गोपुच्छाओंके द्वारा जघन्य स्वामित्वको प्राप्त करनेके लिये इस प्रकारके परिभ्रमण करानेमें लाभ देखा जाता है। तथा इसीमें विशेष अन्तरका कथन करनेके लिये 'संयमासंयम और संयमको बहुत बार प्राप्त हुआ' सूत्रके इस हिस्सेकी रचना हुई है। संयमासंयम आदिका बहुत बार प्राप्त करना निरर्थक भी नहीं है, क्योंकि गुणश्रेणिनिर्जराके द्वारा नपुंसकवेदके प्रकृत निषेकोंकी निर्जरा हो जानेसे उसकी सफलता देखी जाती है।

शंका—क्या यह दो छ्यासठ सागर कालके भीतर ही अनेक बार संयमासंयम और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाके परिवर्तन वारोंको करता है या इससे पहले ही ?

समाधान—दो छ्यासठ सागर कालको प्राप्त होनेके पूर्व ही जब यह जीव अभव्योंके

पाओग्गजहण्णसंतकम्मेणागंतूण तसेसुप्पज्जिय तिपलिदोवमिएसुप्पज्जमाणो तम्मि संधीए पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तगुणसेढिणिज्जराकालब्भंतरे सेसकम्माणं व संजमासंजमादिकंडयाणि थोवूणाणि कादूण पुणो तत्थ जाणि परिसेसिदाणि ताणि वेछावट्ठिसागरोवमब्भंतरे कत्थ वि कत्थ वि विक्खित्तसरूवेण करेदि त्ति एसो एत्थ परिणिच्छओ, सुत्तस्सेदस्स अंतदीवयत्तादो।

§ ५५९. अत्रैवावान्तरव्यापारविशेषप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रावयवः—चत्तारि वारे कसाए उवसामित्ता अपच्छिमे भवे पुव्वकोडिआउओ मणुस्सो जादो इदि। पलिदोवमासंखेज्जदिभागमेत्तसंजमासंजमादिकंडयाणमट्ठसंजमकंडयाणं च अंतरालेसु समयाविरोहेण चत्तारि कसाउवसामणवारे गुणसेढिणिज्जराविणाभावित्तेण पयदोवजोगी अणुपालिय चरिमदेहहरो दीहाउओ मणुसो जादो त्ति वुत्तं होइ। ण पुव्वकोडाउए उप्पादो णिरत्थओ, गुणसेढिणिज्जराविणाभाविदीहसंजमद्धाए पयदोवजोगित्तादो त्ति तस्स सहलत्तपदंसणट्ठमुवरिमो सुत्तावयवो—तदो देसूणपुव्वकोडिसंजममणुपालियूणे त्ति। एत्थ देसूणपमाणमट्ठवस्साणि अंतोमुहुत्तब्भहियाणि। एवं देसूणपुव्वकोडिसंजमगुणसेढिणिज्जरं काऊणावट्ठिदस्स आसण्णे सामित्तसमए वावारविसेसपदुप्पायणट्ठमंतोमुहुत्तसेसे परिणामपच्चएण असंजमं गदो त्ति उत्तं।

§ ५६०. एत्थुद्देसे असंजमगमणे फलं परूवेइ—ताव असंजदो जाव गुणसेढी

योग्य जघन्य सत्कर्मके साथ आकर और त्रसोंमें उत्पन्न होकर तीन पल्यकी आयुवालोंमें उत्पन्न होनेकी स्थितिमें होता है तब इस मध्यकालमें पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणश्रेणिनिर्जरा कालके भीतर शेष कर्मोंके समान कुछ कम संयमासंयमादि काण्डकोंको करके फिर वहाँ जो कर्म शेष बचते हैं उन्हें दो छयासठ सागर कालके भीतर कहीं कहीं त्रुटित (विक्षिप्त) रूपसे करता है इस प्रकार यहाँ यह निश्चय करना चाहिये, क्योंकि यह सूत्र अन्तदीपक है।

§ ५५९. अब यहीं पर अवान्तर व्यापारविशेषका कथन करनेके लिये सूत्रका अगला हिस्सा आया है कि चार बार कषायोंका उपशम करके अन्तिम भवमें पूर्वकोटिकी आयुवाला मनुष्य हुआ। इसका आशय यह है कि पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण संयमासंयम आदि काण्डकोंके और आठ संयम काण्डकोंके अन्तरालमें आगममें जो विधि बतलाई है उस विधिसे गुणश्रेणिनिर्जराका अविनाभावी होनेसे प्रकृतमें उपयोगी चार कषायोंके उपशामन वारोंको करके बड़ी आयुवाला चरमशरीरी मनुष्य हुआ। यदि कहा जाय कि एक पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्यमें उत्पन्न कराना व्यर्थ है सो भी बात नहीं है, क्योंकि संयमकालका बड़ापन गुणश्रेणि निर्जराका अविनाभावी होनेसे प्रकृतमें उसका उपयोग है, इसलिये इसकी सफलता दिखलानेके लिये सूत्रके आगेका 'तदो देसूणपुव्वकोडिसंजममणुपालियूण' यह हिस्सा रचा गया है। यहाँपर देशोनका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष है। इस प्रकार कुछ कम पूर्वकोटि कालतक संयमगुणश्रेणिनिर्जराको करके स्थित हुए जीवके विवक्षित स्वामित्व समयके समीपमें आ जानेपर व्यापारविशेषको बतलानेके लिये 'जो अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहनेपर परिणामोंकी परवशताके कारण असंयमको प्राप्त हुआ' यह कहा है।

§ ५६०. अब यहाँ असंयमको प्राप्त होनेका प्रयोजन कहते हैं—यह जीव तबतक असंयत

णिग्गलिदा त्ति। जाव संजदेण कदा गुणसेढी णिरवसेसं गलिदा ताव असंजदो होऊणच्छिदो त्ति वुत्तं होइ। ण चेदं णिरत्थयं, गुणसेढिगोवुच्छाओ असंखेज्ज-पंचिंदियसमयपबद्धपमाणाओ गालिय अइसण्हगोवुच्छाणं सामित्तविसईकरणेण फलोव-लंभादो। एवमसंजदभावेण गुणसेढिं णिग्गालिय पुणो केत्तिएण वावारेण जहण्ण-सामित्तं पडिवज्जइ त्ति। एत्थुत्तरमाह—तदो संजमं पडिवज्जियूण इच्चाइणा। तदो असंजमादो संजमं पडिवज्जिय सव्वणिरुद्धेणंतोमुहुत्तेण कम्मक्खयं काहिदि त्ति अवट्ठिदस्स तस्स पढमसमयसंजमं पडिवण्णस्स जहण्णयमोकड्डणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं होइ त्ति सुत्तत्थसंबंधो। संजदविदियादिसमएसु किमट्ठं सामित्तं ण दिज्जदे? ण, संजमगुणपाहम्मेण पुणो वि उदयावलियबाहिरे णिक्खित्ताए गुणसेढीए उदयावलियब्भंतरप्पवेसे जहण्णत्ताणुववत्तीदो। तम्हा एत्तिएण पयत्तेण सण्हीकय-समयूणावलियमेत्तगोवुच्छाओ घेत्तूण संजदपढमसमए पयदजहण्णसामित्तं होइ त्ति सुत्तत्थसमुच्चयो। एत्थ सिस्सो भणदि—एदम्हादो समयूणावलियमेत्तगोवुच्छदव्वादो जहण्णयमण्णमोकड्डणादिझीणट्ठिदियं पेच्छामो। तं कथमिदि भणिदे एसो चेव

रहता है जब तक गुणश्रेणि निर्जीर्ण होती है। जब तक संयतके द्वारा की गई गुणश्रेणि पूरी गलती है तब तक यह जीव असंयत होकर रहता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यदि कहा जाय कि यह सब कथन करना निरर्थक है सो भी बात नहीं है, क्योंकि पञ्चेन्द्रियोंके असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण गुणश्रेणिगोपुच्छाओंको गलाकर प्रकृत स्वामित्वकी विषयभूत अतिसूक्ष्म गोपुच्छाओंके करने रूपसे इसका फल पाया जाता है। इस प्रकार असंयतरूप भावके द्वारा गुणश्रेणिको गला कर फिर कितनी प्रवृत्ति करके जघन्य स्वामित्वको प्राप्त होता है? आगे यही बतलानेके लिये 'तदो संजमं पडिवज्जियूण' इत्यादि कहा है। आशय यह है कि फिर असंयमसे संयमको प्राप्त हुआ। इस बार संयमको तब प्राप्त कराना चाहिए जब और सब विधिके साथ कर्मक्षयको अन्तर्मुहूर्तमें करनेकी स्थितिमें आ जाय। इस प्रकार संयमको प्राप्त होकर जो उसके प्रथम समयमें स्थित है वह अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले जघन्य नपुंसकवेद-सम्बन्धी कर्मपरमाणुओंका स्वामी होता है यह इस सूत्रका आशय है।

शंका—संयत होनेसे लेकर दूसरे आदि समयोंमें यह जघन्य स्वामित्व क्यों नहीं दिया गया है?

समाधान—नहीं, क्योंकि संयमगुणकी प्रधानतासे फिर भी उदयावलिके बाहर जो गुणश्रेणिकी रचना हुई है उसके उदयावलिके भीतर प्रवेश करने पर जघन्यपना नहीं बन सकता है।

इसलिये इतने प्रयत्नसे सूक्ष्म की गई एक समय कम एक आवलिप्रमाण गोपुच्छाओंको लेकर संयतके प्रथम समयमें प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता है यह इस सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है।

शंका—यहाँ कोई शिष्य कहता है कि यह जो एक समय कम एक आवलिप्रमाण गोपुच्छा द्रव्य है इससे हम अपकर्षणादि तीनकी अपेक्षा झीनस्थितिवाला अन्य जघन्य द्रव्य देखते हैं वह कैसे ऐसा पूछने पर वह बोलता है कि क्षपितकर्मांशकी विधिसे भ्रमण करके

खविदकम्मंसियलक्खणेण भमिदजीवो पुव्वकोडिसंजमगुणसेढिणिज्जरं करिय अंतोमुहुत्तावसेसे जीविदव्वए त्ति उवसमसेढिमारूढो अंतरकिरियापरिसमत्तीए गालिदसमयूणावलिओ कालगदो वेमाणिओ देवो जादो। सो च देवेसुप्पण्णपढमसमयम्मि पुरिसवेदमोकड्डियूणुदयादिणिक्खेवं करेइ, उदयाभावेण ओकड्डिज्जमाणणवुंसयवेदादिपयडीणमुदयावलियबाहिरे णिक्खेवं करेइ। एवमुदयावलियबाहिरे गोवुच्छायारेण णिसित्तणवुंसयवेदस्स जाधे विदियसमयदेवस्स एयगोवुच्छमेत्तमुदयावलियब्भंतरं पविसइ ताधे तत्थ णवुंसयवेदस्स ओकड्डणादितिण्हं पि जहण्णझीणट्ठिदियं होइ। पुव्विल्लजहण्णसामित्तविसईकयसमयूणावलियमेत्तणिसेएहिंतो एदस्स एयणिसेयमेत्तस्स थोवयरत्तदंसणादो त्ति ? णेदं घडदे, पुव्विल्लजहण्णदव्वादो एदस्स असंखेज्जगुणत्तुवलंभादो। तं जहा—इमस्स देवस्स संखेज्जसागरोवमपमाणाउट्ठिदिमेत्तो सम्मत्तकालो अज्ज वि अत्थि। संपहि एत्तियमेत्तणिसेए गालिय अपच्छिमे मणुस्सभवे अवट्ठिदो पुव्विल्लजहण्णदव्वसामिओ। एदस्स पुण असंखेज्जगुणहाणिमेत्तगोवुच्छाओ णाज्ज वि गलंति, तेण समयूणावलियमेत्तणिसेयदव्वादो एदमेयट्ठिदिदव्वमसंखेज्जगुणं होइ, संखेज्जसागरोवमब्भंतरणाणागुणहाणिसलागाणमण्णोण्णब्भत्थरासीए समयूणावलिओवट्टिदाए गुणगारसरूवेण दंसणादो। तम्हा सुत्तुत्तमेव

आया हुआ यही जीव एक पूर्वकोटि काल तक संयमसम्बन्धी गुणश्रेणिकी निर्जरा करके जब जीवनमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहा तब उपशमश्रेणि पर चढ़ा और अन्तर क्रियाको समाप्त करके तथा नपुंसकवेदकी एक समय कम एक आवलिप्रमाण प्रथम स्थितिको गलाकर मरा और वैमानिक देव हो गया। और वह देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें पुरुषवेदका अपकर्षण करके उसका उदय समयसे लेकर निक्षेप करता है तथा उदय न होनेसे अपकर्षणको प्राप्त हुई नपुंसकवेद आदि प्रकृतियोंका उदयावलिके बाहर निक्षेप करता है। इस प्रकार उदयावलिके बाहर गोपुच्छाके आकाररूपसे जो नपुंसकवेदका द्रव्य निक्षिप्त होता है उसमेंसे जब द्वितीय समयवर्ती देवके एक गोपुच्छाप्रमाण द्रव्य उदयावलिके भीतर प्रवेश करता है तब वहाँ अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा नपुंसकवेदका जघन्य झीनस्थितिक द्रव्य प्राप्त होता है। इस प्रकार पूर्वोक्त जघन्य स्वामित्वके विषयभूत एक समय कम एक आवलिप्रमाण निषेकोंसे यह एक निषेकप्रमाण द्रव्य अल्प देखा जाता है ?

समाधान—यह कहना घटित नहीं होता, क्योंकि पूर्वोक्त जघन्य द्रव्यसे यह द्रव्य असंख्यातगुणा पाया जाता है। खुलासा इस प्रकार है—इस देवके संख्यात सागर आयुप्रमाण सम्यक्त्व काल अभी भी शेष है। अब इतने निषेकोंको गलाकर अन्तिम मनुष्यभवमें उत्पन्न होने पर पूर्वोक्त जघन्य द्रव्यका स्वामी होता है। परन्तु इस द्रव्यकी असंख्यात गुणहानिप्रमाण गोपुच्छाएँ अभी भी गली नहीं हैं, इसलिये एक समय कम एक आवलिप्रमाण निषेकोंके द्रव्यसे यह एक स्थितिगत द्रव्य असंख्यातगुणा होता है, क्योंकि यहाँ संख्यात सागरके भीतर नाना गुणहानिशलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्त राशिको एक समय कम एक आवलिसे भाजित करने पर जो लब्ध आता है उतना गुणकार देखा जाता है। इसलिये सूत्रमें कहा हुआ ही स्वामित्व

सामित्तं णिरवज्जमिदि सिद्धं ।

❀ इत्थिवेदस्स वि जहण्णयाणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि एदस्स चेव तिपलिदोवमिएसु णो उववण्णयस्स कायव्वाणि ।

निर्दोष है यह बात सिद्ध हुई ।

विशेषार्थ—यहाँ अपकर्षणादि तीनकी अपेक्षा नपुंसकवेदके झीनस्थितिवाले जघन्य कर्मपरमाणुओंका स्वामी बतलाया है । इसके लिये सूत्रमें जो विधि बतलाई है वह सब क्षपित-कर्मांशकी विधि है, इसलिये इसका यहाँ विशेष खुलासा नहीं किया जाता है । टीकामें उसका खुलासा किया ही है । किन्तु कुछ बातें यहाँ ज्ञातव्य हैं, इसलिये उन पर प्रकाश डाला जाता है । प्रथम बात तो यह है कि सूत्रमें पहले दो छयासठ सागर काल तक सम्यक्त्वके साथ परिभ्रमण कराके फिर संयमासंयम आदि काण्डकोंके करनेका निर्देश किया है, इसलिये यह प्रश्न हुआ कि ये संयमासंयमादि काण्डकोंमें परिभ्रमण करनेके बार दो छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण करनेके पहले होते हैं या बादमें होते हैं ? इस शंकाका जो समाधान किया है उसका आशय यह है कि ये दो छयासठ सागर काल तक सम्यक्त्वके साथ परिभ्रमण करनेके पहले ही हो जाते हैं, क्योंकि जिस समय ये होते हैं वह काल इसके पहले ही प्राप्त होता है । पहले जघन्य प्रदेशसत्कर्मका निर्देश करते हुए भी संयमासंयमादिकके काण्डकोंको कराके ही दो छयासठ सागर काल तक सम्यक्त्वके साथ भ्रमण कराया गया है । इससे भी उक्त बातकी ही पुष्टि होती है, इसलिये यहाँ सूत्रमें जो व्यतिक्रमसे निर्देश किया है वह कोई खास अर्थ नहीं रखता ऐसा यहाँ समझना चाहिये । दूसरी बात यह है कि सूत्रमें जो यह निर्देश किया है कि ऐसा जीव पूर्वोक्त विधिसे आकर जब अन्तमें संयमी होता है तब संयमको प्राप्त करनेके प्रथम समयमें प्रकृत जघन्य स्वामित्वका विधान करना चाहिये । इस पर शंकाकारका यह कहना है कि यदि प्रथम समयमें जघन्य स्वामित्व न देकर द्वितीयादि समयोंमें जघन्य स्वामित्व दिया जाता है तो इससे विशेष लाभ है । वह यह कि प्रथम समयमें एक समय कम एक आवलिप्रमाण निषेकोंमें जितना द्रव्य होता है द्वितीयादि समयोंमें वह और कम हो जायगा, क्योंकि आगे आगेके निषेकोंमें एक एक चयघाट द्रव्य देखा जाता है । इस शंकाका जो समाधान किया है उसका भाव यह है कि संयमको प्राप्त होते ही प्रथम समयसे यह जीव गुणश्रेणिकी रचना करने लगता है । यतः नपुंसकवेद अनुदयरूप प्रकृति है अतः इसकी गुणश्रणि रचना उदयावलिके बाहरके निषेकोंमें होगी । अब जब यह जीव दूसरे समयमें जाता है तब इसके उदयावलिके भीतरका प्रथम निषेक स्तिवुक संक्रमणके द्वारा अन्य प्रकृतिरूप परिणाम जानेसे उदयावलिके बाहरका एक निषेक उदयावलिमें प्रविष्ट हो जाता है । यतः उदयावलिमें प्रविष्ट हुए इस निषेकमें प्रथम समयमें अपकर्षित हुआ गुणश्रेणि द्रव्य भी आ मिला है अतः दूसरे समयमें एक समय कम एक आवलिप्रमाण निषेकोंका जो द्रव्य है वह प्रथम समयमें प्राप्त हुए एक समय कम एक आवलिप्रमाण निषेकोंके द्रव्यसे अधिक हो जाता है, अतः द्वितीयादि समयोंमें जघन्य स्वामित्वका विधान न करके प्रथम समयमें ही किया है ।

❀ अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा स्त्रीवेदके झीनस्थितिवाले जघन्य द्रव्यका भी स्वामी यही जीव है । किन्तु इसे तीन पल्यकी आयुवालोंमें उत्पन्न नहीं कराना चाहिये ।

§ ५६१. एदस्स चेवाणंतरपरूविदसामियस्स इत्थिवेदसंबंधीणि तिण्णि वि पयदजहण्णझीणट्ठिदियाणि वत्तव्वाणि । णवरि तिपलिदोवमिएसु अणुववण्णस्स कायव्वाणि । कुदो ? तत्थ णवुंसयवेदस्सेव इत्थिवेदस्स बंधवोच्छेदाभावेण तत्थुप्पायणे फलाणुवलंभादो ।

❀ णवुंसयवेदस्स जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स ?

§ ५६२. सुगमं ।

❀ सुहुमणिगोदेसु कम्मट्ठिदिमणुपालियूण तसेसु आगदो । संजमासंजमं संजमं सम्मत्तं च बहुसो गओ । चत्तारि वारे कसाए उवसामित्ता तदो एइंदिए गदो । पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमच्छिदो ताव जाव उवसामयसमयपबद्धा णिग्गलिदा त्ति । तदो पुणो मणुस्सेसु आगदो । पुव्वकोडी देसूणं संजममणुपालियूण अंतोमुहुत्तसेसे मिच्छत्तं गदो । दसवस्ससहस्सिएसु देवेसु उववण्णो । अंतोमुहुत्तमुववण्णेण सम्मत्तं लद्धमंतोमुहुत्तावसेसे जीविदव्वए त्ति मिच्छत्तं गदो । तदो विकड्ढिदाओ ट्ठिदीओ तप्पाओग्गसव्वरहस्साए मिच्छत्तद्धाए एइंदिएसुववण्णो । तत्थ वि

---

§ ५६१ यह जो अनन्तर जघन्य स्वामी कह आये हैं उसके ही स्त्रीवेदसम्बन्धी तीनों प्रकृत जघन्य झीनस्थितिक द्रव्य कहना चाहिये। किन्तु तीन पल्यकी आयुवालोंमें उत्पन्न नहीं हुए जीवके यह सब विधि बतलानी चाहिये, क्योंकि तीन पल्यकी आयुवालोंमें जैसे नपुंसकवेदकी बन्धव्युच्छित्ति पाई जाती है वैसे स्त्रीवेदकी बन्धव्युच्छित्ति नहीं पाई जाती, इसलिये वहाँ उत्पन्न करानेमें कोई लाभ नहीं है ।

*** नपुंसकवेदके उदयसे झीनस्थितिवाले जघन्य द्रव्यका स्वामी कौन है ?**

§ ५६२ यह सूत्र सुगम है ।

* जो जीव सूक्ष्म निगोदियोंमें कर्मस्थिति प्रमाणकाल तक रहकर त्रसोंमें आया है । फिर जिसने अनेक बार संयमासंयम, संयम और सम्यक्त्वको करके चार बार कषायोंका उपशम किया है । फिर एकेन्द्रियोंमें जाकर उपशामकसम्बन्धी समयप्रबद्धोंके गलनेमें लगनेवाले पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक वहाँ रहा । फिर मनुष्योंमें आकर और कुछ कम एक पूर्वकोटि काल तक संयमका पालन करते हुए जब अन्तर्मुहूर्त काल शेष बचा तब मिथ्यात्वमें गया । फिर दस हजार वर्षकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ और उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त बाद सम्यक्त्वको प्राप्त किया तथा जब आयुमें अन्तर्मुहूर्त बाकी बचा तब मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । और वहाँ सम्यक्त्वकी अपेक्षा स्थितियोंको बढ़ाकर तत्प्रायोग्य सबसे जघन्य मिथ्यात्वका काल शेष रहनेपर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । फिर वहाँ तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त हुआ वह

तप्पाओग्गउक्कस्सयं संकिलेसं गदो तस्स पढमसमयएइंदियस्स जहण्णय-मुदयादो झीणट्ठिदियं ।

§ ५६३. एत्थ सुहुमणिगोदेसु कम्मट्ठिदिमणुपालियूगे त्ति वुत्ते सुहुमवणप्फदिकाइएसु जो जीवो सव्वावासयविसुद्धो संतो कम्मट्ठिदिमणुपालियूणागदो त्ति घेत्तव्वं, अण्णहा खविदकम्मंसियत्तविरोहादो। एवमभवसिद्धियपाओग्गजहण्णसंतकम्मं काऊण तसेसु आगदो। ण च तसपज्जायपरिणामो सुहुमणिगोदजोगादो असंखेज्जगुणजोगो वि संतो णिप्फलो त्ति जाणावणट्ठं संजमासंजमं संजमं सम्मत्तं च बहुसो गदो इच्चादी भणिदं। संजमासंजमादिगुणसेढिणिज्जराए पडिसमयमसंखेज्जपंचिंदियसमयपवद्धपडिबद्धाए एइंदियसंचयस्स गालणेण फलोवलंभादो। ण च एत्थतणसंचयस्स जोगबहुत्तमासंकणिज्जं, तस्स वारं पडि संखेज्जावलियमेत्तवयादो असंखेज्ज-गुणहीणत्तणेण पाहण्णियाभावादो पुणो वि तस्स एइंदिएसु पलिदोवमासंखेज्जदि-भागमेत्तकालेण गालणादो च। तदेवाह—तदो एइंदिए गदो इत्यादी। एत्थ जदि वि उवसामओ णवुंसयवेदं ण बंधइ, तो वि पुरिसवेदादीणं तत्थ बंधसंभवादो तेसिं णवकबंधस्स गालणट्ठमेसो एइंदिए पवेसिदो। ण तेसिं कम्मंसाणमुवसामयसमय-

---

प्रथम समयवर्ती एकेन्द्रिय जीव उदयसे झीनस्थितिवाले जघन्य द्रव्यका स्वामी है।

§ ५६३ यहाँ सूत्रमें जो 'सुहुमणिगोदेसु कम्मट्ठिदिमणुपालियूण' कहा है, सो इसका आशय यह है कि सब आवश्यकोंसे विशुद्ध होता हुआ जो जीव सूक्ष्म वनस्पतिकायिकोंमें कर्म स्थितिप्रमाण काल तक रह कर बाहर आया है। अन्यथा उसे क्षपितकर्मांश माननेमें विरोध आता है। इस प्रकार यह अभव्योंके योग्य जघन्य सत्कर्म करके त्रसोंमें उत्पन्न हुआ। यदि कहा जाय कि सूक्ष्म निगोदियोंके योगसे त्रसपर्यायमें प्राप्त होनेवाला योग असंख्यातगुणा होता है, इसलिये त्रसपर्यायका प्राप्त कराना निष्फल है सो यह बात भी नहीं है। बस इसी बातका ज्ञान करानेके लिये सूत्रमें 'संजमासंजमं संजमं सम्मत्तं च बहुसो गदो' इत्यादि सूत्र वचन कहा है। प्रत्येक समयमें पंचेन्द्रियोंके असंख्यात समयप्रबद्धोंसे सम्बन्ध रखनेवाली संयमासंयम आदि सम्बन्धी गुणश्रेणिनिर्जराके द्वारा एकेन्द्रिय पर्यायमें हुए संचयको गला देता है। इस प्रकार त्रसपर्यायमें उत्पन्न होनेकी यह सफलता है। यदि कहा जाय कि इस त्रस पर्यायमें संचय होता है वह योगकी बहुतायतके कारण बहुत होता है सो ऐसी आशंका करनी भी ठीक नहीं है, क्योंकि यहाँ पर जो प्रत्येक बार संख्यात आवलिप्रमाण समयप्रबद्धोंका उदय होता है उससे वह असंख्यातगुणा हीन होता है, इसलिये प्रकृतमें उसकी प्रधानता नहीं है। दूसरे फिरसे एकेन्द्रियोंमें जाकर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा उसे गला देता है। इसकार इसी बातके बतलानेके लिये सूत्रमें 'तदो एइंदिए गदो' इत्यादि वाक्य कहा है। यहाँ पर यद्यपि उपशामक जीव नपुंसकवेदका बन्ध नहीं करता है तो भी पुरुषवेदादिकका वहाँ बन्ध सम्भव होनेसे इनके नवकबन्धके गालन करनेके लिये इसे एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न कराया है। यदि कहा जाय कि वे कर्मपरमाणु उप-

पबद्धेसु गलिदेसु णवुंसयवेदस्स फलाभावो[1] त्ति आसंकणिज्जं, तेसिमगालणे बज्झमाणवेदिज्जमाणणवुंसयवेदपयडीए उवरि परपयडिसंकमत्थिवुक्कसंकमदव्वस्स बहुत्तप्पसंगादो। तदो तप्परिहरणट्ठमट्ठवस्सब्भंतरणवुंसयवेदसंचयगालणट्ठं च तत्थ पवेसो पयदोवजोगि त्ति सिद्धं।

§ ५६४. अंतदीवयं चेवेदमुवसामयसमयपबद्धणिग्गालणवयणं, तेण संजदासंजदादिसमयपबद्धणिग्गालणट्ठमेसो बहुसो गुणसेढिणिज्जिराकालब्भंतरे सुहुमेइंदिएसु पवेसणिज्जो। एत्थ पुण सुत्तावयवे णिरवयवपरूविदावयवभावत्थे एवं पदसंबंधो कायव्वो—तदो पच्छा एइंदिए गदो संतो ताव अच्छिदो जाव उवसामयसमयपबद्धा गालिदा त्ति। केत्तियकालं? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं, अण्णहा उवसामयसमयपबद्धाणं णिग्गलणाणुववत्तीदो।

§ ५६५. एवं कम्मं हदसमुप्पत्तियं काऊण तत्थतणसंचयगालणट्ठं तदो पुणो मणुस्सेसु आगदो त्ति वुत्तं। तत्थागदस्स वावारविसेसपदुप्पायणट्ठमाह—पुव्वकोडी देसूणं संजममणुपालियूण अंतोमुहुत्तसेसे मिच्छत्तं गदो। संजमगुणसेढिणिज्जराए तं मणुसभवं सहलं काऊण सव्वजहण्णंतोमुहुत्तसेसे आउए देवगदिपाओग्गे मिच्छत्तं गदो

शामकके समयप्रबद्धोंके साथ ही गल जाते है, इसलिये इससे नपुंसकवेदको कोई लाभ नहीं है सो ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि उन कर्मपरमाणुओंके नहीं गलने पर बंधनेवाली नपुंसकवेद प्रकृतिमें परप्रकृतिसंक्रमणके द्वारा और उदयको प्राप्त हुई नपुंसकवेद प्रकृतिमें स्तिवुक संक्रमणके द्वारा बहुत द्रव्यका प्रसंग प्राप्त होता है। इसलिये दोषका परिहार करनेके लिये और आठ वर्षके भीतर नपुंसकवेदका जो संचय हुआ है उसे गलानेके लिये एकेन्द्रियोंमें प्रवेश कराना प्रकृतमें उपयोगी है यह सिद्ध हुआ।

§ ५६४ सूत्रमें 'उवसामयसमयपबद्धा णिग्गलिदा' यह जो वचन दिया है वह अन्तदीपक है, इसलिये इससे यह ज्ञात होता है कि संयतासंयत आदिके समयप्रबद्धोंको गलानेके लिये भी इस जीवको बहुत बार गुणश्रेणिनिर्जरा कालके भीतर सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें प्रवेश कराना चाहिये। किन्तु यहाँ पर सूत्रके इस हिस्सेके सब अवयवोंका भावार्थ कहने पर पदोंका सम्बन्ध इस प्रकार करना चाहिये—इसके बाद उपशामकके समयप्रबद्ध गलने तक यह जीव एकेन्द्रियोंमें रहा। वहाँ कितने काललक रहा यह बतलानेके लिए 'पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक रहा' यह कहा है। अन्यथा उपशामकके समयप्रबद्ध नहीं गल सकते हैं।

§ ५६५ इस प्रकार कर्मको हतसमुत्पत्तिक करके एकेन्द्रियोंमें हुए संचयको गलानेके लिये 'तदो पुणो मणुस्सेसु आगदो' यह सूत्रवचन कहा है। फिर मनुष्योंमें आकर जो व्यापार विशेष होता है उसका कथन करनेके लिये 'पुव्वकोडी देसूणं संजममणुपालियूण अंतोमुहुत्तसेसे मिच्छत्तं गदो' सूत्र वचन कहा है। संयमगुणश्रेणिनिर्जराके द्वारा उस मनुष्य भवको सफल करके जब सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहता है तब देवगतिके योग्य आयुका बन्ध करके मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

१. ता०प्रतौ 'फलाभावादो' इति पाठः।

त्ति उत्तं होइ। आमरणंतं गुणसेढिणिज्जरमकराविय किमट्ठमेसो मिच्छत्तं णीदो? ण, अण्णहा दसवस्ससहस्सिएसु देवेसु उववज्जावेदुमसक्कियत्तादो। तत्थुप्पायणं च सव्वलहु एइंदिएसुप्पाइय सामित्तविहाणट्ठमणुगंतव्वं। जइ एवं संजदो चेव अंतोमुहुत्तसेसाउओ मिच्छत्तवसेण एइंदिएसुप्पाएयव्वो। दसवस्ससहस्सियदेवेसुप्पायणमणत्थयं, दसवस्ससहस्सब्भंतरसंचयस्स तत्थ संभवेण फलाणुवलंभादो। ण अंतोमुहुत्तमुववण्णेण सम्मत्तं लद्धमिच्चेदेण सुत्तावयवेण तस्स परिहारो, त्थिवुक्कसंकमवसेण तत्थतणपुरिसवेदसंचयस्स दुप्पडिसेहादो त्ति? एत्थ परिहारो वुच्चदे—ण ताव एसो संजदो मिच्छत्तं णेदूण एइंदिएसुप्पाइदुं सक्किज्जइ, तत्थुप्पज्जमाणस्स तस्स तिव्वसंकिलेसेण पुव्वगुणसेढिणिज्जराए थोवयरत्तप्पसंगादो। ण एत्थ वि तहा पसंगो, देवगइपाओग्गमिच्छत्तद्धादो एइंदियपाओग्गमिच्छत्तद्धाए संकिलेसावूरणकालस्स च संखेज्जगुणत्तेण एत्थतणहाणीदो बहुतरहाणीए तत्थुवलंभादो। ण एत्थ देवेसु संचओ

शंका—मरणपर्यन्त गुणश्रेणिनिर्जरा न कराके इसे मिथ्यात्वमें क्यों ले गये हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वमें ले जाये बिना दस हजार वर्षकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न कराना अशक्य होता, इसलिये अन्तमें इसे मिथ्यात्वमें ले गये हैं। अतिशीघ्र एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न कराके प्रकृत स्वामित्वका विधान करनेके लिये ही दस हजार वर्षकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न कराया गया है यहाँ ऐसा जानना चाहिये।

शंका—यदि ऐसा है तो संयतको ही अन्तर्मुहूर्त आयुके शेष रहने पर मिथ्यात्वमें ले जाकर और उसके कारण एकेन्द्रियोमें उत्पन्न कराना चाहिये। दस हजार वर्षकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न कराना अनर्थक है, क्योंकि देवोंमें उत्पन्न करानेसे दस हजार वर्षके भीतर जो संचय प्राप्त होता है वह उसके बाद एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न कराने पर वहाँ पाया जाता है, इसलिये देवोंमें उत्पन्न करानेसे कोई लाभ नहीं है। यदि कहा जाय कि इससे आगे सूत्रमें जो 'अंतोमुहुत्तमुववण्णेण सम्मत्तलद्धं' इत्यादिक कहा है सो इस वचनसे उक्त शंकाका परिहार हो जाता है सो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि देवपर्यायमें जो पुरुषवेदका संचय होता है एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होने पर वह संचय स्तिवुकसंक्रमणके द्वारा नपुंसकवेदमें प्राप्त होने लगनेके कारण उसका निषेध करना कठिन है ?

समाधान—अब उक्त शंकाका परिहार करते हैं—इस संयतको मिथ्यात्वमें ले जाकर एकेन्द्रियोंमें तो उत्पन्न कराना शक्य नहीं है, क्योंकि जो संयत मिथ्यात्वमें जाकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाला है उसके तीव्र संक्लेश पाया जानेके कारण पूर्व गुणश्रेणिनिर्जरा बहुत ही कम प्राप्त होती है।

यदि कहा जाय कि जो संयत मिथ्यात्वमें जाकर देव होनेवाला है उसके भी तीव्र संक्लेशके कारण पूर्व गुणश्रेणिनिर्जरा अति स्वल्प प्राप्त होती है सो यह बात नहीं है, क्योंकि देवगतिके योग्य मिथ्यात्वके कालसे एकेन्द्रियके योग्य जो मिथ्यात्वका काल है वह संख्यातगुणा है और उसके योग्य संक्लेशको प्राप्त करनेमें भी जो काल लगता है वह भी संख्यातगुणा है, इसलिये एकेन्द्रियोंके मिथ्यात्वमें गुणश्रेणिनिर्जराकी जितनी हानि होति है उससे देवगतिके मिथ्यात्वमें बहुत हानि पाई जाती है। यदि कहा जाय कि यहाँ देवोंमें अधिक संचय होता है, इसलिये उक्त दोष तो

अहिओ त्ति उत्तदोसो वि, तस्स संखेज्जावलियमेत्तसमयपबद्धपमाणस्स एयसमयगुणसेढिणिज्जराए असंखेज्जदिभागत्तेण पाहण्णियाभावादो। एदेणेव सेसगईसु वि उप्पायणासंका पडिसिद्धा, तत्थुप्पत्तिपाओग्गमिच्छत्तद्धाए बहुत्तदंसणादो। किमट्ठमेसो दसवस्ससहस्सिएसु सम्मत्तं गेण्हविओ? ण, ओकड्डणाबहुत्तेण अहियारट्ठिदीए सण्हीकरणट्ठं तहाकरणादो। मिच्छादिट्ठिम्मि वि एत्थासंती ओकड्डणा बहुई अत्थि, तदो उहयत्थ वि सरिसमेदं फलमिदि णासंकणिज्जं, तत्थ ओकड्डणादो सम्माइट्ठिओकड्डणाए विसोहिपरतंताए बहुवयरत्तदंसणादो। तम्हा सुहासियमेदमंतोमुहुत्तमुववण्णेण तेण सम्मत्तं लद्धमिदि। एवमधट्ठिदीए णिज्जरं काऊण अंतोमुहुत्तावसेसे जीविदव्वए त्ति मिच्छत्तं गदो, एइंदिएसुप्पत्तीए अण्णहाणुववत्तीदो मिच्छत्तमेसो णीदो। तत्थ उप्पादो किमट्ठमिच्छिज्जदे चे? ण, एइंदियोववादिणो देवस्स तप्पच्छायदपढमसमए एइंदियस्स च संकिलेसवसेण उक्कड्डणाबहुत्तमोकड्डणोदीरणाणं च थोवत्तमिच्छिय तहाब्भुवगमादो।

बना ही रहता है अर्थात् मिथ्यात्वमें ले जाकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न करानेसे जो दोष प्राप्त होता है वह दोष यहाँ भी बना रहता है सो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि एक देवके जो संख्यात आवलिप्रमाण समयप्रबद्धोंका संचय होता है वह एक समयमें होनेवाली गुणश्रेणि निर्जराके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे उसकी यहाँ प्रधानता नहीं है। इसीसे शेष गतियोंमें भी उत्पन्न करानेकी आशंकाका निषेध हो जाता है, क्योंकि वहाँ उत्पन्न करानेके योग्य मिथ्यात्वका काल बहुत देखा जाता है।

शंका—इसे दस हजार वर्षकी आयुवाले देवोंमें ले जाकर सम्यक्त्व किसलिये ग्रहण कराया गया है?

समाधान—नहीं, क्योंकि अधिक अपकर्षणाके द्वारा अधिकृत स्थितिके सूक्ष्म करनेके लिये वैसा कराया गया है।

शंका—जो अपकर्षण यहाँ सम्यग्दृष्टिके नहीं होता वह मिथ्यादृष्टिके भी बहुत देखा जाता है इसलिये विवक्षित लाभ तो दोनों जगह ही समान है, फिर इसे सम्यग्दृष्टि करानेसे क्या लाभ है?

समाधान—ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि सम्यग्दृष्टिके जो अपकर्षण होता है वह विशुद्धिके निमित्तसे होता है इसलिये वह मिथ्यादृष्टिके होनेवाले अपकर्षणसे बहुत देखा जाता है।

इसलिये सूत्रमें जो 'अंतोमुहुत्तमुववण्णेण तेण सम्मत्तं लद्धं' यह कहा है सो उचित ही कहा है। इस प्रकार उक्त जीव अधःस्थितिकी निर्जरा करता हुआ जब जीवनमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रह जाय तब मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ, क्योंकि अन्यथा एकेन्द्रियोंमें उत्पत्ति नहीं बन सकनेके कारण इसे मिथ्यात्वमें ले गये हैं।

शंका—ऐसे जीवका अन्तमें एकेन्द्रियोंमें उत्पाद किसलिये स्वीकार किया गया है?

समाधान—नहीं, क्योंकि जो देव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता है उसके एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें और जो एकेन्द्रिय एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता है उसके एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें संक्लेशके कारण उत्कर्षण बहुत होता है और अपकर्षण तथा उदीरणा

एदस्स चेव जाणावणट्ठमिदमाह—तदो विकड्डिदाओ ट्ठिदीओ त्ति । सव्वेसिं कम्माणं ट्ठिदीओ मिच्छत्तसहगदतिव्वयरसंकिलेसवसेण सम्मादिट्ठिबंधादो वियड्डिदाओ वि दूरमक्खिविय पबद्धाओ संतट्ठिदीओ च णिरुद्धट्ठिदीए सह वट्टमाणाओ दूरयरमुक्कड्डिय णिक्खित्ताओ त्ति वुत्तं होइ । तप्पाओग्गसव्वरहस्साए मिच्छत्तद्धाए एत्थ सव्व-रहस्सग्गहणेण ओघजहण्णमिच्छत्तकालस्स गहणं पसज्जइ त्ति तप्पडिसेहट्ठं तप्पाओग्ग-विसेसणं कदं । एइंदियुप्पत्तिप्पाओग्गसव्वजहण्णमिच्छत्तकालेणे त्ति भणिदं होइ । एवमेत्तिएण कालेण उक्कड्डणाए उक्कस्सट्ठिदिबंधाविणाभाविणीए वावदो पयदगोवुच्छं सण्हीकरिय एइंदिएसु उववण्णो, अण्णहा अइजहण्णणवुंसयवेदोदयासंभवादो । एत्थुद्देसे वि पयदोवजोगिपयत्तविसेसपदुप्पायणट्ठमाह—तत्थ वि तप्पाओग्गउक्कस्सयं संकिलेसं गदो त्ति । तत्थ वि उक्कस्सयसंकिलेसं किमिदि णीदो ? उदीरणा-बहुत्तणिरायरणट्ठं ।

§ ५६६. एवमेत्तिएण लक्खणेणोवलक्खियस्स तस्स पढमसमयएइंदियस्स णवुंसयवेदसंबंधी जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं होइ । एत्थ विदियसमयप्पहुडि उवरि गोवुच्छविसेसहाणिवसेण जहण्णसामित्तं गेण्हामो त्ति भणिदे ण तहा घेप्पइ,

कम होती है इसलिये ऐसा स्वीकार किया गया है ।

इस प्रकार इसी बातके जतानेके लिये 'तदो विकड्डिदाओ ट्ठिदीओ' यह सूत्रवचन कहा है । मिथ्यात्वके साथ प्राप्त हुए अति तीव्र संक्लेशरूप परिणामोंके कारण सब कर्मों की स्थितियोंको सम्यग्दृष्टिके बन्धसे बढ़ाकर अर्थात् बहुत दूर निक्षेप करके बाँधा और विवक्षित स्थितिके साथ जो सत्कर्मकी स्थितियां विद्यमान हैं उन्हें बहुत दूर उत्कर्पित करके निक्षिप्त किया यह उक्त सूत्रवचनका तात्पर्य है । तप्पाओग्गसव्वरहस्साए मिच्छत्तद्धाए' इस सूत्र-वचनमें जो 'सव्वरहस्स' पदका ग्रहण किया है सो इससे ओघ जघन्य मिथ्यात्वके कालका ग्रहण प्राप्त होता है, इसलिये उसका निषेध करनेके लिये 'तत्प्रायोग्य' विशेषण दिया । इससे यहाँ एकेन्द्रियोंमें उत्पत्तिके योग्य सबसे जघन्य काल विवक्षित है यह तात्पर्य निकलता है । इस प्रकार इतने कालके द्वारा उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अविनाभावी उत्कर्षणमें लगा हुआ उक्त जीव प्रकृत गोपुच्छाको सूक्ष्म करके एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ, अन्यथा अत्यन्त जघन्य नपुंसकवेदका उदय नहीं बन सकता है । इस प्रकार एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर भी उक्त जीव प्रकृतमें उपयोगी पड़ने-वाले जिस प्रयत्नविशेषको करता है उसका कथन करनेके लिये 'तत्थ वि तप्पाओग्गउक्कस्सयं संकिलेसं गदो' यह सूत्रवचन कहा है ।

शंका—एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर भी इस जीवको उत्कृष्ट संक्लेश क्यों प्राप्त कराया गया ?

समाधान—जिससे इसके बहुत उदीरणा न हो सके, इसलिये इसे उत्कृष्ट संक्लेश प्राप्त कराया गया है ।

§ ५६६. इस प्रकार इतने लक्षणोंसे उपलक्षित प्रथम समयवर्ती वह एकेन्द्रिय जीव नपुंसकवेदके उदयसे झीनस्थितिवाले जघन्य द्रव्यका स्वामी होता है । यहाँ पर कितने ही लोग दूसरे समयसे लेकर ऊपर गोपुच्छविशेषकी हानि होनेके कारण जघन्य स्वामित्वको ग्रहण

विदियादिसमएसु संकिलेससव्वहाणिदंसणादो। तम्हा एत्थेव सामित्तं णिरवज्जमिदि सिद्धं।

❀ इत्थिवेदस्स जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं ?

§ ५६७. कस्से त्ति अहियारे संबंधो कायव्वो, अण्णहा सुत्तत्थस्स असंपुण्णत्तप्पसंगादो। सेसं सुगमं।

❀ एसो चेव णवुंसयवेदस्स पुव्वं परूविदो जाधे अपच्छिममणुस्सभवग्गहणं पुव्वकोडी देसूणं संजममणुपालियूण अंतोमुहुत्तसेसे मिच्छत्तं गओ। तदो वेमाणियदेवीसु उववण्णो अंतोमुहुत्तद्धमुववण्णो उक्कस्ससंकिलेसं गदो। तदो विकड्डिदाओ[1] ट्ठिदीओ उक्कड्डिदा कम्मंसा जाधे तदो अंतोमुहुत्तद्धमुक्कस्सइत्थिवेदस्स ट्ठिदिं बंधियूण पडिभग्गो जादो। आवलियपडिभग्गाए तिस्से देवीए इत्थिवेदस्स उदयादो जहण्णयं झीणट्ठिदियं।

करनेके लिये कहते हैं परन्तु तत्त्वतः वैसा ग्रहण करना शक्य नहीं है, क्योंकि दूसरे आदि समयोंमें पूरा संक्लेश न रहकर उसकी हानि देखी जाती है, इसलिये निर्दोष रीतिसे जघन्य स्वामित्व प्रथम समयमें ही प्राप्त होता है यह बात सिद्ध होती है।

विशेषार्थ—यहाँ पर उदयकी अपेक्षा नपुंसकवेदके झीनस्थितिवाले द्रव्यका जघन्य स्वामित्व किस प्रकारके एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें होता है इसका विशेष खुलासा टीकामें किया ही है। उसका आशय इतना ही है कि उक्त क्रमसे जो जीव आकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता है उसके नपुंसकवेदका द्रव्य उत्तरोत्तर घटता चला जाता है और इस प्रकार अन्तमें एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होने पर प्रथम समयमें नपुंसकवेदका उदयगत सबसे जघन्य द्रव्य प्राप्त हो जाता है।

*** उदयकी अपेक्षा स्त्रीवेदके झीनस्थितिवाले जघन्य द्रव्यका स्वामी कौन है।**

§ ५६७. इस सूत्रमें 'कस्स' इस पदका अधिकार होनेसे सम्बन्ध कर लेना चाहिये, अन्यथा सूत्रका अर्थ असंपूर्ण रहेगा। शेष कथन सुगम है।

*** नपुंसकवेदकी अपेक्षा पहले जो जीव विवक्षित था वही जब अन्तिम मनुष्य भवको ग्रहण करके और कुछ कम एक पूर्वकोटि काल तक संयमका पालन करके अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहने पर मिथ्यात्वमें गया। फिर वैमानिक देवियोंमें उत्पन्न हुआ। फिर वहाँ उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त काल बाद उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त हुआ जिससे उसने वहाँ सम्भव उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किया। और जब यह क्रिया की तभी प्राचीन सत्तामें स्थित कर्मोंका उत्कर्षण किया। फिर उस समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक स्त्रीवेदका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करके उत्कृष्ट संक्लेशसे निवृत्त हुआ। इस प्रकार निवृत्त हुए उस देवीको जब एक आवलि काल हो गया तब वह उदयकी अपेक्षा स्त्रीवेदके झीनस्थितिवाले द्रव्यका जघन्य स्वामी है।**

---

१. विकड्डणं ति उक्कड्डणं कर्म प्र० उदय गा० २२।

§ ५६८. एदस्स सामित्तसुत्तस्स अत्थविवरणं कस्सामो—एसो चेव जीवो णवुंसयवेदस्स सामित्तेण पुव्वपरूविदो समणंतरपरूविदासेसलक्खणोवलक्खिओ जाधे सामित्तकालं पेक्खियूण अपच्छिमं मणुस्सभवग्गहणं देसूणपुव्वकोडिपमाणं पुव्वविहाणेण गुणसेढिणिज्जराविणाभाविसंजममणुपालियूण अंतोमुहुत्तसेसे सगाउए मिच्छत्तं गदो। एत्थ सव्वत्थ वि पुव्वपरूवणादो णत्थि णाणत्तं। णवरि किमट्ठमेसो मिच्छत्तं णीदो त्ति पुच्छिदे इत्थिवेदएसुप्पायणट्ठमिदि वत्तव्वं, अण्णहा तत्थुप्पत्तीए असंभवादो। ण तत्थुप्पादो णिरत्थओ, पयदसामित्तस्स सोदएण विणा विहाणाणुववत्तीदो। तमेवाह—तदो वेमाणियदेवीसु उववण्णो त्ति। सेसगइपरिहारेण देवगदीए चे उप्पायणं गुणसेढिलाहरक्खणट्ठं अण्णगइपाओग्गमिच्छत्तद्धाए बहुत्तेण तस्स विणासप्पसंगादो। अपज्जत्तद्धाए च थोवीकरणट्ठं, अण्णहा तत्थ बहुदव्वसंचयावत्तीदो। भवणादिहेट्ठिमदेवीसु उप्पाइय गेण्हामो, विसेसाभावादो त्ति णासंकणिज्जं, तत्थुप्पज्जमाणजीवस्स पुव्वमेव एत्तो तिव्वसंकिलेसावूरणेण गुणसेढिणिज्जरालाहबहुत्तभावावत्तीदो। तत्र तथोत्पन्नस्य

---

§ ५६८. अब इस स्वामित्वविषयक सूत्रके अर्थका खुलासा करते हैं—जिस जीवका पहले नपुंसकवेदके स्वामित्वरूपसे कथन कर आये हैं समनन्तर पूर्वमें कहे गये सब लक्षणोंसे युक्त वही जीव जब स्वामित्वकालकी अपेक्षा अन्तिम मनुष्यभवको ग्रहण करके और पूर्व विधिके अनुसार गुणश्रेणिनिर्जराके अविनाभावी संयमका कुछ कम एक पूर्वकोटि काल तक पालन करके अपनी आयुमें अन्तर्मुहूर्त बाकी रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। यहाँ सभी जगह नपुंसकवेद-सम्बन्धी पूर्व प्ररूपणासे कोई भेद नहीं है।

शंका—इस जीवको मिथ्यात्वमें किसलिये ले गये हैं ?

समाधान—स्त्रीवेदियोंमें उत्पन्न करानेके लिये इसे मिथ्यात्वमें ले गये हैं, अन्यथा इसकी उत्पत्ति स्त्रियोंमें नहीं हो सकती।

यदि कहा जाय कि इस जीवको मिथ्यात्वमें उत्पन्न कराना निरर्थक है सो यह बात भी नहीं है, क्योंकि स्वोदयके बिना प्रकृत स्वामित्वका विधान करना नहीं बनता है और स्त्रीवेदका उदय तब हो सकता है जब इसे मिथ्यात्वमें ले जाया जाय, इसलिये इसे मिथ्यात्वमें उत्पन्न कराया है। इसी बातको बतलानेके लिये 'तदो वेमाणियदेवीसु उववण्णो' यह कहा है। इसे देवगतिमें ही क्यों उत्पन्न कराया है इस प्रश्नका उत्तर देने के लिये आचार्य कहते हैं कि गुणश्रेणिजन्य लाभकी रक्षा करनेके लिये शेष गतियोंको छोड़कर देवगतिमें ही उत्पन्न कराया है, क्योंकि अन्य गतिके योग्य मिथ्यात्वका काल बहुत होनेसे वहाँ गुणश्रेणिजन्य लाभका विनाश प्राप्त होता है। दूसरे अपर्याप्त कालको कम करनेके लिये भी देवोंमें उत्पन्न कराया है, अन्यथा वहाँ बहुत द्रव्यका संचय प्राप्त होता है। यदि कहा जाय कि भवनवासिनी आदि देवियोंमें उत्पन्न कराके जघन्य स्वामित्व प्राप्त कर लेंगे, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है सो ऐसी आशंका करनी भी ठीक नहीं है, क्योंकि वहाँ उत्पन्न होनेवाले ऐसे जीवके पहलेसे ही तीव्र संक्लेश पाया जाता है, इसलिये इसके गुणश्रेणिजन्य बहुत लाभ नहीं बन सकता है। अतः भवनवासिनी देवियोंमें उत्पन्न न कराके वैमानिक देवियोंमें उत्पन्न कराया

तस्य व्यापारविशेषप्रतिपादनार्थमाह—अंतोमुहुत्तद्धमुववण्णो इत्यादि। अत्रान्तर्मुहूर्त्त-मपर्याप्तकाले संक्लेशोत्कर्षस्यासम्भवात्पर्याप्तकालविषयः संक्लेशोत्कर्षः प्ररूपितः। तथा परिणतः किंप्रयोजनमित्याशंक्याह—तदो इत्यादि। तदो तम्हा संकिलेसादो हेउभूदादो वियड्डिदाओ सव्वेसिं कम्माणं द्विदीओ अंतोकोडाकोडिमेत्तट्ठिदिबंधादो वि दूरमुकड्डिय दीहाबाहाए पबद्धाओ त्ति भणिदं होइ। जाधे एवमुक्कस्सओ संकिलेसो आवूरिदो ताधे चेव उकड्डणाकमेण चिराणसंतकम्मपदेसा बज्झमाणणवकबंधुक्कस्स-ट्ठिदीए उवरि उकड्डिय णिक्खित्ता, ट्ठिदिबंधस्सेव उकड्डणाए वि तदण्णयवदिरेयाणु-विहाणत्तादो। ण च उकड्डणाबहुत्ताविणाभावी उक्कस्साबाहापडिबद्धो उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो णिरत्थओ, णिरुद्धट्ठिदिपदेसाणमुकड्डणाए विणा सण्हीभावाणुप्पत्तीदो। एसो सव्वो वि वावारविसेसो अहियारट्ठिदिमाबाहाब्भंतरे पवेसिय संकिलेसपरिणद-पढमसमए परूविदो। तदो प्पहुडि अंतोमुहुत्तद्धमुक्कस्समित्थिवेदस्स ट्ठिदिं बंधियूग पडिभग्गा जादा त्ति।

§ ५६६. एत्थतणउक्कस्ससद्दो अंतोमुहुत्तद्धाए ट्ठिदीए च विसेसणभावेण संबंधेयव्वो। तेण सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तकालं संकिलेसमावूरिय पण्णारससागरोवमकोडा-कोडिमेत्तमित्थिवेदस्सुक्कस्सट्ठिदिं बंधिदूण एत्तियं कालमुकड्डणाए पयदणिसेयं जहण्णी-

है। इस प्रकार जो जीव वैमानिक देवियोंमें उत्पन्न हुआ है उसके व्यापारविशेषका कथन करनेके लिये 'अंतोमुहुत्तद्धमुववण्णो' इत्यादि कहा है। यहाँ अपर्याप्त कालके भीतर अन्तर्मुहूर्त तक संक्लेशका उत्कर्ष नहीं हो सकता, इसलिये पर्याप्त कालविषयक संक्लेशका उत्कर्ष कहा है। इस प्रकार संक्लेशरूपसे परिणत करानेका क्या प्रयोजन है ऐसी आशंका होने पर 'तदो' इत्यादि कहा है। आशय यह है कि इस संक्लेशके कारण सब कर्मोंकी स्थितियोंको बढ़ाया अर्थात् जिन कर्मोंका स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण हो रहा था उनका बड़े आबाधाके साथ बहुत अधिक स्थितिको बढ़ाकर बन्ध किया। और जब इस प्रकारका उत्कृष्ट संक्लेश हुआ तब उत्कर्षणके क्रमानुसार प्राचीन सत्तामें स्थित कर्मपरमाणुओंको बँधनेवाले नवकबन्धकी उत्कृष्ट स्थितिके ऊपर उत्कर्षित करके निक्षिप्त किया, क्योंकि स्थितिबन्धके समान उत्कर्षणका भी संक्लेशके साथ अन्वय-व्यतिरेकसम्बन्ध पाया जाता है। यदि कहा जाय कि प्रकृतमें बहुत उत्कर्षणका अविनाभावी और उत्कृष्ट आबाधासे सम्बन्ध रखनेवाला उत्कृष्ट स्थितिबन्ध निरर्थक है सो यह बात भी नहीं है, क्योंकि विवक्षित स्थितिके कर्मपरमाणु उत्कर्षणके बिना सूक्ष्म नहीं हो सकते, इसलिये बहुत उत्कर्षण और उत्कृष्ट स्थितिबन्ध दोनों सार्थक हैं। अधिकृत स्थितिको आबाधाके भीतर प्रवेश कराके संक्लेशसे परिणत होनेके प्रथम समयमें इस सब व्यापारविशेषका कथन किया है। फिर यहाँसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके फिर उसे उत्कृष्ट संक्लेशसे निवृत्त कराया है।

§ ५६६. यहाँ सूत्रमें जो उत्कृष्ट शब्द आया है सो उसका अन्तर्मुहूर्त काल और स्थिति इन दोनोंके साथ विशेषणरूपसे सम्बन्ध करना चाहिये। इससे यह अर्थ लेना चाहिये कि सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक संक्लेशको बढ़ाकर उसके द्वारा पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्त्रीवेदका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करके और इतने ही काल तक उत्कर्षण द्वारा प्रकृत निषेकको जघन्य

करिय संकिलेसादो पडिभग्गा जादा त्ति घेत्तव्वं, अंतोमुहुत्तादो, उवरि उक्कस्सट्ठिदिबंधपाओग्गुक्कस्ससंकिलेसेणावट्ठाणाभावादो । किमेत्थेव पडिभग्गपढमसमयजहण्णसामित्तं दिज्जइ ? न, इत्याह—आवलियपडिभग्गाए तिस्से देवीए इत्यादि । तदित्थणिसेयस्स पयत्तेण जहण्णीकयत्तादो एत्तो तस्स समयूणावलियमेत्तगोवुच्छविसेसाणं हाणिदंसणादो च । जइ वि एत्थ ओकड्डणाए संभवो तो वि उदयावलियबाहिरे चेव ओकड्डिदपदेसग्गस्स णिक्खेवो त्ति भावत्थो । णासंखेज्जलोगपडिभागियं दव्वमासंकणिज्जं, तस्स दोगुणहाणिपडिभागियगोवुच्छविसेसादो असंखेज्जगुणहीणस्स पाहण्णियाभावादो ।

करके संक्लेशसे निवृत्त हुआ, क्योंकि उत्कृष्ट संक्लेशका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसके बाद फिर उत्कृष्ट स्थितिबन्धके योग्य उत्कृष्ट संक्लेशके साथ रहना नहीं बन सकता है। क्या यहाँ ही प्रतिभग्न होने के प्रथम समयमें जघन्य स्वामित्व दिया गया है। नहीं, इस प्रकार इसी बातके बतलानेके लिये 'आवलियपडिभग्गाए तिस्से देवीए' इत्यादि कहा है। प्रतिभग्न होनेके समयसे लेकर एक आवलिप्रमाण कालके अन्तमें जघन्य स्वामित्व देनेका कारण यह है कि वहाँका निषेक प्रयत्नसे जघन्य किया गया है। दूसरे प्रतिभग्न होनेके समयके निषेकसे उसमें एक समय कम एक आवलिप्रमाण गोपुच्छाविशेषोंकी हानि देखी जाती है। यद्यपि यहाँ अपकर्षणकी सम्भावना है तो भी अपकर्षणको प्राप्त हुए कर्मपरमाणुओंका निक्षेप अधिकतर उदयावलिके बाहर ही होता है यह इसका भावार्थ है। यदि कहा जाय कि प्रकृतमें स्त्रीवेद उदयवाली प्रकृति होनेसे अपकर्षणको प्राप्त हुए द्रव्यमें असंख्यात लोकका भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना द्रव्य तो इस प्रकृतिके उदयावलिके भीतर ही प्राप्त होता है सो ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि दो गुणहानि अर्थात् निषेकहारका भाग देनेसे जो गोपुच्छविशेष प्राप्त होता है उससे उक्त अपकर्षित द्रव्य असंख्यातगुणा हीन होता है, इसलिये उसकी प्रकृतमें प्रधानता नहीं है।

विशेषार्थ—यहाँ पर उदयकी अपेक्षा स्त्रीवेदके झीनस्थितिवाले जघन्य द्रव्यका स्वामी बतलाया है सो और सब विधि तो नपुंसकवेदके स्वामित्वके समान है किन्तु अन्तमें मनुष्यभवके बाद प्रक्रिया बदल जाती है। नपुंसकवेदके प्रकरणमें जैसे उस जीवको मनुष्यमें पैदा करानेके बाद फिर दस हजार वर्षकी आयुवाले देवोंमें ले गये और फिर वहाँसे एकेन्द्रियोंमें ले गये वैसा यहाँ न करके इस जीवको मनुष्य भवके बाद देवियोंमें उत्पन्न कराना चाहिये। फिर अन्तर्मुहूर्तके बाद स्त्रीवेदका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध और उत्कर्षण कराना चाहिये। फिर अन्तर्मुहूर्तमें उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे निवृत्त होने पर एक आवलि कालके अन्तमें प्रकृत जघन्य स्वामित्व कहना चाहिये। इस प्रकरणके अन्तमें टीकामें एक शंका उठाई गई है जिसका भाव यह है कि उत्कृष्ट संक्लेशसे निवृत्त होनेके प्रथम समयमें प्रस्तुत जघन्य स्वामित्व न कहकर जो उस समयसे लेकर एक आवलिके अन्तमें जघन्य स्वामित्व कहा है सो ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि प्रति समय जो उपरितन स्थितिमें स्थित द्रव्यका अपकर्षण होता है उसके कारण एक आवलिके अन्तिम समयमें स्थित द्रव्यका प्रमाण प्रथम समयमें स्थित द्रव्यके प्रमाणसे अधिक हो जाता है ? इस शंकाका समाधान दो प्रकारसे किया गया है। समाधानमें पहली बात तो यह बतलाई गई है कि अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप उदयावलिमें न होकर उदयावलिके बाहर होता है, इसलिये उदयावलिके अन्तिम समयमें स्थित द्रव्यका प्रमाण प्रथम समयमें स्थित द्रव्यके प्रमाणसे

❀ अरदि-सोगाणमोकड्डणादितिगझीणट्ठिदियं जहण्णयं कस्स ?

§ ५७०. सुगमं ।

❀ एइंदियकम्मेण जहण्णएण तसेसु आगदो । संजमासंजमं संजमं च बहुसो लद्धूण तिण्णि वारे कसाए उवसामेयूण एइंदिए गदो । तत्थ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमच्छियूण जाव उवसामयसमयबद्धा गलंति तदो मणुस्सेसु आगदो । तत्थ पुव्वकोडी देसूणं संजममणुपालियूण कसाए उवसामेयूण उवसंतकसाओ कालगदो देवो तेत्तीससागरोवमिओ जादो । जाधे चेय हस्स-रईओ ओकड्डिदाओ उदयादिणिक्खित्ताओ अरदि-सोगा ओकड्डित्ता

अधिक नहीं हो सकता । पर इस उत्तर पर यह शंका होती है कि यह नियम तो अनुदयवाली प्रकृतियोंके सम्बन्धमें है उदयवाली प्रकृतियोंके सम्बन्धमें नहीं, क्योंकि उदयवाली प्रकृतियोंमें अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप उदय समयसे प्राप्त होता है, इसलिये पूर्वोक्त शंकासे मूल शंकाका निराकरण न होकर वह पूर्ववत् खड़ी रहती है, इसलिये इस अन्तवर्ती शंकाको ध्यानमें रखकर समाधानमें दूसरी बात यह कही गई है कि इस प्रकार अपकर्षण होकर जिस द्रव्यका उदयावलिमें निक्षेप होता है वह द्रव्य एक गोपुच्छविशेषके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, इसलिये उसकी यहाँ प्रधानता नहीं है । असंख्यात लोकका भाग देनेपर जो एक भागप्रमाण द्रव्य प्राप्त होता है उतने अपकर्षित द्रव्यका उदयावलिके अन्दर निक्षेप होता है । यह तो अपकर्षित द्रव्यका प्रमाण है । तथा दो गुणहानि आयामका भाग देनेपर गोपुच्छविशेष अर्थात् चयका प्रमाण प्राप्त होता है । सर्वत्र एक गुणहानिका काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इससे स्पष्ट है कि एक गोपुच्छविशेषसे उदयावलिमें प्राप्त होनेवाले अपकर्षित द्रव्यका प्रमाण असंख्यातगुणा हीन होता है, इसलिये वह यहाँ प्रधान नहीं है । यही कारण है कि उत्कृष्ट संक्लेशसे निवृत्त होनेके प्रथम समयमें प्रकृत जघन्य स्वामित्व न कहकर एक आवलिकालके अन्तिम समयमें कहा है ।

*** अपकर्षण आदि तीनकी अपेक्षा अरति और शोकके झीनस्थितिवाले जघन्य द्रव्यका स्वामी कौन है ।**

§ ५७०. यह सूत्र सुगम है ।

*** जो जीव एकेन्द्रियोंके योग्य जघन्य सत्कर्मके साथ त्रसोंमें उत्पन्न हुआ । फिर संयमासंयम और संयमको अनेक बार प्राप्त करके और तीन बार कषायोंका उपशम करके एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ उपशामकके समयप्रबद्धोंके गलनेमें लगनेवाले पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक रहा । फिर आकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ कुछ कम एक पूर्वकोटि कालतक संयमका पालन करके और कषायोंको उपशमा कर उपशान्तकषाय गुणस्थानको प्राप्त हुआ । फिर मरकर तेतीस सागरकी आयुवाला देव हुआ । और जब देव हुआ तब हास्य और रतिका अपकर्षण करके उनका उदय समयसे निक्षेप किया तथा अरति और शोकका अपकर्षण करके उनका**

उदयावलियबाहिरे णिक्खित्ता। से काले दुसमयदेवस्स एया ट्ठिदी अरइ-सोगाणमुदयावलियं पविट्ठा ताधे अरदि-सोगाणं जहण्णयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं।

§ ५७१. एत्थ एइंदियकम्मेण जहण्णएणे त्ति उत्ते अभवसिद्धिय-पाओग्गजहण्णसंतकम्मस्स गहणं कायव्वं, दोण्हमेदेसिं भेदाभावादो। सेसावयवा बहुसो परूविदत्तादो सुगमा। णवरि तिण्णिवारे कसाए उवसामेयूणे त्ति वयणं चउत्थकसायुवसामणवारस्स विसेसियपरूवणट्ठं। चउत्थवारे कसाए उवसामेयूण उवसंतकसाओ कालगदो देवो तेत्तीससागरोवमिओ जादो त्ति भणंतस्साहिप्पाओ उवसमसेढीए कालगदो अहमिंददेवेसु च उप्पज्जइ, अण्णत्थुक्कस्ससुक्कलेस्साए असंभवादो त्ति। हंदि जाए लेस्साए परिणदो कालं करेइ तिस्से जत्थ संभवो, तत्थेव णियमेणुप्पज्जइ, ण लेस्संतरविसईकए विसए त्ति। कुदो एस णियमो? सहावदो। ताधे चेव तत्थुप्पण्णपढमसमए हस्स-रदीओ ओकड्डिदाओ उदयादि-णिक्खित्ताओ त्ति एदेण देवेसुप्पण्णपढमसमयप्पहुडि अंतोमुहुत्तकालं हस्स-रदीणं

उदयावलिके बाहर निक्षेप किया। तदनन्तर इस देवके दूसरे समयमें स्थित होनेपर अरति और शोककी एक स्थिति जब उदयावलिमें प्रवेश करती है तब यह जीव अपकर्षण आदि तीनकी अपेक्षा अरति और शोकके झीनस्थितिवाले जघन्य द्रव्यका स्वामी है।

§ ५७१. यहां सूत्रमें 'जो एइंदियकम्मेण जहण्णएण' कहा है सो इससे अभव्योंके योग्य जघन्य सत्कर्मका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि एकेन्द्रियोंके योग्य जघन्य सत्कर्म और अभव्योंके योग्य जघन्य सत्कर्म इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है, दोनोंका एक ही अर्थ है। सूत्रके शेष अवयवोंका अनेक बार प्ररूपण किया है, इसलिये वे सुगम हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि चौथी बार कषायके उपशमानेके सम्बन्धमें विशेष वक्तव्य होनेसे सूत्रमें 'तिण्णिवारे कसाए उवसामेयूण' यह वचन कहा है। फिर कुछ आगे चलकर सूत्रमें 'चउत्थवारे कसाए उवसामेयूण उवसंतकसाओ कालगदो देवो तेत्तीससागरोवमिओ जादो' जो यह कहा है सो ऐसा कहनेका यह अभिप्राय है कि उपशमश्रेणिमें मरकर यह अहमिन्द्र देवोंमें उत्पन्न होता है, क्योंकि अन्यत्र उत्कृष्ट शुक्ललेश्याकी प्राप्ति असम्भव है। यह निश्चित है कि मरते समय पाई जानेवाली लेश्या जहां सम्भव होती है मरकर जीव नियमसे वहीं उत्पन्न होता है। किन्तु दूसरी लेश्याके विषयभूत स्थानमें नहीं उत्पन्न होता।

शंका—यह नियम किस कारणसे है?

समाधान—स्वभावसे।

फिर इसके आगे सूत्रमें जो 'ताधे चेव तत्थुप्पण्णपढमसमए हस्सरदीओ ओकड्डिदाओ उदयादिणिक्खित्ताओ' यह कहा है सो इससे यह ज्ञापित किया है कि देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त कालतक नियमसे हास्य और रतिका ही उदय होता है। तथा फिर

चेव णियमेणुदयो त्ति जाणाविदं । अरदि-सोगा ओकड्डित्ता उदयावलियबाहिरे णिक्खित्ता त्ति एदेण वि दोण्हमेदेसिमुदयस्स तत्थच्चंताभावो सूचिदो, अण्णहा उदयावलियबाहिरे णिक्खेवणियमाभावेण असंखेज्जलोगपडिभागेणुदयावलियब्भंतरे णिसित्तदव्वं घेत्तूण हस्स-रईणं व जहण्णसामित्तं होज्ज ।

§ ५७२. एवमुदयाभावेणुदयावलियबाहिरे ओकड्डिय एयगोवुच्छायारेण णिक्खित्ताणमरइ-सोगाणं से काले दुसमयदेवस्स एया द्विदी उदयावलियं पविट्ठा, हेट्ठा एगसमयस्स गलणादो । ताधे तेसिं जहण्णयमोकड्डणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं होइ, आवलियपविट्ठेयणिसेयस्स तत्तो झीणट्ठिदियत्तेण गहणादो । एत्थुवरि सामित्तासंकाए णत्थि संभवो, तत्थ समयं पडि णिसेयवुड्ढिं मोत्तूण जहण्णभावाणुववत्तीदो । एत्थ के वि आइरिया अत्थसंबंधमवलंबमाणा भणंति—जहा अंतरकदपढमसमयप्पहुडि समयूणावलियमेत्तद्धाणं गंतूण रइ-सोयाणं पढमट्ठिदिं गालिय कालं करिय देवेसु-

---

सूत्रमें 'ओकड्डित्ता उदयावलियबाहिरे णिक्खित्ता' जो यह कहा है सो इस वचनके द्वारा यह सूचित किया है कि इन दोनोंका उदय वहां अत्यन्त असम्भव है । यदि ऐसा न माना जाय तो उदयावलिके बाहर ही इनके द्रव्यके निक्षेपका नियम न रहनेसे असंख्यात लोकप्रमाण प्रतिभागके अनुसार उदयावलिके भीतर निक्षिप्त हुए द्रव्यकी अपेक्षा हास्य और रतिके समान इनका भी जघन्य स्वामित्व हो जाता । यतः हास्य और रतिके समान इनका जघन्य स्वामित्व नहीं बतलाया, इससे ज्ञात होता है कि देवोंमें उत्पन्न होनेपर अन्तर्मुहूर्त कालतक अरति और शोकका उदय न होकर नियमसे हास्य और रतिका ही उदय होता है ।

§ ५७२. इस प्रकार उदय न होनेसे अपकर्षित करके एक गोपुच्छाके आकाररूपसे उदयावलिके बाहर निक्षित हुए अरति और शोककी एक स्थिति तदनन्तर द्वितीय समयवर्ती देवके उदयावलिमें प्रविष्ट होती है, क्योंकि देवके प्रथम समयसे द्वितीय समयवर्ती हो जानेके कारण उदयावलिमें नीचे एक समय गल गया है । तब अपकर्षणादि तीनोंकी अपेक्षा अरति और शोकके झीनस्थितिवाले द्रव्यका जघन्य स्वामी होता है, क्योंकि यहां पर उदयावलिके भीतर प्रविष्ट हुआ एक निषेक अपकर्षणादिकी अपेक्षा झीनस्थितिरूपसे ग्रहण किया गया है । यदि कहा जाय कि प्रकृतमें ऊपर अर्थात् देवपर्यायके तृतीय आदि समयोंमें प्रकृत स्वामित्व सम्भव है सो ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि वहाँ प्रत्येक समयमें एक एक निषेककी वृद्धि होती रहती है, इसलिये जघन्यपना नहीं बन सकता है । आशय यह है कि जैसे प्रकृत अहमिन्द्रके द्वितीय समयमें अरति और शोकका उदयावलिके भीतर एक निषेक था वह स्थिति अगले समयोंमें नहीं रहती है । किन्तु तीसरे समयमें उदयावलिमें दो निषेक हो जाते हैं, चौथे समयमें तीन निषेक हो जाते हैं । इस प्रकार उदयावलिमें उत्तरोत्तर निषेकोंकी वृद्धि होनेसे दूसरे समयके सिवा अन्यत्र प्रकृत जघन्य स्वामित्व नहीं प्राप्त होता ।

शंका—प्रकरणवश कितने ही आचार्य यहाँ पर इस प्रकार कथन करते हैं कि जैसे अन्तर करनेके बाद प्रथम समयसे लेकर एक समय कम एक आवलिप्रमाण स्थान जाने पर रति और शोककी प्रथम स्थितिको गलानेके बाद मरकर देवोंमें उत्पन्न कराने पर लाभ दिखाई

प्पण्णयिदे लाहो दीसइ। तं कधं ? एत्थेव कालं काऊण देवेसुप्पण्णपढमसमए अंतरदीहपमाणं बहुअं होइ दीहमंतरं च पूरेमाणेण गोवुच्छाओ सण्हीकरिय संछुब्भंति, अंतरट्ठिदीसु विहज्जिय तदावूरणट्ठमोकड्डिददव्वस्स पदणादो। तम्हा एवं णिसिंचियावट्ठिदविदियसमए देवस्स उदयावलियब्भंतरपविट्ठेयणिसेयदव्वमोकड्डणादितिण्हं पि जहण्णझीणट्ठिदियं होइ। उवसंतकसाओ पुण कालं काऊण जइ तत्थुप्पइज्जइ तो अंतरदीहपमाणं थोवं होइ, हेट्ठदो चेव बहुअस्स कालस्स गालणादो। थोवे वांतरि पूरिज्जमाणे अंतरणिसेगा थोवा होऊण चिट्ठंति, पुव्वुत्तदव्वस्स एत्थेव संकुडिय पदणादो त्ति। तदसमंजसं, कुदो ? अंतरायामाणुसारेणोकड्डिददव्वादो तप्पूरणट्ठं पदेसग्गग्गहणोवएसादो। तं जहा—दीहयरमंतरं पूरेमाणेणंतरब्भंतरणिसिंचमाणदव्वादो संखेज्जभागहीणदव्वं घेत्तूण थोवयरंतरपूरओ तत्थ णिसेयविरयणं करेइ। कुदो एवं णव्वदे ? विदियट्ठिदिपढमणिसेएण सह एयगोवुच्छण्णहाणुववत्तीदो।

देता है वैसे ही प्रकृतमें करना चाहिये। उक्त प्रकारसे मरकर देवोंमें उत्पन्न करानेसे क्या लाभ है ऐसी आशंका होने पर शंकाकार कहता है कि जो जीव इसी स्थान पर मरकर देवोंमें उत्पन्न होता है उसके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें अन्तरका प्रमाण बहुत अधिक पाया जाता है। और इस दीर्घ अन्तरमें द्रव्यका निक्षेप करते हुए गोपुच्छाओंको सूक्ष्म करके उनका निक्षेप किया जाता है, क्योंकि अन्तरको पूरा करनेके लिये जो अपकर्षित द्रव्य प्राप्त होता है उसका अन्तरकी स्थितियोंमें विभाग होकर पतन होता है। यतः यहाँ पर अन्तरकाल बड़ा है अतः प्रत्येक निषेकमें कम द्रव्य प्राप्त हुआ। इसलिये इस प्रकारसे निक्षेप करके जो देव दूसरे समयमें स्थित है उसके उदयावलिके भीतर प्रविष्ट हुआ एक निषेक द्रव्य अपकर्षण आदि तीनोंकी अपेक्षा जघन्य झीनस्थितिरूप होता है ? किन्तु उपशान्तकषाय जीव मरकर यदि वहाँ उत्पन्न होता है तो इसके अन्तरकालका प्रमाण कम प्राप्त होता है, क्योंकि इसके यहाँ उत्पन्न होनेसे पूर्व ही अन्तरका बहुतसा काल व्यतीत हो चुका है। यतः इस देवको थोड़े ही अन्तरको पूरा करना है इसलिये इसके अन्तरसम्बन्धी निषेक थोड़े होनेसे स्थूल प्राप्त होते हैं, क्योंकि जो द्रव्य पहले बड़े अन्तरके भीतर विभक्त होकर प्राप्त हुआ था वह सबका सब यहाँ इस थोड़ेसे ही अन्तरमें संकुचित होकर पतनको प्राप्त हुआ है ?

समाधान—यह सब कथन ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा उपदेश पाया जाता है कि जैसा अन्तरायाम होता है उसीके अनुसार उसको पूरा करनेके लिये अपकर्षित द्रव्यके कर्मपरमाणु होते हैं। खुलासा इस प्रकार है—बड़े अन्तरको पूरा करनेवाला जीव अन्तरायाममें जितने द्रव्यका निक्षेप करता है थोड़े अन्तरको पूरा करनेवाला जीव उसके संख्यातवें भाग द्रव्यको लेकर वहाँ निषेकरचना करता है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—अन्यथा द्वितीय स्थितिके प्रथम निषेकके साथ एक गोपुच्छा नहीं बन सकती, इससे ज्ञात होता है कि अन्तरायामके अनुसार ही उसको भरनेके लिये अपकर्षित द्रव्य प्राप्त होता है।

विशेषार्थ—ऐसा सामान्य नियम है कि देवगतिमें उत्पन्न होने पर प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त तक अरति और शोकका उदय नहीं होता, इसलिये अपकर्षण आदि तीनोंकी

❀ अरइ-सोगाणं जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स ?

§ ५७३. सुगमं ।

❀ एइंदियकम्मेण जहण्णएण तसेसु आगदो। तत्थ संजमासंजमं संजमं च बहुसो गदो। चत्तारि वारे कसायमुवसामिदा। तदो एइंदिए गदो। तत्थ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमच्छिदो जाव उवसामयसमयपबद्धा णिग्गलिदा त्ति । तदो मणुस्सेसु आगदो । तत्थ पुव्वकोडी देसूणं संजम-मणुपालियूण अपडिवदिदेण सम्मत्तेण वेमाणिएसु देवेसु उववण्णो । अंतो-मुहुत्तमुववण्णो उक्कस्ससंकिलेसं गदो । अंतोमुहुत्तमुक्कस्सट्ठिदिं बंधियूण पडिभग्गो जादो तस्स आवलियपडिभग्गस्स भय-दुगुंछाणं वेदयमाणस्स

अपेक्षा इन दो प्रकृतियोंके झीनस्थितिवाले द्रव्यका जघन्य स्वामित्व जो क्षपितकर्मांश विधिसे आकर देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके कहा है। उसमें भी प्रकृत जघन्य स्वामित्वके लिये ऐसा स्थल चुना गया है जहाँ इन दोनों प्रकृतियोंका केवल एक एक निषेक ही उदयावलिके भीतर प्राप्त हो। यह तभी हो सकता है जब उपशमश्रेणिमें अन्तरकरण करनेके बाद अन्तरकालमें स्थित इस जीवको देवोंमें उत्पन्न कराया जाय। यद्यपि यह अवस्था अन्तरकरणके बादसे लेकर नौवें, दसवें या ग्यारहवें किसी भी गुणस्थानसे मरकर देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके हो सकती है पर यहाँ उपशान्तमोह गुणस्थानसे मरकर जो जीव देवोंमें उत्पन्न होता है उसके बतलाई है, क्योंकि तब अरति और शोकका केवल एक निषेक ही उदयावलिमें पाया जाता है। कुछ आचार्य अन्तर-करणके बाद प्रथम स्थितिके समाप्त हो जाने पर जो जीव मरकर देवोंमें उत्पन्न होता है उसके दूसरे समयमें प्रकृत जघन्य स्वामित्व बतलाते हैं पर वैसा कथन करनेमें कोई विशेष लाभ नहीं है, अतः उक्त स्वामित्व ही ठीक है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। शेष कथन सुगम होनेसे यहाँ उसका निर्देश नहीं किया है।

*** उदयकी अपेक्षा अरति और शोकके झीनस्थितिवाले द्रव्यका जघन्य स्वामी कौन है ?**

§ ५७३. यह सूत्र सुगम है।

*** कोई एक जीव एकेन्द्रियोंके योग्य जघन्य सत्कर्मके साथ त्रसोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ बहुतबार संयमासंयम और संयमको प्राप्त करके और चार बार कषायोंका उपशम करके एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ उपशामकके समय-प्रबद्धोंके गलनेवाले पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक रहा। फिर आकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ कुछ कम एक पूर्वकोटि कालतक संयमका पालन कर उससे च्युत हुए बिना सम्यक्त्वके साथ वैमानिक देवोंमें उत्पन्न हुआ। फिर उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त बाद उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त हुआ। फिर अन्तर्मुहूर्त कालतक उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके उससे निवृत्त हुआ। इस प्रकार निवृत्त हुए इसको जब एक आवलि काल हो जाता है तब भय और जुगुप्साका भी वेदन करता**

अरदि-सोगाणं जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं ।

§ ५७४. एदस्स सुत्तस्स अवयवत्थपरूवणा सुगमा। णवरि अपडिवदिदेण सम्मत्तेण० एवं भणिदे तत्थ पुव्वकोडिं संजमगुणसेढिमणुपालिय तदवसाणे मिच्छत्तमगंतूण सो संजदो अपडिवददेणेव तेण सम्मत्तेण कप्पवासियदेवेसुववण्णो त्ति भणिदं होइ। किमट्ठमेसो णवुंसय-इत्थिवेदसामिओ व्व मिच्छत्तं ण णीदो त्ति ? ण, तत्थ मिच्छत्तं गच्छमाणस्स गुणसेढिणिज्जरालाहस्स असंपुण्णत्तप्पसंगादो गुणसेढिणिज्जराए संपुण्णत्तविहाणट्ठं दंसणमोहणीयं खविय तत्थुप्पाइज्जमाणत्तादो च ण मिच्छत्तमेसो णेदुं सक्किज्जदे। अंतोमुहुत्तउववण्णो उक्कस्ससंकिलेसं गओ त्ति भणिदे छहि पज्जत्तीहिं पज्जत्तयदो होऊणुक्कस्ससंकिलेसेण आवूरिदो त्ति वुत्तं होइ। संकिलेसावूरणे पयोजणमाह—अंतोमुहुत्तमुक्कस्सट्ठिदिं बंधियूणे त्ति। उक्कस्ससंकिलेसाणुक्कस्सट्ठिदिमरदि-सोगाणं बंधमाणो णिरुद्धट्ठिदिमाबाहापविट्ठत्तादो आयविरहियमुक्कड्डणाए सण्हीकरिय पुणो उक्कस्ससंकिलेसक्खएण पडिभग्गो जादो त्ति संबंधो कायव्वो। एत्थावलियपडिभग्गस्स सामित्तविहाणे पुव्वपरूविदं कारणं, तस्सेव विसेसणंतरमाह—भय-दुगुंछाणं वेदयमाणस्से त्ति, अण्णहा पयदणिसेयस्सुवरि भय-दुगुंछगोवुच्छाणं

हुआ वह जीव उदयकी अपेक्षा अरति और शोकके झीनस्थितिवाले जघन्य द्रव्यका स्वामी है।

§ ५७४. इस सूत्रके सब पदोंका कथन सुगम है। किन्तु सूत्रमें जो 'अपडिवदिदेण सम्मत्तेण' इत्यादि कहा है सो इसका यह अभिप्राय है कि मनुष्य पर्यायमें कुछ कम एक पूर्वकोटि काल तक संयमसम्बन्धी गुणश्रेणिका पालन करके उसके अन्तमें मिथ्यात्वमें न जाकर वह संयत संयमसे च्युत हुए बिना ही सम्यक्त्वके साथ कल्पवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ।

शंका—जैसे नपुंसकवेद और स्त्रीवेदके स्वामीको मिथ्यात्वमें ले गये हैं वैसे ही इसे मिथ्यात्वमें क्यों नहीं ले गये हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वमें ले जाने पर गुणश्रेणिनिर्जराका पूरा लाभ नहीं प्राप्त होता है। दूसरे पूरी गुणश्रेणिनिर्जराके प्राप्त करनेके लिये दर्शनमोहनीयकी क्षपणा कराके इसे वहाँ उत्पन्न कराया है, इसलिये इसे मिथ्यात्वमें ले जाना शक्य नहीं है।

सूत्रमें जो 'अंतोमुहुत्तउववण्णो उक्कस्ससंकिलेसं गओ' यह कहा है सो इसका यह अभिप्राय है कि छह पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होकर उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त हुआ। उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होनेका प्रयोजन बतलानेके लिये सूत्रमें 'अंतोमुहुत्तमुक्कस्सट्ठिदिं बंधियूण' यह कहा है। इसका प्रकृतमें ऐसा सम्बन्ध करना चाहिये कि उत्कृष्ट संक्लेशसे अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधनेवाला यह जीव आबाधाके भीतर प्रविष्ट होनेके कारण आयसे रहित विवक्षित स्थितिको उत्कर्षणके द्वारा सूक्ष्म करके फिर उत्कृष्ट संक्लेशका क्षय हो जानेसे उससे निवृत्त हुआ। यहाँ निवृत्त होने पर एक आवलिके अन्तमें जो स्वामित्वका विधान किया है सो इसका कारण तो पहले कह आये हैं किन्तु यहाँ पर उसका दूसरा विशेषण बतलानेके लिये सूत्रमें 'भयदुगुंछाणं वेदयमाणस्स' यह कहा है। यदि यहाँ इन दो प्रकृतियोंका वेदक नहीं बतलाया

त्थिवुक्कसंकमेण जहण्णत्ताणुववत्तीदो ।

❀ एवमोघेण सव्वमोहणीयपयडीणं जहण्णमोकड्डुणादिझीणदिय-सामित्तं परूविदं ।

§ ५७५. एत्तो एदेण सूचिदासेसपरूवणा चोद्दसमग्गणापडिबद्धा अजहण्ण-सामित्तपरूवणाए समयाविरोहेणाणुमग्गियव्वा ।

तदो सामित्ताणियोगद्दारं समत्तं ।

❀ अप्पाबहुअं ।

§ ५७६. अहियारसंभालणसुत्तमेदं ।

❀ सव्वत्थोवं मिच्छत्तस्स उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं ।

§ ५७७. कुदो ? एदस्स चेव उदयणिसेयस्स एक्कलग्गीभूदसंजदासंजद-संजद-गुणसेढिसीसयस्स गुणिदकम्मंसियपयडिगोवुच्छसहगदस्स गहणादो ।

❀ उक्कस्सयाणि ओकड्डुणादो उक्कड्डुणादो संकमणादो च झीण-

जाता तो प्रकृत निषेकके ऊपर भय और जुगुप्साके गोपुच्छोंका स्तिवुक संक्रमण होते रहनेसे जघन्य स्वामित्व नहीं प्राप्त हो सकता था ।

विशेषार्थ—उक्त कथनका सार यह है कि जो क्षपितकर्मांशवाला जीव पूर्वकोटिकी आयुवाला मनुष्य होकर संयमका पालन करे और अन्तमें देव होकर पर्याप्त हो जानेपर उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त हो। फिर अन्तर्मुहूर्त तक अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता हुआ विवक्षित निषेकको सूक्ष्म करनेके लिये उत्कर्षण करे। फिर जब वह उत्कृष्ट संक्लेशसे च्युत होकर तबसे एक आवलि कालके अन्तमें स्थित होता है और भय तथा जुगुप्साके उदयसे भी युक्त रहता है तब उसके प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता है।

*** इस प्रकार ओघसे अपकर्षणादि चारोंकी अपेक्षा मोहनीयकी सब प्रकृतियों-के झीनस्थितिवाले जघन्य द्रव्यका स्वामी कहा ।**

§ ५७५. आगे इससे सूचित होनेवाली चौदह मार्गणासम्बन्धी समस्त प्ररूपणा अजघन्य स्वामित्वसम्बन्धी प्ररूपणाके साथ आगमके अनुसार जान लेनी चाहिए ।

इस प्रकार स्वामित्व अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

*** अब अल्पबहुत्वका अधिकार है ।**

§ ५७६. अधिकारकी सम्हाल करनेके लिये यह सूत्र आया है ।

*** मिथ्यात्वका उदयकी अपेक्षा झीनस्थितिवाला उत्कृष्ट द्रव्य सबसे थोड़ा है ।**

§ ५७७. क्योंकि यहाँ मिथ्यात्वका ऐसा उदय निषेक लिया गया है जो गुणितकर्मांशकी प्रकृतिगोपुच्छाके साथ संयतासंयत और संयतके युगपत् प्राप्त हुए गुणश्रेणिशीर्षरूप है ।

*** मिथ्यात्वके अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमणकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले**

ट्ठिदियाणि तिण्णि वि तुल्लाणि असंखेज्जगुणाणि ।

§ ५७८. किं कारणं ? समयूणावलियमेत्तदंसणमोहक्खवणगुणसेढिगोवुच्छ-पमाणत्तादो । एत्थ गुणगारपमाणं तप्पाओग्गपलिदोवमासंखेज्जदिभागमेत्तं । कुदो ? संजमासंजम-संजमगुणसेढीहिंतो दंसणमोहक्खवणगुणसेढीए असंखेज्जगुणत्तदंसणादो ।

❀ एवं सम्मामिच्छत्त-पण्णारसकसाय-छण्णोकसायाणं ।

§ ५८६. जहा मिच्छत्तस्स चउण्हं पदाणं थोवबहुत्तगवेसणा कया एवमेदेसिं पि कम्माणमुक्कस्सप्पाबहुअपरिक्खा कायव्वा, विसेसाभावादो ।

❀ सम्मत्तस्स सव्वत्थोवमुक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं ।

§ ५८०. चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयसव्वपच्छिमगुणसेढिसीसयस्स गहणादो ।

❀ सेसाणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि उक्कस्सयाणि तुल्लाणि विसेसाहियाणि ।

§ ५८१. कुदो तत्तो एदेसिं विसेसाहियत्तं ? ण, समयूणावलियमेत्तदुचरिमादि-गुणसेढिदव्वस्स तदसंखेज्जदिभागस्स तत्थ पवेसुवलंभादो ।

उत्कृष्ट द्रव्य ये तीनों परस्पर तुल्य होते हुए भी उससे असंख्यातगुणे हैं ।

§ ५७८. इसका क्या कारण है ? क्योंकि वह एक समय कम एक आवलिप्रमाण दर्शनमोह-की क्षपणासम्बन्धी गुणश्रेणिगोपुच्छाप्रमाण है । यहाँ गुणकारका प्रमाण तत्प्रायोग्य पल्यका असंख्यातवाँ भाग लेना चाहिये, क्योंकि संयमासंयम और संयमकी गुणश्रेणियोंसे दर्शनमोहकी क्षपणासम्बन्धी गुणश्रेणि असंख्यातगुणी देखी जाती है ।

*** इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व, पन्द्रह कषाय और छह नोकषायोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व है ।**

§ ५७९. जैसे मिथ्यात्वके चार पदोंके अल्पबहुत्वका विचार किया वैसे ही उक्त कर्मोंके भी उत्कृष्ट अल्पबहुत्वका विचार करना चाहिये, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है ।

*** सम्यक्त्वका उदयकी अपेक्षा झीनस्थितिवाला उत्कृष्ट द्रव्य सबसे थोड़ा है ।**

§ ५८०. क्योंकि जिसने दर्शनमोहनीयकी पूरी क्षपणा नहीं की है उसके अन्तिम समयमें जो सबसे अन्तिम गुणश्रेणिशीर्षका द्रव्य विद्यमान रहता है उसका यहाँ ग्रहण किया गया है ।

*** सम्यक्त्वके शेष तीनों ही झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट द्रव्य परस्पर तुल्य होते हुए भी उससे विशेष अधिक हैं ।**

§ ५८१. **शंका**—उससे ये विशेष अधिक क्यों हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि द्विचरम समयसे लेकर एक समय कम एक आवलिप्रमाण द्रव्यका यहाँ प्रवेश पाया जाता है जो कि पूर्वोक्त द्रव्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिये इसे विशेष अधिक कहा है ।

❀ एवं लोभसंजलण-तिण्णिवेदाणं ।

§ ५८२. जहा सम्मत्तस्स अप्पाबहुअं परूविदमेवं लोभकसाय-संजलण-तिवेदाणमणूणाहियं परूवेयव्वं, विसेसाभावादो । एवमुक्कस्सप्पाबहुअमोघेण समत्तं । एत्थादेसपरूवणा च जाणिय कायव्वा । तदो उक्कस्सयं समत्तं ।

❀ एत्तो जहण्णयं झीणट्ठिदियं ।

§ ५८३. एत्तो उवरि जहण्णझीणट्ठिदियस्स अप्पाबहुअं भणिस्सामो त्ति पइज्जासुत्तमेदं ।

❀ मिच्छत्तस्स सव्वत्थोवं जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं ।

§ ५८४. कुदो ? सासणपच्छायदपढमसमयमिच्छादिट्ठिणो ओदारियावलियमेत्तसण्णयाणं गोवुच्छाणं चरिमणिसेयस्स पयदजहण्णसामित्तविसईकयस्स गहणादो ।

❀ सेसाणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि तुल्लाणि असंखेज्जगुणाणि ।

§ ५८५. कुदो ? संपुण्णावलियमेत्ताणमुदीरणागोवुच्छाणमिह ग्गहणादो । को गुणगारो ? आवलिया सादिरेया । सेसं सुगमं । एदेणेव गयत्थाणमप्पणं करेइ—

---

* इसी प्रकार लोभसंज्वलन और तीन वेदोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व है ।

§ ५८२. जिस प्रकार सम्यक्त्वका अल्पबहुत्व कहा है उसी प्रकार लोभसंज्वलन और तीन वेदोंका न्यूनाधिकताके बिना अल्पबहुत्व कहना चाहिये, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । इस प्रकार ओघसे उत्कृष्ट अल्पबहुत्व समाप्त हुआ । यहाँ आदेश प्ररूपणाको जानकर उसका कथन करना चाहिये । तब जाकर उत्कृष्ट अल्पबहुत्व समाप्त होता है ।

* इससे आगे जघन्य झीनस्थितिके द्रव्यका अल्पबहुत्व बतलाते हैं ।

§ ५८३. अब इस उत्कृष्ट अल्पबहुत्वके बाद झीनस्थितिवाले जघन्य द्रव्यका अल्पबहुत्व कहते हैं इस प्रकार यह प्रतिज्ञा सूत्र है ।

* मिथ्यात्वका उदयकी अपेक्षा झीनस्थितिवाला उत्कृष्ट द्रव्य सबसे थोड़ा है ।

§ ५८४. क्योंकि सासादन गुणस्थानसे पीछे लौटकर प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टिके जो उदयावलि संज्ञावाली गोपुच्छाएँ हैं उनमेंसे यहाँ पर प्रकृत जघन्य स्वामित्वका विषयभूत अन्तिम निषेक लिया गया है ।

* मिथ्यात्वके शेष तीनों ही झीनस्थितिवाले द्रव्य परस्परमें तुल्य होते हुए भी उससे असंख्यातगुणे हैं ।

§ ५८५. क्योंकि यहाँ पर सम्पूर्ण आवलिप्रमाण उदीरणा गोपुच्छाओंका ग्रहण किया गया है ।

शंका—गुणकारका क्या प्रमाण है ?

समाधान—साधिक एक आवलि गुणकारका प्रमाण है ।

शेष कथन सुगम है । अब इसीसे जिन प्रकृतियोंका अल्पबहुत्व ज्ञात हो जाता है उसका प्रमुखतासे निर्देश करते हैं—

❀ जहा मिच्छत्तस्स जहण्णयमप्पाबहुअं तहा जेसिं कम्मंसाणमुदीरणोदओ अत्थि तेसिं पि जहण्णयमप्पाबहुअं।

§ ५८६. जहा मिच्छत्तस्स चत्तारि पदाणि अस्सियूण जहण्णप्पाबहुअं परूविदं तहा सेसाणं पि उदीरणोदइल्लाणं कम्माणं णेदव्वमिदि सुत्तत्थसंगहो।

❀ अणंताणुबंधि-इत्थि-णवुंसयवेद-अरइ-सोगा त्ति एदे अट्ठ कम्मंसे मोत्तूण सेसाणमुदीरणोदयो।

§ ५८७. एत्थ उदीरणाए चेव उदयो उदीरणोदओ त्ति सावहारणो सुत्तावयवो, अण्णहा अणंताणुबंधिआदीणं परिवज्जणाणुववत्तीदो। जेसिं कम्मंसाणमुदयावलियब्भंतरे अंतरकरणेण अच्चंतमसंताणं कम्मपरमाणूणं परिणामविसेसेणासंखेज्जलोगपडिभागेणोदीरिदाणमणुहवो तेसिमुदीरणोदओ त्ति एसो एत्थ भावत्थो। ण चाणंताणुबंधिआदीणमेवंविहो उदीरणोदयो संभवइ, तत्थ तदणुवलंभादो। तदो सुत्तुत्तपयडीओ अट्ठ मोत्तूण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछाणमुदीरणाए चेव सुद्धाए पत्तजहण्णसामित्ताणं मिच्छत्तस्सेव अप्पाबहुअमणूणाहियं वत्तव्वमिदि सिद्धं।

❀ जेसिं ण उदीरणोदयो तेसिं पि सो चेव आलावो अप्पाबहुअस्स जहण्णयस्स।

*** जैसे मिथ्यात्वका जघन्य अल्पबहुत्व है वैसे ही जिन कर्मोंका उदीरणोदय होता है उनका भी जघन्य अल्पबहुत्व जानना चाहिये।**

§ ५८६. जैसे मिथ्यात्वका चार पदोंकी अपेक्षा जघन्य अल्पबहुत्व कहा है वैसे उदीरणोदयवाले शेष कर्मोंका भी जघन्य अल्पबहुत्व जानना चाहिये यह इस सूत्रका समुदायार्थ है।

*** अनन्तानुबन्धी, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति और शोक इन आठ कर्मोंको छोड़कर शेष कर्म उदीरणोदयरूप हैं।**

§ ५८७. यहाँ पर उदीरणा ही उदयरूपसे विवक्षित है इसलिये उदीरणोदय यह सूत्रवचन अवधारण सहित है। अन्यथा अनन्तानुबन्धी आदिका निषेध नहीं किया जा सकता है। अन्तर कर देनेके कारण उदयावलिके भीतर जिन कर्मोंके कर्मपरमाणु बिलकुल नहीं पाये जाते हैं, परिणामविशेषके कारण असंख्यात लोकप्रमाण प्रतिभागके अनुसार उदीरणाको प्राप्त हुए उनका अनुभव करना उदीरणोदय है यह इसका अभिप्राय है। अनन्तानुबन्धी आदिका इस प्रकार उदीरणोदय सम्भव नहीं है, क्योंकि इन प्रकृतियोंका उदीरणोदय नहीं पाया जाता है। इसलिये सूत्रोक्त आठ प्रकृतियोंके सिवा जो सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय और जुगुप्सा प्रकृतियाँ हैं इनकी शुद्ध उदीरणा होने पर ही जघन्य स्वामित्व प्राप्त होता है इसलिये इनका अल्पबहुत्व न्यूनाधिकताके बिना मिथ्यात्वके समान कहना चाहिये यह बात सिद्ध हुई।

*** तथा जिनका उदीरणोदय नहीं होता उनका भी जघन्य अल्पबहुत्वविषयक आलाप उसी प्रकार है।**

§ ५८८. पुव्वुत्तासेसपयडीणमुदीरणोदइल्लाणं जो जहण्णप्पाबहुआलावो सो चेव उदीरणोदयविरहिदपयडीणं पि कायव्वो, विसेसाभावादो। होउ णामाणंताणुबंधीणमेसो अप्पाबहुआलावो, सामित्ताणुसारित्तादो। ण वुण इत्थि-णवुंसयवेदाणं, तत्थ सामित्ताणुसरणे तिण्हं पि जहण्णभीणट्ठिदियादो उदयादो जहण्णभीणट्ठिदियस्स असंखेज्जगुणत्तदंसणादो। ण एस दोसो, तहाणब्भुवगमादो। तहा चेव उवरि पक्खंतरस्स परूविस्समाणादो। किंतु त्थिउक्कसंकममविवक्खिय समूहेणेव उदयादो वि जहण्णभीणट्ठिदियस्स वेछावट्ठिसागरोवमाणि भमाडिय सामित्तं दायव्वमिदि एदेणाहिप्पाएण पयट्टमेदं। एदम्मि णए अवलंबिज्जमाणे उदयादो जहण्णभीणट्ठिदियं पेक्खियूण सेसाणं समयूणावलियगुणयारदंसणादो।

§ ५८८. उदीरणोदयवाली पूर्वोक्त सब प्रकृतियोंका जो जघन्य अल्पबहुत्व कहा है, उदीरणोदयसे रहित प्रकृतियोंका भी उसी प्रकार अल्पबहुत्व समझना चाहिये, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है।

शंका—अपने स्वामित्वके अनुसार होनेसे अनन्तानुबन्धियोंका यह अल्पबहुत्वालाप रहा आवे, परन्तु स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका यह अल्पबहुत्व नहीं प्राप्त होता, क्योंकि वहाँ पर स्वामित्वका अनुसरण करने पर जो अपकर्षण आदि तीनकी अपेक्षा भीनस्थितिक जघन्य द्रव्य है उससे उदयकी अपेक्षा भीनस्थितिक जघन्य द्रव्य असंख्यातगुणा देखा जाता है।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्यों वैसा स्वीकार नहीं किया है। पक्षान्तर रूपसे आगे इसी बातका कथन भी करेंगे। किन्तु स्तिवुक संक्रमणकी विवक्षा न करके समूहरूपसे ही उदयकी अपेक्षा भी जघन्य भीनस्थितिवाले द्रव्यका स्वामित्व दो छयासठ सागर काल तक भ्रमण कराके देना चाहिये इस प्रकार इस अभिप्रायसे यह सूत्र प्रवृत्त हुआ है। इस नयका अवलम्बन करने पर उदयकी अपेक्षा जघन्य भीनस्थितिवाले द्रव्यको देखते हुए शेष भीनस्थितिवाले द्रव्योंका गुणकार एक समय कम एक आवलिप्रमाण देखा जाता है।

विशेषार्थ—जो उपशमसम्यग्दृष्टि छह आवलि कालके शेष रहने पर सासादनमें जाता है और फिर वहाँसे मिथ्यात्वमें जाता है उसके प्रथम समयमें अपकर्षणादि तीनकी अपेक्षा और एक आवलि कालके अन्तमें उदयकी अपेक्षा भीनस्थितिवाला जघन्य द्रव्य होता है। यतः अपर्षणादि तीनकी अपेक्षा जो भीनस्थितिवाला जघन्य द्रव्य प्राप्त होता है वह उदयावलिके निषेक प्रमाण होता है और उदयकी अपेक्षा जो भीनस्थितिवाला जघन्य द्रव्य प्राप्त होता है वह उदयावलिके अन्तिम निषेक प्रमाण होता है, इसलिये यहाँ उदयकी अपेक्षा भीनरितिथवाले जघन्य द्रव्यसे अपकर्षण आदि तीनकी अपेक्षा प्राप्त हुआ भीनस्थितिवाला जघन्य द्रव्य असंख्यातगुणा बतलाया है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इन प्रकृतियोंका चारोंकी अपेक्षा भीनस्थितिवाला जघन्य द्रव्य भी इसी प्रकार उदीरणोदयके होने पर ही प्राप्त होता है, इसलिये इनका अल्पबहुत्व भी पूर्वोक्त प्रकारसे प्राप्त हो जाता है। अब रहीं शेष आठ प्रकृतियाँ सो इनमेंसे चार अनन्तानुबन्धी प्रकृतियाँ तो ऐसी हैं जिनका उक्त चारोंकी अपेक्षा जघन्य स्वामित्व अपने उदयकालमें ही प्राप्त होता है, इसलिये उनका भी अल्पबहुत्व उक्त प्रकारसे बन जाता है। शेष चारमें भी अरति और शोक ऐसी

§ ५८९. संपहि एदेण सुत्तेणारइ-सोयाणं पि उदीरणोदएण विणा पत्तजहण्ण-सामित्ताणमप्पणाए अइप्पसत्ताए तत्थ विसेसपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

*** णवरि अरइ-सोगाणं जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं थोवं ।**

§ ५९०. कुदो ? एयणिसेयपमाणत्तादो ।

*** सेसाणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि तुल्लाणि विसेसाहियाणि ।**

§ ५९१. जइ वि तिण्हमेदासिं पि झीणट्ठिदियस्स खवियकम्मंसियपच्छायदोवसंतकसायचरदेवविदियसमए उदयावलियपविट्ठेयणिसेयं चेव घेत्तूण जहण्णसामित्तं जादं तो वि अंतोमुत्तमुवरि गंतूण जादजहण्णभावादो पुव्विल्लेयणिसेयदव्वादो विसेसाहियत्तं ण विरुज्झदे, ओइण्णद्धाणमेत्तगोवुच्छविसेसाणमहियत्तदंसणादो । एवमहिप्पायंतरमवलंबिय अप्पाबहुअमेदेसिं परूविय संपहि सामित्ताणुसारेण थिवुक्कसंकमं पहाणीकाऊणप्पाबहुअपरूवणट्ठमिदमाह—

प्रकृतियाँ हैं जिनके विषयमें उक्त नियम लागू नहीं होता यह बात अगले सूत्र द्वारा स्वयं चूर्णिसूत्रकार स्पष्ट करनेवाले हैं। किन्तु स्त्रीवेद और नपुंसकवेद ये दो प्रकृतियाँ ऐसी हैं जिनमें उक्त प्रकारसे अल्पबहुत्व घटित नहीं होता है।

§ ५८९. अब इस सूत्र द्वारा उदीरणोदयके विना अरति और शोक इन प्रकृतियोंमें भी जघन्य स्वामित्वका अतिप्रसंग प्राप्त हुआ, इसलिये इस विषयमें विशेष कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** किन्तु इतनी विशेषता है कि अरति और शोकका उदीयकी अपेक्षा झीनस्थितिवाला जघन्य द्रव्य थोड़ा है ।**

§ ५९०. क्योंकि इसका प्रमाण एक निषेक है ।

*** शेष तीनों झीनस्थितिवाले द्रव्य तुल्य होते हुए भी उससे विशेष अधिक हैं ।**

§ ५९१. यद्यपि क्षपितकर्मांशकी विधिसे आकर जो उपशान्तकषायचर देव हुआ है उसके दूसरे समयमें उदयावलिके भीतर प्रविष्ट हुए एक निषेककी अपेक्षा अपकर्षणादि तीनोंसे ही झीनस्थितिवाले द्रव्यका जघन्य स्वामित्व होता है तथापि अन्तर्मुहूर्त ऊपर जाकर उदयकी अपेक्षा जघन्यभावको प्राप्त हुए पूर्वोक्त एक निषेकके द्रव्यसे इसे विशेष अधिक माननेमें कोई विरोध नहीं आता है, क्योंकि जितने स्थान नीचे उतरकर अपकर्षणादिकी अपेक्षा जघन्य स्वामित्व प्राप्त है वहाँ उतने गोपुच्छविशेषोंकी अधिकता देखी जाती है।

विशेषार्थ—उक्त कथनका यह आशय है कि अपकर्षणादि तीनकी अपेक्षा जघन्य स्वामित्व उपशान्तकषायचर देवके दूसरे समयमें प्राप्त हो जाता है और उदयकी अपेक्षा जघन्य स्वामित्व अन्तर्मुहूर्त बाद प्राप्त होता है। अब यहाँ जितना काल आगे जाकर उदयकी अपेक्षा जघन्य स्वामित्व प्राप्त होता है उतने गोपुच्छविशेषोंकी अर्थात् चयोंकी हानि हो जाती है, अतः अपकर्षणादि तीनकी अपेक्षा झीनस्थितिवाला जो जघन्य द्रव्य होता है वह उदयकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले जघन्य द्रव्यसे साधिक होता है यह सिद्ध हुआ।

❀ अहवा इत्थिवेद-णवुंसयवेदाणं जहण्णयाणि ओकड्डणादीणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि तुल्लाणि थोवाणि ।

§ ५९२. जहाकमेण वेछावट्ठिसागरोवम-तिपलिदोवमब्भहियवेछावट्ठिसागरोवमाणि भमाडिय सामित्तविहाणादो ।

❀ उदयादो जहण्णयं झीणट्ठिदियमसंखेज्जगुणं ।

§५९३. पुव्वुत्तकालमगालिय सामित्तविहाणादो । तं पि कुदो ? त्थिवुक्कसंकमबहुत्तभयादो ।

❀ अरइ-सोगाणं जहण्णयाणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि तुल्लाणि थोवाणि ।

§ ५९४. उवसंतकसायचरविदियसमयदेवस्स उदयावलियपविट्ठएयणिसेयस्स सव्वपयत्तेण जहण्णीकयस्स गहणादो ।

❀ जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं विसेसाहियं ।

इस प्रकार इन सब प्रकृतियोंका अभिप्रायान्तरकी अपेक्षा अल्पबहुत्वका कथन करके अब स्वामित्वके अनुसार स्तिबुकसंक्रमणको प्रधान करके अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** अथवा स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके अपकर्षण आदि तीनकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले जघन्य द्रव्य परस्पर तुल्य होते हुए भी थोड़े हैं ।**

§ ५९२. क्योंकि क्रमसे स्त्रीवेदकी अपेक्षा दो छ्यासठ सागर काल तक और नपुंसकवेदकी अपेक्षा तीन पल्य अधिक दो छ्यासठ सागर काल तक भ्रमण कराके इन दोनों वेदोंके स्वामित्वका विधान किया गया है ।

*** उदयकी अपेक्षा झीनस्थितिवाला जघन्य द्रव्य उससे असंख्यातगुणा है ।**

§ ५९३. क्योंकि पूर्वोक्त कालको न गलाकर स्वामित्वका विधान किया गया है ।

शंका—ऐसा क्यों किया गया ।

समाधान—स्तिबुकसंक्रमणके बहुत द्रव्यके प्राप्त होनेके भयसे ऐसा किया गया है ।

विशेषार्थ—स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके उदयकी अपेक्षा झीनस्थितिवाला जघन्य द्रव्य क्रमसे दो छ्यासठ सागर पूर्व और तीन पल्य अधिक दो छ्यासठ सागर पूर्व प्राप्त होता है और अपकर्षण आदि तीनकी अपेक्षा झीनस्थितिवाला जघन्य द्रव्य उक्त काल बाद प्राप्त होता है, इसलिये अपकर्षण आदिकी अपेक्षा प्राप्त हुए झीनस्थितिवाले जघन्य द्रव्यसे उदयकी अपेक्षा प्राप्त हुआ झीनस्थितिवाला जघन्य द्रव्य असंख्यातगुणा बतलाया है ।

*** अरति और शोकके अपकर्षण आदि तीनकी अपेक्षा झीनस्थितिवाले जघन्य द्रव्य परस्पर तुल्य होते हुए भी थोड़े हैं ।**

§ ५९४. क्योंकि जो उपशान्तकषायचर देव दूसरे समयमें स्थित है उसके उदयावलिमें प्रविष्ट हुए और सब प्रयत्नसे जघन्य किये गये एक निषेकका यहाँ पर ग्रहण किया गया है ।

*** उदयकी अपेक्षा झीनस्थितिवाला जघन्य द्रव्य उससे विशेष अधिक है ।**

§ ५९५. कुदो ? हस्स-रइथिउक्कसंकमेण सह पत्तोदयएयणिसेयग्गहणादो। केत्तियमेत्तो विसेसो ? अंतोमुहुत्तमेत्तगोवुच्छविसेसेहिं ऊणहस्स-रइथिवुक्कसंकममेत्तो।

§ ५९६. संपहि एत्थुद्देसे सव्वेसिमत्थाहियाराणं साहारणभूदमप्पाबहुअदंडयं मज्झदीवयभावेण परूवइस्सामो। तं जहा—सव्वत्थोवो सव्वसंकमभागहारो। किं कारणं ? एगरूवपमाणत्तादो। गुणसंकमभागहारो असंखेज्जगुणो। किं कारणं ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपमाणत्तादो। ओकड्डुकड्डणभागहारो असंखेज्जगुणो। एसो वि पलिदो० असंखेज्जदिभागो चेव, किंतु पुव्विल्लादो एसो असंखेज्जगुणो त्ति गुरूवएसो। अधापवत्तभागहारो असंखेज्जगुणो। एदस्स कारणं सुत्तणिबद्धमेव। तं कथं ? ट्ठिदिअंतिए मिच्छत्तस्स उक्कस्सअधाणिसेयट्ठिदिपत्तयसंबंधेण ओकड्डुक्कड्डणाए कम्मस्स अवहारकालो थोवो। अधापवत्तसंकमेण कम्मस्स अवहारो असंखेज्जगुणो त्ति भणिहिदि। तदो सिद्धमेदस्सासंखेज्जगुणत्तं। जोगगुणगारो असंखेज्जगुणो। एदस्स कारणं वुच्चदे। तं जहा—वेदगे त्ति अणियोगद्दारे कोहसंजलणपदेसग्गस्स जहण्णबंध-संकम-उदय-उदीरण-संतकम्माणि अस्सियूणप्पाबहुअं भणिहिदि। तं कथं ? कोहसंजलण-

---

§ ५९५. क्योंकि हास्य और रतिका स्तिबुकसंक्रमणसे जो द्रव्य प्राप्त होता है उसके साथ अरति और शोकके उदयको प्राप्त हुए एक निषेकका यहाँ पर ग्रहण किया गया है।

शंका—कितना विशेष अधिक है ?

समाधान—हास्य और रतिका स्तिवुकसंक्रमणसे जो द्रव्य प्राप्त होता है उसमेंसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण गोपुच्छविशेषोंके कम कर देनेपर जो शेष रहे उतना विशेष अधिक है।

§ ५९६. अब इस स्थान पर जो सभी अर्थाधिकारोंमें साधारण है ऐसे अल्पबहुत्वदण्डकको मध्यदीपकभावसे दिखलाते हैं। यथा—सर्वसंक्रमणभागहार सबसे थोड़ा है, क्योंकि उसका प्रमाण एक है। इससे गुणसंक्रमभागहार असंख्यातगुणा है, क्योंकि यह पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इससे अपकर्षण-उत्कर्षणभागहार असंख्यातगुणा है। यद्यपि यह भी पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है तो भी पूर्वोक्त भागहारसे यह असंख्यातगुणा है ऐसा गुरुका उपदेश है। इससे अधःप्रवृत्तसंक्रमभागहार असंख्यातगुणा है। इसके असंख्यातगुणे होनेके कारणका निर्देश सूत्रमें ही किया है।

शंका—सो कैसे ?

समाधान—आगे स्थित्यन्तिक अधिकारमें मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अधःनिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यके सम्बन्धसे अपकर्षण-उत्कर्षणसे प्राप्त हुए कर्मका अवहारकाल थोड़ा और अधःप्रवृत्त संक्रमसे प्राप्त हुए कर्मका अवहारकाल असंख्यातगुणा है ऐसा कहेंगे, इसलिये अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारसे अधःप्रवृत्तभागहार असंख्यातगुणा है यह सिद्ध होता है। अधःप्रवृत्तसंक्रमभागहारके प्रमाणसे योगगुणकार असंख्यातगुणा है। अब इसका कारण कहते हैं। यथा—वेदक नामके अनुयोगद्वारमें क्रोध संज्वलनकर्मका जघन्य बन्ध, जघन्य संक्रम, जघन्य उदय, जघन्य उदीरणा और जघन्य सत्कर्म इनकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहेंगे। यथा—'क्रोधसंज्वलनकी जघन्य प्रदेशो-

जहण्णपदेसुदीरणा थोवा, उदयो असंखेज्जगुणो, बंधो असंखेज्जगुणो, संकमो असंखेज्जगुणो, संतकम्मं असंखेज्जगुणमिदि। एत्थ जहण्णबंधो त्ति उत्ते एगेइंदियसमयपबद्धमेत्तं गहिदं। जहण्णसंकमो त्ति उत्ते एगमेइंदियसमयपबद्धं ठविय पुणो घोलमाणजहण्णजोगेण बद्धपंचिंदियसमयपबद्धमिच्छामो त्ति जोगगुणगारमेदस्स गुणगारत्तेण ठविय पुणो वि एदस्स हेट्ठा अधापवत्तभागहारं ठविय ओवट्टिदे जहण्णसंकमदव्वमागच्छइ। जइ एत्थ जोगगुणगारो थोवो होज्ज तो जहण्णसंकमदव्वस्सुवरि जहण्णबंधो असंखेज्जगुणो जाएज्ज। ण च एवं, बंधस्सुवरि संकमो असंखेज्जगुणो त्ति पढिदत्तादो। तम्हा जोगगुणगारो अधापवत्तभागहारादो असंखेज्जगुणो त्ति सिद्धं ? कम्मट्ठिदिणाणागुणहाणिसलागाओ असंखेज्जगुणाओ। कुदो ? किंचूणपलिदोवमद्धछेदणयपमाणत्तादो। एदस्स कारणस्स णिरुत्तीकरणमिदं। तं जहा—दिवड्ढगुणहाणिं ठविय जोगगुणगारेण गुणिदे पलिदो० असंखे०भागमेत्तो चेव रासी उप्पज्जइ। पुणो एत्थ जोगगुणगारमवणिय तं चेव गुणिज्जमाणं दिवड्ढगुणहाणिपमाणं ठविय जइ णाणागुणहाणिसलागाहि गुणिज्जइ तो दिवड्ढकम्मट्ठिदिमेत्तो रासी उप्पज्जदि त्ति। एदेण जाणिज्जदे जहा जोगगुणगारादो कम्मट्ठिदिणाणागुणहाणिसलागाओ असंखेज्जगुणाओ त्ति। पलिदोवमस्स छेदणया विसेसा। केत्तियमेत्तो विसेसो ? पलिदोवमवग्गसलागछेदणयमेत्तो। कुदो एदं परिछिज्जदे ? परमगुरूवएसादो।

दीरणा थोड़ी है। उससे उदय असंख्यातगुणा है। उससे बन्ध असंख्यातगुणा है। उससे संक्रम असंख्यातगुणा है और उससे सत्कर्म असंख्यातगुणा है।' यहाँ जघन्य बन्ध ऐसा कहनेपर उससे एकेन्द्रियके समयप्रबद्धप्रमाण द्रव्यका ग्रहण किया है। जघन्य संक्रम ऐसा कहनेपर इस प्रकारसे प्राप्त हुए संक्रम द्रव्यका ग्रहण किया है। यथा—एकेन्द्रियके एक समयप्रबद्धको स्थापित करो। फिर घोलमान जघन्य योगके द्वारा बाँधे गये पञ्चेन्द्रिय समयप्रबद्धको लाना चाहते हैं, इसलिये इसके गुणकाररूपसे योग गुणकारको स्थापित करो। फिर इसके नीचे अधःप्रवृत्तभागहारको स्थापित करके भाग देनेपर जघन्य संक्रमद्रव्य आता है। यदि यहाँ योगगुणकार अधःप्रवृत्तभागहारसे अल्प होता तो जघन्य संक्रमद्रव्यसे जघन्य बन्ध असंख्यातगुणा हो जाता। पर ऐसा है नहीं, क्योंकि सूत्रमें बन्धसे संक्रम असंख्यातगुणा बतलाया है, इसलिये अधःप्रवृत्तभागहारसे योगगुणकार असंख्यागुणा है यह सिद्ध हुआ। योगगुणकारसे कर्मस्थितिके भीतर प्राप्त हुई नानागुणहानिशलाकाएँ असंख्यातगुणी हैं, क्योंकि वे कुछ कम पल्यके अर्धच्छेदप्रमाण हैं। इस कारणका खुलासा इस प्रकार है—डेढ़ गुणहानिको रखकर योगगुणकारसे गुणित करनेपर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण ही लब्ध राशि आती है। फिर यहाँ योगगुणकारको अलग करके और गुण्यमान उसी डेढ़ गुणहानिप्रमाण राशिको स्थापित करके यदि नानागुणहानिशलाकाओंसे गुणा किया जाता है तो डेढ़गुणी कर्मस्थितिप्रमाण राशि उत्पन्न होती है। इससे ज्ञात होता है कि योगगुणकारसे कर्मस्थितिके भीतर प्राप्त हुई नानागुणहानिशलाकाएँ असंख्यागुणी हैं। कर्मस्थितिके भीतर प्राप्त हुई नानागुणहानिशलाकाओंसे पल्यके अर्धच्छेद विशेष अधिक हैं।

शंका—कितने अधिक हैं ?

समाधान—पल्यकी वर्गशलाकाओंके जितने अर्धच्छेद हों उतने अधिक हैं।

पलिदोवमपढमवग्गमूलं असंखेज्जगुणं। सुगममेत्थ कारणं। एगपदेसगुणहाणिट्ठाणंतर-मसंखेज्जगुणं। कारणं णाणागुणहाणिसलागाहि कम्मट्ठिदीए ओवट्टिदाए असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि आगच्छंति त्ति। दिवड्ढगुणहाणिट्ठाणंतरं विसेसाहियं। के० विसेसो? दुभागमेत्तेण। णिसेयभागहारो विसेसो। के०मेत्तेण? तिभागमेत्तेण। अण्णोण्णब्भत्थरासी असंखे०गुणो। एत्थ कारणं सुगमं। पलिदोवममसंखेज्जगुणं। सुगमं। विज्झादसंकमभागहारो असंखेज्जगुणो। किं कारणं? अंगुलस्स असंखे०-भागपमाणत्तादो। उव्वेल्लणभागहारो असंखेज्जगुणो। दोण्हमेदेसिमंगुलस्सासंखे०-भागपमाणत्ताविसेसे वि पदेससंकमप्पाबहुअसुत्तादो एदस्सासंखेज्जगुणमवगम्मदे। अणुभागवग्गणाणं णाणापदेसगुणहाणिसलागाओ अणंतगुणाओ। किं कारणं? अभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणं सिद्धाणमणंतभागपमाणत्तादो। एगपदेसगुणहाणि-

---

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—परम गुरुओंके उपदेशसे जाना जाता है।

पल्यके अर्धच्छेदोंसे पल्यका प्रथम वर्गमूल असंख्यातगुणा है। इसका कारण सुगम है। इससे एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है, क्योंकि कर्मस्थितिमें नानागुणहानि-शलाकाओंका भाग देनेपर पल्यके असंख्यात प्रथमवर्गमूल प्राप्त होते हैं। एकप्रदेशगुणहानि-स्थानान्तरसे डेढ़गुणहानिस्थानान्तर विशेष अधिक है।

शंका—कितना अधिक है?

समाधान—दूसरा भाग अधिक है।

डेढ़गुणहानिस्थानान्तरसे निषेकभागहार विशेष अधिक है।

शंका—कितना अधिक है?

समाधान—तीसरा भाग अधिक है।

निषेकभागहारसे अन्योन्याभ्यस्तराशि असंख्यातगुणी है। इसका कारण सुगम है। इससे पल्य असंख्यातगुणा है। इसका भी कारण सुगम है। इससे विध्यातसंक्रमभागहार असंख्यातगुणा है।

शंका—इसके असंख्यातगुणे होनेका क्या कारण है?

समाधान—क्योंकि विध्यातसंक्रमभागहार अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिये इसे पल्यसे असंख्यातगुणा बतलाया है।

विध्यातसंक्रमभागहारसे उद्वेलनभागहार असंख्यातगुणा है। यद्यपि ये दोनों ही भागहार अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं तो भी प्रदेशसंक्रमअल्पबहुत्वविषयक सूत्रसे ज्ञात होता है कि विध्यातसंक्रमभागहारसे उद्वेलनभागहार असंख्यातगुणा है। उद्वेलनभागहारसे अनुभाग वर्गणाओंकी नानाप्रदेशगुणहानिशलाकाएँ अनन्तगुणी हैं, क्योंकि ये अभव्योंसे अनन्तगुणी और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं। इससे एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर अनन्तगुणा है।

ट्ठाणंतरमणंतगुणं। दिवड्ढगुणहाणिट्ठाणंतरं विसेसाहियं। णिसेयभागहारो विसेसो। अण्णोण्णब्भत्थरासी अणंतगुणो त्ति।

एवमप्पाबहुए समत्ते झीणमझीणं ति पदं समत्तं होदि।

ट्ठिदियं ति चूलिया

भद्दं सम्मद्दंसणणाणचरित्ताणममलसाराणं।
जिणवरवयणमहोवहिगब्भसमब्भूयरयणाणं ॥
सुहुमयतिहुवणसिहरट्ठिदियंतियसिद्धवंदियं वीरं।
इणमो पणमिय सिरसा वोच्छं ठिदियं ति अहियारं ॥१॥

❀ **ठिदियं ति जं पदं तस्स विहासा।**

§ ५९७. एत्तो उवरि ठिदियं ति जं पदं मूलगाहाए चरिमावयवभूदं वा सद्देण सूचिदासेसविसेसपरूवणं तस्स विहासा अहिकीरदि त्ति सुत्तत्थसंबंधो। तत्थ किं ठिदियं णाम? ट्ठिदीओ गच्छइ त्ति ट्ठिदियं पदेसग्गं ट्ठिदिपत्तयमिदि उत्तं होदि।

इससे द्व्यर्धगुणहानिस्थानान्तर विशेष अधिक है। इससे निषेकभागहार विशेष अधिक है। इससे अन्योन्याभ्यस्तराशि अनन्तगुणी है।

इस प्रकार अल्पबहुत्वके समाप्त हो जानेपर गाथामें आये हुए 'झीणमझीणं' इस पदकी व्याख्या समाप्त होती है।

स्थितिग चूलिका

जैसे महोदधिके गर्भसे उत्तमोत्तम रत्न निकलते हैं उसी प्रकार जो जिनेन्द्रदेवके वचनरूपी महोदधिसे निकले हैं और जो संसारके सब निर्मल पदार्थोंमें सारभूत हैं ऐसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप तीनों रत्नोंकी सदा जय हो ॥ १ ॥

सुखमय और तीन लोकके अग्र भागमें स्थित सिद्धरूपसे वन्दनीय ऐसे इन वीर जिनको मस्तकसे प्रणाम करके स्थितिग नामक अधिकारका कथन करता हूँ ॥ २ ॥

* **गाथामें जो 'ट्ठिदियं' पद है उसका विशेष व्याख्यान करते हैं।**

§ ५९७. इसके आगे अर्थात् मूल गाथामें आये हुए 'झीणमझीणं' पदकी व्याख्याके बाद मूल गाथाके अन्तिम चरणमें जो 'ट्ठिदियं' पद है और जिसके अन्तमें आये हुए 'वा' पदसे सांगोपांग सब प्ररूपणाका सूचन होता है, अब उसके विशेष व्याख्यानका अधिकार है यह इस सूत्रका तात्पर्यार्थ है।

शंका—'ट्ठिदियं' इस पदका क्या अर्थ है?

समाधान—'ट्ठिदियं' का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ स्थितिग अर्थात् स्थितिको प्राप्त हुए कर्मपरमाणु होता है।

तदो उक्कस्सट्ठिदिपत्तयादीणं सरूवविसेसजाणावणट्ठं पदेसविहत्तीए चूलियासरूवेण एसो अहियारो समोइण्णो त्ति घेत्तव्वो। संपहि एत्थ संभवंताणमणियोगद्दाराणं परूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ तत्थ तिण्णि अणियोगद्दाराणि। तं जहा—समुक्कित्तणा सामित्त-मप्पाबहुअं च।

§ ५९८. तत्थ ठिदियं ति एदस्स बीजपदस्स अत्थविहासाए कीरमाणाए तिण्णि अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति। काणि ताणि त्ति सिस्साभिप्पायं तं जहा त्ति आसंकिय तेसिं णामणिद्देसो कीरदे समुक्कित्तणा इच्चाइणा। तत्थ समुक्कित्तणा णाम उक्कस्सट्ठिदिपत्तयादीणमत्थित्तमेत्तपरूवणा। तत्थ समुक्कित्तिदाणं संबंधविसेस-परिक्खा सामित्तं णाम। तेसिं चेव थोवबहुत्तपरिक्खा अप्पाबहुअमिदि भण्णदे। एवमेत्थ तिण्णि अणियोगद्दाराणि होंति त्ति परूविय संपहि तेहि पयदस्साणुगमं कुणमाणो जहा उद्देसो तहा णिद्देसो त्ति णायादो समुक्कत्तणाणुगममेव ताव विहासिदु-कामो इदमाह—

❀ समुक्कित्तणाए अत्थि उक्कस्सट्ठिदिपत्तयं णिसेयट्ठिदिपत्तयं अधा-णिसेयट्ठिदिपत्तयं उदयट्ठिदिपत्तयं च।

§ ५९९. सव्वेसिं कम्माणमेदाणि चत्तारि वि ट्ठिदिपत्तयाणि अत्थि त्ति

इसलिये उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त आदिकके विशेष स्वरूपका ज्ञान करानेके लिये प्रदेशविभक्तिके चूलिकारूपसे यह अधिकार आया है यह तात्पर्य यहाँ लेना चाहिये। अब यहाँ पर जो अधिकार सम्भव हैं उनका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* इस प्रकरणमें तीन अनुयोगद्वार हैं। यथा—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व।

§ ५९८. यहाँ पर अर्थात् 'ठिदियं' इस बीजपदके अर्थका विवरण करते समय तीन अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं। वे तीन अनुयोगद्वार कौन कौन हैं इस प्रकार शिष्यके अभिप्रायको 'तं जहा' पदद्वारा प्रकट करके समुत्कीर्तना इत्यादि पदोंद्वारा उनका नामनिर्देश किया है। इनमेंसे उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त आदि कर्मपरमाणुओंके अस्तित्वमात्रका कथन करना समुत्कीर्तना है। समुत्कीर्तना अनुयोगद्वारमें जिनका निर्देश किया है उनके सम्बन्धविशेषकी परीक्षा करना स्वामित्व है और उन्हींके अल्पबहुत्वकी परीक्षा करना अल्पबहुत्व कहलाता है। इस प्रकार इस प्रकरणमें तीन अनुयोगद्वार होते हैं इसका कथन करके अब उनके द्वारा प्रकृत विषयका अनुशीलन करते हुए 'उद्देश्यके अनुसार निर्देश किया जाता है' इस न्यायके अनुसार समुत्कीर्तना अनुयोगद्वारका ही विवरण करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त, निषेकस्थितिप्राप्त, अधःनिषेक-स्थितिप्राप्त और उदयस्थितिप्राप्त कर्मपरमाणु हैं।

§ ५९९. सब कर्मोंके ये चार स्थितिप्राप्त होते हैं यह इसका तात्पर्य है। इस प्रकार इस

समुकित्तिदं होइ। एवमेदेसिमुक्कस्सादिट्ठिदिपत्तयाणमत्थित्तमेत्तमेदेण सुत्तेण समुक्कित्तिय संपहि तेसिं चेव सरूवविसए णिण्णयजणणट्ठमट्ठपदं परूवेमाणो उक्कस्सट्ठिदिपत्तयमेव ताव पुच्छासुत्तेण पत्तावसरं करेइ—

❀ उक्कस्सयट्ठिदिपत्तयं णाम किं।

§ ६००. उक्कस्सट्ठिदिपत्तयसरूवविसेसावहारणपरमेदं पुच्छासुत्तं। संपहि एदिस्से पुच्छाए उत्तरमाह—

❀ जं कम्मं बंधसमयादो कम्मट्ठिदीए उदए दीसइ तमुक्कस्सट्ठिदिपत्तयं।

§ ६०१. एतदुक्तं भवति—जं कम्मपदेसग्गं बंधसमयादो प्पहुडि कम्मट्ठिदिमेत्तकालमंच्छियूण सगकम्मट्ठिदिचरिमसमए उदए दीसइ तमुक्कस्सट्ठिदिपत्तयमिदि भण्णदे, अग्गट्ठिदीए वट्टमाणत्तादो त्ति। णाणासमयपबद्धे अस्सियूण किण्ण घेप्पदे? ण, तेसिमक्कमेण अग्गट्ठिदिपत्तयत्तासंभवादो। बंधसमए चेव किण्ण घेप्पदे? ण, चउण्हं पि ट्ठिदिपत्तयाणमुदयं पेक्खियूण गहणादो। तत्थ वि ण चरिमणिसेयपरमाणूणं चेव सुद्धाणमुक्कस्सट्ठिदिपत्तयसण्णा, किंतु पढमणिसेयादिपदेसाणं पि तत्थुक्कड्डिदाण-

---

सूत्र द्वारा इन उत्कृष्ट आदि स्थितिप्राप्त कर्मपरमाणुओंका अस्तित्वमात्र बतलाकर अब उनके स्वरूपके विषयमें विशेष निर्णय करनेके लिये अर्थपदका कथन करते हुए पृच्छासूत्र द्वारा सर्वप्रथम उत्कृष्ट स्थितिप्राप्तके निर्देशकी ही सूचना करते हैं—

*** उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त किसे कहते हैं।**

§ ६००. उत्कृष्ट स्थितिप्राप्तके स्वरूप विशेषका निश्चय करानेवाला यह पृच्छासूत्र है। अब इस पृच्छाका उत्तर कहते हैं—

*** जो कर्म बन्धसमयसे लेकर कर्मस्थितिके अन्तमें उदयमें दिखाई देता है वह उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त है।**

§ ६०१. इस सूत्रका यह अभिप्राय है कि जो कर्मपरमाणु बन्ध समयसे लेकर कर्मस्थितिप्रमाण कालतक रहकर अपनी कर्मस्थितिके अन्तिम समयमें उदयमें दिखाई देता है वह उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त कर्म कहलाता है, क्योंकि वह अग्रस्थितिमें विद्यमान रहता है।

शंका—यह उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त कर्म नाना समयप्रबद्धोंकी अपेक्षा क्यों नहीं लिया जाता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि नाना समयप्रबद्धोंका एक साथ अग्रस्थितिको प्राप्त होना सम्भव नहीं है।

शंका—उत्कृष्ट स्थितिप्राप्तका बन्ध समयमें ही क्यों नहीं ग्रहण किया जाता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि चारों ही स्थिति प्राप्त कर्मोंका उदयकी अपेक्षा ग्रहण किया है।

उसमें भी केवल अन्तिम निषेकके परमाणुओंकी यह उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त संज्ञा नहीं है

मेसा सण्णा त्ति घेत्तव्वं, अण्णहा उक्कस्सयसमयपबद्धस्स अग्गट्ठिदीए जत्तियं णिसित्तं तत्तियमुक्कस्सेणे त्ति भणिस्समाणपरूवणाए सह विरोहप्पसंगादो। ण च चरिमणिसेयस्सेव अणूणाहियस्स जहाणिसित्तसरूवेणोदयसंभवो, ओकड्डिय विणासियत्तादो। तम्हा एयसमयपबद्धणाणाणिसेयावलंबणेण पयदट्ठिदिपत्तयमवट्ठिदमिदि सिद्धं।

किन्तु प्रथम निषेक आदिके जिन परमाणुओंका उत्कर्षण होकर वहाँ निक्षेप हो गया है उनकी भी यही संज्ञा है ऐसा अर्थ यहाँपर लेना चाहिये। यदि यह अर्थ न लिया जाय तो 'एक समयप्रबद्धकी अग्रस्थितिमें जितना द्रव्य निक्षिप्त होता है उतना द्रव्य उत्कृष्ट रूपसे अग्रस्थितिप्राप्त है' यह जो सूत्र आगे कहा जायगा उसके साथ विरोध प्राप्त होता है। यदि कहा जाय कि न्यूनाधिकताके बिना अन्तिम निषेकका ही बन्धके समय जैसा उसमें कर्मपरमाणुओंका निक्षेप हुआ है उसी रूपसे उदय होना सम्भव है सो यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि अपकर्षण होकर उसका विनाश देखा जाता है। इस लिये एक समयप्रबद्धके नाना निषेकोंके अवलम्बनसे ही प्रकृत स्थितिप्राप्त अवस्थित है यह बात सिद्ध होती है।

विशेषार्थ—प्रदेशसत्कर्मका विचार करते हुए उत्कृष्टादिकके भेदसे उनका बहुमुखी विचार किया। उसके बाद यह भी बतलाया कि सत्तामें स्थित इन कर्मोंमेंसे कौन कर्मपरमाणु अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण और उदयके योग्य है और कौन कर्मपरमाणु इनके अयोग्य हैं। किन्तु अब तक यह नहीं बतलाया था जि इन सत्तामें स्थित कर्मपरमाणुओंके उदयकी अपेक्षा कितने भेद हो सकते हैं? क्या जिन कर्मोंका जिस रूपमें बन्ध होता है उसी रूपमें वे उदयमें आते हैं या उनमें हेर फेर भी सम्भव है। यदि हेर फेर सम्भव है तो उदयकी अपेक्षा उसके कितने प्रकार हो सकते हैं? प्रस्तुत प्रकरणमें इसी बातका विस्तारसे विचार किया गया है। यहाँ ऐसे प्रकार चार बतलाये हैं—उत्कृष्टस्थितिप्राप्त, निषेकस्थितिप्राप्त, यथानिषेकस्थितिप्राप्त और उदयस्थितिप्राप्त। इनमेंसे प्रत्येकका खुलासा चूर्णिसूत्रकारने स्वयं किया है, इसलिये यहाँ हम सबके विषयमें निर्देश नहीं कर रहे हैं। प्रकृतमें उत्कृष्टस्थितिप्राप्त विचारणीय है। चूर्णिसूत्रमें इस सम्बन्धमें इतना ही कहा है कि बन्धसमयसे लेकर कर्मस्थितिके अन्तिम समयमें जो उदयमें दिखाई देता है वह उत्कृष्टस्थितिप्राप्त कर्म है। इस परसे अनेक शंकाएँ पैदा होती हैं? कि क्या उस अग्रस्थितिमें नाना समयप्रबद्धोंके कर्मपरमाणु लिये जा सकते हैं यह पहली शंका है। इसका समाधान नकारात्मक ही होगा, क्योंकि नाना समयप्रबद्धोंकी अग्रस्थिति एक समयमें नहीं प्राप्त हो सकती।। दूसरी शंका यह पैदा होती है कि बन्धके समय ही उत्कृष्टस्थितिप्राप्त यह संज्ञा न देकर जब वह अग्रस्थिति उदयगत होती है तभी उत्कृष्टस्थितिप्राप्त यह संज्ञा क्यों दी गई है? इसका समाधान यह है कि ये संज्ञाएँ उदयकी अपेक्षासे ही व्यवहृत हुई हैं, इसलिये जब अग्रस्थिति उदयगत होती है तभी उत्कृष्टस्थितिप्राप्त इस संज्ञाका व्यवहार होता है। तीसरी शंका यह है कि बन्धके समय जिन कर्मपरमाणुओंमें उत्कृष्ट स्थिति पड़ती है वे ही केवल उत्कृष्ट स्थितिके उदयगत होनेपर उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त कहलाते हैं या उत्कर्षण द्वारा उसी समयप्रबद्धकी अन्य स्थितियोंमें स्थित कर्मपरमाणुओंके भी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करके उत्कृष्ट स्थितिके उदयगत होनेपर वे कर्मपरमाणु भी उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त कहलाते हैं? इसका समाधान यह है कि अग्रस्थितिमें बन्धके समय जितने भी कर्मपरमाणु प्राप्त होते हैं अपनी स्थितिके अन्त समय तक वे वैसे ही नहीं बने रहते हैं। यदि स्थितिकाण्डकघात और संक्रमणकी चर्चाको छोड़ दिया जाय, क्योंकि वह चर्चा इस प्रकरणमें उपयोगी नहीं है तो भी बहुतसे कर्मपरमाणुओंका अपकर्षण

❀ णिसेयट्ठिदिपत्तयं णाम किं ?

§ ६०२. सव्वं पि पदेसग्गं णिसेयट्ठिदिपत्तयमेव, णिसेयट्ठिदिमपत्तयस्स कम्मत्ताणुववत्तीदो। तदो किण्णाम तं णिसेयट्ठिदिपत्तयं जं विसेसेणापुव्वं परूविज्जदि त्ति ? एवंविहासंकासूचयमेदं पुच्छावक्कं। संपहि एदिस्से आसंकाए णिरायरणट्ठं तस्स सरूवमुत्तरसुत्तेण परूवेइ—

❀ जं कम्मं जिस्से ट्ठिदीए णिसित्तं ओकड्डिदं वा उक्कड्डिदं वा तिस्से चेव ट्ठिदीए उदए दिस्सइ तं णिसेयट्ठिदिपत्तयं।

§ ६०३. एवमुक्तं भवति—जं कम्मं बंधसमए जिस्से ट्ठिदीए णिसित्तमोकड्डिदं वा उक्कड्डिदं वा संतं पुणो वि तिस्से चेव ट्ठिदीए होऊण उदयकाले दीसइ तं णिसेयट्ठिदिपत्तयमिदि। एदं च णाणासमयपबद्धप्पयमेयणिसेयमवलंबिय पयट्टमिदि घेत्तव्वं। कथमेत्थमोकड्डिदमुक्कड्डिदं वा पदेसग्गमुदयसमए तिस्से चेव ट्ठिदीए दिस्सइ त्ति

हो जाता है और नीचेकी स्थितिमें स्थित बहुतसे कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण होकर वे अग्रस्थितिमें भी पहुँच जाते हैं। तात्पर्य यह है कि बन्धके समय निषेककी जैसी रचना हुई रहती है उसके अपने उदयको प्राप्त होने तक उसमें बहुत हेरफेर हो जाता है। इससे ज्ञात होता है कि एक समयप्रबद्धके नानानिषेकसम्बन्धी जितने कर्मपरमाणु अग्रस्थितिमें प्राप्त रहते हैं उनका उदय होने पर वे सब उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त कहलाते हैं। चूर्णिसूत्रमें आगे जो उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त कर्मके स्वामित्वका निर्देश करनेवाला सूत्र है उससे भी इसी बातकी पुष्टि होती है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त कर्म किसे कहते हैं इसका विचार किया।

*** निषेकस्थितिप्राप्त किसे कहते हैं ?**

§ ६०२. जितना भी कर्म है वह सबका सब निषेकस्थितिप्राप्त ही होता है, क्योंकि जो निषेक स्थितिको प्राप्त नहीं होता वह कर्म ही नहीं हो सकता, इसलिये वह निषेकस्थितिप्राप्त कौनसा कर्म है जिसका विशेष रूपसे यहाँ नये सिरेसे वर्णन किया जा रहा है। इस तरह इस प्रकारकी आशंकाको सूचित करनेवाला यह पृच्छासूत्र है। अब इस आशंकाका निराकरण करनेके लिये उसका स्वरूप अगले सूत्र द्वारा कहते हैं—

*** जो कर्म जिस स्थितिमें निक्षिप्त हुआ है अपकर्षित होकर या उत्कर्षित होकर उदयके समय यदि वह उसी स्थितिमें दिखाई देता है तो वह निषेकस्थितिप्राप्त कहलाता है।**

§ ६०३. इस सूत्रका यह आशय है कि बन्धके समय जो कर्म जिस स्थितिमें निक्षिप्त हुआ है अपकर्षित होकर या उत्कर्षित होकर फिर भी उदयके समय यदि वह उसी स्थितिमें दिखाई देता है तो वह कर्म निषेकस्थितिप्राप्त कहलाता है। यह सूत्र नाना समयप्रबद्धोंसे सम्बन्ध रखनेवाले एक निषेककी अपेक्षा प्रवृत्त हुआ है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये।

शंका—प्रकृतमें जिन कर्मोंका अपकर्षण और उत्कर्षण हुआ है वे कर्म उदय समयमें उसी स्थितिमें कैसे दिखलाई देते हैं ?

णासंकणिज्जं, पुणो वि उक्कड्डणोकड्डणाहि तहाभावाविरोहादो। ण सव्वेसिं णिसेयट्ठिदिपत्तयत्तादो एदस्स विसेसियपरूवणा णिरत्थिया त्ति पुव्विल्लासंका वि, तेसिमेत्तो विसेसणादो।

❀ अधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं णाम किं ?

§ ६०४. किमेदमुक्कस्सट्ठिदिपत्तयं व एयसमयपबद्धपडिबद्धमाहो णाणासमयपबद्धणिबंधणिसेयट्ठिदिपत्तयं व, को वा तत्तो एदस्स लक्खणविसेसो त्ति ? एवं विहाहिप्पाएण पयट्टमेदं पुच्छासुत्तं।

❀ **जं कम्मं जिस्से ट्ठिदीए णिसित्तं अणोकड्डिदं अणुक्कड्डिदं तिस्से चेव ट्ठिदीए उदए दिस्सइ तमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं।**

§ ६०५. एतदुक्तं भवति—जइ वि एदं णाणासमयपबद्धावलंबि तो वि

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि पहले जिन कर्मोंका अपकर्षण हुआ था उनका उत्कर्षण होकर और जिन कर्मोंका उत्कर्षण हुआ था उनका अपकर्षण होकर उदय समयमें फिरसे उसी स्थितिमें दिखाई देना विरोधको प्राप्त नहीं होता है।

यदि कहा जाय कि सभी कर्म निषेकस्थितिप्राप्त होते हैं, इसलिये इसका विशेष रूपसे कथन करना निरर्थक है सो ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि इससे उनमें विशेषता आ जाती है।

विशेषार्थ—यहाँ पर निषेकस्थितिप्राप्त कर्मसे क्या अभिप्राय है इसका खुलासा किया गया है। यद्यपि निषेकरचनाके बाहर कोई भी कर्म नहीं होता है पर प्रकृतमें यह अर्थ इष्ट है कि बन्धके समय जो कर्म जिस निषेकमें प्राप्त हुआ हो उदयके समय भी वह कर्म यदि उसी निषेकमें दिखाई देता है तो वह निषेकस्थितिप्राप्त है। जैसे उत्कृष्ट स्थितिप्राप्तमें अग्रस्थितिकी मुख्यता रही निषेककी नहीं वैसे ही यहाँ किसी भी स्थितिकी मुख्यता न होकर निषेककी मुख्यता है। यही कारण है कि प्रकृतमें नाना समयप्रबद्धसम्बन्धी एक निषेकका ग्रहण किया है। इस एक निषेकमें विविध समयप्रबद्धोंके विविध स्थितिवाले कर्मपरमाणु पाये जाते हैं यह इसका तात्पर्य है। यहाँ इतना और विशेष जानना चाहिए कि अपकर्षण और उत्कर्षण होकर जो कर्म विवक्षित निषेकसे नीचेकी और ऊपरकी स्थितिमें निक्षिप्त हो गये हैं, पुनः उत्कर्षण और अपकर्षण होकर यदि वे उसी विवक्षित निषेकमें आकर उदय समयमें उसी निषेकमें दिखाई देते हैं तो उनका भी यहाँ ग्रहण हो जाता है।

*** यथानिषेकस्थितिप्राप्त किसे कहते हैं।**

§ ६०४. क्या यह उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त कर्मके समान एक समयप्रबद्धसम्बन्धी है या निषेकस्थितिप्राप्तके समान नाना समयप्रबद्ध सम्बन्धी है ? उनसे इसके लक्षणमें क्या विशेषता है इस तरह इस प्रकारके अभिप्रायसे यह सूत्र प्रवृत्त हुआ है।

*** जो कर्म जिस स्थितिमें निक्षिप्त हुआ है अपकर्षण और उत्कर्षणके बिना यदि वह कर्म उदयके समय उसी स्थितिमें दिखाई देता है तो यह यथानिषेकस्थितिप्राप्त कहलाता है।**

§ ६०५. इस सूत्रका यह अभिप्राय है यद्यपि इसका नाना समयप्रबद्धोंसे सम्बन्ध है

पुव्विल्लादो एदस्स महंतो विसेसो। कुदो? जं कम्मं जिस्से ट्ठिदीए बंधसमए णिसित्तमणोकड्डिदमुक्कड्डिदं जहा णिसित्तं तहावट्ठिदं संतं तिस्से चेव ट्ठिदीए कम्मोदएण विपच्चिहिदि तमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयमिदि गहणादो। पुव्विल्लं पुण ओकड्डुकड्डणवसेण जत्थ तत्थ वावक्खित्तसरूवेणावट्ठिदं संगलिदसरूवेण तम्मि चेव ट्ठिदीए उदयमागच्छंतं गहिदमिदि। कथं जहाणिसेयस्स अधाणिसेयववएसो त्ति ण पच्चवट्ठेयं, 'वच्चंति कगतदयवा लोवं अत्थं वहंति तत्थ सरा' इदि यकारस्स लोवं काऊण णिद्देसादो। जहाणिसेयसरूवेणावट्ठिदस्स ट्ठिदिक्खएणोदयमागच्छंतस्स णाणासमयपबद्धसंबंध-पदेसपुंजस्स अत्थाणुगओ पयदववएसो त्ति भणिदं होइ।

❀ उदयट्ठिदिपत्तयं णाम किं?

§ ६०६. पुव्विल्लाणि सव्वाणि चेव उदयं पेक्खियूण भणिदाणि तम्हा ण तत्तो एदस्स भेदो त्ति एवंविहासंकाए पयट्टमेदं पुच्छासुत्तं। संपहि एदिस्से आसंकाए णिरायरणट्ठमिदमाह—

तो भी निषेकस्थितिप्राप्तसे इसमें बड़ा अन्तर है, क्योंकि बन्धके समय जो कर्म जिस स्थितिमें निक्षिप्त हुआ है, अपकर्षण और उत्कर्षणके बिना जिस प्रकार निक्षिप्त हुआ है उसी प्रकार रहते हुए यदि कर्मोदयके समय उसी स्थितिमें वह फल देता है तो वह यथानिषेकस्थितिप्राप्त कर्म है ऐसा यहाँ ग्रहण किया है। परन्तु पहला जो निषेकस्थितिप्राप्त कर्म है सो वहाँ अपकर्षण और उत्कर्षणके वशसे यत्र तत्र कहीं भी निक्षिप्त होकर कर्म अवस्थित रहता है परन्तु गलते समय उसी स्थितिमें वह कर्म उदयको प्राप्त होता है, यह अर्थ लिया गया है।

शंका—यथानिषिक्त कर्मकी यथानिषेक यह संज्ञा कैसे हो सकती है?

समाधान—ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि—'क, ग, त, द, य और व इनका लोप होने पर स्वर उनके अर्थकी पूर्ति करते हैं।' व्याकरणके इस नियमके अनुसार 'य' का लोप करके उक्त प्रकारसे निर्देश किया है। नाना समयप्रबद्धसम्बन्धी जो प्रदेशपुंज बन्धके समय जिस प्रकारसे निक्षिप्त हुआ है उसी प्रकारसे अवस्थित रहकर स्थितिका क्षय होने पर उदयमें आता है उसकी यह सार्थक संज्ञा है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

विशेषार्थ—निषेकस्थितिप्राप्तसे इसमें इतना ही अन्तर है कि वहाँ तो जिनका अपकर्षण उत्कर्षण होकर अन्यत्र निक्षेप हुआ है, अपकर्षण उत्कर्षण होकर वे परमाणु यदि पुनः उसी स्थितिमें प्राप्त होकर उदयमें आते हैं तो उनका ग्रहण होता है परन्तु यथानिषेकस्थिति-प्राप्तमें उन्हीं परमाणुओंका ग्रहण होता है जो तदवस्थ रहकर अन्तमें उदयमें आते हैं। इसके सिवा इन दोनोंमें और कोई अन्तर नहीं है।

*** उदयस्थितिप्राप्त किसे कहते हैं?**

§ ६०६. पूर्वोक्त सभी स्थितिप्राप्त कर्म उदयकी अपेक्षा ही कहे हैं, इसलिये उनसे इसमें कोई भेद नहीं रहता इस प्रकारकी आशंकाके होने पर यह पृच्छासूत्र प्रवृत्त हुआ है। अब इस आशंकाके निराकरण करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ जं कम्ममुदए जत्थ वा तत्थ वा दिस्सइ तमुदयट्ठिदिपत्तयं ।

§ ६०७. एदस्स भावत्थो—ण ताव अग्गट्ठिदिपत्तयम्मि एदस्स अंतब्भावो, ट्ठिदिविसेसमेयसमयपबद्धं च पेक्खियूण तस्स परूवियत्तादो । एत्थ तहाविहणियमाभावादो । ण णिसेय-जहाणिसेयट्ठिदिपत्तएसु वि, तेसिं पि बंधसमयणिसेयपडिबद्धत्तादो । तदो जं कम्मं जत्थ वा तत्थ वा ट्ठिदीए होदूण अविसेसेण उदयमागच्छदि तमुदयट्ठिदिपत्तयमिदि घेत्तव्वं ।

❀ एदमट्ठपदं ।

§ ६०८. उक्कस्सट्ठिदिपत्तयादीणं चउण्हं पि अत्थविसयणिण्णयणिबंधणमेदमट्ठपदं सव्वेसिं कम्माणं साहारणभावेण परूविदमवहारेयव्वं । पुणो वि विसेसिय चउण्हमेदेसिं परूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ एत्तो एक्केक्कट्ठिदिपत्तयं चउव्विहमुक्कस्समणुक्कस्सं जहण्णमजहण्णं च ।

§ ६०९. एत्तो अट्ठपदपरूवणाणंतरमेक्केक्कट्ठिदिपत्तयं चउव्विहं होइ उक्कस्सादिभेएण । एत्थ एक्केक्कट्ठिदिपत्तयग्गहणं पादेक्कं चउण्हं चउहि अहिसंबंधणट्ठमेक्केक्कस्स वा मिच्छत्तादिपयडिविसेसस्स चउव्विहं पि ट्ठिदिपत्तयं पादेक्कमुक्कस्साइभेएण

---

* जो कर्म उदयके समय यत्र तत्र कहीं भी दिखाई देता है वह उदयस्थिति प्राप्त कहलाता है ।

§ ६०७. इस सूत्रका भावार्थ यह है कि अग्रस्थिति प्राप्तमें तो इसका अन्तर्भाव होता नहीं, क्योंकि वह स्थितिविशेष और एक समयप्रबद्धकी अपेक्षा प्रवृत्त हुआ है । किन्तु इसमें उस प्रकारका कोई नियम नहीं पाया जाता । निषेकस्थितिप्राप्त और यथानिषेकस्थितिप्राप्त कर्मोंमें भी इसका अन्तर्भाव नहीं हो सकता, क्योंकि वे भी बन्ध समयके निषेकोंसे प्रतिबद्ध हैं, इसलिये जो कर्म जहाँ कहीं भी स्थितिमें रहकर अन्य किसी प्रकारकी विशेषताके बिना उदयको प्राप्त होता है वह उदयस्थितिप्राप्त कर्म है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये ।

* यह अर्थपद है ।

§ ६०८. उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त आदि चारोंका भी अर्थविषयक निर्णय करनेके सम्बन्धमें यह अर्थपद आया है जो साधारणभावसे सब कर्मोंका कहा गया जानना चाहिये । अब फिर भी इन चारोंके विषयमें विशेष बातके कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* एक एक स्थितिप्राप्तके चार चार भेद हैं—उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य ।

§ ६०९ अब इस अर्थपदके कथन करनेके बाद उत्कृष्ट आदिके भेदसे एक एक स्थितिप्राप्त चार-चार प्रकारका है यह बतलाते हैं । यहाँ सूत्रमें प्रत्येक स्थितिप्राप्तका चार चारसे सम्बन्ध बतलानेके लिये 'एक्केक्कट्ठिदिपत्तयं, पदका ग्रहण किया है । अथवा मिथ्यात्व आदिके एक एक

चउव्विहं होइ त्ति घेत्तव्वं । तदो सव्वेसिं कम्माणं पुध पुध णिरुंभणं काऊण चउण्हं ट्ठिदिपत्तयाणमुक्कस्सादिपदविसेसिदाणमोघादेसेहि परूवणा कायव्वा । एवं कदे समुक्कित्तणाणियोगद्दारं समत्तं ।

❀ **सामित्तं ।**

§ ६१०. सुगममेदमहियारसंभालणसुत्तं ।

❀ **मिच्छत्तस्स उक्कस्सयमग्गट्ठिदिपत्तयं कस्स ?**

§ ६११. सुगममेदं पुच्छावक्कं । एवं सामित्तविसयाए पुच्छाए तस्सेव परिकरभावेण अग्गट्ठिदिपत्तयवियप्पपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ **अग्गट्ठिदिपत्तयमेक्को वा दो वा पदेसा एवमेगादि-एगुत्तरियाए वड्ढीए जाव ताव उक्कसयं समयपबद्धस्स अग्गट्ठिदीए जत्तियं णिसित्तं तत्तियमुक्कस्सेण अग्गट्ठिदिपत्तयं ।**

§ ६१२. अग्गट्ठिदिपत्तयस्स उक्कस्ससामित्ते पुच्छिदे तमपरूविय तव्वियप्प-परूवणा किमट्ठं कीरदे ? ण, उक्कस्सदव्वपमाणे अणवगए तव्विसयसामित्तस्स सुहेणावगंतुमसक्कियत्तादो । अहवा उक्कस्ससामित्तपरूवणाए अणुक्कस्ससामित्तं पि

प्रकृतिविशेषके चारों ही स्थितिप्राप्त प्रत्येक उत्कृष्ट आदिके भेदसे चार चार प्रकारके होते हैं यह अर्थ यहाँ पर लेना चाहिये । इसलिये सभी कर्मोंको अलग अलग विवक्षित करके उत्कृष्ट आदि पदोसे युक्त चारों ही स्थितिप्राप्तोंका ओघ और आदेशकी अपेक्षा कथन करना चाहिये । इस प्रकार करने पर समुत्कीर्तना अनुयोगद्वार समाप्त होता है ।

* **अब स्वामित्वका अधिकार है ।**

§ ६१०. अधिकारकी सम्हाल करनेवाला यह सूत्र सुगम है ।

* **मिथ्यात्व कर्मकी अपेक्षा उत्कृष्ट अग्रस्थितिप्राप्त कर्मका स्वामी कौन है ?**

§ ६११. यह पृच्छावाक्य सरल है । इस प्रकार स्वामित्वविषयक पृच्छाके होने पर उसीके परिकररूपसे अग्रस्थितिप्राप्तके भेदोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* **एक कर्मपरमाणु अग्रस्थितिप्राप्त होता है, दो कर्मपरमाणु अग्रस्थितिप्राप्त होते हैं । इस प्रकार उत्तरोत्तर एक एक कर्मपरमाणुके बढ़ाने पर एक समयप्रबद्धकी अग्रस्थितिमें जितना उत्कृष्ट द्रव्य निक्षिप्त होता है उत्कृष्ट रूपसे उतना द्रव्य अग्रस्थितिप्राप्त होता है ।**

§ ६१२. **शंका**—पूछा तो अग्रस्थितिप्राप्त कर्मके उत्कृष्ट स्वामित्वके विषयमें गया था पर उसका कथन न करके यहाँ उसके भेदोंका कथन किसलिये किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उत्कृष्ट द्रव्यके प्रमाणके अनवगत रहने पर तद्विषयक स्वामित्वका सुखपूर्वक ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिये यहाँ उसके भेदोंका कथन किया गया है ।

अथवा उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन करते समय अनुत्कृष्ट स्वामित्वका भी कथन करना

परूवेयव्वं, अण्णहा एक्केक्कं ट्ठिदिपत्तयं चउव्विहमिदि परूवणाए विहलत्तप्पसंगादो। तं च उक्कस्सादो परमाणूणादिकमेणावट्ठिदं णिरंतरसरूवेण जाव एओ परमाणु त्ति एदस्स जाणावणट्ठमेसा परूवणा त्ति सुसंबद्धमेदं।

§ ६१३. संपहि एवं परूविदसंबंधस्सेदस्स सुत्तस्सत्थविवरणं कस्सामो। तं जहा—कम्मट्ठिदिपढमसमए जं बद्धं मिच्छत्तपदेसग्गं तं सत्तरिसागरोवमकोडाकोडि-मेत्तकम्मट्ठिदीए असंखेज्जे भागे अच्छिय पुणो पलिदोवमासंखेज्जदिभागपमाणमुक्कस्स-णिल्लेवणकालमत्थि त्ति सुद्धं होऊण गच्छइ। तत्तो उवरिमाणंतरसमए वि सुद्धं होऊण गच्छइ। एवं णिरंतरं गंतूण जाव कम्मट्ठिदिचरिमसमए वि सुद्धं होदूण तस्स गमणं संभवइ। पुणो तमेवं णिल्लेविज्जमाणं कम्मट्ठिदीए पुण्णाए एक्को वि परमाणू होयूणावट्ठाणं लहइ। किं कारणमिदि भणिदे णिरुद्धसमयपबद्धस्स एगेण वि परमाणुणा विणा जइ कम्मट्ठिदिचरिमसमओ सुण्णो होऊण लब्भइ तो गलिदसेसेग-परमाणुणा सहियत्तं सुट्ठु लहामो त्ति णत्थि एत्थ संदेहो। एवं दो वि परमाणू लब्भंति। एदेण कारणेण अग्गट्ठिदिपत्तयमेक्को वा दो वा पदेसा त्ति सुत्ते उत्तं। एवमेगादि-एगुत्तरियाए वड्ढीए ताव एवं णेदव्वं जाव समयपबद्धस्स अग्गट्ठिदीए जत्तियमुक्कस्सयं पदेसग्गं तं णिसित्तं ति।

§ ६१४. एत्थ समयपबद्धस्से त्ति भणिदे सण्णिपंचिंदियपज्जत्तएण उक्कस्स-

---

चाहिये, अन्यथा एक एक स्थिति प्राप्तको जो चार चार प्रकारका बतलाया है सो उस कथनको विफलताका प्रसंग प्राप्त होता है। और वह अनुत्कृष्ट उत्कृष्टमेंसे निरन्तर एक एक परमाणुके घटाने पर एक परमाणुके प्राप्त होने तक होता है, इस प्रकार इस बातका ज्ञान करानेके लिये यह प्ररूपणा की है, इसलिये यह कथन सुसम्बद्ध है।

§ ६१३. इस प्रकार इस सूत्रके सम्बन्धका कथन करके अब उसके अर्थका कथन करते हैं। वह इस प्रकार है—कर्मस्थितिके प्रथम समयमें मिथ्यात्वका जो द्रव्य बँधा है वह सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण कर्मस्थितिके असख्यात बहुभाग तक रहता है फिर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण उत्कृष्ट निर्लेपन कालके भीतर उसका अभाव हो जाता है। या उससे एक समय और जाने पर उसका अभाव होता है। इस प्रकार निरन्तर एक एक समयके जाने पर कर्मस्थितिके अन्तिम समयमें भी अभाव होकर उसका गमन सम्भव है। यद्यपि वह इस प्रकार अभावको प्राप्त होता है तो भी कभी कर्मस्थितिके अन्तिम समयमें एक परमाणु भी शेष रहता है। कारण यह है कि विवक्षित समयप्रबद्धके एक परमाणुके बिना भी यदि कर्मस्थितिका अन्तिम समय शून्यरूपसे प्राप्त हो सकता है तो इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि अन्य सब परमाणुओंको गलाकर शेष बचे एक परमाणुके साथ भी कर्मस्थितिका वह अन्तिम समय प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार कर्मस्थितिके अन्तिम समयमें दो परमाणु भी प्राप्त होते हैं। इसी कारणसे सूत्रमें 'अग्गट्ठिदिपत्तयं एक्को वा दो वा पदेसा' यह वचन कहा है। इस प्रकार उत्तरोत्तर एक एक परमाणुको बढ़ाते हुए अग्रस्थितिमें जितना उत्कृष्ट द्रव्य निक्षिप्त होता है उसके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिये।

§ ६१४. यहाँ सूत्रमें जो 'समयपबद्धस्स' यह पद दिया है सो उससे संज्ञी पञ्चेन्द्रिय

जोगिणा बद्धेयसमयपबद्धस्स गहणं कायव्वं, अण्णहा अग्गट्ठिदीए उक्कस्सणिसेयाणुववत्तीदो। तत्तियमुक्कस्सेण अग्गट्ठिदिपत्तयं जत्तियं तमणंतरपरूविदं। चरिमणिसेय-उक्कस्सपदेसग्गमेयसमयपबद्धणिबद्धं तत्तियमेत्तमुक्कस्सग्गेण अग्गिट्ठिदिपत्तयं होइ त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसंगहो। ण चेदमेत्तियं जहाणिसेयसरूवेण लब्भइ, ओकड्डिय कम्मट्ठिदिअब्भंतरे विणासियत्तादो। किं तु उक्कड्डणाए कम्मट्ठिदिचरिमसमए धरिद-पदेसग्गमेत्तियं होइ त्ति गहेयव्वं। तम्हा एयसमयपबद्धणाणाणिसेए उक्कड्डिय धरिदपदेसग्गमेत्तियमुदयगयमुक्कस्सयमग्गट्ठिदिपत्तयं होइ त्ति सिद्धं।

§ ६१५. एवं णिहालिदपमाणस्सेदस्स अणुक्कस्सवियप्पेहि सह सामित्तविहाणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

* **तं पुण अण्णदरस्स होज्ज।**

पर्याप्तके द्वारा उत्कृष्ट योगसे बाँधे गये एक समयप्रबद्धका ग्रहण करना चाहिये, अन्यथा अग्रस्थितिमें उत्कृष्ट निषेक नहीं प्राप्त हो सकते हैं। उत्कृष्टरूपसे अग्रस्थितिप्राप्त द्रव्य उतना ही होता है जितनेका अनन्तर कथन कर आये हैं। एक समयप्रबद्धके अन्तिम निषेकमें जितना उत्कृष्ट द्रव्य होता है उतना उत्कृष्टरूपसे अग्रस्थितिप्राप्त होता है यह यहाँ इस सूत्रका समुदायरूप अर्थ है। जिस रूपसे इसका अग्रस्थितिमें निक्षेप होता है उसी रूपसे वह उतना पाया जाता है यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि अपकर्षण होकर कर्मस्थितिके भीतर ही उसका विनाश देखा जाता है। किन्तु उत्कर्षणके द्वारा कर्मस्थितिके अन्तिम समयमें उतना द्रव्य पाया जा सकता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये, इसलिये यह बात सिद्ध हुई कि एक समयप्रबद्धके नानानिषेकोंका उत्कर्षण होकर उदयगत उतना द्रव्य हो जाता है जो अग्रस्थितिप्राप्त उत्कृष्ट द्रव्यके बराबर होता है।

विशेषार्थ—यहाँ मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त द्रव्यके उत्कृष्ट स्वामित्वका विचार करते समय यह बतलाया गया है कि उदयके समय अग्रस्थितिमें कमसे कम कितना और अधिकसे अधिक कितना द्रव्य प्राप्त होता है। स्थितिकाण्डकघात आदिके द्वारा अग्रस्थितिका सर्वथा अभाव हो जाय यह दूसरी बात है पर यदि उसका अभाव नहीं होता तो यह सम्भव है कि एक परमाणुको छोड़कर उसके और सब द्रव्यका अपकर्षण होकर विनाश हो जाय। यह भी सम्भव है कि दो परमाणुओंके सिवा और सब द्रव्यका अपकर्षण होकर विनाश हो जाय। इस प्रकार उत्तरोत्तर एक एक परमाणुको बढ़ाते हुए अग्रस्थितिमें एक समय-प्रबद्धका जितना द्रव्य प्राप्त होता है उतना प्राप्त होने तक यह द्रव्य पाया जा सकता है। पर सबका सब बन्धके समय अग्रस्थितिमें जैसा प्राप्त हुआ था वैसा ही अपने उदय कालके प्राप्त होनेतक नहीं बना रहता है, किन्तु इसमेंसे बहुतसे द्रव्यका अपकर्षण आदि भी हो जाता है, इसलिये यह घट तो जाता है तो भी उन्हींका पुनः या अन्य निषेकोंके द्रव्यका उत्कर्षण करके वह उतना अवश्य किया जा सकता है यह इसका भाव है।

§ ६१५. इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिप्राप्तके प्रमाणका विचार करके अब अनुत्कृष्ट विकल्पोंके साथ इसके स्वामित्वका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* **उस उत्कृष्ट अग्रस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वामी कोई भी जीव होता है।**

§ ६१६. तं पुण पुव्वं पुच्छाए विसईकयमुक्कस्सट्ठिदिपत्तयं सगंतोभाविदाणंताणुक्कस्सवियप्पमण्णदरस्स जीवस्स संबंधी होइ, विरोहाभावादो। णवरि खविदकम्मंसियं मोत्तूण उक्कस्ससामित्तं वत्तव्वं, तत्थुक्कस्साभावादो।

❀ **अधाणिसेयट्ठिदिपत्तयमुक्कस्सयं कस्स ?**

§ ६१७. एत्थ मिच्छत्तग्गहणमणुवट्टदे। सेसं सुगमं।

❀ **तस्स ताव संदरिसणा।**

§ ६१८. तस्स जहाणिसेयट्ठिदिपत्तयस्स सामित्तप्परूवणट्ठं ताव उवसंदरिसणा एत्थुवजोगी संबंधद्धपरूवणा कीरइ त्ति पइज्जासुत्तमेदं।

❀ **उदयादो जहण्णयमाबाहामेत्तमोसक्किदूण जो समयपबद्धो तस्स णत्थि अधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं।**

§ ६१९. जहाणिसेयसामित्तसमयादो जहण्णाबाहामेत्तं हेट्ठदो ओसक्किदूण बद्धो जो समयपबद्धो तस्स णिरुद्धट्ठिदीए णत्थि जहाणिसेयट्ठिदिपत्तयं पदेसग्गमिदि वुत्तं होइ। कुदो तस्स तत्थ णत्थित्तं ? तत्तो अणंतरोवरिमट्ठिदिमादिं काऊणुवरि

§ ६१६. जिसका विषय पहले बतला आये हैं और जिसमें अनन्त अनुत्कृष्ट विकल्प गर्भित हैं उस उत्कृष्ट स्थितिप्राप्तका कोई भी जीव स्वामी हो सकता है, क्योंकि ऐसा माननेमें कोई विरोध नहीं आता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि क्षपितकर्मांश जीवको छोड़कर अन्यके उत्कृष्ट स्वामित्व कहना चाहिये, क्यों कि जो क्षपितकर्मांश जीव है उसके उत्कृष्ट विकल्प सम्भव नहीं है।

विशेषार्थ—एक क्षपितकर्मांश जीवको छोड़कर अन्य सब जीवोंके बन्धके समयमें अग्रस्थितिमें जितना द्रव्य प्राप्त हुआ था उदयके समय उत्कर्षणके सम्बन्धसे उतना द्रव्य पाया जा सकता है, इसलिये उत्कृष्ट अग्रस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वामी किसी भी जीवको बतलाया है।

* **उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्तका स्वामी कौन है ?**

§ ६१७. इस सूत्रमें 'मिथ्यात्व' पदकी अनुवृत्ति होती है। शेष कथन सुगम है।

* **अब उसका स्पष्टीकरण करते हैं।**

§ ६१८. अब उस यथानिषेकस्थितिप्राप्तके स्वामित्वका कथन करनेके लिए उपसंदर्शना अर्थात् प्रकृतमें उपयोगी सम्बन्धित अर्थकी प्ररूपणा करते हैं। इस प्रकार यह प्रतिज्ञा सूत्र है।

* **उदय समयसे जघन्य आबाधाप्रमाण स्थान नीचे जाकर जो समयप्रबद्ध बँधता है उसका विवक्षित स्थितिमें यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्य नहीं है।**

§ ६१९. यथानिषेकके स्वामित्वसमयसे जघन्य आबाधाप्रमाण स्थान नीचे (पीछे) जाकर जो समयप्रबद्ध बँधा है उसका विवक्षित स्थितिमें यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्य नहीं है यह इस सूत्रका तात्पर्य है।

शंका—उसका वहाँ अस्तित्व क्यों नहीं है ?

समाधान—क्योंकि प्रकृत स्वामित्वके समयसे जो अनन्तरवर्ती उपरिम स्थिति है

पयदसमयपबद्धस्स णिसेयदंसणादो । एदं च अवत्थुवियप्पाणमंतदीवयभावेण परूविदं, तेण जहण्णाबाहामेत्ता चेव जहाणिसेयस्स अवत्थुवियप्पा परूवेयव्वा ।

❀ समयुत्तराए आबाहाए एवदिमचरिमसमयपबद्धस्स अधाणिसेओ अत्थि ।

§ ६२०. कुदो ? आबाहामेत्तमइच्छाविय पयदसमयपबद्धस्स णिरुद्धट्ठिदीए णिसेयदंसणादो । एत्थ जहण्णग्गहणेणाणुवट्टमाणेण आबाहा विसेसियव्वा ।

❀ तत्तो पाए जाव असंखेज्जाणि पलिदोवमवग्गमूलाणि तावदिमसमयपबद्धस्स अधाणिसेओ णियमा अत्थि ।

§ ६२१. तत्तो समयुत्तरजहण्णाबाहमेत्तमोसक्किदूण बद्धसमयपबद्धादो प्पहुडि हेट्ठिमसेसासेससमयपबद्धाणं जहाणिसेओ णिरुद्धट्ठिदीए णियमा अत्थि जाव असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि हेट्ठदो ओसरियूण बद्धसमयपबद्धस्स जहाणिसेओ

उससे लेकर ऊपरकी स्थितियोंमें प्रकृत समयप्रबद्धके निषेक देखे जाते हैं। अवस्तुविकल्पोंके अन्तदीपकरूपसे इस विकल्पका कथन किया है। इसलिये यथानिषेकस्थितिप्राप्तके जघन्य आबाधाप्रमाण अवस्तुविकल्पोंका कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—आबाधा कालके भीतर निषेकरचना नहीं होती है ऐसा नियम है और यहाँ पर यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यको उदय समयमें प्राप्त करना है। किन्तु यह तभी हो सकता है जब जघन्य आबाधाके सब समय गल जावें। इसलिए यहाँ पर जघन्य आबाधाके भीतर किसी भी समयमें बँधे हुए यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यके अस्तित्वका विवक्षित स्वामित्व समयमें निषेध किया है। सूत्रमें अन्तदीपक रूपसे मात्र अन्तिम विकल्पका निर्देश किया है, इसलिए उससे आबाधा कालके भीतर बन्धको प्राप्त होनेवाले उन सब यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्योंका ग्रहण कर लेना चाहिए, क्योंकि उनका विवक्षित स्वामित्व समयमें प्राप्त होना सम्भव नहीं है।

*** आबाधाके एक समय अधिक होने पर उस अन्तिम समयप्रबद्धका यथानिषेक विवक्षित स्थितिमें है ।**

§ ६२०. क्योंकि आबाधाप्रमाण कालको अतिस्थापनारूपसे स्थापित करके प्रकृत समयप्रबद्धका निषेक विवक्षित स्थितिमें देखा जाता है। इस सूत्रमें जघन्य पदके ग्रहण द्वारा उसकी अनुवृत्ति करके उससे आबाधाको विशेषित करना चाहिये ।

*** फिर वहाँसे लेकर पल्यके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण पीछेके कालके भीतर जितने समयप्रबद्ध बँधते हैं उनका यथानिषेक विवक्षित स्थितिमें नियमसे है ।**

§ ६२१. उससे अर्थात् एक समय अधिक जघन्य अबाधाप्रमाण स्थान पीछे जाकर जो समयप्रबद्ध बँधता है उससे लेकर पल्यके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण स्थान नीचे जाकर बँधे हुए समयप्रबद्धके यथानिषेक तकके पीछेके बाकी सब समयप्रबद्धोंका यथानिषेक विवक्षित स्थितिमें नियमसे है ।

त्ति । हेट्ठिमासेसकम्मट्ठिदिअब्भंतरसंचिदसव्वदव्वस्स जहाणिसेओ अहियारट्ठिदीए किण्ण लब्भइ त्ति भणिदे ण, ओकड्डुक्कड्डणाहि तस्स णिल्लेवणसंभवेण णिरंतरत्थित्त-णियमाभावादो । तं जहा—एयसमयम्मि बद्धकम्मपोग्गलदव्वं णिच्छएणासंखेज्ज-पलिदोवमपढमवग्गमूलमेत्तणिसेएसु णिरंतरमवट्ठाणं लहइ । पुणो तदुवरिमगोवुच्छ-प्पहुडि ओकड्डुक्कड्डणवसेण एयपरमाणुणा विणा सुद्धा होऊण गच्छइ । एवं णिल्लेविदे अहियारगोवुच्छाए उवरि तदित्थसमयपबद्धणिसेओ जहाणिसेयणिसेय-सरूवेण ण लब्भइ, तेण असंखेज्जपलिदोवमपढमवग्गमूलपमाणवेदयकालस्सेव गहणं कयं । अदो चेय णियमा अत्थि त्ति परूविदं, अणियमेण हेट्ठिमाणं पि सांतरसरूवेण संभवविरोहाभावादो । किमेसो अधाणिसेयसंचयकालो बहुओ आहो एयगुणहाणि-ट्ठाणंतरमिदि ? एसो कालो असंखेज्जगुणो, एत्थासंखेज्जगुणहाणीणमुवलंभादो । तम्हा एत्तियमेत्तकालब्भंतरसंचओ अप्पहाणीकयहेट्ठिमसमयपबद्धो णिरुद्धट्ठिदीए जहाणिसेयसरूवेण णियमा अत्थि त्ति सिद्धं ।

शंका—पीछेकी सब कर्मस्थितियोंके भीतर संचित हुए द्रव्यका यथानिषेक अधिकृत स्थितिमें क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अपकर्षण-उत्कर्षणके द्वारा उक्त द्रव्यका अभाव सम्भव है, इसलिये उसका निरन्तर अस्तित्व पाये जानेका कोई नियम नहीं है। खुलासा इस प्रकार है—एक समयमें जो पुद्गल द्रव्य बँधता है उसका नियमसे पल्यके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण निषेकोंमें निरन्तर अवस्थान पाया जाता है। फिर इससे उपरिम गोपुच्छासे लेकर एक परमाणुके बिना शेष सब द्रव्यका अपकर्षण-उत्कर्षणके कारण अभाव हो जाता है । इस प्रकार उसका अभाव हो जाने पर अधिकृत गोपुच्छामें वहाँके समयप्रबद्धका निषेक यथानिषेकरूपसे नहीं पाया जाता है, इसलिये यहाँ पर पल्यके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण वेदककालका ही ग्रहण किया है। और इसीलिये सूत्रमें 'णियमा अत्थि' यह कहा है, क्योंकि अनियमसे पीछेके समयप्रबद्धोंके कर्मपरमाणुओंका भी यहाँ सान्तररूपसे सद्भाव माननेमें कोई विरोध नहीं आता ।

शंका—क्या यह यथानिषेकका संचय काल बहुत है या एक गुणहानिस्थानान्तर-प्रमाण है ?

समाधान—यह काल एक गुणहानिस्थानान्तरके कालसे असंख्यातगुणा है, क्योंकि यहाँ असंख्यात गुणहानियाँ पाई जाती हैं ।

इसलिये इतने कालके भीतर जो संचय होता है वह विवक्षित स्थितिमें यथानिषेकरूपसे नियमसे है यह बात सिद्ध हुई । किन्तु यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि इसमें इस कालसे पीछेके समयप्रबद्धोंके द्रव्यको गौण कर दिया है। अर्थात् उस द्रव्यका यहाँ पाया जाना यद्यपि सम्भव तो है पर नियम नहीं, इसलिये उसकी विवक्षा नहीं की है ।

विशेषार्थ—प्रत्येक कर्म बँधनेके बाद वेदककाल तक तो नियमसे पाया जाता है । उसके बाद उसके पाये जानेका कोई नियम नहीं है । वेदककाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होता

§ ६२२. एवमेदं परूविय संपहि एदस्सेव उक्कस्सअधाणिसेयसंचयस्स पमाण-गवेसणट्ठमुवरिमो सुत्तपबंधो—

❀ एक्कस्स समयपबद्धस्स एक्किस्से ट्ठिदीए जो उक्कस्सओ अधाणिसेओ तत्तो केवडिगुणं उक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं ।

§ ५२३. णिरुद्धट्ठिदीदो समयुत्तरजहण्णाबाहमेत्तमोसक्कियूणावट्ठिदो जो समयपबद्धो उक्कस्सजोगेण बद्धो तस्स एयस्स समयपबद्धस्स एक्किस्से जहण्णाबाहा-बाहिरट्ठिदीए जो उक्कस्सओ अधाणिसेओ तत्तो केवडिगुणं पलिदोवमासंखेज्जदि-भागमेत्तसगुक्कस्ससंचयकालब्भंतरगलिदावसिट्ठणाणासमयपबद्धप्पयमुक्कस्सयमधाणिसेय-ट्ठिदिपत्तयं ? किं संखेज्जगुणमाहो असंखेज्जगुणमिदि पुच्छिदं होइ । एवं पुच्छिदे एवदिगुणमिदि परूविस्समाणो तस्सेव ताव गुणयारस्स पमाणपरूवणट्ठमवहार-कालप्पाबहुअं णिदरिसणसरूवेण भणदि—

❀ तस्स णिदरिसणं ।

§ ६२४. तस्स गुणयारस्स सरूवपदंसणट्ठं णिदरिसणं भणिस्सामो त्ति वुत्तं होइ ।

❀ जहा ।

है जिसे पल्यके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण बतलाया है। इसीलिये यहाँ पर विवक्षित स्थितिमें वेदककालके भीतरके यथानिषेकोंका सद्भाव नियमसे बतलाया है।

§ ६२२. इस प्रकार इसका कथन करके यथानिषेकके इसी उत्कृष्ट प्रमाणका विचार करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** एक समयप्रबद्धकी एक स्थितिमें जो उत्कृष्ट यथानिषेक है उससे यह उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्य कितना गुणा है ?**

§ ६२३. विवक्षित स्थितिसे एक समय अधिक जघन्य आबाधाप्रमाण स्थान पीछे जाकर उत्कृष्ट योगसे बाँधा गया जो समयप्रबद्ध अवस्थित है उस एक समयप्रबद्धकी जघन्य आबाधाके बाहरकी एक स्थितिमें जो उत्कृष्ट यथानिषेक प्राप्त होता है उससे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण अपने उत्कृष्ट संचयकालके भीतर गलाकर शेष बचा हुआ नाना समयप्रबद्ध-सम्बन्धी उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्य कितना गुणा होता है ? क्या संख्यातगुणा होता है या असंख्यातगुणा होता है, इस प्रकार इस सूत्र द्वारा यह बात पूछी गई है। इस प्रकार पूछने पर इतना गुणा होता है यह बतलानेकी इच्छासे सर्व प्रथम उसी गुणकारके प्रमाणका कथन करनेके लिये पहले उदाहरणरूपमें अवहारकालका अल्पबहुत्व कहते हैं—

*** उसका उदाहरण देते हैं ।**

§ ६२४. अब उसके अर्थात् गुणकारके स्वरूपको दिखलानेके लिए उदाहरण कहेंगे यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

*** यथा—**

§ ६२५. तं जहा त्ति आसंकावयणमेदं ।

❀ ओकड्डुक्कड्डणाए कम्मस्स अवहारकालो थोवो ।

§ ६२६. एयसमयम्मि जं पदेसग्गमोकड्डदि उक्कड्डदि वा तस्स पदेसग्गस्स आगमणहेदुभूदो जो अवहारकालो सो थोवयरो त्ति भणिदं होदि ।

❀ अधापवत्तसंकमेण कम्मस्स अवहारकालो असंखेज्जगुणो ।

§ ६२७. जइ वि एत्थ मिच्छत्तस्स अधापवत्तसंकमो णत्थि तो वि ओकड्डुक्कड्डणभागहारस्स पमाणपरिच्छेदकरणट्ठमेदस्स तत्तो असंखेज्जगुणत्तं परूविदं । एदम्हादो थोवयरीभूदो ओकड्डुक्कड्डणभागहारो एत्थ गुणयारो होदि त्ति । अथवा सोलसकसाय-णवणोकसायाणमेयसमयम्मि बद्धमेयट्ठिदिणिसित्तपदेसग्गमावलियमेत्तकाले वोलीणे पुणो उवरिमसमयप्पहुडि ओकड्डुक्कड्डणाए विणासं गच्छइ । परपयडिसंकमेण वि तत्थोकड्डुक्कड्डणाए विणासिज्जमाणदव्वं पहाणं, परपयडिसंकमेण विणासिज्जमाणदव्वमप्पहाणमिदि जाणावणट्ठमेदमवहारकालप्पाबहुगं भणिदं, अण्णहा तदवगमोवायाभावादो ।

❀ ओकड्डुक्कड्डणाए कम्मस्स जो अवहारकालो सो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

---

§ ६२५. यह 'तद्यथा' इस प्रकार आशंकावचन है ।

*** अपकर्षण-उत्कर्षण द्वारा कर्मका जो अवहारकाल होता है वह सबसे थोड़ा है ।**

§ ६२६. एक समयमें जो कर्म अपकर्षित होता है या उत्कर्षित होता है उस कर्मको प्राप्त करनेके लिये जो अवहारकाल है वह सबसे थोड़ा है यह इस सूत्रका तात्पर्य है ।

*** उससे अधःप्रवृत्तसंक्रमणद्वारा कर्मका जो अवहारकाल होता है वह असंख्यातगुणा है ।**

§ ६२७. यद्यपि यहाँ मिथ्यात्वका अधःप्रवृत्तसंक्रम नहीं होता है तो भी अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारके प्रमाणका निर्णय करनेके लिये इसे उससे असंख्यातगुणा बतलाया है। इस भागहारसे अल्परूप जो अपकर्षण-उत्कर्षणभागहार है वह यहाँ गुणाकार होता है । अथवा सोलह कषाय और नौ नोकषायोंमेंसे एक समयमें बँधा हुआ जो द्रव्य एक स्थितिमें निक्षिप्त हुआ है वह एक आवलि कालके व्यतीत होने पर उपरिम समयसे लेकर अपकर्षण-उत्कर्षण द्वारा विनाशको प्राप्त होता है । यहाँ परप्रकृतिसंक्रमणकी अपेक्षा अपकर्षण-उत्कर्षणके द्वारा विनाशको प्राप्त होनेवाला द्रव्य ही प्रधान है किन्तु परप्रकृतिसंक्रमणके द्वारा विनाशको प्राप्त होनेवाला द्रव्य प्रधान नहीं है इस प्रकार इस बातको जतानेके लिये यह अवहारकालविषयक अल्पबहुत्व कहा है, अन्यथा उसका ज्ञान नहीं हो सकता है ।

*** अपकर्षण-उत्कर्षणके द्वारा कर्मका जो अवहारकाल होता है वह पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।**

§ ६२८. जो पुव्वं थोवभावेण परूविदो ओकड्डुक्कड्डणाए कम्मस्स अवहारकालो सो पमाणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो होइ । कधमेदं परिच्छिज्जदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो । संपहि एवमवहारिदपमाणस्स ओकड्डुक्कड्डणभागहारस्स पयदगुणगारत्त-विहाणट्ठमुत्तरसुत्तं—

❀ एवदिगुणमेक्कस्स समयपबद्धस्स एक्किस्से ट्ठिदीए उक्कस्सयादो जहाणिसेयादो उक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं ।

§ ६२९. जावदिओ एसो ओकड्डुक्कड्डणाए कम्मस्स अवहारकालो एवदिगुणं णिरुद्धट्ठिदीदो समयुत्तरजहण्णाबाहमेत्तमोसक्कियूण बद्धसमयपबद्धपढमणिसेय-पडिबद्धादो उक्कस्सयादो अधाणिसेयादो ओघुक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं सगसंचय-कालब्भंतरसंचयं होइ त्ति भणिदं होदि ।

§ ६३०. संपहि एदेण सुत्तेण परूविदोकड्डुक्कड्डणभागहारमेत्तगुणगारसाहणट्ठ-मिमा ताव परूवणा कीरदे । तं जहा—उक्कस्सयसामित्तसमयादो हेट्ठदो समयुत्तर-

---

§ ६२८. जो पहले अल्परूपसे कर्मका अकर्षण-उत्कर्षणअवहारकाल कहा है वह पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है ।

इस प्रकार अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारके प्रमाणका निश्चय करके अब उसका प्रकृत गुणकाररूपसे विधान करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** एक समयप्रबद्धकी एक स्थितिमें प्राप्त उत्कृष्ट यथानिषेकसे उत्कृष्ट यथा-निषेकस्थितिप्राप्त द्रव्य इतना गुणा है ।**

§ ६२९. अपकर्षण-उत्कर्षणके द्वारा कर्मका यह अवहारकाल जितना है, विवक्षित स्थितिसे एक समय अधिक जघन्य आबाधाप्रमाण स्थान पीछे जाकर जो समयप्रबद्ध बँधा है उसके प्रथम निषेकसम्बन्धी उत्कृष्ट यथानिषेकसे ओघ उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्य अपने संचयकालके भीतर संचय रूप होता हुआ उतना गुणा है यह इस सूत्रका तात्पर्य है ।

विशेषार्थ—यहाँ विवक्षित स्थितिमें यथानिषेकस्थितिप्राप्त उत्कृष्ट द्रव्य कितना होता है इसका प्रमाण बतलाया है । यह तो पहले ही बतला आये हैं कि इसमें कितने कालके भीतर संचित हुए यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका ग्रहण किया गया है । अब उस संचयको प्राप्त करनेके लिये यह करना चाहिये कि विवक्षित स्थितिसे एक समय अधिक जघन्य आबाधाप्रमाण स्थान पीछे जाकर जो समयप्रबद्ध बँधा हो उसके प्रथम निषेकमें जितना उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्य हो उसे अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारसे गुणा कर देना चाहिये । सो ऐसा करनेसे विवक्षित स्थितिमें उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका प्रमाण आ जाता है । यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यहाँ प्रकरणसे कुछ अवहार कालोंका अल्पबहुत्व भी बतलाया है सो वह अपकर्षण-उत्कर्षण अवहारकालका प्रमाण प्राप्त करनेके लिये ही बतलाया है ऐसा समझना चाहिये ।

§ ६३०. इस सूत्र द्वारा जो अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारप्रमाण गुणकार कहा है सो उसकी सिद्धिके लिये अब यह प्ररूपणा करते हैं । वह इस प्रकार है—उत्कृष्ट स्वामित्वके समयसे नीचे

जहण्णाबाहाए ट्ठाइदूण जं बद्धकम्मं तं दिवड्ढगुणहाणीए खंडेयूणेयखंडमहियार-गोवुच्छाए उवरि संछुहदि। संपहि एदं बंधावलियादिक्कंतमोकड्डुक्कड्डुणभागहारेण खंडिय तत्थेयखंडं हेट्ठा उवरिं च संछुहिय णासेइ। पुणो विदियसमयम्मि सेसदव्व-मोकड्डुक्कड्डुणभागहारेण खंडेयूणेयखंडमेत्तं विणासेइ। णवरि पढमसमयम्मि विणासिद-खंडादो विदियसमयविणासिदखंडं विसेसहीणं होइ। केत्तियमेत्तेण? पढमसमयम्मि विणासिददव्वं ओकड्डुक्कड्डुणभागहारेण खंडिदेयखंडमेत्तेण। एवं तदियसमए वि विणासेदि। एत्थ वि अणंतरविणासिददव्वादो विसेसहीणपमाणं पुव्वं व वत्तव्वं। एवं चेव चउत्थसमयप्पहुडि गच्छइ जाव समयूणदोआवलियूणजहण्णाबाहमेत्तकालो त्ति। किं कारणं समयूणदोआवलियाओ ण लब्भंति त्ति भणिदे समयुत्तरजहण्णा-बाहाए ट्ठाइदूण बद्धं जं कम्मं तमाबाहापढमसमयप्पहुडि समयूणावलियमेत्तकालं बोलाविय ओकड्डुक्कड्डुणसरूवेण णासेदुं पारभदि। पुणो ताव ओकड्डुक्कड्डुणाए वावारो जाव अहियारट्ठिदी उदयावलियं चरिमसमअपविट्ठा त्ति। उदयावलियब्भंतरपविट्ठाए पुण णत्थि ओकड्डुणा उक्कड्डुणा वा। तेण कारणेणेदं सयलमुदयावलियं पुव्विल्ल-

---

एक समय अधिक जघन्य आबाधाको स्थापित करके वहाँ जो कर्म बँधा हो उसमें डेढ़-गुणहानिका भाग देने पर जो एक भागप्रमाण द्रव्य प्राप्त हो वह अधिकारप्राप्त गोपुच्छामें निक्षिप्त होता है। फिर बँधावलिके बाद इस द्रव्यको अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारसे भाजित करके जो एक भाग प्राप्त होता है उसका नीचे-ऊँचे निक्षेप करके नाश कर देता है। फिर शेष द्रव्यमें अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारका भाग देकर जो एक भाग प्राप्त होता है उसका दूसरे समयमें नाश करता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि प्रथम समयमें द्रव्यके जितने हिस्सेका नाश होता है उससे दूसरे समयमें नाशको प्राप्त होनेवाला द्रव्य विशेषहीन होता है।

शंका—कितना कम होता है ?

समाधान—प्रथम समयमें विनाशको प्राप्त होनेवाले द्रव्यमें अपकर्षण-उत्कर्षण-भाग-हारका भाग देने पर जो एक भाग प्राप्त हो उतना कम होता है।

इसी प्रकार तीसरे समयमें भी द्रव्यका नाश करता है। यहाँ पर भी पूर्व समयमें विनाशको प्राप्त हुए द्रव्यसे विशेष हीनका प्रमाण पहलेके समान जानना चाहिये। इसी प्रकार चौथे समयसे लेकर एक समय कम दो आवलियोंसे न्यून जघन्य आबाधाप्रमाण कालके प्राप्त होने तक यह जीव उत्तरोत्तर प्रत्येक समयमें द्रव्यका नाश करता जाता है।

शंका—यहाँ एक समय कम दो आवलियाँ क्यों नहीं प्राप्त होती हैं ?

समाधान—एक समय अधिक जघन्य आबाधा कालको स्थापित करके उस समय जो कर्म बँधता है उसे आबाधाके प्रथम समयसे लेकर एक समय कम एक आवलि कालके बाद अपकर्षण-उत्कर्षणरूपसे ग्रहण करता है। फिर यह अपकर्षण-उत्कर्षणका व्यापार तब तक चालू रहता है जब तक अधिकृत स्थिति उदयावलिके अन्तिम समयमें प्रवेश नहीं करती। उदयावलिके भीतर प्रवेश करने पर तो अपकर्षण और उत्कर्षण ये दोनों ही नहीं होते। इस कारणसे इस पूरी

समयूणबंधावलियं च एकदो मेलाविय एदाहि समयूणदोआवलियाहि परिहीणजहण्णा-बाहामेत्तो तदित्थणिसेयस्स ओकड्डुक्कड्डुणकालो होइ त्ति भणिदं ।

§ ६३१. संपहि एदमेत्तियकालणट्ठदव्वमिच्छिय सयलेयसमयपबद्धं ठविय एदस्स हेट्ठा दिवड्ढगुणहाणिपदुप्पण्णमोकड्डुक्कड्डुणभागहारं समयूणदोआवलियूण-जहण्णाबाहाए ओवट्टिय विसेसाहियं काऊण भागहारभावेण ट्ठविदे णट्ठासेसदव्व-मागच्छइ । पुणो णट्ठसेसमधाणिसेयदव्वमिच्छामो त्ति एयसमयपबद्धं ठवेयूण सादिरेय-दिवड्ढगुणहाणिमेत्तभागहारे ठविदे णासिदसेसदव्वमागच्छइ । एदं च पढमणिसेओ त्ति मणेण संकप्पिय पुध ट्ठवेयव्वं । एगसमयुत्तरजहण्णाबाहाए ठाइदूण बद्धसमयपबद्धस्स जहाणिसेयपमाणपरूवणा गदा ।

§ ६३२. दुसमयुत्तरजहण्णाबाहाए ठाइदूण बद्धसमयपबद्धस्स वि एदं चेव परूवणा कायव्वा । णवरि पढमणिसेयमोकड्डुक्कड्डुणभागहारेण खंडिय तत्थेयखंडेण विदियणिसेओ हीणो होइ, एयवारमोकड्डुक्कड्डुणाए पत्ताहियघादत्तादो । एदं च विसेसहीणदव्वं पुव्विल्लदव्वस्स पासे विदियणिसेओ त्ति पुध ठवेयव्वं । एवं तिसमयुत्तराबाहाबद्धसमयपबद्धप्पहुडि हेट्ठा ओदारिदूण एगेगणिसेयं पुव्वभागहारेण विसेसहीणं काऊण णेदव्वं जाव ओकड्डुक्कड्डुणभागहारमेत्तद्धाणे त्ति । एदं चेव

उदयावलिको और पूर्वोक्त एक समय कम बन्धवलिको एकत्रित करने पर इन एक समय कम दो आवलियोंसे न्यून जघन्य आबाधाप्रमाण वहाँके निषेकका अपकर्षण-उत्कर्षणकाल होता है यह कहा है ।

§ ६३१. अब इतने कालके भीतर नष्ट हुए इस द्रव्यके लानेकी इच्छासे पूरे एक समय-प्रबद्धको स्थापित करके इसके नीचे डेढ़ गुणहानिसे गुणित अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारमें एक समय कम दो आवलियोंसे न्यून जघन्य आबाधाका भाग देने पर जो लब्ध आवे उसे विशेषा-धिक करके भागहाररूपसे स्थापित करने पर नष्ट हुए पूरे द्रव्यका प्रमाण आता है । फिर नष्ट होनेसे जो यथानिषेक द्रव्य बाकी बचा है उसे लानेकी इच्छासे एक समयप्रबद्धको स्थापित करके और उसके नीचे साधिक डेढ़ गुणहानिप्रमाण भागहारके स्थापित करने पर नाश होनेसे बाकी बचे हुए द्रव्यका प्रमाण आता है । यहाँ यह जो बाकी बचे हुए द्रव्यका प्रमाण आया है इसे मनसे प्रथम निषेक मानकर अलगसे स्थापित करे । इस प्रकार एक समय अधिक जघन्य आबाधाको स्थापित करके बंधे हुए समयप्रबद्धमें जो यथानिषेकका प्रमाण प्राप्त होता है उसका कथन समाप्त हुआ ।

§ ६३२. दो समय अधिक जघन्य आबाधाको स्थापित करके बंधे हुए समयप्रबद्धका भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि प्रथम निषेकमें अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारका भाग देनेसे वहाँ जो एक भाग प्राप्त हो दूसरा निषेक उतना हीन होता है, क्योंकि यहाँ अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारका एकबार अधिक भाग दिया गया है । इस विशेष हीन द्रव्यको पूर्वोक्त द्रव्यके पासमें दूसरा निषेक मानकर पृथक् स्थापित करना चाहिये । इसी प्रकार तीन समय अधिक आबाधाको स्थापित कर बद्धसमयप्रबद्धसे लेकर पीछे जाकर एक-एक निषेकको पूर्वोक्त भागहार द्वारा एक-एक भाग कम करके अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारप्रमाण स्थानके

एयगुणहाणिअद्धाणपमाणमिदि थूलसरूवेण गहेयव्वं ।

§ ६३३. पुणो विदियगुणहाणिप्पहुडि हेट्ठदो बहुगं झीयमाणं गच्छइ जाव अधाणिसेयकालपढमसमओ त्ति । एत्थ सव्वत्थ वि गुणहाणिअद्धाणमणंतरपरूविद-मवट्ठिदसरूवेण घेत्तव्वं । णिसेयभागहारो पुण दुगुणोकड्डुक्कड्डणभागहारमेत्तो । एत्थ पुण एरिसीओ असंखेज्जाओ गुणहाणीओ अत्थि, अधाणिसेयसंचयकालस्स असंखेज्जपलिदोवमपढमवग्गमूलपमाणत्तादो । तदो अधाणिसेयकालपढमसमयम्मि बद्धसमयपबद्धदव्वमेत्थ चरिमणिसेओ त्ति घेत्तव्वं ।

§ ६३४. संपहि एदमसंखेज्जगुणहाणिदव्वं सव्वं समयुत्तराबाहाए ठाइदूण बद्धसमयपबद्धुक्कस्सपढमणिसेयपमाणेण समकरणं काउण जोइदे दिवड्ढोकड्डुक्कड्डण-भागहारमेत्तो गुणगारो उप्पज्जइ। सो च एसो $\left|\begin{array}{c}1\\1\\2\end{array}\right|$ । एसो च[1] सुत्तुत्तगुणयारादो अद्धाहिओ जादो त्ति एदं मोत्तूण पयारंतरेण गुणगारपरूवणमणुवत्तइस्सामो । तं जहा—समउत्तरजहण्णाबाहाए ठाइदूण बद्धसमयपबद्धसव्वुक्कस्सजहाणिसेयप्पहुडि हेट्ठा विसेसहीणं विसेसहीणं होऊण गच्छमागमोकड्डुक्कड्डणभागहारदुभागमेत्तद्धाणं

प्राप्त होने तक ले जाना चाहिये और यही एक गुणहानिस्थानका प्रमाण है ऐसा स्थूलरूपसे ग्रहण करना चाहिये ।

§ ६३३. फिर दूसरी गुणहानिसे लेकर यथानिषेकके कालके प्रथम समयके प्राप्त होने तक नीचे बहुतसा द्रव्य क्षयको प्राप्त हो जाता है। यहाँ सर्वत्र गुणहानिअध्वानको पूर्वमें कहे गये गुणहानिअध्वानके समान अवस्थितरूपसे ग्रहण करना चाहिये । निषेकभागहार तो अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारसे दूना है। परन्तु यहाँ पर ऐसी असंख्यात गुणहानियाँ होती हैं, क्योंकि यथानिषेकका संचयकाल पल्यके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है, इसलिये यथा-निषेकके कालके प्रथम समयमें जो समयप्रबद्धका द्रव्य बँधता है उसे यहाँ अन्तिम निषेकरूपसे ग्रहण करना चाहिये ।

§ ६३४. अब इस असंख्यात गुणहानिप्रमाण समस्त द्रव्यको एक समय अधिक आबाधाको स्थापित करके उस समय बँधे हुए समयप्रबद्धके उत्कृष्ट प्रथम निषेकके प्रमाणरूपसे समीकरण करके देखने पर अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारसे डेढ़ गुणा गुणकार उत्पन्न होता है। वह यह $1\frac{1}{2}$ है। और यह सूत्रोक्त गुणकारसे अर्धभागप्रमाण अधिक हो गया है, इसलिए इसे छोड़कर प्रकारान्तरसे गुणकारका कथन बतलाते हैं। वह इस प्रकार है—एक समय अधिक जघन्य आबाधाको स्थापित करके जो समयप्रबद्ध बँधता है उसके सबसे उत्कृष्ट यथानिषेकसे लेकर पीछेके निषेक एक एक चय कम होते जाते हैं। और इस प्रकार अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारका

१. ता० प्रतौ 'एसो $\left|\begin{array}{c}1\\2\\3\end{array}\right|$ । एसो च' इति पाठः ।

गंतूणेगसमयपबद्धपडिबद्धुक्कस्सजहाणिसेयद्धपमाणं चेट्ठदि। एदं चेव एयगुणहाणि-पमाणमिदि घेत्तव्वं। एवमुवरि वि सव्वत्थोकड्डुक्कड्डणभागहारं णिसेयभागहारं काऊण णेदव्वं जाव जहाणिसेयकालपढमसमओ त्ति। पुणो पुव्वं व सव्वदव्वे पढमणिसेयपमाणेण कदे ओकड्डुक्कड्डणभागहारस्स तिण्णिचउब्भागमेत्ता पढमणिसेया होंति। एत्थ वि गुणगारो सुत्तुत्तपमाणे ण जादो तम्हा सुत्तुत्तगुणगारुप्पायणट्ठमेत्थो-कड्डुक्कड्डणभागहारस्स वेतिभागमेत्तं गुणहाणिअद्धाणमिदि घेत्तव्वं।

§ ६३५. संपहि एदस्स गुणहाणिअद्धाणस्स साहणट्ठमिमा परूवणा कीरदे। तं जहा—जहाणिसेयपढमगुणहाणिपढमणिसेयप्पहुडि हेट्ठा जहाकमं जहाणिसेय-गोपुच्छपंती रचेयव्वा जाव ओकड्डुक्कड्डणभागहारवेतिभागमेत्तद्धाणमोयरिय ट्ठिदगोवुच्छा त्ति। एदं चेव एयगुणहाणिट्ठाणंतरं। एवं विरचिदपढमगुणहाणिदव्वे णिसेयं पडि चरिमगोवुच्छपमाणं मोत्तूण सेसमहियदव्वं घेत्तूण पुध ट्ठवेयव्वं। एवं ठविदअहियदव्व-पमाणगवेसणं कस्सामो। तत्थ ताव चरिमणिसेयादो अणंतरोवरिमगोवुच्छा एयपक्खेवमेत्तेण अहिया होइ। तस्स पमाणं केत्तियं? जहण्णणिसेयस्स संखेज्जदि-भागमेत्तं। तस्स को पडिभागो? रूवूणोकड्डुक्कड्डणभागहारो? तं पि कुदो? एक्कवार-

---

जितना प्रमाण है उससे अर्धभागप्रमाण स्थान जाकर एक समयप्रबद्धसे प्रतिबद्ध उत्कृष्ट यथानिषेकका प्रमाण आधा प्राप्त होता है। और यही एक गुणहानिका प्रमाण है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार आगे भी सर्वत्र अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारको निषेकभागहार करके यथानिषेक कालके प्रथम समयके प्राप्त होनेतक ले जाना चाहिये। फिर पहलेके समान सब द्रव्यको प्रथम निषेकके प्रमाणरूपसे करनेपर अपकर्षण उत्कर्षणभागहारके तीन बटे चार भागप्रमाण प्रथम निषेक प्राप्त होते हैं। यहाँ पर भी गुणकार सूत्रमें कहे गये गुणकारके बराबर नहीं हुआ है, इसलिये सूत्रमें कहे गये गुणकारको उत्पन्न करनेके लिये यहाँ पर अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारके दो बटे तीन भागप्रमाण गुणहानिअध्वान है ऐसा ग्रहण करना चाहिये।

§ ६३५. अब इस गुणहानिअध्वानकी सिद्धिके लिये यह प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है—यथानिषेककी प्रथम गुणहानिके प्रथम समयसे लेकर नीचे अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारके दो बटे तीन भागप्रमाण स्थान जाकर जो गोपुच्छा स्थित है उसके प्राप्त होने तक क्रमसे यथानिषेक गोपुच्छाओंकी पँक्तिकी रचना करना चाहिये और यही एक गुणहानि-स्थानान्तरका प्रमाण है। इस प्रकार प्रथम गुणहानिके द्रव्यको स्थापित करके उसके प्रत्येक निषेकमेंसे अन्तिम गोपुच्छाके प्रमाणके सिवा शेष अधिक द्रव्यको एकत्रित करके अलग रख दे। इस प्रकार अलग रखे गये अधिक द्रव्यके प्रमाणका विचार करते हैं। यहाँ पर अन्तिम निषेकका जितना प्रमाण है उससे अनन्तर उपरिम गोपुच्छाका प्रमाण एक प्रक्षेपमात्र अधिक है।

शंका—उसका प्रमाण कितना है?

समाधान—जघन्य निषेकके संख्यातवें भागप्रमाण है।

शंका—उसका प्रतिभाग क्या है?

पत्ताहियघादत्तादो। रूवूणत्तमेत्थाणवेक्खिय संपुण्णोकड्डुक्कड्डणभागहारमेत्तो पक्खेवपडिभागो घेत्तव्वो। एवं चरिमणिसेयादो दुचरिमणिसेयस्स विसेसो परूविदो।

§ ६३६. संपहि दुचरिमादो तिचरिमस्स अहियदव्वपमाणाणुगमं कस्सामो। तं जहा—दुचरिमणिसेयं दोपडिरासीओ काऊण तत्थेयमोकड्डुक्कड्डणभागहारेण खंडिय पडिरासीकयरासीए उवरि पक्खित्ते तिचरिमणिसेओ उप्पज्जइ त्ति एत्थ चरिमणिसेयादो अहियदव्वपमाणं दो पक्खेवा एओ च पक्खेवपक्खेवो होइ। एदं पि पुव्वं व पडिरासिय तत्थेयमोकड्डुक्कड्डणभागहारेण खंडिय तत्थेयखंडं तत्थेव पक्खित्ते चउचरिमणिसेओ उप्पज्जइ त्ति तत्थ वि जहण्णदव्वादो अहियपमाणं तिण्णि पक्खेवा तिण्णि चेव पक्खेवपक्खेवा अण्णेणो च तप्पक्खेवो लब्भइ। तहा पंचचरिमे वि पुव्वविहाणेण चत्तारि पक्खेवा छ पक्खेवपक्खेवा चत्तारि च तप्पक्खेवा अण्णेगा च चुण्णी होइ। पुणो तत्तो उवरिमे वि पंच पक्खेवा दस पक्खेवपक्खेवा तत्तियमेत्ता चेव तप्पक्खेवा पंच चुण्णीओ अवरेगा च चुण्णाचुण्णी अहियसरूवेण लब्भंति। एवं जत्तियमद्धाणमुवरिं चढिय विसेसगवेसणा कीरइ चरिमणिसेयादो तत्थ तत्थ रूवूणचढिदद्धाणमेत्ता पक्खेवा दुरूवूणचढिदद्धाणसंकलणमेत्ता च पक्खेवपक्खेवा

समाधान—एक कम अपकर्षण-उत्कर्षण भागहार है।

शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि वह एक बार अधिक घातसे प्राप्त हुआ है।

यद्यपि ऐसा है तो भी एक कमकी विवक्षा न करके यहाँ पर प्रक्षेपका प्रतिभाग सम्पूर्ण अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारप्रमाण लेना चाहिये। इस प्रकार चरम निषेकसे द्विचरम निषेकके विशेषका कथन किया।

§ ६३६. अब द्विचरम निषेकसे त्रिचरम निषेकमें जो अधिक द्रव्य है उसके प्रमाणका विचार करते हैं। वह इस प्रकार है—द्विचरम निषेककी दो प्रति राशियाँ स्थापित करो। फिर उनमेंसे एकमें अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारका भाग दो। भाग देने पर जो लब्ध आवे उसे अलग स्थापित की गई दूसरी राशिमें मिला देने पर त्रिचरम निषेक उत्पन्न होता है, अतः उस त्रिचरम निषेकमेंचरम निषेकसे अधिक द्रव्यका प्रमाण दो प्रक्षेप और एक प्रक्षेपप्रक्षेप है। अब इस त्रिचरम-निषेककी भी पूर्ववत् प्रतिराशि करो। फिर उनमेंसे एकमें अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारका भाग दो। भाग देनेसे जो एक भाग लब्ध आवे उसे अलग स्थापित की गई उसी राशिमें मिला देनेपर चतुश्चरम निषेक उत्पन्न होता है, अतः उस निषेकमें भी जघन्य द्रव्यसे जो अधिक द्रव्य है उसका प्रमाण तीन प्रक्षेप, तीन प्रक्षेप-प्रक्षेप और एक तत्प्रक्षेप प्राप्त होता है। इसी प्रकार पाँचवें चरम-निषेकमें भी पूर्व विधिसे अधिक द्रव्यका प्रमाण चार प्रक्षेप, छह प्रक्षेप-प्रक्षेप, चार तत्प्रक्षेप और एक चूर्णि होता है। फिर इससे ऊपरके निषेकमें भी पाँच प्रक्षेप, दस प्रक्षेप-प्रक्षेप, उतने ही अर्थात् दस ही तत्प्रक्षेप, पाँच चूर्णि और एक चूर्णिचूर्णि अधिक द्रव्य रूपसे उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार जितना अध्वान ऊपर जाकर अधिक द्रव्यका विचार करते हैं अन्तिम निषेकसे वहाँ एक कम ऊपर, गये हुए अध्वान प्रमाण प्रक्षेप, दो कम ऊपर गये हुए अध्वानके संकलनप्रमाण

तिरूवूणचढिदद्धाणसंकलणासंकलणामेत्ता च तप्पक्खेवा उप्पाएयव्वा, तेसिं चेव पहाणत्तादो ।

§ ६३७. संपहि पढमणिसेयमस्सियूण चरिमणिसेयादो विसेसपमाणपरिक्खा कीरदे । तत्थ ताव रूवूणोकड्डुक्कड्डणभागहारवेतिभागमेत्ता पक्खेवा लब्भंति । ते च एदे | ९ २ / ९ ३ | । संपहि एत्थ जइ ओकड्डुक्कड्डणभागहारतिभागमेत्ता पक्खेवा अत्थि तो एदं चरिमणिसेयपमाणं पावइ । तदो तेसिमुप्पायणविहिं वत्तइस्सामो । चडिदद्धाणसंकलणमेत्ता पक्खेवपक्खेवा वि एत्थत्थि त्ति | ० ९ । २ । ९ । २ / ९ ९ । ३ ३ । २ | एवमेदे आणिय पक्खेवपमाणेण कदे ओकड्डुक्कड्डणभागहारवेणवभागमेत्ता पक्खेवा होंति | ० । ९ । २ / ९ ९ | । एत्थ जइ ओकड्डुक्कड्डणभागहारस्स णवभागमेत्ता पक्खेवा होंति तो एदे तस्स तिभागमेत्ता पक्खेवा जायंति । ते पुण तिरूवूणोकड्डुक्कड्डणभागहारवेतिभागसंकलणासंकलणमेत्ततप्पक्खेवे आदिं कादूण सेसखंडे अवलंबिय आणेयव्वा । पुणो ते आणिय पुव्विल्लोकड्डुक्कड्डणभागहारवेणवभागमेत्तपक्खेवाणमुवरि पक्खिविय लद्धकिंचूणतत्तिभागमेत्ते पक्खेवे घेत्तूण पुव्वपरूविदोकड्डुक्कड्डणभागहारवेतिभागमेत्तपक्खेवाणमुवरि पक्खित्ते जहण्णणिसेयपमाणं पढमणिसेयमस्सियूण अहियदव्वं होइ । एदं च मूलदव्वेण सह

प्रक्षेपप्रक्षेप, तीन कम ऊपर गये हुए अध्वानके संकलनासंकलनप्रमाण तत्प्रक्षेप उत्पन्न करने चाहिये, क्योंकि यहाँ उनकी ही प्रधानता है ।

§ ६३७. अब प्रथम निषेकमें अन्तिम निषेकसे जितना अधिक द्रव्य है उसके प्रमाणका विचार करते हैं। वहाँ एक अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारके दो बटे तीन भागप्रमाण प्रक्षेप प्राप्त होते हैं। वे ये हैं— ९ २ / ९ ३ । अब यहाँ पर यदि अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारके तीसरे भागप्रमाण प्रक्षेप प्राप्त होते हैं तो यह अन्तिम निषेकके प्रमाणको प्राप्त होता है, इसलिये उनके उत्पन्न करनेकी विधि बतलाते हैं—जितना अध्वान आगे गये हैं उनके संकलनमात्र प्रक्षेपप्रक्षेप भी यहाँ पर हैं इसलिए ० ९ २ ९ २ / ९ ९ ३ ३ २ इस प्रकार इन्हें लाकर प्रक्षेपके प्रमाणसे करने पर अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारके दो बटे नौ भागप्रमाण प्रक्षेप होते हैं ० ९ २ / ९ ९ । यहाँ पर यद्यपि अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारके नौ भागप्रमाण प्रक्षेप होते हैं तो ये उसके त्रिभागमात्र प्रक्षेप हो जाते हैं। परन्तु वे तीन रूप कम अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारके दो बटे तीन भागके संकलनासंकलनप्रमाण तत्प्रक्षेपोंसे लेकर शेष खण्डोंका अवलम्बन करके ले आने चाहिए। पुनः उन्हें लाकर पूर्वोक्त अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारके दो बटे नौ भागप्रमाण प्रक्षेपोंके ऊपर प्रक्षिप्त करके लब्ध हुए उसके कुछ कम त्रिभागमात्र प्रक्षेपोंको ग्रहण करके पहले कहे गये अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारके दो बटे तीन भागप्रमाण प्रक्षेपोंके ऊपर प्रक्षिप्त करनेपर प्रथम निषेकके आश्रयसे जघन्य निषेकप्रमाण अधिक

अहिकयणिसेयादो दुगुणमेत्तं जादमिदि सिद्धं ओकड्डुक्कड्डणभागहारवेतिभागाणं गुणहाणिट्ठाणंतरत्तं। एत्तियमेत्ते गुणहाणिअद्धाणे संते सिद्धो सुत्तपरूविदो गुणगारो, सव्वदव्वे पढमणिसेयपमाणेण समकरणे कदे समुप्पण्णदिवड्डगुणहाणिगुणयारस्स संपुण्णोकड्डुक्कड्डणभागहारपमाणत्तदंसणादो।

§ ६३८. एवमेत्तिएण पबंधेण उक्कस्सअधाणिसेयट्ठिदिपत्तयस्स पमाणं जाणाविय संपहि तदुक्कस्ससामित्तपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तपबंधो—

❀ इदाणिमुक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं कस्स ?

§ ६३९. एवं णिदरिसणपरूवणाए सव्वमवहारिदसरूवमुक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं कस्से त्ति पुव्वपुच्छाए अणुसंधाणसुत्तमेदं।

❀ सत्तमाए पुढवीए णेरइयस्स जत्तियमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयमुक्कस्सयं तत्तो विसेसुत्तरकालमुववण्णो जो णेरइओ तस्स जहण्णेण उक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं।

§ ६४०. एदस्स सुत्तस्सत्थो वुच्चदे—तमुक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं सत्तमाए पुढवीए णेरइयस्स होइ त्ति पदसंबंधो। सेसगइजीवपरिहारेण सत्तमपुढविणेरइयस्सेव सामित्तं किमट्ठं कीरदे ? ण, सेसगईसु संकिलेसविसोहीहि णिज्जराबहुत्तं पेक्खिय

द्रव्य होता है। किन्तु यह मूल द्रव्यके साथ अधिकृत निषेकसे दूना हो गया है, इसलिए अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारके दो बटे तीन भागोंका गुणहानिस्थानान्तर सिद्ध हुआ। इतने मात्र गुणहानिअध्वानके रहते हुए सूत्रमें कहा गया गुणकार सिद्ध हुआ, क्योंकि सब द्रव्यके प्रथम निषेकके प्रमाणसे समीकरण करने पर उत्पन्न हुआ डेढ़ गुणहानिप्रमाण गुणकार सम्पूर्ण अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारके प्रमाणरूपसे देखा जाता है।

§ ६३८. इस प्रकार इतने कथनके द्वारा उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्तका प्रमाण जताकर अब उसके उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रोंकी रचना बतलाते हैं—

*** अब उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्तका स्वामी कौन है ?**

§ ६३९. इस प्रकार उदाहरणके कथन द्वारा जिसके पूरे स्वरूपका निश्चय कर लिया है और जिसके उत्कृष्ट स्वामित्वके विषयमें पहले पृच्छा कर आये हैं अब उसी उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्तके स्वामित्वका अनुसन्धान करनेके लिये यह सूत्र आया है—

*** सातवीं पृथिवीके नारकीके उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्तका जितना काल है उससे विशेष अधिक कालके साथ जो नारकी उत्पन्न हुआ है वह उस यथानिषेकके जघन्य कालके अन्तमें उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्तका स्वामी है।**

§ ६४०. अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—वह उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्य सातवीं पृथिवीके नारकीके होता है ऐसा यहाँ पदोंका सम्बन्ध कर लेना चाहिये।

शंका—शेष गतिके जीवोंको छोड़कर सातवीं पृथिवीके नारकीको ही स्वामी क्यों बतलाया है ?

तहाविहाणादो। तं जहा—सेसगदीसु विसोहिकाले बहुअमोकड्डिय हेट्ठा संछुहइ। संकिलेसेण वि बहुअमुक्कड्डियूणुवरि संछुहइ त्ति दोहि मि पयारेहिं अहियारगोवुच्छाए बहुदव्ववओ होइ। सत्तमपुढविणेरइयम्मि पुण एयंतेण संकिलेसो चेव तेणेयपयारेणेव तत्थ णिज्जरा होइ त्ति सेसपरिहारेण तस्सेव गहणं कदं। अथवा सत्तमपुढविणेरइयस्स संकिलेसबहुलस्स णिकाचणादिकरणेहि बहुअं दव्वमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयसरूवेण लब्भइ, ण सेसगईसु त्ति एदेणाहिप्पाएण तत्थेव सामित्तं दिण्णं।

§ ६४१. संपहि तस्सेव विसेसलक्खणपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तावयवकलावो—एत्थ जत्तियमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयमुक्कस्सयमिदि उत्ते पुव्वं परूविदासंखेज्जपलिदोवमपढम-वग्गमूलपमाणुक्कस्सजहाणिसेयसंचयकालमेत्तमिदि घेत्तव्वं। तं कुदो परिच्छिज्जदे ? तत्तो विसेसुत्तरकालमुववण्णो जो णेरइओ त्ति सुत्तावयवादो। एत्थ विसेसुत्तरपमाण-मपज्जत्तकालेण सह गदजहण्णाबाहमेत्तमिदि गहेयव्वं, आबाहाब्भंतरे जहाणिसेयसंभवा-भावादो अपज्जत्तकाले वि जोगबहुत्ताभावेण सव्वुक्कस्सपदेससंचयाणुववत्तीदो। तस्स जहण्णेण इदि वुत्ते तस्स तारिसस्स णेरइयस्स जहण्णेण अंतोमुहुत्तेणब्भहिय-

---

समाधान—नहीं, क्योंकि शेष गतियोंमें संक्लेश और विशुद्धिके कारण बहुत निर्जरा होती है, इसलिये उसे देखते हुए ऐसा विधान किया है। खुलासा इस प्रकार है—शेष गतियोंमें विशुद्धिके समय बहुत द्रव्यका अपकर्षण होकर उसका नीचेकी स्थितियोंमें निक्षेप होता है और संक्लेशके कारण बहुत द्रव्यका उत्कर्षण होकर उसका ऊपरकी स्थितियोंमें निक्षेप होता है इस प्रकार वहाँ दोनों ही प्रकारोंसे अधिकृत गोपुच्छाके बहुत द्रव्यका व्यय हो जाता है। किन्तु सातवीं पृथिवीके नारकीके तो एकान्तरूपसे संक्लेश ही पाया जाता है, इसलिये वहाँ एक प्रकारसे ही निर्जरा होती है, इसलिये शेष गतियोंका निराकरण करके केवल उसी गतिका ही ग्रहण किया है। अथवा सातवीं पृथिवीका नारकी संक्लेशबहुल होता है, इसलिये उसके निकाचना आदि करणोंके द्वारा यथानिषेकस्थितिप्राप्त रूपसे बहुत द्रव्य पाया जाता है, शेष गतियोंमें नहीं, इस प्रकार इस अभिप्रायसे भी वहीं पर स्वामित्व दिया है।

§ ६४१. अब उसीका विशेष लक्षण बतलानेके लिये सूत्रका शेष भाग आया है—यहाँ सूत्रमें जो 'जत्तियमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयमुक्कस्सयं' यह कहा है सो उससे पहले कहे गये पल्यके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण उत्कृष्ट यथानिषेक संचयकालका ग्रहण करना चाहिये।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सूत्रमें जो 'तत्तो विसेसुत्तरकालमुववण्णो जो णेरइओ' यह वचन कहा है उससे जाना जाता है।

यहाँ पर विशेषोत्तर कालका प्रमाण अपर्याप्त कालके साथ व्यतीत हुआ जघन्य आबाधा-प्रमाण काल ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि एक तो आबाधाकालके भीतर यथानिषेकोंकी सम्भावना नहीं है और दूसरे अपर्याप्त कालमें भी बहुत योग न होनेके कारण सर्वोत्कृष्ट प्रदेश संचय नहीं बन सकता है। तथा सूत्रमें जो 'तस्स जहण्णेण' यह कहा है सो इसका यह आशय है कि जो

मुक्कस्सयमधाणिसेयकालं भवट्ठिदीए आदिम्मि काऊणुप्पज्जिय सव्वलहुं सव्वाओ पज्जत्तीओ समाणिय उक्कस्सयजहाणिसेयट्ठिदिपत्तयस्सादिं कादूण पुरदो भण्णमाण-सयविसुद्धीए सम्ममणुपालिदतक्कालस्स तक्कालचरिमसमयम्मि वट्टमाणयस्स उक्कस्सय-मधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं होइ त्ति घेत्तव्वं । अहवा जत्तिएण कालेण उक्कस्सयमधा-णिसेयट्ठिदिपत्तयं होइ तस्स कालस्स संगहो कायव्वो । केत्तिएण च कालेण तस्स संचओ ? जहण्णएण अधाणिसेयकालेण । एतदुक्तं भवति—अधाणिसेयकालो जहण्णओ वि अत्थि उक्कस्सओ वि । तत्थुक्कस्सकालब्भंतरे ओकड्डुक्कड्डणाए बहु-दव्वविणासेण लाहादंसणादो जहण्णकालस्सेव संगहो कायव्वो त्ति । तदो तिरिक्खो वा मणुस्सो वा सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु उववज्जमाणो जहण्णाबाहाजहण्णा-पज्जत्तद्धासमासमेत्तंतोमुहुत्तब्भहियं जहण्णयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयसंचयकालभवट्ठिदीए आदिम्मि काऊणुप्पज्जिय छप्पज्जत्तीओ समाणिय उक्कस्सअधाणिसेयट्ठिदिपत्तयसंचय-माढविय समयाविरोहेण समाणिदतक्कालो जो णेरइओ तस्सुक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदि-पत्तयं होइ त्ति सुत्तत्थसंगहो । जत्थ वा तत्थ वा णिरयाउअब्भंतरे संचयकालमपरूविय अंतोमुहुत्तुववण्णणेरइयप्पहुडि संचयं कराविय सगसंचयकालचरिमसमए सामित्तं

नारकी जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक उत्कृष्ट यथानिषेक कालको भवके प्रथम समयमें करके उत्पन्न हुआ है और जिसने अतिशीघ्र सब पर्याप्तियोंको समाप्त करके उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्तसे लेकर आगे कही जानेवाली अपनी विशुद्धिके द्वारा उस कालका भले प्रकारसे रक्षण किया है उस नारकीके उस कालके अन्तिम समयमें उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्य होता है ऐसा यहाँ पर ग्रहण करना चाहिये। अथवा जितने कालके द्वारा उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्य प्राप्त होता है उस कालका यहाँ संग्रह करना चाहिये।

शंका—कितने कालके द्वारा उसका संचय होता है ?

समाधान—यथानिषेकके जघन्य काल द्वारा उसका संचय होता है। आशय यह है कि यथानिषेकका जघन्य काल भी है और उत्कृष्ट काल भी है। उसमेंसे उत्कृष्ट कालके भीतर अपकर्षण-उत्कर्षणके द्वारा बहुत द्रव्यका विनाश हो जानेके कारण लाभ दिखाई नहीं देता है, इसलिये यहाँ जघन्य कालका ही संग्रह करना चाहिये।

इसलिये जो तिर्यञ्च या मनुष्य सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हो रहा है वह जघन्य आबाधा और जघन्य अपर्याप्त कालके जोड़रूप अन्तर्मुहूर्त कालसे अधिक यथानिषेकस्थिति-प्राप्तके जघन्य संचयकालको भवस्थितिके प्रथम समयमें प्राप्त करके उत्पन्न हुआ फिर छह पर्याप्तियोंको समाप्त करके और यथानिषेकस्थितिप्राप्तके उत्कृष्ट संचयका आरम्भ करके जब आगममें बतलाई हुई विधिके अनुसार उक्त कालको समाप्त कर लेता है उस नारकीके उत्कृष्ट यथानिषेकस्थिति प्राप्त द्रव्य होता है यह इस सूत्रका समुदायार्थ है।

शंका—नरकायुके भीतर जहाँ कहीं भी संचय कालका कथन न करके नारकीके उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त कालसे लेकर संचयका प्रारम्भ कराकर फिर अपने संचय कालके अन्तिम समयमें सूत्रकारने जो स्वामित्वका कथन किया है सो उनके ऐसा कहनेका क्या अभिप्राय है।

भणंतस्स सुत्तयारस्स को अहिप्पाओ ? ण, उवरि संकिलेसविसोहीणं परावत्त-णुवलंभादो ।

§ ६४२. पुणो वि पयदसामियस्स संचयकालब्भंतरे आवासयविसेसपरूवणट्ठ-मुत्तरो सुत्तकलावो—

❀ एदम्हि पुण काले सो णेरइओ तप्पाओग्गउक्कस्सयाणि जोगट्ठाणाणि अभिक्खं गदो ।

समाधान—नहीं, क्योंकि इस कालके सिवा अन्यत्र संक्लेश और विशुद्धिका परावर्तन नहीं बन सकता है, इसलिये और आगे जाकर ऐसा नहीं कहा है ।

विशेषार्थ—एक तो शेष गतियोंमें कभी संक्लेशकी और कभी विशुद्धताकी बहुलता रहती है, इसलिये वहाँ उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्तका संचय नहीं हो सकता और दूसरे यथानिषेकके उत्कृष्ट संचयके लिये निकाचितकरणकी प्राप्ति आवश्यक है। जिसमें विवक्षित कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण और उदीरणा ये कुछ भी सम्भव नहीं हैं वह निकाचितकरण माना गया है। इस करणकी प्राप्तिके लिए बहुलतासे संक्लेशरूप परिणामोंकी प्राप्ति आवश्यक है। यतः बहुतायतसे ये परिणाम अन्य गतियोंमें नहीं पाये जाते, इसलिये भी वहाँ उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्तका संचय नहीं हो सकता। यही कारण है कि इसका उत्कृष्ट स्वामित्व नरकगतिमें बतलाया है। उसमें भी सातवें नरकके नारकीके जितना अधिक संक्लेश सम्भव है उतना अन्यत्र सम्भव नहीं है, इसलिये यह उत्कृष्ट स्वामित्व सातवें नरकके नारकीको दिया गया है। अब यह देखना है कि सातवें नरकमें भी यह उत्कृष्ट स्वामित्व कब प्राप्त होता है। इस विषयमें चूर्णिसूत्रकारका कहना है कि कोई मनुष्य या तिर्यँच ऐसे समयमें नरकमें उत्पन्न हुआ जब उत्पन्न होनेके कुछ ही काल बाद यथानिषेकस्थितिप्राप्तके उत्कृष्ट संचयका प्रारम्भ होनेवाला है उसके उस कालके समाप्त होनेके अन्तिम समयमें यह उत्कृष्ट स्वामित्व प्राप्त होता है। यहाँ जो कुछ अधिक काल बतलाया है सो उससे नारकीके योग्य जघन्य अपर्याप्तकाल और जघन्य आबाधाकाल लेना चाहिये। सातवें नरकमें उत्पन्न होनेके इतने काल बाद यथानिषेकस्थितिप्राप्तका संचयकाल प्रारम्भ होता है और जब यह काल समाप्त होता है तब अन्तमें उत्कृष्ट स्वामित्व होता है। यह संचय काल पल्यके असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण है यह तो पहले ही बतलाया जा चुका है। यद्यपि यह संचयकाल जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे अनेक प्रकारका है फिर भी यहाँ उत्कृष्ट कालका ग्रहण न करके जघन्य कालका ग्रहण किया है, क्योंकि उत्कृष्ट कालके भीतर अपकर्षण-उत्कर्षणके द्वारा बहुत अधिक द्रव्यके विनाश होनेका भय है। सूत्रमें आये हुए 'जहण्णेण' पदसे भी इसी बातका सूचन होता है। यद्यपि इस पदका जघन्य आबाधा अर्थ करके भी काम चलाया जा सकता है, क्योंकि तब जघन्य आबाधासे अधिक उत्कृष्ट संचय कालके अन्तमें उत्कृष्ट स्वामित्व होता है यह अर्थ फलित किया जा सकता है। किन्तु इससे पूर्वोक्त अर्थ मुख्य प्रतीत होता है और यही कारण है कि इस पदके दो अर्थ करके भी टीकामें पूर्वोक्त अर्थ पर जोर दिया है।

§ ६४२. अब प्रकृत स्वामीके संचय कालके भीतर आवश्यक विशेषका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ परन्तु इस संचय कालके भीतर वह नारकी तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट योगस्थानोंको निरन्तर प्राप्त हुआ ।

§ ६४३. एदम्मि पुण अधाणिसेयसंचयकालब्भंतरे सो णेरइओ बहुसो बहुसो तप्पाओग्गुक्कस्सयाणि जोगट्ठाणाणि परिणदो, तेहि विणा पयदुक्कस्ससंचयाणुप्पत्तीदो त्ति एदेण जोगावासयं परूविदं। एत्थ तप्पाओग्गविसेसणं समयाविरोहेण तहा परिणदो त्ति जाणावणट्ठं। जाव संभवो ताव सव्वुक्कस्सजोगेणेव परिणमिय तस्सासंभवे तप्पाओग्गुक्कस्सयाणि जोगट्ठाणि बहुसो गदो त्ति भणिदं होइ।

❀ तप्पाओग्गउक्कस्सियाहि वड्ढीहि वड्ढिदो।

§ ६४४. संखेज्जगुणवड्ढि-असंखेज्जगुणवड्ढि-संखेज्जभागवड्ढिसण्णिदाहि जोगवड्ढीहि पदेसबंधवड्ढिअविणाभावीहि समयाविरोहेण वड्ढिदो। तासिमसंभवे पुण असंखेज्जभागवड्ढीए वि वड्ढिदो त्ति वुत्तं होइ। णेदं पुव्वुत्तत्थपरूवणादो पुणरुत्तं, तस्सेव विसेसियूण परूवणादो। तम्हा एदेण वि जोगावासयं चेव विसेसिदमिदि घेत्तव्वं।

❀ तिस्से ट्ठिदीए णिसेयस्स उक्कस्सपदं।

§ ६४५. जहाणिसेयकालब्भंतरे सव्वत्थोवजहण्णाबाहाए उक्कस्सजोगेण च जहण्णयट्ठिदिं बंधमाणो सामित्तट्ठिदीए उक्कस्सपदं काऊण णिसिंचइ त्ति भणिदं होइ, णिसेयाणमण्णहा थोवभावाणुववत्तीदो। संपहि एदेण विहाणेणाणुसारिदथोवूण-

---

§ ६४३. परन्तु इस यथानिषेकके संचय कालके भीतर वह नारकी अनेक बार तद्योग्य उत्कृष्ट योगस्थानोंको प्राप्त हुआ, क्योंकि उत्कृष्ट योगस्थानोंको प्राप्त हुए विना प्रकृत उत्कृष्ट संचय नहीं बन सकता है इस प्रकार इस सूत्रके द्वारा योगावश्यकका कथन किया गया है। यहाँ सूत्रमें तत्प्रायोग्य यह विशेषण आगमानुसार उस प्रकारसे परिणत हुआ यह बतलानेके लिये दिया है। जब तक सम्भव हो तब तक सर्वोत्कृष्ट योगसे ही परिणत रहे और जब सर्वोत्कृष्ट योग सम्भव न हो तब बहुत बार तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट योगस्थानोंको प्राप्त होवे यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट वृद्धियोंसे वृद्धिको प्राप्त हुआ।

§ ६४४. प्रदेशबन्धवृद्धिकी अविनाभावी संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और संख्यातभागवृद्धि इन तीन वृद्धियोंके द्वारा जो आगममें बतलाई गई विधिके अनुसार वृद्धिको प्राप्त हुआ है। परन्तु जब ये तीन वृद्धियाँ असम्भव हों तब वह असंख्यातभागवृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त होवे यह उक्त कथनका सार है। यदि कहा जाय कि पुनरुक्त अर्थका कथन करनेवाला होनेसे यह सूत्र पुनरुक्त है सो भी बात नहीं है, क्योंकि उसी पूर्वोक्त सूत्रके विशेषणरूपसे इस सूत्रका कथन किया है। इसलिये इस सूत्र द्वारा भी योगावश्यकोंकी विशेषता बतलाई गई है यह अर्थ यहाँ पर लेना चाहिये।

* उस स्थितिके निषेकके उत्कृष्ट पदको प्राप्त हुआ।

§ ६४५. यथानिषेक कालके भीतर सबसे कम जघन्य आबाधा और उत्कृष्ट योगके द्वारा जघन्य स्थितिको बाँधनेवाला वह जीव स्वामित्वविषयक स्थितिमें उत्कृष्टरूपसे कर्मपरमाणुओंको करके उनका निक्षेप करता है यह इस सूत्रका तात्पर्य है, अन्यथा अल्प निषेक नहीं प्राप्त हो

जहणिसेयसंचयकालस्स पयदणेरइयस्स पच्चासण्णसामित्तुद्देसे जोगावासयपडिबद्ध-वावारविसेसपरूवणट्ठमुत्तरो पबंधो—

❀ जा जहण्णिया आबाहा अंतोमुहुत्तुत्तरा एवदिसमयअणुदिण्णा सा ट्ठिदी। तदो जोगट्ठाणाणमुवरिल्लमद्धं गदो।

§ ६४६. अंतोमुहुत्तुत्तरा जा जहण्णाबाहा एवदिमसमयअणुदिण्णा सा ट्ठिदी जा पुव्वणिरुद्धा सामित्तट्ठिदी। एत्थंतोमुहुत्तपमाणं जोगजवमज्झादो उवरि अच्छण-कालमेत्तं। तदो जोगट्ठाणाणमुवरिल्लमद्धं गओ जोगट्ठाणाणमुवरिल्लभागं गंतूणंतोमुहुत्तमेत्त-कालमच्छिदो त्ति भणिदं होइ। किमट्ठमेसो जोगट्ठाणाणमुवरिल्लमद्धं णीदो ? जोगबहुत्तेण बहुदव्वसंचयकरणट्ठं। जइ एवं, अंतोमुहुत्तं मोत्तूण सव्वकालं तत्थेव किण्ण अच्छाविदो ? ण, तत्तो अहियं कालं तत्थावट्ठाणासंभवादो। जेणेदमंतदीवयं तेण पुव्वं पि जाव संभवो ताव तत्थच्छिदो त्ति घेत्तव्वं। एत्थेव णिलीणो चरिमजीवगुण-हाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदो त्ति अवंतरवावारविसेसो परूवेयव्वो।

सकते। अब इस विधिसे कुछ कम यथानिषेक संचयकालका अनुसरण करनेवाले प्रकृत नारकीके स्वामित्वविषयक स्थानके समीपवर्ती होनेपर योगावश्यकसे सम्बन्ध रखनेवाला जो व्यापारविशेष होता है उसका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** अन्तर्मुहूर्त अधिक जो जघन्य आबाधा है इतने काल तक वह स्थिति अनुदीर्ण रही। अनन्तर जो योगस्थानोंके उपरिम अर्द्धभागको प्राप्त हुआ।**

§ ६४६. अन्तर्मुहूर्त अधिक जो जघन्य आबाधा है इतने काल तक वह स्वामित्वस्थिति अनुदीर्ण रहती है जिसका कथन पहले कर आये हैं। यहाँ अन्तर्मुहूर्तसे योगयवमध्यसे ऊपर रहनेका जितना काल है वह काल लिया है। फिर सूत्रमें जो यह कहा है कि 'तदो जोगट्ठाणाण-मुवरिल्लमद्धं गओ' सो इसका यह आशय है कि इसके बाद योगस्थानोंके उपरिम भागको प्राप्त होकर जो अन्तर्मुहूर्त काल तक रहा है।

शंका—यह जीव योगस्थानोंके उपरिम भागको क्यों प्राप्त कराया गया है ?

समाधान—बहुत योगके द्वारा अधिक द्रव्यका संचय करनेके लिये यह जीव योग-स्थानोंके उपरिम भागको प्राप्त कराया गया है।

शंका—यदि ऐसा है तो अन्तर्मुहूर्त न रखकर पूरे काल तक वहीं इस जीवको क्यों नहीं रखा गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि इससे अधिक काल तक वहाँ रहना सम्भव नहीं है।

यतः यह कथन अन्तदीपक है अतः इससे यह अर्थ भी लेना चाहिये कि पूर्वमें भी जब तक सम्भव हो तब तक यह जीव वहाँ रहे। यहाँ जीवकी अन्तिम गुणहानिस्थानान्तरमें आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक रहनेरूप जो अवान्तर व्यापारविशेष इसीमें गर्भित है उसका कथन करना चाहिये।

❀ दुसमयाहियआबाहाचरिमसमयअणुदिण्णाए एयसमयाहिय-आबाहाचरिमसमयअणुदिण्णाए च उक्कस्सयं जोगमुववण्णो ।

§ ६४७. एत्थ तिस्से ट्ठिदीए इदि अणुवट्टदे । तेणेवमहिसंबंधो कायव्वो—तिस्से सामित्तट्ठिदीए दुसमयाहियजहण्णाबाहाचरिमसमयअणुदिण्णाए समयाहिय-जहण्णाबाहचरिमसमयअणुदिण्णाए च उक्कस्सजोगट्ठाणं पडिवण्णो त्ति । चरिम-दुचरिम-तिचरिमसमयअणुदिण्णादिकमेणोयरिय दुसमयाहिय-एयसमयाहियआबाहा-चरिमसमयअणुदिण्णाए णिरुद्धट्ठिदीए सो णेरइओ उक्कस्सजोगट्ठाणेण परिणदो त्ति भणिदं होइ । बे समए मोत्तूण बहुअं कालमुक्कस्सजोगेणेव किण्ण अच्छाविदो ? ण, वेसमयपाओग्गस्स तस्स तहासंभवाभावादो ।

❀ तस्स उक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं ।

§ ६४८. तस्स तारिसस्स णेरइयस्स जाधे सा ट्ठिदी उदयमागदा ताधे उक्कस्सयमधाणिसेययट्ठिदिपत्तयं होइ त्ति उत्तं होइ ।

§ ६४९. संपहि एत्थ उवसंहारे भण्णमाणे तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोग-द्दाराणि । तं जहा—संचयाणुगमो भागहारपमाणाणुगमो लद्धपमाणाणुगमो चेदि ।

---

* उस स्थितिके दो समय अधिक आबाधाके अन्तिम समयमें अनुदीर्ण होने पर और एक समय अधिक आबाधाके अन्तिम समयमें अनुदीर्ण होने पर उत्कृष्ट योगको प्राप्त हुआ ।

§ ६४७. इस सूत्रमें 'तिस्से ट्ठिदीए' इस पदकी अनुवृत्ति होती है । इससे ऐसा सम्बन्ध करना चाहिये कि उस स्वामित्वस्थितिके दो समय अधिक जघन्य आबाधाके अन्तिम समयमें अनुदीर्ण रहने पर और एक समय अधिक जघन्य आबाधाके अन्तिम समयमें अनुदीर्ण रहने पर जो उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त हुआ है । चरम समय, द्विचरम समय और त्रिचरम समयमें अनुदीर्ण रहने आदिके क्रमसे उतरकर दो समय अधिक और एक समय अधिक आबाधाके चरम समयमें विवक्षित स्थितिके अनुदीर्ण रहने पर वह नारकी उत्कृष्ट योगस्थानसे परिणत हुआ यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—दो समयको छोड़कर बहुत काल तक उत्कृष्ट योगके साथ ही क्यों नहीं रखा गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जो योग दो समयके योग्य है उसका और अधिक काल तक रहना सम्भव नहीं है ।

* वह नारकी उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वामी है ।

§ ६४८. इन पूर्वोक्त विशेषताओंसे युक्त जो नारकी है उसके जब वह स्थिति उदयको प्राप्त होती है तब वह उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वामी है यह इस सूत्रका आशय है ।

§ ६४९. अब यहाँ पर उपसंहारका कथन करते हैं । उसमें ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं । यथा—संचयानुगम, भागहारप्रमाणानुगम और लब्धप्रमाणानुगम । उनमेंसे सर्व प्रथम

तत्थ संचयाणुगमेण जहाणिसेयकालपढमसमयसंचिददव्वमहियारहिदीए जहा-णिसेयसरूवेणत्थि। एवं णेदव्वं जाव चरिमसमयसंचओ त्ति। संचयाणुगमो गदो।

§ ६५०. एत्तो भागहारपमाणाणुगमं वत्तइस्सामो। तं जहा—असंखेज्जपलिदोवम-पढमवग्गमूलमेत्तं हेट्ठदो ओसरिय ट्ठिदपढमसमयपबद्धसंचयस्स भागहारे उप्पाइज्जमाणे समयपबद्धमेगं ठविय जहाणिसेयसंचयकालब्भंतरणाणागुणहाणिसलागाओ पलिदोवम-पढमवग्गमूलद्धच्छेदणाहिंतो असंखेज्जगुणहीणाओ विरलिय दुगुणिय अण्णोण्ण-ब्भासणिप्पण्णरासिसादिरेओ भागहारो ठवेयव्वो। एवं ठविदे एत्तियमेत्तगुणहाणीओ गालिय परिसेसिदमहियारगोवुच्छादो प्पहुडि अंतोकोडाकोडिदव्वमागच्छइ। संपहि इमं सव्वदव्वमहियारगोवुच्छपमाणेण कीरमाणं दिवड्ढगुणहाणिमेत्तं होइ त्ति दिवड्ढगुण-हाणीओ वि भागहारत्तेण ठवेयव्वाओ। तदो अहियारगोवुच्छदव्वं णिसेयसरूवेणा-गच्छइ। पुणो जहाणिसेयट्ठिदिपत्तयमिच्छामो त्ति असंखेज्जा लोगा वि भागहार-सरूवेणेदस्स ठवेयव्वा। तं जहा—पयदगोवुच्छदव्वं जहाणिसेयकालपढमसमयप्पहुडि बंधावलियमेत्तकाले वोलीणे ओकड्डुक्कड्डुणभागहारेण खंडिदेयखंडमेत्तं हेट्ठोवरि परसरूवेण गच्छइ। विदियसमए वि ओकड्डुक्कड्डुणभागहारपडिभागेण परसरूवेण

संचयानुगमकी अपेक्षा विचार करते हैं—यथानिषेक कालके प्रथम समयमें जो द्रव्य संचित होता है वह यथानिषेकरूपसे अधिकृत स्थितिमें है। इस प्रकार संचयकालके अन्तिम समय तक जानना चाहिये। आशय यह है कि संचय कालके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय तक प्रत्येक समयमें यथानिषेकरूपसे संचित होनेवाला द्रव्य विवक्षित स्थितिमें पाया जाता है। इस प्रकार संचयानुगम समाप्त हुआ।

§ ६५०. अब इससे आगे भागहारप्रमाणानुगमको बतलाते हैं। यथा—पल्यके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण स्थान पीछे जाकर प्रथम समयमें प्राप्त हुए संचयका भागहार उत्पन्न करनेकी इच्छासे एक समयप्रबद्धको स्थापित करे। फिर उसका पल्यके प्रथम वर्गमूलके अर्धच्छेदोंसे असंख्यातगुणी हीन यथानिषेक संचयकालके भीतर प्राप्त हुई नाना गुणहानि-शलाकाओंका विरलन कर और दूनाकर परस्परमें गुणा करके उत्पन्न हुई राशिसे कुछ अधिक भागहार स्थापित करे। इस प्रकार स्थापित करने पर इतनी गुणहानियोंको गलानेके बाद अधिकृत गोपुच्छासे लेकर अन्त:कोड़ाकोड़ीप्रमाण शेष द्रव्य प्राप्त होता है। अब इस पूरे द्रव्यको अधिकृत गोपुच्छाके बराबर हिस्सा करके विभाजित करने पर वह डेढ़ गुणहानिप्रमाण प्राप्त होता है, इसलिये डेढ़ गुणहानिको भी भागहाररूपसे स्थापित करे। तब जाकर अधिकृत गोपुच्छाका द्रव्य निषेकरूपसे प्राप्त होता है। अब यहाँ यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्य लाना है इसलिये इसका असंख्यात लोकप्रमाण भागहार और भी स्थापित करे। खुलासा इस प्रकार है—यथानिषेककालके प्रथम समयसे लेकर बन्धावलिप्रमाण कालके व्यतीत होने पर प्रकृत गोपुच्छाके द्रव्यमें अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारका भाग देने पर जो एक भागप्रमाण द्रव्य प्राप्त हो उतना द्रव्य नीचे ऊपर अन्य गोपुच्छारूप हो जाता है। दूसरे समयमें भी अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारका भाग देने पर जो एक भाग प्राप्त हो उतना द्रव्य अन्य गोपुच्छारूप हो जाता है। इस

गच्छइ। एवमेगेगखंडे गच्छमाणे पुव्वभागहारवेतिभागमेत्तद्धाणं गंतूण पयदणिसेयस्स अद्धमेत्तं चेट्ठइ। पुणो वि एत्तियमद्धाणं गंतूण चउब्भागो चेट्ठइ। एवमुवरि वि णेयव्वं जाव अहियारट्ठिदी उदयावलियब्भंतरे पविट्ठा त्ति। एवं होइ त्ति काऊणेत्थतण-णाणागुणहाणिसलागाणं पमाणाणुगमं कस्सामो। तं कथं? ओकड्डुक्कड्डुणभागहार-वेतिभागमेत्तद्धाणं गंतूण जइ एया गुणहाणिसलागा लब्भइ तो असंखेज्जपलिदोवम-पढमवग्गमूलपमाणं जहाणिसेयकालम्मि केत्तियाओ णाणागुणहाणिसलागाओ लहामो त्ति तेरासियं काऊण जोइदे असंखेज्जपलिदोवमपढमवग्गमूलमेत्ताओ लब्भंति। पुणो इमाओ विरलिय विगं करिय अण्णोण्णब्भासे कदे असंखेज्जा लोगा उप्पज्जंति। तदो एत्तियं पि भागहारत्तेण समयपबद्धस्स हेट्ठदो ठवेयव्वमिदि भणियं। पुणो एदे तिण्णि वि भागहारे अण्णोण्णपदुप्पण्णे करिय समयपबद्धम्मि भागे हिदे आदिसमयपबद्धमस्सियूण अहियारट्ठिदीए जहाणिसेयसरूवेणावट्ठिदपदेसग्गमागच्छइ। तम्हा असंखेज्जलोगमेत्तो आदिसमयपबद्धस्स संचयस्स अवहारो त्ति घेत्तव्वं। संपहि विदियसमयपबद्धसंचयस्स वि भागहारो एवं चेव वत्तव्वो। णवरि पढमसमयसंचय-भागहारादो सो किंचूणो होइ। केत्तिएणूणो त्ति भणिदे ओकड्डुक्कड्डुणभागहारेण खंडिय तत्थेयखंडमेत्तेण। एवं भागहारो थोवूणकमेण तदियसमयपबद्धसंचयप्पहुडि

प्रकार एक एक खण्डके अन्य गोपुच्छारूप होते हुए पूर्व भागहारके दो बटे तीन भागप्रमाण स्थानोंके जाने पर प्रकृत निषेक अर्धभागप्रमाण शेष रहता है। फिर भी इतने ही स्थान जाने पर प्रकृत निषेक चतुर्थ भागप्रमाण शेष रहता है। इस प्रकार आगे भी अधिकृत स्थितिके उदयावलिमें प्रवेश होने तक जानना चाहिये। ऐसा होता है ऐसा समझकर यहाँकी नाना गुणहानिशलाकाओंके प्रमाणका विचार करते हैं। यथा—अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारके यदि दो बटे तीन भाग प्रमाण स्थान जाने पर एक गुणहानिशलाका प्राप्त होती है तो पल्यके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण यथानिषेक कालमें कितनी नाना गुणहानिशलाकाएँ प्राप्त होंगी इस प्रकार त्रैराशिक करने पर वे नाना गुणहानिशलाकाएँ पल्यके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण ही प्राप्त होती हैं। फिर इनका विरलन कर और दूना कर परस्परमें गुणा करने पर असंख्यात लोकप्रमाण राशि उत्पन्न होती है। इसीसे इसे भी भागहाररूपसे समयप्रबद्धके नीचे स्थापित करे यह कहा है। फिर इन तीनों ही भागहारोंका परस्परमें गुणा करके जो प्राप्त हो उसका समयप्रबद्धमें भाग देने पर प्रथम समयप्रबद्धकी अपेक्षा अधिकृत स्थितिमें यथानिषेकरूपसे जो द्रव्य अवस्थित है उसका प्रमाण आता है, इसलिये प्रथम समयप्रबद्धके संचयका भागहार असंख्यात लोकप्रमाण ग्रहण करना चाहिये। दूसरे समयप्रबद्धके संचयका भी भागहार इसी प्रकार कहना चाहिये। किन्तु प्रथम समयसम्बन्धी संचयके भागहारसे वह कुछ कम होता है।

शंका—कितना कम होता है ?

समाधान—अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारका भाग देने पर जो एक भाग प्राप्त होता है उतना कम होता है।

इस प्रकार भागहार उत्तरोत्तर कम होता हुआ तीसरे समयप्रबद्धके संचयसे लेकर

गंतूणोकड्डुक्कड्डुणभागहारवेतिभागमेत्तद्धाणे पुव्वभागहारस्स अद्धमेत्तो होइ। एवं जाणियूण णेदव्वं जाव जहाणिसेयकालचरिमसमओ त्ति। णवरि चरिमसमयपबद्ध-संचयस्स भागहारो सादिरेयदिवड्ढगुणहाणिमेत्तो होइ।

§ ६५१. संपहि लद्धपमाणाणुगमं कस्सामो। तं जहा—चरिमसमयम्मि बंधियूण णिसित्तपमाणेण जहाणिसेयट्ठिदिपत्तयसव्वदव्वं कीरमाणमोकड्डुक्कड्डुण-भागहारमेत्तं होइ। तं कथं? चरिमसमयप्पहुडि ओकड्डुक्कड्डुणभागहारवेतिभाग-मेत्तद्धाणं हेट्ठदो ओदरिय बद्धसमयपबद्धदव्वपढमणिसेयस्स अद्धपमाणं चेट्ठइ त्ति। तं चेव गुणहाणिट्ठाणंतरं होइ। तेण पढमगुणहाणिदव्वं सव्वं चरिमसमयम्मि बंधियूण णिसित्तपढमणिसेयपमाणेण कीरमाणमोकड्डुक्कड्डुणभागहारवेतिभागाणं तिण्णि-चउब्भागमेत्तपढमणिसेयपमाणं होइ। तं च संदिट्ठीए एदं $\left|\begin{matrix}० & ६\\ १ & २\end{matrix}\right|$। पुणो विदियादि-सेसगुणहाणिदव्वं पि तप्पमाणेण कीरमाणं तेत्तियं चेव होइ $\left|\begin{matrix}० & ६\\ १ & २\end{matrix}\right|$। संपहि दोण्हमेदेसिं एकदो मेलणे कदे ओकड्डुक्कड्डुणभागहारो चेव दिवड्ढगुणहाणिपमाणं होइ। पुणो एदेण दिवड्ढगुणहाणिमोकड्डिय समयपबद्धे भागे हिदे जं लद्धं तत्तियमेत्तमुक्कस्स-सामित्तविसईकयं जहाणिसेयट्ठिदिपत्तयं होइ।

अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारके दो बटे तीन भागप्रमाण स्थान जाने पर वह पूर्व भागहारसे आधा रह जाता है। यथानिषेक कालके अन्तिम समयके प्राप्त होने तक इसी प्रकार जानकर उसका कथन करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अन्तिम समयप्रबद्धके संचयका भागहार साधिक डेढ़ गुणहानिप्रमाण है।

§ ६५१. अब लब्धप्रमाणका विचार करते हैं। यथा—अन्तिम समयमें बांधकर यथानिषेकस्थितिप्राप्त सब द्रव्यके निक्षिप्त हुए द्रव्यके बराबर खण्ड करनेपर वे, अपकर्षण-उत्कर्षण-भागहारका जितना प्रमाण है, उतने प्राप्त होते हैं।

शंका—सो कैसे ?

समाधान—अन्तिम समयसे लेकर अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारके दो बटे तीन भाग प्रमाण स्थान पीछे जाकर बंधे हुए समयप्रबद्धके द्रव्यका प्रथम निषेक आधा रह जाता है, इसलिये वही एक गुणहानिस्थानान्तर होता है, अतः प्रथम गुणहानिके सब द्रव्यको अन्तिम समयमें बांध कर निक्षिप्त हुए प्रथम निषेकके बराबर बराबर खण्ड करनेपर अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारके दो बटे तीन भागका तीन बटे चार भागप्रमाण प्रथम निषेकोंका प्रमाण होता है। संदृष्टिकी अपेक्षा उसका प्रमाण $\frac{२}{३}$ का $\frac{३}{४} = \frac{६}{१२}$ होता है। फिर दूसरी आदि शेष गुणहानियोंका द्रव्य भी तत्प्रमाण खण्ड करने पर उतना $\frac{२}{३}$ का $\frac{३}{४} = \frac{६}{१२}$ ही होता है। अब इन दोनोंको एकत्रित करने पर अपकर्षण-उत्कर्षणभागहार ही डेढ़ गुणहानिप्रमाण होता है। फिर इससे डेढ़ गुणहानिको अपवर्तित करके समयप्रबद्धमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना उत्कृष्ट स्वामित्वका विषयभूत यथानिषेकस्थिति-प्राप्त द्रव्य होता है।

§ ६५२. एवमेत्तिएण पबंधेण उक्कस्सजहाणिसेयट्ठिदिपत्तयस्स सामित्तं परूविय संपहि एदेणेव गयत्थस्स णिसेयट्ठिदिपत्तयस्स वि सामित्तसमुप्पण्णट्ठमुत्तरं सुत्तं भणइ—

❀ णिसेयट्ठिदिपत्तयं पि उक्कस्सयं तस्सेव ।

§ ६५३. गयत्थमेदं सुत्तं, पुव्विल्लादो अविसिट्ठपरूवणत्तादो । अदो चेव कममुल्लंघिय तस्सेव पुव्वं सामित्तविहाणं कयं, अण्णहा एदस्स जाणावणोवाया-भावादो । एत्थ पुण विसेसो—पमाणाणुगमे कीरमाणे पुव्विल्लदव्वादो ओकड्डुक्कड्डुणाए गंतूण पुणो वि तत्थेव पदिददव्वमेत्तेणेदं विसेसाहियं होइ त्ति वत्तव्वं ।

§ ६५४. संपहि जहावसरपत्तमुक्कस्सयमुदयट्ठिदिपत्तयस्स सामित्तं परूवेमाणो पुच्छासुत्तमाह—

❀ उदयट्ठिदिपत्तयमुक्कस्सयं कस्स ?

§ ६५५. एत्थ मिच्छत्तस्से त्ति अहियारसंबंधो । सेसं सुगमं ।

❀ गुणिदकम्मंसिओ संजमासंजमगुणसेढिं संजमगुणसेढिं च काऊण

---

§ ६५२. इस प्रकार इतने प्रबन्धके द्वारा उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्तके स्वामित्वका कथन करके अब यद्यपि निषेकस्थितिप्राप्त इसी प्रबन्धके द्वारा गतार्थ है तथापि उसके स्वामित्व को बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* उत्कृष्ट निषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वामी भी वही है ।

§ ६५३. यह सूत्र अवगतप्राय है, क्योंकि पिछले सूत्रसे इसके कथनमें कोई विशेषता नहीं है । और इसीलिये क्रमका उल्लंघन करके पहले उसीके स्वामित्वका कथन किया है, अन्यथा इसके ज्ञान करानेका दूसरा कोई उपाय नहीं था । किन्तु प्रमाणानुगमके कथनमें यहां इतना विशेष और कहना चाहिये कि अपकर्षण-उत्कर्षणके द्वारा जो द्रव्य अन्यत्र प्राप्त होता है वह फिरसे वहीं आ जाता है, इसलिये यथानिषेकस्थितिप्राप्तके द्रव्यसे इसका द्रव्य इतना विशेष अधिक होता है ।

विशेषार्थ—यथानिषेकस्थितिप्राप्तका जो संचयकाल और स्वामी पहले बतला आये हैं वही निषेकस्थितिप्राप्तका भी प्राप्त होता है, क्योंकि उत्कृष्ट संचय सातवें नरकमें उक्त प्रकारसे ही बन सकता है । तथापि यथानिषेकस्थितिप्राप्तसे इसका उत्कृष्ट द्रव्य विशेष अधिक हो जाता है । कारण यह है कि यथानिषेकस्थितिप्राप्तमें अपकर्षण-उत्कर्षणके द्वारा जितना द्रव्य कम हो जाता है वह यहां पुनः बढ़ जाता है ।

§ ६५४. अब यथावसर प्राप्त उत्कृष्ट उदयस्थितिप्राप्तके स्वामित्वका कथन करनेकी इच्छासे पृच्छा सूत्र कहते हैं—

* उत्कृष्ट उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वामी कौन है ।

§ ६५५. इस सूत्रमें मिथ्यात्वप्रकृतिका अधिकार होनेसे 'मिच्छत्तस्स' इस पदका सम्बन्ध कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

* जो गुणितकर्मांशवाला जीव संयमासंयमगुणश्रेणि और संयमगुणश्रेणिको

मिच्छत्तं गदो जाधे गुणसेढिसीसयाणि उदिण्णाणि ताधे मिच्छत्तस्स उक्कस्सयमुदयट्ठिदिपत्तयं ।

§ ६५६. एदस्स सुत्तस्सत्थपरूवणा उदयादो उक्कस्सभीणट्ठिदियसामित्त-सुत्तभंगो । एवं मिच्छत्तस्स चउण्हं पि ट्ठिदिपत्तयाणमुक्कस्ससामित्तं परूविय संपहि एदेण समाणसामियाणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमप्पणं करेइ—

❀ एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पि ।

§ ६५७. जहा मिच्छत्तस्स चउण्हमग्गट्ठिदिपत्तयादीणं सामित्तविहाणं कदमेवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पि, विसेसाभावादो । णवरि सम्मत्तस्स जहाणिसेय-णिसेय-ट्ठिदिपत्तयाणमुक्कस्ससामित्तं भण्णमाणे उव्वेल्लणकालादो जइ जहाणिसेयकालो बहुओ होइ तो पुव्वमेव जहाणिसेयस्सादिं करिय पुणो संचयं करेमाणो चेव उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय अंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गंतूण संचयं काऊण पुणो अविणट्ठवेदय-पाओग्गकालम्मि वेदयसम्मत्तग्गहणपढमसमए वट्टमाणो जो जीवो तस्स पढमसमय-वेदयसम्मादिट्ठिस्स तिसु वि जहाणिसेयगोवुच्छासु उदयं पविस्समाणासु उक्कस्स-सामित्तं वत्तव्वं । अध अधाणिसेयसंचयकालादो उव्वेल्लणकालो बहुओ होज्ज तो पुव्वमेव पडिवण्णसम्मत्तो मिच्छत्तं गंतूण पुणो जहाणिसेयट्ठिदिपत्तयस्सादिं काऊण

करके मिथ्यात्वमें गया है उसके जब गुणश्रेणिशीर्ष उदयको प्राप्त हुए हैं तब वह मिथ्यात्वके उत्कृष्ट उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वामी है ।

§ ६५६. पहले उदयसे झीनस्थितिवाले उत्कृष्ट द्रव्यके स्वामित्वका कथन करनेवाले सूत्रका जैसा विवेचन किया है उसीप्रकार इस सूत्रका भी विवेचन कर लेना चाहिये । इसप्रकार मिथ्यात्वके चारों ही स्थितिप्राप्तोंके स्वामित्वका कथन करके अब इससे जिनके स्वामी समान हैं ऐसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी मुख्यतासे कथन करते हैं—

*** इसीप्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके स्वामित्वका भी विधान करना चाहिये ।**

§ ६५७. जिस प्रकार मिथ्यात्वके चारों अग्रस्थितिप्राप्त आदिके स्वामित्वका कथन किया है उसीप्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भी करना चाहिये क्योंकि इनके कथनमें कोई विशेषता नहीं है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वके यथानिषेक और निषेकस्थितिप्राप्तके उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन करने पर उद्वेलनकालसे यदि यथानिषेकका काल बहुत होवे तो पहलेसे ही यथानिषेकका प्रारम्भ करके फिर संचय करता हुआ ही उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होकर और अन्तर्मुहूर्त काल तक उसके साथ रहकर मिथ्यात्वमें जावे । और वहां संचय करके वेदक योग्य कालके नाश होनेके पहले ही वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण करके उसके प्रथम समयमें जो जीव स्थित है उस प्रथम समयवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टिके तीनों ही यथानिषेक गोपुच्छाओंके उदयमें प्रवेश करने पर उत्कृष्ट स्वामित्व कहना चाहिये । और यदि यथानिषेकके संचयकालसे उद्वेलनाका काल बहुत होवे तो पहले से ही सम्यक्त्वको प्राप्त करके मिथ्यात्वमें जावे । फिर यथानिषेकस्थितिप्राप्तका

संचयं करिय गहिदवेदगसम्मत्तपढमसमए तिण्हं पि गोवुच्छाणं पदेसग्गमेक्कलग्गीभूद-मुदयगदं धरिय ट्ठिदो जीवो पयदुक्कस्ससामिओ होइ त्ति वत्तव्वं। एत्थ पुण विसिट्ठोव-एसमस्सियूण अण्णदरपक्खपरिग्गहो कायव्वो; संपहियकाले तहाविहोवएसाभावादो। संपहि इममधाणिसेयगोवुच्छमुदयावलियं पवेसिय पढमसमए चेव सम्मत्तं गेण्हावेमो जहण्णाबाहमेत्तं वा सामित्तसमयादो हेट्ठदो ओसारिय, उवरि संचयाभावादो त्ति भणिदे ण, सम्मत्तं पडिवज्जाविय पुणो उदयावलियं जहण्णाबाहमेत्तकालं वा वोलाविय सामित्ते दिज्जमाणे जहाणिसेयट्ठिदिदव्वस्स बहुअस्स ओकड्डणाए विणासप्पसंगादो। किं कारणमुदयावलियबाहिरावट्ठिदावत्थाए ताव ओकड्डणाए बहुदव्वविणासो सम्मत्ताहिमुहस्स होइ त्ति ण एत्थ संचओ। उदयावलियपविट्ठपढमसमए वि सम्मत्तं गेण्हमाणो पुव्वमेवंतोमुहुत्तमत्थि त्ति तदहिमुहावत्थाए चेव विसुज्झंतो बहुअं दव्वमोकड्डुणाए णासेइ त्ति ण तत्थ सम्मत्तं पडिवज्जाविदो। एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि सामित्तं वत्तव्वं। णवरि पुव्वविहाणेण संचयं करिय सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णपढम-समयसम्मामिच्छाइट्ठिस्स जहाणिसेयट्ठिदिपत्तयं णिसेयट्ठिदिपत्तयं च कायव्वं।

आरम्भ करके संचय करे और इसप्रकार जब वह संचयकालके अन्तमें वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके उसके प्रथम समयमें विद्यमान रहे तब उसके तीनों ही गोपुच्छाओंका द्रव्य एकत्रित होकर उदयको प्राप्त होने पर प्रकृत उत्कृष्ट स्वामित्व होता है ऐसा कथन करना चाहिये। परन्तु यहाँ विशिष्ट उपदेशको प्राप्त करके किसी एक पक्षको स्वीकार करना चाहिये, क्योंकि वर्तमान कालमें ऐसा उपदेश नहीं पाया जाता जिससे समुचित निर्णय किया जा सके।

शंका—अब इस यथानिषेकगोपुच्छाको उदयावलिमें प्रवेश कराके उसके प्रथम समयमें ही सम्यक्त्वको ग्रहण करावे या स्वामित्व समयसे जघन्य अबाधाकालका जितना प्रमाण है उतना पीछे जाकर सम्यक्त्वको ग्रहण करावे, क्योंकि इसके ऊपर उत्कृष्ट संचयका अभाव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यदि सम्यक्त्वको प्राप्त कराके फिर उदयावलि या जघन्य अबाधाप्रमाण कालको बिताकर उत्कृष्ट स्वामित्व दिया जाता है तो अपकर्षणके द्वारा यथानिषेक-स्थितिप्राप्तके बहुत द्रव्यका अपकर्षणके द्वारा विनाश प्राप्त होता है, क्योंकि उदयावलिके बाहर अवस्थित रहते हुए सम्यक्त्वके अभिमुख होनेके कारण इसके अपकर्षणके द्वारा बहुत द्रव्यका विनाश देखा जाता है इसलिये यहां उत्कृष्ट संचय नहीं हो सकता। इसीप्रकार जो उदयावलिमें प्रवेश करनेके प्रथम समयमें भी सम्यक्त्वको ग्रहण करता है वह अन्तर्मुहूर्त काल पहले ही सम्यक्त्वके सन्मुखरूप अवस्थाके होनेपर विशुद्धिको प्राप्त होता हुआ अपकर्षणद्वारा बहुत द्रव्यका नाश कर देता है, इसलिये वहां स्वामित्व नहीं प्राप्त कराया है। इसीप्रकार सम्यग्मिथ्यात्वका भी स्वामित्व कहना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि पूर्वविधिसे संचय करके जो सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है प्रथम समयवर्ती उस सम्यग्मिथ्यादृष्टिके यथानिषेकस्थितिप्राप्त और निषेकस्थितिप्राप्त द्रव्य करना चाहिये।

विशेषार्थ—मालूम होता है कि यथानिषेककाल और उद्वेलनाकाल इनमेंसे कौन छोटा है और कौन बड़ा इस विषयमें मतभेद रहा है। एक परम्पराके मतानुसार उद्वेलनाकालसे यथा-निषेककाल बड़ा है और दूसरी परम्पराके मतानुसार यथानिषेककालसे उद्वेलनाकाल बड़ा है।

§ ६५८. संपहि उदयट्ठिदिपत्तयस्स सामित्तविसेसपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ णवरि उक्कस्सयमुदयट्ठिदिपत्तयमुक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदिय-भंगो ।

§ ६५९. सम्मत्तस्स चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स सव्वोदयं तं घेत्तूण सम्मामिच्छत्तस्स वि उदिण्णसंजमासंजम-संजमगुणसेढिगोवुच्छसीसयाणि घेत्तूण पढमसमयसम्मामिच्छाइट्ठिम्मि गुणिदकिरियपच्छायदम्मि सामित्तविहाणं पडि तत्तो विसेसाभावादो ।

§ ६६०. एवमेदं परूविय संपहि मिच्छत्तसमाणसामियाणं सेसाणं पि

टीकामें बतलाया है कि इस समय ऐसा विशिष्ट उपदेश प्राप्त नहीं जिसके आधारसे यह निर्णय किया जा सके कि अमुक मत सही है, अतः विशिष्ट उपदेश मिलने पर ही इस विषयका निर्णय करना चाहये। तथापि यदि यथानिषेककाल बड़ा होवे तो उद्वेलनाका प्रारम्भ पीछेसे कराके उत्कृष्ट स्वामित्व प्राप्त करना चाहिये और यदि उद्वेलनाकाल बड़ा हो तो उद्वेलनाका प्रारम्भ होनेके बादसे यथानिषेकके संचयका प्रारम्भ कराके उत्कृष्ट स्वामित्व प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि ऐसा किये बिना उत्कृष्ट स्वामित्व नहीं प्राप्त किया जा सकता है। यहां पर टीकामें एक विवाद यह भी उठाया गया है कि सम्यक्त्व प्राप्त करानेके कितने काल बाद उत्कृष्ट स्वामित्व दिया जाय? सिद्धान्त पक्ष सम्यक्त्व प्राप्त कराके उसके प्रथम समयमें ही उत्कृष्ट स्वामित्व दिलानेका है पर शंकाकार यह स्वामित्व सम्यक्त्व प्राप्त करनेके बाद एक आवलिकाल या जघन्य आबाधाप्रमाण काल होने पर दिलाना चाहता है किन्तु विचार करने पर सिद्धान्त पक्ष ही समीचीन प्रतीत होता है जिसका विशेष खुलासा टीका में किया ही है। इसप्रकार सम्यक्त्वके यथानिषेक और निषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यके उत्कृष्ट स्वामित्वका विचार किया। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षासे भी विचार कर लेना चाहिए। किन्तु इसकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्वामित्व सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानके प्रथम समयमें प्राप्त होता है, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वका उदय वहीं पर पाया जाता है।

§ ६५८. अब उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यके स्वामित्वविशेषका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका भंग उदयसे उत्कृष्ट झीनस्थितिप्राप्त द्रव्यके समान है।

§ ६५९ जिसने दर्शनमोहनीयका पूरा क्षय नहीं किया है उसके दर्शनमोहनीयका क्षय करनेके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वका जो सर्वोदय होता है उसकी अपेक्षा गुणितक्रियावाले जीवके उदयस्थितिप्राप्तके उत्कृष्ट स्वामित्वका विधान किया गया है। इसीप्रकार उदयको प्राप्त हुए संयमासंयम और संयमसम्बन्धी गुणश्रेणिगोपुच्छशीर्षोंकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानके प्रथम समयमें गुणितक्रियावाले जीवके सम्यग्मिथ्यात्वके उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यके उत्कृष्ट स्वामित्वका विधान किया है इसलिये इन दोनों प्रकृतियोंकी अपेक्षा उदयसे झीनस्थितिवाले द्रव्यके उत्कृष्ट स्वामित्वसे इसमें कोई भेद नहीं है।

विशेषार्थ—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उदयसे झीनस्थितिवाले द्रव्यका उत्कृष्ट स्वामित्व पहले बतला आये हैं उसीप्रकार प्रकृतमें जानना चाहिये।

§ ६६०. इसप्रकार उक्त स्वामित्वका कथन करके मिथ्यात्वके समान स्वामीवाले शेष

समप्पणट्ठमुत्तरो पबंधो—

❀ अणंताणुबंधि-अट्ठकसाय-छण्णोकसायाणं मिच्छत्तभंगो ।

§ ६६१. जहा मिच्छत्तस्स सव्वेसिमुक्कस्सट्ठिदिपत्तयादीणं सामित्तपरूवणा कया तहा एदेसिं पि कम्माणं कायव्वा, विसेसाभावादो । संपहि एत्थ संभवविसेस-पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

❀ णवरि अट्ठकसायाणमुक्कस्सयमुदयट्ठिदिपत्तयं कस्स ?

§ ६६२. सुगमं ।

❀ संजमासंजम-संजम-दंसणमोहणीयक्खवयगुणसेढिसीसएसु त्ति एदाओ तिण्णि वि गुणसेढीओ गुणिदकम्मंसिएण कदाओ । एदाओ काऊण अविणट्ठेसु असंजमं गओ । पत्तेसु उदयगुणसेढिसीसएसु उक्कस्सयमुदय-ट्ठिदिपत्तयं ।

§ ६६३. अणंताणुबंधीणमणूणाहिओ मिच्छत्तभंगो त्ति ते मोत्तूण पच्चक्खाणा-पच्चक्खाणकसाएसुक्कस्ससामित्तविहाययसुत्तस्सेदस्स उदयादो उक्कस्सझीणट्ठिदिय-सामित्तसुत्तस्सेव अवयवसमुदायत्थपरूवणा कायव्वा । एयंताणुवड्ढिचरिमसमयसंजदा-संजद-संजदपरिणामेहि कदगुणसेढिसीसयाणि दोण्णि वि एक्कदो काऊण पुणो वि

कर्मों का भी मुख्यरूपसे कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** अनन्तानुबन्धीचतुष्क, आठ कषाय और छह नोकषायोंका भंग मिथ्यात्वके समान है ।**

§ ६६१. जिसप्रकार मिथ्यात्वके सभी उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त आदिकके स्वामित्वका कथन किया है उसी प्रकार इन कर्मोंका भी करना चाहिये, क्योंकि इनके कथनमें कोई विशेषता नहीं है। अब यहाँ जो विशेषता सम्भव है उसका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** किन्तु आठ कषायोंके उत्कृष्ट उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वामी कौन है ?**

§ ६६२. यह सूत्र सुगम है ।

*** जो गुणितकर्मांशिक जीव संयमासंयम, संयम और दर्शनमोहनीयकी क्षपणा-सम्बन्धी गुणश्रेणिशीर्ष इन तीनों ही गुणश्रेणियोंको करके और इनका नाश किये बिना असंयमको प्राप्त हुआ है वह गुणश्रेणिशीर्षोंके उदयमें आनेपर उत्कृष्ट उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वामी है ।**

§ ६६३. अनन्तानुबन्धियोंका भंग न्यूनाधिकताके बिना मिथ्यात्वके समान है, अतः उन्हें छोड़कर प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरण कषायोंके उत्कृष्ट स्वामित्वका विधान करने-वाले इस सूत्रके अवयवार्थ और समुदायार्थकी प्ररूपणा उदयसे झीनस्थितिवाले द्रव्यके उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन करनेवाले सूत्रके समान करना चाहिये । एकान्तानुवृद्धिके अन्तिम समयमें संयतासंयत और संयतरूप परिणामोंके द्वारा किये गये दोनों ही गुणश्रेणिशीर्षोंको मिलाकर

ताणमुवरि दंसणमोहक्खवयगुणसेढिसीसयं पक्खिविय कदकरणिज्जअधापवत्तसंजद-भावेणंतोमुहुत्तं गुणसेढीओ आवूरिय से काले तिण्हं पि गुणसेढिसीसयाणमुदओ होहदि त्ति कालं करिय देवेसुप्पण्णपढमसमयअसंजदम्मि सत्थाणम्मि चेव वा परिणाम-पच्चएणासंजमं गदपढमसमयम्मि सामित्तविहाणं पडि दोण्हं विसेसाणुवलंभादो।

§ ६६४. एवमट्ठकसायाणमुदयट्ठिदिपत्तयस्स उक्कस्ससामित्तविसेसं सूचिय संपहि छण्णोकसायाणं पयदुक्कस्ससामित्तविसेसपरूवणट्ठमुत्तरोपक्कमो—

❀ छण्णोकसायाणमुक्कस्सयमुदयट्ठिपत्तयं कस्स ?

§ ६६५. सुगममेदमासंकासुत्तं।

❀ चरिमसमयअपुव्वकरणे वट्टमाणयस्स।

§ ६६६. एत्थ गुणिदकम्मंसियस्स खवयस्से त्ति वक्कसेसो, अण्णहा उक्कस्स-भावाणुववत्तीदो। सेसं सुगमं। एत्थेवांतरविसेसपरूवणट्ठमुत्तरसुत्ताणमवयारो—

❀ हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं जइ कीरइ भय-दुगुंछाणमवेदओ कायव्वो।

फिर भी उनके ऊपर दर्शनमोहनीयकी क्षपणासम्बन्धी गुणश्रेणिशीर्षको प्रक्षिप्त करके फिर कृतकृत्य और अधःप्रवृत्तसंयमरूप भावके द्वारा अन्तर्मुहूर्त कालतक गुणश्रेणियोंको पूरण करके तदनन्तर समयमें तीनों ही गुणश्रेणिशीर्षोंका उदय होगा पर ऐसा न होकर पूर्व समयमें ही मरकर देवोंमें उत्पन्न हुआ उस असंयत देवके वहाँ उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें उत्कृष्ट स्वामित्व होता है। या स्वस्थानमें ही परिणामोंके निमित्तसे असंयमको प्राप्त होने पर उसके प्रथम समयमें ही उत्कृष्ट स्वामित्व होता है। इस प्रकार स्वामित्वकी अपेक्षा इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है।

विशेषार्थ—अप्रत्याख्यानवरण और प्रत्याख्यानावरण इन आठ कषायोंके उदयस्थिति-प्राप्त उत्कृष्ट द्रव्यका स्वामी कौन है इसका प्रकृतमें विचार किया है सो यह पूरा वर्णन इन्हीं आठ कषायोंके उदयसे झीनस्थितिप्राप्त द्रव्यके उत्कृष्ट स्वामित्वसे मिलता जुलता है, इसलिये उसके समान इसका विस्तार समझ लेना चाहिये।

§ ६६४. इसप्रकार आठ कषायोंके उदयस्थितिप्राप्तके उत्कृष्ट स्वामित्वविशेषको सूचित करके अब छह नोकषायोंके प्रकृत उत्कृष्ट स्वामित्वविशेषका कथन करनेके लिये आगेके सूत्र कहते हैं—

*** छह नोकषायोंके उत्कृष्ट उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वामी कौन है ?**

§ ६६५. यह आशंका सूत्र सुगम है।

*** जो अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें विद्यमान है वह छह नोकषायोंके उत्कृष्ट उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वामी है।**

§ ६६६. यहाँ अपूर्वकरण गुणस्थानवाला जीव गुणितकर्मांश क्षपक होता है अतः सूत्रमें 'गुणिदकम्मंसियस्स खवयस्स' इतना वाक्य शेष है जो जोड़ लेना चाहिये, अन्यथा उत्कृष्ट भावकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। शेष कथन सुगम है। अब इस विषयमें अवान्तर विशेषका कथन करनेके लिये आगेके सूत्र आये हैं—

*** हास्य, रति, अरति और शोकका यदि उत्कृष्ट स्वामित्व करता है तो उसे भय और जुगुप्साका अवेदक करना चाहिए।**

§ ६६७. सुगमं ।

❀ जइ भयस्स तदो दुगुंछाए अवेदओ कायव्वो । अध दुगुंछाए तदो भयस्स अवेदओ कायव्वो ।

§ ६६८. सुगममेदं पि सुत्तं । एवं पुव्विल्लप्पणाए विसेसपरूवणं समाणिय सेसकम्माणमुक्कस्ससामित्तविहाणट्ठमुत्तरो पबंधो—

❀ कोहसंजलणस्स उक्कस्सयमग्गट्ठिदिपत्तयं कस्स ?

§ ६६९. सुगमं ।

❀ उक्कस्सयमग्गट्ठिदिपत्तयं जहा पुरिमाणं कायव्वं ।

§ ६७०. जहा पुरिमाणं मिच्छत्तादिकम्माणमग्गट्ठिदिपत्तयस्स उक्कस्ससामित्तं परूविदं तहा कोहसंजलणस्स वि परूवेयव्वं, विसेसाभावादो । एवमेदस्स समप्पणं कादूण संपहि सेसाणं ट्ठिदिपत्तयाणमुक्कस्ससामित्तविहाणट्ठमुवरिमगंथावयारो—

❀ उक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं कस्स ?

§ ६७१. सुगमं ।

❀ कसाए उवसामित्ता पडिवदिदूण पुणो अंतोमुहुत्तेण कसाया

---

§ ६६७. यह सूत्र सुगम है ।

*** यदि भयका उत्कृष्ट स्वामित्व करता है तो उसे जुगुप्साका अवेदक करना चाहिये । यदि जुगुप्साका उत्कृष्ट स्वामित्व करता है तो उसे भयका अवेदक करना चाहिये ।**

§ ६६८. यह सूत्र भी सुगम है । इस प्रकार पहले जिनके विशेष व्याख्यानकी सूचना की रही उनका विशेष कथन समाप्त करके अब शेष कर्मोंके उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** क्रोध संज्वलनके उत्कृष्ट अग्रस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वामी कौन है ।**

§ ६६९. यह सूत्र सूगम है ।

*** मिथ्यात्व आदिके समान क्रोधसंज्वलनके उत्कृष्ट अग्रस्थितिप्राप्ति द्रव्यका स्वामी करना चाहिए ।**

§ ६७०. जिस प्रकार मिथ्यात्व आदि कर्मोंके अग्रस्थितिप्राप्तके उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन किया है उसी प्रकार क्रोधसंज्वलनका भी कथन करना चाहिये, क्योंकि इसके कथनमें कोई विशेषता नहीं है । इस प्रकार इसका प्रमुखतासे कथन करके अब शेष स्थितिप्राप्तोंके उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन करनेके लिये आगेका ग्रन्थ आया है—

*** उत्कृष्ट यथानिषेक स्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वामी कौन है ?**

§ ६७१. यह सूत्र सुगम है ।

*** जो जीव कषायोंका उपशम करके उससे च्युत हुआ । फिर दूसरी बार**

उवसामिदा विदियाए उवसामणाए आबाहा जम्हि पुण्णा सा ट्ठिदी आदिट्ठा, तम्हि उक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं ।

§ ६७२. एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा—एक्केण जीवेण कसाए उवसामित्ता पडिवदिदूण पुणो अंतोमुहुत्तेण कसाया उवसामिदा । सो च जीवो संखेज्जंतोमुहुत्तब्भहियसोलसवस्सूणमधाणिसेयकालं पुव्वविहाणेण णेरएसु संचयं कादूण तदो उवट्टिदो । दो-तिण्णिभवग्गहणाणि तिरिक्खेसु गमिय मणुस्सेसु आगदो त्ति घेत्तव्वं, अण्णहा उक्कस्ससंचयाणुप्पत्तीदो । विदियाए उवसामणाए आबाहा जम्हि पुण्णा सा ट्ठिदी आदिट्ठा एवं भणिदे जम्मि उद्देसे सामित्तभवसंबंधिविदियवारकसायउवसामणाए वावदस्स तप्पाओग्गजहण्णिया आबाहा पुण्णा सा ट्ठिदी पुव्वमेव आदिट्ठा विवक्खिया त्ति वुत्तं होइ ।

§ ६७३. एत्थ णेरइएसु चेव मिच्छत्तादिकम्माणं व पयदुक्कस्ससामित्तमदादूण उवसमसेढिं चढाविय सामित्तविहाणे लाहपदंसणट्ठमिमा ताव परूवणा कीरदे । तं जहा—संखेज्जंतोमुहुत्तब्भहियसोलसवस्सेहि परिहीणं जहाणिसेयकालं पुव्वविहाणेण सत्तमपुढविणेरइएसु तदाउअचरिमभागे अधाणिसेयकालब्भंतरे संचयं करिय कालं काऊण दो-तिण्णिभवग्गहणाणि तिरिक्खेसु गमिय मणुस्सेसुववज्जिय गब्भादिअट्ठवस्साणमंतोमुहुत्तब्भहियाणमुवरि संजमेण सह पढमसम्मत्तमुप्पाइय पुणो वेदयसम्मा-

---

अन्तर्मुहूर्तकालके द्वारा कषायका उपशम किया । इस प्रकार इस दूसरी उपशामनाके होनेपर अबाधा जहाँ पूर्ण होती है प्रकृतमें वह स्थिति विवक्षित है । उसके उदयको प्राप्त होनेपर उससे युक्त जीव उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वामी है ।

§ ६७२. अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है—एक जीव है जो कषायका उपशम करके उससे च्युत हुआ । फिर भी उसने अन्तर्मुहूर्त कालमें कषायका उपशम किया । वह जीव पहले संख्यात अन्तर्मुहूर्त अधिक सोलह वर्ष कम यथानिषेकके कालतक पूर्वविधिसे नारकियोंमें सञ्चय करके वहाँसे निकला और दो तीन भव तिर्यञ्चोंके लेकर मनुष्योंमें आया ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए, अन्यथा उत्कृष्ट संचय नहीं बन सकता है । 'विदियाए उवसामणाए आबाहा जम्हि पुण्णा सा ट्ठिदी आदिट्ठा' सूत्रमें जो यह कहा है सो इसका यह आशय है कि स्वामित्वसम्बन्धी भवमें दूसरी बार कषायकी उपशामनाके जिस स्थानमें रहते हुये तत्प्रायोग्य जघन्य आबाधा पूर्ण होती है वह स्थिति पूर्वमें ही विवक्षित थी ।

§ ६७३. अब प्रकृतमें नारकियोंमें ही मिथ्यात्व आदि कर्मोंके समान प्रकृत उत्कृष्ट स्वामित्व न देकर जो उपशमश्रेणिपर चढ़ाकर स्वामित्वका विधान किया है सो इसमें लाभ है यह दिखलानेके लिये यह आगेकी प्ररूपणा करते हैं । यथा—कोई एक जीव है जिसने संख्यात अन्तर्मुहूर्त अधिक सोलह वर्षोंसे हीन यथानिषेकका जितना काल है उतने काल तक सातवीं पृथिवीका नारकी रहते हुए अपनी आयुके अन्तिम भागमें यथानिषेकके कालके भीतर पूर्वविधिसे यथानिषेकका संचय किया फिर मरा और तिर्यंचोंके दो तीन भव लेकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । फिर गर्भसे लेकर आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्त हो जानेपर संयमके साथ प्रथमोपशम

इट्ठिभावेणंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो वि सेढिसमारोहणट्ठं दंसणमोहणीयमणंताणुबंधि-विसंजोयणपुरस्सरमुवसामिय कसायाणमुवसामणट्ठमधापवत्तकरणं पविट्ठपढमसमए वट्टमाणम्मि अहियारट्ठिदीए जहाणिसेयचिराणसंचयदव्वमेगसमयपबद्धस्स असंखेज्ज-भागमेत्तं होइ।

§ ६७४. तस्सोवट्टणे ठविज्जमाणे एगं पंचिंदियसमयपबद्धं ठविय एदम्मि ओकड्डुक्कड्डुणभागहारेणोवट्टिदसादिरेयदिवड्ढगुणहाणीए भागे हिदे तत्थतणचिराण-संतकम्मसंचयदव्वमागच्छइ। एवंविहेण पुव्वसंचएणुवसमसेढिमेत्तो बहुदव्वसंचय-करणट्ठं चढमाणो अधापवत्तपढमसमयम्मि तदणंतरहेट्ठिमट्ठिदिबंधयादो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तमोसरिदूणंतोकोडाकोडिमेत्तट्ठिदिं बंधइ।

§ ६७५. संपहियबंधमस्सियूण अहियारगोवुच्छाए उवरि णिसित्तदव्वे इच्छिज्जमाणे एगं पंचिंदियसमयपबद्धं ठविय पुणो एदस्स असंखेज्जभागब्भहिय-दिवड्ढभागहारं ठविदे पढमणिसेयादो संखेज्जावलियमेत्तद्धाणमुवरि चढियूणावट्ठिद-अहियारट्ठिदीए णिसित्तदव्वमागच्छदि। एवं बंधमस्सियूण पयदगोवुच्छसंचयभाग-हारो परूविदो। संपहि तत्थेव ट्ठिदिपरिहाणिमस्सियूण लब्भमाणसंचयाणुगमं वत्तइस्सामो। को ट्ठिदिपरिहाणिसंचओ णाम? उच्चदे—एयं ट्ठिदिबंधं बंधिय पुणो

सम्यक्त्वको उत्पन्न किया। फिर वेदकसम्यक्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्त तक रहकर श्रेणिपर चढ़नेके लिये अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाके साथ दर्शनमोहनीयका फिरसे उपशम किया। इस प्रकार यह जीव जब कषायोंका उपशम करनेके लिये उद्यत होता है तब इसके अधःकरणमें प्रवेश करके उसके प्रथम समयमें विद्यमान रहते हुये विवक्षित स्थितिमें यथानिषेकका प्राचीन सत्कर्म एक समयप्रबद्धका असंख्यातवाँ भाग प्राप्त होता है।

§ ६७४. अब इस द्रव्यको प्राप्त करनेके लिए भागहार क्या है यह बतलाते हैं—पंचेन्द्रियके एक समयप्रबद्धको स्थापित करे। फिर इसमें अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारसे भाजित साधिक डेढ़ गुणहानिका भाग देनेपर वहाँका प्राचीन सत्कर्मरूप संचयद्रव्य आता है। इस प्रकार यहाँ जो पूर्व संचय प्राप्त हुआ है सो उससे बहुत द्रव्यका संचय करनेके लिये यह जीव उपशमश्रेणिपर चढ़ता हुआ अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें इसके अनन्तरवर्ती पूर्व समयमें जितना स्थितिबन्ध किया रहा उससे पल्यके असंख्यातवें भाग कम अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिबन्धको करता है।

§ ६७५. अब इस समय बंधे हुए द्रव्यकी अपेक्षा अधिकृत गोपुच्छामें निक्षिप्त हुआ द्रव्य लाना चाहते हैं, इसलिये पंचेन्द्रियके एक समयप्रबद्धको स्थापित करके फिर इसका असं-ख्यातवाँ भाग अधिक डेढ़ गुणहानिप्रमाण भागहार स्थापित करे। ऐसा करनेसे प्रथम निषेकसे संख्यात आवलि ऊपर जाकर स्थित हुई अधिकृत स्थितिमें जो द्रव्य निक्षिप्त होता है उसका प्रमाण आ जाता है। इस प्रकार बन्धकी अपेक्षा प्रकृत गोपुच्छामें संचयको प्राप्त हुए द्रव्यके भागहारका कथन किया। अब वहीं पर स्थितिपरिहानिकी अपेक्षा प्राप्त होनेवाले संचयका विचार करते हैं—

शंका—स्थितिपरिहानिसंचय किसे कहते हैं—

अंतोमुहुत्तेणण्णेगट्ठिदिबंधं बंधमाणो अग्गट्ठिदीदो हेट्ठा पलिदोवमस्स संखे०भाग-मेत्तमोसरियूण बंधइ। पुणो तं हीणट्ठिदिपदेसग्गं सेसट्ठिदीणमुवरि विहंजिय पदमाणं ट्ठिदिपरिहाणिसंचओ णाम। तस्सोवट्टणे ठविज्जमाणे एयं पंचिंदियसमयपबद्धं ठविय एयस्स सयलंतोकोडाकोडीअब्भंतरणाणागुणहाणिसलागाओ विरलिय विगं करिय अण्णोण्णब्भत्थरूवूणीकदरासिम्मि परिहीणट्ठिदिअब्भंतरणाणागुणहाणी विरलिय विगं करिय अण्णोण्णब्भासजणिदरूवूणरासिणोवट्टदम्मि भागहारत्तेण ठविदे ट्ठिदि-परिहाणिदव्वमागच्छइ। पुणो तम्मि सादिरेयदिवड्ढगुणहाणीए भागे हिदे अहियार-ट्ठिदीए उवरि ट्ठिदिपरिहाणीए पदिददव्वसंचओ आगच्छइ। संपहि एवंविहेसु तिसु वि संचएसु ट्ठिदिपरिहाणिसंचओ पहाणं, तस्सेव उवरि समयं पडि वड्ढिदंसणादो।

§ ६७६. एदं च ट्ठिदिपरिहाणिकालभाविदव्वमधापवत्तकरणपढमसमयादो

समाधान—ऐसा जीव एक स्थितिबन्धको बाँधकर अन्तर्मुहूर्तबाद जब दूसरे स्थिति-बन्धको बाँधता है तो वह दूसरा स्थितिबन्ध अग्रस्थितिसे पल्यका संख्यातवाँ भाग कम बाँधता है। अर्थात् पहला स्थितिबन्ध जितना होता था उससे यह पल्यका संख्यातवाँ भाग कम होता है। इस प्रकार जितनी स्थिति कम जाती है उसके कर्मपरमाणु शेष स्थितियोंमें विभक्त होकर प्राप्त होते हैं। बस इस प्रकार जो द्रव्य प्राप्त होता है उसे ही स्थितिपरिहानिसंचय कहते हैं। अब इस द्रव्यको प्राप्त करनेके लिये भागहार क्या है यह बतलाते हैं—पंचेन्द्रियके एक समयप्रबद्धको भाज्यरूपसे स्थापित करे। फिर पूरी अन्तःकोड़ाकोड़ीके भीतर जितनी नानागुणहानिशलाकाएँ प्राप्त हों उनका विरलन करके दूना करे। फिर परस्परमें गुणा करके जो राशि उत्पन्न हो उनमेंसे एक कम करे। फिर इसमें परिहीन स्थितिके भीतर प्राप्त हुई नानागुणहानियोंका विरलन करके और विरलित राशिको दूना करके परस्परमें गुणा करनेसे जो राशि आवे एक कम उसका भाग दे और इस प्रकार जो राशि प्राप्त हो उसे पूर्वोक्त भाज्यराशिका भागहार करनेपर स्थितिपरिहानि द्रव्यका प्रमाण प्राप्त होता है। फिर इसमें डेढ़ गुणहानिका भाग देनेपर अधिकृत स्थितिमें स्थितिपरि-हानिसे द्रव्यका जितना संचय प्राप्त होता है उसका प्रमाण आ जाता है। इस प्रकार यहाँ जो तीन प्रकारके संचय प्राप्त हुए हैं उनमेंसे स्थितिपरिहानिसे प्राप्त हुआ संचय प्रधान है, क्योंकि आगे प्रत्येक समयमें उसीकी वृद्धि देखी जाती है।

विशेषार्थ—बन्धकालके पूर्व समय तक अधिकृत स्थितिमें जितना द्रव्य प्राप्त हुआ रहता है वह प्राचीन सत्कर्म संचित द्रव्य है। बन्धकी अपेक्षा अधिकृत स्थितिमें जितना द्रव्य प्राप्त होता है वह बन्धकी अपेक्षा निक्षिप्त हुआ द्रव्य है। तथा स्थितिपरिहानिसे विवक्षित स्थितिमें प्रति समय जो अतिरिक्त द्रव्य प्राप्त होता है वह स्थितिपरिहानिसंचित द्रव्य है। यद्यपि स्थितिपरिहानिसंचित द्रव्य बन्धकी अपेक्षा प्राप्त होनेवाले द्रव्यमें ही आ जाता है किन्तु बन्धसे प्राप्त होनेवाले द्रव्यको ध्रुव करके उत्तरोत्तर स्थितिपरिहानिसे जो अतिरिक्त द्रव्य प्राप्त होता है उसकी यहाँपर अलगसे परिगणना की है। इतना ही नहीं किन्तु वह उत्तरोत्तर बढ़ता भी जाता है, इसलिये उसकी प्रधानता भी मानी है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इनमेंसे किसका कितना प्रमाण है और वह किस प्रकार प्राप्त होता है इसका विचार मूलमें किया ही है।

§ ६७६. अब स्थितिपरिहानिके कालमें कितना द्रव्य प्राप्त होता है इसका विचार करते

तदणंतरहेट्ठिमसमयम्मि बद्धसमयपबद्धं सादिरेयदिवड्ढगुणहाणीए भागं घेत्तूण लद्धदव्वमेत्तं होदूण पुणो ट्ठिदिपरिहाणीए लद्धअसंखेज्जभागमेत्तदव्वेण अहियं होइ। इमं च तिस्से अहियारट्ठिदीए ओकड्डुक्कड्डणाहि गच्छमाणं पि दव्वं पेक्खियूण असंखेज्जभागब्भहियं होइ। तं कथं? गच्छमाणदव्वस्सोवट्टणे ठविज्जमाणे एयं पंचिंदियसमयपबद्धं ठविय पुणो एदस्स ओकड्डुक्कड्डणभागहारोवट्टिददिवड्ढगुणहाणिमेत्तभागहारे ठविदे चिराणसंचयदव्वमागच्छदि। पुणो एदस्स ओकड्डुक्कड्डणभागहारे ठविदे सादिरेयदिवड्ढगुणहाणिसमयपबद्धस्स पयदगोवुच्छवयागमणट्ठं भागहारो जादो। पुव्वुत्तसंचओ पुण समयपबद्धं सादिरेयदिवड्ढगुणहाणीए खंडिय तत्थेयखंडं ट्ठिदिपरिहीणदव्वं च दो वि घेत्तूण होइ, तेणेसो अणंतरहेट्ठिमसमयसंचयादो संपहियसमयम्मि गच्छमाणदव्वादो च असंखेज्जदिभागब्भहिओ होइ त्ति सिद्धं। संपहियसंचएण चिराणसंतकम्मसंचयदव्वं पेक्खियूण असंखेज्जभागवड्ढी चेव होइ। कुदो? ओकड्डुक्कड्डणभागहारोवट्टिददिवड्ढगुणहाणिखंडिदेगसमयपबद्धमेत्तचिराणसंचयादो एदस्स वट्टमाणसमयसंचयस्स असंखेज्जगुणहीणत्तदंसणादो। एवमधापवत्तकरणपढमसमयसंचयपरूवणा कदा। एत्तो अंतोमुहुत्तमेत्तकालं सव्वमेगमवट्ठिदट्ठिदिं बंधइ त्ति

हैं—अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे उसके अनन्तरवर्ती नीचेके समयमें बंधे हुए समयप्रबद्धमें साधिक डेढ़ गुणहानिका भाग देनेपर जितना लब्ध आवे उतना ग्रहणकर वह लब्ध द्रव्यप्रमाण होकर पुनः स्थितिकी परिहानिसे प्राप्त हुए असंख्यात भागप्रमाण द्रव्यसे अधिक होता है। और यह द्रव्य उस अधिकृत स्थितिमें अपकर्षण-उत्कर्षणके द्वारा व्ययको प्राप्त होनेवाले द्रव्यकी अपेक्षा असंख्यातवें भागप्रमाण अधिक होता है।

शंका—सो कैसे ?

समाधान—क्योंकि, जो द्रव्य व्ययको प्राप्त होता है उसको लानेके लिये भागहारके स्थापित करनेपर पंचेन्द्रियका एक समयप्रबद्ध स्थापित करे। फिर इसका अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारसे भाजित डेढ़ गुणहानिप्रमाण भागहार स्थापित करनेपर प्राचीन संचित द्रव्य प्राप्त होता है। फिर इस संचित द्रव्यके नीचे अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारको स्थापितकर भाग देनेपर प्रकृत गोपुच्छामेंसे व्ययका प्रमाणला नेके लिये वह साधिक डेढ़ गुणहानिप्रमाण समयप्रबद्धका भागहार हो जाता है। परन्तु पूर्वोक्त संचय तो एक समयप्रबद्धको साधिक डेढ़ गुणहानिसे भाजित करनेपर वहाँ प्राप्त हुआ एक भाग और स्थितिपरिहीन द्रव्य इन दोनोंको मिलाकर होता है, इसलिए यह द्रव्य अनन्तरवर्ती नीचेके समयमें संचयको प्राप्त हुए द्रव्यसे और वर्तमान कालमें व्ययको प्राप्त होनेवाले द्रव्यसे असंख्यातवें भाग अधिक होता है यह सिद्ध हुआ। किन्तु इस वर्तमान कालीन संचयमें प्राचीन संचय द्रव्यकी अपेक्षा असंख्यातभागवृद्धि ही होती है, क्योंकि डेढ़ गुणहानिमें अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारका भाग देनेपर जो एक भाग प्राप्त हो उसका एक समयप्रबद्धमें भाग देनेपर प्राचीन संचय द्रव्य आता है। उससे यह वर्तमान समयका संचय असंख्यातगुणा हीन देखा जाता है। इस प्रकार अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें जो संचय होता है उसका कथन किया। अब इससे आगे एक अन्तर्मुहूर्त कालतक पूरी अवस्थित स्थितिका बन्ध होता है, इसलिये वहाँ अवस्थित संचय

अवट्ठिदो संचओ होइ। णवरि गोवुच्छविसेसं पडि विसेसो अत्थि सो जाणियव्वो। तत्तो परं पलिदोवमस्स असंखे०भागमेत्तमोसरिय अण्णे ट्ठिदिबंधे आढत्ते असंखेज्ज-भागवड्ढीए विसरिसो संचओ समुप्पज्जइ। एत्थ वि पुव्वं व परूवणा कायव्वा। एवं जत्थ जत्थ ट्ठिदिबंधोसरणं भविस्सदि तत्थ तत्थ सेसट्ठिदिं ट्ठिदिपरिहाणिं च जाणिदूण संचयपरूवणा कायव्वा। एवमणेण विहाणेण अधापवत्त-अपुव्वकरणाणि वोलिय अणियट्टिअद्धाए संखेज्जे भागे च गंतूण जाव दूरावकिट्टिसण्णिदो ट्ठिदिबंधो चेट्ठइ ताव गच्छमाणदव्वं तदणंतरहेट्ठिमसमयसंचयं च पेक्खियूण समयं पडि जो संचओ सो असंखेज्जभागवड्ढीए चेव गच्छइ। तदो पलिदोवमस्स संखे०भागमेत्तदूरावकिट्टि-सण्णिदट्ठिदिबंधे अच्छिदे सेसस्स असंखेज्जा भागा हाइयूण असंखेज्जदिभागो बज्झइ। एवं बंधमाणस्स वि असंखेज्जभागवड्ढी चेव होऊण गच्छइ जाव जहण्ण-परित्तासंखेज्जछेदणयमेत्तगुणहाणिपमाणो ट्ठिदिबंधो जादो त्ति। तदित्थट्ठिदिं बंध-माणस्स असंखेज्जभागवड्ढीए पज्जवसाणं होइ। पुणो एयगुणहाणिं हाइयूण बंध-माणस्स गच्छमाणदव्वं तदणंतरहेट्ठिमसमयसंचयं च पेक्खियूण संखेज्जभागवड्ढीए आदी जादा। एदं च सेढीए संभवं पडुच्च भणिदं, अण्णहा सेससेसस्स असंखेज्जे भागे परिहाविय बंधमाणस्स तहाविहसंभवाणुवलंभादो। संपहि चिराणसंचयं पेक्खियूणासंखेज्जभागवड्ढी चेव तस्सोकड्डुक्कड्डुणभागहारोवट्टिददिवड्ढगुणहाणि-

---

होता है। किन्तु गोपुच्छविशेषकी अपेक्षा विशेषता है सो जान लेनी चाहिये। फिर उससे आगे पल्यका असंख्यातवाँ भाग कम अन्य स्थितिबन्ध होता है, इसलिए असंख्यातभागवृद्धिसे विसदृश संचय उत्पन्न होता है। यहाँ भी पहलेके समान कथन कर लेना चाहिये। इस प्रकार जहाँ जहाँ स्थितिबन्धापसरण होगा वहाँ वहाँ शेष स्थिति और स्थितिपरिहानिको जानकर सञ्चयका कथन करना चाहिये। इस प्रकार इस विधिसे अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरणको बिता कर अनिवृत्तिकरणके कालमें संख्यात बहुभागप्रमाण स्थान जाकर दूरापकृष्टि संज्ञावाले स्थितिबन्धके प्राप्त होने तक प्रति समयमें व्ययको प्राप्त होनेवाले द्रव्यसे और अनन्तरवर्ती नीचेके समयमें हुए सञ्चयसे प्रत्येक समयमें होनेवाला सञ्चय असंख्यातभागवृद्धिको लिये हुए होता है। फिर पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण दूरापकृष्टिसंज्ञक स्थितिबंधके रहते हुए शेष स्थितिके असंख्यात बहुभागप्रमाण स्थितिका घात करके असंख्यातवाँ भाग प्रमाण स्थितिका बन्ध होता है। सो इसप्रकारका बन्ध करनेवाले जीवके भी प्रति समय असंख्यातभागवृद्धि ही होती है और यह जघन्य परीतासंख्यातके जितने अर्धच्छेद हों उतने गुणहानिप्रमाण स्थितिबन्धके प्राप्त होने तक होती रहती है। इस प्रकार यहाँ अन्तमें जो स्थिति प्राप्त हो उसका बन्ध करनेवाले जीवके असंख्यातभागवृद्धिका पर्यवसान होता है। फिर एक गुणहानिका कम स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके उस समय व्ययको प्राप्त होनेवाले द्रव्यकी अपेक्षा और अन्तरवर्ती नीचेके समयमें हुए संचयकी अपेक्षा संख्यातभागवृद्धिका प्रारम्भ होता है। किन्तु यह सब श्रेणिमें सम्भव है इस अपेक्षासे कहा है, अन्यथा उत्तरोत्तर जो स्थिति-बन्ध शेष रहता है उसका असंख्यातवाँ भाग कम होकर आगे आगे बन्ध होता है इस प्रकारकी सम्भावना नहीं उपलब्ध होती। यहाँ पुराने संचयकी अपेक्षा असंख्यातभागवृद्धि ही होती है, क्योंकि उसका प्रमाण एक समयप्रबद्धमें अपकर्षण-उत्कर्षणसे भाजित डेढ़ गुणहानिका भाग

भजिदेयसमयपबद्धपमाणत्तदंसणादो। एवं रूवूण-दुरूवूणादिकमेण जहण्णपरित्तासंखेज्ज-छेदणयमेत्तगुणहाणीसु परिहीयमाणासु संखेज्जभागवड्ढीए गंतूण जत्थुद्देसे एयगुण-हाणिआयामो ट्ठिदिबंधो जादो तत्थुद्देसे गच्छमाणदव्वं तदणंतरहेट्ठिमसमयसंचयं च पेक्खियूण संपहियसंचओ दुगुणो जादो। चिराणसंचयं पेक्खियूण पुण तक्काले वि असंखेज्जभागवड्ढी चेव। पुणो पढमगुणहाणिं तिण्णि खंडाणि काऊण तत्थ हेट्ठिम-दोखंडाणि मोत्तूण उवरिममेयखंडं सेसगुणहाणीओ च ओसरिय बंधमाणस्स तिगुणो संचओ जादो। तं जहा—पढमगुणहाणीए विसेसहाणिमजोइय सव्वणिसेया सरिसा त्ति आयामेण तिण्णि खंडे काऊण तत्थेयखंडमवणिय पुध ट्ठवेयव्वं। पुणो विदियादि-गुणहाणिदव्वं पि तावदियं चेव होदि त्ति तहेव तिण्णि भागे काऊण तत्थ तिभागं घेत्तूण पुव्वमवणिय पुध ट्ठविदतिभागेण सह मेलाविदे ते वि वे-तिभागा जादा। एवमेदे तिण्णि वे-तिभागा एक्कदो मेलिदा तिगुणत्तं सिद्धं। अथवा दुगुणं सादिरेयमिदि वत्तव्वं। सुहुमट्ठिदीए णिहालिज्जमाणे गुणहाणिअद्धमेत्तविसेसाणं हीणत्तदंसणादो। एवमुवरि वि किंचूणत्तं जाणिय जोजेयव्वं। एवं गंतूण पढमगुणहाणिं रूवाहियजहण्ण-परित्तासंखेज्जमेत्तखंडाणि काऊण तत्थ हेट्ठिमदोखंडाणि मोत्तूणुवरिमसव्वखंडाणि सेसगुणहाणीओ च ओसरिय बंधमाणे गच्छमाणदव्वं तदणंतरहेट्ठिमसंचयं च पेक्खिय असंखेज्जगुणवड्ढीए आदी जादा। एत्तो प्पहुडि उवरि सव्वत्थ असंखेज्ज-

---

देने पर जो लब्ध आवे उतना देखा जाता है। इसप्रकार एक कम दो कम आदि के क्रमसे जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेदप्रमाण गुणहानियोंके हीन होनेतक संख्यातभागवृद्धिसे जाकर जहाँ एक गुणहानिआयामप्रमाण स्थितिबन्ध हो जाता है वहाँ व्ययको प्राप्त हुआ द्रव्य और अनन्तर नीचेके समयमें संचित हुआ द्रव्य इन दोनोंकी अपेक्षा वर्तमानकालीन संचय दूना हो जाता है। परन्तु पुराने सत्त्वकी अपेक्षा उस समय भी असंख्यातभागवृद्धि ही है। फिर प्रथम गुणहानिके तीन खण्ड करके उनमेंसे नीचेके दो खण्ड छोड़कर ऊपरके एक खंड और शेष गुणहानियोंको घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके तिगुना संचय हो जाता है। यथा—प्रथमगुणहानिमें जो उत्तरोत्तर निषेकोंकी विशेष हानि होती गई है इसकी गिनती नहीं करके सब निषेक समान हैं ऐसा मानकर उनके समान तीन खण्ड करके उनमेंसे एक खण्डको निकालकर अलग स्थापित कर दे। फिर द्वितीयादि गुणहानियोंका द्रव्य भी उतना ही होता है इसलिये उसीप्रकार तीन भाग करके उनमेंसे तीसरे भागको ग्रहण करके पूर्वमें निकालकर पृथक् स्थापित किये गये तीसरे भागमें मिला देनेपर वे भी दो बटे तीन भागप्रमाण हो जाते हैं। इसप्रकार इन दो बटे तीन भागोंको एकत्रित करनेपर तिगुने हो जाते हैं इसलिये इस समय तिगुना संचय होता है यह बात सिद्ध हुई। अथवा साधिक दुगुना संचय होता है ऐसा कहना चाहिये, क्योंकि सूक्ष्मदृष्टिसे अवलोकन करने पर गुणहानिके अर्धभागप्रमाण विशेषोंकी हानि देखी जाती है। इसीप्रकार आगे भी कुछ कमको जानकर उसकी योजना करते जाना चाहिये। इस प्रकार आगे जाकर प्रथम गुणहानिके एक अधिक जघन्य परीतासंख्यातप्रमाण खण्ड करके उनमेंसे नीचेके दो खण्डोंके सिवा ऊपरके सब खण्ड और शेष गुणहानियोंको घटाकर बन्ध करने पर व्ययको प्राप्त हुआ द्रव्य और अनन्तर नीचेके समयमें सञ्चित हुआ द्रव्य इन दोनोंकी अपेक्षा

गुणवड्ढी चेव होऊण गच्छइ त्ति घेत्तव्वं ।

§ ६७७. संपहि चिराणसंचयं पेक्खियूणासंखेज्जभागवड्ढीए अंतो कम्हि उद्देसे होइ त्ति भणिदे जहण्णपरित्तासंखेज्जेणोकड्डुक्कड्डणभागहारं खंडेयूण लद्धपमाणेण पढमगुणहाणिं खंडिय तत्थ हेट्ठिमदोखंडाणि मोत्तूणुवरिमासेसखंडाणि सेसगुणहाणीओ च हाइयूण बंधमाणस्स असंखेज्जभागवड्ढीए चरिमवियप्पो होइ । तं कथमिदि भणिदे एयं पंचिंदियसमयपबद्धं ठविय पुणो एदस्स दिवड्ढगुणहाणिभागहारं हेट्ठदो ठविय उवरि जहण्णपरित्तासंखेज्जेणोवट्टिदओकड्डुक्कड्डणभागहारे गुणयारसरूवेण ठविदे संपहियसंचओ आगच्छइ । चिराणसंचए पुण इच्छिज्जमाणे एयं पंचिंदियसमयपबद्धं ठविय पुणो एदस्स ओकड्डुक्कड्डणभागहारोवट्टिददिवड्ढगुणहाणिभागहारो ठवेयव्वो । एवं कदे चिराणसंचओ अधापवत्तकरणपढमसमयपडिबद्धो आगच्छइ । तेणासंखेज्ज-भागवड्ढी एत्थ परिसमप्पइ त्ति णत्थि संदेहो ।

§ ६७८. संखेज्जभागवड्ढिपारंभो कत्थ होइ त्ति पुच्छिदे उक्कस्ससंखेज्जोवट्टिद-ओकड्डुक्कड्डणभागहारपमाणेण पढमगुणहाणिं खंडिय तत्थ हेट्ठिमदोखंडं मोत्तूण उवरिम-सव्वखंडाणि सेसगुणहाणीओ च हाइयूण बंधमाणे संखेज्जभागवड्ढीए आदी होइ । एत्थोवट्टणं पुव्वं व काऊण सिस्साणं पबोहो कायव्वो । एत्तो प्पहुडि संखेज्ज-भागवड्ढी चेव होऊण गच्छदि जाव ओकड्डुक्कड्डणभागहारस्स एगरूवं भागहारत्तेण

असंख्यातगुणवृद्धिका प्रारम्भ होता है। अब इससे आगे सर्वत्र असंख्यातगुणवृद्धिका ही क्रम चालू रहता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये।

§ ६७७. अब पुराने सञ्चयकी अपेक्षा असंख्यातभागवृद्धिका अन्त किस स्थानमें होता है यह बतलाते हैं—जघन्य परीतासंख्यातसे अपकर्षण-उपकर्षण भागहारको भाजित करके जो लब्ध आवे उतने प्रथम गुणहानिके खण्ड करके उनमेंसे नीचेके दो खण्डोंको छोड़कर ऊपरके बाकीके सब खण्ड और शेष गुणहानियोंको घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके असंख्यातभागवृद्धिका अन्तिम विकल्प होता है। यह कैसे होता है अब इसी बातको बतलाते हैं—पंचेन्द्रियके एक समयप्रबद्धको स्थापित करके नीचे इसके डेढ़ गुणहानिप्रमाण भागहारको स्थापित करनेपर और ऊपर जघन्य परीतासंख्यातसे भाजित अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारको गुणकाररूपपर स्थापित करनेसे वर्तमान-कालीन संचय प्राप्त होता है। किन्तु पुराने सञ्चयको लानेकी इच्छासे पंचेन्द्रियके एक समय-प्रबद्धको स्थापित करके फिर इसका अपकर्षण-उत्कर्षणसे भाजित डेढ़ गुणहानिप्रमाण भागहार स्थापित करे। ऐसा करनेसे अधःप्रवृत्तकरणका प्रथम समयसम्बन्धी पुराना संचय प्राप्त होता है। अतः यहाँ असंख्यातभागवृद्धि समाप्त होती है इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।

§ ६७८. अब संख्यातभागवृद्धिका प्रारम्भ कहाँपर होता है यह बतलाते हैं—प्रथम गुण-हानिके उत्कृष्ट संख्यातसे भाजित अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारप्रमाण खण्ड करके उनमेंसे नीचेके दो खण्डोंको छोड़कर ऊपरके सब खण्ड और शेष गुणहानियोंको घटाकर बन्ध करनेपर संख्यात-भागवृद्धिका प्रारम्भ होता है। यहाँपर पहलेके समान अपवर्तन करके शिष्योंको ज्ञान कराना चाहिये। अब इससे आगे अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारका एक अङ्क भागहाररूपसे प्राप्त होनेतक

चेट्ठइ त्ति । पुणो तक्काले पढमगुणहाणिमोकड्डुक्कड्डणभागहारमेत्तखंडाणि काऊण तत्थ हेट्ठिमदोखंडाणि मोत्तूणुवरिमसव्वखंडेहि सह सेसासेसगुणहाणीओ परिहाविय बंधमाणे संखेज्जगुणवड्ढीए आदी जादा। तदो ओकड्डुक्कड्डणभागहारदुगुणमेत्तं पढमगुणहाणिं खंडिय तत्थ हेट्ठिमदोखंडाणि मोत्तूण उवरिमासेसखंडेहि सह सेसगुणहाणीओ ओसरिय बंधमाणे चिराणसंचएण सह तिगुणं संचओ होइ। एवं तिगुणचउग्गुणादिकमेण गंतूणुक्कस्ससंखेज्जगुणोकड्डुक्कड्डणभागहारमेत्ताणि पढमगुणहाणिखंडाणि काऊण तत्थ हेट्ठिमदोखंडाणि परिवज्जिय उवरिमासेसखंडाणि सेसगुणहाणीओ च ट्ठिदिपरिहाणिं करिय बंधमाणे असंखेज्जगुणवड्ढीए आदी जादा। एत्तो पाए उवरि सव्वद्धा संखेज्जगुणवड्ढीए चेव गच्छइ। एवं ट्ठिदिबंधसहस्साणि बहूणि गंतूण तदो उवरिमसंचयं गहिदमिच्छिय ओवट्टणे ठविज्जमाणे एयं पंचिंदियसमयपबद्धं ठविय पुणो तम्मि असंखेज्जवस्सायामेण तक्कालियट्ठिदिबंधेण भागे हिदे एयगोवुच्छपमाणमागच्छइ। पुणो वि अंतोमुहुत्तकालं तं चेव ट्ठिदिं बंधइ त्ति अंतोमुहुत्तेण तम्मि ओवट्टिदे समयपबद्धभागहारो होइ। एवमोवट्टिय इमो संचओ पुध ट्ठवेयव्वो।

§ ६७९. संपहि अण्णेगं ट्ठिदिबंधं बंधमाणो तदणंतरहेट्ठिमबंधादो असंखेज्जगुणहीणं हेट्ठदो ओसरइ। एत्थोवट्टणं पुव्वं व कायव्वं। णवरि पुव्विल्लसंचयादो एस संचओ असंखेज्जगुणो होइ। इमं पि संचयदव्वं पुध ट्ठवेयव्वं। एवमसंखेज्ज-

---

संख्यातभागवृद्धिका ही क्रम चालू रहता है। फिर उस समय प्रथम गुणहानिके अपकर्षण-उत्कषण भागहारप्रमाण खण्ड करके उनमेंसे नीचेके दो खण्डोंको छोड़कर ऊपरके सब खण्डोंके साथ बाकीकी सब गुणहानियोंको घटाकर बन्ध करनेपर संख्यातगुणवृद्धिका प्रारम्भ होता है। फिर प्रथम गुणहानिके अपकर्षण-उत्कर्षणसे दूने खण्ड करके उनमेंसे नीचेके दो खण्डोंको छोड़कर ऊपरके सब खण्डोंके साथ शेष गुणहानियोंको घटाकर बन्ध करनेपर पुराने सत्त्वके साथ तिगुना संचय होता है। इस प्रकार प्रथम गुणहानिके तिगुने और चौगुने आदिके क्रमसे आगे जाकर अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारसे उत्कृष्ट संख्यातगुणे खण्ड करके उनमेंसे नीचेके दो खण्डोंको छोड़कर ऊपरके सब खण्ड और शेष गुणहानिप्रमाण स्थितिको घटाकर बन्ध करनेपर असंख्यातगुणवृद्धिका प्रारम्भ होता है। अब इससे आगे सर्वदा संख्यातगुणवृद्धिका की क्रम चालू रहता है। इस प्रकार हजारों स्थितिखण्डोंको बिताकर इससे ऊपरके सञ्चयको लानेकी इच्छासे भारहारके स्थापित करनेपर पंचेन्द्रियके एक समप्रबद्धको स्थापित करके फिर उसमें तत्काल बँधनेवाले असंख्यात बर्षप्रमाण स्थितिबन्धका भाग देनेपर एक गोपुच्छाका प्रमाण प्राप्त होता है। फिर भी अन्तर्मुहूर्तकाल तक उसी स्थितिका बन्ध होता है, इसलिये उसमें अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर जो लब्ध आवे वह समयप्रबद्धका भागहार होता है। इस प्रकार अपवर्तित करके इस सञ्चयको अलग स्थापित करना चाहिये।

§ ६७९. अब एक अन्य स्थितिबन्धको बाँधता हुआ इसके अनन्तरवर्ती नीचेके बन्धसे असंख्यातगुणे हीन नीचे जाकर बाँधता है। यहाँपर भी पहलेके समान अपवर्तन करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि पूर्वके संचयसे यह संचय असंख्यातगुणा होता है। इस सञ्चय द्रव्यको

वस्सायामाणि होऊण संखेज्जट्ठिदिबंधसहस्साणि गच्छंति जाव संखेज्जवस्सट्ठिदिबंधो जादो त्ति। कम्हि पुणो संखेज्जवस्सिओ ट्ठिदिबंधो होइ त्ति भणिदे अंतरकरण-समत्तिपढमसमए होइ।

§ ६८०. संपहि एत्थतणसंचयं गहिदुमिच्छामो त्ति ओवट्टणे ठविज्जमाणे एयं पंचिंदियसमयपबद्धं ठविय पुणो एदस्स संखेज्जावलियमेत्तं संपहियट्ठिदिबंधायामं भागहारं ठविय भागे हिदे एयगोवुच्छमागच्छइ। एवमंतोमुहुत्तं चेव ट्ठिदिं बंधइ त्ति अंतोमुहुत्तेण तम्मि भागहारे ओवट्टिदे समयपबद्धभागहारो संखेज्जरूवमेत्तो होइ। एदं पि दव्वं पुध ठवेयव्वं। पुणो अण्णेगं ट्ठिदिबंधं बंधमाणो पुव्विल्लबंधादो संखेज्जगुणहीणो हेट्ठदो ओसरइ। एदस्स वि पुव्वओवट्टणं कायव्वं। णवरि पुव्विल्ल-संचयादो इमो संखेज्जगुणो। एसो वि पुध ठवेयव्वो। एवमेदेण कमेण संखेज्जगुणहीणो बंधो होऊण गच्छइ जाव बत्तीसवस्समेत्तो ट्ठिदिबंधो जादो त्ति। सो कम्हि होइ त्ति पुच्छिदे चरिमसमयपुरिसवेदबंधयम्मि होइ। तत्तो प्पहुडि ट्ठिदिबंधो विसेसहीणो होऊण गच्छइ। एवं संखेज्जे ट्ठिदिबंधे ओसारिय णेदव्वं जाव कोहसंजलणस्स संखेज्जंतोमुहुत्तब्भहियअट्ठवस्समेत्तट्ठिदिबंधो त्ति। तत्तो उवरि संचयं ण लहामो। किं कारणं? एत्तो उवरिमट्ठिदिबंधाणमहियारट्ठिदीदो हेट्ठा चेव पउत्तिदंसणादो।

भी पृथक् स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार संख्यात वर्षका स्थितिबन्ध प्राप्त होनेतक असंख्यात वर्षके आयामवाले संख्यात हजार स्थितिबन्ध होते हैं।

शंका—संख्यात वर्षका स्थितिबन्ध किस स्थानमें होता है?

समाधान—अन्तरकरणकी समाप्तिके बाद प्रथम समयमें होता है।

§ ६८०. अब यहांका संचय लाना इष्ट है इसलिये इसके भागहारको बतलाते हैं—पंचेन्द्रियके एक समयप्रबद्धको स्थापित करके फिर इसका वर्तमान स्थितिबन्धके आयामवाला संख्यात आवलिप्रमाण भागहार स्थापित करके भाग देने पर एक गोपुच्छाका प्रमाण प्राप्त होता है। इसप्रकार अन्तर्मुहूर्त तक ही स्थिति बाँधता है इसलिये इस भागहारमें अन्तर्मुहूर्तका भाग देने पर समयप्रबद्धका भागहार संख्यात अंकप्रमाण प्राप्त होता है। इस द्रव्यको भी पृथक् स्थापित करे। फिर एक दूसरे स्थितिबन्धको बाँधता हुआ पूर्वोक्त बन्धसे संख्यातगुणा हीन नीचे जाकर बाँधता है। इसे भी पहलेके समान भाजित करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि पिछले सञ्चयसे यह सञ्चय संख्यातगुणा होता है। इसे भी पृथक् स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार बत्तीस वर्षप्रमाण स्थितिबन्धके प्राप्त होनेतक उत्तरोत्तर बन्ध संख्यातगुणा हीन होता जाता है।

शंका—बत्तीस वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध किस स्थानमें जाकर होता है?

समाधान—पुरुषवेदके बन्धके अन्तिम समयमें होता है।

इससे आगे स्थितिबन्ध उत्तरोत्तर विशेष हीन होता जाता है। इस प्रकार क्रोधसंज्वलनके संख्यात अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षप्रमाण स्थितिबन्धके प्राप्त होने तक संख्यात स्थितिबन्ध हो लेते हैं। अब इससे आगे संचय नहीं प्राप्त होता, क्योंकि इससे ऊपरके स्थितिबन्ध अधिकृत

एत्तमुवरिं चढिय अंतोमुहुत्तद्धमच्छिय तदो अद्धाक्खएण परिवदमाणगो सुहुमसांपराइयद्धं वोलिय अणियट्टिउवसामगो जादो । संपहि एवमोदरमाणस्स कम्हि पदेसे अहियारट्ठिदिसंचयं लहइ त्ति पुच्छिदे जम्हि उद्देसे चढमाणस्स संचयवोच्छेदो जादो तमुद्देसं थोवंतरेण ण पावेइ त्ति ओयरमाणस्स संखेज्जंतोमुहुत्तब्भहियअट्ठ-वस्समेत्तट्ठिदिबंधो जायदे । तत्तो प्पहुडि अहियारगोवुच्छा अधाणिसेयसंचयं लहइ । एवं णेदव्वं जाव असंखेज्जवस्समेत्तो ट्ठिदिबंधो जादो त्ति । किंविहो सो असंखेज्ज-वस्सिओ ट्ठिदिबंधो त्ति भणिदे तप्पाओग्गसंखेज्जरूवाणि ओकड्डुक्कड्डणभागहारं च अण्णोण्णगुणं करिय णिप्पाइदो जो रासी तत्तियमेत्तो जाव एदूरं ताव संचयं लहामो । एत्तो उवरि संचयं ण लहामो, ओकड्डुकड्डणाहिं गच्छमाणदव्वस्स ट्ठिदिपरिहाणि-संचयं पेक्खियूण बहुत्तुवलंभादो । एवमेत्तियमेत्तकालसंचयं काऊण तदो अणियट्टि-अपुव्व-अधापवत्तकमेण हेट्ठा परिवदिय पुणो वि अंतोमुहुत्तेण कसायउवसामणाए अब्भुट्ठिदो । एदिस्से वि उवसमसेढीए संचयविही पुव्वं व परूवेयव्वा । णवरि चढमाणस्स जाधे संखेज्जरूवगुणिदोकड्डुकड्डणभागहारमेत्तट्ठिदिबंधो जादो तदो पहुडि संचयं लहामो, हेट्ठा आयादो वयस्स बहुत्तोवलंभादो । सेसविहीए णत्थि

स्थितिसे नीचे ही प्राप्त होते हैं। इस प्रकार ऊपर चढ़कर और अन्तर्मुहूर्त कालतक वहाँ रहकर फिर उपशान्तमोहका काल पूरा हो जानेके कारण वहाँसे गिरकर और सूक्ष्मसाम्परायिकके कालको बिताकर अनिवृत्तिउपशामक हो जाता है।

शंका—इसप्रकार उतरनेवाले इस जीवके विवक्षित स्थितिका सञ्चय किस स्थानमें प्राप्त होता है ?

समाधान—जिस स्थानमें चढ़नेवाले जीवके सञ्चयकी व्युच्छित्ति होती है उस स्थानको थोड़े अन्तरसे नहीं प्राप्त करता, इसलिए उतरनेवाले जीवके जब संख्यात अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध होता है तब वहाँसे लेकर विवक्षित गोपुच्छा यथानिषेक सञ्चयको प्राप्त होती है।

इसप्रकार असंख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्धके होने तक जानना चाहिये।

शंका—वह असंख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध किस प्रकारका होता है ?

समाधान—तद्योग्य संख्यात अंकोंको और अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारको परस्परमें गुणा करनेसे जो राशि उत्पन्न हुई उतना इतने दूर जाने तक यह संचय प्राप्त होता है, इससे ऊपर सञ्चय नहीं प्राप्त होता, क्योंकि अपकर्षण-उत्कर्षणके द्वारा व्ययको प्राप्त होनेवाला द्रव्य स्थितिपरिहानिसे होनेवाले सञ्चयकी अपेक्षा बहुत पाया जाता है।

इस प्रकार इतने कालतक सञ्चय करके फिर अनिवृत्तिकरण, अपूर्वकरण और अधःप्रकरणके क्रमसे नीचे गिरकर फिर भी अन्तर्मुहूर्त बाद कषायोंका उपशम करनेके लिए उद्यत हुआ। इसके भी उपशमश्रेणिमें सञ्चयका क्रम पहलेके समान कहना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि चढ़ने-वाले जीवके जब संख्यात अङ्कसे गुणित अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारप्रमाण स्थितिबन्ध होता है तब वहाँसे सञ्चय प्राप्त होता है, क्योंकि नीचे आयसे व्यय बहुत पाया जाता है। इसके अतिरिक्त

णाणत्तं। एवमुवरिं चढिय हेट्ठा ओदरदूणंतोमुहुत्तेण मिच्छत्तं गंतूण मणुस्साउअं बंधिय कमेण कालं काऊण मणुसेसुववण्णो अंतोमुहुत्तब्भहियअट्ठवस्साणमुवरि सम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवज्जिय सव्वलहुं कसायउवसामणाए अब्भुट्ठिदो। एत्थ वि संचयविही पुव्वं व परूवेयव्वा। णवरि चढमाणो जाव अप्पणो चरिमट्ठिदिबंधो ताव संचयं लहदि त्ति वत्तव्वं। ओदरमाणो वि चढमाणस्स जम्मि चत्तारिमासमेत्तो चरिमट्ठिदिबंधो जादो तमुद्देसमंतोमुहुत्तेण पावेदि त्ति अट्ठमासमेत्तट्ठिदिबंधमाढवेइ ताधे पुव्विल्लचरिमट्ठिदिबंधसंचयस्स अद्धमेत्तसंचयमहियारट्ठिदी लहइ। एत्तो प्पहुडि पुव्वविहाणेण संचयं करेमाणो हेट्ठा ओयरिय अंतोमुहुत्तेण पुणो वि उवसमसेढिमारूढो। एत्थ वि पुव्वं व संचयं कादूणोदरमाणस्स अणियट्टिअद्धाए अब्भंतरे जाधे तप्पाओग्गसंखेज्जरूवगुणिदोकड्डुक्कड्डणभागहारमेत्तो ट्ठिदिबंधो जादो ताधे तदित्थट्ठिदिं बंधमाणेण अहियारगोवुच्छाए उवरि पढमणिसेयं कादूणुवरि पदेसरयणा कदा। एदस्सुवरि असंखेज्जगुणमण्णेगं ट्ठिदिबंधं बंधमाणस्स संचयं ण लहामो, अहियारट्ठिदीए आबाहाब्भंतरे पवेसियत्तादो। एसो च अधाणिसेयउक्कस्ससंचओ पुव्वमुवसमसेढिं चढमाणस्सोदरमाणस्स वा तम्मि भवे आबाहाब्भंतरमपविसिय आगदो संपहि चेव पविट्ठो। कधमेदं परिच्छिज्जदे? चढमाणोदरमाणअपुव्वकरण-अणियट्टि-

शेष विधिमें कोई भेद नहीं है। इस प्रकार ऊपर चढ़कर और नीचे उतरकर अन्तर्मुहूर्तमें यह जीव मिथ्यात्वमें गया और मनुष्यायुको बाँधकर क्रमसे मरा और मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। फिर अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षके बाद सम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त करके अतिशीघ्र कषायोंका उपशम करनेके लिये उद्यत हुआ। यहाँपर भी सञ्चयविधिका कथन पहलेके समान करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि चढ़नेवाला जीव अपने अन्तिम स्थितिबन्धके प्राप्त होनेतक सञ्चय करता रहता है यहाँ इतना कथन करना चाहिए। उतरनेवाला जीव भी चढ़नेवाले जीवके जिस स्थानमें चार माह प्रमाण अन्तिम स्थितिबन्ध होता है उस स्थानको अन्तर्मुहूर्तमें प्राप्त करता है, इसलिये आठ माह प्रमाण स्थितिबन्धका आरम्भ करता है। उस समय पूर्वोक्त अन्तिम स्थितिबन्धके सञ्चयका आधा संचय विवक्षित स्थितिमें प्राप्त होता है। अब यहाँसे आगे पूर्वविधिसे सञ्चय करता हुआ नीचे उतरकर अन्तर्मुहूर्त बाद फिर भी उपशमश्रेणिपर चढ़ता है। यहाँ पर भी पहलेके समान सञ्चय करके उतरनेवाले जीवके अनिवृत्तिकरण कालके भीतर जब तद्योग्य संख्यात अङ्कोंसे गुणित अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारप्रमाण स्थितिबन्ध होता है तब उस स्थितिको बाँधनेवाला जीव अधिकृत गोपुच्छामें प्रथम निषेकका निक्षेप करके प्रदेशरचना करता है। फिर इसके ऊपर असंख्यातगुणे अन्य स्थितिबन्धको बाँधनेवाले जीवके अधिकृत स्थितिमें सञ्चय नहीं प्राप्त होता, क्योंकि तब विवक्षित स्थिति अबाधाकालके भीतर पाई जाती है। यह यथानिषेकका उत्कृष्ट संचय जो जीव पहले उपशमश्रेणिपर चढ़ा था और उतरा था उसके उसी भवमें आबाधाके भीतर नहीं प्रविष्ट होकर प्राप्त हुआ था किन्तु अब प्रविष्ट हुआ है।

शंका—यह किस प्रमाण से जाना?

समाधान—चढ़ते समयके और उतरते समयके अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म-

करण-सुहुमसांपराइय-उवसंतकसायकालसव्वसमासादो वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय पमत्ता-पमत्तपरावत्तसहस्सवावारेणावट्ठिदकालादो च मोहणीयस्स अणियट्टिजहण्णिया आवाहा संखेज्जगुणा, तस्सेव मोहणीयस्स अपुव्वकरणम्मि उक्कस्सिया आबाहा संखेज्जगुणा, अणियट्टिम्मि मोहणीयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो त्ति उवसमसेढीए अप्पा-बहुअं भणिहिदि। एदेण णव्वदि जहा चढमाणअपुव्वाबाहादो अंतोमुहुत्तब्भहियं होऊण ट्ठिदमहियारगोवुच्छं पुव्वं चढमाणोदरमाणाणमाबाहाब्भंतरमपविसियूणागमणं लहइ त्ति। एदं च सव्वं मणेणावहारिय विदियाए उवसामणाए आबाहा जम्हि पुण्णा सा ट्ठिदी आदिट्ठा त्ति सुत्तयारेण परूविदं।

§ ६८१. एत्थ विदियाए त्ति उत्ते विदियभवग्गहणसंबंधिणो दो वि कसाउव-सामणवारा घेप्पंति, तेसिं जाइदुवारेणेयत्तावलंबणादो सुत्तस्स अंतदीवयभावेण पयट्टत्तादो वा। संपहि पुव्वं परूविदासंखेज्जवस्सट्ठिदिबंधियस्स पढमणिसेयं लद्धूणा-बाहाब्भंतरे पविसिय अणियट्टिअद्धाए संखेज्जे भागे अपुव्वकरणं च वोलेयूण पुणो कमेण पमत्तापमत्तट्ठाणे अहियारगोवुच्छाए उदयमागच्छमाणे कोहसंजलणस्स उक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं होइ। एदं च हियए करिय तम्हि उक्कस्सयमधा-णिसेयट्ठिदिपत्तयमिदि वुत्तं। तम्मि ट्ठिदिविसेसे उदयपत्ते पयदुक्कस्ससामित्तं होइ त्ति

साम्पराय और उपशान्तमोह इन सब कालोंका जितना जोड़ हो उससे तथा वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके प्रमत्त और अप्रमत्तके हजारों परिवर्तनोंमें लगनेवाले अवस्थितकालसे मोहनीयकर्मकी अनिवृत्तिकरणसम्बन्धी जघन्य अबाधा संख्यातगुणी होती है। इससे उसी मोहनीयकी अपूर्वकरणमें उत्कृष्ट अबाधा संख्यातगुणी होती है। इससे अनिवृत्तिकरणमें मोहनीयका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है। इसप्रकार आगे चलकर उपशमश्रेणिमें अल्पबहुत्व कहेंगे। इससे जाना जाता है कि जो अधिकृत गोपुच्छा चढ़ते समय प्राप्त हुए अपूर्वकरणके अबाधाकालसे अन्तर्मुहूर्त अधिक होकर स्थित है वह पूर्वमें जो उपशमश्रेणिपर चढ़ा और उतरा था उसके उस समय प्राप्त हुए अबाधाकालके भीतर नहीं प्रविष्ट होकर प्राप्त होती है। इस सब व्यवस्थाको मनमें निश्चित करके 'विदियाए उवसामणाए अबाहा जम्हि संपुण्णा सा ट्ठिदी आदिट्ठा' ऐसा सूत्रकारने कहा है।

§ ६८१. यहाँ सूत्रमें जो 'विदियाए उवसामणाए' ऐसा कहा है सो इससे दूसरे भवसम्बन्धी कषायोंके उपशमानेके दोनों ही बार ग्रहण करने चाहिये, क्योंकि जातिकी अपेक्षा ये दोनों एक हैं, इसलिये एक वचनरूपसे इनका कथन किया है। या यह सूत्र अन्तदीपकभावसे प्रवृत्त हुआ है, इसलिये सूत्रमें एकवचनका निर्देश किया है। अब पहले जो असंख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध कहा है उसके प्रथम निषेकको प्राप्त कराके और अबाधाके भीतर प्रवेश कराके अनिवृत्तिकरणके संख्यात भागोंको और अपूर्वकरणको बिताकर फिर क्रमसे जब अप्रमत्तसंयत और प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें अधिकृत गोपुच्छा उदयको प्राप्त होती है तब क्रोधसंज्वलनका यथानिषेकस्थिति-प्राप्त द्रव्य उत्कृष्ट होता है। इसप्रकार इस बातको हृदयमें करके सूत्रमें 'तम्हि उक्कस्सयमधा-णिसेयट्ठिदिपत्तयं' यह वचन कहा है। उस स्थितिविशेषके उदयको प्राप्त होनेपर प्रकृत उत्कृष्ट

भावत्थो ।

§ ६८२. संपहि एत्थ लद्धपमाणाणुगमे भण्णमाणे पढमवारं चढमाणेण लद्धं सव्वसंचयं ठविय पुणो चउहि रूवेहि तम्हि गुणिदे एयसमयपबद्धस्स संखेज्जदिभागो आगच्छइ, संखेज्जवस्सियट्ठिदिबंधसंचयस्सेव पाहण्णियादो । एवं कोहसंजलणस्स पयदुक्कस्ससामित्तं परूविय संपहि एसो चेव णिसेयट्ठिदिपत्तयस्स वि सामिओ होइ त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

❀ णिसेयट्ठिदिपत्तयं च तम्हि चेव ।

§ ६८३. तम्हि चेव ट्ठिदिविसेसे पुव्वणिरुद्धे णिसेयट्ठिदिपत्तयं पि उक्कस्सं होइ, दोण्हमेदेसिं ट्ठिदिपत्तयाणं सामित्तं पडि विसेसादंसणादो । णवरि दव्वविसेसो जाणेयव्वो, तत्तो एदस्स ओकड्डुक्कड्डुणाहि गंतूण पुणो वि तत्थेव पदिददव्वमेत्तेणाहियभावोवलंभादो ।

❀ उक्कस्सयमुदयट्ठिदिपत्तयं कस्स ?

§ ६८४. सुगमं ।

स्वामित्व होता है यह इसका भावार्थ है ।

§ ६८२. अब यहाँ लब्धप्रमाणका विचार करते हैं—पहली बार उपशमश्रेणिपर चढ़ने और उतरनेसे जो संचय प्राप्त हो उस सबको स्थापित करे। फिर उसे चारसे गुणा करनेपर एक समयप्रबद्धका संख्यातवां भाग प्राप्त होता है, क्योंकि यहाँ पर संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्धका प्राप्त हुआ संचय ही प्रधान है। इसप्रकार क्रोधसंज्वलनके प्रकृत उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन करके अब यही निषेकस्थितिप्राप्तका भी स्वामी होता है यह बतलानेके लिये आगेका सूत्र आया है—

* उत्कृष्ट निषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका भी वही स्वामी है ।

§ ६८३. जो स्थिति यथानिषेकके उत्कृष्ट स्वामित्वके समय विवक्षित थी उसी स्थितिविशेषमें निषेकस्थितिप्राप्त भी उत्कृष्ट होता है, क्योंकि इन दोनों ही स्थितिप्राप्तोंमें स्वामित्वकी अपेक्षा कोई भेद नहीं देखा जाता। किन्तु द्रव्यविशेषको जान लेना चाहिये, क्योंकि यथानिषेकस्थितिमेंसे अपकर्षण-उत्कर्षणके द्वारा जो द्रव्य व्ययको प्राप्त हो जाता है वह इसमें पुनः जहाँका तहाँ आ जाता है इसलिये यथानिषेककी अपेक्षा इसमें इतना द्रव्य अधिक पाया जाता है।

विशेषार्थ—पिछले सूत्रमें यथानिषेकस्थितिप्राप्तका उत्कृष्ट स्वामी बतला आये हैं। उसीप्रकार निषेकस्थितिप्राप्तका भी उत्कृष्ट स्वामी जान लेना चाहिये, इसकी अपेक्षा इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है यह इस सूत्रका भाव है। किन्तु इतनी विशेषता है कि यथानिषेकस्थितिप्राप्तका जितना उत्कृष्ट द्रव्य होता है उससे निषेकस्थितिप्राप्तका उत्कृष्ट द्रव्य अधिक होता है, क्योंकि यथानिषेकमें अपकर्षण उत्कर्षणके द्वारा जिस द्रव्यकी हानि हो जाती है इसमें वह द्रव्य पुनः जहाँका तहाँ आ जाता है।

* उत्कृष्ट उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वामी कौन है ?

§ ६८४. यह सूत्र सुगम है।

❀ चरिमसमयकोहवेदयस्स ।

§ ६८५. एत्थ गुणिदकम्मंसियविसेसणं फलाभावादो ण कदं। कुदो फलाभावो चे ? कोहसंजलणपोराणपढमट्ठिदिं सव्वं गालिय पुणो किट्टिवेदगेण ओकड्डियूणंतरब्भंतरे गुणसेढिआयारेण णिसित्तपढमट्ठिदीए समयाहियावलियचरिमणिसेयं घेत्तूण पयदसामित्तविहाणे गुणिदकम्मंसियत्तकयफलविसेसाणुवलंभादो। खवगविसेसणमेत्थाणुत्तसिद्धमिदि ण कदं। एवं कोहसंजलणस्स सव्वेसिं ट्ठिदिपत्तयाणमुक्कस्ससामित्तं परूविय सेससंजलणाणं पि सव्वपदाणमेदेण समप्पणट्ठमिदमाह—

❀ एवं माण-माया-लोहाणं ।

§ ६८६. जहा कोहसंजलणस्स चउण्हं ट्ठिदिपत्तयाणं सामित्तविहाणं कयं एवं माण-माया-लोहसंजलणाणं पि कायव्वं, विसेसाभावादो। णवरि जहाणिसेय-णिसेयट्ठिदिपत्तयाणमुक्कस्सदव्वसंचओ कोहसंजलणस्स बंधे वोच्छिण्णे वि लब्भइ जाव सगबंधवोच्छेदसमओ त्ति। अण्णं च लोभसंजलणस्स उक्कस्सयमुदयट्ठिदिपत्तयं गुणिदकम्मंसियस्सेव होइ, एत्तिओ चेव विसेसो।

*** जो जीव अपने अन्तिम समयमें क्रोधका वेदन कर रहा है वह उत्कृष्ट उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वामी है ।**

§ ६८५. इस सूत्रमें विशेष फल न देखकर गुणितकर्मांश यह विशेषण नहीं दिया है।

शंका—इस विशेषणका विशेष फल क्यों नहीं है ?

समाधान—यह जीव क्षपणाके समय क्रोधसंज्वलनकी पुरानी प्रथम स्थितिको पूरीकी पूरी गला देता है फिर कृष्टिका वेदन करते समय अन्तरकालके भीतर अपकर्षण द्वारा गुणश्रेणिरूपसे प्रथम स्थितिकी रचना करता है। तब एक समय अधिक एक आवलिके अन्तिम निषेककी अपेक्षा प्रकृत स्वामित्वका विधान किया जाता है, अतः इसमें गुणितकर्मांशकृत कोई विशेष फल नहीं पाया जाता है।

सूत्रमें क्षपक विशेषणका बिना कहे ही ग्रहण हो जाता है, इसलिये उसे सूत्रमें नहीं दिया है। इसप्रकार क्रोधसंज्वलनके सभी स्थितिप्राप्तोंके उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन करके शेष संज्वलनोंके सभी पदोंका उत्कृष्ट स्वामित्व भी इसीके समान है यह बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** इसी प्रकार मान, माया और लोभसंज्वलनके सब पदोंका उत्कृष्ट स्वामित्व जानना चाहिए ।**

§ ६८६. जिसप्रकार क्रोधसंज्वलनके चारों स्थितिप्राप्तोंके स्वामित्वका कथन किया है उसी प्रकार मान, माया और लोभ संज्वलनोंका भी कथन करना चाहिए, क्योंकि इनके कथनमें कोई विशेषता नहीं है। किन्तु इतनी विशेषता है कि उक्त प्रकृतियोंकी अपेक्षा यथानिषेकस्थितिप्राप्त और निषेकस्थितिप्राप्तके उत्कृष्ट द्रव्यका संचय क्रोधसंज्वलनकी बन्धव्युच्छित्ति हो जानेपर भी अपनी अपनी बन्धव्युच्छित्तिके समय तक होता रहता है। तथा दूसरी विशेषता यह है कि लोभ संज्वलनका उदयस्थितिप्राप्त उत्कृष्ट द्रव्य गुणितकर्मांशके ही होता है। बस इतनी ही विशेषता है।

❀ पुरिसवेदस्स चत्तारि वि हिदिपत्तयाणि कोहसंजलणभंगो ।

§ ६८७. पुरिसवेदस्स जहावसरपत्ताणि चत्तारि वि हिदिपत्तयाणि कस्से त्ति आसंकिय कोहसंजलणभंगो त्ति अप्पणा कया, विसेसाभावादो । संपहि उदयहिदिपत्तयसामित्तगयविसेसपदुप्पायणहमुत्तरसुत्तारंभो—

❀ णवरि उदयहिदिपत्तयं चरिमसमयपुरिसवेदखवयस्स गुणिदकम्मंसियस्स ।

§ ६८८. तत्थ चरिमसमयकोहवेदयस्स खवयस्स पयदुक्कस्ससामित्तं, एत्थ पुण चरिमसमयपुरिसवेदयस्स खवयस्से त्ति वत्तव्वं । अण्णं च गुणिदकम्मंसियत्तं पि एत्थ विसेसो, तत्थ गुणिदकम्मंसियत्तस्साणुवजोगित्तादो । एत्थ पुण गुणिदकम्मंसियत्तमुवजोगी चेव, अण्णहा पयडिगोवुच्छाए थूलभावाणुप्पत्तीदो ।

❀ इत्थिवेदस्स उक्कस्सयमग्गहिदिपत्तयं मिच्छत्तभंगो ।

§ ६८९. सुगममेदमप्पणासुत्तं ।

❀ उक्कस्सयअधाणिसेयहिदिपत्तयं णिसेयहिदिपत्तयं च कस्स ?

§ ६९०. सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

*** पुरुषवेदके चारों ही स्थितिप्राप्त द्रव्योंका भंग क्रोधसंज्वलनके समान है ।**

§ ६८७. अब पुरुषवेदके चारों ही स्थितिप्राप्तोंके स्वामित्वका कथन अवसर प्राप्त है, इसलिये उनका स्वामी कौन है ऐसी आशंका करके पुरुषवेदके चारों ही स्थितिप्राप्तोंका भङ्ग क्रोधसंज्वलनके समान है यह कहा है, क्योंकि क्रोधसंज्वलनके कथनसे इस कथनमें कोई विशेषता नहीं है । अब उदयस्थितिप्राप्त स्वामित्वसम्बन्धी विशेषताका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** किन्तु इतनी विशेषता है कि जो गुणितकर्मांशवाला जीव पुरुषवेदका क्षय कर रहा है वह अपने अन्तिम समयमें उसके उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका उत्कृष्ट स्वामी है ।**

§ ६८८. क्रोधसंज्वलनका कथन करते समय क्षपक क्रोधवेदकके अन्तिम समयमें प्रकृत उत्कृष्ट स्वामित्व होता है किन्तु यहाँ पर क्षपक पुरुषवेदकके अन्तिम समयमें यह उत्कृष्ट स्वामित्व होता है यह कहना चाहिये । दूसरे गुणितकर्मांशवाले जीवके इसका उत्कृष्ट स्वामित्व होता है यहाँ इतनी विशेषता और है । क्रोधसंज्वलनके उदयप्राप्तको गुणितकर्मांश होनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वहाँ उसका उपयोग नहीं है किन्तु यहाँपर गुणितकर्मांशपना उपयोगी ही है, अन्यथा प्रकृत गोपुच्छा स्थूल नहीं हो सकती ।

*** स्त्रीवेदके उत्कृष्ट अग्रस्थितिप्राप्त द्रव्यका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है ।**

§ ६८९. यह अर्पणासूत्र सुगम है ।

*** उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्त और निषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वामी कौन है ।**

§ ६९०. यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

॥ इत्थिवेदसंजदेण इत्थिवेद-पुरिसवेदपूरिदकम्मंसिएण अंतोमुहुत्तस्संतो दो वारे कसाए उवसामिदा। जाधे विदियाए उवसामणाए जहण्णयस्स ट्ठिदिबंधस्स पढमणिसेयट्ठिदी उदयं पत्ता ताधे अधाणिसेयादो णिसेयादो च उक्कस्सयं ट्ठिदिपत्तयं।

§ ६६१. एत्थ इत्थिवेदसंजदेणे त्ति वयणं सोदएण सामित्तविहाणट्ठं, परोदएण पयदुक्कस्ससामित्तविहाणोवायाभावादो। तेणेत्थिवेदसंजदेणेत्थिवेद-पुरिसवेदपूरिदकम्मंसिएण अंतोमुहुत्तस्संतो दो वारे कसाया उवसामिदा। एकवारं कसाए उवसामिय पडिवदिय पुणो वि सव्वलहुं कसाया उवसामिदा त्ति उत्तं होइ। ण च पुरिसवेदपूरिदकम्मंसियत्तमेत्थाणुवजेगी, त्थिउक्कसंकमेणोवजोगित्तदंसणादो। ण णवुंसयवेदपूरियकम्मंसिएण अइप्पसंगो, असंखेज्जवस्साउएसु अधाणिसेयसंचयकालब्भंतरे तस्स पूरणोवायाभावादो। सेसं जहा कोहसंजलणस्स भणिदं तहा वत्तव्वं। णवरि असंखेज्जवस्साउअतिरिक्खेसु मणुस्सेसु वा संखेज्जंतोमुहुत्तब्भहियसोलसवस्सेहिं सादिरेयदसवस्ससहस्सपरिहीणमधाणिसेयसंचयकालमणुपालिय तत्थित्थि-पुरिसवेदे पूरेयूण तदो दसवस्ससहस्सिएसुववज्जिय कमेण मणुस्सेसु आगदो त्ति वत्तव्वं। जहा कोहसंजलणस्स उवसामयसंचयाणुगमो लद्धपमाणाणुगमो च कओ तहा एत्थ वि णिरवसेसो

*** स्त्रीवेद और पुरुषवेदके कर्मांशको पूरण करनेवाला जो स्त्रीवेदके उदयवाला संयत जीव अन्तर्मुहूर्तके भीतर दो बार कषायोंका उपशम करता है और ऐसा करते हुए जब उसके दूसरी उपशामनाके समय जघन्य स्थितिबन्धकी प्रथम निषेकस्थिति उदयको प्राप्त होती है तब वह उत्कृष्ट यथानिषेक और निषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वामी है।**

§ ६६१. सूत्रमें 'इत्थिवेदसंजदेण' यह वचन स्वोदयसे स्वामित्वका कथन करनेके लिये दिया है, क्योंकि परोदयसे प्रकृत उत्कृष्ट स्वामित्वकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। ऐसा जो स्त्रीवेदके उदयवाला संयत जीव है वह स्त्रीवेद और पुरुषवेदके कर्मांशका पूरण करके अन्तर्मुहूर्तकालके भीतर दो बार कषायोंको उपशमाता है। एक बार कषायोंका उपशम करके और उपशमश्रेणीसे च्युत होकर फिर भी अतिशीघ्र कषायोंका उपशम करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यदि कहा जाय कि पुरुषवेदके कर्मांशका पूरण करना प्रकृतमें अनुपयोगी है सो ऐसी बात भी नहीं है, क्योंकि स्तिवुकसंक्रमणके द्वारा उसकी उपयोगिता देखी जाती है। और ऐसा कथन करनेसे जिसने नपुंसकवेदके कर्मांशका पूरण किया है उसके साथ अतिप्रसङ्ग भी नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमें यथानिषेक संचयकालके भीतर उसका पूरण करना नहीं बन सकता है। शेष कथन क्रोधसंज्वलनके समान करना चाहिये। किन्तु प्रकृतमें इतना विशेष कहना चाहिये कि असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंच और मनुष्योंमें संख्यात अन्तर्मुहूर्त और सोलह वर्ष अधिक दस हजार वर्षसे न्यून यथानिषेक संचयकालका पालन करके तथा वहाँ स्त्रीवेद और पुरुषवेदका पूरण करके फिर वहाँसे निकलकर दस हजार वर्षकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न होकर क्रमसे मनुष्य हुआ। क्रोधसंज्वलनका जिस प्रकार उपशामकसम्बन्धी सञ्चयका और लब्धप्रमाणका विचार किया है

कायव्वो ।

❀ उदयट्ठिदिपत्तयमुक्कस्सयं कस्स ?

§ ६६२. इत्थिवेदस्से त्ति अहियारसंबंधो । सेसं सुगमं ।

❀ गुणिदकम्मंसियस्स खवयस्स चरिमसमयइत्थिवेदयस्स तस्स उक्कस्सयमुदयट्ठिदिपत्तयं ।

उसी प्रकार वह सबका सब विचार यहाँ भी करना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहाँ पर स्त्रीवेदके यथानिषेक स्थितिप्राप्त और निषेकस्थितिप्राप्त उत्कृष्ट द्रव्यके स्वामीका विचार करते हुए जो यह बतलाया है कि पहले स्त्रीवेद और पुरुषवेदका पूरण करके स्त्रीवेदके उदयके साथ संयत होकर दो बार कषायोंका उपशम करते हुए जब दूसरी बार उपशामनाके समय जघन्य स्थितिबन्धकी प्रथम निषेकस्थिति उदयमें आती है तब प्रकृत उत्कृष्ट स्वामित्व होता है सो इसका आशय यह है कि सर्वप्रथम यह जीव असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंच या मनुष्योंमें उत्पन्न होवे । फिर वहाँ यथानिषेकका जितना संचयकाल है उसमेंसे संख्यात अन्तर्मुहूर्त और सोलह वर्ष अधिक एक हजार वर्षसे न्यून कालके शेष रहनेपर स्त्रीवेद और पुरुषवेदका संचय प्रारम्भ करे । और इस प्रकार वहाँकी आयु समाप्त करके दस हजार वर्षकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न होवे । फिर वहाँसे च्युत होकर मनुष्य होवे । फिर गर्भसे लेकर आठ वर्ष व्यतीत होनेपर अन्तर्मुहूर्तमें सम्यक्त्वके साथ संयमको प्राप्त करे । फिर द्वितीयोपशम-सम्यक्त्वको प्राप्त करके अतिशीघ्र उपशमश्रेणिपर आरोहण करे और वहाँसे च्युत होकर दूसरी बार पुनः उपशमश्रेणिपर आरोहण करे । फिर क्रमसे च्युत होकर और मिथ्यात्वमें जाकर पुनः मनुष्यायुका बन्ध करके दूसरी बार भी मनुष्य होवे और वहाँ भी पूर्वोक्त प्रकारसे क्रिया करे । इस प्रकार दूसरी बार उपशामना करनेवाले इस जीवके जब जघन्य स्थितिबन्धकी प्रथम निषेक-स्थिति उदयमें आती है तब प्रकृत उत्कृष्ट स्वामित्व होता है । यहाँ स्त्रीवेदके संचयके साथ जो पुरुषवेदके सञ्चयका विधान किया है सो इसका फल यह है कि स्तिवुक संक्रमणके द्वारा पुरुष-वेदका द्रव्य स्त्रीवेदमें मिल जानेसे स्त्रीवेदकी यथानिषेकस्थिति या निषेकस्थितिका उदयगत उत्कृष्ट संचय बन जाता है । यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार तो नपुंसकवेदका द्रव्य भी मिलता है पर प्रकृतमें उसका विधान क्यों नहीं किया सो इसका यह समाधान है कि स्त्रीवेदकी यथानिषेकस्थिति या निषेकस्थितिका उत्कृष्ट सञ्चयकाल असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमें व्यतीत होता है और वहाँ नपुंसकवेदका बन्ध नहीं होता, अतः ऐसे जीवके नपुंसकवेदका अधिक सञ्चय नहीं पाया जाता । यही कारण है कि प्रकृतमें इसका उल्लेख नहीं किया है । वैसे स्त्रीवेदका उदय रहते हुए इसका द्रव्य भी स्तिवुक संक्रमणके द्वारा स्त्रीवेदमें प्राप्त होता रहता है । पर उसकी परिगणना यथानिषेकस्थितिमें या निषेकस्थितिमें नहीं की जा सकती । शेष व्याख्यान संज्वलन क्रोधके समान यहाँ भी जानना चाहिये ।

*** उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका उत्कृष्ट स्वामी कौन है ।**

§ ६६२. इस सूत्रमें अधिकारके अनुसार 'इत्थिवेदस्स' पदका सम्बन्ध कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

*** जो गुणितकर्मांश स्त्रीवेदी क्षपक जीव अपने उदयके अन्तिम समयमें विद्य-मान है वह स्त्रीवेदके उत्कृष्ट उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वामी है ।**

§ ६९३. एत्थ गुणिदकम्मंसियणिद्देसो तप्पडिवक्खकम्मंसियपडिसेहमुहेण पयडिगोवुच्छाए थूलभावसंपायणफलो। खवयणिद्देसो अक्खवयवुदासपओजणो; अण्णत्थ गुणसेढीए बहुत्ताभावादो। चरिमसमयइत्थिवेदयणिद्देसो तदण्णपरिहारदुवारेण गुणसेढिसीसयग्गहणट्ठो। एवंविहस्स पयदुक्कस्ससामित्तं होइ।

❀ एवं णवुंसयवेदस्स।

§ ६९४. जहा इत्थिवेदस्स चउण्हमुक्कस्सट्ठिदिपत्तयाणं सामित्तपरूवणा कया एवं णवुंसयवेदस्स वि कायव्वा, विसेसाभावादो।

❀ णवरि णवुंसयवेदोदयस्से त्ति भाणिदव्वाणि।

§ ६९५. एत्थ 'णवरि' सद्दो विसेसट्ठसूचओ। को विसेसो? णवुंसयवेदस्से त्ति आलावो, अण्णहा पयदुक्कस्ससामित्तविहाणाणुववत्तीदो।

एवमुक्कस्सट्ठिदिपत्तयसामित्तं समत्तं।

❀ जहण्णाणि ट्ठिदिपत्तयाणि कायव्वाणि।

§ ६९६. सुगममेदं पइज्जासुत्तं।

---

§ ६९३. यहाँ सूत्रमें जो 'गुणिदकम्मंसिय' पदका निर्देश किया है सो यह इसके विपक्षी क्षपितकर्मांशके निषेधद्वारा प्रकृत गोपुच्छाकी स्थूलताको प्राप्त करनेके लिए किया है। 'खवय' इस पदका निर्देश अक्षपकका निराकरण करनेके लिए किया है, क्योंकि गुणश्रेणीके सिवा अन्यत्र बहुत द्रव्य नहीं पाया जाता है। तथा सूत्रमें जो 'चरिमसमयइत्थिवेदय' इस पदका निर्देश किया है सो वह स्त्रीवेदसे भिन्न वेदके निषेधद्वारा गुणश्रेणिशीर्षके ग्रहण करनेके लिये किया है। इस तरह पूर्वोक्त विशेषणोंसे युक्त जो जीव है उसके प्रकृत उत्कृष्ट स्वामित्व होता है।

* इसी प्रकार नपुंसकवेदका उत्कृष्ट स्वामित्व जानना चाहिये।

§ ६९४. जिस प्रकार स्त्रीवेदके चारों ही स्थितिप्राप्तोंके उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन किया है उसी प्रकार नपुंसकवेदका भी कथन करना चाहिये, क्योंकि उससे इसके कथनमें कोई विशेषता नहीं है।

* किन्तु यह उत्कृष्ट स्वामित्व नपुंसकवेदके उदयवाले जीवके कहना चाहिये।

§ ६९५. इस सूत्रमें जो 'णवरि' पद है वह भी विशेष अर्थका सूचक है।

शंका—वह विशेषता क्या है?

समाधान—यह उत्कृष्ट स्वामित्व नपुंसकवेदवालेके ही होता है यह विशेषता है जिसका कथन यहाँ करना चाहिये, अन्यथा प्रकृत उत्कृष्ट स्वामित्वका विधान नहीं बन सकता है।

इसप्रकार उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त द्रव्यके स्वामित्वका कथन समाप्त हुआ।

* अब जघन्य स्थितिप्राप्त द्रव्योंका कथन करते हैं।

§ ६९६. यह प्रतिज्ञासूत्र सुगम है।

❀ **सव्वकम्माणं पि अग्गट्ठिदियपत्तयं जहण्णयमेओ पदेसो। तं पुण अण्णदरस्स होज्ज।**

§ ६६७. कथमणंतपरमाणुसमण्णिदस्स अग्गट्ठिदिणिसेयस्स जहण्णेणेओ पदेसोवलंभइ ? ण, ओकड्डुक्कड्डुणावसेण सुद्धं णिल्लेविज्जमाणस्स एयपरमाणुमेत्तावट्ठाणे विरोहाभावादो। तं पुण अण्णदरस्स होज्ज, विरोहाभावादो।

§ ६६८. एवं सव्वेसिं कम्माणमग्गट्ठिदिपत्तयजहण्णसामित्तमेक्कवारेण परूविय संपहि सेसट्ठिदिपत्तयाणं जहण्णसामित्तविहाणट्ठमुवरिमं पबंधमाढवेइ।

❀ **मिच्छत्तस्स णिसेयट्ठिदिपत्तयमुदयट्ठिदिपत्तयं च जहण्णयं कस्स ?**

*** सभी कर्मोंके अग्रस्थितिप्राप्त द्रव्यका जघन्य प्रमाण एक परमाणु है और उसका स्वामी कोई भी जीव है।**

§ ६६७. **शंका**—जब कि अग्रस्थितिप्राप्त निषेक अनन्त परमाणुओंसे बनता है तब फिर उसमें जघन्यरूपसे एक परमाणु कैसे पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अपकर्षण-उत्कर्षणके कारण उन सबका अभाव होकर एक परमाणु मात्रका सद्भाव माननेमें कोई विरोध नहीं आता है। और इसका स्वामी कोई भी जीव हो सकता है, क्योंकि इसमें कोई विरोध नहीं है।

विशेषार्थ—यहाँ सभी कर्मोंके अग्रस्थितिप्राप्त द्रव्यके जघन्य स्वामीका कथन युगपत् किया है सो इसका कारण यह है कि अपकर्षण कौर उत्कर्षणके कारण अग्रस्थितिमें एक परमाणु रहकर जब वह उदयमें आता है तब यह जघन्य स्वामित्व होता है और यह स्थिति सभी कर्मोंमें घटित हो सकती है, अतः सब कर्मोंके स्वामित्वको युगपत् कहनेमें कोई बाधा नहीं आती। यहाँ यह शंका की जा सकती है कि अग्रस्थितिके कर्मपरमाणुओंका अपकर्षण होता है यह तो ठीक है पर उनका उत्कर्षण कैसे हो सकता है, क्योंकि ऐसा नियम है कि बन्धके समय जिनकी जितनी शक्तिस्थिति पाई जाती है उनका उतना ही उत्कर्षण हो सकता है। किन्तु अग्रस्थितिके कर्म परमाणुओंमें जब एक समय मात्र भी शक्तिस्थिति नहीं पाई जाती है तब फिर उनका उत्कर्षण होना सम्भव नहीं है। सो इस शंकाका यह समाधान है कि अग्रस्थितिके कर्म परमाणुओंका अपकर्षण होकर पहले उनका नीचेकी स्थितिमें निक्षेप हो जाता है और फिर उत्कर्षण हो जाता है, इस विवक्षासे अग्रस्थितिके कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण बन जाता है। इसी कारणसे यहाँ अग्रस्थितिके परमाणुओंके अपकर्षण और उत्कर्षणका विधान किया है। अथवा बन्धके समय जिन कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध नहीं हुआ उनकी अग्रस्थितिका शक्तिस्थितिप्रमाण उत्कर्षण हो सकता है, इस अपेक्षासे भी यहाँपर उत्कर्षण घटित किया जा सकता है और इसीलिए यहाँपर उत्कर्षणका विधान किया है।

§ ६६८. इस प्रकार सभी कर्मोंके अग्रस्थितिप्राप्त द्रव्यके जघन्य स्वामित्वको एक साथ कहकर अब शेष स्थितिप्राप्त द्रव्यके जघन्य स्वामित्वका कथन करनेके लिए आगेकी रचनाका आरम्भ करते हैं—

*** मिथ्यात्वके निषेकस्थितिप्राप्त और उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका जघन्य स्वामी कौन है ?**

§ ६९९. सुगममेदं पुच्छासुत्तं।

❀ उवसमसम्मत्तपच्छायदस्स पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स तप्पाओग्गुक्कस्स-संकिलिट्ठस्स तस्स जहण्णयं णिसेयट्ठिदिपत्तयमुदयट्ठिदिपत्तयं च।

§ ७००. उवसमसम्मत्तपच्छायदस्स पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स जहण्णयं णिसेयट्ठिदिपत्तयं होइ त्ति एत्थ सुत्तत्थाहिसंबंधो। सो च उवसमसम्माइट्ठी छसु आवलियासु उवसमसम्मत्तद्धाए सेसासु आसाणं गंतूण मिच्छत्तं पडिवण्णो त्ति घेत्तवं, अण्णहा उक्कस्ससंकिलेसाभावेणोदीरणाए जहण्णत्ताणुववत्तीदो। सुत्ते असंतमेदं कथमुवलब्भदे ? ण, तप्पाओग्गुक्कस्ससंकिलिट्ठस्से त्ति विसेसणेण तदुवलद्धीदो। कथमेदस्स उवसमसम्माइट्ठिपच्छायदपढमसमयमिच्छाइट्ठिणा उवरिमट्ठिदीहिंतो ओकड्डियउदीरिददव्वस्स णिसेयट्ठिदिपत्तयत्तं, कथं च ण भवे बंधसमयणिसेयमस्सियूण, तस्स पुव्वं समुक्कित्तियत्तादो। ओकड्डणाणिसेयं पि पेक्खियूण ण तस्स वि णिसेयट्ठिदिपत्तयत्तं वोत्तुं जुत्तं, तहाब्भुवगमे गुणसेढिसीसओदएण णिसेयट्ठिदिपत्तयस्स उक्कस्ससामित्तविहाणाइप्पसंगादो। तदो णेदं सामित्तविहाणं घडइ त्ति ? एत्थ परिहारो वुच्चदे—को

---

§ ६९९. यह पृच्छासूत्र सुगम है।

*** जो उपशमसम्यक्त्वसे पीछे आकर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशसे युक्त प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीव है वह निषेकस्थितिप्राप्त और उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका जघन्य स्वामी है।**

§ ७००. उपशमसम्यक्त्वसे पीछे आकर जो प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीव है वह निषेकस्थितिप्राप्तका जघन्य स्वामी होता है इस प्रकार यहाँ पर सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध करना चाहिये। किन्तु वह उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलिप्रमाण कालके शेष रहनेपर सासादनमें जाकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये, अन्यथा परिणामोंमें उत्कृष्ट संक्लेशके नहीं प्राप्त होनेसे जघन्य उदीरणा नहीं बन सकती है।

शंका—इसका निर्देश सूत्रमें तो किया नहीं है अतः यह अर्थ यहाँ कैसे लिया जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सूत्रमें जो 'तप्पाओग्गुक्कस्ससंकिलिट्ठस्स' यह विशेषण दिया है सो इससे उक्त अर्थका ग्रहण हो जाता है।

शंका—जो जीव उपशमसम्यक्त्वसे पीछे आकर प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि है वह जिस द्रव्यका ऊपरकी स्थितिमेंसे अपकर्षण करके उदीरणा करता है वह द्रव्य निषेकस्थितिप्राप्त कैसे हो सकता है और बन्धके समय निषेकमें जो द्रव्य प्राप्त होता है वह निषेकस्थितिप्राप्त कैसे नहीं होता, क्योंकि पहले निषेकस्थितिप्राप्तका इसी रूपसे कथन किया है। यदि कहा जाय कि अपकर्षणसम्बन्धी निषेककी अपेक्षासे उसे निषेकस्थितिप्राप्त कहा जायगा सो ऐसा कथन करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेपर गुणश्रेणिशीर्षके उदयसे निषेकस्थितिप्राप्तके उत्कृष्ट स्वामित्वका विधान करनेपर अतिप्रसंग दोष आता है, इसलिये यह जो उक्त प्रकारसे स्वामित्वका कथन किया है वह नहीं बनता है ?

एवं भणइ ? उदीरणादव्वं सव्वमेव पयदजहण्णसामित्तविसईकयमिदि। किंतु तिस्से चेव ट्ठिदीए पुव्वमंतरट्ठमुक्कीरमाणीए पदेसग्गमोकड्डियूणुवरिमट्ठिदीसु समयाविरोहेण पक्खित्तमत्थित्तमेण्णिमोकड्डिय असंखेज्जलोगपडिभागेणोदयम्मि पुणो वि तत्थेव णिसिंचमाणं पयदजहण्णसामित्तविसईकयमिदि भणामो। तदो णाणंतरुत्तदोसो त्ति।

§ ७०१. संपहि एत्थ पयदसामित्तपडिग्गहिय दव्वपमाणाणुगमं वत्तइस्सामो। तं जहा—मिच्छत्तस्स अंतरब्भंतरट्ठिदअहियारट्ठिदीए अंतरकरणपारंभसमए णाणासमयपबद्धपडिबद्धणिसेए अस्सियूण तप्पाओग्गमेयसमयपबद्धमेत्तं पदेसग्गमत्थि तं पुण सव्वं णिसेयट्ठिदिपत्तयं ण होइ, किंतु हेट्ठिमोवरिमट्ठिदीणमुक्कड्डणोकड्डणेहि तत्थ संगलिददव्वेण सह समयपबद्धपमाणं होइ। पुणो केत्तियमेत्तमंतरकरणपारंभे अहियारट्ठिदीए णिसेयट्ठिदिपत्तयमिदि पुच्छिदे तदसंखेज्जदिभागपमाणमिदि भणामो।

समाधान—अब इस शंकाका परिहार करते हैं—प्रकृतमें ऐसा कौन कहता है कि जितना भी उदीरणाका द्रव्य है वह सभी प्रकृत जघन्य स्वामित्वका विषय है। किन्तु यहाँ हम ऐसा कहते हैं कि पहले अन्तर करनेके लिये उत्कीरणा करते समय उसी स्थितिके द्रव्यका उत्कर्षण करके ऊपरकी स्थितियोंमें यथाविधि निक्षेप किया गया था अब इस समय असंख्यात लोकका भाग देकर जितना लब्ध हो उतने द्रव्यका अपकर्षण करके उदयगत उसी स्थितिमें फिरसे निक्षेप करनेपर वह प्रकृत जघन्य स्वामित्वका विषय होता है, इसलिये जो दोष पहले दे आये हैं वह यहाँ नहीं प्राप्त होता है।

विशेषार्थ—यहाँ पर मिथ्यात्वके निषेकस्थितिप्राप्त और उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका जघन्य स्वामी बतलाया है। जो उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलि कालके शेष रहनेपर सासादनमें जाता है और तदनन्तर मिथ्यात्वमें जाता है उसके प्रथम समयमें अपकर्षित होकर जो मिथ्यात्वका द्रव्य उदयमें आता है वह सबसे कम होता है, इसलिये उदयस्थितिप्राप्तका जघन्य स्वामी यहाँ पर बलताया है। इसी प्रकार निषेकस्थितिप्राप्तका जघन्य स्वामी भी जान लेना चाहिये। किन्तु यहाँ इतनी विशेषता है कि उस समय जितना भी द्रव्य उदयमें प्राप्त हुआ है वह सबका सब निषेकस्थितिप्राप्त नहीं कहलाता। किन्तु उसी स्थितिसम्बन्धी जितना भी द्रव्य अपकर्षित हो करके वहाँ पाया जाता है वह निषेकस्थिलिप्राप्त द्रव्य कहलाता है। यतः यह भी जघन्य द्रव्य होता है, इसलिये निषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका जघन्य स्वामित्व यहाँ पर दिया है। शेष कथन सुगम है।

§ ७०१. अब यहाँ पर प्रकृत स्वामित्वकी अपेक्षा द्रव्यप्रमाणका विचार करते हैं। जो इस प्रकार है—अन्तरकरणके प्रारम्भ समयमें अन्तरके भीतर जो विवक्षित स्थिति स्थित है उसमें मिथ्यात्वका नाना समयप्रबद्धोंसे सम्बन्ध रखनेवाले निषेकोंकी अपेक्षा तत्प्रायोग्य एक समयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य पाया जाता है परन्तु वह सबका सब निषेकस्थितिप्राप्त नहीं होता है। किन्तु नीचेकी स्थितियोंका उत्कर्षण होकर और ऊपरकी स्थितियोंका अपकर्षण होकर वहाँ जो द्रव्यका संकलन होता है उसके साथ वह एक समयप्रबद्धप्रमाण होता है।

शंका—तो फिर अन्तरकरणके प्रारम्भमें विवक्षित स्थितिमें निषेकस्थितिप्राप्त द्रव्य कितना होता है ?

तस्सोवट्टणे ठविज्जमाणे तप्पाओग्गमेयसमपबद्धं ठविय पुणो जहाणिसेयकालब्भंतर-संचयमिच्छामो त्ति तस्सोकड्डुक्कड्डणभागहारोवट्टिददिवड्ढगुणहाणिभागहारे ठविदे जहाणिसेयसंचओ आगच्छइ। ओकड्डणादीहि गंतूण पुणो वि एत्थेव पदिददव्वमेदस्स असंखेज्जदिभागमेत्तमिच्छिय तम्मि भागहारे किंचूणीकदे पयदणिसेयदव्वमागच्छइ। असंखेज्जभागूणं चेवमंतरं करेमाणेणुक्कड्डिय अणुकीरमाणीसु ट्ठिदीसु ठविददव्वं होइ। पुणो एदस्सोकड्डुक्कड्डणभागहारे ठविदे पढमसमयमिच्छादिट्ठिणोकड्डिददव्वं पयद-णिसेयपडिबद्धमागच्छइ।

§ ७०२. संपहि तप्पाओग्गुक्कस्ससंकिलेसेणोदीरिददव्वमिच्छामो त्ति असंखेज्ज-लोगभागहारमावलियाए गुणिदं ठवेऊणोकड्डिदे पयदजहण्णसामित्तपडिग्गहियं दव्व-मागच्छइ। एत्थ मिच्छाइट्ठिविदियादिसमएसु जहण्णसामित्तं दाहामो त्ति णासंकणिज्जं, विदियादिसमएसु उदीरिज्जमाणबहुअदव्वपवेसेण जहण्णत्ताणुववत्तीदो। पढम-समयम्मि ओकड्डियूण णिसित्तदव्वं विदियादिसमएसु उदयमागच्छमाणमत्थि चेव। तस्सुवरि पुणो वि पुव्वं तिस्से ट्ठिदीए उक्कड्डिदपदेसग्गमुदयावलियब्भंतरे ओकड्डियूण

समाधान—विवक्षित स्थितिमें जितना द्रव्य है उसका असंख्यातवाँ भागप्रमाण द्रव्य निषेकस्थितिप्राप्त होता है ऐसा हम कहते हैं।

अब इसको प्राप्त करनेके लिये भागहार क्या है यह बतलाते हैं—एक समय-प्रबद्धको स्थापित करे फिर यथानिषेक कालके भीतर सञ्चय लाना इष्ट है इसलिये उसका अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारसे भाजित डेढ़ गुणहानिप्रमाण भागहार स्थापित करे, इससे यथा-निषेकका सञ्चय आ जाता है। अपकर्षणादिकके द्वारा व्ययको प्राप्त हुआ द्रव्य फिरसे इसीमें अर्थात् यथानिषेकके द्रव्यमें सम्मिलित हो जाता है जो कि इसके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः उसे अलग करनेकी इच्छासे प्रकृत भागहारको कुछ कम कर देनेपर प्रकृत निषेकका द्रव्य आ जाता है। तात्पर्य यह है कि अन्तरको करते समय उत्कर्षण द्वारा अनुत्कीर्यमाण स्थितियोंमें जो द्रव्य प्राप्त होता है वह पूर्वोक्त द्रव्यसे असंख्यातवें भागप्रमाण कम होता है। फिर इसका अपकर्षण-उत्कर्षणप्रमाण भागहार स्थापित करनेपर प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टिके द्वारा प्रकृत निषेकसम्बन्धी अपकर्षित द्रव्यका प्रमाण होता है।

§ ७०२. अब तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशके द्वारा उदीरणाको प्राप्त हुआ द्रव्य लाना है, इसलिये आवलिके असंख्यातवें भागसे गुणित असंख्यात लोकप्रमाण भागहारको स्थापित करके जो द्रव्य प्राप्त हो उतने द्रव्यका अपकर्षण करनेपर प्रकृत जघन्य स्वामित्वसे सम्बन्ध रखनेवाला द्रव्य आता है।

शंका—यहाँ पर मिथ्यादृष्टिके द्वितीयादि समयोंमें जघन्य स्वामित्व दिया जाना चाहिये?

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि द्वितीयादि समयोंमें उदीरणाके द्वारा बहुत द्रव्यका प्रवेश हो जाता है, इसलिये वहाँ जघन्य द्रव्य नहीं प्राप्त हो सकता। आशय यह है कि जिस द्रव्यका प्रथम समयमें अपकर्षण होकर ऊपरकी स्थितियोंमें निक्षेप हुआ है वह तो द्वितीयादि समयोंमें उदयमें आता हुआ देखा ही जाता है। किन्तु इसके अतिरिक्त उस स्थितिके जिस द्रव्यका पहले उत्कर्षण हुआ था उसका अपकर्षण होकर फिरसे उदयावलिके भीतर उस

संछुब्भइ। एवं च संछुद्धे एयसमयसंचयादो दुप्पहुडि समयसंचओ बहुओ होइ त्ति ण तत्थ लाहो अत्थि, तदो ण तत्थ सामित्तं दाउं सक्किज्जइ त्ति भावत्थो। ण गोवुच्छविसेसहाणिमस्सियूण पच्चवट्ठेयं, तत्तो विदियादिसमयसंचयस्स बहुत्तब्भुवगमादो। एवं चेव उदयट्ठिदिपत्तयस्स वि जहण्णसामित्तं वत्तव्वं। णवरि एदस्स पमाणाणुगमे भण्णमाणे एयं समयपबद्धं ठविय पुणो एदस्स दिवड्ढगुणहाणिगुणयारे ठविदे विदियट्ठिदिसव्वदव्वमागच्छइ। पुणो ओकड्डिददव्वमिच्छामो त्ति ओकड्डुक्कड्डुणभागहारो ठवेयव्वो। पुणो वि उदीरणादव्वमिच्छिय असंखेज्जा लोगा आवलियपदुप्पण्णा भागहारसरूवेण ठवेयव्वा। एवं ठविदे पयदजहण्णसामित्तविसईकयदव्वमागच्छइ।

§ ७०३. एत्थ सिस्सो भणइ—उदयावलियचरिमसमए मिच्छाइट्ठिम्मि उदयादो जहण्णझीणट्ठिदियस्सेव पयदस्स वि जहण्णसामित्तं गेण्हामो, चडिदद्धाणमेत्तगोवुच्छविसेसपरिहाणिवसेण तत्थेव जहण्णत्तदंसणादो। एवं णिसेयट्ठिदिपत्तयस्स वि वत्तव्वं, अण्णहा पुव्वावरविरोहदोसप्पसंगादो त्ति? ण एस दोसो, गोवुच्छविसेसेहिंतो विदियादिसमयसंचिददव्वबहुचाहिप्पायावलंबणेणेदस्स पयट्टत्तादो। ण

स्थितिमें निक्षेप होता है। और इस प्रकार निक्षेप होनेपर एक समयके सञ्चयसे दो आदि समयोंका सञ्चय बहुत होता है, इसलिये उसमें कोई लाभ नहीं है, अतः द्वितीयादि समयोंमें स्वामित्व नहीं दिया जा सकता। यदि कहा जाय कि द्वितीयादि समयोंमें गोपुच्छविशेषकी हानि देखी जाती है, इसलिए वहाँ जघन्य स्वामित्व बन जायगा सो ऐसा निश्चय करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि गोपुच्छविशेषका जितना प्रमाण है इससे द्वितीयादि समयोंका सञ्चय बहुत स्वीकार किया है। प्रकृतमें जैसे निषेकस्थितिप्राप्तका जघन्य स्वामित्व कहा है उसी प्रकार उदयस्थितिप्राप्तके जघन्य स्वामित्वका भी कथन करना चाहिये। किन्तु इसका प्रमाण लानेकी इच्छासे एक समयप्रबद्धको स्थापित करके फिर इसका डेढ़ गुणहानिप्रमाण गुणकार स्थापित करनेपर द्वितीय स्थितिका सब द्रव्य आ जाता है। फिर अपकर्षित द्रव्य लाना है, इसलिये अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारको स्थापित करना चाहिये। फिर भी उदीरणाको प्राप्त हुए द्रव्यके लानेकी इच्छासे एक आवलिसे गुणित असंख्यात लोकप्रमाण भागहार स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार स्थापित करनेपर प्रकृत जघन्य स्वामित्वका विषयभूत द्रव्य आ जाता है।

§ ७०३. **शंका**—यहाँपर शिष्य कहता है कि जिसप्रकार उदयावलिके अन्तिम समयमें मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्वके उदयसे झीनस्थितिवाले द्रव्यका जघन्य स्वामित्व होता है उसीप्रकार प्रकृत उदयप्राप्त द्रव्यका जघन्य स्वामित्व भी उदयावलिके अन्तिम समयमें ही ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि उदयावलिका अन्तिम समय जितना ऊपर जाकर प्राप्त है वहाँ उतने गोपुच्छविशेषोंकी हानि हो जानेसे उदयप्राप्त द्रव्यका जघन्यपना वहींपर देखा जाता है। इसी प्रकार निषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका भी जघन्य स्वामित्व कहना चाहिये, अन्यथा पूर्वापर विरोध दोष प्राप्त होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि गोपुच्छविशेषोंकी अपेक्षा द्वितियादि समयोंमें

पुव्वावरविरोहदोससंभवो वि, उवएसंतरपदंसणट्ठं तत्थ तहा परूवियत्तादो।

§ ७०४. संपहि जहाणिसेयट्ठिदिपत्तयस्स जहण्णसामित्तं परूवेमाणो पुच्छाए अवसरं करेइ—

संचित होनेवाला द्रव्य बहुत होता है इस अभिप्रायसे यह सूत्र प्रवृत्त हुआ है और इससे पूर्वापर विरोध दोष प्राप्त होना भी सम्भव नहीं है, क्योंकि उपदेशान्तरके दिखलानेके लिये वहाँपर उस प्रकारसे कथन किया है।

विशेषार्थ—जिस समय जो द्रव्य उदयमें आता है वही उस समय उदयसे झीनस्थितिवाला द्रव्य माना गया है, क्योंकि वह द्रव्य उदयप्राप्त होनेसे निर्जीर्ण हो जानेवाला है अतः उसमें पुनः उदयकी योग्यता नहीं पाई जाती। इस प्रकार विचार करनेपर उदयस्थितिप्राप्त द्रव्य और उससे झीनस्थितिवाला द्रव्य ये दोनों एक ही ठहरते हैं। यों जब ये एक हैं तो इनका जघन्य और उत्कृष्ट स्वामित्व भी एक ही होना चाहिये। अर्थात् जो उदयसे झीनस्थितिवाले द्रव्यका उत्कृष्ट स्वामी होगा वही उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका उत्कृष्ट स्वामी होगा और जो उदयसे झीनस्थितिवाले द्रव्यका जघन्य स्वामी होगा वही उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका जघन्य स्वामी होगा। यद्यपि स्थिति ऐसी है तथापि मिथ्यात्वकी अपेक्षा इन दोनोंका जघन्य स्वामी एक नहीं बतलाया है। उदयसे झीनस्थितिवाले द्रव्यका जघन्य स्वामित्व बतलाते समय यह जघन्य स्वामित्व उपशमसम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यात्वको प्राप्त करनेके समयसे लेकर उदयावलिके अन्तिम समयमें दिया है किन्तु उदयस्थिति प्राप्त द्रव्यका जघन्य स्वामित्व बतलाते समय यह जघन्य स्वामित्व उपशमसम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यात्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें दिया है। इसप्रकार देखते हैं कि इन दोनों कथनोंमें पूर्वापर विरोध है जो नहीं होना चाहिये था। टीकामें इस विरोधका जो समाधान किया गया है उसका आशय यह है कि पूर्वोक्त कथन इस आशयसे किया गया है कि मिथ्यादृष्टि होनेके प्रथम समयसे लेकर उदयावलिके अन्तिम समय तक एक समय कम उदयावलिके भीतर गोपुच्छ विशेषका जो द्रव्य संचित होता है उससे उस कालके भीतर अपकर्षण द्वारा संचित होनेवाला द्रव्य न्यून होता है। किन्तु यह कथन इस अभिप्रायसे किया गया है कि द्वितीयादि समयोंमें संचित होनेवाला द्रव्य गोपुच्छविशेषोंसे अधिक होता है, इसलिए उक्त दोनों कथनोंमें कोई विरोध नहीं है। इसप्रकार कौन कथन किस अभिप्रायसे किया गया है इसका पता भले ही लग जाता है तथापि इससे विरोधका परिहार नहीं होता है, क्योंकि आखिर यह प्रश्न तो बना ही रहता है कि मिथ्यादृष्टि होनेके प्रथम समयके द्रव्य और वहाँसे जाकर उदयावलिके अन्तिम समयके द्रव्य इनमेंसे कौन कम है और कौन अधिक है? इस शंकाका टीकामें जो समाधान किया है उसका आशय यह है कि इस विषयमें दो सम्प्रदाय पाये जाते हैं। एक सम्प्रदायके मतसे मिथ्यादृष्टि होनेके प्रथम समयसे लेकर उदयावलिके अन्तिम समयमें जो द्रव्य होता है वह न्यून होता है। और दूसरा सम्प्रदाय यह है कि मिथ्यादृष्टि होनेके प्रथम समयमें जो द्रव्य होता है वह न्यून होता है। चूर्णिसूत्रकारके सामने ये दोनों ही सम्प्रदाय रहे हैं, इसलिये उन्होंने एकका उल्लेख मिथ्यात्वके उदयसे झीनस्थितिवाले द्रव्यके जघन्य स्वामित्वको बतलाते हुए कर दिया और दूसरेका उल्लेख यहाँ किया है। सत्कर्मप्राभृत और श्वेताम्बर मान्य कर्मप्रकृति व पंचसंग्रह इनमें प्रथम मतका ही उल्लेख है। अर्थात् वहाँ मिथ्यादृष्टि होनेके प्रथम समयसे लेकर उदयावलिके अन्तिम समयमें ही जघन्य स्वामित्व बतलाया है।

§ ७०४. अब यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यके जघन्य स्वामित्वका कथन करते हुए पृच्छासूत्र कहते हैं—

❀ मिच्छत्तस्स जहण्णयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं कस्स ?

§ ७०५. सुगमं ।

❀ जो एइंदियट्ठिदिसंतकम्मेण जहण्णएण तसेसु आगदो । अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो । वेछावट्ठिसागरोवमाणि सम्मत्तमणुपालियूण मिच्छत्तं गदो । तप्पाओग्गउक्कस्सिया मिच्छत्तस्स जावदिया आबाहा तावदिमसमय मिच्छाइट्ठिस्स तस्स जहण्णयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं ।

§ ७०६. एदस्स सुत्तस्सत्थो वुच्चदे । तं जहा—जो एइंदियट्ठिदिसंतकम्मेण जहण्णएणे त्ति उत्ते एइंदिएसु ट्ठिदिसंतकम्मं हदसमुप्पत्तियं काऊण पलिदोवमासंखेज्ज-भागूणसागरोवममेत्तसव्वजहण्णेइंदियट्ठिदिसंतकम्मेण सह गदो त्ति घेत्तव्वं । गुणिदकम्मंसियलक्खणेण तव्विवरीयकम्मंसियलक्खणेण वा आगमणेण ण एत्थ पयोजणमत्थि । किंतु एइंदियसव्वजहण्णट्ठिदिसंतकम्ममेवेत्थोवजोगी, तत्थतणपदेस-थोवबहुत्तेण पओजणाभावादो त्ति भावत्थो । कुदो पओजणाभावो ? उवरि दूरद्धाणं गंतूण वेछावट्ठिसागरोवमावसाणे पयदसामित्तविहाणुद्देसे हेट्ठिमसंचयस्स जहाणिसेय-सरूवेणासंभवादो । एइंदियट्ठिदिसंतकम्मं पुण तत्थुद्देसे तदभावीकरणेण पयदोव-

*** मिथ्यात्वके यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका जघन्य स्वामी कौन है ?**

§ ७०५. यह सूत्र सुगम है ।

*** एकेन्द्रियोंके योग्य जघन्य सत्कर्मके साथ त्रसोंमें उत्पन्न होकर जिसने अन्तर्मुहूर्तमें सम्यक्त्वको प्राप्त किया है । फिर दो छयासठ सागर काल तक सम्यक्त्वका पालन करके जो मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है । फिर वहाँ तत्प्रायोग्य मिथ्यात्वकी जितनी उत्कृष्ट आबाधा हो उतने काल तक जो मिथ्यात्वके साथ रहा है वह मिथ्यात्वके यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका जघन्य स्वामी है ।**

§ ७०६. अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । जो इसप्रकार है—सूत्रमें जो 'जो एइंदियट्ठिदिसंतकम्मेण जहण्णएण' यह पद कहा है सो इससे यह अर्थ लेना चाहिये कि एकेन्द्रियोंमें स्थितिसत्कर्मको हतसमुत्पत्तिक करके जो जीव एकेन्द्रियका सबसे जघन्य स्थितिसत्कर्म जो पल्यका असंख्यातवाँ भाग कम एक सागर बतलाया है उसके साथ त्रसोंमें उत्पन्न हुआ है । यहाँपर गुणितकर्मांशकी विधिसे या क्षपितकर्मांशकी विधिसे आनेसे कोई प्रयोजन नहीं है किन्तु एकेन्द्रियका सबसे जघन्य स्थितिसत्कर्म ही यहाँ उपयोगी है, क्योंकि ऐसे जीवके कर्म परमाणु थोड़े हैं या बहुत इससे प्रकृतमें प्रयोजन नहीं है यह उक्त कथनका भावार्थ है ।

शंका—प्रकृतमें कर्मपरमाणुओंके अल्पबहुत्वसे क्यों प्रयोजन नहीं है ?

समाधान—क्योंकि ऊपर बहुत दूर जाकर दो छयासठ सागर कालके अन्तमें जहाँ प्रकृत स्वामित्वका विधान किया है वहाँ इतने नीचेके संचयका यथानिषेकरूपसे पाया जाना सम्भव नहीं है । किन्तु उस स्थानमें जाकर एकेन्द्रियके यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका अभाव कर देनेसे

१ आ० प्रतौ एइंदियट्ठिदिपत्तयं इति पाठः ।

जोगी, अण्णहा अंतोकोडाकोडीमेत्तट्ठिदिसंतकम्मस्स वेछावट्ठिसागरोवमाणमुवरि वि संभवेण जहण्णभावाणुववत्तीदो। एइंदियजहण्णट्ठिदिसंतकम्मेणेवे त्ति णावहारणमेत्थ कायव्वं, किंतु तत्तो समयुत्तरादिकमेण सादिरेयवेछावट्ठिसागरोवममेत्तट्ठिदिसंतकम्मे त्ति ताव एदेसिं पि ट्ठिदिवियप्पाणमेत्थ गहणे विरोहो णत्थि, वेछावट्ठिसागरोवमाणि गालिय उवरि सामित्तविहाणादो। तदो उवलक्खणमेत्तमेदं ति घेत्तव्वं।

§ ७०७. एवंविहेण ट्ठिदिसंतकम्मेण तसेसु आगदो। अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो एवं भणिदे असण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसु जहण्णाउएसुववज्जिय सव्वलहुं पज्जत्तीओ समाणिय अंतोमुहुत्तेण देवाउअं बंधिय कमेण कालं कादूण देवेसुववज्जिय सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो होदूण विस्संतो विसोहिमापूरिय सम्मत्तं पडिवण्णो त्ति भणिदं होइ। ण च सम्मत्तुप्पायणमेदं णिरत्थयं, सम्मत्तगुणपाहम्मेण मिच्छत्तस्स बंधवोच्छेदं कादूणंतोमुहुत्तमेत्तसमयपबद्धाणं गालणेण फलोवलंभादो। एदस्सेव अत्थविसेसस्स पदंसणट्ठं वेछावट्ठिसागरोवमाणि सम्मत्त-मणुपालियूणे त्ति भणिदं। एवं वेछावट्ठिसागरोवमाणि समयाविरोहेण सम्मत्तमणुपालिय तदवसाणे मिच्छत्तं गदो, अण्णहा पयदसामित्तविहाणोवायाभावादो। एवं मिच्छत्तं

एकेन्द्रियके योग्य स्थितिसत्कर्म ही प्रकृतमें उपयोगी है, अन्यथा अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थिति-सत्कर्मका दो छ्यासठ सागरके ऊपर भी सम्भव होनेसे जघन्यपना नहीं बन सकता है।

एकेन्द्रियके योग्य जघन्य स्थितिसत्कर्मके साथ ही जो त्रसोंमें उत्पन्न हुआ है ऐसा यहाँ अवधारण नहीं करना चाहिये। किन्तु एकेन्द्रियके योग्य जघन्य स्थितिसत्कर्मसे लेकर उत्तरोत्तर एक एक समय बढ़ाते हुए साधिक दो छ्यासठ सागरप्रमाण स्थितिसत्कर्म तकके इन सब स्थितिविकल्पोंका भी यहाँपर ग्रहण करनेमें कोई विरोध नहीं है, क्योंकि दो छ्यासठ सागर कालके चले जानेके बाद तदनन्तर स्वामित्वका विधान किया गया है, इसलिये 'एइंदिय-जहण्णट्ठिदिसंतकम्मेण' यह पद उक्त कथनका उपलक्षणमात्र है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये।

§ ७०७. इसके आगे सूत्रमें 'इस प्रकारके स्थितिसत्कर्मके साथ त्रसोंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्तमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ' जो ऐसा कहा है सो इसका यह तात्पर्य है कि जघन्य आयुके साथ असंज्ञी पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। फिर अतिशीघ्र पर्याप्तियोंको पूरा करके अन्तर्मुहूर्तमें देवायुका बन्ध किया और क्रमसे मरकर देवोंमें उत्पन्न हुआ। फिर अतिशीघ्र सब पर्याप्तियोंको पूरा किया। फिर विश्रामके बाद विशुद्धिको प्राप्त करके सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। यदि कहा जाय कि इस प्रकार सम्यक्त्वको उत्पन्न कराना निरर्थक है सो यह बात भी नहीं है, क्योंकि सम्यक्त्व गुणकी प्रधानतासे मिथ्यात्वकी बन्धव्युच्छित्ति करके मिथ्यात्वके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण समयप्रबद्धोंको गलाने रूप फल पाया जाता है। इस प्रकार इसी अर्थविशेषको दिखलानेके लिये सूत्रमें 'वेछावट्ठिसागरोवमाणि सम्मत्तमणुपालियूण' यह कहा है। इस प्रकार दो छ्यासठ सागर काल तक यथाविधि सम्यक्त्वका पालन करके उसके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। यदि इस जीवको अन्तमें मिथ्यात्वमें न ले जाय तो प्रकृत स्वामित्वके विधान करनेका और कोई उपाय नहीं है, इसीसे इसे अन्तमें मिथ्यात्वमें ले गये हैं। इस प्रकार मिथ्यात्वको प्राप्त हुए इस जीवके

पडिवण्णस्स सामित्तुद्देसपदुप्पायणट्ठमुवरिमो सुत्तावयवो—तप्पाओग्गुक्कस्सिय-मिच्छत्तस्स जावदिया आबाहा इच्चादि।

§ ७०८. एत्थ वेछावट्ठीणमंते उक्कस्ससंकिलेसमावूरिय मिच्छत्तं गदस्स पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स सामित्तमपरूविय पुणो वि अंतोमुहुत्तं गंतूण तप्पाओग्गुक्कस्साबाहाचरिमसमयमिच्छाइट्ठिम्मि कदमं लाहमुद्दिसिय जहण्णसामित्तविहाणं कीरइ त्ति णासंकणिज्जं, तप्पाओग्गउक्कस्ससंकिलेसमावूरिय मिच्छत्तस्स तप्पाओग्गुक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणेणाबाहाब्भंतरावट्ठिदाहियारट्ठिदिपदेसाणमोकड्डुक्कड्डणाहिं जहण्णीकरणेण लाहदंसणादो पढमसमयउदयगदगोवुच्छादो तप्पाओग्गुक्कस्साबाहचरिमसमयगोवुच्छस्स चडिदद्धाणमेत्तगोवुच्छविसेसेहि परिहीणत्तदंसणादो च। ण एत्थ णवकबंधसंचयस्स संभवो, आबाहाबाहिरे तस्सावट्ठाणादो।

स्वामित्वविषयक स्थानके दिखलानेके लिए 'तप्पाओग्गुक्कस्सियमिच्छत्तस्स जावदिया आबाहा' इत्यादि आगेका शेष सूत्र आया है।

७०८. यहाँ पर यदि कोई ऐसी आशंका करे कि दो छयासठ सागरके अन्तमें उत्कृष्ट संक्लेशको पूरा करके मिथ्यात्वको प्राप्त हुए प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टिके स्वामित्वका कथन न करके फिर भी अन्तर्मुहूर्त जाकर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अबाधाके अन्तिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टिके जो जघन्य स्वामित्वका विधान किया है सो इसमें क्या लाभ है सो उसकी ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा करनेसे दो लाभ दिखाई देते हैं। प्रथम तो यह कि तत्प्रायोग्य संक्लेशको पूरा करके मिथ्यात्वकी तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट स्थितिको बाँधनेवाले जीवके आबाधाके भीतर प्राप्त हुई अधिकृत स्थितिके कर्मपरमाणु अपकर्षण-उत्कर्षणके द्वारा जघन्य कर दिये जाते हैं और दूसरे प्रथम समयमें उदयको प्राप्त हुई गोपुच्छासे तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अबाधाके अन्तिम समयमें जो गोपुच्छा है उसमें जितने स्थान ऊपर जाकर वह स्थित है उतने गोपुच्छविशेषोंकी हानि देखी जाती है। इसप्रकार इन दो लाभोंको देखकर मिथ्यादृष्टि होनेके प्रथम समयमें जघन्य स्वामित्वका विधान न करके उत्कृष्ट अबाधाके अन्तिम समयमें उसका विधान किया है। यदि कहा जाय कि यहाँ नवकबन्धका सञ्चय हो जायगा सो यह बात भी नहीं है, क्योंकि इसका अवस्थान अबाधाके बाहर पाया जाता है।

विशेषार्थ—यहाँ मिथ्यात्वके यथानिषेकस्थितिप्राप्तके जघन्य स्वामित्वका निर्देश किया है। इसकी प्रथम विशेषता यह बतलाई है कि सर्वप्रथम ऐसे जीवको एकेन्द्रियके योग्य जघन्य स्थितिसत्कर्मके साथ त्रसोंमें उत्पन्न कराना चाहिये। टीकामें इस विशेषताका खुलासा करते हुए जो कुछ लिखा है उसका भाव यह है कि त्रसोंमें उत्पन्न होनेवाला यह जीव एकेन्द्रियके योग्य जघन्य स्थितिसत्कर्मवाला ही हो ऐसा कोई एकान्त नियम नहीं है किन्तु इस कथनको उपलक्षण मानकर इससे ऐसा जीव भी लिया जा सकता है जिसका मिथ्यात्व स्थितिसत्कर्म एकेंद्रियके योग्य जघन्य स्थितिसत्कर्मसे एक समय अधिक हो, दो समय अधिक हो। इस प्रकार उत्तरोत्तर स्थिति बढ़ाते हुए जिसका स्थितिसत्कर्म साधिक दो छ्यासठ सागरप्रमाण हो वह जीव भी यहाँ लिया जा सकता है। इसका कारण यह बतलाया है कि जब प्रकृत जघन्य स्वामित्व साधिक दो छ्यासठ सागरके बाद ही प्राप्त होता है तो इतने स्थितिसत्कर्मवाले जीवको ग्रहण करनेमें कोई

§ ७०६. एत्थ संचयाणुगमे भण्णमाणे एदम्हाणिसेयट्ठिदिपत्तयजहण्णदव्वं केत्तियमेत्तकालसंचिदमिदि उत्ते अंतोमुहुत्तमेत्तकालसंचिदमिदि घेत्तव्वं । तं जहा—थावरकायादो णिग्गंतूण असण्णिपंचिंदिएसुववज्जिय अंतोमुहुत्तकालं सागरोवमसहस्समेत्तिं मिच्छत्तट्ठिदिं बंधमाणो जहाणिसेयट्ठिदिसंचयं काऊण पुणो देवेसुववज्जिय तत्थ वि अपज्जत्तकालं सव्वमंतोकोडाकोडिमेत्तट्ठिदिबंधेण संचयं करिय पुणो वि जाव सम्मत्तग्गहणपाओग्गो होइ ताव संचयं करेइ त्ति । एवमंतोमुहुत्तसंचओ लब्भइ । उवरि सम्मत्तगुणमाहप्पेण मिच्छत्तस्स बंधवोच्छेदादो णत्थि संचओ । एदं च अंतोमुहुत्तपमाणसमयपबद्धपडिबद्धदव्वं सम्मत्तेण बेछावट्ठिसागरोवमाणि परिब्भममाणस्स संखेज्जरूवब्भहियआवलियछेदणयमेत्तगुणहाणीओ उवरिं चडिदस्स संखेज्जावलियमेत्तसमयपबद्धपमाणं णस्सियूणेगसमयपबद्धपमाणेणावचिट्ठइ । पुणो एदं पि समय-

---

आपत्ति नहीं है, क्योंकि उक्त स्थानको प्राप्त होनेके पूर्व ही यह स्थितिसत्कर्म गल जायगा। इसके बाद सम्यक्त्व उत्पन्न कराकर दो छ्यासठ सागर कालतक यथाविधि इस जीवको सम्यक्त्वके साथ रखा है सो इसके दो फायदे बतलाये हैं। प्रथम तो यह कि इसके मिथ्यात्वका न्यूतन बन्ध नहीं होता और दूसरा यह कि यह जीव एकेन्द्रिय पर्यायके शेष रहे सञ्चयको तो गलाता ही है साथ ही साथ एकेन्द्रिय पर्यायके बाद त्रस पर्यायमें आनेपर जो सम्यक्त्वको प्राप्त करके पूर्वतक मिथ्यात्वका न्यूतन बन्ध हुआ है उसे भी यथाशक्य निर्जीर्ण करता है। इसके बाद इसे मिथ्यात्वमें ले जाकर मिथ्यात्वका वहाँके योग्य उत्कृष्ट बन्ध करावे और आबाधाके अन्तिम समयमें प्रकृत जघन्य स्वामित्व दे। मिथ्यात्वको प्राप्त करनेके प्रथम समयमें यह जघन्य स्वामित्व न बतलाकर जो आबाधाके अन्तिम समयमें बतलाया है सो इसके दो कारण बतलाये हैं। प्रथम तो यह कि मिथ्यात्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयसे लेकर जितने स्थान ऊपर जाकर आबाधाका अन्तिम समय प्राप्त होता है उतने चयोंकी उसमें हानि देखी जाती है और दूसरा यह कि अपकर्षण उत्कर्षणके द्वारा भी उसका द्रव्य कम हो जाता है। इस प्रकार इन दो लाभोंको देखकर आबाधाके अन्तिम समयमें ही जघन्य स्वामित्व दिया है।

§ ७०६. यहाँ पर सञ्चयानुगमका विचार करनेपर यह यथानिषेकस्थितिप्राप्त जघन्य द्रव्य कितने कालमें संचित होता है ऐसा पूछनेपर अन्तर्मुहूर्त कालमें सञ्चित होता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये। खुलासा इस प्रकार है—स्थावरकाय पर्यायसे निकलकर असंज्ञी पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त कालतक एक हजार सागरप्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितिको बाँधता हुआ यथानिषेकस्थितिका संचय करता है। फिर देवोंमें उत्पन्न होकर वहाँ भी अपर्याप्त कालतक अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिबन्ध करके संचय करता है। फिर भी पर्याप्त होनेपर जबतक यह जीव सम्यक्त्व ग्रहणके योग्य होता है तबतक सञ्चय करता है। इसप्रकार अन्तर्मुहूर्त कालतक होनेवाला सञ्चय प्राप्त हो जाता है। इसके आगे सम्यक्त्वगुणकी प्रधानतासे मिथ्यात्वकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है, इसलिये सञ्चय नहीं प्राप्त होता। अब यह जो अन्तर्मुहूर्तप्रमाण समयप्रबद्धोंका द्रव्य है सो इसमेंसे सम्यक्त्वके साथ दो छ्यासठ सागर कालतक परिभ्रमण करनेवाले और संख्यात अङ्क अधिक एक आवलिके अर्धच्छेदप्रमाण गुणहानियाँ ऊपर चढ़े हुए जीवके संख्यात आवलिप्रमाण समयप्रबद्धोंका नाश होकर एक समयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य शेष रहता है। फिर

पबद्धमेत्तसेसदव्वमसंखेज्जाओ गुणहाणीओ गालिय पच्छा मिच्छत्तं गंतूणाबाहाचरिम-समए समयपबद्धस्स असंखेज्जभागमेत्तं होदूण जहाणिसेयसरूवेण जहण्णयं होदि त्ति।

§ ७१०. एदस्स भागहारपमाणाणुगमं वत्तइस्सामो। तं जहा—एयं समय-पबद्धं ठविय पुणो एदस्स संखेज्जावलियगुणगारे ठविदे असण्णिपंचिंदिएसु देवेसु च उववज्जिय अंतोमुहुत्तमेत्तकालं करिय संचयदव्वं होइ। पुणो एदस्स वेछावट्ठिसागरोवम-ब्भंतरणाणागुणहाणिं विरलिय विगं करिय अण्णोण्णब्भत्थरासिम्मि भागहारे ठविदे गलिदावसेसदव्वमागच्छइ। पुणो एदमहियारगोवुच्छपमाणेण कीरमाणं दिवड्ढ-गुणहाणिमेत्तं होइ त्ति दिवड्ढगुणहाणिभागहारे ठविदे अहियारगोवुच्छमागच्छइ। इमं वेछावट्ठिसागरोवमकालं सव्वमोकड्डणाए णासेइ त्ति। पुणो वि ओकड्डुक्कड्डण-भागहारवेतिभागायामेणुप्पाइदणाणागुणहाणिं विरलिय विगं करिय अण्णोण्णब्भास-णिप्पण्णासंखेज्जलोगमेत्तरासिम्मि भागहारसरूवेण ठिदे ओकड्डिदसेसं जहाणिसेय-सरूवमहियारट्ठिदिदव्वमागच्छइ। एवमागच्छइ त्ति कट्टु वेछावट्ठिसागरोवमणाणा-गुणहाणिसलागाणमण्णोण्णब्भत्थरासी दिवड्ढगुणहाणी असंखेज्जलोगा च अण्णोण्ण-पदुप्पणा संखेज्जावलियोवट्टिदा समयपबद्धस्स भागहारो भागलद्धं च पयदजहण्ण-सामित्तविसईकयं दव्वं होइ।

यह जो एक समयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य शेष रहा है सो उसमेंसे भी असंख्यात गुणहानियोंको गलाकर अनन्तर मिथ्यात्वमें जाकर आबाधाके अन्तिम समयमें जो एक समयप्रबद्धका असंख्यातवाँ भाग शेष रहता है वही यथानिषेक जघन्य द्रव्य है ऐसा यहाँ समझना चाहिये।

§ ७१०. अब इसके भागहारके प्रमाणका विचार करते हैं। यथा—एक समयप्रबद्धको स्थापित करके फिर इसके संख्यात आवलिप्रमाण गुणकारके स्थापित करनेपर असंज्ञी पंचेन्द्रियों और देवोंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर जितने द्रव्यका संचय होता है उसका प्रमाण आता है। फिर इसकी दो छयासठ सागरके भीतर प्राप्त हुई नाना गुणहानिशलाकाओंको विरलन करके और दूना करके परस्पर गुणा करनेसे जो राशि उत्पन्न हो उसे उक्त राशिके भागहाररूपसे स्थापित करनेपर गलकर शेष बचे हुये द्रव्यका प्रमाण प्राप्त होता है। फिर इसके अधिकृत गोपुच्छाके बराबर हिस्से करनेपर वे डेढ़ गुणहानिप्रमाण प्राप्त होते हैं, इसलिए डेढ़ गुणहानिको भागहार स्थापित करनेपर अधिकृत गोपुच्छा प्राप्त होती है। दो छयासठ सागर कालतक अपकर्षणके द्वारा इसका भी नाश होता रहता है, इसलिये फिर भी अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारके दो बटे तीन भागके भीतर जितनी नाना गुणहानियाँ प्राप्त हों उनका विरलन करके और दूना करके परस्पर गुणा करनेसे उत्पन्न हुई असंख्यात लोकप्रमाण राशिको भागहाररूपसे स्थापित करनेपर अपकर्षण होनेके बाद शेष बचा हुआ यथानिषेकरूप अधिकृत स्थितिका द्रव्य आता है। इस प्रकार अधिकृत स्थितिका द्रव्य प्राप्त होता है ऐसा मानकर दो छयासठ सागरके भीतर प्राप्त हुई नाना गुणहानिशलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्त राशि डेढ़ गुणहानि और असंख्यात लोक इनको परस्पर गुणा करके जो उत्पन्न हो उसमें संख्यात आवलियोंका भाग देनेपर जो लब्ध आवे वह एक समय प्रबद्धका भागहार होता है और इस भागहारका एक समयप्रबद्धमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना प्रकृत जघन्य स्वामित्वका विषयभूत द्रव्य होता है।

§ ७११. संपहि एदेणेव गयत्थं सम्मत्तस्स वि जहाणिसेयट्ठिदिपत्तयजहण्ण-सामित्तं परूवेमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

❀ जेण मिच्छत्तस्स रचिदो अधाणिसेओ तस्स चेव जीवस्स सम्मत्तस्स अधाणिसेओ कायव्वो। णवरि तिस्से उक्कस्सियाए सम्मत्तद्धाए चरिमसमए तस्स चरिमसमयसम्माइट्ठिस्स जहण्णयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं।

§ ७१२. जेण जीवेण मिच्छत्तस्स जहण्णओ जहाणिसेओ पुव्वुत्तविहाणेण विरइओ तस्सेव जीवस्स सम्मत्तस्स वि जहण्णओ जहाणिसेओ कायव्वो। णवरि तिस्से उक्कस्सियाए वेछावट्ठिसागरोवमपमाणाए सम्मत्तद्धाए चरिमसमए वट्टमाणस्स तस्स चरिमसमयसम्माइट्ठिस्स पयदजहण्णसामित्तं कायव्वं, अण्णहा तव्विहाणोवाया-भावादो। तं जहा—पुव्वविहाणेणागंतूण पढमछावट्ठिं भमिय पुणो विदियछावट्ठीए अंतोमुहुत्तावसेसे दंसणमोहक्खवणमब्भुट्ठिय अहियारट्ठिदिदव्वं गुणसेढिणिज्जराए णासेमाणो उदयावलियबाहिरट्ठिदमिच्छत्तचरिमफालिदव्वं सव्वं समट्ठिदीए सम्मा-मिच्छत्तस्सुवरि संकामिय पुणो तेणेव विहिणा सम्मामिच्छत्तचरिमफालिदव्वं पि सव्वं सम्मत्तस्सुवरि संकामेदि। एवं तिण्हं पि जहाणिसेयट्ठिदीओ एकदो कादूण पुणो

---

§ ७११. अब सम्यक्त्वके यथानिषेक स्थितिप्राप्तका जघन्य स्वामित्व भी इसीसे गतार्थ है यह बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** जिसने मिथ्यात्वका यथानिषेकप्राप्त द्रव्य किया है उसी जीवके सम्यक्त्वके यथानिषेकका कथन करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वके उत्कृष्ट कालके अन्तिम समयमें उस सम्यग्दृष्टिके रहनेपर वह अपने अन्तिम समयमें यथा-निषेकस्थितिप्राप्त जघन्य द्रव्यका स्वामी है।**

§ ७१२. जिस जीवने मिथ्यात्वका जघन्य यथानिषेक द्रव्य पूर्वोक्तविधिसे प्राप्त किया है उसी जीवके सम्यक्त्वके जघन्य यथानिषेकद्रव्यका भी कथन करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि जो दो छयासठ सागरप्रमाण सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल है उसके अन्तिम समयमें विद्यमान हुए उस सम्यग्दृष्टि जीवके अन्तिम समयमें प्रकृत जघन्य स्वामित्वका विधान करना चाहिये, अन्यथा प्रकृत जघन्य स्वामित्वके विधान करनेका और कोई उपाय नहीं है। खुलासा इस प्रकार है—कोई एक जीव है जिसने पूर्वोक्त विधिसे आकर प्रथम छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण किया। फिर दूसरे छयासठ सागरमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके लिये उद्यत होकर वह अधिकृत स्थितिके द्रव्यका गुणश्रेणिनिर्जराके द्वारा नाश करने लगा और ऐसा करते हुए वह उदयावलिके बाहर स्थित हुए मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिके सब द्रव्यको सम्यग्मि-थ्यात्वकी समान स्थितिमें संक्रमित करके फिर उसी विधिसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिके सब द्रव्यको भी सम्यक्त्वके ऊपर संक्रमित करता है। इस प्रकार तीनों ही कर्मोंकी यथानिषेक स्थितियोंको एकत्रित करके फिर दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके अन्तिम समयमें उन तीनों ही

अक्खीणदंसणमोहचरिमसमयम्मि तिसु वि ट्ठिदीसु सम्मत्तसरूवेणुदयमागदासु जहण्णय-मधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं होइ, चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्सेव चरिमसमयसम्माइट्ठि त्ति सुत्ते विवक्खियत्तादो।

❀ णिसेयादो च उदयादो च जहण्णयं ट्ठिदिपत्तयं कस्स ?

§ ७१३. एत्थ सम्मत्तस्से त्ति अहियारसंबंधो। सुगममण्णं।

❀ उवसमसम्मत्तपच्छायदस्स पढमसमयवेदयसम्माइट्ठिस्स तप्पाओग्ग-उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स तस्स जहण्णयं।

§ ७१४. एदस्स सुत्तस्स मिच्छत्तसामित्तसुत्तस्सेव णिरवयवा अत्थपरूवणा कायव्वा, विसेसाभावादो। एत्तिओ पुणो विसेसो—तत्थ पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स सामित्तं जादं, एत्थ पढमसमयवेदयसम्माइट्ठिस्से त्ति।

स्थितियोंके सम्यक्त्वरूपसे उदयमें आनेपर जघन्य यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्य होता है। यहाँ सूत्रमें जो 'चरिमसमयसम्माइट्ठिस्स' पद दिया है सो इससे दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाला अन्तिम समयवर्ती जीव ही विवक्षित है।

विशेषार्थ—यहाँ सम्यक्त्वके यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका जघन्य स्वामी बतलाया है। सो इसे प्राप्त करनेके लिये और सब विधि तो मिथ्यात्वके समान है किन्तु इतनी विशेषता है कि जब उक्त जीवको सम्यक्त्वके साथ दूसरे छयासठ सागरमें परिभ्रमण करते हुए अन्तर्मुहूर्त शेष रह जाय तब उससे क्षायिकसम्यग्दर्शनकी प्राप्ति करावे और ऐसा करते हुए जब सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयका अन्तिम समय प्राप्त होता है तब यथानिषेकस्थितिप्राप्तका जघन्य द्रव्य होता है।

*** सम्यक्त्वके निषेकस्थितिप्राप्त और उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका जघन्य स्वामी कौन है ?**

§ ७१३. इस सूत्रमें 'सम्मत्तस्स' इस पदका अधिकारवश सम्बन्ध होता है। शेष कथन सुगम है।

*** जो उपशमसम्यक्त्वसे पीछे आकर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशसे युक्त प्रथम समयवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टि जीव है वह उक्त दोनों स्थितिप्राप्त द्रव्योंका जघन्य स्वामी है।**

§ ७१४. जिस प्रकार मिथ्यात्वविषयक स्वामित्व सूत्रका सर्वांगीण कथन किया है उसी प्रकार इस सूत्रका भी कथन करना चाहिए, क्योंकि इन दोनोंके कथनमें कोई विशेषता नहीं है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वविषयक स्वामित्वका कथन करते समय प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टिके स्वामित्व प्राप्त कराया गया था किन्तु यहाँ पर वह प्रथम समयवर्ती वेदक-सम्यग्दृष्टिके प्राप्त कराना चाहिये।

विशेषार्थ—आशय यह है कि मिथ्यात्वकी अपेक्षा निषेकस्थितिप्राप्त और उदयस्थिति-प्राप्त द्रव्यका जघन्य स्वामित्व लानेके लिये जीवको उपशमसम्यक्त्वसे छह आवलिकालके शेष

§ ७१५. संपहि सम्मत्तस्स जहाणिसेयट्ठिदिपत्तयभंगेण सम्मामिच्छत्तजहाणिसेयट्ठिदिपत्तयस्स सामित्तपरूवणं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

*** सम्मत्तस्स जहण्णओ जहाणिसेओ जहा परूविओ तीए चेव परूवणाए सम्मामिच्छत्तं गओ। तदो उक्कस्सियाए सम्मामिच्छत्तद्धाए चरिमसमए जहण्णयं सम्मामिच्छत्तस्स अधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं।**

§ ७१६. सम्मत्तस्स जहण्णओ जहाणिसेओ जहापरूविदो, तीए चेव परूवणाए अणूणाहियाए सम्मामिच्छत्तस्स वि पयदजहण्णसामिओ परूवेयव्वो। णवरि सव्वुक्कस्ससम्मत्तद्धाए चरिमसमए सम्मत्तस्स णिरुद्धजहण्णसामित्तं जादं। एवमेत्थ पुण विदियछावट्ठिकालब्भंतरे अंतोमुहुत्तावसेसे सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णस्स तप्पाओग्गुक्कस्संतोमुहुत्तमेत्तसम्मामिच्छत्तद्धाए चरिमसमयम्मि पयदजहण्णसामित्तं होइ त्ति एत्तिओ चेव विसेसो।

रहने पर सासादनमें ले जाकर फिर मिथ्यात्वमें ले जाया गया था और तब मिथ्यात्वके प्रथम समयमें उक्त जघन्य स्वामित्व प्राप्त कराया गया था। किन्तु समयक्त्वका उदय मिथ्यात्व गुणस्थानमें सम्भव नहीं है, इसलिये जिस जीवको सम्यक्त्वकी अपेक्षा निषेकस्थितिप्राप्त और उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका जघन्य स्वामित्व प्राप्त कराना हो उसे उपशमसम्यक्त्वका काल पूरा होनेपर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशनके साथ वेदकसम्यक्त्वमें ले जाय। इस प्रकार जब यह जीव वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करता है तब इसके उक्त वेदकसम्यक्त्वके प्रथम समयमें जघन्य स्वामित्व होता है। यहाँ सम्यक्त्वकी कम से कम उदीरणा प्राप्त करने के लिये तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशके साथ वेदकसम्यक्त्व प्राप्त कराया गया है।

§ ७१५. अब सम्यक्त्वके यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यके जघन्य स्वामित्वके समान ही सम्यग्मिथ्यात्वके यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका जघन्य स्वामित्व है यह बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** सम्यक्त्वके जघन्य यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यकी जिस प्रकार प्ररूपणा की है उसी प्ररूपणाके अनुसार कोई एक जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। फिर जब वह सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट कालके अन्तिम समयमें विद्यमान रहता है तब वह सम्यग्मिथ्यात्वके यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका जघन्य स्वामी है।**

§ ७१६. जिस प्रकार सम्यक्त्वके जघन्य यथानिषेक द्रव्यका प्ररूपण किया, न्यूनाधिकतासे रहित उसी प्ररूपणाके अनुसार सम्यग्मिथ्यात्वके प्रकृत जघन्य स्वामित्वका भी कथन करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वके सर्वोत्कृष्ट कालके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वका प्रकृत जघन्य स्वामित्व प्राप्त हुआ था। किन्तु यहाँ पर दूसरे छ्यासठ सागरके भीतर अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहने पर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुए जीवके सम्यग्मिथ्यात्वके तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कालके अन्तिम समयमें प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता है, इतनी ही विशेषता है।

विशेषार्थ—सम्यग्मिथ्यात्वके यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यके जघन्य स्वामित्वको प्राप्त करने के लिये और सब विधि सम्यक्त्व प्रकृतिके समान जानना चाहिये। किन्तु यहाँ इतनी विशेषता

❀ सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णयं णिसेयादो उदयादो च ट्ठिदिपत्तयं कस्स ?

§ ७१७. सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

❀ उवसमसम्मत्तपच्छायदस्स पढमसमयसम्मामिच्छाइट्ठिस्स तप्पाओग्गुक्कस्ससंकिलिट्ठस्स ।

§ ७१८. सुगममेदं सुत्तं ।

❀ अणंताणुबंधीणं णिसेयादो अधाणिसेयादो च जहण्णयं ट्ठिदिपत्तयं कस्स ?

§ ७१९. सुगममेदं पुच्छावक्कं ।

❀ जो एइंदियट्ठिदिसंतकम्मेण जहण्णएण पंचिंदिए गओ। अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो। अणंताणुबंधिं विसंजोइत्ता पुणो पडिवदिदो। रहस्स-

---

है कि दूसरे छयासठ सागरमें जब अन्तर्मुहूर्त काल शेष रह जाय तब इस जीवको सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें ले जाय। और वहाँ जब उसका अन्तिम समय प्राप्त हो तब प्रकृत जघन्य स्वामित्व कहना चाहिये। सम्यग्मिथ्यात्वका उदय सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही होता है, इसलिये तो इसे उक्त गुणस्थानमें ले गये हैं। तथा सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें जितना स्थान ऊपर जाकर प्रकृत जघन्य स्वामित्व प्राप्त होता है उतने गोपुच्छविशेषोंको कम करनेके लिये यह स्वामित्व सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानके प्रथम समयमें न बतलाकर उसके अन्तिम समयमें बतलाया है।

* सम्यग्मिथ्यात्वके निषेकस्थितिप्राप्त और उदयस्थितिद्रव्यप्राप्त द्रव्योंका जघन्य स्वामी कौन है।

§ ७१७. यह पृच्छासूत्र सुगम है।

* जो उपशमसम्यक्त्वसे पीछे आकर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशसे युक्त प्रथम समयवर्ती सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव है वह उक्त स्थितिप्राप्त द्रव्योंका जघन्य स्वामी है।

§ ७१८. यह सूत्र सुगम है।

विशेषार्थ—इस आशयका सूत्र अनेक बार आ चुका है, इसलिये वहाँ जिस प्रकार वर्णन किया है उसी प्रकार प्रकृतमें भी करना चाहिये। किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वका उदय मिश्र गुणस्थानमें ही होता है, इसलिये उपशामसम्यक्त्वसे च्युत होने पर इस जीवको सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही ले जाना चाहिये, यहाँ इतनी विशेषता है। शेष कथन सुगम है।

* अनन्तानुबन्धियोंके जघन्य निषेकस्थितिप्राप्त और यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्योंका स्वामी कौन है ?

§ ७१९. यह पृच्छासूत्र सुगम है।

* जिसने एकेन्द्रियके योग्य जघन्य स्थितिसत्कर्मके साथ पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर और अन्तर्मुहूर्तमें सम्यक्त्वको प्राप्त करके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की।

कालेण संजोएऊण सम्मत्तं पडिवण्णो। वेछावट्ठिसागरोवमाणि अणुपालियूण मिच्छत्तं गओ तस्स आवलियमिच्छाइट्ठिस्स जहण्णयं णिसेयादो अधाणिसेयादो च ट्ठिदिपत्तयं।

§ ७२०. एइंदियट्ठिदिसंतकम्मस्स जहण्णयस्सेत्थालंबणमणुवजोगी, अणंताणुबंधिं विसंजोयणाए णिस्संतीकरिय पुणो पडिवादेण अइरहस्सकालपडिबद्धेण संजोइय पडिवण्णवेदयसम्मत्तम्मि अंतोमुहुत्तमेत्तणवकबंधं घेत्तूण परिभमिदवेछावट्ठिसागरोवमजीवम्मि सामित्तविहाणादो ? ण एस दोसो, सेसकसायणं जुत्तावत्थाए अधापवत्तेण समट्ठिदिसंकमबहुत्तणिवारणट्ठं तदब्भुवगमादो। ण च समट्ठिदिसंकमस्स जहाणिसेयट्ठिदिपत्तयत्ताभावमवलंबिय पच्चवट्ठेयं, जहाणिसित्तसरूवेण समट्ठिदीए संकंतस्स पदेसगस्स तहाभावाविरोहादो। तम्हा गुणिदकम्मंसिओ वा खविदकम्मंसिओ वा एइंदियजहण्णट्ठिदिसंतकम्मेण सह गदो असण्णिपंचिंदिएसु तप्पाओग्गजहण्णंतोमुहुत्तमेत्तजीविएसुववज्जिय समयाविरोहेण देवेसुववण्णो। तदो अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं घेत्तूण अणंताणुबंधिं विसंजोइत्ता पुणो अंतोमुहुत्तेण संजुत्तो होदूण सव्वरहस्सेण

फिर जो सम्यक्त्वसे च्युत होकर और अनन्तानुबन्धीका संयोजन करके अति शीघ्र सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। फिर जो दो छयासठ सागर काल तक सम्यक्त्वका पालन करके मिथ्यात्वमें गया। उसे वहाँ गए जब एक आवलि काल होता है तब वह जीव जघन्य निषेकस्थितिप्राप्त और यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्योंका स्वामी है।

§ ७२०. **शंका**—प्रकृतमें एकेन्द्रियके योग्य जघन्य स्थितिसत्कर्मका आलम्बन करना अनुपयोगी है, क्योंकि विसंयोजना द्वारा अनन्तानुबन्धीको निःसत्त्व करके फिर सम्यक्त्वसे च्युत होकर और स्वल्प कालद्वारा अनन्तानुबन्धीसे पुनः संयुक्त होकर जो वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है और जिसने अन्तर्मुहूर्तप्रमाण नवक समयप्रबद्धोंको ग्रहण करके दो छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण किया है उसके प्रकृत जघन्य स्वामित्वका विधान किया है। इस शंकाका आशय यह है कि जब कि विसंयोजनाके बाद पुनः संयुक्त होने पर दो छयासठ सागरके बाद प्रकृत जघन्य स्वामित्व कहा है तब इस जीवको प्रारम्भमें एकेन्द्रियके योग्य जघन्य सत्कर्मवाला बतलानेकी कोई आवश्यकता नहीं है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जब यह जीव अनन्तानुबन्धीसे पुनः संयुक्त होता है तब अधःप्रवृत्तसंक्रमणके द्वारा इसमें शेष कषायोंका बहुत समस्थितिसंक्रम न प्राप्त हों एतदर्थ उक्त बात स्वीकार की है।

यदि कहा जाय कि जो शेष कषायोंका समस्थितिसंक्रम हुआ है उसमें यथानिषेकस्थितिपना नहीं पाया जाता है सो ऐसा निश्चय करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि यथानिषेकरूपसे समस्थितिमें जो द्रव्य संक्रान्त होता है उसे यथानिषेकस्थितिरूप माननेमें कोई बाधा नहीं आती। इसलिये गुणितकर्मांश या क्षपितकर्मांश जो जीव एकेन्द्रियके योग्य जघन्य स्थितिसत्कर्मके साथ तत्प्रायोग्य जघन्य अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयुवाले असंज्ञियोंमें उत्पन्न होकर यथाविधि देवोंमें उत्पन्न हुआ। तदनन्तर अन्तर्मुहूर्तमें सम्यक्त्वको प्राप्त करके और अनन्तानुबन्धीकी

कालेण सम्मत्तं पडिवण्णो। वेछावट्ठिसागरोवमाणि समयाविरोहेण सम्मत्तमणुपालिय तदवसाणे मिच्छत्तं गदो तस्सावलियमिच्छाइट्ठिस्स पयदजहण्णसामित्तं होइ। तत्तो परं सेसकसायाणं समट्ठिदिसंकमेण पडिच्छिदबहुदव्वावट्ठाणेण जहण्णभावाणुववत्तीदो।

❀ उदयट्ठिदिपत्तयं जहण्णयं कस्स ?

§ ७२१. अणंताणुबंधिग्गहणमिहाणुवट्टदे। सेसं सुगमं।

❀ एइंदियकम्मेण जहण्णएण तसेसु आगदो। तम्हि संजमासंजमं संजमं च बहुसो लद्धूण चत्तारि वारे कसाए उवसामित्ता एइंदिए गओ। असंखेज्जाणि वस्साणि अच्छियूण उवसामयसमयपबद्धेसु गलिदेसु

विसंयोजना करके फिर अन्तर्मुहूर्तमें अनन्तानुबन्धीसे संयुक्त होकर अति स्वल्प कालद्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। फिर दो छयासठ सागर काल तक यथाविधि सम्यक्त्वका पालन करके अन्तमें मिथ्यात्वमें गया उसके मिथ्यात्वमें गये एक आवलि कालके अन्तमें प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता है। एक आवलि कालके बाद जघन्य स्वामित्व क्यों नहीं होता इसका कारण यह है कि एक आवलिके बाद शेष कषायोंका समस्थितिसंक्रमण होकर अनन्तानुबन्धीमें बहुत द्रव्य प्राप्त हो जाता है, अतः जघन्यपना नहीं बन सकता।

विशेषार्थ—यहाँ अनन्तानुबन्धीके निषेकस्थितिप्राप्त और यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका जघन्य स्वामी बतलाया है। जिसे यह स्वामित्व प्राप्त कराना है उसका प्रारम्भमें एकेन्द्रियके योग्य जघन्य स्थितिसत्कर्मवाला होना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि इससे विसंयोजनाके बाद जब यह जीव अनन्तानुबन्धीसे पुनः संयुक्त होता है तब इसके समस्थितिसंक्रमण अधिक नहीं पाया जाता है। यदि ऐसा न मानकर इसके स्थितिसत्कर्मको संज्ञीके योग्य मान लिया जाता तो इससे निषेकस्थितिप्राप्त और यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्य बहुत हो जाता और तब उक्त द्रव्यको जघन्य प्राप्त करना सम्भव न होता। यही कारण है कि प्रकृतमें एकेन्द्रियके योग्य जघन्य स्थितिसत्कर्मवाले जीवको ग्रहण करके प्रकृत जघन्य स्वामित्व ग्रहण किया गया है। फिर भी यह वचन उपलक्षणरूप है जिससे यहाँ ऐसा जीव भी लिया जा सकता है जिसका स्थितिसत्कर्म अधिकसे अधिक साधिक दो छयासठ सागरप्रमाण हो, क्योंकि जिस स्थल पर जाकर जघन्य स्वामित्व प्राप्त करना है उससे एक समय कम स्थितिके रहते हुए संयुक्त अवस्थामें समस्थितिसंक्रमणके द्वारा निषेकस्थितिप्राप्त और यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यके अधिक होनेका डर नहीं है। शेष कथन सुगम है।

❀ उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका जघन्य स्वामी कौन है ?

§ ७२१. इस सूत्रमें 'अणंताणुबंधि' इस पदका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि यहाँ उसकी अनुवृत्ति पाई जाती है। शेष कथन सुगम है।

❀ जो कोई एक जीव एकेन्द्रियके योग्य जघन्य सत्कर्मके साथ त्रसोंमें आया। वहाँ संयमासंयम और संयमको बहुतबार प्राप्त करके और चार बार कषायोंका उपशम करके एकेन्द्रियोंमें गया। वहाँ असंख्यात वर्षों तक रहकर उपशामकसम्बन्धी समयप्रबद्धोंके गल जाने पर पंचेन्द्रियों में गया। वहाँ अन्तर्मुहूर्तमें अनन्तानु-

पंचिंदिएसु गदो। अंतोमुहुत्तेण अणंताणुबंधिं विसंजोजित्ता तदो संजोएऊण जहण्णएण अंतोमुहुत्तेण पुणो सम्मत्तं लद्धूण वेछावट्ठिसागरोवमाणि अणंताणुबंधिणो गालिदा। तदो मिच्छत्तं गदो तस्स आवलियमिच्छाइट्ठिस्स जहण्णयमुदयट्ठिदिपत्तयं।

§ ७२२. ण एत्थ पुणो वि विसंजोइज्जमाणाणमणंताणुबंधीणं खविदकम्मंसियत्तं णिरत्थयमिदि आसंकणिज्जं, संजुत्तावत्थाए सेसकसाएहिंतो पडिच्छिज्जमाण—दव्वस्स जहण्णीकरणेण फलोवलंभादो। तम्हा जो जीवो एइंदियजहण्णपदेससंतकम्मेण सह तसेसु आगदो। तत्थ य संजमासंजमादीणमसइं लंभेण चदुक्खुत्तो कसायाणमुवसामणाए च गुणसेढिसरूवेण बहुदव्वगालणं काऊण पुणो एइंदिएसु पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तकालमच्छिय णिग्गालिदोवसामयसमयपबद्धो समयाविरोहेण पंचिंदिएसुववज्जिय अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तग्गहणपुरस्सरमणंताणुबंधिं विसंजोइय संजुत्तो सव्वलहुं सम्मत्तपडिलंभेण वेछावट्ठिसागरोवमाणि अधट्ठिदीए गालिय पडिवदिदो तस्स आवलियमिच्छाइट्ठिस्स पयदजहण्णसामित्तं होइ त्ति सिद्धं।

बन्धीकी विसंयोजना करके तदनन्तर उससे संयुक्त हो जघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल द्वारा फिरसे सम्यक्त्वको प्राप्त करके दो छयासठ सागर काल तक अनन्तानुबन्धियोंको गलाता रहा। तदनन्तर मिथ्यात्वमें गया। उसे वहाँ गये जब एक आवलि काल होता है तब वह उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका जघन्य स्वामी है।

§ ७२२. यदि यहाँ ऐसी आशंका की जाय कि जब अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना होनेवाली है तब उन्हें पूर्वमें ही क्षपितकर्मांश बतलाना निरर्थक है तो ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि संयुक्त अवस्थामें अनन्तानुबन्धीमें शेष कषायोंका द्रव्य जघन्य होकर प्राप्त होता है, इसलिये इसकी सफलता है। अतः जो जीव एकेन्द्रियके योग्य जघन्य सत्कर्मके साथ त्रसोंमें आया और वहाँ संयमासंयमादिककी अनेकबार होनेवाली प्राप्ति द्वारा और चार बार हुई कषायोंकी उपशामना द्वारा गुणश्रेणिरूपसे बहुत द्रव्यको गलाकर फिर एकेन्द्रियोंमें पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक रहकर और वहाँ उपशामकसम्बन्धी समयप्रबद्धोंको गलाकर यथाविधि पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। फिर अन्तर्मुहूर्तमें सम्यक्त्वको ग्रहण करके अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना की। फिर उससे संयुक्त होकर और अतिशीघ्र सम्यक्त्वको प्राप्त करके अधःस्थिति द्वारा दो छयासठ सागरप्रमाण स्थितियोंको गलाकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ उसके मिथ्यात्वको प्राप्त हुए एक आवलि कालके होने पर प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता है यह बात सिद्ध होती है।

विशेषार्थ—यहाँ पूर्वमें क्षपितकर्मांशकी विधि बतलाकर फिर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कराई गई है। इस पर शंकाकारका यह कहना है कि जब आगे चलकर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना होनेवाली ही है तब पूर्वमें क्षपितकर्मांशपनेके विधान करनेकी क्या सफलता है। इसका जो समाधान किया है उसका आशय यह है कि क्षपितकर्मांशकी विधि अन्य कषायों

❀ **बारसकसायाणं णिसेयट्ठिदिपत्तयमुदयट्ठिदिपत्तयं च जहण्णयं कस्स ?**

§ ७२३. सुगमं ।

❀ **जो उवसंतकसाओ सो मदो देवो जादो तस्स पढमसमयदेवस्स जहण्णयं णिसेयट्ठिदिपत्तयमुदयट्ठिदिपत्तयं च ।**

§ ७२४. एदस्स सुत्तस्सत्थो उदयादो जहण्णझीणट्ठिदियसामित्तसुत्तस्सेव वक्खाणेयव्वो । णवरि एत्थ पढमसमयसामित्तविहाणं साहिप्पाओ मिच्छत्तस्सेव वत्तव्वो ।

❀ **अधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं जहण्णयं कस्स ।**

§ ७२५. सुगमं ।

❀ **अभवसिद्धियपाओग्गेण जहण्णएण कम्मेण तसेसु उववण्णो । तत्थ तप्पाओग्गुक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणस्स जद्देही आबाहा तावदिमसमए तस्स जहण्णयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं । अइक्कंते काले कम्मट्ठिदिअंतो सइं पि तसो ण आसी ।**

पर भी लागू होती है । इससे यह लाभ होता है कि जब यह जीव अनन्तानुबन्धीसे संयुक्त होता है तब अन्य कषायोंका कम द्रव्य अनन्तानुबन्धीरूपसे संक्रमित होता है । शेष कथन सुगम है ।

*** बारह कषायोंके निषेकस्थितिप्राप्त और उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका जघन्य स्वामी कौन है ।**

§ ७२३. यह सूत्र सुगम है ?

*** जो उपशान्तकषाय जीव मरकर देव हुआ है वह प्रथम समयवर्ती देव निषेकस्थितिप्राप्त और उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका जघन्य स्वामी है ।**

§ ७२४. जिस प्रकार उदयसे झीनस्थितिविषयक स्वामित्व सूत्रके अर्थका व्याख्यान किया है उसी प्रकार इस सूत्रके अर्थका व्याख्यान करना चाहिये । किन्तु यहाँ जो प्रथम समयमें स्वामित्वका विधान किया है सो मिथ्यात्वके समान इसका अभिप्राय सहित व्याख्यान करना चाहिये ।

*** यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका जघन्य स्वामी कौन है ?**

§ ७२५. यह सूत्र सुगम है ।

*** अभव्योंके योग्य जघन्य सत्कर्मके साथ जो त्रसोंमें उत्पन्न हुआ है । किन्तु इसके पूर्व कर्मस्थितिप्रमाण कालके भीतर जो एक बार भी त्रस नहीं हुआ है । फिर वहाँ तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट स्थितिको बाँधते हुए जितनी आबाधा होती है उसके अन्तिम समयमें वह यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका जघन्य स्वामी है ।**

§ ७२६. एदस्स सुत्तस्सत्थो वुच्चदे। तं जहा—जो जीवो सव्वावासयविसुद्धीए सुहुमणिगोदेसु कम्मट्ठिदिमणुपालिय अभवसिद्धियपाओग्गजहण्णपदेससंतकम्मं काऊण तेण सह सण्णिपंचिंदिएसु उववण्णो। एसो च जीवो अइक्कंते काले कम्मट्ठिदीए अब्भंतरे सइं पि तसो ण आसी। कम्मट्ठिदिअब्भंतरे तसपज्जायपरिणामे को दोसो चे? एइंदियजोगादो असंखेज्जगुणतसकाइयजोगेण तत्थुप्पज्जिय बहुदव्वसंचयं कुणमाणस्स णिरुद्धट्ठिदीए जहण्णजहाणिसेयाणुप्पत्तिदोसदंसणादो। तसकाइएसु आगंतूण सम्मत्तुप्पत्तिसंजमासंजमादिगुणसेढिणिज्जराहिं पयदणिसेयस्स जहण्णीकरण-वावारेणच्छमाणस्स लाहो दीसइ त्ति णासंकणिज्जं, ओकड्डुकड्डणभागहारादो जोग-गुणागारस्स असंखेज्जगुणत्तेण अधाणिसेयदव्वस्स तत्थ णिज्जरादो आयस्स बहुत्त-दंसणादो। तम्हा अइक्कंते काले कम्मट्ठिदिअब्भंतरे तसपज्जायपडिसेहो सफलो त्ति सिद्धं।

§ ७२७. एत्थ कम्मट्ठिदि त्ति भणिदे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणब्भहिय-एइंदियकम्मट्ठिदीए गहणं कायव्वं, सेसकम्मट्ठिदिअवलंबणे पयदोवजोगिफलविसेसा-णुवलंभादो। जइ एवं पच्छा वि तसभावपत्थणा णिरत्थिया त्ति ण पच्चवट्ठेयं,

---

§ ७२६. अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं। जो इस प्रकार है—जो जीव समस्त आवश्यकोंकी विशुद्धिके साथ सूक्ष्मनिगोदियोंमें कर्मस्थितिप्रमाण काल तक रहा और अभव्योंके योग्य जघन्य सत्कर्म को प्राप्त करके उसके साथ संज्ञी पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। किन्तु यह जीव इसके पूर्व कर्मस्थितिप्रमाण कालके भीतर एक बार भी त्रस नहीं हुआ।

शंका—कर्मस्थिति कालके भीतर त्रस पर्यायके योग्य परिणामोंके होनेमें क्या दोष है?

समाधान—एकेन्द्रियके योगसे असंख्यातगुणे त्रसकायिकोंके योगके साथ त्रसोंमें उत्पन्न होकर बहुत द्रव्यका संचय करनेवाले जीवके विवक्षित स्थितिमें जघन्य यथानिषेककी प्राप्ति नहीं हो सकती है। यही बड़ा दोष है जिससे इस जीवको कर्मस्थिति कालके भीतर त्रसोंमें नहीं उत्पन्न कराया है। यदि ऐसी आशंका की जाय कि त्रसकायिकोंमें आकर सम्यक्त्वकी उत्पत्ति और संयमासंयम आदिके निमित्तसे होनेवाली गुणश्रेणिनिर्जराओंके द्वारा प्रकृत निषेकको जघन्य करनेमें लगे हुए जीवके लाभ दिखाई देता है सो ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि अपकर्षण-उत्कर्षणरूप भागहारसे योगका गुणकार असंख्यातगुणा होनेके कारण यथानिषेक द्रव्यकी वहाँ निर्जराकी अपेक्षा आय बहुत देखी जाती है, इसलिये पिछले बीते हुए समयमें कर्मस्थितिके भीतर त्रसपर्यायका निषेध करना सफल है यह सिद्ध होता है।

§ ७२७. यहाँ सूत्रमें जो 'कर्मस्थिति' का निर्देश किया है सो उससे पल्यके असंख्यातवें भागसे अधिक एकेन्द्रियके योग्य कर्मस्थितिका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि शेष कर्मस्थितिका अवलम्बन करने पर प्रकृतमें उपयोगीरूपसे उसका कोई विशेष लाभ नहीं दिखाई देता है। यदि ऐसा है तो एकेन्द्रिय पर्यायसे निकलनेके बाद भी पीछेसे त्रसपर्यायमें उत्पन्न कराना निरर्थक है

❀ **अप्पाबहुअं।**

§ ७३२. सुगममेदमहियारसंभालणसुत्तं। तं च दुविहं जहण्णुक्कस्सभेएण। तत्थुक्कस्सप्पाबहुअपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तारंभो—

❀ **सव्वपयडीणं सव्वत्थोवमुक्कस्सयमग्गट्ठिदिपत्तयं।**

§ ७३३. कुदो? उक्कस्सजोगेण बद्धेयसमयपबद्धे अंगुलस्सासंखे०भागेण खंडिदे तत्थेयखंडपमाणत्तादो।

❀ **उक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयमसंखेज्जगुणं।**

§ ७३४. एत्थ गुणगारपमाणमोकड्डुक्कड्डणभागहारपदुप्पण्णकम्मट्ठिदिणाणागुणहाणिसलागण्णोण्णब्भत्थरासिमेत्तं। णवरि तिण्णिवेदचदुसंजलणाणं तप्पाओग्गसंखेज्जरूवोवट्टिदअंगुलस्सासंखे०भागमेत्तो गुणगारो। एत्थोवट्टणं ठविय सिस्साणं गुणगारविसओ पडिबोहो कायव्वो।

❀ **णिसेयट्ठिदिपत्तयमुक्कस्सयं विसेसाहियं।**

§ ७३५. केत्तियमेत्तेण? ओकड्डुक्कड्डणाहिं गंतूण पुणो वि तत्थेव पदिददव्व-

---

※ **अब अल्पबहुत्वका अधिकार है।**

§ ७३२. अधिकारका निर्देश करनेवाला यह सूत्र सुगम है। वह अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। अब इनमेंसे उत्कृष्ट अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

※ **सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अग्रस्थितिप्राप्त द्रव्य सबसे थोड़ा है।**

§ ७३३. क्योंकि उत्कृष्ट योगसे बाँधे गए एक समयप्रबद्धमें अङ्गुलके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उतना इसका प्रमाण है, इसलिये यह सबसे थोड़ा है।

※ **उससे उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्य असंख्यातगुणा है।**

§ ७३४. यहाँपर अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारसे कर्मस्थितिके भीतर प्राप्त हुई नानागुणहानिशलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्तराशिको गुणा करनेपर जो लब्ध आवे उतना गुणकारका प्रमाण है। अर्थात् इस गुणकारसे उत्कृष्ट अग्रस्थितिप्राप्त द्रव्यके गुणित करनेपर उत्कृष्ट यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्य प्राप्त होता है यह इसका भाव है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अङ्गुलके असंख्यातवें भागमें तत्प्रायोग्य संख्यात अङ्कोंका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना तीन वेद और चार संज्वलनोंकी अपेक्षा गुणकार होता है। यहाँपर भागहारको स्थापित करके शिष्योंको गुणकारविषयक ज्ञान कराना चाहिये।

※ **उससे उत्कृष्ट निषेकस्थितिप्राप्त द्रव्य विशेष अधिक है।**

§ ७३५. **शंका**—कितना अधिक है?

समाधान—अपकर्षण-उत्कर्षणके द्वारा जो द्रव्य व्ययको प्राप्त होता है उस

मेत्तेण। तं पुण अधाणिसेयदव्वस्स असंखे० भागमेत्तं। तस्स पडिभागो ओकड्डुक्कड्डुण-भागहारो।

❀ उदयट्ठिदिपत्तयमुक्कस्सयमसंखेज्जगुणं।

§ ७३६. कुदो? सव्वेसिं कम्माणं गुणसेडिगोवुच्छोदएण पत्तुक्कस्सभावत्तादो। एत्थ गुणगारो सम्मत्तस्स अंगुलस्स असंखेदिभागो। लोहसंजलणस्स संखेज्जरूवगुणिद-दिवड्ढगुणहाणिमेत्तो। तिण्णिसंजलण-तिवेदाणं तप्पाओग्गपलिदोवमासंखेज्जदिभागमेत्तो। सेसकम्माणमसंखेज्जपलिदोवमपढमवग्गमूलमेत्तो। एत्थोवट्टणं ठविय सिस्साणं पडिबोहो कायव्वो।

एवमुक्कस्सप्पाबहुअं समत्तं।

❀ जहण्णयाणि कायव्वाणि।

§ ७३७. एत्तो उवरि जहण्णट्ठिदिपत्तयाणमप्पाबहुअं कायव्वमिदि भणिदं होइ।

❀ सव्वत्थोवं मिच्छत्तस्स जहण्णयमग्गट्ठिदिपत्तयं।

§ ७३८. किं कारणं? एगपरमाणुपमाणत्तादो।

फिरसे वहाँ प्राप्त होनेपर जितना इसका प्रमाण है उतना अधिक है किन्तु यह यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। उसका प्रतिभाग अपकर्षण-उत्कर्षण भागहार है।

* उससे उत्कृष्ट उदयस्थितिप्राप्त द्रव्य असंख्यातगुणा है।

§ ७३६. क्योंकि सभी कर्मोंके गुणश्रेणिगोपुच्छाके उदयसे इस उत्कृष्ट द्रव्यकी प्राप्ति होती है, इसलिए यह उत्कृष्ट निषेकस्थितिप्राप्तसे भी असंख्यातगुणा है। यहाँ सम्यक्त्वका गुणकार अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। लोभसंज्वलनका गुणकार संख्यात अङ्कोंसे गुणित डेढ़ गुणहानिप्रमाण है। तीन संज्वलन और तीन वेदोंका गुणकार तद्योग्य पल्यके असंख्यातवें भाग-प्रमाण है। तथा शेष कर्मोंका गुणकार पल्यके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है। यहाँ पर भागहारको स्थापित करके शिष्योंको प्रतिबोध कराना चाहिये।

इस प्रकार उत्कृष्ट अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

* अब जघन्य अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिये।

§ ७३७. अब इससे आगे जघन्य स्थितिप्राप्त द्रव्योंके अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिये, यह इस सूत्रका तात्पर्य है।

* मिथ्यात्वका जघन्य अग्रस्थितिप्राप्त द्रव्य सबसे थोड़ा है।

§ ७३८. क्योंकि इस प्रमाण एक परमाणु है।

❀ जहण्णयं णिसेयट्ठिदिपत्तयं अणंतगुणं ।

§ ७३९. कुदो ? अणंतपरमाणुपमाणत्तादो ।

❀ जहण्णयमुदयट्ठिदिपत्तयमसंखेज्जगुणं ।

§ ७४०. कथमेदेसिमुवसमसम्माइट्ठिपच्छायदपढमसमयमिच्छाइट्ठिणोदीरिदासंखेज्जलोगपडिभागियदव्वपडिबद्धत्तेण समाणसामियाणमण्णोण्णमवेक्खिय असंखेज्जगुणहीणाहियभावो त्ति णासंकणिज्जं, समाणसामियत्ते वि दव्वविसेसावलंबणेण तहाभावाविरोहादो । तं जहा—णिसेयट्ठिदिपत्तयस्स अहियारट्ठिदीए अंतरं करेमाणेण उवरिमुक्कड्डिदपदेसा पुणो संकिलेसवसेणासंखेज्जलोगपडिभाएणोदीरिदा सामित्तविसईकया उदयादो जहण्णट्ठिदिपत्तयस्स पुण अंतोकोडाकोडीमेत्तोवरिमासेसट्ठिदीहिंतो ओकड्डिय उदीरिदसव्वपरमाणू सामित्तपडिग्गहिया तदो जइ वि एक्कम्मि चे उद्देसे दोण्हं सामित्तं संजादं तो वि णाणेयणिसेयपडिबद्धत्तेण असंखेज्जगुणहीणाहियभावो ण विरुज्झदे । एत्थ गुणयारोकड्डुक्कड्डणभागहारोवट्टिददिवड्ढगुणहाणिवग्गमेत्तो ।

---

* उससे जघन्य निषेकस्थितिप्राप्त द्रव्य अनन्तगुणा है ।

§ ७३९. क्योंकि इसका प्रमाण अनन्त परामाणु है।

* उससे जघन्य उदयस्थितिप्राप्त द्रव्य असंख्यातगुणा है ।

§ ७४०. **शंका**—जब कि उपशमसम्यक्त्वसे पीछे आकर प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यात लोकका भाग देकर जितने द्रव्यकी उदीरणा करता है उसकी अपेक्षा इन दोनोंका स्वामी समान है तब फिर इनमेंसे एकको असंख्यातगुणा हीन और दूसरेको असंख्यातगुणा अधिक क्यों बतलाया है ?

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि यद्यपि इनका स्वामी समान है तथापि द्रव्यविशेषकी अपेक्षा ऐसा होनेमें कोई विरोध नहीं आता। खुलासा इस प्रकार है—निषेकस्थितिप्राप्तकी अपेक्षासे अन्तरको करनेवाले जीवके द्वारा विवक्षित स्थितिके जिन कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण करके ऊपर निक्षेप किया है उनमेंसे संक्लेशके कारण असंख्यात लोकका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने वे ही कर्मपरमाणु उदीर्ण होकर स्वामित्वके विषयभूत होते हैं। किन्तु जघन्य उदयस्थितिप्राप्तकी अपेक्षा तो अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण ऊपरकी सब स्थितियोंमेंसे अपकर्षण होकर उदीरणाको प्राप्त हुए सब परमाणु स्वामित्वरूपसे स्वीकार किये गये हैं, इसलिये यद्यपि एक ही स्थलपर दोनों स्थितिप्राप्त द्रव्योंका स्वामित्व होता है तो भी एक स्थितिप्राप्तमें नाना निषेकोंके कर्मपरमाणु हैं और दूसरेमें एक निषेकके कर्मपरमाणु हैं, इसलिए इनके परस्परमें असंख्यातगुणे अधिक और असंख्यातगुणे हीन होनेमें कोई विरोध नहीं आता है। यहाँ पर अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारका डेढ़ गुणहानिके वर्गमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना गुणकारका प्रमाण है।

❀ जहण्णयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयमसंखेज्जगुणं ।

§ ७४१. एत्थ गुणगारपमाणमसंखेज्जा लोगा तप्पाओग्गासंखेज्जरूवाणि वा । कथमसंखेज्जलोगमेत्तगुणयारुप्पत्ती ? उच्चदे—उदयट्ठिदिपत्तयस्स जहण्णदव्वे इच्छिज्जमाणे दिवड्ढगुणहाणिमेत्तसमयपबद्धे ठविय तेसिं ओकड्डुक्कड्डणभागहारेण पदुप्पण्णा असंखेज्जा लोगा भागहारसरूवेण ठवेयव्वा । एवं ठविदे इच्छिददव्वमागच्छइ । जहाणिसेयट्ठिदिपत्तयस्स पुण जहण्णदव्वं संखेज्जावलियमेत्तसमयपबद्धे अंगुलस्स असंखेज्जदिभागेण खंडिय तत्थेयखंडमेत्तं होइ । एदस्सोवट्टणे ठविज्जमाणे संखेज्जावलिय-मेत्तसमयपबद्धाणं वेछावट्ठिसागरोवमब्भंतरणाणागुणहाणिं विरलिय विगुणिय अण्णोण्ण-ब्भत्थरासिम्मि भागहारत्तेण ठविदे गलिदसेसदव्वमागच्छइ । एवं च सव्वदव्वमुवरिम-अंतोकोडाकोडीमेत्तट्ठिदिविसेसेसु विहज्जिय ट्ठिदमधाणिसेयजहण्णसामित्तविसईकय-गोवुच्छपमाणेण कीरमाणं दिवड्ढगुणहाणिपमाणं होइ त्ति दिवड्ढगुणहाणी वि एदस्स भागहारो ठवेयव्वो । एवं ठविदे इच्छिददव्वमागच्छइ । पुणो एदम्मि पुव्विल्लदव्वे-णोवट्टिदे असंखेज्जा लोगा गुणगारो आगच्छइ ।

§ ७४२. अहवा जहाणिसेयट्ठिदिपत्तयस्स वि असंखेज्जा लोगा भागहारो ।

❀ उससे जघन्य यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्य असंख्यातगुणा है ।

§ ७४१. यहाँ पर गुणकारका प्रमाण असंख्यात लोक है या तत्प्रायोग्य असंख्यात अङ्क है ।

शंका—असंख्यात लोकप्रमाण गुणकारकी उत्पत्ति कैसे होती है ?

समाधान—उदयस्थितिप्राप्त जघन्य द्रव्यको लानेकी इच्छासे डेढ़ गुणहानिप्रमाण समय-प्रबद्धोंको स्थापित करके उनके भागहाररूपसे अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारके द्वारा उत्पन्न किये गये असंख्यात लोकोंको स्थापित करना चाहिये । इस प्रकार स्थापित करनेपर इच्छित द्रव्यका प्रमाण आ जाता है । किन्तु यथानिषेकस्थितिप्राप्तका जघन्य द्रव्य तो संख्यात आवलिप्रमाण समय-प्रबद्धोंमें अङ्गुलके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो एक भाग आवे उतना होता है । इसका भागहार स्थापित करनेपर संख्यात आवलिप्रमाण समयप्रबद्धोंके भागहाररूपसे दो छयासठ सागरके भीतर प्राप्त हुईं नाना गुणहानिशलाकाओंका विरलन करके और दूना करके परस्पर गुणा करनेसे जो अन्योन्याभ्यस्त राशि उत्पन्न होती है उसे स्थापित करनेपर गलकर जो द्रव्य शेष रहता है उसका प्रमाण आ जाता है । इस प्रकार ऊपरके अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थितिविशेषोंमें जो सब द्रव्य विभक्त होकर स्थित है उसके यथानिषेकके जघन्य स्वामित्वके विषयभूत गोपुच्छके बराबर हिस्से करनेपर वे डेढ़ गुणहानिप्रमाण प्राप्त होते हैं, इसलिए डेढ़ गुणहानिको भी इसके भागहाररूपसे स्थापित करना चाहिए । इस प्रकार स्थापित करनेपर इच्छित द्रव्यका प्रमाण आ जाता है । फिर इसमें पूर्वोक्त द्रव्यका भाग देनेपर असंख्यात लोकप्रमाण गुणकार प्राप्त होता है ।

§ ७४२. अथवा यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका भी असंख्यात लोकप्रमाण भागहार होता है,

कुदो ? पुव्वपरूविदभागहारे संते पुणो वि ओकड्डणमस्सियूणुप्पण्णवेछावट्ठिसागरोवम-ब्भंतरणाणागुणहाणिसलागाणमसंखेज्जपलिदोवमपढमवग्गमूलमेत्ताणं अण्णोण्णब्भत्थ-रासीए असंखेज्जलोगपमाणाए भागहारत्तेण पवेसदंसणादो। तदो एदम्मि हेट्ठिमरासिणा ओवट्टिदे तप्पाओग्गासंखेज्जरूवमेत्तो गुणगारो आगच्छदि त्ति घेत्तव्वं।

❀ एवं सम्मत्त- सम्मामिच्छत्त--बारसकसाय--पुरिसवेद हस्स-रइ-भय-दुगुंछाणं।

§ ७४३. जहा मिच्छत्तस्स जहण्णओ अप्पाबहुगआलावो कओ तहा सम्मत्तादि-पयडीणं पि अणूणाहिओ कायव्वो, विसेसाभावादो। णवरि सामित्ताणुसारेण गुणयारविसेसो जाणियव्वो।

❀ अणंताणुबंधीणं सव्वत्थोवं जहण्णयमग्गट्ठिदिपत्तयं।

§ ७४४. सुगमं।

❀ जहण्णयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयमणंतगुणं।

§ ७४५. एत्थ वि कारणं सुगमं।

❀ जहण्णयं णिसेयट्ठिदिपत्तयं विसेसाहियं।

क्योंकि पूर्वोक्त भागहारके रहते हुए फिर भी अपकर्षणकी अपेक्षा दो छयासठ सागरके भीतर उत्पन्न हुई पल्यके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण नाना गुणहानिशलाकाओंकी असंख्यात लोकप्रमाण अन्योन्याभ्यस्त राशिका भागहाररूपसे प्रवेश देखा जाता है। फिर इसे नीचेकी राशिसे भाजित करनेपर तत्प्रायोग्य असंख्यात अङ्कप्रमाण गुणकार आता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

*** इसी प्रकार सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह काषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इनका भी जघन्य अल्पबहुत्व कहना चाहिए।**

§ ७४३. जिस प्रकार मिथ्यात्वके जघन्य अल्पबहुत्वका कथन किया है न्यूनाधिकताके बिना उसी प्रकार सम्यक्त्व आदि प्रकृतियोंके अल्पबहुत्वका भी कथन करना चाहिए, क्योंकि मिथ्यात्वके कथनसे इनके कथममें कोई विशेषता नहीं है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सबकी अपेक्षा गुणकार एकसा नहीं है इसलिए अपने अपने स्वामीके अनुसार गुणकार जानना चाहिये।

*** अनन्तानुबन्धियोंका जघन्य अग्रस्थितिप्राप्त द्रव्य सबसे थोड़ा है।**

§ ७४४. इस सूत्रका अर्थ सुगम है।

*** उससे जघन्य यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्य अनन्तगुणा है।**

§ ७४५. यहां जो जघन्य अग्रस्थितिप्राप्त द्रव्यसे जघन्य यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यको अनन्तगुणा बतलाया है सो इसका कारण सुगम है।

*** उससे जघन्य निषेकस्थितिप्राप्त द्रव्य विशेष अधिक है।**

§ ७४६. एदं पि सुगमं, समाणसामियत्ते वि दव्वगयविसेसमस्सियूण विसेसाहियभावस्स पुव्वमेव समत्थियत्तादो।

❀ जहण्णयमुदयट्ठिदिपत्तयमसंखेज्ज गुणं।

§ ७४७. कुदो? सामित्तभेदाभावे वि सेसकसाएहिंतो पडिच्छियूणुक्कड्डिददव्वमाहप्पेण पुव्विल्लादो एदस्सासंखेज्जगुणत्तदंसणादो। एत्थ गुणगारो असंखेज्जा लोगा।

❀ एवमित्थिवेद-णवुंसयवेद-अरदि-सोगाणं।

§ ७४८. जहा अणंताणुबंधिचउक्कस्स जहण्णट्ठिदिपत्तयाणमप्पाबहुअं परूवियं एवं पयदकम्माणं पि परूवेयव्वं; दव्वट्ठियणयावलंबणे विसेसाणुवलंभादो। पज्जवट्ठियणए पुण अवलंबिज्जमाणे सामित्ताणुसारेण गुणयारविसेसो जाणियव्वो।

एवमप्पाबहुअं समत्तं। तदो ट्ठिदियं ति पदस्स विहासा समत्ता। एत्थेव 'पयडी य मोहणिज्जा' एदिस्से मूलगाहाए अत्थो समत्तो।

तदो पदेसविहत्ती सचूलिया समत्ता।

—:०:—

§ ७४६. यह सूत्र भी सुगम है। यद्यपि यथानिषेक और निषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वामी एक है तथापि द्रव्यगत विशेषताकी अपेक्षासे विशेषाधिकता होती है इसका समर्थन पहले ही कर आये हैं।

❀ उससे जघन्य उदयस्थितिप्राप्त द्रव्य असंख्यातगुणा है।

§ ७४७. क्योंकि यद्यपि निषेकस्थितिप्राप्त और उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वामी एक है तथापि शेष कषायोंसे संक्रमित होकर उत्कर्षणको प्राप्त हुए द्रव्यके माहात्म्यसे पूर्वकी अपेक्षा यह असंख्यातगुणा देखा जाता है। यहाँ पर गुणकारका प्रमाण असंख्यात लोक है।

❀ इसीप्रकार स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति और शोकका अल्पबहुत्व जानना चाहिये।

§ ६४८. जिसप्रकार अनन्तानुबन्धियोंके चारों जघन्य स्थितिप्राप्त द्रव्योंका अल्पबहुत्व कहा है इसीप्रकार प्रकृत कर्मोंके जघन्य स्थितिप्राप्त द्रव्योंका अल्पबहुत्व भी कहना चाहिये, क्योंकि द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा इनके कथनमें कोई विशेषता नहीं पायी जाती। पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करने पर तो स्वामित्वके अनुसार गुणकारविशेष जानना चाहिये।

इसप्रकार अल्पबहुत्वके समाप्त होनेपर 'ट्ठिदियं' पदका विशेष व्याख्यान समाप्त हुआ। तथा यहीं पर 'पयडी य मोहणिज्जा' इस मूल गाथाका अर्थ समाप्त हुआ।

इसप्रकार चूलिका सहित प्रदेशविभक्ति समाप्त हुई।

—:०:—

१ पदेसविहत्तिचुण्णिसुत्ताणि

पुस्तक ६

[१]पदेसविहत्ती दुविहा—मूलपयडिपदेसविहत्ती उत्तरपयडिपदेसविहत्ती च। तत्थ मूलपयडिपदेसविहत्तीए गदाए [२]उत्तरपयडिपदेसविहत्तीए एगजीवेण सामित्तं। [३]मिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेसविहत्ती कस्स? बादरपुढविजीवेसु कम्मट्ठिदिमच्छिदाउओ तदो उवट्टिदो तसकाए वेसागरोवमसहस्साणि सादिरेयाणि अच्छिदाउओ अपच्छिमाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि दोभवग्गहणाणि तत्थ अपच्छिमे तेत्तीसं सागरोवमिए णेरइयभवग्गहणे चरिमसमयणेरइयस्स तस्स मिच्छत्तस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं। [४]एवं बारसकसाय-छण्णोकसायाणं। [५]सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेसविहत्तिओ को होदि? गुणिदकंम्मंसिओ दंसणमोहणीयक्खवओ जम्मि मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्ते पक्खित्तं तम्मि सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेसविहत्तिओ। [६]सम्मत्तस्स वि तेणेव जम्मि सम्मामिच्छत्तं समत्ते पक्खित्तं तस्स सम्मत्तस्स उक्कस्सपदेससंतकम्मं। [७]णवुंसयवेदस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं कस्स? गुणिदकम्मंसिओ ईसाणं गदो तस्स चरिमसमयदेवस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं। [८]इत्थिवेदस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं कस्स? गुणिदकम्मंसिओ असंखेज्जवस्साउए गदो तम्मि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण जम्हि पूरिदो तस्स इत्थिवेदस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं। [९]पुरिसवेदस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं कस्स? गुणिदकम्मंसिओ ईसाणेसु णवुंसयवेदं पूरेदूण तदो कमेण असंखेज्जवस्साउएसु उववण्णो। तत्थ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण इत्थिवेदो पूरिदो। तदो सम्मत्तं लब्भिदूण मदो पलिदोवमट्ठिदीओ देवो जादो। तत्थ तेणेव पुरिसवेदो पूरिदो। तदो चुदो मणुसो जादो सव्वलहुं कसाए खवेदि। तदो णवुंसयवेदं पक्खिविदूण जम्हि इत्थिवेदो पक्खित्तो तस्समए पुरिसवेदस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं। [१०]तेणेव जाधे पुरिसवेद-छण्णोकसायाणं पदेसग्गं कोधसंजलणे [११]पक्खित्तं ताधे कोधसंजलणस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं। [१२]एसेव कोधो जाधे माणे पक्खित्तो ताधे माणस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं। [१३]एसेव माणो जाधे मायाए पक्खित्तो ताधे मायासंजलणस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं। एसेव माया जाधे लोभसंजलणे पक्खित्ता ताधे लोभसंजलणस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं।

---

(१) पृ० २। (२) पृ० ६०। (३) पृ० ७२। (४) पृ० ७६। (५) पृ० ८१। (६) पृ० ८८। (७) पृ० ९१। (८) पृ० ९६। (९) पृ० १०४। (१०) पृ० ११०। (११) पृ० १११। (१२) पृ० ११३। (१३) पृ० ११४।

[1]मिच्छत्तस्स जहण्णपदेससंतकम्मिओ को होदि ? सुहुमणिगोदेसु कम्मट्ठिदिमच्छिदाउओ तत्थ सव्वबहुआणि अपज्जत्तभवग्गहणाणि दीहाओ अपज्जत्तद्धाओ तप्पाओग्गजहण्णयाणि जोगट्ठाणाणि अभिक्खं गदो। तदो तप्पाओग्गजहण्णियाए वड्ढीए वड्ढिदो। जदा जदा आउअं बंधदि तदा तदा तप्पाओग्गउक्कस्सएसु जोगट्ठाणेसु वट्टदि हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदेसतप्पाओग्गं उक्कस्सविसोहिमभिक्खं गदो। जाधे अभवसिद्धियपाओग्गं जहण्णगं कम्मं कदं तदो तसेसु आगदो। संजमासंजमं संजमं सम्मत्तं च बहुसो लद्धो। चत्तारि वारे कसाए उवसामित्ता तदो वेछावट्ठिसागरोवमाणि सम्मत्तमणुपालेदूण तदो दंसणमोहणीयं खवेदि। अपच्छिमट्ठिदिखंडयमविणिज्जमाणयमवणिदमुदयावलियाए जं तं गलमाणं तं गलिदं। जाधे एक्किस्से ट्ठिदीए दुसमयकालट्ठिदिगं सेसं ताधे मिच्छत्तस्स जहण्णयं पदेससंतकम्मं। [2]तदो पदेसुत्तरं दुपदेसुत्तरमेवमणंताणि ट्ठाणाणि तम्मि ट्ठिदिविसेसे। [3]केण कारणेण ? जं तं जहाक्खयागदं तदो उक्कस्सयं पि समयपबद्धमेत्तं। [4]जो पुण तम्मि एक्कम्मि ट्ठिदिविसेसे उक्कस्सगस्स विसेसो असंखेज्जा समयपबद्धा। [5]तस्स पुण जहण्णयस्स संतकम्मस्स असंखेज्जदिभागो। [6]एदेण कारणेण एयं फद्दयं। [7]दोसु ट्ठिदिविसेसेसु विदियं फद्दयं। [8]एवमावलियसमयूणमेत्ताणि फद्दयाणि। [9]अपच्छिमस्स ट्ठिदिखंडयस्स चरिमसमयजहण्णफद्दयमादिं कादूण जाव मिच्छत्तस्स उक्कस्सं ति एदमेगं फद्दयं।

[10]सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णयं पदेससंतकम्मं कस्स ? तथा चेव सुहुमणिगोदेसु कम्मट्ठिदिमच्छिदूण तदो तसेसु संजमासंजमं संजमं सम्मत्तं च बहुसो लद्धूण चत्तारि वारे कसाए उवसामेदूण वेछावट्ठिसागरोवमाणि सम्मत्तमणुपालेदूण मिच्छत्तं गदो। दीहाए उव्वेलणद्धाए उव्वेलिदं तस्स जाधे सव्वं उव्वेल्लिदं उदयावलिया गलिदा जाधे दुसमयकालट्ठिदियं एक्कम्मि ट्ठिदिविसेसे सेसं ताधे सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णं पदेससंतकम्मं। [11]तदो पदेसुत्तरं। [12]दुपदेसुत्तरं। णिरंतराणि ट्ठाणाणि उक्कस्सपदेससंतकम्मं ति। [13]एवं चेव सम्मत्तस्स वि। [14]दोण्हं पि एदेसिं संतकम्माणमेगं फद्दयं।

[15]अट्ठण्हं कसायाणं जहण्णयं पदेससंतकम्मं कस्स ? अभवसिद्धियपाओग्गजहण्णयं काऊण तसेसु आगदो संजमासंजमं संजमं सम्मत्तं च बहुसो लद्धूण चत्तारिवारे कसाए उवसामिदूण एइंदिए गदो। तत्थ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमच्छिदूण कम्मं हदसमुप्पत्तियं कादूण कालं गदो तसेसु आगदो कसाए खवेदि

(१) पृ० १२४-१२५। (२) पृ० १५६। (३) पृ० १५७। (४) पृ० १५६। (५) पृ० १६२। (६) पृ० १६३। (७) पृ० १६४। (८) पृ० १६६। (६) पृ० १६७। (१०) पृ० २०२-२०३। (११) पृ० २१७। (१२) पृ० २१८। (१३) पृ० २४४। (१४) पृ० २४५। (१५) पृ० २४६।

अपच्छिमे ट्ठिदिखंडए अवगदे अधट्ठिदिगलणाए उदयावलियाए गलंतीए एक्किस्से ट्ठिदीए सेसाए तम्मि जहण्णयं पदं। [1]तदो पदेसुत्तरं। णिरंतराणि ट्ठाणाणि जाव एगट्ठिदिविसेसस्स उक्कस्सपदं। एदमेगफद्दयं। एदेण कमेण अट्ठण्हं पि कसायाणं समयणूणावलियमेत्ताणि फद्दयाणि उदयावलियादो। [2]अपच्छिमट्ठिदिखंडयस्स चरमसमयजहण्णपदमादिं कादूण जावुक्कस्सपदेससंतकम्मं ति एदमेगं फद्दयं।

[3]अणंताणुबंधीणं मिच्छत्तभंगो। [4]णवुंसयवेदस्स जहण्णयं पदेससंतकम्मं कस्स? तधा चेव अभवसिद्धियपाओग्गेण जहण्णेण संतकम्मेण तसेसु आगदो संजमासंजमं संजमं सम्मत्तं च बहुसो लद्धूण चत्तारि बारे कसाए उवसामिदूण तदो तिपलिदोवमिएसु उववण्णो। तत्थ अंतोमुहुत्तावसेसे जीविदव्वए त्ति सम्मत्तं घेत्तूण वेछावट्ठिसागरोवमाणि सम्मत्तद्धमणुपालिदूण मिच्छत्तं गंतूण णवुंसयवेदमणुस्सेसु उववण्णो। सव्वचिरं संजममणुपालिदूण खवेदुमाढत्तो। तदो तेण अपच्छिमट्ठिदिखंडयं संछुहमाणं संछुद्धं। उदओ णवरि णिरवसेसो तस्स चरिमसमयणवुंसयवेदस्स जहण्णयं पदेससंतकम्मं। [5]तदो पदेसुत्तरं। णिरंतराणि ट्ठाणाणि जाव तप्पाओग्गो उक्कस्सओ उदओ त्ति। [6]एदमेगं फद्दयं। [7]अपच्छिमस्स ट्ठिदिखंडयस्स चरिमसमयजहण्णपदमादिं कादूण जाव उक्कस्सपदेससंतकम्मं णिरंतराणि ट्ठाणाणि। [8]एवं णवुंसयवेदस्स दो फद्दयाणि। एवमित्थिवेदस्स। णवरि तिपलिदोवमिएसु णो उववण्णो। पुरिसवेदस्स जहण्णयं पदेससंतकम्मं कस्स? चरिमसमयपुरिसवेदोदयक्खवगेण घोलमाणजहण्णजोगट्ठाणे वट्टमाणेण जं कम्मं बद्धं तं कम्ममावलियसमयअवेदो संकामेदि। जत्तो पाए संकामेदि तत्तो पाए सो समयपबद्धो आवलियाए अकम्मं होदि। तदो एगसमयमोसक्किदूण जहण्णयं पदेससंतकम्मट्ठाणं। [9]तस्स कारणमिमा परूवणा कायव्वा। पढमसमयअवेदगस्स केत्तिया समयपबद्धा। दो आवलियाओ दुसमऊणाओ। केण कारणेण? [10]जं चरिमसमयसवेदेण बद्धं तमवेदस्स विदियाए आवलियाए तिचरिमसमयादो त्ति दिस्सदि दुचरिमसमए अकम्मं होदि। जं दुचरिमसमयसवेदेण बद्धं तमवेदस्स विदियाए आवलियाए चदुचरिमसमयादो त्ति दिस्सदि। तिचरिमसमए अकम्मं होदि। [11]एदेण कमेण चरिमावलियाए पढमसमयसवेदेण जं बद्धं तमवेदस्स पढमावलियाए चरिमसमए अकम्मं होदि। जं सवेदस्स दुचरिमाए आवलियाए पढमसमए पबद्धं तं चरिम[12]समयसवेदस्स अकम्मं होदि। जं तिस्से चेव दुचरिमसमयसवेदावलियाए विदियसमए बद्धं तं पढमसमयअवेदस्स अकम्मं होदि। एदेण

(१) पृ० २५३। (२) पृ० २५५। (३) पृ० २५६। (४) पृ० २६७-२६८। (५) पृ० २७४। (६) पृ० २८२। (७) पृ० २८३। (८) पृ० २९१। (९) पृ० २९३। (१०) पृ० २९४। (११) पृ० २९५। (१२) पृ० २९६।

कारणेण वेसमयपबद्धेण लहदि अवगदवेदो । सवेदस्स दुचरिमावलियाए दुसमयूणाए चरिमावलियाए सव्वे [1]च एदे समयपबद्धे अवेदो लहदि । एसा ताव एक्का परूवणा । [2]इमा अण्णा परूवणा । दोहि चरिमसमयसवेदेहि तुल्लजोगेहि बद्धं कम्मं तेसिं तं संतकम्मं चरिमसमयअणिल्लेविदं पि तुल्लं । दुचरिमसमयअणिल्लेविदं पि तुल्लं । एवं सव्वत्थ । [3]एदाहि दोहि परूवणाहि पदेससंतकम्मट्ठाणाणि परूवेदव्वाणि । [4]जहा— जो चरिमसमयसवेदेण बद्धो समयपबद्धो तम्हि चरिमसमयअणिल्लेविदे घोलमाण-जहण्णजोगट्ठाणमादिं कादूण जत्तियाणि जोगट्ठाणाणि तत्तियमेत्ताणि संतकम्मट्ठाणाणि । [5]चरिमसमयसवेदेण उक्कस्सजोगेणे त्ति दुचरिमसमयसवेदेण जहण्णजोगट्ठाणेणे त्ति एत्थ जोगट्ठाणमेत्ताणि [संतकम्मट्ठाणाणि] लब्भंति । [6]चरिमसमयसवेदो उक्कस्सजोगो दुचरिमसमयसवेदो उक्कस्सजोगो तिचरिमसमयसवेदो अण्णदरजोगट्ठाणे त्ति एत्थ पुण जोगट्ठाणमेत्ताणि पदेससंतकम्मट्ठाणाणि [लब्भंति] । [7]एवं जोगट्ठाणाणि दोहि आवलियाहि दुसमयूणाहि पदुप्पण्णाणि । एत्तियाणि अवेदस्स संतकम्मट्ठाणाणि सांतराणि सव्वाणि । [8]चरिमसमयसवेदस्स एगं फद्दयं । [9]दुचरिमसमयसवेदस्स चरमट्ठिदिखंडगं चरिमसमयविणट्ठं । [10]तस्स दुचरिमसमयसवेदस्स जहण्णगं संतकम्म-मादिं कादूण जाव पुरिसवेदस्स ओघुक्कस्सपदेससंतकम्मं ति एदमेगं फद्दयं ।

[11]कोधसंजलणस्स जहण्णयं पदेससंतकम्मं कस्स ? चरिमसमयकोधवेदगेण खवगेण जहण्णजोगट्ठाणे जं बद्धं तं जं वेलं चरिमसमयअणिल्लेविदं तस्स जहण्णयं संतकम्मं । [12]जहा पुरिसवेदस्स दोआवलियाहि दुसमऊणाहि जोगट्ठाणाणि पदु-प्पण्णाणि एवदियाणि संतकम्मट्ठाणाणि सांतराणि । एवमावलियाए समऊणाए जोगट्ठाणाणि पदुप्पण्णाणि एत्तियाणि कोधसंजलणस्स सांतराणि संतकम्मट्ठाणाणि । [13]कोधसंजलणस्स उदए वोच्छिण्णे जा पढमावलिया तत्थ गुणसेढी पविट्ठल्लिया । तिस्से आवलियाए चरिमसमए एगं फद्दयं । [14]दुचरिमसमए अण्णं फद्दयं । [15]एव-मावलियसमयूणमेत्ताणि फद्दयाणि । चरिमसमयकोधवेदयस्स खवयस्स चरिमसमय-अणिल्लेविदं खंडयं होदि । तस्स जहण्णसंतकम्ममादिं कादूण जाव ओघुक्कस्सं कोधसंजलणस्स संतकम्मं ति एदमेगं फद्दयं ।

[16]जहा कोधसंजलणस्स तहा माण-मायासंजलणाणं । [17]लोभसंजलणस्स जहण्णगं पदेससंतकम्मं कस्स ? अभवसिद्धियपाओग्गेण जहण्णगेण कम्मेण तसकायं गदो ।

(१) पृ० २९७ । (२) पृ० २९८ । (३) पृ० २९९ । (४) पृ० ३०१ । (५) पृ० ३१५ । (६) पृ० ३१७ । (७) पृ० ३१९ । (८) पृ० ३७३ । (९) पृ० ३७५ । (१०) पृ० ३७६ । (११) पृ० ३७७ । (१२) पृ० ३७८ । (१३) पृ० ३७९ । (१४) पृ० ३८० । (१५) पृ० ३८१ । (१६) पृ० ३८२ । (१७) पृ० ३८३ ।

तम्मि संजमासंजमं संजमं च बहुवारं लद्धाउओ कसाए च उवसामिदाउओ। तदो कमेण मणुस्सेसुववण्णो। दीहं संजमद्धमणुपालेदूण कसायक्खवणाए अब्भुट्ठिदो तस्स चरिमसमयअधापवत्तकरणे जहण्णगं लोभसंजलणस्स पदेससंतकम्मं। [1]एदमादिं कादूण जावुक्कस्सयं संतकम्मं णिरंतराणि ट्ठाणाणि। [2]छण्णोकसायाणं जहण्णयं पदेससंतकम्मं कस्स? अभवसिद्धियपाओग्गेण जहण्णएण कम्मेण तसेसु आगदो। तत्थ संजमासंजमं संजमं च बहुसो लद्धो। चत्तारि वारं कसाए उवसामेदूण तदो कमेण मणुसो जादो। तत्थ दीहं संजमद्धं कादूण खवणाए अब्भुट्ठिदो तस्स चरिमसमयट्ठिदिखंडए चरिमसमयअणिल्लेविदे छण्णं कम्मंसाणं जहण्णयं पदेससंतकम्मं। [3]तदादियं जाव उक्कस्सियादो एगमेव फद्दयं।

पुस्तक ७

[4]कालो। [5]मिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेसविहत्तिओ केवचिरं कालादो होदि? जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। अणुक्कस्सपदेसविहत्तिओ केवचिरं कालादो होदि? जहण्णुक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। [6]अण्णोवदेसो जहण्णेण असंखेज्जा लोगा त्ति। अधवा खवगं पडुच्च वासपुधत्तं। [7]एवं सेसाणं कम्माणं णादूण णेदव्वं। [8]णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमणुक्कस्सदव्वकालो जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। [9]उक्कस्सेण वेछावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि। [10]जहण्णकालो जाणिदूण णेदव्वो।

[11]अंतरं। मिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेससंतकम्मियंतरं जहण्णुक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। [12]एवं सेसाणं कम्माणं णेदव्वं। णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पुरिसवेद-चदुसंजललणाणं च उक्कस्सपदेसविहत्तिअंतरं णत्थि। [13]अंतरं जहण्णयं जाणिदूण णेदव्वं।

[14]णाणाजीवेहि भंगविचओ दुविहो जहण्णुक्कस्सभेदेहि। अट्ठपदं कादूण सव्वकम्माणं णेदव्वो। [15]सव्वकमाणं णाणाजीवेहि कालो कायव्वो। [16]अंतरं णाणाजीवेहि सव्वकमाणं जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा।

[17]अप्पाबहुअं। सव्वत्थोवमपच्चक्खाणमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं। [18]कोधे उक्कस्सपदेससंतकमं विसेसाहियं। मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। पच्चक्खाणमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। [19]कोधे उक्कस्सपदेसंतकम्मं विसेसाहियं। मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

---

(१) पृ० ३८४। (२) पृ० ३८५-३८६। (३) पृ० ३८६। (४) पृ० १। (५) पृ० २। (६) पृ० ३। (७) पृ० ४। (८) पृ० ५। (९) पृ० ६। (१०) पृ० ७। (११) पृ० २५। (१२) पृ० २६। (१३) पृ० २७। (१४) ३७। (१५) पृ० ५०। (१६) पृ० ५३। (१७) पृ० ७४। (१८) पृ० ७५। (१९) पृ० ७६।

लोभस्स उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। अणंताणुबंधिमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। कोधे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। सम्मामिच्छत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। [1]सम्मत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। मिच्छत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। हस्से उक्कस्सपदेससंतकम्ममणंतगुणं। [2]रदीए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। इत्थिवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं। [3]सोगे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। अरदीए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। णवुंसयवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। दुगुंछाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। [4]भए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। पुरिसवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। कोधसंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं। [5]माणसंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। मायासंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। लोभसंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

णिरयगदीए सव्वत्थोवं सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेससंतकम्मं। [6]अपच्चक्खाणमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं। कोधे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। पच्चक्खाणमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। [7]कोहे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। अणंताणुबंधिमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। कोधे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। सम्मत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। [8]मिच्छत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। हस्से उक्कस्सपदेससंतकम्ममणंतगुणं। [9]रदीए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। इत्थिवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं। [10]सोगे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। अरदीए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। णवुंसयवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। दुगुंछाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। भए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। [11]पुरिसवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। माणसंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। [12]कोधसंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। मायासंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। लोभसंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। एवं सेसाणं गदीणं णादूण णेदव्वं।

---

(१) पृ० ७८। (२) पृ० ७९। (३) पृ० ८०। (४) पृ० ८१। (५) पृ० ८२। (६) पृ० ८३। (७) पृ० ८४। (८) पृ० ८५। (९) पृ० ८६। (१०) पृ० ८७। (११) पृ० ८८। (१२) पृ० ९०।

[1]एइंदिएसु सव्वत्थोवं सम्मत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्मं । [2]सम्मामिच्छत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं । [3]अपच्चक्खाणमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं । कोहे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । [4]मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । पच्चक्खाणमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । कोहे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । [5]मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । अणंताणुबंधिमाणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । कोहे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । [6]लोभे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । मिच्छत्ते उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । हस्से उक्कस्सपदेससंतकम्ममणंतगुणं । रदीए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । [7]इत्थिवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं । सोगे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । अरदीए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । णवुंसयवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । [8]दुगुंछाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । भए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । पुरिसवेदे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । माणसंजलणे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । कोहे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । मायाए उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । [9]लोहे उक्कस्सपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

जहण्णदंडओ ओघेण सकारणो भणिहिदि । [10]सव्वत्थोवं समत्ते जहण्णपदेससंतकम्मं । [11]सम्मामिच्छत्ते जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं । [12]केण कारणेण ? [13]सम्मत्ते उव्वेल्लिदे सम्मामिच्छत्तं जेण कालेण उव्वेल्लेदि एदम्मि काले एक्कं पि पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरं णत्थि एदेण कारणेण । [14]अणंताणुबंधिमाणे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं । [15]कोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । लोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । मिच्छत्ते जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं । [16]अपच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं । [17]कोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । लोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । पच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । [18]कोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । लोभे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । कोहसंजलणे जहण्णपदेस-

(१) पृ० ९१ । (२) पृ० ९२ । (३) पृ० ९३ । (४) पृ० ९४ । (५) पृ० ९५ । (६) पृ० ९६ । (७) पृ० ९७ । (८) पृ० ९८ । (९) पृ० ९९ । (१०) पृ० १०० । (११) पृ० १०२ । (१२) पृ० १०३ । (१३) पृ० १०४ । (१४) पृ० १०५ । (१५) पृ० १०७ । (१६) पृ० १०९ । (१७) पृ० ११० । (१८) पृ० १११ ।

संतकम्ममणंतगुणं । [1]माणसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । पुरिसवेदे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । [2]मायासंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। णवुंसयवेदे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं । इत्थिवेदस्स जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । [3]हस्से जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं । [4]रदीए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । सोगे जहण्णपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं । अरदीए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । दुगुंछाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । [5]भए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । लोभसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

णिरयगइए सव्वत्थोवं समत्ते जहण्णपदेससंतकम्मं । [6]सम्मामिच्छत्ते जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं । अणंताणुबंधिमाणे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं । कोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । लोभे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । मिच्छत्ते जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं । [7]अपच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं । [8]कोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । लोभे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । पच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । कोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । [9]लोभे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । इत्थिवेदे जहण्णपदेससंतकम्ममणंतगुणं । णवुंसयवेदे जहण्जपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं । पुरिसवेदे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं । [10]हस्से जहण्णपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं । रदीए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । सोगे जहण्णपदेसंतकम्मं संखेज्जगुणं । अरदीए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । दुगुंछाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । [11]भए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । माणसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । कोहसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । मायासंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । लोहसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । [12]जहा णिरयगईए तहा सव्वासु गईसु । णवरि मणुसगदीए ओघं ।

[13]एइंदिएसु सव्वत्थोवं सम्मत्ते जहण्णपदेससंतकम्मं । सम्मामिच्छत्ते जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं । अणंताणुबंधिमाणे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं । [14]कोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं । मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं ।

---

(१) पृ० ११२ । (२) पृ० ११३ । (३) पृ० ११४ । (४) पृ० ११५ । (५) पृ० ११६ । (६) पृ० ११७ । (७) पृ० ११८ । (८) पृ० ११९ । (९) पृ०१२० । (१०) पृ० १२१ । (११) पृ० १२२ । (१२) पृ० १२३ । (१३) पृ० १२४ । (१४) पृ० १२६ ।

लोभे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। मिच्छत्ते जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं। [1]अपच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंतकम्ममसंखेज्जगुणं। कोधे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। लोभे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। [2]पच्चक्खाणमाणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। कोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। मायाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। लोहे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। पुरिसवेदे जहण्णपदेससंतकम्ममणंतगुणं। इत्थिवेदे जहण्णपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं। [3]हस्से जहण्णपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं। रदीए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। सोगे जहण्णपदेससंतकम्मं संखेज्जगुणं। [4]अरदीए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। णवुंसयवेदे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। दुगुंछाए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। भए जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। माणसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। कोहसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। मायासंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं। [5]लोभसंजलणे जहण्णपदेससंतकम्मं विसेसाहियं।

एत्तो भुजगारं [6]पदणिक्खेव-वड्ढीओ च कायव्वाओ। जहा उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं तहा संतकम्मट्ठाणाणि। एवं पदेसविहत्ती समत्ता।

झीणाझीणचूलिया

[7]एत्तो झीणमझीणं ति पदस्स विहासा कायव्वा। [8]तं जहा। अत्थि ओकड्डुणादो झीणट्ठिदियं उक्कड्डुणादो झीणट्ठिदियं संकमणादो झीणट्ठिदियं उदयादो झीणट्ठिदियं। [9]ओकड्डुणादो झीणट्ठिदियं णाम किं? जं कम्ममुदयावलियब्भंतरे ट्ठियं तमोकड्डुणादो झीणट्ठिदियं। जमुदयावलियबाहिरे ट्ठिदं तमोकड्डुणादो अज्झीणट्ठिदियं। [10]उक्कणादो झीणट्ठिदियं णाम किं? जं ताव उदयावलियपविट्ठं तं ताव उक्कड्डुणादो झीणट्ठिदियं [11]उदयावलिबाहिरे वि अत्थि पदेसग्गमुक्कड्डुणादो झीणट्ठिदियं। तस्स णिदरिसणं। तं जहा—जा समयाहियाए उदयावलियाए ट्ठिदी एदिस्से ट्ठिदीए जं पदेसग्गं तमादिट्ठं। [12]तस्स पदेसग्गस्स जइ समयाहियाए आवलियाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता बद्धस्स तं कम्मं ण सक्का उक्कड्डिदुं। [13]तस्सेव पदेसग्गस्स जइ वि दुसमयाहियाए आवलियाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता तं पि उक्कड्डुणादो झीणट्ठिदियं। [14]एवं गंतूण जदि वि जहण्णियाए आवाहाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता तं पि

(१) पृ० १२६। (२) पृ० १३०। (३) पृ० १३१। (४) पृ० १३२। (५) पृ० १३३। (६) पृ० १७१। (७) पृ० २३५। (८) पृ० २३७। (९) पृ० २३९। (१०) पृ० २४२। (११) पृ० २४३। (१२) पृ० २४४। (१३) पृ० २४५। (१४) पृ० २४६।

उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं। [1]समयुत्तराए उदयावलियाए तिस्से ट्ठिदीए जं पदेसग्गं तस्स पदेसग्गस्स जइ जहण्णियाए आबाहाए समयुत्तराए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता तं पदेसग्गं सक्का आबाधामेत्तमुक्कड्डिउमेकिस्से ट्ठिदीए णिसिंचिदुं। [2]जइ दुसमयाहियाए आबाहाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता तिसमयाहियाए वा आबाहाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता। एवं गंतूण वासेण वा वासपुधत्तेण वा सागरोवमेण वा सागरोवमपुधत्तेण वा ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता तं सव्वं पदेसग्गं उक्कड्डणादो अज्झीणट्ठिदियं।

[3]समयाहियाए उदयावलियाए तिस्से चेव ट्ठिदीए पदेसग्गस्स एगो समओ पबद्धस्स अइच्छिदो त्ति अवत्थु। दो समया पबद्धस्स अइच्छिदा त्ति अवत्थु। तिण्णि समया पबद्धस्स अइच्छिदा त्ति अवत्थु। एवं णिरंतरं गंतूण आवलिया पबद्धस्स अइच्छिदा त्ति अवत्थु। [4]तिस्से चेव ट्ठिदीए पदेसग्गस्स समयुत्तरावलिया बद्धस्स अइच्छिदा त्ति एसो आदेसो होज्ज। [5]तं पुण पदेसग्गं कम्मट्ठिदिं णो सक्का उक्कड्डिदुं। समयाहियाए आवलियाए ऊणियं कम्मट्ठिदिं सक्का उक्कड्डिदुं। [6]एदे वियप्पा जा समयाहियउदयावलिया तिस्से ट्ठिदीए पदेसग्गस्स। [7]एदे चेय वियप्पा अपरिसेसा जा दुसमयाहिया उदयावलिया तिस्से ट्ठिदीए पदेसग्गस्स। [8]एवं तिसमयाहियाए चदुसमयाहियाए जाव आबाधाए आवलियूणाए एवदिमादो त्ति।

[9]आवलियाए समयूणाए ऊणियाए आबाहाए एवदिमाए ट्ठिदीए जं पदेसग्गं तस्स के वियप्पा? [10]जस्स पदेसग्गस्स समयाहियाए आवलियाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता तं पि पदेसग्गमेदिस्से ट्ठिदीए णत्थि। जस्स पदेसग्गस्स दुसमयाहियाए आवलियाए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता तं पि णत्थि। [11]एवं गंतूण जद्देही एसा ट्ठिदी एत्तिएण ऊणा कम्मट्ठिदी विदिक्कंता जस्स पदेसग्गस्स तमेदिस्से ट्ठिदीए पदेसग्गं होज्ज। तं पुण उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं। एदं ट्ठिदिमादिं कादूण जाव जहण्णियाए आबाहाए एत्तिएण ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता जस्स पदेसग्गस्स तं पि पदेसग्गमेदिस्से ट्ठिदीए होज्ज। तं पुण सव्वमुक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं। [12]आबाधाए समयुत्तराए ऊणिया कम्मट्ठिदी विदिक्कंता जस्स पदेसग्गस्स तं पि एदिस्से ट्ठिदीए पदेसग्गं होज्ज। तं पुण उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं। [13]तेण परमज्झीणट्ठिदियं। [14]समयूणाए आवलियाए ऊणिया आबाहा एदिस्से ट्ठिदीए वियप्पा समत्ता।

---

(१) पृ० २४७। (२) पृ० २४८। (३) पृ० २५१। (४) पृ० २५२। (५) पृ० २५३। (६) पृ० २५७। (७) पृ० २५८। (८) पृ० २६०। (९) पृ० २६१। (१०) पृ० २६२। (११) पृ० २६३। (१२) पृ० २६४। (१३) पृ० २६५। (१४) पृ० २६६।

एदादो ट्ठिदीदो समयुत्ताए ट्ठिदीए वियप्पे भणिस्सामो।[1] सा पुण का ट्ठिदी। दुसमयूणाए आवलियाए ऊणिया जा आबाहा एसा सा ट्ठिदी। इदाणिमेदिस्से ट्ठिदीए अवत्थुवियप्पा केत्तिया? जावदिया हेट्ठिल्लियाए ट्ठिदीए अवत्थुवियप्पा तदो रूवुत्तरा। [2]जट्ठेही एसा ट्ठिदी तत्तियं ट्ठिदिसंतकम्मं कम्मट्ठिदीए सेसयं जस्स पदेसग्गस्स तं पदेसग्गमेदिस्से ट्ठिदीए होज्ज। तं पुण उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं। एदादो ट्ठिदीदो समयुत्तरट्ठिदिसंतकम्मं कम्मट्ठिदीए सेसयं जस्स पदेसग्गस्स तमुक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं। एवं गंतूण आबाहामेत्तट्ठिदिसंतकम्मं कम्मट्ठिदीए सेसं जस्स पदेसग्गस्स एदीए ट्ठिदीए दीसइ तं पि उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं। [3]आबाहासमयुत्तरमेत्तं ट्ठिदिसंतकम्मं कम्मट्ठिदीए सेसं जस्स पदेसग्गस्स तं पि उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं। आबाधा दुसमयुत्तरमेत्तट्ठिदिसंतकम्मं कम्मट्ठिदीए सेसं जस्स पदेसग्गस्स एदिस्से ट्ठिदीए दिस्सइ तं पि पदेसग्गमुक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं। [4]तेण परमुक्कड्डणादो अज्झीणट्ठिदियं। दुसमयूणाए आवलियाए ऊणिया आबाहा एवडिमाए ट्ठिदीए वियप्पा समत्ता।

एत्तो समयुत्तराए ट्ठिदीए वियप्पे भणिस्सामो। एत्तो पुण ट्ठिदीदो समयुत्तरा ट्ठिदी कदमा? जहण्णिया आबाहा तिसमयूणाए आवलियाए ऊणिया एवडिमा ट्ठिदी। [5]एदिस्से ट्ठिदीए एत्तिया चेव वियप्पा। णवरि अवत्थुवियप्पा रूवुत्तरा। एस कमो जाव जहण्णिया आबाहा समयुत्तरा त्ति। [6]जहण्णियाए आबाहाए दुसमयुत्तराए पहुडि णत्थि उक्कड्डणादो झीणट्ठिदियं। [7]एवमुक्कड्डणादो झीणट्ठिदियस्स अट्ठपदं समत्तं।

एत्तो संकमणादो झीणट्ठिदियं। जं उदयावलियपविट्ठं तं, णत्थि अण्णो वियप्पो।

[8]उदयादो झीणट्ठिदियं। जमुदिण्णं तं, णत्थि अण्णं।

[9]एत्तो एगेगझीणट्ठिदियमुक्कस्सयमणुक्कस्सयं जहण्णयमजहण्णयं च।

सामित्तं। [10]मिच्छत्तस्स उक्कस्सयमोकड्डणादो झीणट्ठिदियं कस्स? गुणिदकम्मंसियस्स सव्वलहुं दंसणमोहणीयं खवेंतस्स अपच्छिमट्ठिदिखंडयं संछुब्भमाणयं संछुद्धमावलिया समयूणा सेसा तस्स उक्कस्सयमोकड्डणादो झीणट्ठिदियं। [11]तस्सेव उक्कस्सयमुक्कड्डणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं। उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स? [12]गुणिदकम्मंसिओ संजमासंजमगुणसेढी संजमगुणसेढी च एदाओ गुणसेढीओ

---

(१) पृ० २६७। (२) पृ० २६८। (३) पृ० २६९। (४) पृ० २७०। (५) पृ० २७१। (६) पृ० २७२। (७) पृ० २७३। (८) पृ० २७४। (९) पृ० २७५। (१०) पृ० २७६। (११) पृ० २७८। (१२) पृ० २७९।

काऊण मिच्छत्तं गदो। जाधे गुणसेढिसीसयाणि पढमसमयमिच्छादिट्ठिस्स उदयमागयाणि ताधे तस्स उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं।

[1]सम्मत्तस्स उक्कस्सयमोकड्डणादो उक्कड्डणादो संकमणादो उदयादो च झीणट्ठिदियं कस्स? गुणिदकम्मंसिओ सव्वलहुं दंसणमोहणीयं कम्मं खवेदुमाढत्तो [2]अधट्ठिदियं गलंतं जाधे उदयावलियं पविस्समाणं पविट्ठं ताधे उक्कस्सयमोकड्डणादो वि उक्कड्डणादो वि संकमणादो वि झीणट्ठिदियं। [3]तस्सेव चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स सव्वमुदयं तमुक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं।

[4]सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सयमोकड्डणादो उक्कड्डणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं कस्स? गुणिदकम्मंसियस्स सव्वलहुं दंसणमोहणीयं खवेमाणस्स सम्मामिच्छत्तस्स अपच्छिमट्ठिदिखंडयं संछुब्भमाणयं संछुद्धं उदयावलिया उदयवज्जा [5]भरिदल्लिया तस्स उक्कस्सयमोकड्डणादो उक्कड्डणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं। उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स? गुणिदकम्मंसिओ संजमासंजम-संजमगुणसेढीओ काऊण ताधे गदो सम्मामिच्छत्तं जाधे गुणसेढिसीसयाणि पढमसमयसम्मामिच्छाइट्ठिस्स [6]उदयमागदाणि ताधे तस्स पढमसमयसम्मामिच्छाइट्ठिस्स उक्कस्समुदयादो झीणट्ठिदियं।

[7]अणंताणुबंधीणमुक्कस्सयमोकड्डणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स? गुणिदकम्मंसिओ संजमासंजम-संजमगुणसेढीहि अविणट्ठाहि अणंताणुबंधी विसंजोएदुमाढत्तो तेसिमपच्छिमट्ठिदिखंडयं संछुब्भमाणयं संछुद्धं तस्स उक्कस्सयमोकड्डणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं। [8]उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स? संजमासंजम-संजमगुणसेढीओ काऊण तत्थ मिच्छत्तं गदो जाधे गुणसेढिसीसयाणि पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स उदयमागयाणि ताधे तस्स पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं।

[9]अट्ठण्हं कसायाणमुक्कस्सयमोकड्डणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स? गुणिदकम्मंसिओ कसायक्खवणाए अब्भुट्ठिदो जाधे अट्ठण्हं [10]कसायाणमपच्छिमट्ठिदिखंडयं संछुब्भमाणयं संछुद्धं ताधे उक्कस्सयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं। उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स? [11]गुणिदकम्मंसियस्स संजमासंजम-संजम-दंसणमोहणीयक्खवणगुणसेढीओ एदाओ तिण्णि गुणसेढीओ काऊण असंजमं गदो तस्स पढमसमयअसंजदस्स गुणसेढिसीसयाणि उदयमागदाणि तस्स अट्ठकसायाणमुक्कस्सयमुदयादो-झीणट्ठिदियं।

[12]कोहसंजलणस्स उक्कस्सयमोकड्डणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स? गुणिद-

(१) पृ० २८४। (२) २८५। (३) पृ० २८६। (४) पृ० २८७। (५) २८८। (६) पृ० २८९। (७) पृ० २९२। (८) पृ० २९३। (९) पृ० २९४। (१०) पृ० २९५। (११) पृ० २९६। (१२) पृ० ३००।

कम्मंसियस्स कोधं खवेंतस्स चरिमट्ठिदिखंडयचरिमसमयअसंछुहमाणयस्स उक्कस्सयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं। [1]उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं पि तस्सेव। एवं चेव माणसंजलणस्स। णवरि माणट्ठिदिकंडयं चरिमसमयअसंछुहमाणयस्स तस्स चत्तारि वि उक्कस्सयाणि झीणट्ठिदियाणि। [2]एवं चेव मायासंजलणस्स। णवरि मायाट्ठिदिकंडयं चरिमसमय-असंछुहमाणयस्स तस्स चत्तारि वि उक्कस्सयाणि झीणट्ठिदियाणि। लोहसंजलणस्स उक्कस्सयमोकड्डणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स? गुणिदकम्मंसियस्स सव्वसंत-कम्ममावलियं पविस्समाणयं पविट्ठं ताधे उक्कस्सयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं। [3]उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स? चरिमसमयसकसायक्खवगस्स।

[4]इत्थिवेदस्स उक्कस्सयमोकड्डणादिचउण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स? इत्थिवेद-पूरिदकम्मंसियस्स आवलियचरिमसमयअसंछोहयस्स तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि उक्कस्सयाणि। [5]उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं चरिमसमयइत्थिवेदक्खवयस्स।

पुरिसवेदस्स उक्कस्सयमोकड्डणादिचदुण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स? [6]गुणिदकम्मं-सियस्स पुरिसवेदं खवेमाणयस्स आवलियचरिमसमयअसंछोहयस्स तस्स उक्कस्सयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं। उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं चरिमसमयपुरिसवेदस्स।

णवुंसयवेदस्स उक्कस्सयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स? गुणिदकम्मंसियस्स णवुंसयवेदेण अवट्ठिदस्स खवयस्स णवुंसयवेदआवलियचरिमसमयअसंछोहयस्स तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि उक्कस्सयाणि। [7]उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं तस्सेव चरिमसमयणवुंसयवेदक्खवयस्स।

छण्णोकसायाणमुक्कस्सयाणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि कस्स? गुणिद-कम्मंसिएण खवएण जाधे अंतरं कीरमाणं कदं तेसिं चेव कम्मंसाणमुदयावलियाओ पुण्णाओ ताधे उक्कस्सयाणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि। [8]तेसिं चेव उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स? गुणिदकम्मंसियस्स खवयस्स चरिमसमयअपुव्वकरणे वट्टमाणयस्स। [9]णवरि हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं जइ कीरइ भय-दुगुंछाणमवेदगो [10]कायव्वो। जइ भयस्स तदो दुगुंछाए अवेदगो कायव्वो। अह दुगुंछाए तदो भयस्स अवेदगो कायव्वो। उक्कस्सयं सामित्तं समत्तमोघेण।

[11]एत्तो जहण्णयं सामित्तं वत्तइस्सामो। मिच्छत्तस्स जहण्णयमोकड्डणादो उक्कड्डणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं कस्स? उवसामओ छसु आवलियासु सेसासु

(१) पृ० ३०२। (२) पृ० ३०३। (३) पृ० ३०४। (४) पृ० ३०५। (५) पृ० ३०६। (६) पृ० ३०७। (७) पृ० ३०८। (८) पृ० ३०६। (९) पृ० ३१०। (१०) पृ० ३११। (११) पृ० ३१२।

आसाणं गओ तस्स पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स जहण्णयमोकड्डुणादो उक्कड्डुणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं । [1]उदयादो जहण्णयं झीणट्ठिदियं तस्सेव आवलियमिच्छादिट्ठिस्स ।

[2]सम्मत्तस्स ओकड्डुणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स ? उवसमसमत्तपच्छायदस्स पढमसमयवेदयसम्माइट्ठिस्स ओकड्डुणादो उक्कड्डुणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं । [3]तस्सेव आवलियवेदयसम्माइट्ठिस्स जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं । [4]एवं सम्मामिच्छत्तस्स । णवरि पढमसमयसम्मामिच्छाइट्ठिस्स आवलियसम्मामिच्छाइट्ठिस्स चेदि ।

अट्ठकसाय-चउसंजलण-पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछाणं जहण्णयमोकड्डुणादो उक्कड्डुणादो च झीणट्ठिदियं कस्स ? उवसंतकसाओ मदो देवो जादो तस्स पढमसमयदेवस्स जहण्णयमोकड्डुणादो उक्कड्डुणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं । [5]तस्सेव आवलियउववण्णस्स जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं ।

[6]अणंताणुबंधीणं जहण्णयमोकड्डुणादो उक्कड्डुणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियं कस्स ? सुहुमणिओएसु कम्मट्ठिदिमणुपालियूण संजमासंजमं संजमं च बहुसो लभिदाउओ चत्तारि वारे कसाए उवसामेयूण तदो अणंताणुबंधी विसंजोएऊण संजोइदो । तदो वेछावट्ठिसागरोवमाणि सम्मत्तमणुपालेयूण तदो मिच्छत्तं गदो तस्स पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स जहण्णयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं । [7]तस्सेव आवलियसमयमिच्छाइट्ठिस्स जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं ।

[8]णवुंसयवेदस्स जहण्णयमोकड्डुणादितिण्हं पि झीणट्ठिदियं कस्स ? अभवसिद्धियपाओग्गेण जहण्णएण कम्मेण तिपलिदोवमिएसु उववण्णो । तदो अंतोमुहुत्तसेसे सम्मत्तं लद्धं । वेछावट्ठिसागरोवमाणि सम्मत्तमणुपालिदं । संजमासंजमं संजमं च बहुसो गदो । चत्तारि वारे कसाए उवसामित्ता अपच्छिमे भवे पुव्वकोडाउओ मणुस्सो जादो । तदो देसूणपुव्वकोडिसंजममणुपालियूण अंतोमुहुत्तसेसे परिणामपच्चएण असंजमं गदो । ताव असंजदो जाव गुणसेढी णिग्गलिदा त्ति तदो संजमं पडिवज्जियूण अंतोमुहुत्तेण कम्मक्खयं काहिदि त्ति तस्स पढमसमयसंजमं पडिवण्णस्स जहण्णयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं । [9]इत्थिवेदस्स वि जहण्णयाणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि एदस्स चेव । तिपलिदोवमिएसु णो उववण्णयस्स कायव्वाणि । [10]णवुंसयवेदस्स जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स ? सुहुमणिगोदेसु कम्मट्ठिदिमणुपालियूण तसेसु आगदो । संजमासंजमं संजमं सम्मत्तं च बहुसो गओ । चत्तारि वारे कसाए उवसामित्ता

(१) पृ० ३१६ । (२) पृ० ३२० । (३) पृ० ३२२ । (४) पृ० ३२२ । (५) पृ० ३२७ । (६) पृ० ३२८ । (७) पृ० ३३३ । (८) पृ० ३३४ । (९) पृ० ३३६ । (१०) पृ० ३४० ।

तदो एइंदिए गदो। पलिदोवमस्सासंखेज्जदिभागमच्छिदो ताव जाव उवसामयसमय-पबद्धा णिग्गलिदा त्ति। तदो पुणो मणुस्सेसु आगदो। पुव्वकोडी देसूणं संजममणु-पालियूण अंतोमुहुत्तसेसे मिच्छत्तं गदो। दसवस्ससहस्सिएसु देवेसु उववण्णो। अंतोमुहुत्तमुववण्णेण सम्मत्तं लद्धं। अंतोमुहुत्तावसेसे जीविदव्वए त्ति मिच्छत्तं गदो। तदो वि विकड्ढिदाओ ट्ठिदीओ तप्पाओग्गसव्वरहस्साए मिच्छत्तद्धाए एइंदिएसुववण्णो। तत्थ वि [1]तप्पाओग्गउक्कस्सयं संकिलेसं गदो तस्स पढमसमयएइंदियस्स जहण्णय-मुदयादो झीणट्ठिदियं।

[2]इत्थिवेदस्स जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं? एसो चेव णंवुसयवेदस्स पुव्वं परूविदो जाधे अपच्छिममणुस्सभवग्गहणं पुव्वकोडी देसूणं संजममणुपालियूण अंतोमुहुत्तसेसे मिच्छत्तं गओ, तदो वेमाणियदेवीसु उववण्णो अंतोमुहुत्तद्धमुववण्णो उक्कस्ससंकिलेसं गदो। तदो विकड्ढिदाओ ट्ठिदीओ उक्कड्ढिदा कम्मंसा जाधे तदो अंतोमुहुत्तद्धमुक्कस्सइत्थिवेदस्स ट्ठिदिं बंधियूण पडिभग्गो जादो। आवलियपडिभग्गाए तिस्से देवीए इत्थिवेदस्स उदयादो जहण्णयं झीणट्ठिदियं।

[3]अरदि-सोगाणमोकड्डुणादित्तिगझीणट्ठिदियं जहण्णयं कस्स? एइंदियकम्मेण जहण्णएण तसेसु आगदो। संजमासंजमं संजमं च बहुसो लद्धूण तिण्णि वारे कसाए उवसामेयूण एइंदिए गदो। तत्थ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमच्छियूण जाव उवसामयसमयपबद्धा गलंति तदो मणुस्सेसु आगदो। तत्थ पुव्वकोडी देसूणं संजम-मणुपालियूण कसाए उवसामेयूण उवसंतकसाओ कालगदो देवो तेत्तीससागरोवमिओ जादो। जाधे चेय हस्स-रईओ ओकड्डिदाओ उदयादिणिक्खित्ताओ अरदि-सोगा ओकड्डित्ता [4]उदयावलियबाहिरे णिक्खित्ता। से काले दुसमयदेवस्स एया ट्ठिदी अरइ-सोगाणमुदयावलियं पविट्ठा ताधे अरदि-सोगाणं जहण्णयं तिण्हं पि झीणट्ठिदियं। [5]अरइ-सोगाणं जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं कस्स? एइंदिय-कम्मेण जहण्णएण तसेसु आगदो। तत्थ संजमासंजमं संजमं च बहुसो गदो। चत्तारि वारे कसायमुवसामिदा। तदो एइंदिए गदो। तत्थ पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागमच्छिदो जाव उवसामयसमयपबद्धा णिग्गलिदा त्ति। तदो मणुस्सेसु आगदो। तत्थ पुव्वकोडी देसूणं संजममणुपालियूण अपडिवदिदेण सम्मत्तेण वेमाणिएसु देवेसु उववण्णो। अंतोमुहुत्तमुववण्णो उक्कस्ससंकिलेसं गदो। अंतोमुहुत्तमुक्कस्सट्ठिदिं बंधियूण पडिभग्गो जादो। तस्स आवलियपडिभग्गस्स भय-दुगुंछाणं वेदयमाणस्स

---

(१) पृ० ३४१। (२) पृ० ३४६। (३) पृ० ३५०। (४) पृ० ३५१। (५) पृ० ३५४।

[1]अरदि-सोगाणं जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं । [2]एवमोघेण सव्वमोहणीयपयडीणं जहण्णमोकड्डणादिझीणट्ठिदियसामित्तं परूविदं ।

अप्पाबहुअं । सव्वत्थोवं मिच्छत्तस्स उक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं । उक्कस्सयाणि ओकड्डणादो उक्कड्डणादो संकमणादो च झीणट्ठिदियाणि तिण्णि वि तुल्लाणि असंखेज्जगुणाणि । एवं सम्मामिच्छत्त-पण्णारसकसाय-छण्णोकसायाणं । सम्मत्तस्स सव्वत्थोवमुक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियं । सेसाणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि उक्कस्सयाणि तुल्लाणि विसेसाहियाणि । [3]एवं लोभसंजलण-तिण्णिवेदाणं ।

एत्तो जहण्णयं झीणट्ठिदियं । मिच्छत्तस्स सव्वत्थोवं जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं । सेसाणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि तुल्लाणि असंखेज्जगुणाणि । [4]जहा मिच्छत्तस्स जहण्णयमप्पाबहुअं तहा जेसिं कम्मंसाणमुदीरणोदओ अत्थि तेसिं पि जहण्णयमप्पाबहुअं । अणंताणुबंधि-इत्थिवेद-णवुंसयवेद-अरइ-सोगा त्ति एदे अट्ठ कम्मंसे मोत्तूण सेसाणमुदीरणोदयो । जेसिं ण उदीरणोदयो तेसिं पि सो चेव आलावो अप्पाबहुअस्स जहण्णयस्स । [6]णवरि अरइ-सोगाणं जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं थोवं । सेसाणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि तुल्लाणि विसेसाहियाणि । [7]अहवा इत्थि-णवुंसयवेदाणं जहण्णयाणि ओकड्डणादीणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि तुल्लाणि थोवाणि । उदयादो जहण्णयं झीणट्ठिदियमसंखेज्जगुणं । अरइ-सोगाणं जहण्णयाणि तिण्णि वि झीणट्ठिदियाणि तुल्लाणि थोवाणि । जहण्णयमुदयादो झीणट्ठिदियं विसेसाहियं । [8]एवमप्पाबहुए समत्ते झीणट्ठिदियं ति पदं समत्तं होदि ।

झीणाझीणाहियारो समत्तो ।

ट्ठिदियं ति चूलिया

ट्ठिदियं ति जं पदं तस्स विहासा । [9]तत्थ तिण्णि अणियोगद्दाराणि । तं जहा—समुक्कित्तणा सामित्तमप्पाबहुअं च । समुक्कित्तणाए अत्थि उक्कस्सट्ठिदिपत्तयं णिसेयट्ठिदिपत्तयं अधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं उदयट्ठिदिपत्तयं च । [10]उक्कस्सयट्ठिदिपत्तयं णाम किं ? जं कम्मं बंधसमयादो उदए दीसइ तमुक्कस्सट्ठिदिपत्तयं । [11]णिसेयट्ठिदिपत्तयं णाम किं ? जं कम्मं जिस्से ट्ठिदीए णिसित्तं ओकड्डिदं वा उक्कड्डिदं वा तिस्से चेव ट्ठिदीए उदए

(१) पृ० ३५५ । (२) पृ० ३५६ । (३) पृ० ३५७ । (४) पृ० ३५८ । (५) पृ० ३५६ । (६) पृ० ३६१ । (७) पृ० ३६२ । (८) पृ० ३६६ । (६) पृ० ३६७ । (१०) पृ० ३६८ । (११) पृ० ३७० ।

दिस्सइ तं णिसेयट्ठिदिपत्तयं। [1]अधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं णाम किं? जं कम्मं जिस्से ट्ठिदीए णिसित्तं अणोकड्डिदं अणुक्कड्डिदं तिस्से चेव ट्ठिदीए उदए दिस्सइ तमधाणिसेय-ट्ठिदिपत्तयं। [2]उदयट्ठिदिपत्तयं णाम किं? [3]जं कम्मं उदए जत्थ वा तत्थ वा दिस्सइ तमुदयट्ठिदिपत्तयं। एदमट्ठपदं। एत्तो एक्केक्कट्ठिदिपत्तयं चउव्विहमुक्कस्समणुक्कस्सं जहण्णमजहण्णं च।

[4]सामित्तं। मिच्छत्तस्स उक्कस्सयमग्गट्ठिदिपत्तयं कस्स? अग्गट्ठिदिपत्तय-मेक्को वा दो वा पदेसा एवमेगादि-एगुत्तरियाए वड्ढीए जाव ताव उक्कस्सयं समय-पबद्धस्स अग्गट्ठिदीए जत्तियं णिसित्तं तत्तियमुक्कस्सेण अग्गट्ठिदिपत्तयं। [5]तं पुण अण्णदरस्स होज्ज। [6]अधाणिसेयट्ठिदिपत्तयमुक्कस्सयं कस्स? तस्स ताव संदरिसणा—उदयादो जहण्णयमाबाहामेत्तमोसक्किदूण जो समयपबद्धो तस्स णत्थि अधाणिसेय-ट्ठिदिपत्तयं। [7]समयुत्तराए आबाहाए एवदिमचरिमसमयपबद्धस्स अधाणिसेओ अत्थि। तत्तो पाए जाव असंखेज्जाणि पलिदोवमवग्गमूलाणि तावदिमसमयपबद्धस्स अधाणिसेओ णियमा अत्थि। [8]एक्कस्स समयपबद्धस्स एक्किस्से ट्ठिदीए जो उक्कस्सओ अधाणिसेओ तत्तो केवडिगुणं उक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं? तस्स णिदरिसणं। जहा—[9]ओकड्डुक्कड्डणाए कम्मस्स अवहारकालो थोवो। अधापवत्तसंकमेण कम्मस्स अवहारकालो असंखेज्जगुणो। ओकड्डुक्कड्डणाए कम्मस्स जो अवहारकालो सो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। [10]एवदिगुणमेक्कस्स समयपबद्धस्स एक्किस्से ट्ठिदीए उक्कस्सयादो जहाणिसेयादो उक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं।

[11]इदाणिमुक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं कस्स? सत्तमाए पुढवीए णेरइयस्स जत्तियमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयमुक्कस्सयं तत्तो विसेसुत्तरकालमुववण्णो जो णेरइओ तस्स जहण्णेण उक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं। [12]एदम्हि पुण काले सो णेरइओ तप्पाओग्गुक्कस्सयाणि जोगट्ठाणाणि अभिक्खं गदो। [13]तप्पाओग्गउक्कस्सयाहि वड्ढीहि वड्ढिदो। तिस्से ट्ठिदीए णिसेयस्स उक्कस्सपदं। [14]जा जहण्णिया आबाहा अंतोमुहुत्तुत्तरा एवदिसमयअणुदिण्णा सा ट्ठिदी। तदो जोगट्ठाणाण-मुवरिल्लमद्धं गदो। [15]दुसमयाहियआबाहाचरिमसमयअणुदिण्णाए एयसमयाहिय-आबाहाचरिमसमयअणुदिण्णाए च उक्कस्सयं जोगमुववण्णो। तस्स उक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं। [16]णिसेयट्ठिदिपत्तयं पि उक्कस्सयं तस्सेव।

---

(१) पृ० ३७१। (२) पृ० ३७२। (३) पृ० ३७३। (४) पृ० ३७४। (५) पृ० ३७६। (६) पृ० ३७७। (७) पृ० ३७८। (८) पृ० ३८०। (९) पृ० ३८१। (१०) पृ० ३८२। (११) पृ० ३८६। (१२) पृ० ३९२। (१३) पृ० ३९३। (१४) पृ० ३९४। (१५) पृ० ३९५। (१६ पृ० ३९६।

उदयट्ठिदिपत्तयमुक्कस्सयं कस्स ? गुणिदकम्मंसिओ संजमासंजमगुणसेढिं संजम-गुणसेढिं च काऊण [1]मिच्छत्तं गदो जाधे गुणसेढिसीसयाणि उदिण्णाणि ताधे मिच्छत्तस्स उक्कस्सयमुदयट्ठिदिपत्तयं। एवं समत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पि। [2]णवरि उक्कस्सयमुदयट्ठिदिपत्तयमुक्कस्सयमुदयादो झीणट्ठिदियभंगो।

[3]अणंताणुबंधिचउक्क-अट्ठकसाय-छण्णोकसायाणं मिच्छत्तभंगो। णवरि अट्ठ-कसायाणमुक्कस्सयमुदयट्ठिदिपत्तयं कस्स ? संजमासंजम-संजम-दंसणमोहणीयक्खवय-गुणसेढीओ त्ति एदाओ तिण्णि वि गुणसेढीओ गुणिदकम्मंसिएण कदाओ। एदाओ काऊण अविणट्ठेसु असंजमं गओ। पत्तेसु उदयगुणसेढिसीसएसु उक्कस्सयमुदयट्ठिदि-पत्तयं। [4]छण्णोकसायाणमुक्कस्सयमुदयट्ठिदिपत्तयं कस्स ? चरिमसमयअपुव्वकरणे वट्टमाणयस्स। हस्स-रइ-अरइ-सोगाणं जइ कीरइ भय-दुगुंछाणमवेदओ कायव्वो। [5]जइ भयस्स तदो दुगुंछाए अवेदओ कायव्वो। अध दुगुंछाए तदो भयस्स अवेदओ कायव्वो।

कोहसंजलणस्स उक्कस्सयमग्गट्ठिदिपत्तयं कस्स ? उक्कस्सयमग्गट्ठिदिपत्तयं जहा पुरिमाणं कायव्वं। उक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं कस्स ? कसाए उवसामित्ता पडिवदिदूण पुणो अंतोमुहुत्तेण कसाया [6]उवसामिदा विदियाए उवसामणाए आबाहा जम्हि पुण्णा सा ट्ठिदी आदिट्ठा। तम्हि उक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं। [7]णिसेयट्ठिदिपत्तयं च तम्हि चेव। उक्कस्सयमुदयट्ठिदिपत्तयं कस्स ? [8]चरिमसमयकोहवेदयस्स। एवं माण-माया-लोहाणं।

[9]पुरिसवेदस्स चत्तारि वि ट्ठिदिपत्तयाणि कोहसंजलणभंगो। णवरि उदयट्ठिदि-पत्तयं चरिमसमयपुरिसवेदक्खवयस्स गुणिदकम्मंसियस्स। इत्थिवेदस्स उक्कस्सयमग्ग-ट्ठिदिपत्तयं मिच्छत्तभंगो। उक्कस्सयअधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं णिसेयट्ठिदिपत्तयं च कस्स ? [10]इत्थिवेदसंजदेण इत्थिवेद-पुरिसवेदपूरिदकम्मंसिएण अंतोमुहुत्तस्संतो दो वारे कसाए उवसामिदा। जाधे विदियाए उवसामणाए जहण्णयस्स ट्ठिदिबंधस्स पढमणियेसट्ठिदी उदयं पत्ता ताधे अधाणिसेयादो णिसेयादो च उक्कस्सयं ट्ठिदिपत्तयं। [11]उदयट्ठिदिपत्तयमुक्कस्सयं कस्स ? गुणिदकम्मंसियस्स खवयस्स चरिमसमयइत्थिवेदयस्स तस्स उक्कस्सयमुदयट्ठिदिपत्तयं। [12]एवं णवुंसयवेदस्स। णवरि णवुंसयवेदोदयस्से त्ति भाणिदव्वाणि।

---

(१) पृ० ४०० । (२) पृ० ४०२ । (३) पृ० ४०३ । (४) पृ० ४०४ । (५) पृ० ४०५ । (६) पृ० ४०६ । (७) पृ० ४१८ । (८) पृ० ४१९ । (९) पृ० ४२० । (१०) पृ० ४२१ । (११) पृ० ४२२ । (१२) पृ० ४२३ ।

जहण्णयाणि ट्ठिदिपत्तयाणि कायव्वाणि। [1]सव्वकम्माणं पि अग्गट्ठिदिपत्तयं जहण्णयमेओ पदेसो। तं पुण अण्णदरस्स होज्ज। मिच्छत्तस्स णिसेयट्ठिदिपत्तय-मुयट्ठिदिपत्तयं च जहण्णयं कस्स? [2]उवसमसम्मत्तपच्छायदस्स पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स तप्पाओग्गुक्कस्ससंकिलिट्ठस्स तस्स जहण्णयं णिसेयट्ठिदिपत्तयमुदयट्ठिदिपत्तयं च। [3]मिच्छत्तस्स जहण्णयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं कस्स? जो एइंदियट्ठिदिसंतकम्मेण जहण्णएण तसेसु आगदो अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो। वेछावट्ठिसागरोवमाणि सम्मत्तमणुपालियूण मिच्छत्तं गदो। तप्पाओग्गउक्कस्सियमिच्छत्तस्स जावदिया आबाहा तावदिमसमयमिच्छाइट्ठिस्स तस्स जहण्णयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं।

[4]जेण मिच्छत्तस्स रचिदो अधाणिसेओ तस्स चेव जीवस्स सम्मत्तस्स अधाणिसेओ कायव्वो। णवरि तिस्से उक्कस्सियाए सम्मत्तद्धाए चरिमसमए तस्स चरिमसमयसम्माइट्ठिस्स जहण्णयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं। [5]णिसेयादो च उदयादो च जहण्णयं ट्ठिदिपत्तयं कस्स? उवसमसम्मत्तपच्छायदस्स पढमसमयवेदयसम्माइट्ठिस्स तप्पाओग्गउक्कस्ससंकिलिट्ठस्स तस्स जहण्णयं। [6]सम्मत्तस्स जहण्णओ अहाणिसेओ जहा परूविओ तीए चेव परूवणाए सम्मामिच्छत्तं गओ। तदो उक्कस्सियाए सम्मामिच्छत्तद्धाए चरिमसमए जहण्णयं सम्मामिच्छत्तस्स अधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं। [7]सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णयं णिसेयादो उदयादो च ट्ठिदिपत्तयं कस्स? उवसमसम्मत्त-पच्छायदस्स पढमसमयसम्मामिच्छाइट्ठिस्स तप्पाओग्गुक्कस्ससंकिलिट्ठस्स।

अणंताणुबंधीणं णिसेयादो अधाणिसेयादो च जहण्णयं ट्ठिदिपत्तयं कस्स? जो एइंदियट्ठिदिसंतकम्मेण जहण्णएण पंचिंदिए गओ। अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो। अंतोमुहुत्तेण पुणो पडिवदिदो। रहस्सकालेण संजोएऊण सम्मत्तं पडिवण्णो। वेछावट्ठिसागरोवमाणि अणुपालियूण मिच्छत्तं गओ तस्स आवलियमिच्छाइट्ठिस्स जहण्णयं णिसेयादो अधाणिसेयादो च ट्ठिदिपत्तयं। [8]उदयट्ठिदिपत्तयं जहण्णयं कस्स? एइंदियकम्मेण जहण्णएण तसेसु आगदो। तम्हि संजमासंजमं संजमं च बहुसो लद्धूण चत्तारि वारे कसाए उवसामित्ता एइंदिए गओ। असंखेज्जाणि वस्साणि अच्छिदूण उवसामयसमयपबद्धेसु गलिदेसु [10]पंचिंदिएसु गदो। अंतोमुहुत्तेण अणंताणुबंधी विसंजोइत्ता तदो संजोएऊण जहण्णएण अंतोमुहुत्तेण पुणो सम्मत्तं लद्धूण वेछावट्ठिसागरोवमाणि अणंताणुबंधिणो गालिदा। तदो मिच्छत्तं गदो। तस्स आवलियमिच्छाइट्ठिस्स जहण्णयमुदयट्ठिदिपत्तयं।

---

(१) पृ० ४२४। (२) पृ० ४२५। (३) पृ० ४३०। (४) पृ० ४३५। (५) पृ० ४३६। (६) पृ० ४३७। (७) पृ० ४३८। (८) पृ० ४३९। (९) पृ० ४४०। (१०) पृ० ४४१।

[1]बारसकसायाणं णिसेयट्ठिदिपत्तयमुदयट्ठिदिपत्तयं च जहण्णयं कस्स ? जो उवसंतकसाओ सो गदो देवो जादो तस्स पढमसमयदेवस्स जहण्णयं णिसेयट्ठिदिपत्तयमुदयट्ठिदिपत्तयं च। अधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं जहण्णयं कस्स ? अभवसिद्धियपाओग्गेण जहण्णएण कम्मेण तसेसु उववण्णो। तप्पाओग्गुक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणस्स जद्देही आबाहा तावदिमसमए तस्स जहण्णयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं। अइक्कंते काले कम्मट्ठिदिअंतो सइं पि तसो ण आसी। [2]एवं पुरिसवेद-हस्स-रइ-भय-दुगुंछाणं। [3]इत्थि-णवुंसयवेद-अरदि-सोगाणमधाणिसेयादो जहण्णयं ट्ठिदिपत्तयं जहा संजलणाणं तहा कायव्वं। जम्हि अधाणिसेयादो जहण्णयं ट्ठिदिपत्तयं तम्हि चेव णिसेयादो जहण्णयं ट्ठिदिपत्तयं। उदयट्ठिदिपत्तयं जहा उदयादो झीणट्ठिदियं जहण्णयं तहा णिरवयवं कायव्वं।

[4]अप्पाबहुअं। सव्वपयडीणं सव्वत्थोवमुक्कस्सयमग्गट्ठिदिपत्तयं। उक्कस्सयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयमसंखेज्जगुणं। णिसेयट्ठिदिपत्तयमुक्कस्सयं विसेसाहियं। [5]उदयट्ठिदिपत्तयमुक्कस्सयमसंखेज्जगुणं।

जहण्णयाणि कायव्वाणि। सव्वत्थोवं मिच्छत्तस्स जहण्णयमग्गट्ठिदिपत्तयं। [6]जहण्णयं णिसेयट्ठिदिपत्तयं अणंतगुणं। जहण्णयमुदयट्ठिदिपत्तयं असंखेज्जगुणं। [7]जहण्णयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयमसंखेज्जगुणं। [8]एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रइ-भय-दुगुंछाणं। अणंताणुबंधीणं सव्वत्थोवं जहण्णयमग्गट्ठिदिपत्तयं। जहण्णयमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयमणंतगुणं। जहण्णयं णिसेयट्ठिदिपत्तयं विसेसाहियं। [9]जहण्णयमुदयट्ठिदिपत्तयमसंखेज्जगुणं। एवमित्थिवेद-णवुंसयवेद-अरदि-सोगाणं।

तदो ट्ठिदियं ति पदस्स विहासा समत्ता। एत्थेव पयडीय मोहणिज्जा एदिस्से मूलगाहाए अत्थो समत्तो।

ट्ठिदियं ति अहियारो समत्तो

तदो पदेसविहत्ती सचूलिया समत्ता।

---

(१) पृ० ४४२। (२) पृ० ४४४। (३) पृ० ४४५। (४) पृ० ४४६। (५) पृ० ४४७। (६) पृ० ४४८। (७) पृ० ४४९। (८) पृ० ४५०। (९) पृ० ४५१।

२ अवतरणसूची

पुस्तक ६

क्रमाङ्क	पृ०	क्रमाङ्क	पृ०	क्रमाङ्क	पृष्ठ
अ ४ अप्रतिबुद्धे श्रोतरि	१४६	ब २ बंधेण होदि उदओ	८०	२ सम्मत्तुप्पत्ती वि य	१२८
ख ३ खवगे य खीणमोहे	१२६	स ५ सदा संप्रतीत्यातिथी-	२८७		

सूचना—टीकाकारने पृष्ठ ६२ में 'प्रक्षेपकसंक्षेपेन' तथा पृष्ठ ६५ में 'बंधे उक्कड्डदि' ये दो अंश उद्धृत किये हैं। पुस्तक ७ के पृ० २४५ में भी बंधे उक्कड्डदि' इतना पदांश उद्धृत है।

३ ऐतिहासिक नामसूची

पुस्तक ६

	पृ०		पृ०		पृ०
अ अनन्त जिन	१	य यतिवृषभगणीद्र	१०७	व व्याख्यानाचार्य भट्टारक	२४५
उ उच्चारणाचार्य	१०७, ३८७	यतिवृषभआचार्य	१३५, ३०१, ३४०		

पुस्तक ७

	पृ०		पृ०		पृ०
आ आचार्य (सामान्य)	३ ३५२	उ उच्चारणाचार्य	७, ८, ६३	य यतिवृषभभगवंत	६६
आचार्यभट्टारक	१०२	च चूर्णिसूत्रकार	२५५, २६६, ३२५	यतिवृषभाचार्य	८
		ज जिनेन्द्रचन्द्र	२३१	वीर (जिन)	३६६

४ ग्रन्थनामोल्लेख

पुस्तक ६

	पृ०		पृ०		पृ०
उ उच्चारणा	११४	च चूर्णिसूत्र	११४, ३८६	व वेदना	६, १३, ७५, ३८५
उपदेश (अपवाइज्जमाण)	२६	म महाबन्धसूत्र	६१	वेदनादिसूत्र	२५०
				स सूत्र (वचन)	६२, ६५

पुस्तक ७

	पृ०		पृ०		पृ०
उ उच्चारणा	२७, ५०, ६४, १३३	च चूर्णिसूत्र	७, २७, ६३, ६७	व वेदग	३६३
कदिवेदणादि चउवीस अणियोगद्दार	२६०	ट ट्ठिदिअंतिय	३६३	वेदना	५६, ६३, ६७
क खुल्लकबन्ध	१६				

५ न्यायोक्ति

पुस्तक ६

पृ०

समुदाए पउत्ता सद्दा तदवयवेसु वि वट्टंति। पृ० २०४

६ चूर्णिसूत्रगतशब्दसूची

पुस्तक ६

इस शब्दानुक्रमणिकामें सर्वनाम शब्द और क्रियापद छूटे हैं। शेष पूरे शब्दोंका संग्रह है।

पुस्तक ७

७ जयधवलान्तर्गतविशेषशब्दसूची

पुस्तक ६

पुस्तक ७